प्रकर

Vol. 25 — 1993 No. 1 - 4, 6, 8

G.K.V. LIB.
Hardwar

130334

I/Compl (52)

11-3-93

प्रकर

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

माघ : २०४६ [विक्रमाब्द] :: जनवरी : १९९३ [ईस्वी]

Vol. 25 1993
1-4, 6, 8

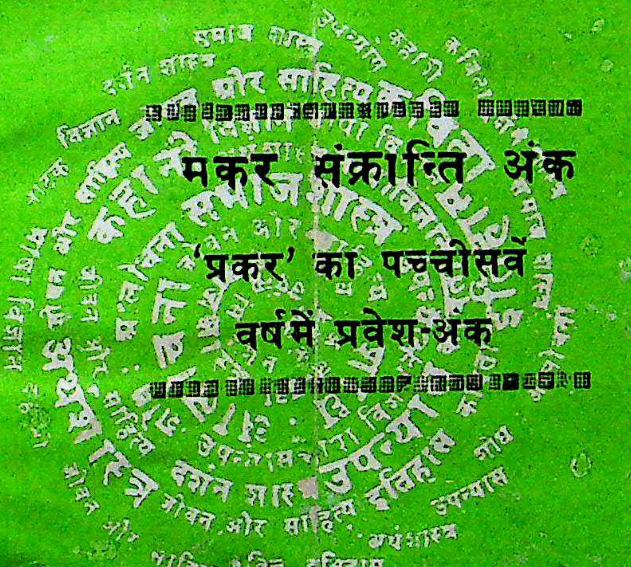
समाज शास्त्र
उपन्यास
दर्शन शास्त्र
विज्ञान
कहानी
जीवन और साहित्य
इतिहास
अर्थशास्त्र
शोध

मकर संक्रान्ति अंक

'प्रकर' का पच्चीसवें
वर्षमें प्रवेश-अंक

130334

अंक-सामग्री

स्वर : विसंवादी

"सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव" १

सिंहावलोकन

नवम दशककी आलोचना-१—डॉ. वीरेन्द्र सिंह ५ —

हिन्दी व्याकरण : नयी दृष्टि

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-५—पं. काशीराम शर्मा ९ —

अध्ययन : अनुशीलन

राजस्थानी साहित्यका अनुशीलन—डॉ. बी. एल. माली १४ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
सूर तथा तुलसीके विनय पदोंका अनुशीलन—निर्मला मौर्य १६ डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य
मूकमाटी महाकाव्य : काव्यशास्त्रीय निकष- प्रो. शीलचन्द्र जैन १७ डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

उपन्यास

ख्वाबरो - जोगेन्द्र पाल, अनुवाद : कृष्णा पाल १९ डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी
खराब मौसमके बावजूद—डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना २० डॉ. शशिप्रभा शास्त्री
दूसरा आँचल—डॉ. सूर्यदीन यादव २३ डॉ. दयाशंकर

कहानी

माईका शोकगीत—दूधनाथ सिंह २५ डॉ. मूलचन्द्र सेठिया
ओ सोनकिसरी—चन्द्रकान्ता २८ डॉ. हरदयाल
तीसरा आदमी—नारायण सिंह ३० सुश्री सुमति अटार

विज्ञान-साहित्य

संभवामि युगे-युगे (उपन्यास)—लक्ष्मण लोंढे, चिन्तामणि देशमुख ३३ श्री सुरेन्द्र तिवारी
यक्षोपहार (कहानी संग्रह)—डॉ. जयन्त नारलीकर ३५ ,,
विज्ञानेश्वरी (निबन्ध)—दत्त प्रसाद दाभोलकर ३६ ,,

काव्य

शब्दभेद (उड़ियासे अनूदित)—जगन्नाथप्रसाद दास ३८ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
सरयू—डॉ. अनन्तराम मिश्र ३९ डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
उम्र भरका हिसाब—चन्द्रकान्त मोनवलकर ४१ डॉ. प्रयाग जोशी
जैसे ओस कहानी—सुरेशकुमार ४२ ,,
फुनगियोंपर लटका एहसास—अशोक आद्रेन ४३ ,,

हिन्दी ग़ज़ल

न्याय कर मेरे समय—चन्द्रसेन विराट ४४ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
उम्मोद-ए-सहर- किशोर तिवारी 'केशू' ४६ डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

राजनीति-धर्म-संसद्

धर्म निरपेक्षवाद और भारतीय प्रजातन्त्र—एम. पी. दुबे ४८ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
संसदीय प्रक्रिया—डॉ. सुभाष काश्यप ५० (१) डॉ. हरिश्चन्द्र
(२) डॉ. आराधना परमार

सुरक्षा : समस्या

राष्ट्रीय सुरक्षा—डॉ. अशोककुमार सिंह ५१ डॉ. प्रशान्तकुमार

प्रकर [अध्ययन-अनुशीलन-समीक्षाको मासिक-पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २५ अंक : १ माघ : २०४९ [विक्रमाब्द] जनवरी : १९९३ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

"सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव !"

बाबरी कमेटीका सत्ता-सहयोगसे एक इंच भूमि भी न देनेका संकल्प

अभी-अभी समाप्त हुए अंग्रेजी वर्षमें प्रधानमन्त्रीसे लेकर इंडियन इंग्लिश (इंडिश) के समाचारपत्रों और अनुवादी हिन्दी पत्रोंको केवल एक ही घटना उल्लेखनीय और स्मरणीय प्रतीत होतीहै बाबरी-गुमटीका गिराया जाना, जिसे उन्होंने गुमटीसे मस्जिद बना दियाहै। परन्तु गत वर्षोंमें कश्मीरमें सौसे अधिक मन्दिरोंके गिराये जानेपर भी किसी राजनीतिज्ञ भले ही स्मरण आ जाये, अपने ही देशमें अपने उपासना-स्थलों और मन्दिरोंको ढहते देखनेवाले इन भूखे-प्यासे और आश्रयहीन समूहोंको देखकर किसीको देशका संविधान नष्ट होता दिखायी नहीं दिया, न कश्मीर-पंजाबकी सरकारें गिरायी गयीं। इसके विपरीत ऐसी सरकारें स्थापित कीगयीं जो आतंकवादसे उजड़े लोगोंको संरक्षण देनेसे भी कतराती रहीं। पर और इंडिश एवं अनुवादी हिन्दी-पत्रको ऐसा विलाप करते देखना तो दूर रहा, हां, उभरती मुस्कानके चिह्न अवश्य देखेजा सकतेथे। कश्मीर-पंजाबसे जिस प्रकार घरोंसे उजाड़कर सड़कोंपर बिना दाना-पानी-कपड़ोंके लोगोंको ला खड़ा किया गया, उसे देखकर १९४७ में पाकिस्तानसे विस्थापित होकर आनेवाले शरणार्थियोंका बाबरी गुमटीके गिरतेही पूरी सरकार—देशकी केन्द्रीय सरकारको और पत्रकारों—को देश खण्डित होता दिखायी देने लगा। यह ऐतिहासिक परिदृश्य सभीके आँखोंके सामने है। सभी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हैं। धरतीके विना फटे उन्हें अब, केवल अब, धरती फटी दिखायी देनी लगीहै।

◆ ◆ ◆

मकर संक्रान्तिके शुभ अवसरपर पच्चीसवें वर्षमें प्रवेशके साथ 'प्रकर' अपने समी पाठकों, समीक्षकों तथा ज्ञानात्मक-वैचारिक स्तरपर उद्बोधन करनेवाले मनीषियोंका अभिवादन करताहै, अपने दीर्घ आयुष्यको मंगलकामनाको आकांक्षाके साथ.

◆ ◆ ◆

इसी परिदृश्यके भीतरसे यहभी सुनायी देने लगा कि एक वर्ग कह रहाहै कि तुम हमें मात्र अयोध्या-काशी-मथुराके ध्वस्त मन्दिर लौटा दो, हम अन्य हजारों ध्वस्त मन्दिरोंकी मांग छोड़ देंगे। पर ऐतिहासिक विजयोंसे उन्मत्त वर्गको हजारों वर्षोंसे सदा पराजित होते आ रहे वर्गका यह गिड़गिड़ाना आँखें तरेरना ही प्रतीत हुआ । सारी भारतीय राजनीतिमें उफान आगया और इस दुस्साहस के लिए तीन मंदिरोंके भिखारियोंपर राजनीतिक गालियोंकी बौछार कीजाने लगी। इतिहासके किसी अतीत खण्डमें सैनिक विजय प्राप्तिके उन्मादमें वे यह मांग किसी मूल्यपर स्वीकार करनेको तैयार नहीं हुए, बल्कि अब दिल्लीकी जामा मस्जिदसे धमकियोंकी बौछार शुरु होगयी। इन धमकियोंकी बौछारसे किसीको देशकी शांति भंग होती दिखायी नहीं दी। तभी हमें सुदूर अतीतसे दुर्योधनकी चिल्लाहट सुनायी दी: "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव", बिना युद्ध और संहारके तो सुईकी नोकके बराबर भी भूमि नहीं दूंगा। दुर्योधनके इस दुराग्रहने देशको महाभारतके गृह-युद्धमें लपेट दिया और उत्तरसे दक्षिण, पश्चिमसे पूर्व तकका पूरा क्षेत्र इस विनाश-लीलामें पंगु होगया। पर यह ऐतिहासिक सत्य अब मात्र 'मिथक' बन गयाहै।

भारतीय इतिहासकी इस परिक्रमासे आधुनिक राजनीतिज्ञको घबराहट होतीहै, क्योंकि वह स्वयं मिथक नहीं, 'सत्य' बनना चाहताहै । उसका विश्वास है कि उसके बाल्यकालमें उसके वयोवृद्धोंने सत्य और अहिंसाके बलपर ही तो स्वाधीनता अर्जित कीथी। चिन्तनका यही पक्ष था जबकि फेबियन समाजवादी जनाब नेहरू साहबने १९२८ में पंजाब प्रान्तीय कांग्रेसमें पूरे आग्रह और बलके साथ कहा था: 'केवल ब्रिटिश आर्थिक शोषणने ही हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्यको कायम रखा हुआहै।' इस दृष्टिसे यह सत्य था क्योंकि तबतक मुस्लिम काल मिथककी श्रेणीमें ढकेला जा चुकाथा। पर ब्रिटिश आर्थिक शोषण समाप्त होनेके बाद सत्ता साम्राज्यवादियोंके हाथसे निकलकर फेबियन समाजवादीसे 'सामन्तवादी' बने नेहरु वंशमें आकर स्थिर होगयी तोभी हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य निरन्तर विकसित ही होता गयाहै। ब्रिटिश शासनकालमें भलेही राजनीतिक स्तरपर हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यको पनपाया गयाहो, परन्तु यहभी उसी कालका सत्य है कि कांग्रेसने ब्रिटिश नीतियोंको मात देनेके लिए मुस्लिम पक्षधरताको अपने कार्यक्रमोंका अंग 'स्थायी नीति' के रूपमें बना लियाथा । यदि खिलाफत आन्दोलनका आज विश्लेषण किया जाये और उसके दीर्घ राजनीतिक प्रभावको ध्यानमें रखते हुए देशकी तात्कालिक प्रतिक्रियाका चित्र उभारा जाये तो देशको खण्डित करनेका अंगदका प्रथम चरण गांधीजी और कांग्रेसने तभी रख दियाथा। अंग्रेज अपने स्वार्थके लिए दोनों वर्गोंमें वैमनस्य फैलाताथा तो विखण्डनकी आधारभूमि कांग्रेस तैयार करतीथी। कांग्रेसने तो १९१६ में अपने बत्तीसवें अधिवेशनमें पृथक् निर्वाचनका सिद्धान्त स्वीकार कर लियाथा।

ब्रिटेन अपने शासनकालमें निरन्तर प्रचारित करताथा कि यदि वह भारत छोड़दे तो देशमें विप्लव हो जायेगा, देश खण्ड-खण्ड हो जायेगा। अपने इस प्रचार और कथनको व्यावहारिक रूपमें परिवर्तित करनेके लिए लार्ड डफरिनके संकेतपर ए. ओ. ह्यूमके प्रयत्नोंसे स्थापित कांग्रेसने और उसकी नीतियोंने 'राष्ट्रीय एकता' के शंखघोषके साथ समर्थन प्रदान किया, देशको खण्डित करनेकी अन्तर्वर्ती ब्रिटिश नीतियों या कार्यक्रमोंका मूक समर्थन किया, कांग्रेस कभी विरोधमें खड़ी नहीं हुई। यही वह पृष्ठभूमि थी जिसके कारण माऊण्टबेटन दम्पतीके पुचकारने मात्रसे नेहरू साहब और उनके साथी देश-विभाजन के लिए सहमत होगये, राष्ट्रीय एकताके सभी कार्यक्रम अदृश्य हो गये, 'मेरी लाशपर पाकिस्तान बनेगा' गांधीजीकी घोषणा भी इतिहासका एक अर्थहीन वाक्य बन गयी।

पाकिस्तान-निर्माणके लिए सहमत होने और उसके निर्माणके साथ लाखों लोगोंकी बलि चढ़ाने, उससेभी अधिक लोगोंको निराश्रित और पंगु बनानेके बाद खण्डित भारतको वे 'मजहबी' वैमनस्यसे सुरक्षित रखनेकी स्थितिमें काग्रेस और नेहरू साहब दोनों थे। परंतु कांग्रेस अपने संस्थापकोंके संस्कारोंसे और नेहरू साहब अपनी ब्रिटिश दीक्षा और आनुवंशिक अभ्याससे इतने विवश थे कि अनुकूल वातावरण और स्थिति होते हुएभी उन्होंने वैमनस्य पनपानेकी ब्रिटिश नीति ही अपना ली। यह भी अनुमान है कि सत्तापर अपना अधिकार बनाये रखनेके लिए ही वैमनस्यकी नीति उन्हें उपयुक्त प्रतीत हुई। ब्रिटिश परम्पराके अनुसार मुस्लिम समुदायको

देशकी मुख्यधारासे अलग रखनेके प्रावधान किये गये, ३७० अनुच्छेदकी अस्थायी और अनु. २९की व्यवस्थाभी इसीका परिणाम थी, जिसका स्वाभाविक रूप यह बना कि कश्मीर'मुस्लिम राज्य'भी बन गया,और यह लाभ भी प्राप्त कर लियाकि उसे अपने राज्य और भारतीय राज्य दोनोंकी नागरिकता प्राप्त होगयी। यहभी तथ्य है कि नेहरू साहबकी सत्ताके समयही बहुमतका झुकाव नेहरू साहब और उनकी कांग्रेसकी ओरसे छंटने लगाथा। जैसे-जैसे बहुमतका झुकाव बिखरने लगा, वैसे-वैसे ही वे मुस्लिम वोटपर अधिकाधिक निर्भर होने लगे। प्रत्येक कार्य नेहरू साहबकी साम्प्रदायिकताकी कसौटी पर कसा जाने लगा, उसी अनुपातके साथ प्रतिक्रिया-स्वरूप बहुमत वोट कम होने लगा तो मुस्लिम वोटको आकृष्ट करनेके लिए मुस्लिम जनूनको गहरानेकी कांग्रेसी नीतियां उन्हें मुख्य राष्ट्रीय धारासे ही हटाने लगीं।

इसमें एक सहायक स्थिति और जुड़ गयी कि यहां के मुसलानोंको पाकिस्तानसे प्रोत्साहन मिलने लगा, पाकिस्तानियोंसे इनके सहयोगमें वृद्धि हुई। कश्मीर, पंजाब, राजस्थान और गुजरातसे लगी सीमाओंसे तस्करी शस्त्रास्त्रों और अन्य अवैध वस्तुओंका आयात भी बढ़ गया, सीमाएं अपने आपमें ही असुरक्षित हो गयीं। राजनीतिक स्तरपर भारतीय मुसलमानोंमें मजहबी कट्टरता पनपने लगी जो कि पश्चिमी एशिया के देशों विशेषत: अरब और ईरानकी दृष्टिसे अधिक उपयोगी होगयी। गुट निरपेक्षताकी घोषणाओंको ध्यानमें रखते हुए भी देश मानसिक स्तरपर दो खण्डोंमें बंट गया, मजहबी गुटसे जुड़ा और शेष विश्व के प्रति निरपेक्ष। इस स्थितिका इस्लामी संगठन भी लाभ उठाने लगा और अब इस देशको धमकियां भी देने लगाहै। अब बांग्लादेश भी इस सारे व्यूहचक्रसे सक्रिय रूपसे जुड़ गयाहै। यह दबाव जितना अधिक बढ़ा, कांग्रेसकी आत्मसमर्पणकी वृत्तिभी बढ़ती गयी। इसी आत्मसमर्पणकी नीतियोंका प्रतिफलन अयोध्याकी बाबरी चौकीका बाबरी मस्जिद बन जानेके रूपमें हुआ। इस्लामी प्रभाव क्षेत्रके अफगानिस्तानमें यही फल हुआहै कि वहां जो अल्पसंख्य हिन्दू वर्ग उसकी आर्थिक व्यवस्थाका नियन्त्रण कर रहाथा, उस वर्गको वहांसे निष्कासित कर दिया गयाहै। इस सारी परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए जो निष्कर्ष सामने आताहै वह है हिन्दू और मुस्लिम दोनों वर्ग निरन्तर एक दूसरेसे दूर हटते गयेहैं और देशका मुस्लिम अपनेही कोयेमें सिमटता चला गयाहै। अब राजनीतिक स्थिति यह हो गयीहै कि कांग्रेसी और उन्हींके समकक्ष चिन्तनवाले दल तीव्रतासे अनुभव कर रहेहैं कि किस उपायसे इन कोयोंसे रेशम निकालाजा सकताहै, जबकि कोया इतना चतुर हो गयाहै कि वह अपने इन पोषकोंको ही अपने घेरेमें लेकर इन्हें अपना भक्ष्य बनानेके दांवपेंच खेल रहा है। सर सैय्यद अहमदको इस स्थितिका आभास बहुत पहलेसे था, इसलिए उन्होंने बहुत स्पष्ट शब्दोंमें कहा था : 'मुसलमान या हिन्दू कभी स्वेच्छया यह स्वीकार नहीं कर पायेंगे कि सत्तामें भागीदार बनें अथवा एक-दूसरेसे शासित हों।' पर वे कभी यह नहीं सोच पाये होंगे कि इस मनोवृत्तिको साकार रूप प्रदान करनेमें 'साम्प्रदायिक हिन्दू नहीं, अपितु धर्मनिरपेक्ष और हिन्दुत्वका निरन्तर उपहास करनेवाले हिन्दूही सहायक होंगे।

धर्मनिरपेक्षताके प्रसंगमें एक स्थिति और उभर कर सामने आतीहै। हिन्दू वर्ग तो धर्मनिरपेक्षताके साथ 'छद्म' शब्दका प्रयोगकर धर्मनिरपेक्षताको हास्यास्पद बनानेको प्रयत्नशील है क्योंकि 'हिन्दू' अपने आपमें एक धर्म नहीं है बल्कि 'सर्वधर्म समभाव' का समूह मात्र है और उसकी 'धर्म' शब्दमे व्याख्याभी नहीं कीजा सकती। पर इस देशका मुस्लिम समुदाय 'धर्मनिरपेक्षता' शब्दसे ही चौंकताहै। धर्मनिरपेक्षता तो 'सैक्युलरिज्म'का हिन्दी अनुवाद है, पर मूलत: इस शब्द की पूरी छवि यूरोपीय पृष्ठभूमिमें निहित है। इस्लामी पृष्ठभूमिसे जुड़ा, इस्लामके भौतिक-दार्शनिक-स्त्री पुरुष संबंधोंका निष्ठा और कड़ाईसे पालन करनेवाला तथा असहमतिको कभी सहन न करनेवाला इस उन्मुक्त यूरोपीय छविको स्वीकार कर पायेगा, यह स्वीकार कर पाना कठिन है। सम्भव है कांग्रेसी मनोवृतिका कोई आशावादी मुस्लिम समुदायके 'धर्मनिरपेक्षता' स्वीकार कर लेने अथवा इस सिद्धान्तके प्रति सहिष्णु हो जानेकी सम्भावनाके संबंधमें अच्छा भाषण दे सके, पर इस पत्थर निष्ठाको अपने स्थानसे वह हिला नहीं पायेगा। हम चाहे धर्मान्तरमें विश्वास रखतेहों, पर इस वर्गमें तो 'धर्मान्तर', 'राष्ट्रान्तर' काभी पर्याय है। कांग्रेसने धर्मनिरपेक्षताको मुस्लिम कट्टरता और उसकी

धार्मिक मान्यताओंके साथ जोड़कर 'धर्मनिरपेक्षता' का ही धर्मान्तर कियाहै जो कुछ समय पाकर 'हिन्दू धर्मनिरपेक्षता' (अर्थात् अगणित धर्मोंके समूह हिन्दू समाजसे निरपेक्षता) में रूपान्तरित हो गयाहै।

व्यावहारिक स्तरपर इतिहासकी साक्षीसे हमने देखाहै कि मुस्लिम समुदाय अडिग है, ठस है, परिवर्तनके प्रति असहिष्णु है जबकि कांग्रेसी समुदाय तरल है, पात्रानुसार रूप धारण कर लेताहै, वाद-परिवर्तनकर सकता है, समाजवादी-सामन्तवादी-पूंजीवादी कुछभी हो सकता है, इसके विपरीत मार्क्सवादी, हिन्दुत्ववादी, सुविधावादी भी हो सकताहै, उसका केन्द्र बिन्दु 'सत्तासीन' होनाहै। वह नेहरूवादी हो सकताहै, नेहरूकी नीतियों पर चलनेकी घोषणाकर सकताहै, परन्तु नेहरूके समाजवादको उखाड़कर पूंजीवादको लाद सकताहै। वह आक्रमणका विरोधकर सकताहै, व्यक्ति स्वातंत्र्यका समर्थनकर सकताहै, परन्तु मजहबी आक्रमणका समर्थन कर सकताहै, उस आक्रमणकी रक्षाके लिए कानूनी व्यवस्था कर सकताहै, आक्रमणको निरस्त करनेके प्रयत्नोंको संविधान-कानून विरोधी कह सकताहै और सीमासे बाहर जाकर फूत्कार कर सकताहै, काटभी सकताहै।

असंदिग्ध रूपसे मानव समाज व्यवस्था-पक्षपाती है, व्यवस्था भंग करनेके विरुद्ध विधि-विधानोंका निर्माण करताहै, उनका पालन करताहै, करवाताहै। साथही मानवीय अस्मिताका उल्लंघन करनेवालोंका, आक्रमणकारियोंका विरोध करताहै। इस स्थितिमें वह बहुधा संविधान और विधि-विधानोंकी भी उपेक्षा करताहै, अथवा उन्हें भंग करताहै तो इस विरोधको जन-समुदायकी सहानुभूति और समर्थन भी मिलताहै। यह विरोध तब और सार्थक हो जाताहै यदि संविधान या विधि-विधान विदेशी हो अथवा विदेशी प्रभावसे अत्यधिक ग्रस्त हो। अपने देशके संदर्भमें कहाजा सकताहै कि हमारा वर्तमान संविधान भारतीय परिवेश, चिन्तन, जीवन प्रणाली तथा जन-चेतनाका पूरा वाहक नहीं ही है। हमारा संविधान तो पूरे भारतीय समाजको लोकतान्त्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी घोषित करताहै, परन्तु अब तो संविधानमें बिना परिवर्तन किये समाजवादको तिलांजलि देकर पूंजीवादी व्यवस्थाका देश बन गयाहै। इस प्रयोजनसे संविधानमें किसी संशोधनकी भी आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी। यह संविधानके साथ धोखा है या नहीं, यहतो विधि-विशेषज्ञ निर्णय करेंगे, परन्तु प्रत्यक्ष रूपसे समाजवादीसे पूंजीवादी व्यवस्थामें परिवर्तन संवैधानिक नहीं है। कश्मीरको मुस्लिम राज्य बनाना, मिजोरममें ईसाई राज्यकी स्थापना भी संवैधानिक नहीं है। इस स्थिति में धर्मनिरपेक्षताकी बात किस आधारपर की जातीहै। प्रशासनका दायित्व भी धर्मनिरपेक्षता तक सीमित है, तो क्या यह जानना आवश्यकता नहीं कि बाबरी चौकी या गुमटी—जिसे सत्तासीन लोग 'बाबरी मस्जिद' कहने लगेहैं—यहां धर्मनिरपेक्षताका प्रतीक है? तो क्या किसी आक्रमणके प्रतीक अथवा **राष्ट्रीय पराजय**के प्रतीकको हटाना या नष्ट करना संविधान विरुद्ध है?

वस्तुतः प्रचारित और शंखनादसे घोषित तथ्य भ्रमजालोंका ऐसा समूह हैं जो पृथक्तावाद और मुस्लिम कट्टरवादको इस भूमिपर स्थापित करनेका आवरण हैं। जब कभी इस भ्रमजालको तोड़नेका प्रयत्न किया गया, उसका विरोध किया गया तो उलटकर इन विरोधियोंको साम्प्रदायिक घोषित कर दिया गया, उनके विरुद्धही प्रचार किया गया और समाजसे बहिष्कृत किया गया, इसी आधारपर उनकी सम्पत्तियां इन्हीं स्वाधीनता आन्दोलनके सैनिकोंने जब्त कर लीं। वस्तुतः कांग्रेस और उसकी कल्चरके क्रिया-कलाप समाजमें एक ऐसे 'पृथक् राष्ट्र' को पनपाता रहाहै और इस प्रकार ब्रिटिश लक्ष्यमें सहयोग देता रहाहै जिसके कारण देशमें पनपी यह कल्चर अपने प्रारम्भसे ही देशको बांटती रही और इसी मनोवृत्तिके कारण देशका विभाजन हुआ। वही मनोवृति खण्डित भारतमें भी संविधान, विधि-विधानोंकी सहायतासे उदारता, मिश्रित संस्कृति, धर्मनिरपेक्षता, समाजवादके आकर्षक और मिष्ट शब्दावलीके साथ धीरे-धीरे विकसित हुईहै और पुनः देशको एक और विखण्डनकी ओर खींचकर ले आयीहै। जिस समाजपर यह कृपावृष्टि की जाती रही, वही समाज और अधिक शक्तिसे पूरे देश और राष्ट्रसे अपनी पृथक् सत्ता स्थापितकर पूरे दुराग्रहके साथ कह सकताहै: "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन", बिना युद्धके सूईकी नोकके बराबरभी अपने जिदसे नहीं हटूंगा। अब मुस्लिम ला बोर्डने तो स्पष्ट शब्दोंमें लम्बी लड़ाई (धर्म युद्ध) की घोषणा कर दी है। कांग्रेस सत्ताके बलपर और उसीसे पालित-पोषित इंडिश पत्र और पत्रकार इस दुराग्रहका मुखर समर्थन कर रहेहैं। आक्रमणके अवशेषोंको नष्ट करनेके प्रयत्नों पर तारस्वरसे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहेहैं कि "हम लज्जित हैं।" □

नवम दशककी आलोचना-१

—डॉ. वीरेन्द्र सिंह

नवम दशककी आलोचनाका परिदृश्य विविध आयामी रहाहै जो यह स्पष्ट करताहै कि आलोचना कर्मका स्वरूप दिशाहीन नहीं हैं। आजकी आलोचना को प्राय: दिशाहीन कहा जाताहै, मेरे विचारसे आलोचना सही, सार्थक या पूर्वाग्रहयुक्त तो हो सकतीहैं, पर कदाचित् पूरी तरहसे दिशाहीन नहीं हो सकती। यह हमें आलोचनाका इतिहास बताताहै कि प्रत्येक युगकी आलोचनाने उस युगकी सृजनात्मकताको सही परिप्रेक्ष्य ही नहीं दियाहै (यहां पूर्वाग्रहसे ग्रस्त या 'अत्यन्त' प्रतिबद्ध आलोचनाकी चर्चा नहीं है) अपितु उसे वह दिशा भी दीहै जो विचार-संवेदनके भिन्न आयामोंका उद्घाटन कर सके। इस दृष्टिसे रचना और आलोचना का सापेक्ष सम्बन्ध है अथवा उनके मध्य द्वन्द्वात्मक संवादकी स्थितियां रहीहैं। आलोचना, रचनाके भिन्न आयामी अर्थ सन्दर्भोंको मुखर करतीहै और मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त करतीहै। यही कारण है कि महावीर प्रसाद द्विवेदीसे लेकर अज्ञेय, रामविलास शर्मा, देवराज, रमेश कुन्तल मेघ, परमान्द श्रीवास्तव, विश्वंभर नाथ उपाध्याय आदिकी आलोचनाएं किसी-न-किसी नये आयामको लेकर आतीहैं। नवम दशककी आलोचनाको समझनेके लिए इस भिन्न आयामिकताको ध्यान में रखना होगा क्योंकि इस अवधिकी आलोचना भिन्न ज्ञानानुशासनोंसे सम्बन्धित होकर नये आलोचना-प्रकारोंकी ओर अग्रसर हुईहै। आठवें दशकमें इन प्रकारोंका सूत्रपात तो अवश्य हुआ, पर नवम दशकमें उनका विकास एक निश्चित दिशामें हुआ। उदाहरण रूपमें इस कालमें मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय, मिथकीय, संरचनावादी, सौंदर्यशास्त्रीय, शैलीवैज्ञानिक तथा अंतः अनुशासनीय आलोचना प्रकारोंका जो विकास हुआ, वह मेरी दृष्टिमें मूल्यांकनके भिन्न 'दृष्टिकोण' हैं, उनकी अपनी सीमाएं हैं और अपने व्यापक संदर्भ भी। इसी संदर्भमें एक बात और है। आजकी रचनाशीलता विचार-संवेदनके विविध आयामोंको आत्मसात् कर रहीहै; और इस स्थितिमें मात्र काव्यशास्त्रीय प्रतिभाओंके द्वारा आजकी सर्जनाको ठीकसे व्याख्यायित एवं मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। इसके लिए हमें 'बाहर' और तथाकथित 'हाशिए' की ओर जाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि काव्यशास्त्रीय प्रतिमानोंको सर्वथा और सदाके लिए बहिष्कृत कर दिया जाये; आवश्यकता है उन प्रतिमानोंकी नये संदर्भोंमें व्याख्या जो इधरकी आलोचनामें यदा-कदा प्राप्त होताहै। इस दृष्टिसे डॉ. भगीरथ मिश्रका 'काव्य-रस : चिंतन और आस्वाद', डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्यायका ग्रन्थ 'भारतीय काव्यशास्त्र और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' और डॉ. राघवप्रकाशकी कृति 'आलोचनाके नये प्रतिमान' में वक्रोक्तिवादको उपन्यास की संरचनामें स्थान दिया गयाहै। इसी प्रकार डॉ. मिश्रने अपने ग्रंथमें रसके आधुनिक संदर्भको उजागर करते हुए रस अवयवोंको आजकी नयी कवितामें निर्धारित करनेका प्रयत्न कियाहै। यह कार्य डॉ. नगेन्द्रके कार्यको आगे बढ़ाताहै। डॉ. उपाध्यायका शोध-प्रबंध (डि.लिट्) ध्वनि और वक्रोक्ति आदिको मानवीय संवेदनाओं और भावोंकी द्वन्द्वात्मकतामें 'वस्तुपरक' विवेचन प्रस्तुत करताहै। नवम दशककी आलोचनामें ये कतिपय कार्य हैं (औरभी हो सकतेहैं, मेरे देखनेमें ये ही कार्य आये जिन्हें संदर्भित करना आवश्यक है) जो काव्यशास्त्रीय प्रतिमानोंको नये ज्ञान-विज्ञानके

---

* तीन अंकोंमें प्रकाश्य आलेख

प्रकाशमें विवेचित करतेहैं ।

नवम दशककी आलोचना मूलत: दो दिशाओंकी ओर अग्रसर होतीहै —एक सैद्धांतिक और दूसरे व्यावहारिक; इन दोनोंका सम्बन्ध कहीं सापेक्ष है तो कहीं अपेक्षाकृत कम सापेक्ष है । प्राय: यह देखनेमें आयाहै कि सिद्धांतका आग्रह इतना अधिक हो जाताहै कि कृति या रचनाकारका मूल्यांकन एकपक्षीय ही रह जाताहै और यह स्थिति हमें न्यूनाधिक रूपमें सभी आलोचना प्रकारोंमें प्राप्त होतीहै । यहभी मानना होगा कि अनेक प्रकारोंको व्यापक सन्दर्भोंसे जोड़नेका प्रयत्न इधर अवश्य हुआहै । उदाहरणस्वरूप मार्क्सवादी और मिथकीय आलोचना प्रकारोंको लिया जा सकताहै जिन्होंने अपने विस्तार रूपमें नये सन्दर्भोंको ग्रहण कियाहै ।

माना यह जाताहै कि मार्क्सवाद वैज्ञानिक है क्योंकि वह वस्तुगत व्याख्याको, तटस्थताको अधिक महत्त्व देताहै। इधर वस्तुपरकताको अन्य पारस्परिक सम्बन्धोंसे जोड़ा गयाहै जैसे व्यक्तिके राग-संवेदनोंकी वस्तुपरक व्याख्या, जनवादका अधिक व्यापक सन्दर्भ, मानवीय सम्बन्धोंकी द्वन्द्वात्मकता, चेतनाकी द्वन्द्वात्मकताका वस्तुगत रूप, मिथककी सामाजिकता, रचनाशीलताका अधिक आग्रह तथा रूपवादका जनवादी रूप या उसका परिवर्तित काल-सापेक्ष रूप--ये कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो मार्क्सवादी आलोचनाको व्यापक सन्दर्भ दे रहे हैं । रमेश कुन्तल मेघने मनोविश्लेषणवादको अर्थ दिया, डॉ. नामवर सिंहने रूपवाद तथा व्यक्ति चेतनाको चिह्नित किया, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्यायने चेतनाको द्वन्द्वात्मकता, सम्बन्धोंका द्वन्द्व, इतिहास और परम्पराकी वस्तुगत व्याख्या तथा रचनाशीलताको समाहित किया, डॉ. शंभुनाथने किसान चेतना, मिथककी सामाजिकता तथा वर्ग-चेतनाके संतुलित रूपको निर्धारित किया तथा डॉ. शिवकुमार मिश्रने हिन्दी आलोचनाके जनवादी रूपको तथा आधुनिकतावादके रुग्ण रूपको समक्ष रखा । इस दृष्टिसे कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियोंका उल्लेख आवश्यक हैं । डॉ. नामवर सिंहकी नयी कृति 'वाद-विवाद सम्वाद' में पूर्वाग्रहका विरोध (?) होते हुएभी 'रूपवाद' की नयी प्रतिष्ठाके प्रति वे सजग हैं । उनका कहनाहै कि रूपवादके समाजशास्त्रीय आधारकी अपेक्षा इसका रूप विधान और विषयवस्तुके द्वन्द्वात्मक सम्बन्धपर आधारित मार्क्सवादी दृष्टिकोणकी आवश्यकता है । (पृ. १२७) । दूसरी ओर डॉ. सिंह विचारधाराको अनुभूतियोंसे जोड़तेहैं क्योंकि उनका मानना है कि विचारधारा विचारमात्र नहीं है, पर वह अनुभूतियोंकी ऐसी संरचना है जिसमें प्रतीक, मिथक सब घुलमिल जातेहैं । डॉ. नामवर सिंहने 'दूसरी परम्पराकी खोज' में लोक और इतिहासको आचार्य द्विवेदीके सन्दर्भमें स्थापित कियाहै जो एक प्रकारसे उदात्तीकृत व्यक्तित्वका समाज एवं लोक-सन्दर्भमें एक नया आवाहन था । यहांपर मार्क्सवादका अतिक्रमण भी किया गयाहै और उसे व्यापक सरोकारोंसे जोड़ा गयाहै । डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्यायकी तीन कृतियां 'समकालीन मार्क्सवाद', 'समकालीन आलोचना', तथा 'मीमांसा और पुनर्मूल्यांकन' नवम दशकमें प्रकाशित ऐसी कृतियां हैं जो मार्क्सवादको चेतनाके द्वन्द्वात्मक रूपसे सम्बन्धित करते हुए साहित्य, इतिहास तथा मानवीय सम्बन्धोंको विवेचितकर प्रेमचन्द, निराला और मुक्तिबोधकी वस्तुपरक व्याख्या प्रस्तुत करतीहैं । 'समकालीन मार्क्सवाद' उनकी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जिसमें कदाचित् पहली बार नव-मार्क्सवादी चिंतकों (यथा लुकाच आदि) के साहित्यिक एवं कलात्मक विचारोंको रेखांकित किया गयाहै। लुकाचके 'समग्रतावादी' दृष्टिकोणका यहां सुन्दर विवेचन है और साथ ही पूंजीवादी व्यवस्थामें साम्यवादी विचारोंका स्थापन भी है । इसी प्रकार डॉ. शंभुनाथने 'साहित्य और किसान चेतना', 'आधुनिक काव्य और मिथक' तथा 'तीसरा यथार्थ' पुस्तकोंमें वर्ग चेतना, मिथककी सामाजिकता तथा तीसरी दुनियांमें चल रहे संघर्षको रेखांकित कियाहै । 'तीसरा यथार्थ' में भारतीय संविधान तथा जन-आकांक्षाओंके बीच 'खाई' को दिखाया गयाहै तथा यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गयाहै कि हमारा संविधान विदेशी प्रभावसे इतना अधिक ग्रस्त है कि भारतीय परिवेश तथा जन चेतनाका वह पूरी तरहसे वाहक नहीं है । साहित्यकी दृष्टिसे यह पुस्तक परोक्षरूपसे नये सम्बन्धों तथा सन्दर्भोंको उठातीहैं तथा तीसरी दुनियांके जन-संघर्षको प्रस्तुत करतीहै । इसी सन्दर्भमें डॉ. शिवकुमार मिश्रने 'आलोचनाके प्रगतिशील आयाम' तथा डॉ. राजेश्वर सक्सेनाने 'काव्यके जीवनदायी द्वन्द्व और रामचन्द्र शुक्ल' नामक ग्रंथोंमें आलोचनाके जनवादी रूपको और अनुभववादको संदर्भित कियाहै । डॉ. राजेश्वर सक्सेनाने रामचन्द्र शुक्लका अनुभववाद, विकासवाद और मनोविज्ञानके

अन्तर्गत सुन्दर विवेचनकर उन्हें नये सन्दर्भोंसे जोड़ा है। यह पुस्तक आचार्य शुक्लको समझनेका एक नया पथ प्रशस्त करतीहैं जो उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोणको (विश्वप्रपंचकी भूमिका) रेखांकित करतीहै। यहांपर डॉ. रामविलास शर्माके ग्रंथ 'मार्क्सवाद और पिछड़े समाज' आदिकी चर्चा इसलिए आवश्यक है कि इस दशकमें डॉ. शर्माने जिन ग्रन्थोंका प्रणयन कियाहै, वे मार्क्सवादके जनवादी रूपको, उसकी 'विश्व दृष्टि' को तथा तीसरी दुनियांके संघर्ष और शोषणको 'अर्थ' प्रदान करतीहैं। इस दृष्टिसे 'दस्तावेज' पत्रिका का 'रामविलास शर्मा' विशेषांक (सम्पादक : डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी) महत्त्वपूर्ण है जिसमें अनेक पक्षोंके अतिरिक्त डॉ. वीरेन्द्र सिंह का लेख 'रामविलास शर्मा का भाषा चिन्तन' डॉ. शर्माके एक ऐसे पक्षको उजागर करताहै जो साहित्य तथा जाति-मानसके द्वन्द्वात्मक सम्बन्धको संकेतित करताहै।

इस दशकमें एक अन्य आलोचना-प्रकार 'मिथकीय आलोचना' का विकास प्राप्त होताहै। इस आलोचनाका आरम्भ वैज्ञानिक रूपसे डॉ. रमेशकुन्तल मेघसे माना जा सकताहै। पर इसका विकास डॉ. मेघके बाद डॉ. शंभुनाथ, डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, डॉ. वीरेन्द्रसिंह और डॉ. अश्विनी पाराशर आदिकी एक लम्बी पंक्तिने क्रमश: कियाहै। इस विवेचनके अनेक आयाम हैं जो प्रतीक, आद्यरूप, फैन्टेसी, रूपकके प्रयोगके द्वारा जातीय मानसको, उसके समग्र इतिहासको संकेतित करतेहैं। मिथककी मनोवैज्ञानिक, नृतत्वशास्त्रीय, भाषिक, दार्शनिक और ब्रह्मांण्डीय व्याख्याएँ इस बातको स्पष्ट करतीहैं कि मिथक मात्र आदिम मानसिकताके प्रतीक नहीं है अपितु वे मानव, विश्व और प्रकृतिके सम्बन्धों-रहस्योंके उद्‌बोधकभी हैं। यही नहीं, प्रत्येक ऐतिहासिक परिवर्तनके साथ मिथकोंका नया सृजन भी होताहै। मिथककी लोच शक्ति उसे युगीन सन्दर्भोंमें सन्दर्भित करतीहै। मिथकके सामाजिक सन्दर्भको लेकर डॉ. शंभुनाथने विशेष कार्य कियाहै। मिथकको वे संस्कृतिके रचनात्मक विकासकी प्रयोगशाला मानतेहैं जो आदिम मनुष्यसे लेकर आधुनिक मनुष्यकी भावात्मक, मनोसामाजिक एवं वैचारिक इतिहासको बिम्बित करतीहै। डॉ. शंभुनाथने "मिथक और आधुनिक हिन्दी कविता" में इसी दृष्टिको अपनायाहै जिसने आधुनिक कवियोंको एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान कियाहै। डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी ने मिथकके सैद्धांतिक स्वरूपके साथ उसके व्यावहारिक रूपको स्थान दियाहै। डॉ. चौधरीने डॉ. उदयभानु सिंह द्वारा संपादित "साहित्य, अध्ययनकी दृष्टियाँ" में अपने लेख "आलोचनाकी मिथकीय दृष्टि" मे यह बखूबी प्रदर्शित कियाहै कि लेखक एक प्रकारका 'मिथ मेकर' है जो अवचेतनमें से आद्य सत्यको (प्रीमार्डियल ट्रूथ) भाषा देताहै और मिथकीय आलोचना इस भाषिक आद्य सत्यको ढूंढ़ निकालतीहै। डा. चौधरीने मिथक और लोकतत्त्व या गाथाके सापेक्ष संबंधको भी रेखांकित कियाहै जिससे मिथकका विखण्डन, स्थानान्तरण तथा प्रक्षेपण होताहै। मिथकीय समीक्षाका व्यावहारिक रूप हमें डॉ. चौधरी कृत "तुलनात्मक साहित्य की भूमिका" में मिलताहै। इसमें उन्होंने मिथकीय अभिकल्पों और अभिप्रायोंकी सुदूर खोज कीहै। मिथकीय समीक्षामें एक अन्य हस्ताक्षर हैं डॉ. दिनेश्वर प्रसाद तथा डॉ. वीरेन्द्र सिंह। डॉ. प्रसादने कविताकी रचना प्रक्रियाको मिथकीय प्रक्रिया मानाहै जो एकांगी दृष्टिकोण है। उनका ग्रन्थ "लोकसाहित्य और संस्कृति" में प्रकृतीकरण एक ऐसा तत्त्व है जो मिथक को कवितासे जोड़ताहै। उन्होंने अनेक कृतियोंसे मिथकीय अर्थ रूपांतरणके इस नियमका विस्तृत विवेचन कियाहै। डॉ. वीरेन्द्र सिंहने मिथकके बहुआयामी अर्थ-स्तरोंकी व्याख्या कीहै और वे मिथकको 'मिथ्या' न मानकर उन्हें सांस्कृतिक प्रक्रियाका अंग मानतेहैं। उनकी बहुचर्चित पुस्तक "मिथक दर्शनका विकास" में शायद पहली बार आधुनिक मिथकोंके स्वरूपपर विचार किया गयाहै जिन्हें धारणाकृत मिथकके अन्तर्गत रखा गयाहै जिसमें प्रभामंडल या कथातत्त्वका सघनीकृत रूप प्राप्त होताहै और इस अर्थमें आधुनिक मिथक और प्राचीन मिथकमें अन्तर है। डॉ. सिंहने यहभी सिद्ध कियाहै कि मिथक कभी यथार्थ बन जाते हैं (यथा राम-कृष्ण आदि) तो यथार्थ कभी मिथक जैसे गांधी, मार्क्स। मिथक और यथार्थका यह द्वन्द्व सांस्कृतिक प्रक्रियाका अभिन्न अंग है। यहां एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि रचनाकार चाहे किसी भी वाद या मतका पक्षधर क्यों न हो, वह अपने विचार-संवेदनके अनुकूल मिथकोंको युगीन अर्थ देताहै। इससे मिथककी सार्वकालिकता एवं सार्वभौमिकता ही प्रकट होतीहै।

मिथकीय आलोचनाके अतिरिक्त एक अन्य ध्यान आकर्षित करनेवाली आलोचना पद्धति जो इधर विकसित हो रहीहै, वह है सर्जनात्मक समीक्षा जो साहित्य को उसके सूक्ष्म रूपोंमें देखतीहै । यह वर्ग मार्क्सवादी और जनवादी आलोचनाके अतिसामाजिक-आर्थिक संबंधोंके अन्वयात्मक रूपको मात्र सत्य नहीं मानती अपितु साहित्य-सृजनको सूक्ष्म एवं स्थूल मानवीय संवेदनोंसे जोड़तीहै और 'रूप, सौन्दर्यके वैयक्तिक सामूहिक रूपोंको सापेक्ष महत्त्व देतीहै । चेतनाके अनेक ऐसे रूप-रंग हैं जो साहित्यके क्षेत्रमें अपनी द्वन्द्वात्मक स्थिति रखतेहैं जैसे संवेग, अनुभूतियां, अभिवृत्तियां (एटीच्यूड) तथा न जाने कितनी अबूझ कौंधें जो चेतनाको आन्दोलित करतीहैं । इसे 'रूपवाद' कहना उपयुक्त नहीं होगा, सौन्दर्यवाद कहा जा सकताहै क्योंकि सौन्दर्य साहित्यका 'प्राण' है, वह कुरूपका रचनात्मक सन्दर्भ भी है, वह मात्र पारंपरिक अर्थका बोधक नहीं है । मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह आदिमें सौन्दर्यका पारंपरिक रूप नहीं है । इसे ध्यानमें रखकर 'सौन्दर्य' का व्यापक सन्दर्भ उजागर होताहै जो संयोजनमें, जैविकता (ऑरगैनिज्म) में प्राप्त होताहै । वस्तुतः हम किसीभी आलोचना-प्रकार में इस रूपवाद और सौन्दर्यको नकार नहीं सकते क्योंकि सृजनकी मांग है रूप व सौन्दर्यकी उचित अन्विति । आलोचकोंका यह वर्ग इस मांगको न्यूनाधिक रूपसे पूरा कर रहाहै । मेरी दृष्टिसे, डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर, डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित, डॉ. देवराज, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय तथा डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी आदि ऐसे समीक्षक हैं जिन्होंने साहित्यके सूक्ष्म-स्थूल अन्वयात्मक संबंधोंको अस्मिता प्रदान कीहै । रचनाका कथ्य चाहे जोभी हो, उसका साहित्य होनेके लिए 'रचनात्मक' होना आवश्यक हैं । ध्वनि, शब्दशक्तियां, वक्रोक्ति, औचित्य आदिका औचित्य इसी रचनात्मकता (सौंदर्य-रूप) को 'अर्थ' प्रदान करनाहै । डॉ. बांदिवडेकरने उपन्यासकी संरचनापर विशेष रूपसे लिखाहै और उसी के प्रकाशमें उन्होंने अज्ञेय, कमलेश्वर तथा प्रसादके उपन्यासोंका जो विवेचन भिन्न पत्र-पत्रिकाओं (यथा दस्तावेज, साक्षात्कार, मधुमती) में कियाहै, वह यथार्थ-दृष्टि और सूक्ष्म संवेदनके सुन्दर 'घोल' को प्रस्तुत करतीहै । इसी प्रकार डॉ. प्रभाकर श्रोत्रियने "कविता की तीसरी आंख" तथा "अतीतका हंस—मैथिलीशरण गुप्त" में सर्जनात्मक समीक्षाका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कियाहै जिसमें मानवीय संवेगों, अभिवृत्तियों और सामूहिक स्पन्दनोंका मोहक चित्र प्रस्तुत कियाहै । "अतीतका हंस—मैथिलीशरण गुप्त" ग्रन्थमें उन्होंने नारी (उर्मिला, विष्णुप्रिया, सीता, यशोधरा) की उस मानसिकताको रेखांकित कियाहै जो पतिकी पूरक मात्र है, उसमें विद्रोह या मानसिक उत्पीड़नका वह तत्त्व नहीं है, जो आधुनिक नारीका चरित्र है । डॉ. श्रोत्रियकी आलोचना-पद्धति सर्जनात्मक तत्त्वोंको बखूबी पकड़तीहै, और उसे सहज संवेदनीय सम्प्रेषण प्रदान करतीहै । इसीके साथ, डॉ. देवराजकी समीक्षा पद्धति संस्कृति-बोध और अनुभवकी अनेक-आयामिकता पर बल देतीहैं और रचनाके कला पक्षको, कथ्यकी सापेक्षतामें स्थान देतीहै । डॉ. देवराजमें दर्शन और साहित्यकी रसात्मक अन्विति प्राप्त होतीहै जो हिन्दी आलोचनामें अपना विशिष्ट स्थान रखतीहैं । "साहित्य, समीक्षा और संस्कृति-बोध" तथा "आधुनिक हिन्दी काव्य" उनके इधरके दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें डॉ. देवराजकी समीक्षा-दृष्टिका परिचय प्राप्त होताहै । डॉ. देवराजने एक स्थानपर कहाहै : "यह शक्ति और स्मरणीयता प्रायः उन रूपवादी रचनाकारोंको दुर्लभ रहतीहै जो कलात्मक सौष्ठवको साहित्य-सृष्टिका लक्ष्य बनाकर सृजनरत होतेहैं ।" जीवनकी संघर्ष-स्थितियोंको वे अपने 'चौखटे'में स्थान देतेहैं, शर्त है उनके रचनात्मक होनेकी ।

नवम दशककी आलोचनामें शैली-तात्त्विक, संरचनावादी और नयी आलोचनाका स्वरूप क्रमिक विकसित हुआहै, वहभी, सैद्धांतिक रूपमें अधिक । ये आलोचना-प्रकार भाषिक संरचना और भाषा दर्शनपर आधारित हैं । ये सभी आलोचना-प्रकार कृतिकी भाषिक संरचनाको विश्लेषित कर, उनके कथ्य और अर्थ-सौन्दर्यको स्पष्ट करतेहैं । यह पद्धति एक प्रकार से यांत्रिक है और इसीसे, ये आलोचना-प्रकार यांत्रिकताके कारण जटिल और कष्टसाध्य हैं । इस यान्त्रिकताको इस दशकमें 'कुछ' कम किया गयाहै । इसका आरंभ डॉ. विद्यानिवास मिश्रकी पुस्तक 'रीति-विज्ञान' से मानाजा सकताहै जहां रीति शब्दको 'स्टाइल' से व्यापक माना गयाहै । इस दशकमें इस आलोचना प्रकारको डॉ. मिश्रके बाद, डॉ. पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु', डॉ. कृष्णकुमार शर्मा, डॉ. सुरेशकुमार, डॉ.

परमानन्द श्रीवास्तव तथा डॉ. राघवप्रकाश आदि ने यांत्रिकताकी जटिलताको कम कियाहै और कृतिकी संरचनाको एक 'जैविक' (ऑरगैनिक) रूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयत्न कियाहै। शैलीविज्ञान और संरचनावादको लेकर इधर कुछ पुस्तकें आयीहैं जो सैद्धांतिक पक्षके साथ कभी-कभी व्यावहारिक पक्षको भी प्रस्तुत करतीहैं। डॉ शीतांशुकी दो पुस्तकें "शैली विज्ञानका इतिहास" तथा "शैली विज्ञान: प्रकार और प्रतिमान" में जहां एक ओर शैली विज्ञानके ऐतिहासिक क्रमको रेखांकित किया गयाहै, वहीं सांख्यिकी, मार्क्सवादी, संरचनावादी आदि प्रकारोंका गंभीर विवेचन किया गयाहै। इसी क्रममें डा. श्यामविहारी लालकी पुस्तक "पाश्चात्य नव्यालोचन" का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि इस पुस्तकमें पाश्चात्य संरचनावादी एवं शैली-तात्त्विक प्रकारोंको विश्लेषित करते हुए कुछ रचनाओंको भी उसीके आधारपर विवेचित किया गया है। डॉ. शीतांशुने 'मैला आंचल' उपन्यासको भी शैली वैज्ञानिक दृष्टिसे विवेचित कियाहै तथा उपन्यामके कलापक्ष तथा कथ्यके सापेक्ष सम्बन्धको भाषिक स्तर पर मूल्यांकित कियाहै। डॉ. शीतांशुका यह प्रयास एक नये क्षितिजको खोलताहै। इसी सन्दर्भमें डॉ. राघवप्रकाशकी पुस्तक "आलोचनाकी नयी तलाश" एक ऐसी कृति है जो संरचनावादी प्रतिमानोंको काव्य और गद्य साहित्य दोनोंपर घटित करताहै। इस क्रम में डॉ. राघवप्रकाश संरचनाके आंतरिक और बाह्य द्वन्द्वके संबंधको रेखांकित करते हुए भारतीय 'वक्रता' के सृजनके लिए आवश्यक मानतेहैं। इस दृष्टिसे "उपन्यास और वक्रता" नामक उनका प्रकरण महत्त्वपूर्ण है जिसपर उन्हें भविष्यमें कार्य करना चाहिये। यह पुस्तक भाषिक संरचनाके सन्दर्भमें इतिहास, समाजशास्त्र, वैयाकरण तथा गणितीय समीकरणोंको सार्थक स्थान देतीहै और इस प्रकार, भिन्न-भिन्न संबंधोंको रेखांकित करतीहै। (क्रमशः)

हिन्दी व्याकरण : नयी दृष्टि

हिन्दी व्याकरण मीमांसा—५

शब्द-विचार, रूप-विचार, हिन्दीका रूप प्रक्रियात्मक ढांचा

—पं. काशीराम शर्मा

४४.० **शब्द विचार :** अबतक जिस विषयका विवेचन हुआहै उसका संबंध भाषाके उच्चारण पक्षसे था। परन्तु भाषाका मुख्य प्रयोजन उच्चारण नहीं होता। उच्चारण तो केवल साधन होताहै। साध्य होताहै संप्रेषण अर्थात् वक्ता श्रोता तक जो संदेश पहुंचाना चाहताहै उसीके लिए वह कुछ स्वनोंका उच्चारण करताहै। जिस स्वन-समूहके उच्चारणसे बात श्रोताको बुद्धिगोचर हो पातीहै उस समूहकी सबसे छोटी इकाई होतीहै 'वाक्य'। पर वाक्योंके रूप-स्वरूपका इतना विस्तार है कि उसके सारे संभव स्वरूपोंका संग्रह न तो कोशोंमें संभव है और न व्याकरणोंमें। अतः अध्ययनकी सुविधाकी दृष्टिसे वाक्यों का विभाजन शब्दोंमें किया जाताहै। 'शब्द' भी स्वन समूह है और ऐसा समूह है जिसमे अर्थकी कुछ प्रतीति होतीहै। 'कुछ प्रतीति' इसलिए कि उसके अर्थकी सही और पूर्ण जानकारी उसके आगे पीछे प्रयुक्त अन्य शब्दों और पूरे वाक्यमें उसके स्थान आदि अनेक बातों पर निर्भर होतीहै। उदाहरणार्थ 'बालक' शब्द सुनकर

इतने अर्थकी तो प्रतीति होतीहै कि अल्प आयुके पुरुष के विषयमें कुछ कहनाहै पर क्या कहना है उसकी आकांक्षा बनी रहतीहै। फिरभी भाषा सीखनेमें शब्द तत्त्वकी जानकारी बहुत ही उपयोगी होतीहै। भाषा में प्रयुक्त शब्दोंकी संख्या प्रायः निश्चित-सी ही होतीहै और उनके रूपों और 'अर्थ-दिशाके निर्देशक तत्त्वोंकी संख्या भी प्रायः निश्चित होतीहै अतः भाषाके अध्ययन हेतु वाक्यका शब्दोंमें विश्लेषण करके उन्हें समझना उपयोगी होताहै।

४५.०. दी. का शब्द विचार : दी. ने शब्द विचार बहुत विस्तारसे कियाहै। उसने सर्वप्रथम इस बातपर विचार कियाहै कि हिन्दीमें प्रयुक्त शब्दोंको उनके उद्गम स्रोतोंके आधारपर कितने भागोंमें विभक्त किया जा सकताहै हमारे यहां परंपरा चार भागोंमें विभक्त करनेकी थी : १ तत्सम अर्थात् संस्कृत भाषाके वे शब्द जो अपने मूल रूपमें गृहीत किये गये। २. तद्भव अर्थात् वे शब्द जो लिये तो संस्कृतसे ही गये पर जिनके मूल उच्चारणकी रक्षा नहीं कीगयी अर्थात् हिन्दीभाषीकी मुख सुविधाके अनुसार परिवर्तित रूपमें उच्चरित शब्द। ३. देशी — अर्थात् हिन्दीकी अपनी संपदा जिसका मूल न संस्कृतमें है और न विदेशोंमें और ४. विदेशी-अर्थात् भारतसे बाहरकी भाषाओंसे उधार लिये गये शब्द। पर दी. ने थोड़ा-सा भिन्न मार्ग अपनायाहै। उसने हिन्दीके शब्दोंको पहले दो वर्गोंमें विभक्त कियाहै : १. भारतीय मूलके और २. विदेशी मूलके। भारतीय मूलके शब्दों को पहले तद्भव, तत्सम और देशज या देश्यमें विभक्त कियाहै, फिर अर्ध तत्समका भी उल्लेख कियाहै। तत्समको पुनः दो भागोंमें विभक्त कियाहै; पुराने तत्सम और नये तत्सम। पुराने तत्समोंके भी दो भेद कियेहैं : वे जो पुरानेही अर्थमें प्रयुक्त हैं और वे जिन्होंने नया अर्थ ग्रहण कर लियाहै। नये तत्सम वे हैं जिन्हें हालकी आवश्यकताओंके अनुसार संस्कृत व्याकरणका ध्यान रखकर निर्मित किया गयाहै। विदेशी मूलके शब्दोंमें ईरानी, अरबी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और रूसी मूलके शब्द सोदाहरण गिनायेहैं। अंतमें कुछ नवनिर्मित ऐसे शब्द दियेहैं जिनके विषय में दावा किया गयाहै कि वे सोवियत जीवनकी परिघटनाओंको व्यक्त करतेहैं और रूसी शब्दों और शब्द बंधोंमें भाषान्तरित किये गयेहैं। ऐसे शब्दोंके उदाहरणार्थ सोवियत संघ, आराम घर, जन कलाकार, पंचवर्षीय योजना, शान्ति पुरस्कार-विजेता, संस्कृति भवन, सामूहीकरण आदि गिनाये गयेहैं। हमें नहीं लगता कि इनमें 'सोवियत संघ' को छोड़कर कोई ऐसा शब्द है जिसके निर्माणके लिए हमें रूसी परिघटनाका अंक गृहीत होना पड़े। 'सोवियत संघ' अवश्य ऐसा शब्द समूह है जो रूसी परिघटनापर आश्रित है चाहे वह अब इतिहासमें ही प्रयुक्त हो।

४५. १. गु. और वा. का विवेचन : गु. ने शब्दोंके इस प्रकारके वर्गीकरणको मूल ग्रंथमें तो स्थान नहीं दिया पर भूमिकामें इस पक्षका भी विवेचन कियाहै। पहले तत्सम, तद्भव शब्दोंकी चर्चा कीहै जिसमें अर्ध तत्समका भी उल्लेख है। फिर देशज और अनुकरण वाचक शब्द एक साथ रखेहैं। अंतमें विदेशी शब्दोंकी चर्चा है जिनमें फारसी, अरबी, तुर्की, पोर्चुगीज, अंग्रेजीके साथ मराठी, बंगलाका भी उल्लेख है। वा. ने तत्सम (तद्रूप) और तद्भव तथा विदेशीकी चर्चा भूमिका भागमें कीहै और इस दृष्टिसे कीहै कि कहां कैसे शब्दका प्रयोग किया जाना चाहिये। यह 'अच्छी हिन्दी' जैसी पुस्तकका विषय तो हो सकताहै पर व्याकरणका नहीं।

४५. २.० हमारी मान्यता : हमारे विचारसे व्याकरणमें उन्हीं बातोंका विवेचन किया जाना चाहिये जिनका व्याकरणिक महत्त्व हो। हिन्दीमें प्रयुक्त सभी शब्द हिन्दीके व्याकरणसे ही अनुशासित होतेहै अतः इस जानकारीका विशेष महत्त्व नहीं है कि वे मूलतः किस भाषाके हैं। जब खरीदा-खरीदता-कबूलता-कबूलना जैसे ही प्रयोग होतेहैं तो खरीद-कबूल आदिके विदेशी मूलका महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार, चाकू, औरत, तोप, बम आदिके साथभी ने-को-से आदिका। प्रयोग उसी प्रकार होनाहै जिस प्रकार पुस्तक, स्त्री, घोडा, घड़ा आदिके साथमें तो शब्द मूलका क्या महत्त्व है।

४५. २. १. यदि आवश्यक ही समझा जाये तो पुराना 'तत्सम-तद्भव-देशी-विदेशी' का वर्गीकरण ही पर्याप्त है। अर्ध तत्सम जैसे प्रयोग न बढ़ाये जायें। प्राकृतों-अपभ्रंशोंकी सरणिवालोंको 'तद्भव' कहनेमें क्या तुक है जब वे सीढ़ियां ही अदृश्य हैं। 'तद्भव' वही है जो मूल उच्चारणमें परिवर्तन होकर बना, चाहे आज बना हो, चाहे हजार वर्ष पहले। दूसरे विदेशी शब्दोंका ग्रहण तद्भव रूपमें ही किया जाना चाहिये

अर्थात् हिन्दीके स्वनोंकी सीमाका ध्यान रखकर आवश्यक परिवर्तन कर लेने चाहियें। विदेशी उच्चारण की रक्षाके लिए दोष ढूंढना उचित नहीं। तीसरे, विदेशी शब्द लें तो उनमें हिन्दीके ही प्रत्यय आदि लगाये जायें। आजकल अंग्रेजी आदिके विदेशी शब्द लेकर उनमें संस्कृतके प्रत्यय लगानेका रिवाज चालू हुआहै जो ठीक नहीं है। हिन्दी आदि भाषाएं संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग तो करतीहैं पर संस्कृतके प्रत्ययांत रूप संस्कृतसे ही लेतीहैं और संस्कृत मूलके शब्दोंमें ही प्रत्यय प्रयुक्त होतेहैं। यथा पठित-पठन जैसे प्रयोग तो होतेहैं पर पढित पढन या दौडित-दौडन जैसे प्रयोग नहीं होते। अत: अंग्रेजीके 'लोड' को ले सकतेहैं पर लोडित-लोडन जैसे रूप नहीं बनाये जाने चाहिये। चौथे, विदेशी मूल के शब्दोंमें संस्कृतके संधि नियम नहीं लगाये जाने चाहियें।

४६.० **रूपविचार** : हिन्दीके शब्द भंडारका परिचय देनेके पश्चात् दी. ने रूप विचार नामक प्रकरण आरंभ कियाहै और लिखाहै कि 'इस भागमें शब्द और उसके रूपके व्याकरणिक लक्षणोंका अध्ययन किया जायेगा जिसे शब्दोंकी रूप प्रक्रियाके नियमोंकी संहिता भी कहा जा सकताहै।' इस भूमिकाके बाद हिन्दी शब्दों की रूप प्रक्रियात्मक संरचना' शीर्षक देकर विवेचन आरंभ कियाहै तथा शब्दोंका विभाजन विकारी और अविकारीमें कियाहै। दी. के अनुसार 'विकारी शब्दों की अपनी रूपावली होतीहै और ये दो भागोंसे बने होतेहैं : प्रातिपादिक तथा अंत्य प्रत्यय। अविकारी शब्दोंकी कोई रूपावली नहीं होती, तथा, वे सदा प्रातिपादिक रूपमें ही प्रयुक्त होतेहैं। प्रातिपादिक शब्द का वह अंश होताहै जो अंत्य प्रत्यय हटा देनेपर बचा रहताहै। उसीमें शाब्दिक अर्थ निहित होताहै।' यों परिभाषाके अनुसार तो प्रातिपदिक शब्दका वह अंश होताहै जो अन्त्य प्रत्यय हटानेपर बचताहै जबकि ऊपर सभी अविकारी अर्थात् पूर्ण शब्दोंको प्रतिपादिक बताया गयाहै। यह परस्पर विरोध तो हैही, 'प्रातिपदिक' जैसे संस्कृत व्याकरणके सुज्ञात शब्दका यह मनमाना प्रयोग भी चिन्त्य है। संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'प्रातिपदिक' सुबन्त पदोंका वह कल्पित मूल रूप होताहै जिसमें 'सुप्' जुड़तेहैं। हमारे विचारसे 'प्रातिपदिक' शब्दके प्रयोगकी हिन्दी व्याकरणमें आवश्यकता ही नहीं थी पर यदि प्रयोग करनाही था तो या तो उसी अर्थमें करना चाहियेथा जिसमें वह संस्कृतज्ञोंको ज्ञात हैं या यह स्पष्ट किया जाना चाहियेथा कि इस पुस्तकमें इस शब्दका प्रयोग अमुक नये अर्थमें किया जायेगा। हमें लगताहै कि इसे अंग्रेजीके 'स्टेम' का पर्याय मानकर प्रयोग किया गयाहै पर यह बात स्पष्ट नहीं कीगयी, न पुस्तकके अंतमें कोई शब्द-सूची ही दी गयीहै जिससे पाठक समझ सके। इसके पश्चात् अंत्य प्रत्ययकी परिभाषा देकर उदाहरणोंसे स्पष्ट करनेका यत्न किया गयाहै पर व्याख्यामें भी 'रूप प्रक्रियात्मक' और 'वाक्य विन्यासात्मक' जैसे पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग होनेसे बात स्पष्ट नहीं होपाती। फिर 'शब्द निर्माणात्मक' और 'रूपान्तर' कारके प्रत्ययों की चर्चा की गयीहै और बताया गयाहै कि प्रथमकी सहायतासे नये शब्द बनतेहैं जबकि द्वितीयसे उसी शब्द के रूप बनतेहैं। यहीं लेखकको प्रत्ययोंके भेद बताने की बात सूझ गयीहै और पूर्व-प्रत्यय, पर-प्रत्यय तथा अंत्य-प्रत्यय या विभक्ति-प्रत्यय नामक भेद गिना दिये गयेहैं। इस संपूर्ण विवेचनकी सार्थकता संदिग्ध है। इन भेदोंका उल्लेख करके क्या समझानेका यत्न है, यह स्पष्ट नहीं होता।

४७. **गु. का विवेचन** : गु. ने इसी विषयका विवेचन 'शब्द विचार' शीर्षकसे कियाहै। हम इसे अधिक उचित समझतेहैं क्योंकि व्याकरणके वस्तुत: तीन पक्ष होतेहैं : वर्ण अर्थात् उच्चारण पक्ष, 'शब्द' अर्थात् सार्थक ध्वनि समूह और वाक्य जिसमें शब्दोंका समूह मिलकर एक कथन व्यक्त करें। गु. ने 'शब्द' के साथ 'शब्दांश' की भी चर्चा की है और 'उपसर्ग' तथा 'प्रत्यय' नामक दो प्रकारके शब्दांशोंका उल्लेख कियाहै जो क्रमश: शब्दके पहले अथवा पीछे जोड़े जातेहैं। फिर ऐसे प्रत्ययोंकी भी चर्चा की है जिनके पश्चात् दूसरे प्रत्यय नहीं लगते। उन्हें 'चरम' प्रत्यय कहाहै। उदाहरणसे स्पष्ट करनेके लिए 'दीनतासे' में 'दीन' को शब्द, 'ता' का प्रत्यय तथा 'से' को अन्त्य प्रत्यय बतायाहै। पर यदि 'दीनता बुरी बात है' जैसा प्रयोग हो तो 'ता' के पश्चात् कोई प्रत्यय नहीं होगा। तो क्या इस स्थितिमें उसे ही 'अंत्य प्रत्यय' कह सकेंगे। गु. ने स्पष्ट नहीं किया। गु. ने प्रकरणके अंतमें 'वाक्यांश' और 'वाक्य' की भी सोदाहरण परिभाषा दीहै जिसका प्रस्तुत प्रकरणमें औचित्य नहीं था।

४८. वा. द्वारा 'शब्द या पद' का विचार : वा. ने अपने शब्दानुशासनमें घोषणा की कि हिन्दी संस्कृत से विकसित नही हुई। वह तो कौरवी नामक प्राकृत से उत्पन्न हुई जिसके स्वरूपका कहीं कुछ अता-पता नहीं है। वा. की यह घोषणा इतने घंटा-घोषके साथ हुई कि अनेक लोग उनके गुण गाने लगे कि संस्कृत व्याकरणका एक प्रकांड पंडित 'हिन्दी' का अलग झंडा गाड़ रहाहै, यह उसकी अपूर्व गरिमा है। हमें भी पढ़कर संतोष हुआ कि चलो एक विद्वान् तो ऐसा आगे आया जो न अंग्रेजी व्याकरणोंकी पूंछ पकड़नेको तैयार है और न संस्कृतकी अनुगामिनी मात्र मानकर हिन्दीकी चर्चा करना चाहताहै। परन्तु लगताहै कि वा. मूल ग्रंथका आरंभ करते ही उस घोषणाको भूल गये। उनका शब्दानुशासन आद्योपान्त संस्कृत और हिन्दी की तुलनासे ही भरा पड़ाहै। वाक्यके वाक्य ऐसे दिये गयेहैं जिनसे लगे कि संस्कृतसे ही विकसित हुईहै। हां, उसकी गरिमा यह बतायीहै कि संस्कृत व्याकरण जहां जटिल था वहां हिन्दीने सरल मार्ग अपनायाहै। संस्कृत में जहां अनावश्यक शब्दजाल था वहां हिन्दीने अनावश्यक तत्त्वको निकाल दियाहै। उदाहरणार्थ संस्कृत पूर्णतः विभक्ति प्रधान थी। हिन्दीने निर्विभक्तिक रूप भी रखें। विभक्ति वहीं चलने दी जहां वह आवश्यक थी। जहां वह 'अजागलस्तनवत्' थी वहां निकाल दी गयी। 'अर्थश्चेदवगत: कि 'शब्देन'—बात समझमें आ गयी तो शब्दका क्या करनाहै। इस बातकी पुष्टि दो तीन पृष्ठोंके सोदाहरण विवेचनसे की गयीहै। पर सारी कठिनाई यह है कि वा. हिन्दीके व्याकरणको संस्कृतके ही डंडसे हांकना चाहतेहै अत: संस्कृत व्याकरणकी पारिभाषिक संज्ञाओंका हिन्दीमें प्रयोग करने पर तुले हुएहैं जबकि संस्कृत और हिन्दीके व्याकरणमें दिन रातका अंतर है। एक उदाहरणसे बात स्पष्ट हो जायेगी। संस्कृतके वैयाकरणोंने नाम-सर्वनाम आदिके अनेक रूप देखे अत: उन्हें एक प्रातिपदिककी कल्पना करनी पड़ी। इस प्रातिपदिकसे किस प्रकार अन्य रूप निर्मित हुए यह समझानेके लिए इक्कीस सुपोंकी कल्पना करनी पड़ी। ध्यान रहे संस्कृत व्याकरणके प्रातिपदिक भी कल्पित हैं और सुप् भी। इसीलिए अनेक सूत्रोंकी सहायतासे यह सिद्ध करना पड़ा कि 'सु' नामक सुप् किस प्रकार अहम्-सा-तद्-देवः, ज्ञानम्-सीता-राजा-विद्वान्-दधि-नदी-श्री : आदिमें समान रूपसे विद्यमान हैं यद्यपि वह दिखायी नहीं देता। फिर सु-औ-जस् नामक तीनों ही सुपोंका प्रकार्य एक-सा है भेद केवल वचनका है अत: इन तीनोंके मेलसे बने पद-रूपो 'प्रथमा विभक्ति' नाम दिया गया। इसी प्रकार शेष सुपोंके भी तीन-तीन के जोड़े द्वितीया आदि विभक्ति नामोंसे अभिहित हुए। सार यह कि प्रातिपदिकमें जुड़ने वाले तत्त्वका नाम 'सुप्' है और सुपोंके जुड़नेसे बने रूपोंके त्रिकोंका नाम विभक्ति है—इसलिए कि सुबन्त रूप सात भागोंमें विभक्त हैं। पाणिनि व्याकरणके अनुसार तो तिङन्त रूपोंका विभाजनभी विभक्ति कहलाता है। 'विभक्तिश्च' सूत्रकी वृत्तिमें स्पष्ट लिखाहै कि 'सुप्तिङौ विभक्ति-संज्ञौ स्त:' अर्थात् सुप् और तिङ् युक्त रूपोंका विभाजन विभक्ति कहलाताहै। यों स्पष्ट हैं कि 'विभक्ति' कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जो प्रातिपदिकमें जुड़कर प्रातिपदिकका रूप या प्रकार्य निर्धारित करताहो। वह तो प्रातिपदिककी रूपमाला का विभाग मात्र है और इसीलिए प्रथमा-द्वितीया जैसी या यादृच्छिक संज्ञाएँ निर्धारित कर दी गयीहैं। प्रातिपदिकका रूप निर्धारक तत्त्व है सुप् और सुबन्त रूप का ही भाषामें सामान्यत; प्रयोग होताहै। हिन्दीकी रूप रचना सर्वथा भिन्न है। उसमें प्रातिपदिककी कल्पना ही आवश्यक नहीं है। शब्द ही पद होताहैं। उसीके एकवचन और बहुवचनके रूप बनतेहैं। सब शब्दोंके सदा बहुवचन रूप भिन्न होनाभी आवश्यक नहीं है। बहुवचन रूप कहाँ पृथक् होगा यह यथास्थान बतायेंगे। संस्कृतमें सुपोंका जो प्रकार्य हैं उसे करनेके लिए हिन्दीका पद पृथक् शब्दको ही ग्रहण करताहै। वह भी तभी जब आवश्यक हो। पर वह शब्द पदसे अलग रहताहै। दोनोंके बीच अनेक अन्य शब्द आ सकतेहैं। संस्कृतके सुपोंके साथ यह घटना नहीं घटती। अत: हिन्दीके इस विशिष्ट तत्त्वके लिए अंग्रेजी पुस्तकों का 'पोस्ट पोजीशन' शब्द ठीक है और हमने उसका शब्दानुवाद 'परस्थानिक' स्वीकार कियाहै। खेद है कि वा. इसके लिए 'विभक्ति' शब्दका ही प्रयोग करनेका आग्रह करतेहैं। यही नही वे उन्हें संस्कृतके सुपोंसे (विभक्तियोंसे नहीं) व्युत्पन्न करनेका यत्न भी करते हैं। इसीलिए 'बालक ने' को 'बालकेन' से व्युत्पन्न बतातेहैं। ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट हो गयाहै कि न तो विभक्ति शब्दका वह अर्थ है जो वा. मान बैठेहै, न हिन्दी व्याकरणको समझनेके लिए विभक्तियों और सुपों

का विचार ही आवश्यक है। संस्कृत और हिन्दीके स्वरूपमें दिन-रातका अंतर है और इसलिए हिन्दीके व्याकरणको संस्कृतके डंडेसे हांकना उचित नहीं। हिन्दीके स्वरूपका ही विश्लेषण होना चाहिये।

४९. हिन्दीका रूप प्रक्रियात्मक ढांचा—इस शीर्षकसे दी. ने एक छोटा-सा अध्याय लिखाहै जिसमें बतायाहै कि 'हिन्दी विश्लेषणात्मक भाषा है।' इसके अधिकांश क्रिया रूप कृदन्तोंके आगे सहायक क्रियाओंके पुरुष नियत रूप लगकर बनतेहैं। शब्दोंके बीच संबंध परसर्गों द्वारा व्यक्त होतेहैं जो संज्ञा सर्वनाम और तुमर्थके विकारी रूपोंके आगे लगतेहैं।' यह सब संभवत: हिन्दीकी विश्लेषणात्मक प्रकृतिके समर्थनमें कहा गया। पर इनके आगे दी. पैंतरा बदलतेहैं और लिखते हैं कि "संश्लिष्ट रूप भी है जो हिन्दीके विकासके विभिन्न चरणोंमें प्रकट हुए।" उसके बाद तो अध्याय के अंततक संश्लिष्ट रूपोंका ही विवेचन किया गया है। अन्तमें निष्कर्ष निकाला गयाहै : 'इस प्रकार हिन्दी की रूप-प्रक्रियामें व्याकरणिक अर्थ व्यक्त करनेकी तीन विधियां है : विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक तथा मिली-जुली-विश्लिष्ट संश्लेषणात्मक। यों दी. की मुख्य स्थापना है कि हिन्दी विश्लेषणात्मक है, पर उदाहरण संश्लेषणात्मकके अधिक दियेहैं और निष्कर्षमें मिली-जुली अर्थात् विश्लिष्ट संश्लेषणात्मक बता दियाहै। यों मुख्यता तो संश्लिष्टताकी होगयी पर उसमें विश्लिष्टताके भी लक्षण हैं। यदि न्याय शास्त्रकी शब्दावलीका प्रयोग करें तो प्रतिज्ञा विश्लिष्टताकी है, उदाहरण संश्लिष्टताके और निगमन विश्लिष्ट-संश्लिष्टता का। विद्यार्थी चक्करमें पड़ सकताहै अत: अंतिम प्रच्छेदमें सोदाहरण स्पष्ट करनेका प्रयास इस प्रकार है : विश्लेषणात्मक विधिमें व्याकरणिक अर्थ मूल, पूर्णार्थी शब्दमें नहीं बल्कि सहायक शब्दमें व्यक्त होता है (करना-करताहूं)। संश्लेषणात्मक विधिमें व्याकरणिक अर्थ प्रत्ययोंकी सहायतासे व्यक्त होताहै (हम-हमें, चलना-चलें)। मिली-जुली विधिमें व्याकरणिक अर्थ व्यक्त करनेके लिए प्रत्यय तथा सहायक शब्द दोनोंका प्रयोग होताहै (लड़का-लड़केको)" आशा है इस सोदाहरण विवेचनसे विद्वज्जन सब कुछ समझ गये होंगे। हां, हमें अभी रहस्य समझमें नहीं आयाहैं।

५०. हमारा निवेदन : व्याकरणके निर्माताओंसे हमारा निवेदन है कि भाषा यदि विश्लेषणात्मक या संश्लेषणात्मक है तो जैसी है, वैसी ही बनी रहेगी। उसके इस विवेचनकी व्याकरण ग्रंथमें प्रासंगिकता नहीं है। प्रत्येक प्रसंगका जहां जहां विवेचन होगा, वहां वहां बात स्पष्ट होती जायेगी और ज्ञात होता जायेगा कि भाषाका स्वरूप कैसा है। वैयाकरणको तो केवल यह बताना चाहिये कि विविध शब्दोंके रूपों और उनसे निर्धारित अर्थ दिशाओंको छात्र कैसे समझें। हमारे विचारसे इस विवेचनका भी कोई महत्त्व नहीं कि भाषा में कौन-से लक्षण मध्यकालमें आये, कौनसे प्राचीन कालमें थे और कौनसे आधुनिक कालमें ही प्रकट हुए। कौन प्रत्यय, उपसर्ग या विभक्ति किस प्रकार विकसित हुए यह विचार सर्वथा अनावश्यक हैं। उनका वर्तमान रूप क्या है तथा प्रयोग और प्रयोजन क्या है, इसीकी चर्चा वैयाकरणका काम है।' उसे क्या है ?' का ही उत्तर देना चाहिये। 'वह कहांसे आया ? क्यों आया ?' आदि प्रश्नोंके उत्तर देना व्याकरणका काम नहीं है। वर्तमान रूपोंके पूर्वजोंकी खोज करना इतिहासका काम हो सकताहै, व्याकरणका नहीं। हमें तो उस इतिहासकी भी कोई उपयोगिता नही प्रतीत होती, पर जो समझतेहों वे उसे इतिहास ग्रन्थमें रखें व्याकरण ग्रंथमें नहीं। व्याकरणका काम तो भाषाके वर्तमान स्वरूपका परिचय देना मात्र है।

५०. १. दूसरे, जिस भाषाका व्याकरण बनानाहो, उसीपर दृष्टि केंद्रित रहनी चाहिये। संस्कृतके समृद्ध व्याकरणसे पद्धति समझी जा सकतीहै उसकी संज्ञाओं का भी प्रयोग किया जा सकताहै पर अपने मनमाने अर्थमें नहीं। मनमाने अर्थमें करनाहो तो प्रारंभमें स्पष्टकर देना चाहिये। यहभी बता देना चाहियें कि मूल अर्थ क्या था और उसमें क्या परिवर्तन किया गयाहै। (क्रमश:)।

अध्ययन : अनुशीलन

राजस्थानी साहित्यका आदिकाल[1]

लेखक : डॉ. बी. एल. माली अशान्त
समीक्षक : डॉ विजय कुलश्रेष्ठ

साहित्यके इतिहास-लेखनकी परम्परा मानव विकासके इतिहासका ही अंग कहीजा सकतीहै क्योंकि मानवके विकासेतिहासमें जब श्रुत परम्परामें साहित्य-सर्जना कीजा रहीथी, उसके विकासका आलेख जनकण्ठमें व्याप्त था, पर जैसे जैसे सभ्यता और विज्ञानका विकास होता गया, वैसे ही श्रुत परम्परामें उपलब्ध साहित्यका नव संस्कारित रूप परिनिष्ठित साहित्यके रूपमें गणनीय होता चला गया और उसका इतिहास-लेखन तत्सम्बन्धी विकासके वैविध्यकी विज्ञानपरक दृष्टिसे किया जाने लगा। आलोच्य कृति ‘राजस्थानो साहित्यके आदिकाल’ पर ऐसी प्रथम कृति है जो राजस्थानी भाषाकी अकादमिक मान्यताके साथ उसके प्राचीन साहित्यके अध्ययन, मनन, एवं विश्लेषण को दिशा देतीहै। श्री अशान्तने ‘विचारणीय कथ्य’ के भूमिकांशमें राजस्थानीकी प्राचीनताकी ओर संकेत कियाहै कि राजस्थानी मात्र विद्वानोंके कथनानुसार दसवीं ग्यारहवीं शताब्दीकी भाषा नहीं है अपितु विविध बोलियों या उपभाषाओं (मालवी, मेवाती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, वागड़ी, हाड़ौती आदि) के रूपमें अत्यन्त प्राचीन भाषा है। हो सकताहै कि श्री अशान्त के तर्कसे लोग सहमत न हों और राजस्थानीके स्वरूप की स्थितिभी एकरूपताके आधारपर विवादित हो कि राजस्थानीका स्वरूप आकाशवाणी जयपुर-जोधपुर-अजमेर केन्द्रसे प्रसारित प्रादेशिक समाचारकी भाषासे ग्रहण किया जायेगा अथवा उसमें विविध उपबोलियोंके आधारपर मिश्रित स्वरूप ग्रहण किया जाये? यह चर्चा एक दूसरा रूप ले लेतीहै

लेखक महोदयने विषय प्रवेशके साथही राजस्थानकी प्राचीनताके सम्बन्धमें तथ्य उजागर कियेहै जिसमें पुरापाषाण कालीन मानव अवशेषोंके अतिरिक्त कालीवंगामें मिले मोएं-जो-दड़ोकी समकालीन सभ्यता अवशेषोंका संकेत है, पर निश्चय ही वे इस तथ्यकी ओर संकेत नहीं कर पायेहैं कि मोएंजोदड़ोंसे पूर्वकी सभ्यता एवं संस्कृति आयड़ (उदयपुर) के अवशेषोंमें उपलब्ध होतीहै, जिससे राजस्थानकी प्राचीनताका इतिहास औरभी पुरातन हो जाताहै। इसी सन्दर्भमें अरावलीकी हिमालयसे भी अधिक प्राचीनताका संकेतभी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रदेश में ‘राजस्थानी’ नाम्नीय भाषासे पूर्व प्राचीन मरूभाषा का सम्बन्ध ऋग्वेदकालीन वैदिक संस्कृतसे पूर्व समृद्धि प्राप्त लोकभाषा माना गयाहै, स्वतंत्र जनभाषाके रूप में उसके अस्तित्वका उल्लेख भाषावैज्ञानिकों तथा संस्कृतसे निकली शौरसेनी जाननेवालोंके लिए विचारणीय है। राजस्थानीके सम्बन्धमें श्री अशांतका मत द्रष्टव्य है—राजस्थानी राजस्थानियोंकी मातृभाषा है। इस भाषामें यहांकी सर्वोत्कृष्ट साहित्य रचनाएं प्रस्तुत हुईहैं।···राजस्थानी साहित्य गद्य-पद्य दोनोंमें उपलब्ध है। (पृ. ५)। इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि राजस्थान भारतीय गणतंत्र संघका सदस्य बननेसे पहले उन्नीस राज्योंमें विभक्त था और संविधान लागू होनेके उपरान्त सन् १९५६ में ‘राजस्थान’ प्रदेशके रूपमें स्थापित होताहै और तभी इस प्रदेशकी प्रादेशिक भाषाको राजस्थानी नाम दिया गयाहै। यह भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे भारोपीय भाषा परिवारकी सदस्य भाषा है। कर्नल जेम्स टाडने सबसे पहले ‘राजस्थान’ का नामोल्लेख कियाथा। लेखकके अनुसार शौर-

---

[1] प्रका. : राजस्थानो भाषा बाल साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, ३४३/३ मालवीय नगर, जयपुर। पृष्ठ : १०२; डिमा. ९१; मूल्य : ८०.०० रु.।

सेनी अपभ्रंशके स्थानपर 'प्राचीन मरुभाषाके गुजराती और राजस्थानीका जन्म' (पृ. १०) बताया गयाहै तथा आधुनिक राजस्थानीका इस प्राचीन राजस्थानीसे अलग करनेवाली विशेषताओंका भी संकेत किया गयाहैं। ग्रियर्सन, तेस्सीवरी, नरोत्तमदास स्वामी, मोतीलाल मनारिया आदिके वर्गीकरणके साथ राजस्थानी लिपिका उल्लेख भी निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण है जो 'देवनागरीसे मिलतीहै, कुछ अक्षरोंकी बनावटमें अन्तर अवश्य है (पृ. २४)।

लेखकका स्पष्ट मत है कि—राजस्थानीको हिन्दी की विभाषा मानना एक बड़ी भूल है। (पृ. ४७)। इसके साथ राजस्थानीके आदिकालकी चर्चा करते हुए पूर्व-आदिकालका संकेत समीचीन प्रतीत होताहै जिसके अन्तर्गत कहा गयाहै कि राजस्थानी-मरुभाषाके रूपमें 'प्राकृत' और 'पालि' के समयमें भी लोकभाषाके रूपमें अविरल प्रवाह लिये हुएथी (पृ. ४९)। हिन्दी साहित्येतिहासकारोंकी परम्परा अस्वीकार करते हुए लेखक कहतेहैं कि —हिन्दी साहित्यका इतिहास बड़ी दुविधामें बड़ी असावधानीके साथ, जल्दबाजीमें बिना भाषावैज्ञानिक सम्पूर्ण आधारके लिखा गयाहै। इतिहास लेखन हेतु जो भाषा कुटुम्ब बनाया गया उसमें सावधानी नहीं बरती गयी (पृ. ५२), परन्तु यह कथन किस अभिप्रेत्यार्थके लिए है, बहुत स्पष्ट नहीं है—विशेषकर अपने अन्तिम चरणमें साहित्यके इतिहासका लेखन भाषाके इतिहास-लेखनसे भिन्न स्थितिका परिचायक होताहै। हिन्दी साहित्यके आदिकालके नामकरणका विवाद आज इसीलिए महत्त्वपूर्ण रहताहैं कि उस युगकी कृतियोंकी अनुपलब्धता ही ऐसा प्रमुख कारण रहा जिससे राजस्थानमें उपलब्ध साहित्यका कोई विधिवत् विवेचन 'आधार विषय' नहीं बन सका।

राजस्थानीके पूर्व आदिकालीन स्वरूपका चिन्तन करते सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने ऋग्वेदसे अपनी बात शुरु कीहै जो भारतीय आर्यभाषाके इतिहाससे अपना सम्बन्ध घोषित करतीहैं। पर राजस्थानी साहित्यके इतिहास लेखनमें इस पूर्वकालिक स्तरपर उपलब्धि मूलक अभावका आभास बराबर बना रहताहै। सम्भवत: यहभी त्वरामें ही लिखा गया इतिहास लेखन है। हां, लेखक महोदयने उत्तर आदिकालमें आकर जैन साहित्य (मुख्यतया धार्मिक) की चर्चा कीहै और उसके लिए रास, चौपाई, धवल, (ढाल), चर्चरी, प्रबन्ध, चरित, कथा, फाग, धमाल, बारहमासा, चौमासा, व्याहलो, मंगल, संवाद, मातृका, बावनी, छत्तीसी, स्तुति, स्तवन, विनती, णमोकार बीसी, चौबीसी संज्ञक रचना कृतियोंकी चर्चा कीहै। यहां महत्त्वपूर्ण उल्लेख है—चारण साहित्यका जिसे ११ वीं से १४ वीं शताब्दीका चारणकाव्यके पदोंको छड़े-बिछुड़े (पृ. ७४) मिलन बतायाहै। रणमल छंद, वीरमायण, दुर्गा सप्तसती, कवित्त भागवत वचनिका आदिका उल्लख इस चारण काव्यकी उपलब्धियां है।

इस साहित्यके इतर उत्तर आदिकालमें पृथ्वीराज रासो जैसी विवादास्पद कृतिको निर्विवाद रूपमें राज प्रशस्ति महाकाव्य (रचनाकाल १७१८-१७३८ सम्वत्) की समकालीन मानाहै। पर जिस राजस्थानीको लोकभाषाके मरुभाषासे विकसित मानाहै, वहीं प्रश्न यहभी उठताहैं कि काव्य परम्परा एवं काव्यशास्त्रीय परम्परा के समानान्तर लोक साहित्यके तात्त्विक रूपमें संरक्षण की जो स्थिति चारणकाव्यका मूल श्रुत परम्परा रूपमें अवगाहित होतीहै, उसे रासोके मूल्यांकनमें भी ग्राह्य समझा जाना चाहिये।

उत्तर आदिकालकी काव्यगत विशेषताओंका उल्लेख अवश्य ही उपादेय है जिसमें 'रास काव्य, फागु काव्य, बेलि साहित्य, रासो काव्य, वचनिका साहित्य आदिका अध्ययन महत्त्वपूर्ण बताया गयाहै। इसके साथ ही लौकिक साहित्य आदिका उल्लेख करते हुए आदिकालके प्रवाह एवं प्रवृत्तियोंका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गयाहै।

वास्तवमें यह पुस्तक राजस्थानी साहित्यके आदिकालकी पूर्व भूमिकाके रूपमें देखी जा सकतीहै क्योंकि लेखक महोदयका कृतित्व मूलत: 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' है, जिसका प्रकाशन 'आरम्भ काल-मध्यकाल, आधुनिक काल रूपमें पहलेही हो चुकाहै और अब इस रूपमें है जो आदिकालके समग्र चिन्तनपर एकाग्र न होकर 'राजस्थानी भाषा' के मूल चिन्तनपर अधिक केन्द्रित है। अच्छा होता, कुछ श्रम करके इसे राजस्थानी भाषाके इतिहासके रूपमें प्रस्तुत किया जाता। कथ्यकी दृष्टिसे भाषापर अधिक केन्द्रित है, साहित्यपर अल्पांश ही। कठिनाई यह है कि जबतक उनके उपयुक्त कृतित्वके अन्य भाग या प्रकाशनन पढ़े जायें तबतक आदिकालके महत्त्वका रेखांकन अधूरा

लगताहै। हां, राजस्थानी भाषाके प्रकरणमें वह ज्ञान वृद्धि अवश्य करताहै।

पुस्तकमें विषय प्रवेश शीर्षक आरम्भ होताहै पृष्ठ एक से और पृष्ठ सौ पर समाप्त हो जाताहै। अध्यायों का वर्गीकरण कहीं नहीं होता। इसी 'विषय प्रवेश' शीर्षकके अन्तर्गत पृष्ठ ४६ पर जाकर एक उपशीर्षक 'राजस्थानी साहित्यका आदिकाल : पूर्व आदि-काल', पृष्ठ ६१ पर उत्तर आदिकाल-प्राप्त रचनाओंका काल, पृष्ठ ८७ के तीन चौथाई पृष्ठसे आदिकालीन प्रमुख रचनाकार उपशीर्षकोंमें विभाजित कृति 'मूलत: पूर्व प्रकाशित कृतिका ही पूर्वांश है, इसी कारण अपनी मन्तव्य-यात्रामें आधी दूरी तक ही पहुंचातीहै, आदिकालकी पूरी यात्रा नहीं होपाती। फिरभी, इसमें सन्देह नहीं कि यह श्रमसाध्य कार्य प्रकाशमें आयाहै और भविष्यमें इतिहास लेखनमें जल्दबाजीकी प्रवृत्ति से मुक्त एवं सुष्ठु प्रयासकी भूमिका बन सकेगा ☐

सूर तथा तुलसीके विनय-पदोंका तुलनात्मक अनुशीलन[1]

लेखिका : डॉ. निर्मला मौर्य

समीक्षक : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य

हिन्दीकी भक्ति-काव्यधारामें सूरदास और गोस्वामी तुलीदासका अप्रतिम स्थान है। भक्तिका जैसा उन्मेष इन महाकवियोंके काव्यमें मिलताहै, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। एक ओर 'सूरसागर' में विनयके मर्मस्पर्शी पद संगृहीत हैं तो दूसरी ओर 'विनय पत्रिका' के पदोंमें भक्तके दैन्य तथा आलंबनके महत्त्वका हृदयग्राही चित्रण है। समीक्ष्य शोध-ग्रंथ 'सूर तथा तुलसीके विनय-पदोंका तुलनात्मक अनुशीलन' में विनयके इन पदोंकी विभिन्न दृष्टिकोणोंमें तुलना की गयीहै।

समीक्ष्य ग्रंथमें छ: अध्याय हैं तथा अन्तमें उपसंहार है। प्रथम अध्याय दो भागोंमें विभक्त है—'भारतीय चिन्तनमें भक्तिका विकास' और 'भक्तिमें स्तोत्र तथा विनय साहित्यका महत्त्व'। ग्रंथकी लेखिका डॉ. मौर्य का मत है कि भक्तिका प्रतिपादन स्पष्ट रूपसे सर्वप्रथम महाभारत और गीतामें प्राप्त होताहै। इसके पश्चात् शांडिल्य भक्तिसूत्र, नारद भक्तिसूत्र तथा श्रीमद्भागवत पुराणका स्थान है। लगभग दसवीं शताब्दीके पश्चात् रामानुजाचार्य, रामानंदाचार्य, वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश आदिने सगुण भक्तिका प्रचार किया। चौदहवीं-पंद्रहवी शताब्दीमें कबीर, नानक, दादू आदि संतोंने जनताको निर्गुण भक्तिका उपदेश दिया। जायसी आदि सूफी कवियोंके काव्यमें 'प्रेमकी पीर' की अभिव्यंजना अत्यन्त मनोरम हैं। 'भक्तिमें स्तोत्र तथा विनय साहित्यका महत्व' के अन्तर्गत लेखिकाने शिव महिमा, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन तथा बौद्ध स्तोत्रोंका संक्षिप्त परिचय दियाहै।

ग्रंथके द्वितीय अध्याय 'हिन्दी भक्तिधाराका संक्षिप्त परिचय तथा उसमें सूर और तुलसीका अनुदान' ('अनुदान' के स्थानपर 'अवदान' का प्रयोग समीचीन होता) के आरम्भमें निर्गुण तथा सगुण धाराका सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गयाहै। डॉ. मौर्यका मत है कि तुलसीकी लोकप्रियताका रहस्य उनकी समन्वय-साधनामें निहित है। उन्होंने अपनी विराट् कल्पना द्वारा श्रीराम का आदर्श रूप जनसाधारणके समक्ष प्रस्तुत किया। स्वान्त:सुखाय होते हुएभी उनका काव्य लोक संग्रहकी चेतनासे समन्वित है। तुलसीकी भक्ति दास्य-भावकी है। उन्होंने भक्ति द्वारा 'ब्रह्म' और अवतारमें एकता स्थापित की। सूरने अपने उपास्य श्रीकृष्णके विविध रूपोंमें अनुपम सौंदर्यके दर्शन किये। उन्होंने सरल शैलीके साथ-साथ कूट शैलीको भी अपनाया। डॉ. मौर्यके अनुसार सूरका वैशिष्ट्य यह है कि उनके काव्य में कृष्णके अतिप्राकृत और लोकातीत तथा मानवीय रूपकी दो धाराएं समानान्तर रूपसे बहती हुई चलती हैं। उनकी भक्ति पद्धतिका मेरुदंड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। लेखिकाने अष्टछापके अन्य कवियोंके जो पद्य उदाहरणस्वरूप उद्धृत कियेहैं, वे आचार्य रामचंद्र शुक्लके हिंदी-साहित्यका इतिहाससे लिये गयेहैं। इसके अतिरिक्त ग्रंथके पृ. ८५, ८६, ८७ तथा ६५ की कुछ पंक्तियां शुक्लजीके उक्त इतिहासके पृ. १३२, १४१ तथा १७०-१७३ से बिना संदर्भ-संकेतके उद्धृत की गयीहैं। शोधके क्षेत्रमें यह प्रवृत्ति उपयुक्त नहीं है।

पुस्तकके तृतीय अध्याय 'कविद्वयके विनय पदोंका

---

[1] प्रका. : ग्रंथायन, सर्वोदयनगर; सासनी द्वार, अलीगढ़-२०२००१। पृष्ठ : ३०४; डिमा. ६२; मूल्य : १६०.०० रु.।

विवरण' में सूरके विनय पदों तथा 'विनय पत्रिका' के पदोंकी संख्या, क्रम तथा पाठान्तरपर विचार किया गयाहै । 'सूर और तुलसीके विनय पदोंका विचार-पक्ष' के चतुर्थ अध्यायमें डॉ. मौर्यका मत है कि तुलसीने सभी प्रचलित वादोंको पूर्ण न मानकर आंशिक रूपसे सत्य माना तो सूरभी दार्शनिकताके पचड़ेमें अधिक नहीं पड़े । लेखिकाने माया, ब्रह्म. जगत् जीव, मन और कलियुगकी भयावहता शीर्षकोंके अन्तर्गत दोनों महाकवियोंके वैचारिक पक्षपर विस्तारसे प्रकाश डालाहै । तुलसीने सीताको मायाका प्रतीक मानाहै तो सूरकी दृष्टिमें राधा मायाका अनुग्रहकारी रूप हैं । कविद्वयने अपने आराध्योंको ब्रह्मके रूपमें देखाहै । तुलसीके अनुसार यह संसार मृगजलके समान भ्रममय है तो सूरने संसारको पनघटके रूपमें प्रस्तुत कियाहै । दोनों कवियोंका मत है कि जीव ईश-कृपा द्वारा मायाके मोह-पाशसे मुक्त हो सकताहै तथा भगवान्‌की शरणमें पहुंचकर व्यक्ति कलियुगके संतापोंसे बच सकताहै ।

पंचम अध्याय 'सूर और तुलसीके विनय पदोंका भक्ति-पक्ष' में दोनों कवियोंके विनय पदोंमें भक्तिके विविध स्वरूपोंका निदर्शन है । उनके पदोंमें भक्तिकी सात भूमिकाओं और नवधा भक्तिकी नौ विधियोंका सुंदर वर्णन मिलताहै । दोनों कवि भक्तिके क्षेत्रमें दास्य भावकी पराकाष्ठा तक पहुंच गयेहैं । सूरकी भांति तुलसीके काव्यमें भक्तिकी सीमाओंका उल्लंघन दृष्टिगोचर नहीं होता । लेखिकाका निष्कर्ष है कि सूरकी भक्ति अन्तर्मुखी है तो तुलसी भक्ति बाह्यमुखी (बहिर्मुखी) ।

षष्ठ अध्याय 'सूर और तुलसीके विनय पदोंकी शैली शिल्प' में दोनों कवियोंके विनय पदोंकी भाषा, अलंकार-योजना, छंद विधान तथा संगीतपर विचार किया गयाहै । सूरने तत्सम, तद्भव तथा प्रचलित विदेशी शब्दोंके प्रयोग और मुहावरों एवं लोकोक्तियोंके समावेश द्वारा ब्रज भाषाको गौरवके शिखर तक पहुंचा दिया । भाषाका सुगठन और माधुर्यकी दृष्टिसे 'विनयपत्रिका' का महत्त्व असंदिग्ध है । कविद्वयके विनय-पदोंमें अलंकारोंका स्वाभाविक प्रयोग है, पद-शैलीका आश्रय लिया गयाहै तथा संगीतकी राग-रागनियोंकी मनोहारी योजना है । 'उपसंहार' में डॉ. मौर्यका यह कथन उचित ही है कि 'सूरसागर' और 'विनय पत्रिका' दोनोंही ग्रंथ मध्ययुगीन विनय-पद साहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखतेहैं ।

डॉ. मौर्यका प्रस्तुत शोध-प्रबंध अपने विषयके कारण प्रबुद्ध पाठकोंके अतिरिक्त भगवद्भक्तिसे अनुप्राणित सामान्य पाठकोंके लिए भी उपयोगी है । लेखिकाने अनेक स्थलोंपर उद्धृत पुस्तकोंकी पृष्ठ संख्याका उल्लेख नहीं कियाहै । यत्र-तत्र पुस्तकोंके नामका भी उल्लेख नहीं किया गया । ☐

मूकमाटी महाकाव्य : काव्यशास्त्रीय निकष[1]

लेखक : प्रो. शीलचन्द्र जैन

समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

साहित्यकी आलोचनाके लिए प्राचीन शास्त्रों द्वारा परिमापित निकष आधुनिक रचनाओंकी समीक्षाके लिए एक सीमा तक ही सहायक हो सकतेहैं । प्राचीन चौखटोंकी परिधिको आदर्श मानकर चलनेसे रचनाके प्रति अन्यायकी संभावना उत्पन्न होतीहै ।

जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी द्वारा विरचित महाकाव्य 'मूकमाटी' प्रत्येक दृष्टिसे एक नये ढंगकी रचना है । लेखक आरम्भसे ही जैन सिद्धान्तोंके प्रतिपादनका उद्देश्य सामने रखताहै । किन्तु उनकी चिन्ता इन सिद्धान्तोंको कलात्मक अभिव्यक्ति देनेकी भी है ।

माटी, कलश और महासेठके त्रयी द्वारा निरूपित एक त्रिकोणमें आबद्ध इस महाकाव्यका शास्त्रीय विवेचन कियाहै प्रोफेसर शीलचन्द्र जैनने अपनी पुस्तक 'मूकमाटी महाकाव्य : काव्यशास्त्रीय निकष' में । प्रोफेसर जैनका यह अध्ययन प्राध्यापकीय आलोचनाका अच्छा उदाहरण माना जा सकताहै ।

पुस्तकके नौ अध्याय या संभाग हैं । पहले संभाग 'महाकाव्यका स्वरूप एवं उद्देश्य' विभिन्न आचार्योंके महाकाव्य-सम्बन्धी मतोंका उल्लेख करके प्रोफेसर जैन प्रबन्ध काव्य, महाकाव्यकी विशेषताएं तालिकाबद्ध करतेहैं । इसके पश्चात् काव्यके भेदोंकी चर्चा करके हिन्दीके प्रमुख महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, मुक्तक काव्योंके नाम गिनातेहैं । प्रबन्धात्मक लम्बी कविताके लिए 'आख्यानक गीति' संज्ञाका प्रयोग किया गयाहै । महा-

---

[1] प्रका. : दिगम्बर जैन समाज, छिन्दवाड़ा (म. प्र.)। पृष्ठ : १४४; डिमाई ६१; मूल्य : १०.०० रु. ।

काव्योंकी तालिकामें दिनकर कृत 'कुरुक्षेत्र' भी समाविष्ट हैं, उर्वशीको न जाने क्यों छोड़ दिया गयाहै। 'प्रियप्रवास' को महाकाव्य तथा हल्दीघाटीको खण्डकाव्य माना गयाहै। इसी संभागमें लेखक प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य, महाकाव्य तथा खण्डकाव्यके विभेदक बिन्दुभी स्पष्ट करताहै। इसके पश्चात् एक बार फिर महाकाव्योंकी सूची दुहरायी गयीहै और इसमें 'वैदेही वनवास' तथा 'उर्वशी' को सम्मिलित कर लिया गया है। पन्तका लोकायतन दोनों तालिकाओंमें है; 'सत्यकाम' एकमें भी नहीं। अब लेखक पुनः विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों द्वारा दी गयी महाकाव्यकी परिभाषाएं प्रस्तुत करताहै। लेखक महाकाव्यकी अपनी परिभाषा भी प्रस्तुत करताहै। यह परिभाषा अपनेमें महत्त्वपूर्ण है और इस चर्चाकी उपलब्धि मानीजा सकतीहै —

“महाकाव्य वह काव्य रूप है जिसमें व्यापक कथानक, विराट् चरित्र, कल्पना, गंभीर अभिव्यंजना-शैली, विशिष्ट शिल्पविधि और मानवतावादी जीवन-दृष्टिसे उसका रचयिता युग-जीवनके उन्नत बोधको सांस्कृतिक पृष्ठभूमिपर प्रतिफलित करताहै। संक्षेपमें, श्रेष्ठ महाकाव्यकी रचना मानवताके मंगलमय आख्यान और लोकमानसकी चेतनाके आकलनका सांस्कृतिक प्रयास होतीहै।” इस परिभाषाके पश्चात् लेखक महाकाव्यके रूप-विधायक तत्त्वोंपर पहुंचताहै। महाकाव्यके 'उद्देश्यों में 'सांस्कृतिक उत्थान' का समावेश करके लेखक आधुनिक आलोचकोंको एक संकेतके साथ-साथ चेतावनी भी देताहै कि जो रचना सांस्कृतिक उत्थानमें योगदान नहीं देती, वह उच्चकोटिकी रचनाओंमे स्थान नहीं ग्रहण कर सकती। अपनी पुस्तकके इसी संभागमें लेखक 'मूकमाटी' महाकाव्यके महान् उद्देश्यका विवेचन भी कर देताहै।

द्वितीय संभाग 'सविस्तार कथावस्तु' में, जैसाकि शीर्षकसे स्पष्ट है, मूकमाटी महाकाव्यकी कथावस्तुका विवरण प्रस्तुत किया गयाहै। सरिता-तटकी माटी और धरती मांके वार्त्तालापसे कथा आरम्भ होतीहै। मौन माटीको इस महाकाव्यकी नायिका और कुंभकार को नायक माना गयाहै। वास्तवमें इस प्रकारमें परम्पराश्रुत समीकरण खोजने या आरोपित करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। लेखक स्वयं स्पष्ट करताहै — “...किन्तु वह (कलश) आध्यात्मिक गुरुका प्रतीक है। स्वयं गुरुके उद्धारकर्ता गुरु जिन्नदेव हैं।’ माटीका मानवीकरण होजाने तथा वार्त्तालापमें भी उसकी सजग भूमिकाको देखकर उसे 'मौन' कहना भी युक्तिसंगत नहीं लगता। मूकमाटी महाकाव्यके चौथे खण्ड को लेखक 'अपने आपमें एक खण्डकाव्य' मानताहै। इस 'खण्डकाव्य' से सम्पूर्ण महाकाव्यको कितनी क्षति पहुंची है, इसका उल्लेख वह नहीं करता।

समीक्ष्य पुस्तकके अन्य महत्त्वपूर्ण संभाग हैं : पात्र-योजना एवं चरित्र चित्रण; रस निरूपण एवं शिल्प-विधान; जीवन दृष्टि; युगचेतना, नैतिक मूल्य एवं मानवतावादी अवधारणा; मूकमाटीका महाकाव्यत्व।

इस पुस्तककी विशेषता यह है कि 'मूकमाटी' महाकाव्यके अध्ययनसे सम्बन्धित कोईभी आयाम अछूता नहीं रहाहै। काव्यशास्त्रके सामान्य सिद्धान्तों के अध्ययनकी दृष्टिसे भी यह एक उपयोगी पुस्तक है।

पठनीय और संग्रहणीय ग्रन्थ

आलोचना :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—
सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर सजिल्द ६०.००
विद्यार्थी संस्करण ३५.००

अन्धायुग : एक विवेचन—
डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत) सजिल्द ४०.००
विद्यार्थी संस्करण २५.००

छायावाद : नया मूल्यांकन—
प्रा. नित्यानन्द पटेल सजिल्द ४०.००

उपन्यास :

अपराधी वैज्ञानिक : (वैज्ञानिक उपन्यास) —यमुनादत्त वैष्णव सजिल्द ६०.००

ये पहाड़ी लोग—
यमुनादत्त वैष्णव अशोक सजिल्द २५.००

सुधा—[मलयालमसे अनूदित]—
टॉ. एन. गोपीनाथ नायर सजिल्द २५.००

शकुन्तला—['अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का औपन्यासिक रूपान्तर] —विराज सजिल्द २५.००

प्रवासी—[बर्माके भारतीय प्रवासियोंकी कहानी]—
श्यामाचरण मिश्र सजिल्द ३०.००

'प्रकर', ए-८/४२ राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७.

उपन्यास

खवाबरौ[1]

[उर्दू से अनूदित]

लेखक : जोगेन्द्रपाल
अनुवादिका : कृष्णा पाल
समीक्षक : डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी

सन् १९४५ में कठमुल्लोंकी हठधर्मिता और मौकापरस्त राजनेताओंकी निपट स्वार्थपरतासे भारत का जो अप्राकृतिक विभाजन हुआ, उसने शरणार्थियों —विस्थापितों—की दुनियांकी सबसे बड़ी जनसंख्या को एक ओरसे दूसरी ओर चले जानेको विवश कर दियाथा। सदियोंके पुरखोंके जमानेके जर-जमीन ही नहीं, अपने जिस्म और रूहके प्यारे अंतरंग टुकड़ोंसे बिछुड़नेकी त्रासदीको सहते जाना आजीवन उनकी दुर्निवार नियति बन गयी। पर मुल्कको जबरन दो हिस्सोंमें तकसीम कर दिये जानेके बादभी कितने ही जजबाती बुजुर्ग इस कठोर हकीकतसे रूबरू होनेमें लंबे अरसे तक खासी पीड़ा और कठिनाईका अनुभव करते रहे कि अब वे वाकई दो मुल्कोंके बाशिंदें हो गये हैं; और कि कराची, लाहौर शहर पाकिस्तानकी तथा लखनऊ, मलीहाबाद हिन्दुस्तानकी हदबंदीमें गिरफ्तार कर लिये गयेहैं—चाहे उनके दिल एक-दूसरेके गले मिलनेके लिए कितनीभी बेताबी और गर्मजोशीसे क्यों न धड़कतेहों। बंटवारेके बादके ताजा नासूरके घावों और दुस्सह दर्दकी तस्वीरको कभी रामानन्द सागर, खुशवन्त सिंह, विष्णु प्रभाकर, सदाअत हसन मंटो आदि अदीबोंने बड़ी शिद्दतसे पेश कियाथा। पर ऐसे नापाक सियासी समझौते इन्सानके दिलकी गहराइयों में नीचे उतरकर क्या कभी उसकी अन्तरंग भावनाओं की कतरब्योंत करनेमें कामयाब होसके अथवा कैसेभी सख्तसे सख्त कानून और निजाम उन्हें कैदकर पाये हैं? आज लगभग आधी सदी गुजर जानेके बावजूद हिन्दुस्तानसे पाकिस्तान चले जानेवाले मुसलमानोंके साथ वहां बदस्तूर भेदभाव और नाइन्साफीका जाहिलाना सलूक किया जा रहाहै। उनका 'स्टेट्स' अभी तक वहां शरणार्थीका ही बना हुआहै। पाकिस्तानके पुराने सिंधी, पंजाबी बाशिंदे उनपर अभी भी कतई एतबार नहीं करते। आपसी रिश्तोंमें इस अनपेक्षित नाइत्तफाकी, दूरी और बढ़ती दरारकी परिणति आये दिन खूनी उपद्रवों और हिंसक आन्दोलनोंमें होती रहतीहै। यह सब हमारे लिए मात्र अखबारोंकी सुर्खी बनकर रह जातीहै। पर राजनीतिक पहलूके साथ-साथ उसका एक मानवीय तलस्पर्शी पक्ष भी है, जिसको बड़े मार्मिक प्रभावपूर्ण ढंगसे जोगेन्द्रपालकी पैनी लेखनी ने 'खवाबरौं' उपन्यासमें उजागर कियाहै।

वस्तुत: 'खवाबरौ' दीवाने मौलवी साहबके दशकों जीते भरमकी, मोहभंगकी करुण कहानी है। नवाब मिर्जा कमालुद्दीन उर्फ दीवाने मौलवी साहबको देश का बंटवारा होनेपर हालातोंकी मजबूरीसे लखनऊ छोड़कर कराची आना पड़ा, पर उनकी नस-नस, जेहन के जर्रे-जर्रेमें लखनऊ, वहांकी नवाबी तहजीब, खान-पान, रहन-सहन सब इस कदर घरोपाकर गयाथा कि इन्हें कहीं कुछ अन्य दिखायी ही नहीं देताथा। उनके ख्यालमें सारा लखनऊ, उसका खास परिवेश जैसे पूर्ववत् अभी भी उनके साथ हो, वे उसीके बीच जी रहे हों। घरके लोग, दोस्त, शुभ-चिन्तक उन्हें यथार्थका अहसास करानेकी, समझानेकी खूब कोशिश करते पर सब निष्फल; उनकी पत्नी अच्छी बेगमने भी अन्तत: हार स्वीकार कर ली। मौलवी साहब हर समय एक भावोन्मादकी स्थितिमें डूबे रहते। उनके रिश्तेदार, संगी साथी सभी पाकिस्तानमें चलते मुकामी और मुजाहिरोंके भेदभावसे बुरी तरह संतप्त थे। वे जिन्होंने पाकिस्तान हासिल करनेके लिए बेपनाह मुसी-

---

[1] प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १ बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ९०; क्रा. ९२; मूल्य : ४५.०० रु.।

बर्तें झेली, घर बार त्याग कर दर बदर हुए; तथाकथित इस अपने और अपनोंके देशमें मुजाहिर ही कहलाते रहे। ऐसे लांछनापूर्ण 'लेबिल' की तिक्तताके विषको वे दशाब्दियों तक चुपचाप पीते रहे पर आखिर ऐसी अवमानना वे कबवक सहन कर सकतेथे। इस नवनिर्मित इमारतकी बुनियादके क्या वे भी प्रस्तर न थे! फिर उनके प्रति ये नफरत और हिकारत क्यों! उनमें तीखी प्रतिक्रिया और अवसाद पैदा होना स्वाभाविक था। विक्षोभ और बेबसीके ऐसे मानसिक तनावमें जीनेवाले कुछ लोग तो—जो इस सदमेको बर्दाश्त न कर सकें—अपने होशहवाशही गंवा बैठे, पागल होगये—(और शायद उन हालातोंमें यही स्थिति उनके लिए खुशगवार भी थी) दीवाने मौलवी साहब भी उसी खामखयालीकी दुनियांके अभिशप्त वाशिन्दे बनकर रह गयेथे। दरअसल मौलवी साहब व्यक्तिमात्र नहीं, विभाजन जन्य विषाद और संत्रास के विषम वातावरणसे अन्ततक सामंजस्य न बिठा सकनेवाली "बहकी बिरादरी"के एक प्रतीक हैं। कई बार उनके बड़े पुत्र नवाब मिर्जाने अपनी अम्मीजान अच्छी बेगमसे अब्बाके दिमागी बहकेपन का इलाज करानेका अनुरोध किया। पर वह हरगिज न चाहती थीं कि दीवानगीके इलाजसे उनके पति मौलवी साहबका मीठा भरम टूट जाये। सपना टूट गया तो वह भी टूट जायेंगे। इसीलिए उसने कहा—"नहीं नवाब मिर्जा, अगर अपने इस पागलपनसे ही सजे-संवरे हैं तो तुम्हारा क्या बिगड़ताहै -- नहीं, यह कोई इलाज नहीं है कि हम उन्हें बेघर कर दें—"उनका झूठमूठ अब मुझे भी सच्चा मालूम होने लगाहै।" इन सतरों में **दीवाने मौलवीका मनोविज्ञान, उनकी मनोव्यथाका सटीक चित्र समाहित है।**

मौलवी साहब तो अपनी दीवानगीके आलममें यों एक तरहसे अलमस्त थे; पर तभी कालचक्रकी कुटिल गतिसे उन्हें एक भीषण हादसेसे गुजरना पड़ा। मुकामियोंकी घिनौनी साजिशसे एक दिन अचानक उनकी बेगम, बड़े बेटे बहू, नन्हीं पोती सुरैया सबको बमके धमाकेका शिकार होना पड़ा। इस गहरे सदमेसे बुरी तरह आहत और गमजदा मौलवी दीवानेकी रुंधी रुलाई वेगसे फूट पड़ी और हठात् उनके होश-हवास पलट आये। उनको यह अहसास होगया कि वे अब लखनऊ नहीं करांचीमें हैं किन्तु अब उनपर दूसरी झोंक सवार होगयी—अच्छी बेगमके शब्दोंमें—"वे निहायत मासूमियतसे समझतेहैं के वे सारा अरसा दरस्ल लखनऊमें ही आबाद थे और उन्हीं दिनों वहांसे चन्द रोज के लिए करांची आयेहैं।"—यहभी कि उनकी बेगम बहू बेटे, चहेती पोती सुरैया वहां उनका बेताबीसे इन्तजार कर रहीहैं। इसीलिए जल्दसे जल्द उन्हें वहां क्यों नहीं लौट जाना चाहिये। और, ऐसी नीमहोशी की हालतमें वे अपने मीठे सपनों और भग्न हसरतोंके शहर लखनऊ लौट जानेके लिए कभी सूटकेस जमाने लगतेहैं, कभी बिस्तरा बांधते दिखायी देतेहैं।

यों इन्सान द्वारा इन्सानके शोषणका, वहिशियाना मुलूक और गैरत का 'ख्वाबरो' एक दर्दनाक दस्तावेज हैं, जिसमें जगह-जगहपर अपनी जमीन, जमीर और संस्कृतिसे गहरे जुड़े रहनेकी सन्नाटे भरी चीख और हृदयद्रावक छटपटाहट है। कृतिके व्यक्ति चित्र, जीवन चित्र हमें अनायास इन्सान और इन्सानके बुनियादी रिश्तों, मसाइलोंके बारेमें ईमानदारीसे सोचनेको मजबूर करतेहैं। प्रस्तुत उपन्यासकी जानदार भाषा-शैली पाठकको अन्त तक यों बांधे रखतीहै, मानो उस संवेदन-तरल कथायात्राका स्वयं भी एक मुसाफिर हो। □

खराब मौसमके बावजूद[1]

लेखक : डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना

समीक्षिका : डॉ. शशिप्रभा शास्त्री

डॉ. वीरेन्द्र सक्सेनाके प्रथम उपन्यास 'खण्डित राग' के उपरान्त 'खराब मौसमके बावजूद' उनका दूसरा उपन्यास है, जिसका आरम्भ डॉ. विनय श्रीवास्तव (नायक) के दिल्लीमें मौसम विज्ञान विभाग की नौकरीसे होताहै। यहीं डॉ. विनयका परिचय इस दफतरमें काम करनेवाली लड़की वैदेहीसे होताहै, जो संवेदनशील सम्बन्धमें परिवर्तित होता चलताहै। मित्र राजेन्द्र द्विवेदीके माध्यमसे नियुक्त इसी दफ्तरकी दूसरी लड़की प्रवीणासे भी उसके सम्बन्ध क्रमशः प्रगाढ़ हुए हैं। दिल्ली आनेसे पूर्व बम्बईमें, जहां विनय श्रीवास्तव

---

[1] **प्रका. : सामयिक प्रकाशन, ३५४३ जटवाड़ा, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २५६; डिमा. ९१; मूल्य : १००.०० रु.।**

नागर विमानन विभागमें हिन्दी पदाधिकारीके पदपर कार्यरत था, सैंटार होटलमें काम करनेवाली एक महिला टाइपिस्ट कुसुमसे भी उसका सम्बन्ध बनता है—विनय श्रीवास्तवकी इन्हीं महिला मित्रोंके सम्बन्धों को इस उपन्यासमें विस्तार दिया गयाहै।

डॉ. विनय श्रीवास्तवके बम्बई निवासके दिनोंमें पत्नीकी अनुपस्थितिमें जब उसके मित्र राजेन्द्र द्विवेदी का आगमन होताहै, तो वह लालबत्तीके इलाकेसे भी परिचित होताहै। बम्बई रहते हुएही विनय श्रीवास्तव ने अभिनेता-अभिनेत्रियोंके इन्टरव्यू भी लिये और उनसे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये। यह सब विनय श्रीवास्तव की पत्नीको पसन्द नहीं था और बम्बईसे ही पत्नीके साथ उसका मनमुटाव आरम्भ हो जाताहै।

बम्बईके बाद डॉ. विनयको कुछ समयके लिए इलाहाबादभी जाना पड़ाथा, इस सन्दर्भमें भी उपन्यास में कई रोचक तथ्योंका उल्लेख है। डॉ. विनयसे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जानेके उपरान्त कुसुमने विनयसे अपनी पत्नीको तलाक देकर उससे विवाह कर लेनेका प्रस्ताव भी रखा, पर विनयने इसको व्यावहारिक रूप देना उचित नहीं समझा। विनय श्रीवास्तव का अपनी महिला मित्रोंसे सम्पर्क, उनके साथ उतार-चढ़ाव और नौकरी इत्यादिकी घटनाओंका सिलसिला काफी दूर तक चलाहै, या यूं कहना चाहिये, कि पुस्तकका अधिकांश भाग उसकी उपर्युक्त तीन महिला मित्र (कुसुम, वैदेही, प्रवीणा, और पत्नी कमला) के चतुष्कोणको ही समर्पित है। पर कमला तो डॉ. विनय की पत्नी है, इसलिए पतिकी इन तीन महिला मित्रों (जिन्हें वह सहेलीकी संज्ञा देतीहै) के कारण पतिसे उसका विवाद आद्योपान्त चलताहै। पुस्तकके अन्त में प्रवीणाके साथ ही विनय श्रीवास्तव ऐक्य अनुभव करताहै, तब पत्नीके साथ सम्बन्ध न किसी सुखद स्तर पर पहुंचताहै, न वह छिनन होताहै।

प्रस्तुत उपन्यासमें दो विषय मुख्य हैं:—

१. हिन्दी राजभाषा और हिन्दी कार्यालयोंकी प्रणाली और उनका सन्दर्भित विवरण

२. स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तथा दाम्पत्य-जीवन जैसे सनातन प्रश्नोंके रोचक सन्दर्भ

प्रस्तुत उपन्यासकी यह विशेषता है, कि इन दोनों विषयोंपर ही इसमें नये ढंगसे प्रकाश डाला गया है—राजभाषा हिन्दीसे सन्दर्भित कार्यालयीन प्रणाली मात्रसे ही यह पाठकको अवगत नहीं कराता, विभाग की आन्तरिक गतिविधियोंको भी यह विश्वसनीय ढंगसे उजागर करता चलताहै। साथही दो अन्य विभाग 'मौसम विज्ञान विभाग' तथा 'नागर विमानन विभाग' के सम्बन्धमें भी इसमें विशेष जानकारियाँ दी गयीहैं।

एक रोचक प्रसंग यह है, कि "संसदीय राजभाषा समितिके निरीक्षण-दौरेका कार्यक्रम निश्चित होनेपर (पृ. २४२-२४६) विभागसे सम्बन्धित उच्चाधिकारी चिन्तित थे, क्योंकि चार-पांच वर्ष पूर्व राजभाषा अधिनियमकी धारा तीनके अन्तर्गत निर्धारित विषय तक का पालन वहां नहीं हो रहाथा। स्वयं विनयने इस मुसीबतसे उबरनेका जो गुर बताया, (समितिके सदस्योंको एच. एम. टी. एक-एक घड़ी भेंट करने तथा भरपूर स्वागत किये जानेका) वह आश्चर्यजनक यों है, कि इस प्रकारका भ्रष्टाचार नागर विमानन विभाग (बम्बई) में भी मौजूद था। लेखकने डॉ. विनयके माध्यमसे इसकी भी पोल खोलीहै—आज हर क्षेत्रमें कार्यके प्रति उपेक्षा, उदासीनता तथा एक विचित्र प्रकारका भ्रष्टाचार इतना सामान्य हो गयाहै, कि उसे भ्रष्टाचार संज्ञा देना ही गलत-सा प्रतीत होताहै—लेखकने इस क्षेत्रकी विशेषताओंका विवरण उपस्थित करते हुए उसका बारीकी से विश्लेषण कियाहै।

किन्तु इस औपन्यासिक ग्रन्थमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को जिस बेबाकीसे चित्रित, विश्लेषित और समीक्षित किया गयाहै—वह पूर्व उल्लिखित प्रसंगोंसे भी अधिक रोचक और प्रभावी है, क्योंकि यह प्रसंग मात्र निजी न होकर समाजके व्यापक फलकसे संग्रथित है।

दाम्पत्य जीवनको सुखी सफल बनाने हेतु इस उपन्यासमें निष्कर्षतः दो उपाय बताये गयेहैं:—

१. स्त्री-पुरुष मैत्री।

२. इस मैत्रीका ढंग। यानी यह मैत्री शारीरिक स्तरपर न होकर मात्र वैचारिक स्तरपर हो, तो यह सुखद भी हो सकतीहै और एक नया मानदण्ड भी स्थापित कर सकतीहै। स्त्री-पुरुष मैत्रीको जो सामान्यतः अनैतिक दृष्टिसे देखा जाताहै, तब अबतक चले आते परम्परागत पैमानेसे हटकर नये दृष्टिकोण से देखा व पहचाना जा सकताहै।

इस संदर्भमें दो प्रश्न यहां विचारणीय हैं :—

१. नयी मान्यताएं क्या इतनी क्रान्तिकारी होनी चाहियें, कि वे समाजको तोड़कर ही रखदें ? क्योंकि स्त्री-पुरुष मैत्रीका यह नया दृष्टिकोण अपनाने पर यह मैत्री किसीसे भी किसी स्तर तक जा सकती है, जैसाकि स्वयं विनय श्रीवास्तवका प्रवीणाके साथ वाले सम्बन्धोंका परिणाम हुआ । विनय श्रीबास्तवने इसे स्वयं 'दुर्घटना' संज्ञा दीहै (पु. २३५) ।

बावजूद इसके प्रवीणाके जन्मदिनके अवसरपर दूसरी बार वही दुर्घटना पुनः घटित हुई । प्रश्न यह है, कि प्रथम बार पत्नीको यदि इसकी जानकारी न मिलती, तो क्या यह सुघटना होती ? तब विनय श्रीबास्तवको निजी तौरपर मानसिक शान्ति भले ही मिल जाती, पर इस प्रकारके सम्बन्धोंको इस प्रकार जीनेसे समाजमें अराजकता फैलनेकी सम्भावना तो है ही । चूंकि इस प्रकारकी 'दुर्घटनाएं' समाजमे आज प्राय: घटित हो रहीहै, इसलिए अराजकता किन्हीं अंशोंमें समाजमें पूर्णरूपेण विद्यमान है । समाजके परम्परागत पैमाने (सामाजिक भय, विवाहको सामाजिक मान्यता, रखैलको नहीं इत्यादि) ही इस स्थिति को खुलकर खेलनेसे किसी हदतक रोक भी रहेहैं, इसलिए परम्परागत मान्यताओंको एकदम नकारके नहीं चला जा सकता ।

उपन्यासके द्वारा लेखकने विवाह संस्थाकी प्रासंगिकतापर प्रश्नचिह्न अवश्य लगायाहै, किन्तु विनय श्रीवास्तवके माध्यमसे (प्रेम, सैक्स, विवाह) के कई क्रमोंको फैलाकर भी अन्तत: वह किसी निष्कर्षपर नहीं पहुंच सकाहै । यह इस बातका प्रमाण है, कि वैवाहिक जीवनको सुखी बनानेके लिए विनय श्रीवास्तव द्वारा समर्थित स्त्री-पुरुषके मध्य मैत्रीकी यह नूतन प्रणाली कोई गुल जरूर खिला सकतीहै कोई नया रंग नहीं ला सकती । पुस्तकमें इस प्रकारके यत्र-तत्र कई गुल खिले दिखाये गयेहैं ।

दफ्तरोंमें साथ-साथ काम करनेवाले स्त्री-पुरुष एक-दूसरेसे लड़ाई या अबोला किये बैठे रहें, यह स्थिति भी हास्यास्पद ही होगी, किन्तु साधारण परिचयके बाद मैत्री जब चरमपर पहुंच जातीहै, या यह मैत्री जब तीसरे यानी अपनेसे सम्बन्धित किसी प्राणीके लिए कांटा बन जाये—उस समय यह स्थिति अवांछनीय ही कही जायेगी ।

दूसरा प्रश्न यह है, कि क्या आदिम युगसे चली आती इन मानवीय भावनाओंका उन्मूलन कियाजा सकताहै ? जिस प्रकार प्रेम, करुणा, हर्ष, विषाद, हास्य, निर्वेद इत्यादि भाव स्वाभाविक हैं, ईर्ष्या, द्वेष भाव भी इसी प्रकार स्वाभाविक हैं और किन्हीं विशिष्ट स्थितियोंमें वे भाव भी उभरकर आ सकते हैं, और जिस प्रकार उपर्युक्त पूर्व भावोंकी अतिको श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार ईर्ष्या-द्वेषकी अति भी हानिकारक ही कहीं जायेगी । पति की महिला मित्रोंके साथ एक सीमा तक सम्पर्क तो पत्नीके लिए सहनीय होना आवश्यक है, पर जब स्थितिका अतिक्रमण हो जाये तो पत्नीका उत्तेजित होना भी स्वाभाविक है ।

पुस्तकके २३२ पृष्ठपर पत्नीके लिए जो आचार संहिता प्रस्तुत की गयीहै, उसके समकक्ष कोई पति-प्रतिदर्श उपस्थित नहीं किया गयाहै—यानी जिस पतिने अपनी पत्नीकी उस प्रकारकी उच्छृंखलताको हंस-खेलकर स्वीकारकर लिया हो अर्थात् जो पति उस प्रकारकी छूट पत्नीको भी देनेके पक्षमें हो । कुसुमके पतिको अवश्य उदारवादी दृष्टिकोणका पुरुष चित्रित किया गयाहै, किन्तु यह कहीं नहीं दिखाया गयाहै, कि कुसुमने पतिको अपने जीवनका अन्तिम रहस्यभी बता दियाहो । कुछ सीमा तक उसका उदार होना (यानी पत्नीके निजी धनको उसके पूर्व परिचित मित्रको उधार दिये जानेकी अनुमति दे देना) उसको एक भले इन्सानकी कोटिमें तो रखताहै, किन्तु पत्नीको स्वच्छन्दतापूर्वक मनचाहे ढंगसे खुलकर खेलनेकी अनुमति देकर सन्तुष्ट और निर्द्वन्द्व रहनेवाले व्यक्तिकी श्रेणीमें नहीं । वैदेही का पति, नरेश तो खैर नरके रूपमें नाहर यानी नारी के प्रति उसका व्यवहार एक पराकाष्ठा ही है, पर ऐसे लोग भी अपवाद नहीं है ।

हां, आज समाजमें ऐसे परिवार भी मिल जायेंगे, जहां पति-पत्नी दोनों अपने-अपने रास्तोंपर जा रहे हैं यानी दोनोंकी जानकारीमें दोनोंके ही विपरीत लिंगी मित्र है, दोनोंने एक-दूसरेको भरपूर छूट दी हुई है, घर उनका नौकर-नौकरानियोंके कन्धेपर चल रहा है, पर ऐसे घरोंमें बच्चोंकी जो स्थिति होतीहै, वे कितने उपेक्षित और खुदको अकेला और हीन अनुभव करते हुए वे किस सीमा तक चले जातेहै, यह

भी किसीसे छिपा नहीं है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को जहां मनोरंजक ढंगसे प्रस्तुत कर सकाहै, वहां इसपर एकपक्षीय होनेका आरोप भी लगायाजा सकताहै ।

जहांतक उपन्यासके विस्तारका प्रश्न है कई स्थलोंपर घटनाओंने अनावश्यक लम्बाई पकड़ ली है ।

एक बड़े सुधी लेखकका कहनाहै, कि लेखन ऑब्जेक्टिव ढंगसे किया जाना चाहिये, यानी जिस प्रकार एक चित्रकार दूर बैठकर किसी वस्तुको चित्रित करताहै—यह गुण प्रस्तुत पुस्तकके लेखककी कलममें भी है, फिरभी अनेक स्थलोंपर घटनाओंके साथ लेखकका इन्वॉल्वमेंट इतना अधिक हो गयाहै, कि पुस्तक एक बायोग्राफी-सी प्रतीत होने लगतीहै । यों लेखकमें भावोंकी मनोवैज्ञानिक पकड़ भी भरपूर है और साहित्यिक ह्यूमर भी जो पाठकको ऊबने नहीं देता । (दे. पृ. ६४) ।

उपन्यासमें उकेरे गये चरित्र सुलझे हुए और अपने-अपने स्थानपर सटीक हैं, यानी उनको 'समझा' जा सकताहै, किन्तु सबसे सुलझा, सरल, विचारशील, भावुक, व्यवहारकुशल और साहसी तथा स्वाभिमानी, आत्मविश्वासी व्यक्तित्व ग्रन्थके नायकका है, जो पाठक को आकर्षित करताहै । वैदेही अपनी सरल-स्नेहिल और संयत प्रकृतिके कारण और कुसुम अपनी उदारता और संवेदनशील निर्भीक व्यक्तित्वके कारण अपने-अपने स्थानपर आकृष्ट करतीहैं—कुल मिलाकर उपन्यास अपनी पठनीयता, रोचकता, बेबाकी तथा उपादेयताके कारण वर्षके उल्लेखनीय उपन्यासोंमें परिगणित कियाजा सकताहै । □

दूसरा आंचल[1]

लेखक : डॉ. सूर्यदीन यादव

समीक्षक : डॉ. दयाशंकर

डॉ. सूर्यदीन यादव गुजरातके उभरते हुए हिन्दी युवा कथाकार हैं । 'दूसरा सफर', 'मां का आंचल' आदि उनके उपन्यास पहलेही प्रकाशित होचुकेहैं ।

'दूसरा आंचल' उनकी कथायात्राका अगला कदम है । यह उपन्यास मूलतः अहमदाबाद महानगरके प्रेसों और कारखानोंमें काम करनेवाले पूर्वी उत्तर प्रदेशके मजदूरोंके जीवनकी बुनियादी समस्याओंपर आधारित है । वे रोजी-रोटीकी तलाशमें अपना घर-परिवार, गाव और प्रदेश छोड़कर अहिन्दीभाषी दूसरे आंचल (गुजरातके औद्योगिक महानगर अहमदाबाद) से आ जुड़े हैं । इस प्रक्रियामें उनका कुछ छूट गयाहै, लेकिन उनमें कुछ नयाभी जुड़ाहै । वे दोहरी जिन्दगी जीनेके लिए विवश हैं । वे पूरेके पूरे न तो अपने घर-गावके रह गयेहैं और न महानगरके । वे त्रिशंकु जैसी जीवनकी यातना भोग रहेहैं । प्रधानतः परमानन्द जैसे अँगूठा छाप लोग मजदूरी करतेहैं और कलम पकड़नेवाले चन्दन इन्स्पेक्टर, प्रो. दवे जैसे लोग नौकरी । दोनों के रहन-सहनमें अन्तर बहुत कम है । मजदूरोंका जीवनस्तर बहुत निम्न है । उनके खाने-पीने और रहने का अच्छा ठिकाना नहीं है । वे चालीकी खोलियोंमें रहतेहैं । एक ही खोलीसे उनकी असली स्थितिका अनुमान कियाजा सकताहै । "खोली क्या है—ऐंड़-बेंड़ बल्ली और कड़ीपर तर-ऊपर बिछी हुई खपड़ा नरिया की छाजन । ईंटकी नंगी दीवारें । एक बड़ा-सा कमरा । पीछे छोटी रसोई और आगे दो खटियाका ओसारा । ओसारेमें भी बरसाती या तिरपालकी परछत्ती । ओसारे और परछत्तीके बीच चार चारपाइयां । चालीमें सभी खोलियोंकी यही दशा है (दूसरा आंचल, पृष्ठ २३) । यह तो उनका बाहरी रंग-ढंग है, भीतरी स्वरूप है : "सबके एक-एक बाक्स और खूंटी या अरगनपर टंगे कुछ ओढ़ने-बिछाने या पहननेके कपड़े । दो चार बर्तन, तवा, पतीली, लोटा, थारी, कटोरी, करछुल, चिमटा, बाल्टीके सिवा कोई कीमती सामान नहीं । कुछ डिब्बे टीनके । सामान जोभी है सब धुंएसे काला हो गयाहै । लोग कहतेहैं कि शहरमें पंखा लगा होताहै, लाईट जगमगातीहै और यहां तो काली घटा घिरी रहतीहै ।" (दूसरा आंचल, पृष्ठ ७२) । ये खोलियां महानगरका अनिवार्य हिस्सा हैं, लेकिन उनकी बदहाली साधारण गांव जैसी है । इसी लिए जब अमित पहली बार अहमदाबादकी इन चालियोंमें पहुंचा तो उसे लगा कि "यह शहर नहीं

---

[1] **प्रका. : विद्यार्थी प्रकाशन, के-७१, कृष्णनगर, दिल्ली-११००५१ । पृष्ठ : १२४; क्रा. ९१; मूल्य : ४०.०० रु. ।**

है। प्रदेश नहीं, चाली नहीं। अपना गांव, अपना आंचल है। वह गँवई आंचल जहाँ गोरू चराया करता था।" (दूसरा आँचल, पृष्ठ १९)। फुटपाथी झोंपड़ियोंकी दशा इनसे भी बदतर है।

यादवजीकी एक विशेषता रेखांकित करने लायक है। वे पूर्वी उत्तर-प्रदेशके गाँवों और अहमदाबादकी खोलियोंकी समस्याओंको एक दूसरेके समानान्तर या आमने-सामने रखकर देखतेहैं। गांव हो या महानगर की चालियां, दोनों स्थानोंकी समस्याएं अपने-अपने ढंग की हैं, लेकिन उनकी स्थिति एक जैसी है। आज उनका ध्रुवीकरण काफी स्पष्ट है। चाहे गांवोंके काम करनेवाले श्रमिक हों या महानगरोंकी मिलोंमें काम करनेवाले मजदूर, उन्हें हमेशा दबाया जाताहै। इसी कारण दबाये जानेवाले लोगोंकी स्थिति एक जैसी है। इसी प्रकार उत्पादन शक्तिके स्रोत चाहे गांवके जमींदारके हाथमें हों, चाहे महानगरके मिल मालिकके हाथ में, वे एक जैसे मेहनतकश लोगोंका शोषण करतेहैं। उनका व्यवस्थागत चरित्र भले भिन्न हो, लेकिन क्रिया-कलाप एक जैसा है। शासन तंत्रसे समझौता करनेमें ये ही अधिक कामयाब होतेहैं। गांवका मेहनतकश तबका जब कामकी टोहमें महानगरोंमें आताहै तब वह मजदूर बन जाताहै, लेकिन उनकी स्थितिमें बुनियाद तौरपर कोई खास बदलाव नही होता।

यादवजीने शहरी मजदूरोंकी संघर्षयात्रा, काहिली और नारकीय जिन्दगीका आलोचनात्मक दस्तावेज प्रस्तुत करके एक रचनाकारका दायित्व निबाहाहै। उनकी नस कमजोर दूसरी जगह है। वे मजदूरोंकी उन मर्मान्तिक स्थितियोंके भीतर नहीं झांक पाये जिनके कारण वे खोलियोंमे बदतर जिन्दगी बितानेके लिए मजबूर होतेहैं। वे समस्याओंके ऊपर ही ऊपर चक्कर काटतेहैं। अमितके कथनसे स्पष्ट है कि वह तात्कालिक प्रतिक्रियामें काफी उलटा सोचताहै, पर वह अपने चाचा, दादाकी उन परिस्थितियोंकी गहराईसे छानबीन नहीं करता जिनके कारण वे मिलोंमें काम करने को ही विवश हो गयेहैं। वास्तवमें महानगरोंमें आज उनकी इस दुर्दशाकी उत्तरदायी है आर्थिक व्यवस्था। इस व्यवस्थाका यह व्यापक षडयंत्र होताहै कि मजदूर वर्ग केवल खाने-कमानेमें उलझा रहे। मजदूरोंकी हड़तालका वर्णन यादवजीने बड़े उथले ढंगसे कियाहै। जब मेहनतकश जनताकी समस्याएं एक जैसी हैं, तो वह चाहे गांवोंकी हो या महानगरकी, क्या अन्तर आताहै। समस्याकी दृष्टिसे दूसरा आंचल (महानगर) पहले (गांव) से बहुत भिन्न नहीं है। दूसरा आंचल पहलेका पूंजीवादी रूपान्तरण है।

यादवजीने एक और समानान्तर चित्र प्रस्तुत कियाहै। अमित सादरा (कस्बा) में मोहन धोबीके घर निमंत्रण खाने जाताहै तो देखताहै कि "यहां कोई भेद-भाव नहीं। सब बूट पहनकर परोस रहेहैं। बिना कपड़ा उतारे। सब जातियां साथ खाने बैठीहैं। अपने वहां एक जाति दूसरी जातिके साथ बैठकर खा ही नहीं सकती। लगता ही नहीं कि जाति, धर्म या कोई सम्प्रदाय होताहै। एकही आचार-विचारवाले एक परिवारके सब हैं। काश इसी एकताके दर्शन पूरे विश्व में होते तो विश्वका आंचल एक लगता। फिर दो मां नहीं होती। देश-परदेश नहीं होता। गाँव शहर नहीं होता। सारी जमीन सारा आंचल एक लगता।" (पृष्ठ : १२३-१२४)। यहाँ भावुकता सदिच्छा बन बैठी हैं। क्या खान-पानका भेद खतम हो जानेसे जाति-पांतिकी समस्या हल हो जायेगी? जाति व्यवस्थाका तंत्र उससे कहीं अधिक सूक्ष्म और जटिल है। शहरों और कस्बोंमें खान-पान और जाति-पांतिकी ढिलाईका प्रधान कारण औद्योगिक और अर्थ-व्यवस्था का दबाव है जिसमें लोगोंका ध्रुवीकरण अर्थके आधार पर होताहै और सारे सामाजिक भेदभाव उसके भीतर अपना मुंह छिपा लेतेहैं। सारी प्रगतिशीलताके बावजूद दवेजी अपने लड़के पंकूका विवाह क्रिश्चियन लड़की लीकीसे करनेके लिए राजी नहीं होते, उसे घर से निकाल देतेहैं। इतना ही नहीं, वे अपनी बेटीकी शादी पारंपरिक ढंगसे करतेहैं।

अमित इस उपन्यासका नायक है। कुंठाग्रस्त होते हुए भी उसका व्यक्तित्व बड़ा ही जीवट एवं संघर्षशील है। यद्यपि उसका व्यक्तित्व अनेक छोरों—गांव-शहर, श्रम-शिक्षा, प्रेमिका-पत्नी, चालीके मजदूर, खुद समाजव्यवस्था आदि अनेक छोरोंपर खिंचा हुआ है, फिरभी वह अपने और समाज दोनोंके लिए कुछ करनेका साहस रखताहै।

उपन्यास अहमदाबादमें काम करनेवाले हिन्दी भाषी मजदूरोंके अंचलपर आधारित है। इसमें गुजरात और उत्तरप्रदेशके रीति-रिवाजों, उत्सवों-त्योहारों (गरबा-विजयदशमी) सामाजिक संस्कारोंका मिश्रण

है। समस्याओंको रचनाके भीतरसे उठानेके स्थानपर थोपनेका प्रयत्न है। अनेक सवाल-जवाब प्रेम और सेक्सकी अनावश्यक चर्चा उदाहरण हैं। रचनात्मक कसावके अभावको ध्यानमें रखते हुए इसे कथायात्रा का एक पड़ाव स्वीकार किया जा सकताहै, उसका विराम नहीं। ⊡

कहानी

माईका शोकगीत[1]

कहानीकार : दूधनाथ सिंह

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

दूधनाथ सिंह नयी कहानी और आजकी कहानी के मध्यवर्ती कहानीकार हैं। 'रीछ' कहानीने अपनी सूक्ष्म सांकेतिकता और आद्यन्त व्याप्त रहस्यमयताके कारण हिन्दीके कथा जगत्में एक हलचल पैदा कर दी थी। इसी प्रकार 'सुखान्त' कहानीमें पारिवारिक सम्बन्धोंकी सम्बन्धहीनता—उनकी संवेदनशून्य निस्सारताको रेखांकित किया गयाथा। उनकी 'रक्तपात' 'मम्मी तुम उदास क्यों हो' आदि कहानियोंमें निराशा, कुण्ठा, एकाकीपन, अजनबीपन, शून्यता सन्त्रास आदि नकारात्मक प्रवृत्तियोंका प्राधान्य था। 'भय और भयावह' शब्दोंका उनमें बार-बार प्रयोग किया गयाथा। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेयने दूधनाथसिंह को 'आत्मपरक प्रवृत्तियोंका कहानीकार' कहा तो डॉ. परमानन्द श्रीवास्तवको इनकी कहानियां 'एक भयसे दूसरे भयकी ओर' अग्रसर होती हुई दिखलायी पड़ीं। दूधनाथके नवीनतम कहानी-संग्रह' 'माईका शोकगीत' की पांच कहानियाँ उनकी कहानियोंके सम्बन्धमें इन जमी-जमाई धारणाओंका प्रतिवाद करती हुई प्रतीत होतीहैं। ये एक ऐसे आत्मलिप्त कहानीकारकी रचनाएं नहीं हैं, जो "वैयक्तिकता और पीड़ाके रोमानी सम्मिश्रण" से एक ऐसा सम्मोहक वातावरण निर्मित करे जो युग-यथार्थकी ओरसे आंखें मूंदकर हमें 'मानवीय सम्बन्धोंकी अमानवीयता' का एक तल्ख अहसास देकर ही समाप्त हो जाये। इस कहानी-संग्रहके फ्लैपपर मुद्रित वक्तव्यमें यह दावा किया गयाहै कि "प्रगतिशील परम्परा और लोकोन्मुखी भारतीय रचना-दृष्टि का सहज विस्तार करनेवाली ये कहानियां "यथार्थनिष्ठ सामाजिक सन्दर्भोंमें जीवित मनुष्यसे गहरे तक जुड़ी हुईहैं।" 'लौटना' कहानीको अपवाद रूप स्वीकार कर लें तो भी संग्रहकी शेष चार कहानियां न्यूनाधिक रूपमें इस कसौटीपर कसे जानेपर खरी उतरतीहैं।

'हुंडार' और 'माईका शोकगीत' कहानियोंमें निम्नवर्गीय नारीको रूमानी रूपमें नहीं, पुरुष-प्रधान वर्गीय समाजके द्वारा शोषित और उत्पीड़ित रूपमें चित्रित किया गयाहै। 'हुंडार' की नायिका एक धोबिन है, जो केवल पति-परित्यक्ताही नहीं है, उसके पांचों भाइयोंने भी जिन्दगीके चौराहेपर वक्तकी मार खाने के लिए अकेला छोड़ दियाहै। एक रायसाहब, जिनके पिता अंग्रेजोंके पिट्ठू थे और जो स्वयं यूनिवर्सिटीमें प्रोफेसर होनेके साथही अपनेको डाक्टर लोहियाका पट्ट शिष्य भी घोषित करतेहैं, उस 'रसोईदारिन-धोबिन-मजदूरिन बनाकर अपने घरपर ले आतेहैं और अपनी पत्नीके पीहर चले जानेपर उसे अपनी हविशका शिकारभी बनाना चाहतेहैं। जब वह उनकी पत्नीके लौटनेपर उससे शिकायत करनेकी बात कहतीहै तो फिर उसपर एक हजार रुपयोंकी चोरीका इल्जाम लगा कर पुलिसके द्वारा पकड़ाकर थानेमें हाजिर करा देते

---

[1] प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ९६; क्रा. ९२; मूल्य : ४०.०० रु.।

हैं। पुलिसके द्वारा जूतों और डंडोंकी मारधाड़से परेशान होकर भी वह रायसाहबके मिथ्या आरोपको स्वीकार नहीं करती; परन्तु उन्हें एक हजार रुपए लौटानेकी बात मंजूर कर लेतीहै। "हों कह दियो हूं दरोगाजीसे कि लिया हो न लिया हों, हों चुका देबो। और अगर रण्डी हूं तो रण्डी बनके चुकाऊंगी और मजदूरनी हूं तो मजदूरनी बनकर।" धोबिनका यह बयान केवल रायबहादुर और थानेदारके गालोंपर ही थप्पड़ बनकर नहीं पड़ती, पूरी व्यवस्थाके पाखण्ड और खोखलेपनको भी उघाड़ कर रख देतीहै। यह कहानी व्यंग्यकी तीखी धारपर चढ़ जातीहै जब इस मारधाड़के दौरान लोहियालिस्ट प्रोफेसर अपनी घड़ी देखकर कहतेहैं "मुझे देर हो रहीहै। गांधी-भवन जाना है·· वहां व्याख्यान है मेरा।" इस कहानीकी नायिका भले ही सीता और सावित्री जैसी सती साध्वी न हो; परन्तु वह गांधी और लोहियाके इस तथाकथित पट्ट शिष्यसे अधिक सच्ची और अधिक खरी है। उसकी दुर्बलतामें भी बल है जबकि वह रायसाहब अपनी दुग्ध-धवल खादीके परिधानमें भी कीचड़से सना हुआ दिखलायी पड़ताहै। उसका तो मूल मन्त्र ही यही है "जुल्म करो, किसीको सताओ तो पछताओ मत।"

"माईका शोकगीत" में भारतके स्वतंत्रता आंदोलनकी पृष्ठभूमि है। इस कहानीकी नैरेटर गंगा माई भी गांधीकी आंधीमें बहकर देशके लिए जोगिन बन जातीहै; नमक सत्याग्रहमें नमक कानून तोड़तीहै, पिकेटिंग करतीहै, जेल जातीहै और एक बार चण्डीका रूप धारणकर थानेमें सिपाहीका मुंह झोंस डालती है। वह कहतीहै "सब लोग उठो, भारत माताको छुड़ानाहै, वे सात समुन्दर पार एक काल कोठरीमें बन्द है।" परन्तु, गंगा माईकी आंखें खुलतीहैं जब अपने पड़ोसमें ही एक नरपिशाच मोसाफिर सिंहको अपनी पत्नी कनियांपर नारकीय अत्याचार करते हुए देखतीहै। उसे लगताहै "यहां तो घर-घरमें भारतमाताएं हैं। घर-घरमें सफेद राक्षस रावण हैं। खाली 'गोरी पल्टन मुर्दाबाद' कहनेसे क्या होगा, बापूजी।" "फिर तो उसे यह समझनेमें देर नहीं लगती "तुम और तुम्हारे गांधी महात्मा भारत माताको सौ बार सात समुन्दर पारसे छुड़ा लायें — (तो भी) ये गुलाम की गुलाम बनी रहेंगी।" नारीको मोसाफिर सिंह जैसे नारकीय नरपिशाचोंसे मुक्त कराना देशको अंग्रेजोंके चंगुलसे छुड़वानेसे भी अधिक मुश्किल है। आखिर सोनचिरैयाके नेतृत्वमें महिलाओंका संगठन होताहै, वे सुलह-समझौतेके द्वारा मोसाफिर सिंहको अपनी पत्नीपर अत्याचार करनेसे विरत करना चाहती है, पर उसके कानोंपर जूं भी नहीं रेंगती। तो फिर अब नारी शक्ति भी अपना 'आंचलमें दूध और आंखों में पानी' वाले शुद्ध सात्विक स्वरूपको छोड़कर रणचण्डीका रूप धारण कर लेतीहै। उनका विरोध प्रतिरोधसे आगे बढ़कर प्रतिशोधमें परिणत हो जाताहै। एकाएक पंचवाईकी औरतें दौड़तीहैं और लाल चींटियों के झोंककी तरह मोसाफिर सिंह को धर दबोचतीहैं। उसकी कमर और पंखुरेमें रस्सा बांध दिया जाता है। रस्सेको एक छोरसे धरनमें फेंक कर दूसरी ओरसे उसका छोर पकड़ कर पंचगंवाकी औरतें ऐसे लटक जातीहैं जैसे झूला झूल रहीहों। मोसाफिर सिंह ऐसे टंग जातेहैं जैसे इनारेमें से कोई आदमी गड़ारीके सहारे निकाला जा रहाहो। कनियाँ अपने इस पशु तुल्य पतिदेवको "मारतीहै और रोती जाती है। रोती जातीहै और मारती जातीहै।" अब हिंसा चाहे जितनीही न्यायोचित और नीतिनिष्ठ क्यों न हो, अहिंसावादियोंके गले शायदही उतरे। कल्पना की गयी है कि गांधीजीने गंगा माईको इस हिंसाके लिए प्रायश्चित करनेका उपदेश दिया; परन्तु प्रायश्चित करे कौन? गंगा माई तो कहतीहै "बापू, हम तो चुटहल हो गयेहैं, प्रेत जोनिमें हैं। हमारे तो आतमा ही नहीं है। हम पराच्छित नहीं करेंगे।" यदि नारीकी अस्मिता जागृत होगयी और उसे सामूहिकताका सशक्त आधार प्राप्त होगया तो प्रायश्चित मोसाफिर सिंह जैसे नरपशुओंको ही करना होगा। नारी अब केवल श्रद्धा ही नहीं रह गयीहै जो पुरुषकी मनचाही शर्तोंपर संधि पत्र लिखनेके लिए तैयार हो जाये।

दूधनाथ सिंहने आलोच्य संग्रहकी कहानियोंमें युगीन विसंगतियों और विडम्बनाओंका चित्रण पूरी प्रखरता और प्रामाणिकताके साथ कियाहै। राजनीति आजके जीवन-चक्रकी धुरी बन गयीहै इसलिए स्वभावत: अधिक प्रमुखता राजनीतिको ही प्राप्त हो गयीहै। 'हुंडार' 'माईका शोकगीत' और 'गुप्तदान' में इस व्यवस्थाके मूलमें व्याप्त विषमता और विषाक्ततापर पुन: पुन: प्रहार किये गयेहैं। आजका समाज दलालों और बिचौलियोंका समाज बनताजा रहाहै। 'हुंडार'

के रायसाहब और 'गुप्तदान' के पाण्डे जैसे लोग समाज में सब कुछको बेच डालनेपर तुले हुएहैं बशर्ते उन्हें मनचाही दलाली मिलती रहे। सिद्धान्तहीनता ही उनका सिद्धान्त है और राजनीतिक दल-बदल करना उनके लिए तकिएका गिलाफ बदलनेसे अधिक महत्त्व नहीं रखता। 'गुप्तदान' के पाण्डेजी और मीताजी "दोनों तबसे राजनीतिमें कहां-कहां नहीं भटके। पाण्डेजीने मार्क्सवादकी प्याज एक झटकेमें ही उगल दी। एस. बाई. एस. में गये, कांग्रेसमें घुसे, भारतीय क्रान्ति-दलका झण्डा बुलन्द किया, भू-दानमें आगा-पीछा किया, फिर कांग्रेसमें लौटे और फिर लोक-दलके मुक्त चरागाहमें। अभी उनकी पृथ्वी-परिक्रमा पूरी नहीं हुई।" जब ये राजनीतिक दलाल अपनेको 'सतभतारी' और 'सर्वव्यापी' मानतेहैं तो फिर किसी एक नेता, एक सिद्धान्त या एक दलके खूंटेसे बंधे रहनेका उनके लिए प्रश्न ही कहां उठताहै। जब पुजारियोंका यह हाल है तो मंत्रालयके मंदिरमें प्रतिष्ठित देवताओंको तो उनसे दो हाथ और आगे ही होना चाहिये। मंत्रीजी स्पष्ट कहतेहैं "जनता तो हमारी खेती हैं।" इस खुले खेतमें छुटे सांडकी तरह चरनेके उनके अधिकारको चुनौती देनेवाला कौन हो सकताहै? केवल राजनीति ही नहीं संस्कृति, कला और शिक्षाके क्षेत्रमें भी ये विकृतियाँ पाँव पसार कर बैठी हुईहैं। लोहियालिस्ट प्रोफेसर कहताहै "मेरा एक सिद्धान्त है। अगर गुप्तासे बदला लेनाहै, तो उसके लड़केको फेल नहीं करूंगा··· मैं उसे थर्ड क्लास दूंगा, जिससे जिन्दगी भर झींकते रहें बच्चू।" जार्ज मेकवान दलित कलाके जनक माने जाते हैं। बम्बईसे दो पत्रकार उनका इंटरव्यू लेनेके लिए उसके घर जातेहैं तो मेकवानके नामसे जिस चित्रकारसे उनकी भेंट होतीहै, उसे पत्रकारोंके जनवादी प्रश्नोंका उत्तर देनेमें कोई रुचि नहीं है। वह दो टूक बात कहता है 'जार्जकी कलाका अर्थ क्या है! पेट है पेट। सिरिफ पेट। जार्ज पब्लिसिटी नहीं चाहता···जार्ज पैसा चाहताहै— पैसा।" बाद में पता चलताहै कि जिस मैकवानसे वे मिलने आयेथे वह असली मैकवान कोई और था। परन्तु, यथार्थका नंगापन औरभी उभरकर सामने आताहै, जब यह नकली मैकवान दलित चित्रकलाके उस असली मसीहाके बारेमें बताता है कि "वह तो अमरीका चला गया। वहां एक और शादी बनाया। वहाँ खब मौजमें है।" देखतेही देखते दलित जनवादका बैलून फट जाताहै और उसमें से सिद्धान्तवादिताकी सारी हवा निकल जातीहै। स्वप्न और संघर्षका इस टकराहटमें दूधनाथ सिंहने सपनोंको बेरहमीसे टूट जाने दियाहै और उनके लिए एक भी आंसू नहीं बहायाहै। फिरभी, यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता कि एक बेहतर दुनियां और बेहतर जिन्दगी के बड़े सपनेको वह हर हालतमें बचा लेना चाहताहै।

'माईका शोकगीत' की कहानियां जीवनके कटु यथार्थसे सीधे साक्षात्कारकी कहानियां हैं। इनमें भावोच्छ्वासकी धुंध नहीं है। कहानीकार निष्करुण व्यंग्यके माध्यमसे व्यक्तियों और स्थितियोंकी शल्य-क्रिया करनेमें विश्वास रखताहै। 'रीछ' और 'सुखान्त' की भाषाका रूमानीपन अब बहुत पीछे छूट गयाहै। अब उसकी कलम कालके अंधेरेको चीरनेके लिए एक तीखे नश्तरकी भाँति चलने लगीहै। उसका व्यवस्था-विरोध करुणाकी फुहारें बरसानेसे अधिक आक्रोशकी चिनगारियां छिटकानेमें विश्वास करने लगाहै। डॉ. नरेन्द्रमोहन इन कहानियोंको पढ़नेके बाद दूधनाथ सिंहपर 'आत्म संलग्नता और आत्म लिप्तता' का आरोप नहीं करेंगे क्योंकि इनमें युगीन संकट और संत्रासको सीधे झेलनेसे कहीं मुंह नहीं मोड़ा गयाहै। अब इनके केन्द्रमें व्यक्तिका अन्तर्मन नहीं, समाजका पूरा वैविध्य और विस्तार है। एक अन्य दृष्टिसे भी ये कहानियाँ दूधनाथ सिंहके दिशान्तरणकी सूचना देती हैं। उनपर यह आरोपभी लगाया जाता रहाहै कि वे 'सीधी चीजको सीधे देखनेके स्थानपर एक जाल बुनकर उसके चारों ओर लपेटने' का प्रयास करतेहैं। उनका शिल्प चक्करदार है और वे राजेन्द्र यादवकी तरह लटके-झटके दिखलानेसे भी बाज नहीं आते। 'माईका शोकगीत' की कहानियोंमें कहीं-कहीं चुस्त जुमलेबाजी के होते हुएभी शिल्प-प्रयोगमें आश्चर्यजनक रूपसे सहजता और अनायासताका समावेश हुआहै। अब कहानीकारने युगीन संकट और संत्राससे मानवमुक्ति की छटपटाहटको व्यक्त करनेकी प्रतिबद्धताके साथ जो "दूसरी रचनात्मक यात्रा शुरु कीहै", वह ऐसेही सहज शिल्प और सधी बधी भाषाकी मांग करतीहै। इससे युग-यथार्थ धुंधलानेके बजाय अपने असली रंगमें और भी उभरकर और निखरकर सामने आयेगा। दूधनाथ सिंह आजकल बहुत कम लिखने लगेहैं, परन्तु 'माईका शोकगीत' के पाठक उनके अगले कहानी-संग्रहकी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करेंगे। □

ओ सोनकिसरी[1]

कहानीकार : चन्द्रकान्ता

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

चन्द्रकान्ता हिन्दीकी सुपरिचित कथा-लेखिका हैं। उनकी कहानियों और उनके उपन्यासोंने उनकी विशिष्ट पहचान बनायीहै। उनके कथा-साहित्यकी विशिष्टता उनके अनुभवकी विविधता, आंचलिकताके बावजूद सार्वभौमिकता, आत्मकथात्मकताके बावजूद सार्वजनीनता और स्वच्छ प्रभावशाली अभिव्यक्तिमें निहित है। उनके कथा-साहित्यको इन विशिष्टताओं को हम उनके नये कहानी-संग्रह 'ओ सोनकिसरी' की कहानियोंमें पुष्ट होते हुए पातेहैं।

'ओ सोनकिसरी'में उनकी ग्यारह कहानियां संगृहीत हैं। उनके कथा-साहित्यकी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इस संग्रहकी प्रत्येक कहानीकी अलग पहचान बनीहै। अत: हमें प्रत्येक कहानीपर अलगसे विचार करना होगा।

पहली कहानी 'पत्थरोंके राग' में विवाहित बाल-बच्चेदार व्यापारी सतीश और अपने पिताके परिवार के दायित्वको ओढ़ लेनेके कारण ३५ वर्षकी आयु तक क्वांरी रहनेवाली सोनलके रागात्मक मानसिक-शारीरिक खण्डित सम्बन्धका चित्रण है। दोनोंकी मुलाकात रेलगाडीमें होतीहै और यह मुलाकात पहले मानसिक निकटता, फिर शारीरिक मिलनमें बदलती और अन्तमें सतीशके प्रेमीकी अपेक्षा व्यापारी अधिक होनेके कारण खण्डित हो जातीहै। दोनों अपने-अपने ढंगसे अतृप्त है और उनमें एक सीमा तक संवेदनात्मक पथरीलापन, जड़ता आ गयीहै। दोनोंके पारस्परिक सम्पर्कसे यह जड़ता कुछ समयके लिए टूटतीहै, पत्थरों में राग उत्पन्न होताहै; पर शीघ्रही वे फिर पथरा जातेहैं। जैसे कोणार्क मन्दिरकी नायिकाकी खण्डित प्रतिभामें आदिम राग खुदा रह गयाहै, वैसेही, सोनलभी प्रतीक्षारत नायिकाकी खण्डित प्रस्तर-प्रतिमा बनकर रह गयीहै। इस कहानीमें लेखिकाने स्त्री-पुरुषकी मानसिकता और शारीरिक आवश्यकताका गहरी अन्तर्दृष्टिसे चित्रण कियाहै। सोनलकी अतृप्तिका उसने कैसा सटीक चित्रण कियाहै—"उन दिनों रातको जब थक-चुककर तकियेपर सिर टिका देती तो खिड़कीकी सीधमें नारियलके पेड़के पीछे पीला चांद काले बादलों के पीछे दुबका रहता और एक विशालकाय काला दैत्य, लम्बे नाखूनोंवाला, धीरे-धीरे बांहें फैलाये उसे लीलने आगे बढ़ने लगता। वह विचित्र-सी दमघोंट छटपटाहट महसूस करती। तब वह उठकर पसीना पोंछती, पानी पी लेती, करवटें बदलती और, बदहवासीमें बिस्तरको एक छोरसे दूसरे छोर तक टटोलने लगती। कहीं तो किसी तसल्ली देती बांहका स्पर्श मिले। बादमें मंगलाकी बेटी आनेपर सोनल उसे अपने पास सुलाने लगी। वहभी मांके भ्रममें सोनलकी छाती में मुंह गड़कर पड़ी रहती।" (पृष्ठ १५-१६)।

दूसरी कहानी 'सिद्धिका कटरा' पहली कहानीसे सर्वथा भिन्न है। निर्धन होते हुएभी साफ-सुथरे ढंगसे रहनेवाली, 'जब्बर औरत' सिद्धि अपने निखट्टू पति और दो सन्तानोंको सलीके साथ पाल-पोस रहीहै। उसे देवी-देवाताओंकी अपेक्षा अपनी कर्मठतामें अधिक आस्था है; लेकिन उसीके गांवका निपूता फेलू सिद्ध बाबाके कहनेपर उसके पुत्रकी बलि चढ़ा देताहै और सिद्धि पगला जातीहै। इस कहानीमें लेखिकाने धार्मिक अन्धविश्वास, राजनेताओं और पत्रकारोंपर चोट कीहै। लेखिकाका दृष्टिकोण कहानीके अन्तमें पूछे गये इन तीन प्रश्नोंसे स्पष्ट होताहै—सिद्धि कबतक पागलखाने में बैठी रहेगी? क्या अब भी रक्षणशील गांववालोंको शाम ढलनेतक बच्चे घर न लौटनेपर उनकी उम्मीद छोड़ देनी होगी? और उस रोज, यानी रज संक्रान्ति के दूसरे दिन, मन्दिरवाली पहाड़ीसे मेमनोंकी भीड़ उतर रहीथी या फणिधर नागोंकी ??? लेखिकाके ये प्रश्न पाठकको विक्षुब्ध करतेहैं, उसे सोचनेपर विवश करतेहैं और कहानीको कथ्य और शिल्प दोनोंकी दृष्टिसे नया आयाम प्रदान करतेहैं।

तीसरी कहानी 'आत्मबोध' पंजाबमें आतंकवाद और आम आदमीपर पड़नेवाले उसके प्रभावसे संबंधित है। देशके विभाजनके कारण विस्थापित दो हिन्दू-सिख परिवारोंमें गहरी घनिष्टता है। सिख परिवारकी लड़कीका हिन्दू परिवारके लड़केके साथ विवाह होना तय है। अचानक हिन्दू परिवारका एकमात्र लड़का

---

[1] प्रका. : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १६५; क्रा. ९१; मूल्य : ६५.०० रु.।

बटालामें आतंकवादियोंकी हिंसाका शिकार हो जाता है। इससे दोनों परिवारोंमें दरार पड़ती दिखायी देती है; पर यह दरार वास्तवमें पड़ेगी नहीं। चौथी कहानी 'खुदा बाकी रहे' में एक निजी कम्पनीके व्यापारिक जलपोत 'सी मरमेड' पर काम करनेवालोंकी व्यथा-कथा कही गयीहै। विभिन्न धर्मों, देशों, वर्गोंके व्यक्ति अपनी और अपनोंकी आर्थिक आकांक्षाओंको पूरा करने के लिए किस प्रकार शारीरिक-मानसिक यातनाएं झेलतेहैं, इसका मार्मिक चित्रण लेखिकाने अपनी इस कहानीमें कियाहै। 'तैंतीबाई' में लेखिकाने सिद्ध किया है कि ट्रकड्राइवर भी इन्सान हैं। उसके मनमें भी कोमल भावनाएं है। वहभी मानवीय सम्बन्धोंकी मर्यादा मानताहै और उसपर भी विश्वास कियाजा सकताहै।

इन कहानियोंके अतिरिक्त शेष कहानियोंकी प्रकृति एक जैसी है। ये कहानियां एक व्यक्तिको केन्द्रमें रखकर चलीहैं, इनमें उस केन्द्रीय व्यक्तिके चरित्रको उभारा गयाहै। अतः ये कहानियां व्यक्तिचित्र जैसी बन गयीहैं।

'सफरमें अकेले' ऐसे साहित्य-साधकका चित्र प्रस्तुत करतीहै जिसने साहित्यके लिए अपना सबकुछ होम दिया। बदलेमें उसे अपने परिवार और समाजकी उपेक्षाही मिली। उसे सफलता, स्वीकृति और पुरस्कार तब मिले, जब वह इस संसारसे कूच करनेवाला है। इस कहानीमें साहित्य-साधककी जीवनयात्राके अकेलेपनको रेखांकित किया गयाहै। 'मेरी मां कहा करती थी...' में ऐसी सासका एकालाप है जो अपने अतीत और वर्तमान, अपने पुत्रों, पुत्रियों, पुत्रवधुओं और बदले जमानेसे सन्तुष्ट-असन्तुष्ट, सुखी-दुखी दोनों है। इस कहानीमें से एक टिपिकल सासका चित्र उभरकर सामने आताहै। 'अलग-अलग इन्तजार' के केन्द्रमें ऐसा वैज्ञानिक है जिसने अपने जीवनमें अध्यापन और अनुसन्धानको सर्वाधिक महत्त्व दिया और लोकप्रियता एवं सफलता प्राप्त की; लेकिन आजके भारतमें वह अपनेको असहाय और असमर्थ अनुभव करताहै। वह और उसका शिष्य चीजोंके बदलने-सुधरनेका इन्तजार कर रहेहैं। 'अन्तिम हस्ताक्षर' के केन्द्रीय पात्र भैयाजी अपनी विधुरता, वृद्धावस्था और स्वभावके कारण बिल्कुल अकेले पड़ गयेहैं। वे किसीके साथ रह नहीं सकते। कोई उन्हें अपने पास रख नहीं सकता; क्योंकि वे अपने स्वभावके कारण दूसरोंके जीवन और कार्योंमें टांग अड़ाये बिना रह नहीं पाते। 'आंखोंके प्रेत' में ऐसी स्त्रीका चित्रण है जो बचपनसे लेकर बड़ी होने तक अपने ढंगसे जीनेके लिए प्रयत्नशील रहतीहै और सबसे कटकर अकेली पड़ जातीहै तथा व्यथित होती है। 'ओ सोनकिसरी' में ऐसी स्त्रीका चित्रण है जो स्वाभिमानी और जिद्दी है, जो दुरंगे आचरणकी विरोधी है। फलतः सब उससे दूर भागतेहैं और उसे दूर रखना चाहतेहैं। हमारा अनुमान है कि 'आंखोंके प्रेत' और 'ओ सोनकिसरी'की मूल स्त्री एक ही है। 'ओ सोनकिसरी' में एक लोककथाका प्रतीकात्मक उपयोग किया गयाहै।

'ओ सोनकिसरी' की कहानियोंको समग्रतः देखने पर लगताहै कि ये कहानियां परिपक्व शिल्पसे युक्त हैं। कोई भी कहानी अस्वाभाविक नहीं लगती और रोचकता प्रत्येक कहानीमें अन्त तक बनी रहतीहै। कहानी कहनेके लिए लेखिकाने विभिन्न शिल्प अपनायेहैं; किंतु उनमें लेखिकाकी दृष्टि चमत्कारपर न होकर कथ्यको स्वाभाविक ढंगसे प्रस्तुत करनेपर है। प्रायः हर कहानी में प्रतीकोंका उपयोग किया गयाहै। 'पत्थरोंके राग' में काला पहाड़, 'आंखोंके प्रेत' में भूखी चीलें, 'ओ सोनकिसरी' में सोनकिसरी आदि प्रतीक ही तो हैं। कहीं-कहीं तो पूरी कहानी ही प्रतीक बन गयीहै। 'खुदा बाकी रहे' ऐसी ही कहानी है। प्रतीकात्मकताके बावजूद 'ओ सोनकिसरी' में संगृहीत कहानियोंकी शैली आत्मीय और अनौपचारिक है।

चन्द्रकान्ताकी कहानियोंकी भाषाभी हमारा ध्यान आकर्षित करतीहै। भाषामें ऐसे अनेक शब्द और मुहावरे हैं जिन्हें आंचलिक कहाजा सकताहै। जैसे 'खानमाजि' (लाड़ली) या 'गुख' (छोटी मछली); 'जरा-सी ऊंच-नीच हुई कि खोपड़ीपर अखरोट फोड़दें।' (पृष्ठ १०७)। कुल मिलाकर भाषाकी विशेष रंगतसे हमारा साक्षात्कार बार-बार होताहै। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—"अनोखी लोकोक्तियों और कभी न सुने मुहावरोंमें सिद्ध समधिनने खूब-सा सम्मान देकर अपनी कूटनीति बरकरार रखते हुए बहूके पीहरकी तुलना फलदार पेड़से कीथी, जिसपर से फल उतारने के लिए लड़केवालोंको गिल्ली फेंककर पेड़को झकझोरना पड़ताही है। तभी न पेड़पर लटके फल नीचे

गिरेंगे। यों बिना रोये तो मां भी बच्चे को दूध नहीं पिलाती; और कच्ची मछलीको गले उतारनेके लिए बघार-मसालेकी जरूरत होतीही है, वगैरह-वगैरह।" (पृष्ठ १५५)।

निष्कर्ष रूपमें कहा जा सकताहै कि हिन्दी कहानी के समकालीन परिदृश्यमें चन्द्रकान्ताकी कहानियां अपना विशेष स्थान रखतीहैं।

तीसरा आदमी[1]

कहानीकार : नारायण सिंह
समीक्षिका : सुमति अय्यर

इधर यथार्थके नामपर साहित्यमें यथास्थितिको प्रस्तुत करने, सामाजिक स्थितियोंसे जुड़ने और राजनीतिक चेतनाको जागृत करनेका दौर चल रहाहै। इसलिए बतौर प्रशिक्षणके संगोष्ठी/गोष्ठीकी परम्परा भी बढ़ीहै। वहां कहानीको नयी व्याख्याओंसे परिभाषित करने और नमूनेके रूपमें कहानियोंको सूत्रीबद्ध करने और उनपर कालजयी होनेका ठप्पा लगाने की प्रथा भी बढ़ रहीहै। ऐसी स्थितिमें नये लेखकोंके सामने कोई विकल्प नहीं रह जाता कि वे छपने और चर्चित होनेके लिए इस नयी परम्परासे जुड़ें।

इस प्रवृत्तिने एक ओर कुछ बेहद झकझोर देने वाली कहानियां दीहैं तो दूसरी ओर एक छद्म यथार्थ से जुड़ने, एक आकांक्षित पर दिशाहीन चिन्तनके साथ कथा संघर्षका अन्त करने या फिर संघर्षके पश्चात् व्यावसायिक फिल्मोंके 'इतिशुभम्'की शैलीपर विजयश्री प्राप्त करनेकी कल्पित वायवी स्थितियोंको कथा और कथापात्रोंपर लादना। 'कथा संघर्ष' शब्दका प्रयोग इसलिए कियाजा रहाहै कि इन कहानियोंमें सामान्यत: एक कल्पित सघर्षकी परिकल्पनाके चारों ओर कथा सूत्रोंको उठाया जाताहै। परिणामत: कहानियोंमें एकरूपता प्रवेश कर जातीहै, विशेषत: बिहार और उत्तर प्रदेशकी कहानियोंमें इसी रूपके दर्शन होतेहैं।

एक प्रबल प्रवाह-सा आया ऐसी कहानियोंका जिसमें शोषक/शोषित/शोषण सब कुछ था, आकांक्षित दिशामें ले जानेवाली वैचारिकता थी, पर नहीं थी तो वह समझ जो वहां होनी चाहियेथी एक विकल्प प्रस्तुत करते समय।

नारायण सिंहका पहला संग्रह 'तीसरा आदमी' की सातों कहानियोंको पढ़नेके बाद एक मिली-जुली प्रतिक्रिया भीतर उपजने लगतीहै। नारायणसिंहकी कहानियां दो वर्गोंसे जुड़ीहैं। एक तो वह सर्वहारा वर्ग जिसकी चिन्ता रूढ़िवादी जनवादीको रहतीहै, दूसरा वह वर्ग, जिसे मध्य वर्ग कहा जाताहै। वस्तुत: इस वर्गके प्रति कुछ सहानुभूति आठवें दशकके कलाकारोंमें देखनेमें आयीथी। पर बादके कलाकारोंने तो जैसे उन्हें उपेक्षित कर दिया।

सच तो यह है, यह वर्ग दोहरे शोषणका शिकार है। निम्न वर्गके शोषक पूर्व-निर्धारित हैं—पर यह वर्ग जहाँ एक ओर उसी शोषणका शिकार है, वहीं यह वर्ग स्वयं अपना शोषक है। मूल्योंके अवमूल्यन और खंडित होते नैतिक प्रतिमानोंसे शोषित होता यह वर्ग आजके रूढ़िवादी जनवादी कथाकारोंकी सहानुभूति क्यों नहीं बटोर पाया यह सोचनेका विषय है।

निम्न वर्गके सपनोंका फलक इतना व्यापक नहीं होता, अथवा कहाजा सकताहै कि उनमें एक निश्चिन्तता होतीहै। आर्थिक और सामाजिक स्तरपर एक निश्चित स्थानकी खोजमें लगा वर्ग। पर मध्य वर्ग? इसके सपनोंका फलक बहुत विस्तृत है। जितने सपने हैं, शोषणके तरीके भी उतनेही।

कठिनाई यह है कि निम्न वर्ग जब अपने अधिकारोंके प्रति सचेत होताहै तो पूरे आवेशके साथ प्रतिघात भी करताहै। प्रतिक्रिया प्राय: सीधी और लट्ठमार होतीहै जबकि मध्य वर्ग अपने शोषकको पहचान कर भी कुछ नहीं कर सकता क्योंकि यह बौनापन उसके संस्कारोंमें घुल चुकाहै। संस्कारहीन होतेजा रहे समाजमें संस्कारोंके साथ रह पानेका संघर्ष भी यह वर्ग नहीं कर पा रहा।

नारायण सिंहकी दो कहानियां 'गुगली' और 'स्कोरर' में इस वर्गका दर्द खूब उभरकर आयाहै। निम्न वर्गमें जहाँ संघर्षकी शुरूआतके साथही एक पूरा समूह उसके साथ हो जाताहै, अर्थात् प्रतिक्रिया समूहगत होने लगतीहै, वहां मध्यवर्गमें संघर्षके प्रारम्भमें ही नहीं, पूरे संघर्षमें व्यक्ति अकेला होताहै, अकेला होता जाताहै, या कर दिया जाताहै।

---

[1] प्रका. : साहित्य सदन, नेपियर रोड, कानपुर कैंट-२०८००४। पृष्ठ : १२८; डिमा. ९१; मूल्य : ३०.०० रु. (पेपरबैक)।

लड़ाईकी परिस्थितियोंमें अचानक अकेले पड़ जाने वाले व्यक्तिकी कहानी है, 'गुगली'। शिवप्रसाद ओझा के परिवारके बड़े बेटे नरेन्द्रके अंतर्द्वन्द्वकी कहानी है। जिसका पूरा जीवन मात्र इसलिए चौपट कर दिया जाताहै कि वह शिवप्रसाद ओझाका बेटा है। उसे अन्यायके लिए दुःख होताहै, खीझभी, पर अपने छोटे भाईकी जिजीविषाको देखकर वह संघर्षको अपने हाथ में लेनेकी सोचताहै, यहांसे लड़ाईका दायित्व अकेले नरेन्द्रपर पड़ताहै।

'स्कोरर' के संजयकी त्रासदी भी यही है, पर वहीं वह अर्थाभावका शिकार हैं। प्रतिभा होते हुए भी खिलाड़ी न बन पानेकी कुंठा लिये संजय वहीं समझौता तो करताहै, अपने वर्त्तमानसे। वह स्कोरर बन जाता है। अपनी आर्थिक तंगीको लेकर एक हीनभाव जो प्रायः मध्य वर्गकी विशेष पहचान है वही संजयमें भी है। सचको छिपाकर एक-न-एक बहाना बनाना सम्भवतः मध्यवर्गीय युवाकी पहचान बन गयीहै। संकट यह है—कि सपनोंको बुननेकी छूट होनेपर भी उस तक पहुंचने न देनेका व्यवस्थातंत्र और उसका शिकार मध्यवर्ग? संजयकी प्रतिक्रिया भी बहुत मार्मिक है। बैनिफिट मैचमें एक नामी खिलाड़ीके आउट होनेपर उसे आउट घोषित न करनेपर वह अपने होनेको प्रमाणित करता हुआ उसका स्कोर फ्रीज कर देताहै। यह प्रतिक्रिया बौनी, तात्कालिक भलेही हो, पर क्या यह वर्ग इसी प्रकारकी प्रतिक्रियाओंमें अपनी कुण्ठा नहीं निकाल रहा? इस दर्दको नारायणसिंहने आन्तरिकता से उभाराहै।।

'पागल', 'अजगर' और 'तीसरा आदमी' तीनों ही निम्न वर्ग या कि शोषित वर्गकी कहानियां हैं। कथाकारकी जागरूकता, सामाजिक चेतना उन कथा पात्रों के चित्रणमें पूरी तरह उभरकर आयीहैं। 'अजगर' में इस क्रान्ति-चेतनाका विकास एक साधारणसे आदमीके माध्यमसे लेखकने प्रस्तुत कियाहै। गांवसे लेकर कोलियरी तक कई तहों, कई पक्षोंको खोलती हुई यह कहानी उस पात्रके व्यक्तिगत संकटको भी खोलतीहै। एक शिक्षित युवक गांवसे निकलकर कोलियरी तक पहुंचता है, वहां उसे पता चलताहै कि उसे एक नये अस्तित्वत यहां यात्रा शुरू करनीहै। वह अंगदसे लोचन बन जाता है। परिस्थितियां उसे धीरे-धीरे जुझारू बनातीहै। पर सत्ता और प्रबंधकोंके हाथ लम्बे हैं। योजनापूर्वक घटित दुर्घटनामें घायल होकर वह अस्पतालमें पड़ाहै। उसे इम्पॉस्टर घोषितकर नौकरीसे निकालनेका षडयंत्र भी चल रहाहै। इस हताश स्थितिमें उसके पास कोई आशा नहीं, आश्वासन नहीं। यहां अजगरका प्रतीक भयानक भलेही न बन पड़ाहो पर इतना अवश्य है कि दुविधा और चुप्पीका सन्नाटा त्रासदीके साथ उभरा है।

'तीसरा आदमी' एक कल्पित और वायवी आशा के विकल्पकी कहानी है। यथास्थितिमें देखा जाये तो इस विकल्प तक पहुंचनेमें वर्षों लग सकतेहैं। पर यह भी सत्य है कि यह विकल्प इस सम्पूर्ण परिदृश्यको बदलकर रख देगा यहभी कोई निर्णीत सत्य नहीं है। गांवमें सरपनाथ बाबूका आधिपत्य है, दूसरा गुट है नागा बाबूका। पर वे भी विकल्प नहीं हो सकते क्योंकि वे केवल असंतुष्ट विद्रोही हैं। नीतिगत असंतोष नहीं व्यक्तिगत असंतोषके शिकार हैं और गांववालोंकी समझमें सब आताहै। एक महीनेसे गांव कितना अपना कितना दमदार और हरियर क्यों लगताहै। पर उसे आवाज कोई नहीं दे पाता। अपाहिज चौरंगी जरूर प्रतिरोध करताहै। पर उसके बौने प्रतिरोधसे सत्ताधारियोंका कुछ नहीं बिगड़ता। अन्तमें चौरंगी, दोनों प्रत्याशियोंको वोट न देकर परचेके उलटेमें मोहर मार देताहै। तीसरे आदमीकी देवकीके गर्भसे उसके संभावित जन्मकी परिकल्पना करता हुआ। चालीस साल से पूरा देश वोट खराब कर रहाहै, एक उसने खराब किया तो क्या हुआ। चौरंगीने तो वोटका ठीक-ठीक उपयोग कियाहै। कई बढ़ते हाथोंके बीच चौरंगीकी भांति औरभी वोट ठीक ढंगसे डाले जायेंगे। यह आशा—अभी तो वायवी है, पर अप्राप्य नहीं।

इच्छा शक्तिके बलपर अपने बेटेको शिक्षा दिलाकर एक निरीह-सा सपना पालताहै, सोनाहाड़ी। अपने सामाजिक स्तरको ऊंचा उठानेका सपना। पर सपने अधूरे रह जातेहैं। बिना सिफारिशके उसे नौकरी नहीं मिलती। सोनाहाड़ी आत्महत्या कर लेताहै, ताकि डेथ-केसमें उसके बेटेको नौकरी मिल जाये। (पागल)।

ऐसीही कहानी है—'माफ करो वसुदेव'। नन्हकका सपनोंसे रहित एकरस जीवन, उसके बापू और भाइयोंकी सोच भी सभी स्थितियोंका चित्रण, इस कहानी के ढंग इन दोनोंही कहानियोंमें एक ही बात प्रमुखता से उभरकर आयीहै। निम्न वर्गका शिक्षाके प्रति मोह और उसके कारण अपने आर्थिक स्तर एवं सामाजिक

स्थितिको उठानेका आग्रह । उसी अनुक्रममें हुए मोह-भंग और त्रासदी इन दोनों कहानियोंका प्रमुख स्वर है।

एक विशेष बात जो इन कहानियोंको पढ़ते समय ध्यान खींचतीहै, वह है नारी पात्रोंका अभाव। 'निषेध' को छोड़कर किसीभी कहानीमें नारी पात्रोंकी कोई भूमिका नहीं रहीहै। यूं भी जनवादी साहित्यमें नारीकी स्थिति गौण ही रहीहै। इसके पीछे यह अवधारणाभी हो सकतीहै कि बाह्य संघर्षोंमें नारीकी कोई भूमिका हो ही नहीं सकती।

'निषेध' में मां-बेटीकी त्रासदी और संवेदनशीलता के साथ उभारीजा सकतीथी। विशेषकर मांकी त्रासदी। माईके भीतरका अंतर्द्वन्द्व और इसीसे पनपा निषेधात्मक रवैय्या भी उसी रवैय्येके साथ जीवनको जीनेकी प्रक्रिया—इसे भी संवेदनशीलताके साथ उभारा जा सकताथा।

कहानीकी भाषाके प्रश्नपर पर्याप्त विवाद है। विशेष रूपसे क्षेत्रीय बोलियोंके प्रयोगको लेकर उसकी उपयोगिताके सम्बन्धमें मतभेद है। सबसे अधिक संप्रेषणीयता और पठनीयताका तर्क दिया जाताहै। नारायणसिंहकी कहानियां जिस भूभागकी कहानियां हैं, भाषाभी उसी क्षेत्रकी है। इस स्थितिमें संप्रेषणीयताका प्रश्न उठ सकताथा, सम्भव है होभी। पर यह सुखद आश्चर्य है कि इसी भाषाने इन कहानियों को वाचिक परम्परासे जोड़ाहै। ये कहानियां जिस भूमि और मानससे जुड़ीहैं, निश्चित रूपसे इनकी सार्थकता इनकी वाचिकतासे ही हो सकतीथी। कहानी जिनकी है और जिनके लिए लिखी गयीहै उनसे कहानी को जोड़नेमें कहानीकी भाषा और शिल्पकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होतीहै।

नारायणसिंहकी कहानियोंकी भाषा और शिल्पकी यही बिशेषता है कि ये कहानियां सीधे लोक-मानससे जुड़तीहैं। कहींभी लेखकीय निष्ठाकी उपस्थिति आतंतिक नहीं करती। रेणुकी कहानियां भी धरतीकी सोंधी महककी भांति उठती और पूरी संवेदनापर हावी हो जातीहैं।

कलाकी मूल संवेदनासे भाषा कहीं पृथक् नहीं होती, कहीं-कहीं तो लगताहै कि यदि भाषामें कलाकार कहीं छद्मसे काम लेता तो इन कहानियोंकी मूल संवेदना ही समाप्त होजाती।

विकल्पहीनताकी स्थितिके साथ जहां पूरी कहानी का अन्त पराजय-बोध हताशाजनक तनावमें होताहै, कहानियां वहां अधिक प्रामाणिक लगतीहैं उन कहानियोंकी तुलनामें जहां लेखक रास्ता सुझाताहै—ऐसा रास्ता जो विजयकी ओर जाताहै। सम्भवत: इसलिए कि पराजित नायकही आजकी यथास्थितिका प्रतिनिधि है। यह अकर्मण्यता अथवा शान्तिवाद नहीं है, दो वर्गोंसे जुड़ी कहानियोंकी प्रामाणिकताकी बात है।

अपने सीमित फलकमें भी नारायणसिंहकी ये कहानियां आश्वस्त करतीहैं। ☐

वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके परिचयके लिए उपन्यास पढ़ें

अपराधी वैज्ञानिक

[लेखक : यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक']

- सम्भव है आपको पता न हो कि विज्ञानके अनुसार लगभग ११००० वर्ष पृथ्वीका चौथे हिमपातसे उद्धार हुआथा। और, प्रत्येक बार हिमका आवरण एक मीलसे दो मील मोटा था।
- हिम-प्रलयका एक कारण पृथ्वीकी धुरीका विचलन है। इस समय पृथ्वीकी यह धुरी ध्रुवतारेसे एक अंश हटी हुईहै। इस विचलनसे ऋतुएं भी पीछे हटतीहैं।
- क्यों न पृथ्वीकी धुरीको सचल बनाकर पृथ्वीके विभिन्न भागोंको सूर्यके ताप और प्रकाशके सम्मुख लाकर मरुस्थलोंको उर्वर और हिम-प्रदेशोंको तप्त कर लिया जाये, वायुमण्डली कार्बन-डाई-आक्साइड, विद्युत् उत्पादन-जलवाष्पीकरण-वर्षा आदिको मानवीय नियन्त्रणमें लाया जाये।
- इन वैज्ञानिक आधारोंको लेकर उपन्यासका वैज्ञानिक नायक पृथ्वीकी धुरीको सचल बनाकर चुम्बक शक्तिके प्रयोग करताहै।
- इस रोचक आधारपर लिखा गया यह मौलिक हिन्दी उपन्यास आजसे २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआथा, पर यह समस्या आज भी है। आप भी इसे आज ही पढ़ें।

पृष्ठ संख्या : ३३३; मूल्य : ६०.०० रु.

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

विज्ञान-साहित्य

समीक्षक : सुरेन्द्र तिवारी

१. संभवामि युगे युगे (उपन्यास)[१]

लेखक-द्वय : लक्ष्मण लोंढे,
चिन्तामणि देशमुख
अनुवाद : विष्णुगोपाल वैद्य

२. यक्षोपहार (कहानी-संग्रह)[२]

लेखक : डॉ. जयन्त नारलीकर
अनुवाद : सुनीता परांजपे

३. विज्ञानेश्वरी (निबन्ध)[३]

लेखक : दत्तप्रसाद दाभोलकर
अनुवाद : निशिकान्त मिरजकर

हिन्दी भाषामें ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय भाषाओंमें आजभी विज्ञान साहित्यका बहुत अभाव है, बल्कि इसे योंभी कहा जा सकताहै कि भारतीय भाषाओं में विज्ञान-साहित्य लगभग नहीं के बराबर है। इसके मुख्य दो ही कारण हैं, एक तो विषयकी अज्ञानता, जिस कारणसे विज्ञान-साहित्य-लेखनके प्रति लेखकोंकी रुचि कम है, और दूसरा, विज्ञान साहित्यके प्रति पाठकों-प्रकाशकोंकी अरुचि ।'[४] किन्तु धीरे-धीरे यह बात समझमें आने लगीहै कि यदि विज्ञान-युगमें हमें रहनाहै तो विज्ञाम-साहित्यके प्रति उपेक्षा-भाव भी समाप्त करना होगा । भारतीय भाषाओंमें केवल मराठीमें इस प्रकारका लेखन-प्रकाशन अब लगातार हो रहाहै । हिन्दीमें कुछ प्रयास हो रहेहै जिसका ताजा उदाहरण ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित तीन पुस्तकें हैं। यद्यपि ये तीनों पुस्तकें भी मराठीसे ही अनूदित है, तथापि इनका प्रकाशन स्वागत-योग्य है क्योंकि उससे हिन्दी भाषाकी एक कमी कुछ अंशोंमें दूर हुईहै ।

ज्ञानपीठ प्रकाशनने विज्ञान-साहित्यके प्रकाशनके लिए एक नयी शृंखला शुरु कीहै—''वैज्ञानिक गल्प-माला' । इन पुस्तकोंके चयनमें यह ध्यान रखा गया है कि तीनों पुस्तकें एक ही विधाकी न हों, भिन्न-भिन्न रुचियोंके लोग भिन्न-भिन्न ढंगसे विज्ञान-साहित्यमें रुचि लें और जानकारी भी प्राप्त करें ।

'संभवामि युगे युगे' वैज्ञानिक उपन्यास है । इसमें लेखकोंने दूसरे ग्रहोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी कल्पना कीहै और उससे पृथ्वीवासियोंका क्या हित-अनहित हो सकताहै इसका चित्रण कियाहै । 'टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च' में काम करनेवाले वैज्ञानिक डॉ. वाचस्पति वैज्ञानिक अनुसंधानके साथ-साथ विश्व-भ्रमण भी किया करतेहैं, और भ्रमण करते हुए ऐसी अनेक चीजें उन्हें नजर आतीहैं जिनको देखकर आधुनिक अनुसंधानभी उन्हें निरर्थक लगने लगता है । पेरू नगरके प्रागैतिहासिक अवशेषोंको देखनेके बाद तो वे यहां तक सोचतेहैं कि 'मेरी खोज मौलिक होनेके क्या प्रमाण है ? हमारों टनों भारकी चट्टानें आसानीसे चीरकर इधर-उधर हिलाते हुए उन्हें एक दूसरीपर रखनेवाले या निर्दोष पंचांगोंकी रचना करनेवाले मानव समाजके पास आजकी तकनीकसे भी अधिक कुशलता-सम्पन्न थी । पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व उन्होंने ऐसे वैज्ञानिकोंको जन्म दिया होगा जो कोपर्निकस, गैलिलिओ, न्यूटन या आईन्सटाइनकी भांति आगे चलकर नष्ट हो

---

[१] प्रका. : (समीके) : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३ । (१) पृष्ठ : १५०; डिमा. ६१; मूल्य : ५५.०० रु. । (२) पृष्ठ : १६८; डिमा. ६१; मूल्य : ५५.०० रु. (३) पृष्ठ : १५७; डिमा. ६१; मूल्य : ५५.०० रु. ।

[४] वस्तुतः मुख्य कारण प्रशासनका अत्यधिक अंग्रेजी-प्रेम है, और वैज्ञानिक साहित्यका एक मात्र माध्यम वह अंग्रेजीको मानताहै और इस मान्यता पर पूरीतरह अड़ा हुआहै । शिक्षणमें विज्ञानका माध्यम मात्र अंग्रेजी ही है ।

गये होंगे । तो, मानव जातिके भाग्यका अब कहीं दूसरा दौर तो नहीं है । क्या आजकी सभ्यता भी दुबारा नष्ट हो जायेगी । इस प्रकार विकासके बाद विनाश क्या होता रहताहै ?" (पृ. १४) ।

वास्तवमें डॉ. वाचस्पतिका यह विचार कि 'विकासके बाद विनाश' क्यों होताहै, ही इस उपन्यास की कथाके मूलमें है । एक रात डॉ. वाचस्पतिके सहायक डॉ. नीलकंठको अपने यंत्रके इक्कीस सेंटीमिटरपर एक संदेश प्राप्त होताहै । नीलकंठ उस संदेशका अर्थ नहीं समझ पाते । डॉ. वाचस्पतिको इस बातकी वे जानकारी देतेहैं, तो वाचस्पति भी आश्चर्यमें आजातेहैं क्योंकि इक्कीस सेंटीमिटरपर तत्काल कोई संदेश प्राप्त नहीं होता । वाचस्पति स्वयं कई रातों तक निश्चित समयपर जागकर इस संदेशको प्राप्त करतेहैं और पाते हैं कि प्रत्येक रात एकही प्रकारका संदेश आ रहाहै । उन संदेशोंका टेप वे अपने पास रखते जातेहैं ।

कुछ दिनों बाद ही डॉ. वाचस्पति और नीलकंठ एक सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए अमरीका जातेहैं । उस सम्मेलनके आयोजक डॉ. डाइशरकी गणना विश्वके महान् वैज्ञानिकोंमें की जातीहै । वाचस्पति अपने टेप और संदेशकी बात उन्हें भी बतातेहैं किन्तु वे इसपर विश्वास नहीं करते । दूसरे ग्रहसे कोई संदेश इस प्रकार प्राप्त हो सकताहै, यह उन्हें अविश्वसनीय लगताहै । किन्तु 'रेडियो टेलिस्कोपी सेंटर' में जाकर जब निश्चित समयपर वाचस्पति फिर उन्हीं संदेशोंको प्राप्त करतेहै तो डॉ. डाइशरकी परेशानी बढ़ जातीहै । उन संदेशोंको पढ़नेका प्रयत्न किया जाताहै पर सफलता नहीं मिलती । अंतमें यह निश्चय किया जाताहै कि इस संदेशका अर्थ समझनेके लिए रूसकी सहायता भी ली जाये । रूसी वैज्ञानिक डा. झिमान्स्की संदेशका अर्थ निकालते हुए कहतेहैं, 'संदेशमें यूरेनियमका बार-बार उल्लेख किया गयाहै । इस बातको उचित महत्त्व दिया जाना आवश्यक है । यह संदेश जिस यानसे आ रहाहै वह यूरेनियमपर चलनेवाला है । उसका यहां आनेका उद्देश्य या तो धरतीपर यूरेनियमकी खोज करनाहै या फिर उसका अपना यूरेनियमका भंडार समाप्त हो गया है इस कारण उसे धरतीपर उपलब्ध यूरेनियमकी आवश्यकता है । वह यान यदि दुर्घटनाग्रस्त होजाये तो प्रचंड परमाणु विस्फोट होनेकी संभावना है ।" (पृ. ७०) ।

डा. झिमान्सकी की इस बातसे वैज्ञानिक आतंकित हो जातेहैं । इस संकटसे उबरनेके लिए राष्ट्रपतिके साथ विचार-विमर्श किया जाताहै । अमरीकी राष्ट्रपति और रूसी प्रधानमंत्रीके बीच बातचीत होतीहै और फिर निश्चय किया जाताहै कि अंतरिक्षके उस यानको किसी प्रकार नष्ट कर दिया जाये । और ऐसा ही किया जाताहै । परन्तु अभियानके समाप्त होनेके बाद डॉ. वाचस्थति पागलोंकी भांति समुद्रके किनारे भटकते हुए, किसी भी बच्चेको पकड़कर कहते हुए दिखायी देतेहैं, "बेटा ? नहीं जानता कि मैंने कितना बड़ा अपराध कियाहैं । मेरी पीढ़ी तुम्हारी पीढ़ीकी बहुत बड़ी अपराधी है । हमारे पापका दण्ड तुम्हें भुगतना पड़ेगा । मुझे क्षमा कर दे बेटा । मुझे माफ कर दे ।" (पृ. १४८-१४९) ।

और जब नीलकंठ उन्हें समझातेहैं तो वे कहतेहैं, "नीलकंठ, यह संदेश हमें प्राप्त हुआथा । वहभी एक ईश्वरी संकेत था । मेरी अन्तरात्मा मुझसे कह रहीहै कि वह संदेश 'उन्हीं' का भेजा हुआथा । उनका यानी ईश्वरका, वे ईश्वर जिन्होंने धरतीपर सजीव सृष्टिका बीजारोपण कियाथा । उनके द्वारा बोये गये बीजोंसे कितनी अच्छी फसल हुईहै, यह देखने ही तो वे आ रहेथे हम लोगोंका मार्गदर्शन करने आ रहेथे, परन्तु हमने अपने घरोंके दरवाजे ही केवल बंद नहीं किये उनके विरोधमें मोर्चे खड़े किये । उनपर गोलाबारी की और उनको जानसे मार दिया ।"

वास्तवमें यह उपन्यास वैज्ञानिक कलेवरमें भी हमें धर्म और शांतिका संदेश देताहै । 'भगवान्के अस्तित्व में विज्ञान विश्वास नहीं करता, किन्तु विनाशके बाद पूरे विश्वमें किसी-न-किसी सृष्टिकर्ता या भगवान्की परिकल्पना भी पायी जातीहैं । चूंकि इस उपन्यासके लेखक भारतीय सभ्यता और मानसिकतासे पूरी तरह जुड़े हुएहैं इसलिए यह अस्वाभाविक नहीं लगता कि उपन्यासका अंत भगवान्को ही सर्वोपरि माने, उसमें मनुष्यकी आस्था जगानेका प्रयत्न करे । परन्तु विचारक नीत्सेने कहाथा कि भगवान् मर गयाहै, इस बातको भी संभवतः लेखक भूले नहीं हैं, इस कारण अंतमें डॉ. वाचस्पति यहभी कहतेहैं कि 'हमने भगवान्को मार डाला । यह लेखकोंकी दुविधाग्रस्त मानसिकताका परिचायक है । और शायद इसका कारण यही है कि 'धर्म और विज्ञान'के बीचसे गुजरता कोई भी भारतीय किसी अंतिम निर्णयपर नहीं पहुंच पाता कि वह विज्ञानको सच माने या भगवान्को ।

इस उपन्यासकी रोचक शैली, सहज और वैज्ञानिक तथ्योंका निर्दोष चित्रण अद्‌भुत हैं। अनुवादक विष्णु गोपाल वैद्यने भाषाकी रोचकता और सहजताको हिन्दी में भी बनाये रखाहै।

दूसरी पुस्तक विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जयंत नारलीकरकी कहानियोंका संग्रह है—''यक्षोपहार।' डॉ. जयंत नारलीकरने लगभग डेढ़ दशक पहले मराठी में मौलिक 'विज्ञान गल्प' कथा-उपन्यासोंके रूपमें लिखना शुरु कियाथा और अबभी उत्साहके साथ लेखनरत हैं। नारलीकर कहतेहैं, ''वैज्ञानिक अनुसंधानके निबंधों या किसी उपशालामें विश्व-स्तरपर किये गये अनुसंधानोंके प्रतिवेदनोंको मैं विज्ञान-साहित्य नहीं मानता। किन्तु किसी वैज्ञानिक आविष्कारकी जानकारी जनसाधारण तक पहुंचानेके उद्‌देश्यसे लिखे लेखोंको मैं अवश्य विज्ञान-साहित्य मानूंगा। यह काम विज्ञान-गल्प विधा द्वारा सबसे अच्छा किया जा सकताहै। किसी वैज्ञानिक परिकल्पनापर आधारित कहानी या उपन्यास अच्छा विज्ञान-गल्प बन सकताहै।" (भूमिका)।

'यक्षोपहार' में बारह विज्ञान-कथाओंका संकलन किया गयाहै। ये सभी कहानियां अलग-अलग विज्ञान-आविष्कारों या परिकल्पनाओंपर आधारित हैं। और सुखद बात यह है कि इन सभी कहानियोंमें विज्ञानके गंभीर विषयोंका मात्र विश्लेषण नहीं है बल्कि कहानीके सभी तत्त्वों व गुणोंसे ये रचनाएं परिपूर्ण हैं। 'यक्षोपहार' संग्रहकी पहली कहानी है जिसमें वैज्ञानिक डॉ विजय सिन्हाको एक ऐसा व्यक्ति मिलताहै जिसके पास एक अद्‌भुत कम्प्यूटर है। उस व्यक्तिका नाम डा. सुलेमान रशीद है जो इस कम्प्यूटरके माध्यमसे अजीब-अजीब समस्याएं खड़ी कर देताहै। बादमें पता चलताहै कि डॉ. सुलेमान इस पृथ्वीका जीव न होकर किसी अन्य ग्रहसे आया हुआ जीव है जो मानव जातिपर पूर्ण प्रभुत्व पाकर पृथ्वीका उच्चाटन करना चाहताहै। यद्यपि यह एक फैंटेसी है, पर इसके माध्यमसे लेखक यह दिखाना चाहताहै कि विज्ञानकी अतिरिक्त सुविधाएं मनुष्यको भी मशीनमें बदल देंगी।

दूसरी कहानी 'हिमप्रलय' भी एक फंतासी है जिसमें पूरे संसारमें सिर्फ बर्फ ही बर्फ जमी नजर आतीहै। लगताहै मनुष्य जाति बर्फके ढेरके नीचेही समाप्त हो जायेगी। ऐसेमें भारतके वैज्ञानिक डॉ. चिटणीसकी एक योजनाको कार्यान्वित किया जाताहै और पृथ्वीके अनेक देशोंसे एकसाथ अंतरिक्षमें अग्निबाण छोड़े जातेहैं। ''इन्द्रपर आक्रमण नामक यह अभियान सफल रहताहै और तापमानमें वृद्धि होने लगतीहै। किन्तु डॉ. चिटणीसको तब दूसरी चिन्ता सतातीहै कि प्रकृति और मानवके बीच छिड़े युद्धमें मानवकी जीत तो हुई पर अब उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। बर्फ पिघलनेसे 'न भूतो न भविष्यति' बाढ़ आनेवाली थी। पृथ्वीकी जनसंख्या आधी हो चुकीथी, अनेक बहुमूल्य चीजें इस आक्रमणमें नष्ट हो गयीथीं। जिस एकताका परिचय मानवने इन्द्रपर आक्रमणके समय दियाथा क्या उसीका परिचय वह पुनर्निर्माण कार्यमें देगा?' (पृ. ३७)।

यद्यपि यह कहानी सर फ्रेड हायलके ICE में दिये वैज्ञानिक तर्कपर आधारित है परन्तु इसे लेखकने मानवीय समस्याओं और चिन्ताओंसे जोड़कर ज्यादा सामयिक बना दियाहै, साथही वैज्ञानिक उपकरणोंके अंधाधुन्ध उपयोगके प्रति सावधान भी कियाहै।

इसी प्रकार एक कहानी 'विस्फोट' में लेखकने अतीत, वर्तमान और भविष्यके बीच एकही प्रश्नका समाधान ढूंढ़नेका प्रयत्न कियाहै। सम्राट् हर्षवर्धन को एक दिन भिक्खू सारिपुत्त बताताहै कि आज उसने एक तारेके विस्फोटको देखाहै और लगताहै कि आनेवाले समयमें इस तारेका प्रकाश बहुत बढ़ेगा जो भयानक हो सकताहै। सम्राट्के चिन्तित होनेपर सारिपुत्त कहताहै, ''पंचमहाभूतों द्वारा निर्मित इस विश्वमें प्रकाशकी गति सर्वाधिक है। प्रकाश तो आज यहां पहुंच चुकाहै किन्तु इस विस्फोटसे निकलनेवाले अन्य पदार्थ प्रकाशसे कम गतिसे भविष्यमें यहां पहुंचेंगे। तबतक तो तुम और तुम्हारे अनेक वंशज भी जीवित नहीं होंगे। फिर अंतरिक्षकी विशाल घटनाओं के सम्मुख मानव शक्ति अपर्याप्त है। अतः हमारा कोईभी प्रयास उपयोगी नहीं हो सकता। यदि इस विस्फोटसे विघातक पदार्थ पृथ्वीकी ओर आयें तो उनका नाश करना हमारी क्षमतासे परे है। इसपर सम्राट् सुझाव देतेहैं, ''यदि हम आज दिखनेवाली घटनाओंका लेखाजोखा रखें तो भविष्यमें अगली पीढ़ी के लिए वह उपयुक्त होगा। ऐसी जानकारियोंको ताम्रपत्रोंपर खुदवाकर उन्हें स्थान-स्थानपर गाड़ दिया जायेगा।''

वर्तमानमें ऐसे अनेक ताम्रपत्र बिहारमें उत्खनन

के समय मिलतेहैं और तब लोगोंका ध्यान उस भयानक विस्फोटकी ओर जाताहै और पर्याप्त अनुसंधानके बाद यह ज्ञात होताहै कि यह विस्फोट शशक नक्षत्रके तारकपुंजमें हुआथा। इस स्थानपर क्रैब नेन्युलाके समान किन्तु उससे कम तेजस्वी विस्फोटावशेष मिले हैं। वैज्ञानिकोंको यह चिन्ता सता रहीथी कि विस्फोट-स्थल यदि एक हजार प्रकाश वर्षकी दूरीपर है तो विस्फोटके हजार वर्षों बाद उसका प्रकाश प्रथम पृथ्वी पर ही आया होगा। अर्थात् संकटका समय आ गया है। इस समस्यासे जूझनेके लिए विश्वभरकी अंतरिक्ष संस्थाओंने विस्फोटकी दिशामें अंतरिक्ष-खोजी यान छोड़े। इन यानोंमें विश्व किरणोंके लिए मापन यंत्र बिठाये गयेथे जिनकी सहायतासे पृथ्वीकी ओर बढ़ने वाली ये किरणें भयानक हैं या नहीं, इसका पता चलने वाला था।

और फिर भविष्यकी स्थितिकी कल्पना करते हुए लेखक कहताहै—इक्कीसवीं सदी शुरू हुई, आधी समाप्त होने लगी, और फिर वर्षके पहलेही दिन किरणें पृथ्वीपर आ रहीहैं, यह सूचना अंतरिक्ष-खोजी यानोंने देनी शुरू कीं। इन किरणोंकी मार पहले धीमी थी पर बादमें उसकी तीव्रता तेजीसे बढ़ने लगी। वैज्ञानिकोंने संकटकी सूचनाएं दीं। पृथ्वीके आसपासके वायुमंडलमें ओजोन वायुकी मात्रा घटने लगी और मनुष्य जाति समाप्त होने लगी।' लेखक अंतमें अपनी चिन्ता जताताहै कि मनुष्य जीवन अंतरिक्षकी ऐसी घटनाओं के सामने कितना क्षुद्र है, इसकी कल्पना हमें इस विस्फोट ने करवा दी।

'आसमानी निगाहें' यों तो विज्ञान आधारितही कहानी है किन्तु इसमें जासूसी उपन्यासोंकी शैली है, जिसमें एक योजना-प्रमुख ही खलनायक होताहै और मनुष्यको भयभीत करनेके लिए विज्ञानका सहारा लेकर अंतरिक्षमें भिन्न-भिन्न प्रकारके खेल खेलताहै। 'अहंकार' कहानी भी एक वैज्ञानिक खोजकी कहानी है जिसमें एक यान अंतरिक्षमें संकटमें फंस जाताहै, किन्तु वास्तवमें यह कहानी एक मनोवैज्ञानिक कहानी भी है जिसमें एक व्यक्तिके अहंकारको समाप्त करनेके लिए दल प्रमुख झूठका सहारा लेताहै।

इस संग्रहकी अन्य कहानियां 'किस्सा नौलखा हार का', 'विज्ञान युगमें नारदजी', 'अथेन्सका प्लेग', 'गायब तारा', 'मंत्राधीन' और 'पत्थर सिंह' का आधार भी विज्ञान ही है किन्तु शैली अलग-अलग है। जैसे 'किस्सा नौलखा हारका' में प्रसिद्ध जासूस शेरलाक होम्सको ही कथा-नायक बनाया गयाहै जो वैज्ञानिक ढंगसे एक हार की चोरीका पता लगाताहै। 'विज्ञान युगमें नारदजी' के माध्यमसे साम्प्रदायिक भाईचारेकी बात भी की गयीहै और वैज्ञानिक उपकरणोंकी उपयोगिताका भी। विज्ञान के आविष्कारके प्रथम चरणसे लेकर आधुनिक उपलब्धियों तक की चर्चा भगवान विष्णु और नारदजीके बीच जिस व्यंग्यात्मक ढंगसे होतीहै, वह अवश्य रोचक है, साथही विचारणीय भी। हमें आज यह सोचना होगा कि हम विज्ञानकी उपलब्धियोंके सहारे सचमुच विकास की ओर जा रहेहैं या विनाशके। 'मंत्राधीन' कहानीमें लेखकने ऊर्जाकी समस्याको उठायाहै, तो 'पत्थर सिंह' में सौर मंडलके विभिन्न तत्त्वोंके बीच मनुष्यकी शक्ति का आकलन कियाहै।

कहाजा सकताहै कि इन कहानियोंके माध्यमसे डॉ. नारलीकर जहां एक ओर वैज्ञानिक उपलब्धियोंपर विश्वको गर्व करनेका अवसर देतेहैं वहीं बार-बार यह चिन्ताभी व्यक्त करतेहैं कि वैज्ञानिक अनुसंधानों और उपकरणोंका अनुपयुक्त या अनुचित प्रयोग पूरी मानव सभ्यता और मनुष्य जातिको नष्ट कर सकताहै।

दत्तप्रसाद दाभोलकरकी पुस्तक 'विज्ञानेश्वरी' विज्ञान संबंधित २७ लेखोंका संकलन है जिसमें दो खंड हैं। पहले खंडमें वयस्कोंके लिए ऐसे लेख हैं जो विज्ञानकी नवीनतम जानकारी उन्हें दे सकें और दूसरे खंडमें पांचवींसे नौवीं कक्षाके छात्रों एवं गृहिणियोंके लिए लिखे गये लेख हैं। लेखकका कहनाहै, "इन निबंधोंको लिखते समय मेरा उद्देश्य यही था कि पाठकोंको इसे पढ़नेका चस्का लगे और विज्ञानकी बीसियों पहेलियोंको बूझ सकनेकी लगन उनमें पैदा हो।" (भूमिका)। लेखक यहभी मानताहै कि, "विज्ञान केवल कठिन समीकरणोंका नाम नहीं है। वह ऊब पैदा करनेवाली क्लिष्ट एवं रूखी चर्चा भी नहीं है। विज्ञान वास्तवमें कविता है। विश्वका रहस्य खोलकर दिखानेवाली एक रहस्य-कथा है। मानवकी भावनाओं, कल्पनाओं तथा प्रयोगोंका विज्ञान ललित-रम्य विलास है।" (भूमिका)। और कहना अनुपयुक्त न होगा कि लेखकने अपने विचारोंके अनुसारही वैज्ञानिक विषयोंकी जानकारी बेहद रोचक ढंगसे और सरल-सहज भाषामें इस पुस्तकमें दीहै।

पहले खंडमें लेखकने अपनी बात कहनेके लिए, शीर्षक बहुत ही रोचक दियेहैं, जैसे, 'कोई हांक ले जाये कहींभी' (जिसमें यह बताया गयाहै कि पानीसे आग क्यों बुझ जातीहै), 'भीतरके ज्ञानदीपको मत बुझाओ' (जिसमें यह जानकारी दी गयीहै कि हमारी आँखें किस प्रकार कार्य करतीहैं); 'सुलग उठे प्राचीर हिमानी' (मराठीके प्रसिद्ध लेखक कुसुमाग्रज, जिन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कारसे भी सम्मानित किया जा चुकाहै, की एक कविताका शीर्षक, जिसे यहां लेखकने एक विशेष अर्थमें प्रयुक्त कियाहै, उसने यहां सिद्ध कियाहै कि बर्फके ऊपर पानीको किस प्रकार उबाला जा सकता है); 'नादिया बैल और इन्सान' (इसमें सांकेतिक भाषा की चर्चा है और लेखकने बतायाहै कि मदारी इसी सांकेतिक भाषाके माध्यमसे आपके मनकी बात बताने का दावा करतेहैं, अत: इनसे सावधान रहना चाहिये); 'बीरवल कलका और आजका' (सप्ताह और महीनों के दिन किस प्रकार याद रखें, यहां यही बताया गया है)।

लेखकने विज्ञानके साथ-साथ आदमीको संयमसे किस प्रकार काम लेना चाहिये, इसकी चर्चा कई लेखों में कीहै। 'नल ही मेरी दवाई' में लेखक कहताहै, "हमारा मन अपने शरीर तथा आसपासके लोगोंको चाहे जैसा झुका सकताहै और इसके लिए आवश्यकता है केवल संकल्प। "प्रति दिन संकल्पपूर्वक कुछ समय मन एकाग्र करके पढ़ाई कीजिये। सामनेवाले व्यक्तिके कुछ भी करनेपर गुस्सा न करनेकी ठान लीजिये। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, दिनभर चेहरेपर मुस्कान रखनेका संकल्प कीजिये, कुछही दिनोंमें आप इन बातोंके अभ्यस्त हो जायेंगे। सामनेवाले सभी व्यक्तियों को आप पसन्द आयेंगे और आपको भी आसपासकी दुनियां भायेगी।" (पृ. २५)।

प्रथम खंडके अन्य लेखभी बहुत रोचक और ज्ञानवर्द्धक हैं। और इसका एकमात्र कारण है लेखककी शैली। अपनी बात कहनेके लिए लेखक केवल विभिन्न उदाहरण ही नहीं देता, प्राचीन ग्रंथोंकी कथाओं तथा चरित्रोंके साथही कई लघुकथाओंको भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाताहै।

'विज्ञानेश्वरी खंड-२' में विशेष रूपसे विद्यालयके छात्रोंको जानकारी देनेवाले लेख हैं। किन्तु लेखकने यहांभी शुष्क विवेचना भर नहीं कीहै या केवल किताबी जानकारी नहीं दीहै बल्कि विभिन्न कहानियों और उदाहरणोंके माध्यमसे अपनी बात समझानेका प्रयत्न कियाहै। हमारा शरीर, हमारी दुनियां, आकाश-गंगा, पिरामिडोंकी दुनियां, सौरमंडल और उसके ग्रह आदिकी जानकारी यहां है। विशेष रूपसे ग्रहोंका जो विश्लेषण लेखकने कियाहै, वह बहुत रोचक है, जैसे—'महाक्रोधी समझा जानेवाला मंगल बहुतही ठंडे दिमागका है।" शुक्रकी जुड़वा बहन मानी गयी हमारी धरती', 'छोटेसे मंगलके बाद आताहै महाप्रचंड गुरु। अर्थात् हमारे सौरमंडलके हनुमान, बाली-सुग्रीव और अन्य ऐरे-गैरे वानरोंकी भीड़में हनुमान जैसे शोभायमान होंगे, उसी प्रकार वह हमारे सौरमंडलकी शोभा बढ़ाताहै। हमारे सौर मंडलमें सूर्यने जो जो चीजें बांटीहैं, उनमें सत्तर प्रतिशत अकेले गुरुको मिलीहैं।"

ग्रहोंके अतिरिक्त 'नींद', 'स्मरणशक्ति', 'सच और झूठ' आदि विषयोंका भी विश्लेषण इस खंडमें हुआहै।

निश्चित रूपसे यह प्रशंसनीय है कि जिस स्थान पर और जिस भाषामें 'ज्ञानेश्वरी' की रचना हुई, वहीं और उसी भाषामें 'विज्ञानेश्वरी' की भी रचना हुई। युगके साथ विषय-परिवर्तन भी आवश्यक है और यह काम आजके सजग विज्ञान लेखक कर रहेहैं। ऐसी पुस्तकोंका स्वागत हिन्दी जगत्में होना ही चाहिये। □

संस्कृतसे रूपान्तरित कहानियां

प्राचीन कथाएं

[सम्पा.-लेखक : डॉ. कृष्णकुमार]

संस्कृत साहित्यकी कथाओंमें उत्सुकता और विचारोंकी अभिव्यक्ति दोनोंही तत्त्व दृष्टिगोचर होते है। इन्हें लोककथाओं और नीतिकथाओंमें विभक्त किया जा सकताहै।

नीति कथाओंमें मनोरंजक गाथाओंकी सहायतासे सदाचार, राजनीति और व्यवहारकी सरल प्रस्तुति है, तो नीतिकथाओंका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन द्वारा नीति सदाचारका उपदेश करनाहै।

एकही जिल्दमें दो खण्डोंकी पृष्ठ संख्या २२५ है और मूल्य है केवल १५.०० रु. (डाक व्यय पृथक्)

'प्रकर', ए-८/४२ राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-७

काव्य

शब्दभेद[1]

[उड़ियासे अनूदित]

कवि : जगन्नाथप्रसाद दास
अनुवादक : डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र
समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

उड़ियाभाषी जगन्नाथप्रसाद दास (मित्रोंमें जे. पी.) उड़ीसाके वरिष्ठ कवियोंमें हैं, जो कई दशकोंसे काव्य लेखनमें सक्रिय हैं तथा हिन्दी पाठकोंके लिए अपरिचित नहीं हैं। आलोच्य कृति 'शब्दभेद' से पूर्व प्रथम पुरुष, कई तरहके दिन, अपना-अपना एकान्त, 'लौटते समय' काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुकेहैं जिनका पाठक वर्गमें यथेष्ठ सम्मान हुआहै। आलोच्य कृतिको उनकी इससे पूर्व हिन्दी पाठकों द्वारा व्यापक रूपसे समादृत 'लौटते समय' (१९८९) का अगला चरण बताया गयाहै (विशन टण्डन : प्रस्तुति, पृ. १) पर उनका स्वर पूर्व कृतिसे भिन्न है। जे. पी. ने अबतक उड़िया भाषामें सात, अंग्रेजीमें चार और हिन्दीमें अनूदित पांचवां संकलन प्रस्तुत कियाहै जो उनके व्यापक संवेदना क्षेत्रके विस्तार और काव्य-चिन्तनके गहन एवं सुव्यवस्थित सरोकारोंकी अभिव्यक्ति कहाजा सकता है। इसके अतिरिक्त जे. पी. कहानियां, नाटक तथा उड़ीसासे सम्बन्धित इतिहास और पारम्परिक चित्रकारितापर शोधपरक लेख लिखतेहैं।

श्री रमाकान्त रथने आलोच्य काव्य-कृतिकी भूमिका लिखते हुए कहाहै कि—कविताओंकी एक असामान्य विशेषता यह है कि इनमें किसी प्रकारका उतावलापन नहीं है, पाठकको शब्दोंसे चकित करके बहा ले जानेकी या उसे ऐसे रास्तेपर ले जानेका प्रयत्न, जिसपर उसका विवेक कभी न ले गयाहो, नहीं है। इस संकलनमें १९९ पृष्ठोंमें ४२ कविताएं हैं जिनका उड़ीया मूल और हिन्दी अनुवाद समानान्तर रूपमें उपलब्ध होताहै। इनमें सहज शब्दावलीमें व्यक्त भावोंमें कहीं एक विशेष मन्तव्य उपलब्ध होता है—हाथमें गलत पतेकी चिट्ठी लिये/डाकिया पूछता चला जाताहै/एक-एक मकानसे/जबकि सारे मकान खाली हैं (पृ० ५)। आत्म-चिन्तनके धरातलपर अपनी पूरी संवेदनामें मकानके खाली होनेपर भी डाकियेका पूछना जैसे अपने आपको पुन: आश्वस्त करनाहै क्योंकि अजनबीपन और घोर एकान्तिकतासे उपजी सामाजिक विपन्नताको चरितार्थ करनेके लिए कविके पास मिथक है और इसीलिए 'महाभारत' में—'चुनावके पांसे/भूमिहीनोंके लिए भूमि-सुधार अधिनियम/सुईकी नोंक के समान मेदिनी/हरिजन बस्तीके लाक्षागृह/खेत और खलिहानका रणक्षेत्र/अभाव और दारिद्र्यका व्यूह/विरोधी दलोंका अचूक ब्रह्मास्त्र/और निम्न वर्गकी विवस्त्र असहायता/कोई नैतिकता नहीं' (पृ. ९-१०) है और निश्चित ही असहायतामें वर्तमान संघर्षका कोई विधि-विधान नहीं है।

जीवनमें उत्पन्न विसंगतियोंके लिए उत्तरदायी चाहे यही महाभारतीय मानसिकता हो अथवा 'इतिहास' (पृष्ठ २३ से २५) की परम्परा ही सामान्य मानवके अन्दर ऊब पैदा करतीहै तभी—बाहर खड़े लोग/ऊब से ताकतेहैं / सार्थक घटनाक्रमोंकी ओर/समर्थ लोगोंके हाथों/लिखे जातेहैं नये नये अध्याय (पृ. २५)। कवि निश्चितही यह जानताहै कि वर्तमान घटनाओंकी असामान्यता अपरिहार्य और पिछली घटनाओंका स्वाभाविक परिणाम है इसीलिए कवि 'शब्दभेद' (शीर्षक से ही पुस्तक अभिधानित) कवितामें कह उठतेहैं—

---

[1] प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : १९९ + ८; डिमा. ९१; मूल्य : ७०.०० रु.।

'झूठी हैं सारी शोकसभाएं और सूर्यास्त/प्रज्ञा प्राक्कथन श्लाघा और सान्निध्य/सभी दृष्टिसे परे हैं/आंखोंके आगे कोई कहीं नहीं' (पृ. ४३)। कारण यह है कि वर्तमान राजनीति आश्वासनों और कानून बनानेके अलावा 'वोटकी राजनीति' में हथकण्डोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तभी—'अध्यादेशोंके बलपर अब/देशका उत्पादन/तिगुना किया जायेगा/नदी नालोंमें/दूध और शहदकी बाढ़ आयेगी/अन्त्योदयकी परिभाषा बदल/सभी लोग समान हो जायेंगे··· क्योंकि हमारे समाजमें क्रान्ति अब—"भिखारियोंकी भीड़ लाँघ/जाली वोटों की गड्डियोंपर/चुनावी विजयके जलते जुलूसोंमें/' अथवा 'बुद्धिजीवियोंके सम्मेलनोंके/बहुमत प्रस्तावमें (पृ. ५१) आती दिखायी देतीहै। ऐसी अनिश्चितता और नेतृत्व की अकर्मण्यता तथा आश्वासनोंके मायाजालमें फसी स्थितिमें मनुष्य या जनताकी अक्षमता स्पष्ट होतीहै और होता यह है कि—'लक्ष्मण रेखा लांघ जानेपर/फिर लौट आनेका उपाय नहीं/उसके बाद तो बस/स्वर्णाभ छलावाके पीछे दौड़नाहै। (पृ. ९५) क्योंकि कुछ भी निश्चय करनेका समय नहीं होता/अन्तरंग इच्छाएं मुरझाकर/शरीरको बोझिल कर देतीहैं/ (पृ. ९६)।

अपनी सघन असहायावस्थामें भी कहीं-न-कहीं मनुष्यकी जिजीविषा बनी रहतीहै, जो विषमताओं, विसंगतियों और भविष्यकी सम्भावनाओंके मध्य—'बूंद-बूंद प्रत्याशा/आँखोंमें प्रतिबिम्बित प्रकाशसे होकर/एक अशान्त नैतिकताकी आंधी गुजर जातीहै (पृ. १११), तब वहां—'एक असहनीय आक्रोशसे/लहरें लाकर तटपर उंड़ेल देतीहैं/(पृ. १३९)। ऐसी स्थितिमें मनुष्य या साधारण जनता खो जातीहै—'झूठे वक्तव्यों, खोखली घोषणाओंमें/अविश्वसनीय भाषणोंके घड़ियाली आँसुओंमें/···सम्मेलनके प्रकरणों, सस्ती सहानुभूतियोंमें/और योजनाके अर्थहीन अन्धे वायदोंमें (पृ. १४७)। कबि इसीलिए गांधी नामक कवितामें स्पष्ट करताहै कि अब कोई सत्यान्वेषी नही, सब सत्यकी जांच-पड़ताल मात्र स्लोगन बन गयेहैं तभी—पुरानी घड़ी नहीं लाँघ सकती/दरिद्रताकी सीमारेखा (पृ. १८३)। यही कारण है प्रक्षेपास्त्रोंकी होड़ और भीमाकार उद्योगोंके प्रतिष्ठापनसे उस सामान्य जनकी भूखका कोई सम्बन्ध नहीं उभर पाता। यही कारण है कि ओड़िसाका बालियापाल, जहाँ प्रक्षेपास्त्र केन्द्र बनाया जानाहै, वहांकी स्थितिका उल्लेख कवि करताहै—'भूख है क्या और दो मुट्ठी है कितना / यहांका किसान सिर्फ पहचानताहै' (पृ. १९३)।

कविवर जे. पी. के पास शब्द हैं, भाषाकी समृद्धि है और है चितेरा मन, इसीलिए वे शब्द अंकितकर अर्थ द्योतित करनेके स्थानपर चित्र प्रस्तुत कर उसकी अर्थ व्याप्तिके क्षितिज तक ले जातेहैं। उनकी काव्याभिव्यक्तिकी गहरी पैठ शब्द चयन एवं उसकी अग्रगामितामें व्याप्त रहतीहै। यह भाषाकी सामर्थ्य है कि कविता आक्रोश और खीझ भी शब्द संयमके वितान तानकर तीव्र सम्वेदनाकी प्रतीति तक ले जातीहै तथा पाठकोंकी चेतनाको झकझोरतीहैं।

पुस्तक इलैक्ट्रो-कम्पोज होकर भी त्रुटियोंसे भरी है। उज्वल, सानिध्य, आँखों, फेंक, कार्यालय, बेंच मोढ़े (मेढ़े), घोषणाओं, सत्राल, पौंछ, प्लेटफर्म, उत्तराधिकारियों, निस्तबधताएं, मूठी (मुट्ठी), अप्रत्यासित, आघ्री (आंधी), प्रतिबिंध (प्रतिबिम्ब), मध्यान्त (मूलमें भी मध्यान्तर), विदूषक, अगोरे (अंगोरे) नकल (निकल), गिरते (गिरती), कृतिमता (कृत्रिमता) आदिका संकेत ही पर्याप्त होगा। इनसे बचाजा सकताथा। □

सरयू[1]

[विशिष्ठ नदी-काव्य]

कवि : डॉ. अनन्तराम मिश्र

समीक्षक : डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

नदी-काव्योंके रचना-सातत्यसे जुड़े होनेके कारण नदी-काव्य और कविवर 'अनन्त' के व्यक्तित्वमें घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। अवश्य ही, नदी-काव्यके स्रष्टाके रूपमें इन्होंने अपनी एक स्वतंत्र निजता स्थापित कीहै।

सरयू नदीको अप्रस्तुत योजना द्वारा मूर्त्तता प्रदान कर उसे अपनी सांस्कृतिक आत्मकथा कहनेवाली संघर्षोद्दीप्त चरित्रनायिकाके रूपमें प्रस्तुत करके कवि अनन्त ने सरयूमें उसी प्रकार साहित्यिक परकाय-प्रवेश किया है, जिस प्रकार कालिदासने 'मेंघदूत' के यक्षमें सारस्वत

---

[1] प्रका. : मानस संगम, महाराज प्रयागनारायण मन्दिर (शिवाला), कानपुर-२०८००१। पृष्ठ : ७६; क्रा. ९१; मूल्य : ४०.०० रु.।

परकाय-प्रवेश कियाहै । इस प्रकारकी आत्मकथा-पद्धति द्वारा कविने अपने विभिन्न मनोभावों तथा ज्ञानके विविध आयामोंको सरयूकी धाराके साथ समगति बनाकर उन्हें स्वच्छन्दतापूर्वक अभिव्यक्त करनेमें ततोऽधिक सफलता आयत्त कीहै, साथही यथाप्रसंग ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कथ्योंका पुनर्मूल्यांकन करके उन्हें प्रासंगिक बनानेका आशंसनीय कवि-प्रयास कियाहै ।

काव्यमें प्रकृति-चित्रणका महत्त्व अतिशय ख्यात है और यदि पूरा काव्यही प्रकृतिके नदी, वन, पर्वत आदि मुख्य उपादानोंमें अन्यतम नदीपर ही लिखा गया हो, तो उसके प्राकृतिक सौन्दर्यकी रमणीयताका शब्दातीत होना सहज सम्भव है । इस दृष्टिसे, इस 'सरयू' नदी-काव्यमें विनियोजित प्रकृति-चित्रणका प्रत्येक पक्ष या सन्दर्भ अतिशय हृदयावर्जक बन पड़ाहै ।

प्राचीन कवियोंका अत्यधिक प्रिय छन्द घनाक्षरी या कवित्त प्रकृति-चित्रणके लिए अधिक उपयुक्त रहा है । अतएव, सरयू नदी जैसे श्रेष्ठतम प्राकृतिक उपादानके बहुकोणीय वर्णनमें घनाक्षरी छन्द अपनानेके पीछे प्रबन्धपटु कविका कदाचित् यही उद्देश्य रहाहै ।

प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्यमें उद्गम-स्थान हिमालयसे प्रारम्भ कर गंगामें विलय-स्थान: छपरा, चिरांद (बिहार) तक की सरयूके प्रवाह-मार्गकी कथाको नौ सर्गोंमें पल्लवित किया गयाहै । इस क्रममें प्राकृतिक उपादानोंके सूक्ष्म अध्येता कविने मुख्यत: प्रकृतिके तीन रूपोंका चित्रण कियाहै—भौतिक प्रकृति, दृश्य प्रकृति और आध्यात्मिक प्रकृति । पहले रूपमें सहजबोधकी प्रधानता है । जैसे :

नगपतिके व्यापक आँगनमें कन्या-समान इठलातीहै,
धरतीको करने हरा-भरा ऊपरसे नीचे आतीहै,
तेरे पानीसे मोती-सी आभा उठतीहै, छहर-छहर ।
है अमरधुनी सरयू मैया ! पावन है तेरी लहर-लहर ।

पुन: दूसरे रूपमें द्रष्टा और दृश्यके बीच पार्थक्य की अधिकता है; क्योंकि इसमें आश्रय और आलम्बन का द्वैत बना रहताहै। प्रकृतिका यह रूप प्राय: उद्दीपन विभावके अन्तर्गत सर्वाधिक मिलताहै । इस सन्दर्भमें अनुप्रासबद्ध चाक्षुष और श्रावण गत्वर बिम्ब-प्रधान एक छन्द द्रष्टव्य है :

पवन-चरण युग तटपर 'सर-सर'
लहर-लहर सुन-सुनकर टलमल ।
'हर-हर' हर स्वर हर-जप-सम शुचि
जल पर तिर-तिर रविकर रलमल ।
वरुण-सुरथ-निभ 'घर-घर' स्वन भर,
सलिल सतत गतिमय कर 'छल-छल'।
सकल सकल चर-अचर श्रवणगत—
मुखर मधुर मृदु कलरव कल-कल' ।।
(२.२८)

तीसरे आध्यात्मिक प्रकृति-रूपमें प्राय: सर्वत्र सर्वात्मवादी दृष्टिकी स्वीकृति मिलतीहै । यहाँ प्रकृतिके गोचर प्रत्यक्षोंमें विराट् सत्ताके अगोचर संकेतोंकी ऐसी कल्पना या अनुभूति है, जो आश्रय, यानी द्रष्टाके विमुग्ध हृदयकी भावनाओंका आलम्बन बन गयीहै । दूसरे शब्दोंमें, आध्यात्मिक प्रकृतिके अन्तर्गत आश्रयकी अन्तर्मुखीय अध्यात्म भावनाप्रवण धारणाओंका काव्य-निबद्ध प्रकृतिपर प्रभाव-संक्रमणकारी प्रक्षेपण हुआहै । कतिपय उदाहरण :

सरयू ! तू नीराकार ब्रह्म है, नमन तुझे,
राम तुझमें समाये, राममें समायी तू ।
(१.१)
सुस्थिर समाधि अविकल्प है युगान्तरोंसे
सुन रहा निनद अनावृत हिमाद्रि है ।
(१.७)
देता प्रेरणा अजस्र आत्मिक उपासनकी
वासनाका स्वप्नमें भी भान करता नहीं ।
(१.९)
भौतिक समृद्धि-रत्नही दिये न भारतको,
अन्तरभी संस्कृत कियाहै नगराजने ।
(१.१०)

कुल मिलाकर, कवि अनन्तके प्रकृति-चित्रोंमें स्वानुभूत सौन्दर्य, आह्लाद भाव, आनन्दानुभूति, भावमग्नता और मानवीकरणका विपुल समाहार हुआहै ।

इस काव्यमें कविने हिमालयसे छपरा, चिरांद तक प्रवाहमयी सरयूके तटवर्ती स्थानोंकी भौगोलिक विशेषताओंके साथही ऐतिहासिक महत्त्वको भी रेखांकित कियाहै । परन्तु, यथाप्रस्तुत ऐतिहासिक तत्त्व उस लौह-यष्टिके समान है, जिसपर भौगोलिक तत्त्वकी बेलें निर्बाध रूपमें फैली-पसरी हैं ।

भाषाविद् कविने वर्ण्य वस्तुके विकास-विस्तारके लिए प्राचीन घनाक्षरी छन्दको भलेही स्वीकार किया हो, पर उसकी भाषा नयी है, शिल्प-विधान भी नया है । इसलिए शास्त्रदीक्षित कविकी काव्यभाषा अधिक

प्राणवती हो उठीहै। उपमा, रूपक, श्लेष आदि विविध अलंकार कवि अनन्तकी आत्माभिव्यंजक भावनाओंके प्रेषणमें सहायक सिद्ध हुएहैं। इन अलंकारोंने केवल कविकी वैखरीको ही मण्डित नहीं कियाहै, अपितु ये सम्यक् प्रभावकी सृष्टि करनेवाले उदात्त भावोंकी अभिव्यक्तिके भी आवश्यक उपादान बनेहैं। भाषाके प्रवाहमें व्याकरणको बन्धन माननेवाले (द्र. २.२५) भाषाशास्त्री कविने भाषिक प्रयोगकी विलक्षणतासे निर्मित पदशय्यामें वर्णमैत्री, शब्दमैत्री, पदमैत्री आदि का आदर्श निर्वाह हुआहै, जिससे कहीं-कहीं सांगीतिक स्पर्शका भी सहज विनियोग हुआहै। इस सन्दर्भमें उपर्युक्त भाषिक गुणोंसे संवलित एवं मुहावरा-मंडित अभंग श्लेषविद्ध चाक्षुष विम्बका एक उदाहरण दर्शनीय है :

मेरा पानी अगर निपानपर भी चढ़े तो—
उसके दृगोंका पानी फिर नहीं मरता।
पानी-पानी होता मुझे देखते ही मलिनत्व,
फिर कोई नहीं उसे पानीपर धरता।
जग जानताहै— सब मानतेहैं, पानी मेरा,
पानीका जो पानी दूधका है दूध करता।
आतेही निकट माँग जाते जाते पानी पाप-ताप
मेरे घर पानी यमराज नित्य भरता।
(२.२४)

इस प्रकारके भाषिक चमत्कारसे युक्त द्वितीय सर्ग की ही छन्द संख्या २९, ३० और ३१ भी द्रष्टव्य हैं।

कुल मिलाकर, कवि अनन्तका यह 'सरयू' प्रबन्धकाव्य प्राचीन भाषाकाव्यका ही आधुनिक नव्योद्भावन है। इसलिए, भाषाप्रौढ़िसे सम्पन्न कठिन काव्यके पाठक इस काव्यसे जितना रीझेंगे, उनसे इतर तथाकथित नयी कविताके पाठक उतना ही खीझेंगे। यह उत्तम नदी-काव्य विषयकी दृष्टिसे जितना दोषरहित है, मुद्रणकी दृष्टिसे उतनाही दूषणसहित। ☐

उम्रभर का हिसाब[1]

कवि : चन्द्रकान्त सोनवलकर

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

ये कविताएं, जैसाकि शीर्षक़से स्पष्ट है, एक अपूर्णकालिक कविकी समय-समयपर लिखी कविताएं हैं। 'उम्रभर' का अर्थ आज़तक की उम्रसे है। भविष्य में उसने कविताएं न लिखनेकी घोषणा नहीं कीहै। 'उम्रभर' शब्दसे, कोई चाहे तो यह अर्थभी लगा सकता है कि जितनी कविताएं करनीथी करलीं परन्तु कवि-कर्म इस प्रकारके कथनोंकी सीमाओंमें नियन्त्रित होकर नहीं रहता।

इन कविताओंमें किसम-किसमके कथ्योंको विविध छन्दोंमें, जिनमें मुक्त छंदभी है, कविने अपने मनकी उमंगों, रुझानों, समझ अथवा मनको व्यक्त कियाहै। सटीक टिप्पणी, प्रतिक्रिया, 'स्व' की दृष्टि अथवा निजी अनुभवका मूर्तन करनेकी प्रवृत्ति भी कविताओं में दिखायी देतीहैं।

कविने स्त्री, पुरुष, परिवार, प्यार, स्मृतियों और घटनाओंको कविताओंमें ऐसे परिभाषित कियाहै कि उनके प्रतीयमान अर्थोंकी प्रतीतिसे सौन्दर्यकी सृष्टि होती जातीहै। ऐसीभी कबिताएं हैं जो संम्वेदनाके बारीक रेशोंमें तार जैसी झनझनाहट पैदा करतीहैं। 'प्रथम परिचय', 'तृप्ति', 'मेहरबानी' आदि कविताएं टुकड़े-टुकड़े अनुभवोंके अंकन हैं।

कवितामें बात कहनेका सलीका सोनवलकरको आता है। 'प्यार' शब्द और उसके अर्थ एवं प्रभावपर लिखा गया मुक्तक द्रष्टव्य है—

प्यार पूजा है महज चंदन नहीं है
प्यार दुर्गम वन सुगम उपवन नहीं है।
प्यार मंजिल है इसे भटकाव मत कह
प्यार तो है मुक्ति भव-बंधन नहीं है।

स्वयंके बारेमें कविका अपना मानना है—

प्यारका पथ हूं मीलका पत्थर नहीं हूं।
मैं सूर्यका रथ हुं महज चक्कर नहीं हूं।
नित कमल खिलतेहैं जिनमें वो सरोवर
प्राणहंता विकट लहरोंकी महज टक्कर नहीं हूं॥

गीत और गजल, मुक्तक और इतिवृत्त, प्रयोग और परिपाटीका इन कविताओंमें समागम देखनेको मिलताहै। कविने ज्यामितिके पैमानों, गणितके ऐजनों और अंकोंके माध्यमों तक का प्रयोग बातको प्रभावशाली बनाने और उसे सम्प्रेषित करनेके लिए कियाहै। 'नयी कविता'के आंदोलनके दौरकी गूंजको प्रतिध्वनित करती एक कविता है, उसे प्रतिध्वनि क्या प्रतिक्रिया कहना अधिक ठीक होगा। कविता मुक्त छंदमें है—

---

[1] प्रका. : श्रीराम प्रकाशन, सिविल वार्ड नं. २, राम मन्दिर, दमोह (म. प्र.)। पृष्ठ : ५६; क्रा. ९०; मूल्य : १०.०० रु.।

जब एक/ नयी कविताका/ कवि मरा/ न स्वर्ग गया/ न भव बंधनसे तरा/ आकर पेश हुआ/ यमराजके दरबारमें / इसे देखतेही/ चित्रगुप्तने कहा/ तुम्हें जो कहनाहै/ शीघ्र कह डालो/ बेचारा कवि था/ कोई वकील नहीं/ पहले हड़बड़ाया/ फिर सोचा/ फिर धीरे-से/ मुस्कराया/ आंख बंद की/ और विचारके/ पचास-सो/ कविताएं/ सुनादीं/ यमराज चीखकर/ गुस्सेमें बोले/ चित्रगुप्त हिसाबमें/ हेर फेर करदो/ इसे देना तो नर्क हैं/ पर मुक्त कर दो/ यह यहां रहा तो/ हम सबका बेड़ा गर्क है/ नयी कविताका कवि है/ इसके लिए/ पृथ्वी ही नर्क है ।

कहना न होगा कि कविताकी अंतिम तीन पंक्तियाँ नयी कविताके जीवन-दर्शनका भाष्य कर रहीहैं । ऐसा भाष्यजो स्वयं कवितामें होनेके कारण 'सूत्र रूप' में है । वह यमराज, चित्रगुप्त, मृतक कवि एवं नरक जैसे आख्यान-शब्दोंके रूपमें व्यक्त हो रहे हैं । ऐसीही एक कविता 'कली और भंवरा' है जिसे पढ़ते हुए निरालाकी 'जूहीकी कली' के नायक-नायिका याद आतेहैं । परन्तु सोनवलकर की 'कली' अभी वय: संधिके उस पार नहीं हुईहै । वह प्रगल्भ और वाचाल है । भौंरे को अपनी ओर आकृष्ट होते देख उसकी अवस्था—

अल्पवयस्क कली / लज्जासे लाल हुई/ सिकुड़ कर कली बोली/ बावरे । वय:संधिकी/ बेला तो आनेदे/ यौवनसे पूर्ण है तू/ मुझेभी हो जानेदे ।

कलीके अनुबंधको भौंरा स्वीकार कर लेताहै । वह वय:संधिके छूटनेकी प्रतीक्षामें बैठीही होतीहै कि माली आकर कलीको तोड़ ले जाताहै भंवरा चेतन प्राणी है । अतः मालीके इस कृत्यसे उसके हृदयमें उथल-पुथल मचतीहै । रूपकी नश्वरता और आत्माके अजर-अमरत्वको वह पहचान जाताहै । उसी आत्म-बोधनके गीतोंको गाता-बजाता वह फूलोंके द्वार-द्वार भटकताहै । प्रकृतिके एक छोटेसे व्यापारमें इतने बड़े आशयको भरकर सोनवलकरने निरालाकी उस कविता को मानो दूसरी ऊंचाई दे डालीहै ।

सोनवलकरके इस छोटे प्यारे-से कविता-संग्रह में कहीं तो सावनके मेघोंके साथ परिचय पानेके लिए सुकुमार पृथ्वीमें लज्जाके अंकुर फूटेहैं । पृथ्वी अपने आंचलको सतरंगी इन्द्रधनुषसे सजाकर बिजलीकी चमकके साथ स्वागतको खड़ीहै । पृथ्वी और आकाशके इतने व्यापक और विराट् बिम्बको छोटी-सी कविताके दर्पणमें प्रतिबिंबित करनेका प्रयत्न एक ओर, तो दूसरी ओर 'तृप्ति' जैसी छोटी कविताका कथ्य ध्यानमें आताहै । धानी चूड़ी पहने गोरा-सा हाथ खिड़कीसे बाहर हिलते दिखा और कविता होगयी ।

स्त्री और पुरुष' कविता है —'पुरुष एक/ बादल-सा है/ जो सोच-समझकर/ घंटों ठहरकर/ बड़ी मुश्किलसे/ कभी बरसताहै/ और स्त्री/ एक बिजलीहै/ जो रह-रहकर चमकतीहै/ जितनी छिपाओ / उतनी दमकतीहै /, न जाने कब/ किसपर/ बिफर जाये/ चमक कहीं/और कहीं/ गिर जाये ।

चन्द्राकांत सोनवलकरकी यह कबिता-पुस्तिका 'उम्रभरका हिसाब' नहीं हो सकती । उनके ऊपर हिसाब बहुत आताहै । पुरानी भूलचूक माफ भी कर दी जाये, आगेका हिसाब तो उनको देना ही होगा और हम यह हिसाब 'कविताओं' के रूपमें पाना चाहेंगे । चन्द्रकांतजी लम्बी उम्र पायें और कविताएं लिख-लिखकर छपवायें । उनके प्रति हमारी शुभकामनाएं हैं । □

जैसे ओस कहानी[१]

कवि : सुरेशकुमार

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

सुरेशकुमारका ५६ हाइकुओंका उतने ही रेखांकनोंसे युक्त प्रस्तुत संकलन हिन्दीमें अबतक की हमारी जानकारीके अनुसार सबसे सार्थक, संवेदन-सम्प्रेषण और कविताधर्मी प्रतिबद्धतासे जुड़ा हुआ मालूम होता है । रेखांकनोंने उनकी अपूर्वताको रेखांकित कर दिया है । वे कविकी कला-रूचिताके द्योतक तो हैंही, कविताओंके प्रतीयमान अर्थकी तलाशके लिए एक विस्तृत क्षेत्रभी सहृदय-पाठकके सम्मुख उपस्थित कर देतेहैं । भूमिकामें कविने कहाहै कि वे रचनाओंके 'इलस्ट्रेशंस'

---

[१] प्रका. : सुनिज प्रकाशन, ज्वालापुरी, जी. टी. रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.) । पृष्ठ : ६४; क्रा. ६१; मूल्य : ३०.०० रु. ।

नहीं हैं फिरभी रेखाओंके द्वारा ज्ञानेन्द्रियोंका ऐसा रेखा-चित्र बनातेहैं कि उसमें एक स्त्री-आकृति उभर आतीहै और आकृतिमें बिम्बित होताहै एक द्वन्द्व।

रेखाओंको वे आवश्यकतानुसार इन्द्रियोंका आकार देते गयेहैं।

संकलन : दुनियाँ फ़ानी
खिले फूलमें जैसे
ओस कहानी

से शुरू होकर :

जीवन फ़ानी
जैसे गर्म तवेमें
जलता पानी

में पूरा होताहै। अंतिम छन्दके शेष पन्नेमें जो रेखांकन है उसमें कान और आंख नहीं हैं। नाक आधी है। मुंह बन्द है या है ही नहीं। सात रेखाओंके संक्षिप्त प्रयोगसे जो वस्तु इंगित है वह जीवनकी त्रासदीभी हो सकतीहै विडम्बना भी और विशेषता भी। आजकी दुनियांकी अंधी भाग-दौड़का जितना छोटा या बड़ा रूप हम कल्पित करना चाहें कर सकते है।

चालीसवें पृष्ठपर हाइकु है :

सपने अब
दबे पांव आतेहैं
न जाने कब

पृष्ठकी रेखाकृतिमें कोई इन्द्रिय ही नहीं है। सिर्फ नाककी डंडी, भ्रू-रेखा और बगलके गोलकसे गर्दनके घुमाव तक आती एक रेखा है। विषयोंसे विश्राम लेती इन्द्रियोंकी स्थितिका ठीक-ठीक अहसास कराती आकृति है यह। छन्दका पूरक चित्र है और चित्रका पूरक छन्द। सुरेशकुमारके हाइकु सही बिम्बोंकी सृष्टि करते हैं तभी कविताके शब्द सही 'अर्थों' की प्रतीति करानेमें समर्थ होतेहैं।

हाइकु अपने मौलिक रूपमें चित्र-कविता ही हैं। जो वस्तुगत आकारमें चित्र है वही सम्वेदनाका सहधर्मी वाहक मनमें बिम्ब हो जाताहै। यों वे भाषिक स्तरपर ही दो अलग-अलग चीजें हैं। दोनोंके द्वारा मानस-पटपर प्रतिबिम्बन एकही चीजका होताहै।

सुरेशकुमारने रेखांकनके द्वारा चित्रको, और शब्द द्वारा सम्वेद्य बिम्बकी सृष्टि करके एक अनूठा और मौलिक माध्यम आविष्कृत कर लियाहै। □

फुनगियोंपर लटका एहसास[1]

कवि : अशोक आन्द्रे

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

अशोक आन्द्रेकी इकतालीस कविताओंके इस संग्रहके केन्द्रमें भटकाव एवं दिशाभ्रम है। कवि, बाहरी दुनियांमें इतना बिखरा हुआ और टुकड़े-टुकड़े जीवन बटोरकर जी रहाहै कि अपने भीतरके सम्वेदना-तन्तुके तानों-बानोंको बुननेकी उसे कल्पना भी नहीं। अपनी भीतरी शक्तियोंको टटोलने और परखनेकी प्रक्रियासे गुजरे बिना कविताकी जो स्थिति हो सकतीहै, यही इस संग्रहकी कविताओंकी हुईहै। संवेदनहीनता और विचार-क्षीणतासे कविताएं शुरू हुईहैं। मुहावरा गढ़ने और लटकोंके आविष्कारमें लगी चेतना ज्योंही काव्यात्मक आकार लेनेको होतीहै कि कविता पूरी हो जाती है। यों संग्रहकी अधिकांश कविताएं पाण्डुलिपिके खण्डित प्रतियों जैसी होती जातीहैं। जो कविताएं पूरी बन गयीं उनमें 'वसन्त', 'छायाके संग जोड़ा है,' 'विश्वास', 'राजकुमार और मेरी बच्ची' आदि प्रमुख हैं।

'राजकुमार और मेरी बच्ची' कदाचित् संग्रहकी अकेली कविता है जो लड़कीके ब्याहकी उम्र, पिताके उत्तरदायित्व और युगकी क्रूरताके बीच फँसी एक नाजुक मानवीय-सम्बन्धकी ओर इशारा करतीहै। इस कवितामें कवि अपनी निजी भावनाओंका और उद्घाटन कर सकताथा परन्तु आत्मगोपनकी प्रवृत्तिके कारण वहभी होनेसे रह गया। अशोक आंद्रे बहुत सामान्यीकृत ढंगसे विषयवस्तुकी स्थापना करतेहैं या फिर निराकार ढंगसे उसको प्रस्तुत करतेहैं। इससे कथन-वैशिष्ट्यमें निहित किसी ध्वन्यर्थकी प्रतीतिकी गुंजाइश नहीं हो पाती। 'मेरी बच्चीके राजकुमार' के विषय पर सोचते हुए भी स्थितियाँ निराकार होने लगतीहैं—

> जानताहूँ कि/आजतक कोईभी राजकुमार/इस धरतीपर नहीं उतराहै/जिसके बीज हर मां-बाप/रोपतेहैं,/उसके सोलहवें वसन्तके आनेसे पूर्व।/

---

[1] प्रका. : पारुल प्रकाशन ८८६/५८ त्रिनगर, दिल्ली-३५। पृष्ठ : ६४; डिमा. ९०; मूल्य : ३०.०० रु.।

जिसे महसूसकर सुनता हूं/आतंकके उस सायरन की जो/शातिर कुत्तोंकी तरह पीछाकर/मेरी सपनीली कल्पनाओंमें छेदकर/भविष्यको लीलते हुए, उसकी/जिन्दगीके एक-एक सपनेमें/आग लगा देगा ।

आन्द्रेकी कविताओंमें तथ्योंको रेखांकित करना ही मुश्किल होताहै । 'सत्य' का सृजन तो ऊंची चीज है । उनकी कविताओंमें विचारकी मुद्रा बनतीहै परन्तु व्यक्त होते-होते बिला जातीहै । अनेक कविताओंमें वे हवाई किस्मकी भावनाओंमें बह जातेहैं और आवेगमें कह उठते हैं —

> उठो मानव ! /यह वही देश है/जिसने/विश्व शांति का सन्देश/पूरी दुनियांको/सबसे पहले दियाथा/ताकि आनेवाली कलकी पीढ़ी/तुम्हारे प्रतिकृतज्ञ होकर नतमस्तक हो सके/जिसके लिए तुम्हेंवापस उसी पथपर लौटकर/नये सिरेसे अपने मार्गको प्रशस्त करना होगा ।

इस सपाट जैसी कवितामें भी आखिरी तीन पंक्तियोंमें उलझाव स्पष्ट देखाजा सकताहै । इस प्रकार के उलझाव उनकी हर कवितामें हैं । नये कवियोंको पढ़-पढ़कर शायद उन्होंने उलझन और अस्पष्टताको एक अनुकरणीय तत्वके रूपमें ग्रहण कियाहै । वस्तुत: यह कविताका उत्कृष्ट गुण नहीं है, कमजोरी है । जो जितना बड़ा कवि होताहै उतनाही सरल और सहज होताहै । अनुभूत सत्यको कहनेमें उलझाव कम होताहै । आन्द्रेको हमारी शुभ कामनाएं हैं कि वे अपने अनुभवकेके संसारको शब्दोंमें रचेंगे और बिना मुद्रा, लटके और नकलके अपनी शैलीका निर्माण करते हुए कविताएं लिखेंगे । □

हिन्दी ग़ज़ल

न्याय कर मेरे समय[1]

कवि : चन्द्रसेन 'विराट्'

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

चंद्रसेन 'विराट' का सातवां हिन्दी गजल संग्रह 'न्याय कर मेरे समय' बहस-दर-बहसके अंतर्गत कुछ मान्यताएं और अवधारणाएं साथ लेकर प्रस्तुत हुआ है । संक्षेपमें कुछ तथ्य इस प्रकार हैं—"हिंदी गजल मूलत: हिंदी गीतसे संबंध रखतीहै; हिंदी गीतिकाव्यके विषयही प्रमुखत: गजलके विषय हैं; युगबोध, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और अभिव्यक्तिका सामान्यीकरण हिन्दी गजलमें स्पष्ट है । दुष्यंतकी नकल और पिछलग्गूपनने कई प्रतिभाओंको चुकता कर दिया; गजल-संग्रहोंकी बाढ़का दुष्परिणाम संभावनाओंको धूमिल बना रहाहै; उधारका विद्रोह और नकली जनवादका स्वर हिंदी गजलके जीवंत बननेमें बाधक है ..आदि ।" 'विराट' ने हिंदी-गजलकी विशिष्ट प्रकृति, रूपांकन और तेवर देखकर उसे मुक्तिका कहाहै, मतलेको 'भावोदय' एवं मक्तेको 'अंत' कहाहै । वे शेरको 'द्विपदी' के नामसे पुकारतेहैं । उन्होने मात्रिक छंदोंका विशेष आग्रह कियाहै...। गजलकी परिभाषामें 'विराट'ने उर्दूके छंद रूपाकारसे परहेज न करके उसे अपनी विशिष्ट हिंदी परंपरासे उद्भूत गीति रचना मानाहै...।

प्रश्न उठताहै कि हिंदी गजलमें यदि उर्दूके कुछ प्रचलित शब्द आ जातेहैं तो उसमें आपत्ति क्यों ? जब हम अंग्रेजीके उन शब्दोंको प्रयुक्त करतेहैं जो जन साधारणमें आज प्रचलित हो गयेहैं तब उर्दूके ऐसेही शब्द आ जानेपर आपत्ति क्यों ? शमशेरका यह कथन इस संदर्भमें सटीक होगा—'मैं यह तो मानताहूं कि खड़ी बोली एक है और उसके दो रूप हैं—हिंदी और उर्दू । पर दोनों एक नहीं हैं—इस विवादने एक हिंदुस्तानी भाषा बननेके मार्गमें दीवार खड़ी कीहै जो आजभी कायम है ।'' जहां तक दुष्यंतकी गजलोंका सवाल है, निर्विवाद रूपसे चाहे वे हिंदी गजलें हों या उर्दूकी प्रकृतिके निकट हों या हिंदुस्तानीमें हों, श्रेष्ठताके पैमानेको देखते हुए आजभी अव्वल हैं । गज़लकी परिभाषामें 'विराट' ने उर्दूके छंद और रूपाकारसे परहेज न करनेवाली बात लिखीहै फिर उदारतापूर्वक इस प्रगतिशील दृष्टिकोणसे परहेज क्यों ? जब फारसीकी विधा उर्दूसे होती हुई हिंदीमें आयी तब उसे शुद्ध हिंदी गज़ल बनानेके चक्करमें 'मुक्तिका' नाम देकर द्विपदी, भावोदय, अंत आदि शब्दावली रचकर बहुत व्यापक स्तरपर कोई तीर नहीं मारा

---

[1] प्रका. : समान्तर प्रकाशन, शुजालपुर मण्डी, जि. शाजापुर (म. प्र.) । पृष्ठ : ११०; डिमा. ९१; मूल्य : ५०.०० रु. ।

जा सकता । शायद हिंदी ग़ज़लके इस नये शास्त्रको प्रस्तुत करनेमें स्वयंको सर्वोपरि बतलानेकी इच्छा ही अंतर्निहित है ।

प्रस्तुत ग़ज़ल संग्रहकी कतिपय विशेषताएं हमारा ध्यान आकृष्ट करतीहैं—युग जीवनकी सच्चाइयां, राजनीतिक उत्पीड़न, आर्थिक शोषण, दमन और संत्रास इन गजलोंमें प्रबल रूपमें अपनी अभिव्यक्ति पा सकेहैं—

पेटपर, पीठपर अजानेसे, / चाबुकोंका प्रहार है
भैया.../आज इंसान कैद है खुदमें /और खुदसे
फरार है भैया—(पृष्ठ ३७/३८)

प्रतीक, संकेत और लक्षणा-व्यंजनाका कमाल 'विराट' की गजलोंमें द्रष्टव्य है । कहीं इंसानोंके जंगलमें आग लगनेका संकेत है और कहीं परिंदोंके चीखनेका—

सूखा भी क्या सूखा, धरतीकी छाती तक दरक गयी
आग बुझाता कैसे बादल, खुद बादलमें आग लगी
हरे गांवका वासी गबरू एक जवान विवश होकर
बागी बन बीहड़में कूदा तो चंबलमें आग लगी—
(पृष्ठ-१५) ।

'विराट' ने जहां-जहां ऐतिहासिक या पौराणिक संदर्भोंको उकेराहै वहां शेरोंमें नयी चमक, असर और ताकत पैदा हुईहै—

(I) सत्ता तो है तिष्यरक्षिता
हम क्यों बने कुणाल दुबेजी--(पृष्ठ-२५)
(II) पट्टी बांध करे अनदेखा पुत्रोंके दुष्कृत्योंको
अंधे हैं धृतराष्ट्र, क्षम्य, पर गांधारीकी
चिन्ता है—(पृष्ठ ४१)
(III) मारा गया सफरमें क्या द्रोण-पुत्र ही
सच बोलना युधिष्ठिर! सच टालना
नहीं ..
मनसे पुकार साग्रह लिख पत्र रुक्मिणी
आयें न कृष्ण ऐसी संभावना नहीं—(पृष्ठ ४४)

कविने कृष्ण, कर्ण, अर्जुन, दुःशासन, विक्रमादित्य, शकुंतला-दुष्यंत आदिके संदर्भ उठाकर जो अर्थवत्ता प्रदान कीहै, वह उनकी गजलोंकी अपनी पहचान और विशिष्टता बन गयीहै । यहभी उल्लेखीय है कि 'विराट' के गहन अध्ययनकी छाप उनके काव्य-संग्रहों में देखी जा सकतीहै । जीवन, साहित्य और शिल्पकी क्या प्रयोजनीयता होनी चाहिये—इसपर भी कविकी दृष्टि ध्यातव्य है—

जीवनकी हो दृष्टि मानवी/ कोण आधुनिक हो
तो अच्छा /मूल्य मानवी, मति वैज्ञानिक/ सोच
सामयिक हो तो अच्छा—(पृष्ठ २६)

कविने साहित्यकी प्रासंगिता, बुद्धि और भावनाके सामंजस्य एवं सपनोंके वास्तविक रंगोंकी बात कहकर मुक्तिकामें मात्रिक छंदोंकी बातपर जोर दियाहै ।

'विराट' को इस बातकी पूरी प्रतीति है कि सत्ताके काजलवाले गलियारोंसे 'सज्जन लोग अक्सर डरतेहैं । शाल और श्रीफलका सत्कार बहुत मंहगा होताहै क्योंकि पुरस्कार या सम्मान देकर कलाकार को खरीदा जाताहै, चारण बनाया जाताहै या उसकी ज़ुबान सिल दी जातीहै । चंद्रसेन विराट 'राजा सोना मत' रचनामें जो चेतावनी देतेहैं वह बहुत सामयिक है और रचनाकारकी दो-टूक शैली तथा साहसिकताका परिचय देतीहै । वे जानतेहैं कि 'खरी-खरी दो टूक कहो तो जेलोंमें/ सड़ता संत कबीर हमारी बस्तीमें ।" फिरभी फक्कड़ताके साथ कलमकी लुकाठी लेकर बेलाग बात कहतेहैं—

आंख लगी तो खड़ी फसल चर जायेंगे
ये आवारा ढोर कि राजा सोना मत
तू सोया तो बस्तीमें घुस आयेंगे
भूखे आदमखोर कि राजा सोना मत—
(पृष्ठ १९) ।

'विराट' की छोटी-बड़ी बहरें, आंचलिक शब्दावलीका सटीक प्रयोग, संबोधन शैली और कहीं-कहीं शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दावली इन गजलोंको एकदम नयी पहचान देतीहै—'दुबेजी, भैया, राजा सोना मत, मित्र' ग़ज़लोंमें संबोधनका लहजा हमें बहुत आकृष्ट करताहै—एकदम संवादकी मनःस्थितिमें—

(I) सचका टूटा हुआ कमंडल, / फटा हुआ
कोपीन है मित्र/ये धर्मांध रचेंगे दंगे, प्रथा वही
प्राचीन है मित्र ।—(पृष्ठ ५३/५४)
(II) छुटभैयोंको पकड़ा दीहै/जलती हुई मशाल
दुबेजी....../खूब कमायाहै माथुरने /फला उसे
भोपाल दुबेजी । (पृष्ठ २२/२३)

चंद्रसेन विराटकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने अकाव्यात्मक शब्दोंको काव्यात्मकता प्रदान कीहै—

आनुषंगिक चिकित्सक, संवत्सर, वानस्पतिक, प्रणवाक्षर, छिद्रान्वेषिणी, सांकेतिक, आदि। 'नर्मदा' जैसी लम्बी गजल संस्कृतनिष्ठ शब्दावलीमें अप्रतिम हैं। 'विराट' उन रचनाकारोंमें से हैं जिन्होंने साहित्यमें सांस्कृतिक पक्षको रेखांकित करते हुए सौंदर्य और सत्यको शिवत्वसे अनुस्यूत कियाहै---

नफरतें झेलके वे लाश बनेहैं जिंदा
जिन्दगी बख्श उन्हें और मोहब्बत दे जा...
बेअदब लोग महफिलमें चले आयेहैं
उनको आदाब सिखा थोड़ी शराफत दे जा
(पृष्ठ १०५)।

'विराट' गजलको 'सिद्ध शिखरोंपर टहलते हुए' देखना चाहतेहैं। वे ऊर्ध्वमुखी साहित्यके हिमायती हैं। अंतमें यह बात ध्यान खींचनेवाली है कि तमाम त्रासद और भयावह स्थितियोंके होते हुएभी 'विराट' का आस्थामय स्वर हमेशा बुलंद है—

(I) अब भी है उम्मीद कि बस्ती जागेगी
गाता एक फकीर हमारी बस्तीमें—
(पृष्ठ १८)।
(II) सावधान हो जाओ सारे सिंहासनवालो
वर्तमानके राजाओंकी रैयत बदलेगी—
(पृष्ठ ५१)।

एक बात और---आलोचक और आलोचनाके बारेमें 'विराट' केवल छिद्रान्वेषणकी बात ही सोचतेहैं, यह उनका एकांगी विचार है—

कुछ कवियोंको जीवन भर तक / जन-स्वीकृति
मिल जानेपर भी / आलोचक इतने कृपण मिले/
कोई मूल्यांकन नहीं मिला।

सही बात यह है कि पाठकसे बढ़कर कोई दूसरा आलोचक नहीं होता। यदि जन-स्वीकृति मिल चुकीहै तो फिर आलोचककी क्या परवाह? वस्तुत: आलोचकका रचनात्मक हस्तक्षेप रचनाको कलाबाजियों, शब्दोंकी मीनारों और सामाजिक दबावोंसे कटकर पलायन करनेकी दुष्प्रवृत्तिसे बचाताहैं। आलोचना कोई मानसिक जुगाली नहीं हैं बल्कि अंधे आक्रोशकी गर्म और सरलीकृत सपाटबयानीसे रचनाको नियंत्रित करनेकी आवश्यकता है। जब समीक्षक यह कह देताहै कि रचनाकारके वक्तव्योंके अनुरूप रचनाएं नहीं ढल सकीहैं तब रचनाकार क्षुब्ध होकर सही मूल्यांकन न होनेका दावा करताहै। जब यह कह दिया जाये कि अमुक रचनाने नयी जमीन तोड़कर अपने प्रतिमान स्वयं गढ़ेहैं तब रचनाकार उसे तटस्थ, मूल्यांकन मानने लगताहै। जब ईमानदार रचनात्मकताकी धरोहर रचनाकारके पास है तब अपने समीक्षककी ईमानदारी पर भी आस्था रखना जरुरी है क्योंकि शिविरबद्धता तथा नकारवादी आलोचकोंके अलावा निस्संग और जागरूक आलोचक भी रचनाकारको मिलेंगे ही। रचना स्वयं सिर चढ़कर बोलतीहै। हमारी रायमें चंद्रसेन 'विराट' उन साहित्यिक व्यक्तित्वोंमें से हैं जिन्होंने परिमाण और गुणवत्ता दोनोंकी दृष्टिसे विगत तीस वर्षों की साहित्य साधना और मंचीयतासे अपने वैशिष्ट्य को प्रमाणित कियाहै। वे समीक्षकोंकी वैसाखियोंके मुंहताज नहीं हैं। ☐

उम्मीद-ए-सहर[1]

शायर : किशोर तिवारी 'केशू'
समीक्षक : डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

गजलने हिन्दी काव्यको केवल कहन भर नहीं दीहै वरन् उसने हिन्दी काव्यकी तासीरको भी बदला है। उसने गीतके विरोधमें जा रही कविता-शैलीको चुनौती तो नहीं दी किन्तु उसके तेवरोंको अपने अंत: सृजनमें समेटकर गीतात्मकताको जांचने-परखने और सोचने-समझनेकी एक नयी दिशा अवश्य दी। गजलने अपने समयके भदेसपन और ऊबड़-खाबड़ स्वभावको अपनी अक्खड़ आवाजमें ही कहाहै। हिन्दी कवितामें अब गजलकी भी एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण उपस्थिति बनतीजा रहीहै। पिछले दो-तीन दशकोंसे हिन्दीमें गज़ल लेखन भरपूर मात्रामें हो रहाहै और उसने अपना पाठक वर्गभी तैयार कियाहै। ऐसे समय में जब हिन्दी कविताको सामान्य पाठक वर्गसे मिलने वाली सहानुभूति समाप्त-सी होतीजा रहीथी तब गजलने अपनी हैसियतको सामान्य पाठक वर्ग तक फैलाया और वह पाठकोंके होंठोंपर चढ़कर बोलने लगी। कविता यदि अपने आपको जनभावनाके अनुरूप ऐसे मुहावरोंमें बदलनेकी शक्ति पा जातीहै और

---

[1] प्रका.: सुविधा प्रकाशन, घंटाघर, दमोह-४७०६६१। पृष्ठ : ५२; क्रा. ६१; मूल्य : ५.०० रु.।

आदमी अपने सुख-दुखको उसके माध्यमसे व्यक्त करने लगे इतनाही नहीं यदि वह अपने लिज-लिजे और बजबजाते परिवेशसे निजात पानेके लिए कविताकी पंक्तियोंको एक परिवर्तनकारी ताकतकी तरह लेने लगे तो कविताका अन्तिम लक्ष्य स्वयमेव ही पूरा हो जाता है। मेरी रायमें हिन्दीके स्तरपर यह काम गजलने बखूबी कियाहै । किशोर तिवारी 'केशू' के सद्यः प्रकाशित गजल संकलन 'उम्मीद-ए-सहर' को पढ़ते-पढ़ते एक बारगीमें हिन्दी गजलकी शक्तिसे रू-ब-रू हुआ। मुझे लगा कि कविताकी खासियतको ओढ़ने-पहननेवाले समीक्षकोंको शायद ही इस बातकी भनक होगी कि कविताका यह अंदाज हिन्दी समीक्षककी आवश्यकताको ही बरखास्त कर रहाहै।

बावन पृष्ठीय इस गजल संकलनमें हमारे अपने समयकी तमाम विसंगतियां उभरकर आ जातीहैं। इन विद्रूपताओंसे जूझनेकी शक्ति केशू तिवारीके पास है किन्तु व्यवस्था इतनी चालाक और चतुर है कि रचनाकारकी अपनी शक्ति टूटने लगतीहै। जूझने और टूटने का द्वन्द्व और भविष्यके प्रति गहन आस्थाबोध इस संकलनका वैशिष्ट्य है—

"इन जुल्मतोंकी चाहे जितनी भी उमर होगी।
हो रात भले लम्बी निश्चित है सहर होगी।
जो दिलसे जुल्मतोंका तुम डर निकाल फेंको—
इतनी तो गयी-गुजरी तस्वीर न फिर होगी।"

—(पृष्ठ ४८)

हमें हर हालतमें मुंहजोर तरंगोंसे लड़ाई लड़नाहै, चाहे टूटी पतवारें हों या टूटा रथ-चक्र—रचनाकारका अभिमन्यु इस महाभारतमें अकेला ही है। उसकी नियतिभी हम सब जानतेहैं किन्तु अकेलेका साहस जब अपने युगके भ्रष्ट महारथियोंको चुनौती देताहै तब इतिहासकी एकाध मुस्कान फूटतीहै—उसकी दिशा बदलतीहै। 'केशू' की गजलोंमें है चिन्ता और इस चिन्तामें शामिल है—एक बड़ी पीड़ा जिसमें व्यवस्थाजन्य विसंगतियोंसे उपजी गरीबी है, बेबसी है, प्रतिबंधोंके भीतर हरकत करनेकी दुर्दमनीय शक्ति है और इस शक्तिको परे ठेलनेकी कायरतापूर्ण सक्रियता का खुलासा भी—

"रपट लिखाने गयी थाने जब कोई औरत,
रात भर घर नहीं आये तो गजल लिखताहूँ।
पानकी पीक हो मुंहमें जिगरमें बेचैनी,
अगर तू थूक न पाये तो गजल लिखताहूं।"

—(पृष्ठ ६)

गजलकारकी चिन्ताका फलक बहुत व्यापक है। वह बजबजाते हुए मुल्कमें धर्मके नामपर दंगा-फसाद देखताहै तो उसके भीतर उबाल आ जाताहै। बच्चोंके मुंहसे निवाला छिनते देख उसकी गजलोंमें इंकलाब कुलबुलाने लगताहै। 'केशू' तिवारी अपनी समकालीनता के साथ कोई भ्रम नहीं पालता और न वह गजलोंका कोई कल्पित कारोबार करताहै। अपनी जवान आंखों में वह एक आग लेकर चलताहै और एक बेहद समझदारीसे अपने आस-पासको देखताहै। यह अवश्य है कि यह देखना—आमफहम मुकामोंपर ठीक उसी तरह होता रहा है जैसे खबरोंमें होताहै किन्तु 'केशू' के हक में यह बात जातीहै कि उसके पास अनुभवको कलामें बदलनेकी सम्भावनाओं वाली दृष्टि है। उसकी आँख खबरोंसे भी बड़ी बन रहीहै—समूचे आदमी और परिवेशके प्रति सचेत आँख। उसी आंखसे निकलीहैं ये गजलें जिनमें बेकारके आंसू नहीं, उफानभरा गुस्सा नहीं और मसीहाई मुद्रा नहीं अपितु ये गजलें हमारे पास एक विश्वास और आश्वस्ति लेकर आतीहैं। 'केशू' की गजलें हमसे बतियाती हुई और हमें भीतरसे धकियाती हुई हमें आनेवाले संकटके प्रति सचेत करती हैं—

"रात गहरी है चिरागोंको जलाये रखना।
सुबह होने तलक माहौल बनाये रखना।
एक दिन हाथोंमें अंगार उठाने होंगे।
अंजुलि आगके नजदीक बनाये रखना।"

—(पृष्ठ ९)

'केशू' गजलकी बुनावटके प्रति सावधान हैं। उन्होंने अपनी गजलोंमें प्रयोगोंके लिए गुंजाइश भी निकाल लीहै और ताजे और टटके बिम्ब एवं प्रतीक उनकी गजलोंमें यदा-कदा मिल जातेहैं। एक सांस्कृतिक सलूक—भाषा और प्रतीकोंके स्तरपर 'केशू' ने अपनी गजलोंमें कियाहै जो उनकी सम्भावनाओंका द्योतक है और भीड़में उनकी एकाकी पहचान बनाने का माद्दा भी। ☐

राजनीति-धर्म-संसद्

धर्मनिरपेक्षवाद और भारतीय प्रजातन्त्र[1]

लेखक : एम. पी. दुबे
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

'धर्मनिरपेक्षता' (सेकुलरिज्म) आधुनिक युगके तथाकथित प्रगतिशील लोगोंका अत्यन्त प्रिय विषय है। ऐसे लोग यह प्रचारित करतेहैं कि धर्म नितान्त निजी चीज है, समाजको या राज्यको इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। पाठक इस तथ्यसे परिचित ही होंगे कि 'धर्म' शब्दका वास्तविक अर्थ कुछ और था, पर हमारे नेतागण (और उनकी देखा-देखी विद्वान् लोगभी) उसका प्रयोग सम्प्रदाय (मजहब या रिलीजन) के अर्थमें करने लगेहैं। इससे उन्हें एक सुविधा है। वे भोली जनताको बहकाने या शातिरोंको बरगलाने दोनोंही कामोंके लिए 'धर्म' का पुराने या नये दोनों अर्थोंमें एक साथ प्रयोग कर लेतेहैं। इसीलिए वे 'धर्मनिरपेक्ष' के स्थानपर 'सम्प्रदाय निरपेक्ष' जैसे शब्दका प्रयोग जान-बूझकर नहीं करते।

समीक्ष्य पुस्तकमें छह अध्ययनोंमें लेखकने भारतीय लोकतंत्रके परिप्रेक्ष्यमें धर्मनिरपेक्षताके अतीत और वर्तमानका आकलन करनेका एक ईमानदार प्रयत्न कियाहै। इसके लिए उसने सबसे पहले धर्मनिरपेक्षताकी पश्चिमी संकलपनाका विकास ऐतिहासिक क्रममें खोजनेका प्रयास कियाहै। फिर दूसरे अध्यायमें 'भारतीय प्रकृतिमें धर्मनिरपेक्षवाद' की खोज कीहै। लेखकने प्राक्कथनमें धर्मनिरपेक्षताके आगे कोष्ठकमें 'पंथ निरपेक्षता' शब्द लिखाहै जो अधिक सही हैं। पर लेखकने इसका प्रयोग कहीं किया नहीं हैं, भारतीय प्रकृतिमें धर्मनिरपेक्षवाद खोजते समयभी नहीं। अच्छा होता यदि लेखक दूसरे अध्यायको पुस्तकका प्रथम अध्याय बनाता, क्योंकि एक तो ऐतिहासिक दृष्टिसे भारतका इतिहास इन पश्चिमी देशोंकी तुलनामें शताब्दियों नहीं, सहस्राब्दियों पुराना हैं। दूसरे, स्कूलों-कालेजोंमें पढ़ाई जानेवाली इस भ्रान्त मान्यताका खण्डन भी अपने आप होजाता कि ज्ञान-विज्ञानका सारा विकास पश्चिमी देशोंमें हुआहै क्योंकि वे मानते हैं कि "संसारमें कोई वस्तु नहीं हैं जिसकी उत्पत्ति यूनानमें नहीं हुई (पृ. २५)।" अपने वर्तमान रूपमें तो यह विश्लेषण उक्त धारणाको ही पुष्ट करताहै। तीसरे अध्यायमें लेखकने भारतके संविधानके उन उपबन्धोंकी चर्चा कीहै जिनमें यद्यपि 'धर्मनिरपेक्षता' शब्दका प्रयोग नहीं कियाहै तथापि जो इस नीतिका आधार माने जातेहैं। इसी अध्यायमें लेखकने कुछ ऐसे प्रसिद्ध मुकदमोंकी भी समीक्षा कीहै जो इन उपबन्धोंसे सम्बन्धित थे। चौथे अध्यायमें लेखकने विभिन्न मतावलम्बियोंकी स्वीय विधिकी चर्चा कीहै और समान सिविल संहिताकी आवश्यकता स्वीकार करते हुए इसे चक्रव्यूह की संज्ञा दीहै। पांचवें अध्यायमें जातिप्रथा और छठे अध्यायमें अल्पसंख्यकोंकी समस्यापर विचार कियाहै। प्रत्येक अध्याय लेखककी विद्वत्ताका परिचायक हैं। अधिकांश स्थानोंपर लेखकने समस्याओंकी गहराईमें जानेका और अपने विश्लेषणको वस्तुपरक बनाये रखनेका सफल प्रयास कियाहै। इसके लिए वह वस्तुतः बधाईका पात्र है।

हमारे देशमें तथाकथित धर्मनिरपेक्षताके रास्तेकी सबसे बड़ी बाधा है हमारी सरकार, हमारे राजनेता। लेखकने भी स्पष्ट रूपसे स्वीकार कियाहै कि "चुनावी लाभको ध्यानमें रखकर सरकारें तुष्टीकरणकी नीति

---

[1] प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २५१; डिमा. ९१; मूल्य : १२०.०० रु.।

अपनाती रहीं (पृ. १३६)।" उसका यह कहना भी काफी सीमा तक सही है कि जहाँ सरकारें उदासीन रही हैं, वहींपर न्यायालय चुप नहीं बैठेहैं। उच्चतम न्यायालयने इस दिशामें नेतृत्व प्रदान कियाहै (पृ. १४२)। यह वास्तवमें प्रशंसनीय भी है। पर अल्पसंख्यकोंका तुष्टीकरण ही जिस सरकारकी जीविका हो, रोजी रोटीका साधन हो उससे यह आशा करना ही व्यर्थ है कि वह "न्यायालयके साथ मिलकर रूढ़िवादिता, मध्य युगीनता तथा अंधविश्वासके खिलाफ जेहाद छेड़े तथा धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्यायपर आधारित समाजकी स्थापना करे (पृ. १४२)।" हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि स्वाधीनता आंदोलनके कालमें यदि अंधविश्वासों, रूढ़िवादिता आदिके विरुद्ध संघर्ष चलता रहा तो इसलिए कि वह सांस्कृतिक पुनर्जागरण आंदोलनकी उपज था। देशके लिए स्वतंत्रताकी मांग करने वाले पहले व्यक्ति थे महर्षि दयानन्द सरस्वती जो सांस्कृतिक पुनर्जागरण आंदोलनके प्रमुख स्तम्भ थे। वे सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों, अंधविश्वासों आदिको दूर करनेके लिए जिस प्रकार प्रयत्नशील थे, उसी प्रकार देशकी स्वतंत्रताके लिए भी चिन्तित थे। महारानी विक्टोरियाने १८५७ के स्वातंत्र्य संग्रामके बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनासे लगभग तीन दशक पहले जब सन् १८५८ में भारतीय प्रजाके प्रति सन्तानवत् व्यवहार करनेका आश्वासन दिया तो सामूहिक रूपसे लोग उसकी प्रशंसामें कसीदे पढ़ने लगे, पर महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी स्वराज्य होताहै, वही सर्वोपरि सर्वोत्तम होताहै। प्रजापर माता-पिताके समान कृपा और न्याय करनेपर भी विदेशी राज्य कभी पूर्ण सुखदायी नहीं हो सकता?" ऐसे महापुरुषोंके विचारोंसे प्रेरित होकर जो सैनिक स्वाधीनता संग्राममें उतरेथे, उनके लिए रूढ़ियों, अन्धविश्वासों आदिके प्रति संघर्ष कोई नारा नहीं, जीवनका पर्याय था। आज के जो नेता नामांकन पत्र दाखिल करनेसे पहले ज्योतिषियोंसे मुहुर्त निकलवातेहैं, चुनावमें विजयके लिए तांत्रिकोंसे अनुष्ठान करातेहैं, मजारोंपर मनौती मांगने जातेहैं, वे 'अन्धविश्वासोंके खिलाफ जेहाद' कैसे छेड़ सकतेहैं? इसके लिए तो सांस्कृतिक पुनर्जागरण आंदोलनको ही पुनर्जीवित करना पड़ेगा।

लेखकने भारतके सम्बन्धमें 'यूरोपीय विचारकोंके विद्वेषपूर्ण मूल्यांकन' की चर्चा कीहै (पृ. २३-२५), पर इस सावधानीके बावजूद वह स्वयंभी कई स्थानों पर ऐसे मूल्यांकनसे प्रभावित हो गयाहै। उदाहरणार्थ, "चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या पारसी सभी भारतीय संस्कृतिके रंगमें रंगे हुएहैं और उनके आचार-विचार पूर्णतया भारतीय हैं (पृ. २१)।" लेखकका यह कथन भारतीय संस्कृतिकी एकता और अखंडताका परिचायक है और इतिहास लेखक स्मिथ के उस कथनका खंडन करताहै जिसमें भारतको विभिन्न धर्मों और संस्कृतियोंका अजायबघर बताया गयाथा, पर लेखकने यूरोपीय विचारकोंके विद्वेषपूर्ण मूल्यांकनसे प्रभावित होकर यहभी कहाहै कि "महान् देश भारत धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों, भाषाओं और संस्कृतियोंका एक संग्रहालय है (पृ. २१)।" इसी प्रकार, भारतपर आर्योंके आक्रमणकी जो कहानी यूरोपीय लोगोंने अपनी उपनिवेशवादी विचारधाराके आधारपर गढ़ीथी, लेखकने तथ्योंकी छानबीन किये बिना ही उसे दुहरा दियाहै (पृ. २७)। प्राचीन भारत के धर्मको लेखकने 'हिन्दू धर्म' के रूपमें स्मरण किया है जो निश्चित संरचना-विहीन है, जिसका कोई एक केन्द्र नहीं (पृ. ३५), जिसके दर्शनकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है अद्वैतपरक बाह्य शून्यवाद (पृ. ३१)। साथ ही यह टिप्पणी भी है कि "वेदको सभी मूल आधार मानतेहैं (पृ. ३१)।" यदि विभिन्न मत-मतान्तरवाले हिन्दू वेदको मूलाधार मानतेहैं, तो एक केन्द्र तो होही गया। फिर यूरोपीयोंका यह कथन गलत हुआ कि हिन्दू धर्मका कोई केन्द्र नहीं। और अद्वैतवाद (अपने किसी भी रूपमें) हिन्दुओंका एक सम्प्रदाय है या सम्पूर्ण 'हिन्दूधर्म'? धर्मके व्यापक अर्थकी जो संक्षिप्त पर सारगर्भित चर्चा लेखकने कीहै (पृ. २५-२७), उसे स्वीकार करनेके बाद भी क्या यह आवश्यक है कि उस मानव धर्मका कोई एक पैगम्बर, एक संस्थापक (पृ. ३५) हो? पैगम्बर और संस्थापक सम्प्रदायोंके होतेहै या 'धर्म' के? फिर सम्प्रदाय और धर्ममें अन्तर ही क्या रह जायेगा? इस प्रकारकी बातोंके लिए और अधिक गम्भीर चिन्तनकी आवश्यकता है। आशा है लेखक महोदय आगामी संस्करणमें इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

लेखकने अध्यायके बीचमें आये सन्दर्भोंका विवरण प्रत्येक अध्यायके अन्तमें दियाहै और अंग्रेजीकी पुस्तकों का विवरण भी देवनागरी लिपिमें ही देकर अच्छा

काम कियाहै। समेकित रूपमें लगभग आठ पृष्ठोंमें एक विस्तृत ग्रंथ सूची पुस्तकके अन्तमें भी दीहै। इस प्रकार लेखकने पुस्तकको प्रामाणिक बनाने और उसे शोध कार्यका रूप देनेका जो प्रयास कियाहै, उसके लिए हार्दिक बधाई, पर इस कार्यमें थोड़ी और सावधानी अपेक्षित है। एकही पुस्तकके कई सन्दर्भ जब एक ही अध्यायमें दियेजा रहेहों, तब एक स्थानपर उस पुस्तकके हिन्दी संस्करणका और दूसरी जगह अंग्रेजी संस्करणका सन्दर्भ खटकताहै जबतक कि वैसा करना किसी अन्य कारणसे अभीष्ट न हो (पृ. ७४ पर सन्दर्भ २४ और २८ देखें)। समेकित ग्रन्थ-सूचीमें लेखकने केवल अंग्रेजीके ग्रन्थ दियेहैं। यहां हिन्दी ग्रन्थोंकी भी सूची होनी चाहियेथी, और अंग्रेजीकी जिन प्रसिद्ध पुस्तकों के हिन्दी संस्करण उपलब्ध हैं, हिन्दीकी पुस्तकमें तो उन्हींका उल्लेख होना चाहिये।

पुस्तकमें प्रूफकी कई प्रकारकी भूलें रह गयीहैं। इनमें कुछ भूलें वर्षसे सम्बन्धित हैं, उदाहरणार्थ, "१९३७ में फारसी राजभाषाके रूपमें नहीं रही (पृ. ५५)", "सन् १९३५ में इस सम्बन्धमें कम्पनी सरकार के तत्कालीन विधि सदस्य मैकालेने जो एक कार्य-विवरण प्रस्तुत किया" (पृ. ५६)।", पृ. ७५ पर सन्दर्भ में भी क्रमांक ३ पर इसे १९३५ ही लिखाहै; और कुछ भूलें भाषासे सम्बन्धित भी हैं (उदाहरणार्थ, "सभी तरहकी सत्ता ईश्वरने चर्चको दियाथा (पृ. ९)।" "कई मुस्लिम नेता इसके अध्यक्ष पदको सुशोभित किये (पृ. ६८)।" "उन्होंने पंजाबीभाषी राज्य की मांग स्वीकार कर लिया (पृ. २१७)।" पर ऐसी भूलें बहुत अधिक नहीं हैं। शुद्धिपत्र लगाकर इनका निराकरण इसी संस्करणमें कियाजा सकताहै।

मुखपृष्ठपर दिया चित्र प्रतीकात्मक है और पुस्तक के अनुरूप है। पुस्तक उन सभी लोगोंको विचार करने के लिए प्रेरित करतीहै जिन्हें देशसे और उसकी मानवधर्मी परम्पराओंसे प्यार है। ☐

संसदीय प्रक्रिया[1]

लेखक : डॉ. सुभाष काश्यप

समीक्षक : (१) डॉ. हरिश्चन्द्र
(२) आराधना परमार

शीर्षकसे लगता है जैसे 'संसदीय प्रक्रिया' ग्रन्थ पार्लमेंटरी प्रोसीजरका कोई प्रबन्ध हो, परन्तु विषय-सूचीको देखने और पुस्तकको पढ़नेसे प्रकट होताहै, यह भारतीय संसद्की रचना और उसकी कार्य-पद्धतिकी विवरणिका है। वस्तुतः 'संसदीय प्रक्रिया' का आशय संसदीय प्रणालीकी यांत्रिकीसे होताहै। विश्वके अनेक राष्ट्रोंमें संसदीय प्रणाली प्रचलित है। अपने ही देशमें संघ-शासनके साथ-साथ राज्य-सरकारें भी संसदीय प्रणालीका अनुसरण करतीहैं। जब अकेली भारतीय संसदकी चर्चा अपेक्षित थी, तो पुस्तकका नाम भी तदनुसार रखना चाहियेथा।

यह बात "भारतकी संसद--सभी लोगोंके विचारों का प्रतिनिधित्व करतीहै—यह राष्ट्रकी आवाज और उसका दर्पण है" (पृ. १८), संगत नहीं दीखती, क्योंकि निर्वाचित सदस्य (कुछ अपवादोंको छोड़कर) बहुमतसे नहीं, अधिक मतमें विजयी होकर जन-प्रतिनिधि कहलाने लगतेहैं। ये ही राष्ट्रपतिका चुनाव करतेहैं, और इन्हींके सहयोगसे राज्यसभाके स्थान भरे जातेहैं। इनमेंसे अनेक मतदाताओंके आदेशके विरुद्ध स्वेच्छासे दल बदल लेतेहैं। निर्वाचन-क्षेत्रके साधारण व्यक्तियोंसे इनका सीधा सम्पर्क नहीं रहता, और इनमेंसे ऐसे तो विरले होतेहैं, जो चुनावकालीन वचनोंको निबाहते हों। सांसदके रूपमें ये महानुभाव विशेषाधिकारोंकी दुहाई देतेहैं और यदि कोई नागरिक इनके गढ़में प्रवेशकर इनका ध्यानाकर्षण करना चाहताहै, अथवा बाहर रहकर इनके आचार-व्यवहार पर टीका-टिप्पणी करताहै, तो ये तथाकथित जन-प्रतिनिधि या लोक-सेवक उसे दण्डित करनेपर उतर आतेहैं। मानहानि विधेयक-१९८८ को उतावलीमें पारित किया गया किन्तु उसके विरोधमें सार्वजनिक प्रतिक्रिया इतनी तीव्र रही कि उससे घबराकर सरकार को उसका प्रवर्तन स्थगित करना पड़ा। इससे स्पष्ट हो जाताहै कि संसद-सदस्य जनतासे कितने कटे रहतेहैं, और समाजको इन्हें आपनी भावनाओंसे अवगत कराने के लिए आन्दोलकारी मार्ग अपनाना पड़ताहै। फिर यह कैसे कहाजा सकताहै कि ऐसे जनाधार-विहीन लोगोंकी संगति राष्ट्रकी आकांक्षा और चेतनाको प्रतिबिम्बित करतीहैं। भारतीय संसद इंग्लैंडकी पार्लमेंट की भांति किसी ऐतिहासिक प्रक्रियाका प्रतिफल न होकर अभिलिखित संविधानका उत्पाद है, और अपनी प्रस्तावना के अनुसार भारतीयों द्वारा स्थापित राज्य-संचालनका उपकरण है, जिसे राष्ट्रके स्पन्दनपर किसी समय प्रति-

---

[1] **प्रका.: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, तिलकनगर, जयपुर-३०२००४। पृष्ठ : २७३; डिमा. ९१; मूल्य : ३६.०० रु.।**

स्थापित कियाजा सकताहैं। इस प्रकार भारतकी राज्य-व्यबस्थामे सर्वोच्च शक्ति यहांके नागरिकों में निहित है। इस तथ्यका संज्ञान संसदके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग और सदस्य-सेबकको होना चाहिये, और उसका कर्तव्य है कि वह अपनी गति-विधिको तदनुसार ढाल ले।

दुर्भाग्यसे हमारे यहां स्वामीसे अधिक महत्व उसके प्रतिनिधि अथवा अभिकर्ताको देनेकी आदत पड़ गयीहैं, जिसका लाभ उठाकर ब्याज मूलसे ऊंची छलांग मारने लगाहै। तभी तो पुस्तकमें कहा गया हैं "व्यावहारिक तथ्य हैं—सरकार संसदपर नियंत्रण रखतीहैं, (पृ. २१)।" अच्छा होता यदि लेखक इस महान् सत्यको उद्घाटित करते समय कुछ दृष्टांत भी प्रस्तुत कर देते, जिनका कोई अभाव नहीं है। गत बयालीस वर्षोंसे अंगीकृत संसदीय प्रणाली सुशासनकी दृष्टिसे असफल सिद्ध हुईहैं। यह बात और हैं उससे लाभान्वित होनेवाले कुछ लोग अपने मुंह मियां मिट्ठ् बनकर उसका यशोगान करते रहें।

राष्ट्रपति संसदका एक तिहाई अंग होताहै। पद-ग्रहण करनेके पूर्व वह शपथ लेता या सत्य-निष्ठासे प्रतिज्ञा करताहै कि संविधान और विधिका परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करेगा। उसकी इस संकल्पना को प्रधानमंत्रीने अनुष्ठित होने नहीं दिया। १८ जून १९५१ को प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादको तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरूके आगे घुटने टेकने पड़े, जब उन्होंने उनके अनुचित और असंवैधानिक प्रस्तावपर पंजाबमें राष्ट्रपति शासन लागू किये जानेकी घोषणापर हस्ताक्षर किये। यह बात और है उन्होंने प्रधानमंत्रीको भेजे पत्रमें उस संकल्प की आलोचना कीहो। एक बार श्रीगणेश हो जानेके बाद तो उस असंवैधानिक परम्पराने संविधानके अनुच्छेद ३५६ के दुरुपयोगको पराकाष्ठापर पहुंचा दिया है। अबतक ८६ बार इसके अन्तर्गत राज्य सरकारोंको हटाया गयाहै।

रामजवाया बनाम पंजाब राज्य-१९५५ तथा शमशेरसिंह बनाम पंजाब राज्य-१९७८ में दी गयी सर्वोच्च न्यायालयकी व्यवस्थाओंसे निश्चित हो चुकाथा कि भारतका राष्ट्रपति मात्र संवैधानिक राज्याध्यक्ष है। फिरभी "इन्दिरा भारत है और भारत इन्दिरा है" के जय-निनादसे अनुप्राणित, प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधीने ४२ वां संविधान संशोधन विधेयक पारित कराके, राष्ट्रपतिके बचे-खुचे वर्चस्वको भी समाप्त कर दिया, और एक राज्याध्यक्षको प्रधानमंत्रीके उचित-अनुचित प्रस्तावोंपर सहमतिसूचक ठप्पा लगाने वाला निष्प्रभ पदधारी बना दिया।

सपरिषद प्रधानमंत्री तथा उसके दलके सदस्योंपर राष्ट्रपतिकी निर्भरताका एक कारण यहभी है कि वह उनके समर्थन और सहयोगसे ही पदासीन हो पाताहै। १९६९ ई. के राष्ट्रपति चुनावमें कांग्रेसके मनोनीत प्रत्याशी श्री नीलम संजीव रेड्डीकी पराजय और स्वतंत्र उम्मीदवार श्री वराहगिरि वेंकटगिरिकी विजय इस स्थापनाका पुष्ट प्रमाण है। इस प्रकार उपकृत हुआ व्यक्ति प्रत्युपकारके अवसरोंकी खोज तो करता ही रहेगा, न कि स्वाग्रही होनेकी चेष्टा। राष्ट्रपति-भवनके अध्यासी बनते ही ज्ञानी जैलसिंहने प्रधानमंत्री के प्रति आभार व्यक्त करते हुए यहांतक कह दिया कि उन्हें श्रीमती इन्दिरा गांधीका फर्श तक बुहारनेमें प्रसन्नता होगी। पिछले राष्ट्रपति श्री वेंकटरमन के निर्वाचनके समय कांग्रेस हाईकमांडकी ओरसे व्हिप जारी किया गयाथा कि उस दलसे संबंधित मतदाता केवल प्रथम अधिमान-मत देंगे। विचारणीय हैं कि क्या यह कृत्य संविधानके अनुच्छेद ५५-३ और प्रेसीडेन्शल एंड वाइस-प्रेसीडेन्शल ऐक्ट १९५२ की धाराओं तथा इन्दिरा गांधी बनाम राजनारायणके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दीगयी व्यबस्थाका खुला उल्लंघन नहीं था? राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा किये गये उपकारोंका बदला चुकानेकी खातिर इतना आगे बढ़ गये कि उन्होंने पूर्वोदाहरणको ताकमें रखकर आनन-फाननमें श्री राजीव गांधीको उनकी माताके निधनोपरान्त भारतका प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। इस प्रकार संसदीय प्रक्रियाके क्रमिक विकासके साथ भारतके प्रधानमंत्रीने संसदके एक तिहाई अंश राष्ट्रपतिको अपने अनुग्रहसे अभिभूतकर विवशताकी मूर्ति बना दियाहै। ज्ञानी जैलसिंहजीका डाक अधिनियम पर अनुमति न देना इस बातका प्रमाण नहीं है वह पग उन्होंने राष्ट्रपति-पदके गौरवकी रक्षाके लिए उठायाथा, बल्कि उससे उनके और प्रधानमंत्रीके व्यक्तिगत संबंधोंमें अंतर पड़ आनेका संकेत मिलताहै।

राज्यसभा संसदकी दूसरी तिहाई है। उसकी परिकल्पना राज्योंके प्रतिनिधित्वके लिए की गयीथी, न

कि चुनावोंमें हारे हुए अथवा अन्य दृष्टिसे राजनीतिक दलोंको उपयोगी दिखायी देनेवाले पदलोलुप व्यक्तियोंको पिछले दरवाजेसे सदनमें प्रवेश दिलानेके लिए। जिस ढंगसे उसकी सदस्यता-पूर्तिकी परिपाटी चल पड़ीहै, उससे संविधानकी भावनाको ठेस पहुंचीहैं, और प्रकारान्तरसे राज्यसभा दलोंके हांजी-ब्रिगेडकी आश्रय-स्थली बन गयीहै। प्रधानमंत्रीसे हुई एक भेंटके अवसर पर राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादने इसी प्रसंगमें अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहाथा—संविधानके अनुच्छेदोंको पार्टीकी संख्या बढ़ानेके विचारसे उपयोग में लाया गयाहै, जो अनुचितहै। संकेत कांग्रेस पार्टीकी करतूतकी ओर था जिसका निर्देशन नेहरूजी करतेथे।

उपराष्ट्रपति राज्यसभाके पदेन अध्यक्ष-पीठ होते है। प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरूने उपराष्ट्रपति की मान-मर्यादाकी अनदेखीकर उस पदपर आसीन डॉ. राधाकृष्णनको परराष्ट्र मंत्रालयके कामकाजको भी देखनेका प्रस्ताव किया। वह तो डॉ. राजेन्द्रप्रसादने हस्तक्षेप कर स्थितिको सम्भाल लिया, अन्यथा भारत का उपराष्ट्रपति प्रधानमंत्रीका अधीनस्थ पदधारी होकर रह जाता।' कुछ दिन पूर्व राज्यसभाके पिछले अध्यक्ष-पीठ और वर्तमान राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयालु शर्माके साथ शासक-दलके सदस्योंने सदनके भीतर जो अभद्र और अशालींन व्यवहार किया उसे विस्मृत नहीं कियाजा सकता। ध्यातव्य है कि स्वाभाविक रीतिसें उपराष्ट्रपति समय आनेपर राष्ट्रपति-पदपर आरूढ़ होनेकी कामना करेगा। उसकी इच्छा-पूर्तिका होना-न-होना अलग बात है, परन्तु उस आकांक्षाका सीधा परिणाम यह होताहै कि वह सत्ता पक्षको यथासम्भव संतुष्ट रखनेकी चेष्टा करताहै। इससे सदनके पीठासीन अधिकारीके रूपमें उसकी भूमिकाकी तटस्थताका अपरदन तो होता ही है।

संसदकी तीसरी अंतिम तिहाई होतीहैं लोक सभा। प्रधानमंत्री उसीके सदस्य होते आयेहैं। कोई प्रधानमंत्री इस संस्थाका कितना सम्मान करताहै इसका सहज अनुमान इस तथ्यसे किया जा सकताहै कि चीन द्वारा भारतकी भूमिका अतिक्रमण कर लेनेपर उस घटनाकी सूचना श्री जवाहरलाल नेहरूने संसदमें तब तक नहीं दी, जबतक पानी सिरके ऊपर नहीं पहुंच गया। नवम्बर १९५८ में जब इतने महत्त्वपूर्ण विषय पर संसदको अंधकारमें रखनेके लिए सदस्योंने उन्हें आड़े हाथों लिया तो अपने बचावमें उन्होंने कहा कि वे समझतेथे लिखा-पढ़ीमे मामला सुलझ जायेगा और उचित अवसर आनेपर संसदको अवगत करा दिया जायेगा। इसे नेहरूजीकी विनम्रता कहा जायेगा कि उन्होंने उस अपचारपर सदस्योंके समक्ष खेद व्यक्त किया।

संविधानके अनुच्छेद १२१ द्वारा सर्वोच्च और उच्च न्यायालयोंके जजोंके न्यायिक कार्य-कलापकी चर्चा वर्जित कर दी गयीहै। फिरभी लोकसभामें शाहबानू बेगमके प्रकरणको लेकर सर्वोच्च न्यायालयके जजोंकी भूमिकापर निर्द्वन्द्व होकर, सदस्योंने डटकर छींटाकशी की। यहांतक कि विधि एवं न्याय तथा पर्यावरण विभागके मंत्रियोंने अपनी अभिनय-प्रतिभा और संवाद-शैलीसे सदनको नाट्यशालाका रूप देनेमें कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। अध्यक्षने उस प्रदर्शनको प्रतिबंधित करनेका सार्थक प्रयास नहीं किया, और प्रधानमंत्री मूक दर्शक बनकर लीला देखते रहे।

व्यवस्थाएं देनेमें लोकसभाके अध्यक्षकी निष्पक्षता आरम्भसे ललकारी जाती रहीहै। जब वह मंत्री-मंडल में सम्मिलित किये जानेकी बाट जोहताहो, तो उसके लिए साधक और सुविधाजनक होताहै कि वह सत्ता-दलकी ओर झुका रहे। लोकसभाके अध्यक्षको मंत्री बनानेकी परम्परा स्वस्थ नहीं कहीजा सकती।

संविधानके अनुच्छेदों और कार्य-संचालन संबंधी नियमों तथा स्थायी आदेशोंके अनुसार संसदमें विधायी कार्य निष्पादित होना चाहिये। उनमें समय या सिद्धांत के क्षरणकी गुंजाइश नहीं है, किन्तु १९७५ ई. में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधीको इलाहाबाद उच्च न्यायालयके निर्णयसे उत्पन्न अप्रिय स्थितिसे उबारनेके लिए संविधान संशोधन विधेयक ७ अगस्तको लोकसभा में प्रस्तुत होकर उसी दिन पारित होगया, अगले दिन राज्यसभाने उसे पास कर दिया, ९ अगस्तको आवश्यक संख्यामें राज्योंकी विधायिकाओंका अनुसमर्थन प्राप्त कर लिया गया, १० अगस्तको राष्ट्रपतिने अनुमति व्यक्त कर दी, और ११ अगस्तको वह राज-पत्रमें अधिसूचित होगया। राज्यसभा और लोकसभामें क्रमशः २४ और ५५ सदस्योंकी उपस्थितिसे गणपूर्ति होतीहै, परन्तु १९८२ ई० में कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंककी स्थापनासे संबंधित विधेयक तथा १९८८ ई. के डाक अधिनियमको संशोधित करनेवाला विधेयक

फौरमके अभावमें पारित किये गये । उनकी वैधताको चुनौती दी जा सकतीहै ।

इस प्रकारके तथ्योंसे भली-भाँति प्रकट हो जाता है कि भारतीय संसदके तीनों अवयवोंका गति-नियंत्रक प्रधानमंत्री रहाहै ।

ग्रन्थमें विशेषाधिकारोंके उल्लेखके साथ उनकी ऐतिहासिक यात्रा और प्रासंगिकताकी विवेचना नहीं की गयी । सिद्धान्ततः कोई नियुक्त व्यक्ति अपने नियोक्ताके विरुद्ध विशेषाधिकार नहीं रख सकता । कैसी विडम्बना है, जो प्रतिनिधि-स्वरूप भारतका सांसद अपनेको जनसे श्रेष्ठ समझकर सफर करते समय रेलके डिब्बे तकमें विशेषाधिकारका विस्तारकर, सहयात्रियोंको डराने-धमकानेकी चेष्टा करताहै । इंग्लैंड की पार्लमेंटके विशेषाधिकारोंका उदय, जिन परिस्थितियोंमें हुआ, उनका भारतकी संसदसे रत्ती भर संबंध नहीं रहाहै । इनसे यथासम्भव मुक्त होनेकी वेला आ चुकी है ।

महाभारतके १८ पर्व और गीताके १८ अध्यायों की भाँति १८ उच्छ्वासोंकी यह पुस्तक उस सीमित उद्देश्यकी पूर्ति करती दीखतीहै, जिसका संकेत आमुख में किया गयाहै । कोड या मैनुअल न होकर भी इससे किसी भव्य संहिताकी प्रतीति हो जातीहै । भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है, यद्यपि रोमनमें छपे अनेक शब्दोंकी भ्रष्ट वर्तनीने मजा किरकिरा कर दियाहै । ग्रन्थकी उपादेयता बढ़ जाती, यदि जो विहित है उसके बराबर ही जैसा व्यवहृत हुआहै, उसे भी आलोकित किया गया होता । विविध उपबन्धों और नाना प्रतिवेदनोंके संदर्भ उपयोगी रहेहैं । अंतिम दो समुल्लासोंमें चाट-मसाला देकर ज्ञान-क्षुधाकी वृद्धिका प्रयास रुचिकर है । कुल मिलाकर ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय कहाजा सकताहै । □

(२)

उपर्युक्त टिप्पणियाँ पढ़नेके बाद पाठक स्वभावतः पुस्तककी विषयवस्तुके बारेमें जानना चाहेगा । प्रकाशकीय घोषणामें कहा गयाहै कि "पुस्तक विद्यार्थियों और सम्बद्धजनोंके लिए उपयोगी सिद्ध होगी।" इसलिए पुस्तकीय अनुक्रमसे उसकी विषयवस्तुकी जानकारी दीजा रहीहै । कृतिका क्षेत्र है देशकी राजनीतिक व्यवस्थामें संसदका स्थान, संसद्का कार्यकरण और अधिकार क्षेत्र—सदनोंकी भूमिका—विभिन्न कृत्य, निर्वाचन और सदनोंका गठन, संसदीय कार्यमें प्रक्रियाका महत्त्व, सदनोंके सत्र—अधिवेशन—अधिकारी—प्रश्न प्रक्रिया—विधायी प्रक्रिया—वित्तीय मामलोंमें प्रक्रिया—संकल्प प्रस्ताव ध्यानाकर्षण सूचनाएं और अल्पकालीन चर्चाएं, संसदीय समितियां, संसदीय विशेषाधिकार, सदनमें व्यवहारके नियम, संसदीय सचिवालय, लोकसभाका विघटन, दल सचेतक —संसदीय विशेषाधिकार और दल-परिवर्तन-विरोधी कानून । अन्य दो अध्याय संसदीय प्रक्रियासे सम्बद्ध न होकर हास्य-विनोद और कविता एवं शेरो-शायरीसे सम्बद्ध है । मूलतः पुस्तकसे उपर्युक्त संसदीय क्षेत्रों विषयक सूचनाएं और जानकारी प्राप्त कीजा सकती हैं । क्योंकि लेखक श्री सुभाष काश्यप संसदीय सचिवालयके सचिव रहेहैं, इसलिए पुस्तक अधिकारी विद्वान् द्वारा लिखी गयीहै प्रायः स्पष्टीकरण भी किये गयेहैं । इस दृष्टिसे पुस्तक महत्त्वपूर्ण है और वर्तमान संविधान की व्याख्याके रूपमें प्रस्तुत की गयीहै ।

जब संविधानका प्रश्न आताहै वर्तमान संकटको ध्यानमें रखते हुए बहुत-से प्रश्नोंकी ओर ध्यान सहज रूपसे जाताहै । वर्तमान संकट अयोध्या काण्ड है जिसे राजनीतिक दलोंने साम्प्रदायिकतासे जोड़ दियाहै । इस प्रकार पूरे देशको हिन्दू और मुस्लिम खण्डोंमें बाँटकर स्पष्ट संकेत कियाहै कि देश पुनर्विभाजन की दिशामें चल पड़ाहै । हमारी दृष्टि इससे भिन्न है । हम मानतेहैं मूल समस्या आक्रमण कीहै । आक्रमण सैनिक, आर्थिक किसीभी कारणसे हो सकता है, और इतिहासके आधारपर यह कहाजा सकताहै कि धार्मिक आधारपर भी व्यापक सैनिक आक्रमण होते रहेहैं । आक्रमणका आधार चाहे जो हो, उसका समर्थन नहीं कियाजा सकता । आक्रमणोंके स्मारक भी बनाये जातेहैं । मुस्लिम कालमें ये स्मारक गुमटियों की शृंखला और उनपर बने प्रतीक गुम्बदों और मस्जिदोंके रूपमें होतेथे । स्वाधीनता प्राप्तिसे पूर्व इस प्रकारकी गुम्बदी-गुमटियोंकी पूरी कतार आगरासे दिल्लीतक और दिल्लीके चारों ओर फैली हुईथी । ब्रिटिश कालमें बहुत सेनापतियों, वायसरायों और ब्रिटिश सम्राट् या महारानीकी प्रतिमाएं स्थापित कर स्मारक बनाये जातेथे । प्रत्येक स्वाधीन देश इस प्रकारके

स्मारकोंको हटा देताहै, नष्ट कर देताहै अथवा संग्रहालयों में सुरक्षित रख देताहै। यदि देशके उपासना स्थल अथवा मन्दिर तोड़े गयेहैं तो उनका पुनर्निर्माणकर उनकी पुन: प्रतिष्ठा करताहै । दिल्लीमें एक ब्रिटिश सम्राट्की प्रतिमाको हटानेके कारण ‘स्वतंत्र’ देशके विदेशी भाषा अंग्रेजीके समाचारपत्रोंने प्रबल विरोध किया, पर वे प्रतिमाएं हटा दीगयीं, नष्ट सोमनाथ मन्दिरकी पुन: प्रतिष्ठा कीगयी । वस्तुत: अयोध्यामें बाबरी मस्जिद नहीं, बल्कि बाबरी-गुम्बदी-गुमटी स्थापित की गयी थी स्थानीय लोगोंको आतंकित करनेके लिए, बाबरकी प्रतिष्ठाको ज्ञापित करनेके लिए । इसका निर्माण यहां बने धार्मिक स्थलको गिराकर सामनेसे की गयी । इसी प्रकारका स्मारक कुतुबमीनार और उसके पास बने लोहस्तम्भकी, चार दिवारी बनानेके लिए प्राचीन धर्मस्थलोंको गिराकर किया गयाथा । इस लिए यह व्यापक आक्रमणका रूप था, पर साथही इन आक्रमणोंमें धार्मिक उन्मादभी जुड़ाथा । यदि इस प्रकारके आक्रमण और उन्मादके रूपको समाप्त करने के लिए प्रयत्न होतेहैं तो उसका संविधानकी मर्यादा और गरिमाके साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जा सकताहै ? क्या वर्तमान संविधान उन आक्रमणों का समर्थन करनेबाला सत्ताका कोई ‘पवित्र ग्रन्थ’ है जिसकी व्याख्या केवल सत्ता और प्रशासनके पास सुरक्षित है ?

वर्तमान संविधानपर कुछ और महत्त्वपूर्ण प्रश्नचिह्न लगाये जा सकते हैं जिनपर व्यापक चर्चाकी आवश्यकता है । संविधानकी ‘उद्देशिका’ (प्रिएम्बल) में यह संविधान आत्मार्पित किया गयाहै । संविधान सभाके सदस्य किसी सार्वजनिक निर्वाचनसे नहीं अपितु तत्कालीन धारा सभाओंके सदस्यों द्वारा चुने गयेथे । इन्हीं लोगोंने संविधानको आत्मार्पित कियाथा, लोकार्पित नहीं । इसलिए यह संविधान देशने स्वेच्छासे अंगीकृत, अधिनियमित नही कियाथा, परन्तु अपनेको आधुनिक ‘मनु’ कहानेका गौरव प्राप्त करनेको लालायित राजनीतिज्ञोंने ब्रिटेन द्वारा देशपर लादे गये ‘१९३५ एक्ट’में अमरीका तथा यूरोपके अन्य संविधानोंसे चुन-चुनकर कुछ व्यवस्थाओंको इस संविधानमें जोड़कर अपने जीवनभर की रटन्तको एक स्थानपर उंडेल दियाथा । इसमें अपनेही देशमें विधि-विधानोंके रूपमें विकसित विधि-विधानोंको स्थान नहीं दिया गया, क्योंकि बीसवीं सदीके ये ‘मनु’ उनसे अपरिचित थे । यहां हम संविधान-निर्माण-प्रक्रियाकी चर्चा नहीं कर रहे, पर यह अवश्य ध्यान दिलाना चाहतेहैं यह संविधान न तो जन-इच्छाका प्रतीक है, न उन्होंने स्वेच्छासे इसे ग्रहण कियाहै । इसके विपरीत समस्या यह है जन-साधारणने जिन लोगोंपर विश्वास किया, उन्हीं लोगोंने अपनी शिक्षा-दीक्षासे जिस विकृत मानसिकता और बौद्धिकता और रीति-नीतिका विकास कियाहै, उन्हींके साथ अपने अहंकार, बाह्य जीवन-प्रणालियों और संस्कारों और मान्यताओंकी एक संहिता बनायीहै और ब्रिटिश शासनकी विभाजनकी योजनाको स्वीकारकर प्रतिदान रूपमें प्राप्त भारतीय खण्डको पुनर्विभाजित करनेकी आधारभूमि तैयार करनेवाले संविधानसे अपनेको प्रतिबद्ध नहीं कर लियाहै ! संविधानकी प्रस्तुत ‘संसदीय-प्रणाली’ और उसकी प्रस्तुत व्याख्यासे ऐसी असंगतियां उभरकर सामने आतीहैं, जिनपर विस्तारसे चर्चा होनी चाहिये ।

‘संसदीय प्रक्रिया’ का एक अंग ‘विधायी प्रक्रिया’ है जिसके अन्तर्गत साधारण विधिकी प्रक्रिया और संवैधानिक संशोधन कार्य आतेहैं । आशा यह की जातीहै संसद् ऐसे विधान स्वीकार करेगी जिनमें जन-साधारण की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताएं प्रतिबिम्बित होंगी और जिनसे उनकी आशाओं और आकांक्षाओंकी पूर्ति होगी । गत ४२ वर्षका संसदीय इतिहास क्यों इन आशाओं और आकांक्षाओकी पूर्ति नहीं कर पाया, इसका विवरण इस पुस्तकमें इसलिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि यह विद्यार्थियोंको ध्यानमें रखकर लिखायी गयी है । क्योकि हिन्दीमें स्वतन्त्र विधि और वैधानिक साहित्यका न तो चलन होने दिया गयाहै, न लिखाजा रहा है इसलिए इन ४२ बर्षोंमें जन-आकांक्षाओं और आशाओपर कितना तुषारपात हुआहै इसका आकलनभी नहीं हुआ । पर इस प्रसंगमें यह अवश्य कहाजा सकताहै कि अस्थायी उपबन्धोमें संशोधनकी कोई संसदीय प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं हुई अपितु ऐसे उपबन्धोंको स्थायी बनाकर पूरे राष्ट्रको अल्पसंख्यक राज्यों और अन्य राज्योमें विभक्तकर दिया गयाहै जो स्पष्ट रूपसे देश के विखण्डनकी भूमिका बनातेहैं । इसके साथही आक्रमण द्वारा जिन धार्मिक स्थलोंका धार्मिक रूपान्तर किया गयाहै, उनका स्थायी रूपसे धर्मान्तरण वैध बना दिया गयाहै, क्योंकि सत्ताका विश्वास है कि इससे देशको साम्प्रदायिकतासे बचाया जा सके ! परन्तु सत्ता-लोलुप राजनीतिक दलोंका इतना बौद्धिक अन्धीकरण हो गया है कि वे देशमें साम्प्रदायिकताके साथ पूरी तरह जकड़ कर इस खण्डित देशको साम्प्रदायिक आधारपर ही खण्डित कर रहेहै । अब तो सत्ता भाषाको भी इस विखण्डनके क्षेत्रमें ले आयीहै । एक ओर दूरदर्शन और आकाशवाणी, दूसरी ओर अनुवादपर निर्भर हिन्दी समाचार-पत्र हिन्दीका अधिकाधिक उर्दूकरण कर रहे

हैं और हिन्दीको देशकी अन्य सभी भारतीय भाषाओंसे पृथक् कर रहेहैं क्योंकि वे संस्कृत-प्रधान भाषाएं हैं। स्वयं हिन्दीको हिन्दी न रहने देकर वे उसे अरबी-फारसी प्रधान भाषा बनाकर देशके मुस्लिम लोगोंकी धर्मभाषामें उसे विलीन कर रहेहैं। यह विलीनीकरण और राजनीतिक साम्प्रदायिकता सम्भवतः संसदीय प्रक्रियासे बाहरकी स्थितियाँ हैं।

जिस प्रकार भारत महाखण्डपर मुस्लिम आक्रमण और मुस्लिम साम्राज्य यथार्थ हैं, उसके बाद ब्रिटिश-साम्राज्यकी स्थापना यथार्थ है, उसी प्रकार यहभी प्रबल तथ्य है कि भारतीय मानसिकता निरन्तर खण्डित होती गयीहै, आचार-व्यवहार, विधि-विधान, जीवन प्रणाली सभी खण्डित होती गयीहै, इस निरन्तर खण्डित होनेवाली जीवन-पद्धतिको वर्तमान संविधान और संसदीय-प्रणालीने और अधिक खण्डित कियाहै और विखण्डनकी यह गति निरन्तर बढ़ती चली गयीहै। १९४७ के बादसे विखण्डनकी यह गतिशीलता उसी प्रकार बढ़ती गयीहै, जिस प्रकार पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिसे खिंचकर आनेवाले पदार्थोंकी गतिमें निरन्तर वृद्धि होती जाती है। आवश्यकता वर्तमान संविधान और संसदीय प्रणाली और प्रक्रियाके पुनर्विवेचनकी है जिससे गतिशीलताकी इस वृद्धिपर अंकुश लगाया जा सके। अभी तो सभी पक्ष बिना धर्मको जाने धर्म और मजहबके युद्ध (विवाद) की भूमिकामें व्यस्त हैं, उसकी अपेक्षा इस युद्ध (विवाद) के स्थानपर इन्हें उत्पन्न करनेवाली मूल समस्याओंको सुलझानेके लिए गहन अध्ययन-विश्लेषण की आवश्यकता है। ☐

सुरक्षा : समस्या

राष्ट्रीय सुरक्षा[1]

लेखक : डॉ. अशोककुमार सिंह

समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

जबसे भारत स्वतंत्र हुआहै तबसे समय-समयपर राष्ट्रीय सुरक्षाकी समस्यापर विचार होता रहाहै। पर हमारे देशने राष्ट्रीय सुरक्षाके साथ विश्व शान्तिकी दिशामें सक्रिय योग देना अपना बड़ा कर्तव्य समझा है। लेखक श्री अशोककुमार सिंहने 'पुस्तकके प्रति' अपनी भूमिकामें रिचर्ड ए. फाक द्वारा निर्धारित विश्वशांतिको सक्रिय रूप देनेके लिए पांच आयामोंकी एक कार्य-सूची निर्दिष्ट कीहै--१. विपरमाणुकरण, २. विसैन्यीकरण, ३. विध्रुवीकरण, ४. विकास व ५. लोकतन्त्रीकरण। उन्होंने इन उद्देश्योंको राष्ट्रीय सामाजिक आन्दोलन द्वारा प्राप्त करनेकी पुष्टिपर बल दियाहै।

पर आज देशकी धरतीपर खूनकी होली खेलता आतंकवाद, निकम्मोंकी चाटुकारिता, षड्यंत्रकारियोंका हस्तक्षेप तथा देशद्रोहियोंका विश्वासघात ये सभी मुद्दे राष्ट्रको किस सीमा तक खोखला बना रहेहैं, यह सर्वविदित है। लेखकने भूमिकामें आधुनिक युगके अनेक महापुरुषोंके नामोंका स्मरण कियाहै जिन्होंने विश्व शक्तियोंको पाठ पढ़ायाथा। इस समय हमारे देश के ८४ करोड़ नागरिकोंके १६८ करोड़ हाथ हैं, क्या वे देशको फिर पराधीन होने देंगे ?

इन्हीं प्रश्नोंके समाधानके लिए प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने राष्ट्रीय सुरक्षाके विभिन्न पक्षोंका एक विश्लेषणात्मक विवेचन कियाहै।

लेखकने पुस्तकके पहले अध्यायमें राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा, दूसरेमें शक्ति और परिभाषा और उसके विश्लेषणका प्रयास, तीसरेमें राष्ट्र-राज्यकी अवधारणा तथा राष्ट्र-राज्यका शक्ति रचना दृश्य, चौथे में राष्ट्रीय शक्तिके तत्त्व वर्णित कियेहैं। राष्ट्र शक्ति के विभिन्न तत्त्वोंमें लेखकने भूगोल, प्राकृतिक स्रोत, औद्योगिक क्षमता, सैनिक तैयारियां, तकनीकी क्षमता, जनसंख्या आदिका परिगणन कियाहै।

५वें अध्यायका विषय है शक्ति-संतुलन। लेखकने इसमें संतुलनका तरीका बतायाहै। छठे अध्यायका शीर्षक है—सामूहिक सुरक्षा। इसमें राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ, सामूहिक-सुरक्षा और शक्ति-सन्तुलन तथा सामूहिक-सुरक्षाका मूल्यांकन किया गयाहै।

७वें अध्यायका विषय है—क्षेत्रीय संगठन। संधियां बनाम सामूहिक सुरक्षा—इसमें सैनिक गुटबंदियों तथा उत्तर अटलांटिक सैनिक संगठन आदि अनेक संगठनोंका परिचय दिया गयाहै। आठवें अध्याय में तटस्थता एवं आधुनिक विकासका तथा नवेंमें गुटनिरपेक्षताका विवेचन किया गयाहै। इसमें गुटनिरपेक्ष आन्दोलनके विकासके विभिन्न चरणों तथा उसके

---

[1] **प्रका. : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली-२४३००२। पृष्ठ : ४६३; डिमा. ९२; (तीसरा संस्करण); मूल्य : ६०.०० रु. (पेपरबैक)।**

सामने आयी चुनौतियोंका उल्लेख है। १०वें अध्यायमें लेखकने शस्त्र प्रसारका राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा परिवेशमें बढ़ता दबाव तथा शस्त्र-नियंत्रणका भविष्य—विषयपर प्रकाश डालाहैं। ११वें अध्यायमें बदलते अंतर्राष्ट्रीय परिवेशमें द्वितीय विश्वयुद्धके बाद राज्यकी सुरक्षा समस्याएं : सत्ता पद्धति एवं दबावका विवेचन है।

१२वां अध्याय आजकी दृष्टिसे बहुतही महत्त्वपूर्ण है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादपर विचार किया गयाहै। इसमें विश्वमें बढ़ते आतंकवादके दबावको लेखकने ढूंढ़नेका प्रयत्न कियाहै। १३वें अध्यायमें विप्लवकारी (इन्सर्जेन्सी) एवं प्रतिविप्लवकारी (काउण्टर इन्सर्जेन्सी) युद्धमें गुरिल्ला परम्परा या गुरिल्ला युद्ध तथा उसके विरुद्ध कार्यवाहीका चित्रण है।

१४वें अध्यायमें राष्ट्रीय रक्षा नीतिका उदय एवं विकासका वर्णन है। लेखकने रक्षानीतिको प्रभावित करनेवाले तत्वोंका अनुसंधान कियाहै। १५वें अध्याय में विदेश नीति, रक्षानीति, आर्थिक नीति तथा घरेलू विकास और नीतियोंका आपसी सम्बन्ध स्थापित कियाहै।

१६वें अध्यायमें स्वतंत्रता प्राप्तिसे आजतक भारत की सुरक्षा समस्याएं बतायी हैं। भारतके जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर समस्याके साथ गोवा मुक्ति अभियान १९६२ में भारत चीन युद्ध, पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत रक्षा चुनौतियोंका समाधानका प्रयास, भारत-पाकिस्तान युद्ध, कच्छ-विवाद, जलता पंजाब, लंका और भारत संघर्ष : नयी उलझने आदि कई विषय लेखकने प्रस्तुत कियेहैं। १७वें अध्यायमें भारतका पड़ोसियों एवं महाशक्तियोंसे सम्बन्ध—में भारत पाकिस्तान, चीन, लंका, नेपाल, रूस और अमरीकाके साथ सम्बन्धोंका विवेचन किया गयाहै।

१८वें अध्यायमें युद्ध कौशलात्मक भूगोलका बढ़ता महत्त्व और भारतकी भू-स्त्रातेजिक अवस्थितिका चित्रण है। १९वें अध्यायमें दक्षेस (सार्क) देशोंका संगठन, क्षेत्रीय सुरक्षा तथा भविष्यकी सम्भावनाएं वर्णित हैं। बीसवें अध्यायमें भारतमें वैज्ञानिक, तकनीकी एवं औद्योगिक विकासकी एक झलक है। इसमें वस्त्र, रबर, लोहा, वायुयान आदि उद्योगोंका परिचय दिया गयाहै।

२१वें अध्यायमें भारतके प्रमुख रक्षा उद्योगोंका परिचय है। २२वें अध्यायका शीर्षक सीमा और सीमान्त : अवधारणा तथा सुरक्षामें इनका महत्त्व (भारतके विशेष सन्दर्भमें) इसमें लेखकने भारत-चीन सीमा विवाद, पूर्व तथा उत्तर पूर्वी सीमान्तः सामरिक महत्त्वके भू-प्रदेश, लद्दाख, नेफा या अरुणाचल प्रदेश, कच्छ, भारतका समुद्री सीमान्त आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डालाहै।

२३वें अध्यायमें नागरिक प्रशासनकी सहायतार्थ सेनाके कर्त्तव्य और नागरिक रक्षा विषय हैं। २४वें अध्यायमें भारतकी विदेशनीतिमें लेखकने भारतकी विदेश नीतिका मूल्यांकन कियाहै।

२५वें अध्यायमें दक्षिण एशियाका बदलता स्त्रातेजिक वातावरण, महाशक्तियोंका स्वार्थ और भारत की भूमिकाकी चर्चा कीहै। २६वें अध्यायका विषय है भारतकी आन्तरिक चुनौतियां बनाम अलगाववाद तथा बाहरी खतरे।

२७वें अध्यायमें भारतकी आणविक नीति, तृतीय विश्वके देशोंका परमाणु कार्यक्रम और भारतीय सुरक्षा है। इसमें आणविक नीति और भारत विवादोंके घेरेमें तथा तृतीय विश्वके देशोंमें परमाणु कार्यक्रमका विकास और भारतकी सुरक्षापर उसका प्रभावका विवेचन।

२८वें अध्यायमें हिन्दमहासागरमें शक्ति संघर्ष, भारतकी रक्षा स्त्रातेजी तथा नौ-सैन्य-बलके विकास पर प्रकाश डाला गयाहै। २९वें अध्यायमें सुरक्षा परिवेशमें भारतकी रक्षा नीति और रक्षा तैयारी तथा ३०वें अध्यायमें सुरक्षाके बाह्य एवं आन्तरिक खतरोंसे निपटनेकी राष्ट्रीय योजना स्त्रातेजीका वर्णन हैं।

इस प्रकार ३० अध्यायोंकी यह पुस्तक राष्ट्रीय सुरक्षाके विभिन्न आयामोंकी विषद सामग्री पाठकोंके सामने प्रस्तुत करतीहै। पुस्तकमें अनेक मानचित्र भी हैं।

वस्तुतः पुस्तक एक पाठ्य पुस्तक है। इसी कारण पुस्तकमें लगाया कागज, इसकी स्थायी जिल्द सभी सामान्य स्तरकी हैं। परन्तु पुस्तक बहुत उपयोगी है। हिन्दीमें इस प्रकारकी सामग्री प्रायः प्राप्त नहीं होती।

पुस्तकके प्रारम्भमें गीतासारके निम्न वाक्योंको उद्धृत किया गयाहै—"तुम किससे डरतेहो ?…तुम्हें कौन मार सकताहै ? आत्मा कभी नहीं मरती। यश, अपयश, विजय और पराजय सब विधाताके हाथोंमें है। कौन हारताहै, कौन जीतताहै, कौन किसे दण्ड देताहै…कर्मप्रधान जगत्में सब कुछ नश्वर है…पर इस भावनाके अनुरूप पुस्तकका स्वर वह नहीं बन सका और न ही ऐसा करना उसका उद्देश्य है। ☐

लेखक : समीक्षक

☐ श्रीमती आराधना परमार, कैलगरी यूनिवर्सिटी (कनाडा)
☐ डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त, १०/१२० ग्रेटर कैलाश कालोनी, जम्मू-१८००११.
☐ श्री पं. काशीरामजी शर्मा, बी-३/३२, नाबार्डनगर, ठाकुर संकुल, कांदीवली (पूर्व), मुम्बई-४००१०१.
☐ डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य, हिन्दी विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ. प्र.)
☐ डॉ. दयाशंकर, हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर-३८८१२०
☐ डॉ. मूलचन्द सेठिया, ८/२७६, विद्याधर नगर, जयपुर-३०२०१२.
☐ डॉ. प्रयाग जोशी, बी-३/१३, जेल गार्डेन रोड, राय बरेली-२२९००१.
☐ डॉ. प्रशान्तकुमार, ७/२, रूपनगर, दिल्ली-११०००७.
☐ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, जी/२१, मेकर गार्डन, लिडो जुहू, सान्ताकुंज (पश्चिम), मुम्बई-४०००४९.
☐ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, ३४/१०० बोहरा गणेश मार्ग, उदयपुर-३१३००१.
☐ डॉ. वीरेन्द्रसिंह, ५ झ १५, जवाहरनगर, जयपुर-३०२००४.
☐ डॉ. शशिप्रभा शास्त्री, ३/६, भगवाननगर, देहरादून-२४८००१.
☐ डॉ. श्यामसुन्दर दुबे, शासकीय महाविद्यालय, हटा (जि. दमोह)-म. प्र.
☐ श्रीरंजन सूरिदेव, पी. एन. सिन्हा कालोनी, भिखना पहाड़ी, पटना-८०० ००६.
☐ डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी, २३ चन्द्रपथ, सूरजनगर पश्चिम, सिविल लाइन्स, जयपुर-३०२००६.
☐ डॉ सन्तोष तिवारी, फुटेरा वार्ड नं. २, दमोह (म. प्र.)-४७०६६१.
☐ डॉ. सुमति अय्यर, ११२/२३९, स्वरूपनगर, कानपुर (उ. प्र.)-२०८००१.
☐ श्री सुरेन्द्र तिवारी, १०१०१-बी-४, वेस्ट गोरख पार्क, गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.
☐ डॉ. हरदयाल, एच-५० पश्चिमी ज्योतिनगर, गोकुलपुरी, दिल्ली-११००९४.
☐ डॉ. हरिश्चन्द्र, बी-११४९, इन्दिरानगर, लखनऊ-२२६०१६.

विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका

'प्रकर'

शुल्क विवरण

☐ प्रस्तुत अंक ८.०० रु.
☐ वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) : संस्था : ७५.०० रु.; व्यक्ति : ६५.०० रु.
☐ आजीवन सदस्यता : संस्था : ७५१.०० रु.; व्यक्ति : ५०१.०० रु.
☐ विदेशोंमें समुद्री डाकसे एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें २००.०० रु.
विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए)—एक वर्षके लिए : ४८०.०० रु.
☐ दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि 'प्रकर' के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' : जनवरी'९३ : पंजीकरण संख्या १०३८५/६४ : डाक पंजीकरण संख्या : डीएल : १९००९/९३

आगामी अंक :

हिन्दी व्याकरण मीमांसा

धारावाहिक रूपसे 'प्रकर' में प्रकाशित हो रही इस लेखमालाका छठा खण्ड आगामी अंक (फरवरी ९३) में प्रकाशित हो रहाहै। हिन्दी व्याकरणके लिए अबतक जो दृष्टि अपनायी गयीहै, उसकी विवेचना करते हुए व्याकरणके प्रति नयी दृष्टि अपनायी गयीहै और अनेक रूपोंमें यह मौलिक है और हिन्दी व्याकरणकी अपनी प्रवृतिपर आधारित है। इस अंकमें शब्दभेद, शब्द वर्गीकरण, संस्कृत व्याकरणसे भेद एवं हिन्दी शब्दोंका व्याकरणिक वर्गीकरण, नाम, आख्यात, प्रत्यय, निपातका विश्लेषणात्मक विवेचन हैं। लेखक है : **पं. काशीराम शर्मा।**

नवमदशकको हिन्दी आलोचना

'नवम दशककी हिन्दी आलोचना' के सिंहावलोकनमें मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय, मिथकीय, संरचनावादी, सौन्दर्यशास्त्रीय, शैली वैज्ञानिक क्षेत्रके प्रसंगोंकी चर्चा हुईहै। इस आगामी अंकमें अंत:अनुशासनीय दृष्टि और उसके अन्तर्गत 'बीज शब्दों' (की-वर्ड्स) या पारिभाषिक शब्दोंके ऐतिहासिक अध्ययन, कथा-साहित्यकी प्रवृत्तियों और इनसे जुड़ी शोध-कृतियोंकी चर्चा है। लेखक है : **डॉ. वीरेन्द्र सिंह।**

कबीर बचनामृत

तत्त्वज्ञम्मन्य कबीर 'धरती महारस' चखनेवाले कवि हैं। यह ग्रन्थ उन्हींका वचनामृत लिए हुएहैं। वे सन्त काव्यके शिखर और चरम आध्यात्मिक मूल्यके उपासक है, उन्हें समझनेके लिए संकल्पवती साधनाकी आवश्यकता होतीहै। प्रेमकी 'अकथ कहानी' के ये श्रेष्ठ कवि, श्रेष्ठ साधक और सन्त भी हैं, मात्र पुस्तकीय चिन्तन या तत्त्ववेत्ता दार्शनिक नहीं। कविकी श्रेष्ठता उसकी काव्यानुभूतिकी ही देन है। कृतिके सम्पादक है : **डॉ. विद्यानिवास मिश्र;** व्याख्याकार : **आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी;** और कृतिके समीक्षक है : **प्रो. घनश्याम शलभ।**

छोर

कन्नड़के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार **भैरप्पाका** यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमें उन्होंने छल-कपट-धूर्तता-धोखा सह न सकनेके कारण आत्महत्याके लिए उद्यत अमृताको प्यारके अस्पष्ट आकर्षणमें बांधकर, जीवनके प्रति रुचि उत्पन्न करके, मानव-जीवनकी सार्थकता जीवन जीनेमें है, को चरितार्थ व अभिव्यक्त कियाहै। भैरप्पाकी उपन्यास यात्राकी एक और महत्त्वपूर्ण कृतिके रूपान्तरकार हैं **भालचन्द्र जयशेट्टी** और समीक्षक हैं : **डॉ. उत्तमभाई पटेल।**

अन्य अनेक कृति कृतियोंकी समीक्षा

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी,
चर्खेवालान रोड, दिल्ली-६
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७. दूरभाष : ७११३७६३.

11-3-93

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Hardwar

प्रकर

फाल्गुन : २०४९ [विक्रमाब्द] :: फरवरी :: १९९३ [ईस्वी]

25
2

जीवन और साहित्य
समाज शास्त्र

अंक-सामग्री

स्वर : विसंवादी

सत्ता और चारण-पत्रकार-वर्गका सामूहिक गान १ वि. सा. विद्यालंकार

हिन्दी व्याकरण : नई दृष्टि

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-६—पं. काशीराम शर्मा ५

आलोचना : सिंहावलोकन

नवम दशककी हिन्दी आलोचना-२—डॉ. वीरेन्द्रसिंह १३

अध्ययन : अनुशीलन

कबीर वचनामृत—सम्पा. विद्यानिवास मिश्र, व्याख्याकार : डॉ. राममूर्ति १९ प्रो. शलभ
(१) शहर सो रहा है (२) उठता चाँद डूबता सूरज (निबन्ध)
—डॉ. विश्वनाथ अय्यर २३ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
आधुनिक हिन्दी लेखनकी ऊर्जा (निबन्ध)—डॉ. विष्णुदत्त राकेश २५ डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा

उपन्यास

छोर (कन्नड़से अनूदित)—एस. एल. भैरप्पा, अनु. भालचन्द्र जयशेट्टी २८ डॉ. उत्तम एल. पटेल
आंगन नदिया—अन्नाराम सुदामा ३१ डॉ. भगीरथ बड़ोले

नाटक-कहानी

कोर्ट मार्शल (नाटक)—स्वदेश दीपक ३४ डॉ. भानुदेव शुक्ल
काले सूरजमुखी (कहानी)—राजेन्द्र सक्सेना ३६ डॉ. वीरेन्द्रसिंह

काव्य

चतुष्पदी तथा अन्य कविताएं—तारिकाचरण दास 'चिदानन्द' ३७ डॉ. सुधांशुकुमार नायक
गध गयी जाने किस देश—भोलानाथ ३९ डॉ. डी. डी. तिवारी
श्रीराम कथा—ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' ४२ डॉ. रामानन्द शर्मा
गीतों भरी शाम—कृष्ण खुल्लर ४३ ,, ,,

व्यक्ति : जीवन

जाने-पहचाने लोग—हरिशंकर परसाई ४५ डॉ. रामस्वरूप आर्य
दो तरहके लोग—इन्दिरा मिश्र ४५ डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला

हिन्दी : बढ़ते चरण

हिन्दीको हैदराबादकी देन—डॉ. एस. पद्मा ४७ डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य
मत-अभिमत ४८

प्रकर [अध्ययन-अनुशीलन-समीक्षाकी मासिक-पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २५ अंक : २ फाल्गुन : २०४९ [विक्रमाब्द] फरवरी : १९९३ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

सत्ता और चारण-पत्रकार-वर्गका सामूहिक गान

अयोध्या-काण्डके बाद देशमें तीन विभिन्न प्रकारके वर्ग उभरकर आयेहैं। प्रथम वे हैं जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे सदाही सत्तासे जुड़ेहैं। इस वर्गकी परम्परा बहुत पुरानी है। सिंहासनपर कोई बैठाहो वे सदा सिंहासन और सत्ताके साथ अभिन्न और एकाकार होते चले गयेहैं। धर्म और जातिका अन्तर इन लोगोंने कभी स्वीकार नहीं किया, उनकी सीमाओंका उल्लंघन ही नहीं किया अपितु उन्हें कभी अपनी आड़ बनाया और कभी अवसर मिलतेही उनका परित्याग भी कर दिया। उनका प्रयोजन इसीसे सिद्ध होताथा और इसी प्रयोजन-सिद्धिके लिए सत्ताकी मानसिकता को भी ओड़ लेतेथे, उनके चिन्तन-व्यवहार-परम्परा-शिक्षा-दीक्षाको इस प्रकार आत्मसात् करतेथे कि वे स्वयंको उन संस्कारोंका उत्तराधिकारी भी मान लेते थे। इस संकलित वैभव और शक्तिका उपयोग जन-साधारणको प्रभावित करने, प्रचारतन्त्रके माध्यमसे उन्हें स्वयं अपने और अपने सत्ताधीशोंके अनुकूल बनाने, चारण-मण्डलियोंको संगठित करने और इन चारण-मण्डलियोंको सत्ताके साधनोंसे ही प्रसादित और अनुगृहीत कर शक्तिशाली प्रचारतन्त्र संगठित करनेके लिए कियाहै। वस्तुत: यह शक्तिशाली प्रचारतन्त्र अपने आपमें चारणतन्त्र बन गयाहै, स्वभावत: ऐसे तत्त्वों का शक्ति-स्रोत सत्ता है और जो वैचारिक-स्रोत-शून्य होनेके कारण वैदेशिक, मुख्य रूपसे यूरोपीय, चिन्तन-लेखनका मात्र अनुकरण करताहै और अपने सत्ता-प्रभुओंकी अनुकूलताके अनुसार तर्कजाल और शब्दजाल को बुनता रहताहै। यदि मोटे रूपमें कहा जाये तो यह वर्ग इण्डियन इंगलिश (इंडिश) वालोंका है, अपनी शिक्षा-दीक्षासे निर्मित वैचारिकताके कारण भारतीय लोक-मानससे और उसकी चेतनाके मूल स्रोतों से कटा हुआहै, इस धरती-खण्डपर होनेवाले पदचापों की प्रतिक्रिया स्वरूप नव-उन्मेषोंसे अपरिचित रहताहै, इसलिए वह जाने-अनजाने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे अपनी सूचनाओं-प्रतिक्रियाओंके लिए टाइम्स-न्यूजवीक-इकानॉमिक टाइम्स-परेड-डाइजेस्ट, बी. बी. सी. जैसे अन्य स्रोतोंपर निर्भर रहताहै। यही उस वर्गकी प्रबुद्धता है, बौद्धिकता है, कलात्मकता है और इन-वेस्टिगेटिव जर्नलिज्म है। सत्ताजीवियोंसे जुड़ा यही प्रबुद्ध, बुद्धजीवी, खोजी पत्रकारोंका दूसरा वर्ग है जिसकी पूंछके साथ भारतीय पत्रकार और हिन्दी पत्रकार बंधे हुएहैं और जिनकी अध्यक्षता कोई इंडिश पत्रकार या पूर्व इंडिश प्राध्यापक करतेहै।

तीसरा वर्ग पश्चिमी एशियाके इस्लामी देशोंके राजनीतिज्ञों, राजनयिकों और इस देशके मज़हबी उन्मादसे जुड़े भारतीय कहे जानेवाले मुस्लिम कट्टरपंथियोंका है जो भारत स्थित पश्चिमी एशियायी और पाकिस्तानी दूतावासोंके राजनयिकोंके सहयोगसे राजनीतिक दांव-घातों, आतंकवादी प्रतिघातोंमें संलग्न रहताहै। इस्लामी विस्तारवादमें गहरी निष्ठा रखनेवाले भारतके ये लोग इन विदेशी शक्तियोंसे मिलकर एक ओर आन्तरिक अव्यवस्था फैलानेकी योजनाएं बनातेहैं, दूसरी ओर इस देशकी आर्थिक घेराबन्दीके प्रस्ताव रखतेहैं। राजनीतिक कौशल और राजनीतिके आधारपर ध्वस्त कीगयी मस्जिदोंकी क्षतिपूर्ति की मांग और अयोध्यामें ध्वस्त बाबरी गुमटीके स्थानपर ही 'बाबरी मस्जिद' बनानेकी मांग करनेपर अपनी शक्ति केन्द्रित करतेहैं। इस देशका सत्ता-पालित पत्रकार चारण वर्ग इन गतिविधियों और ऐसे आयोजनों से सम्बद्ध समाचारोंका अपने पत्र-समुहोंमें पूरा बहिष्कार करताहै। विदेशी पत्र-पत्रिकाओंकी भांति

इंडिश चारण पत्र-समूह भी इस प्रकारके समाचारोंको अपने क्षत्रसे वाहरका मानतेहैं। उनकी धारणा यह प्रतीत होतीहै कि इस प्रकारके समाचारोंको प्रकाशित करना साम्प्रदायिकताको प्रोत्साहन देना होगा। उन्हें यह नहीं प्रतीत होता कि इस देशको—जिसके अन्न-जलसे वे पल रहेहैं—अंधकारमें रखकर असावधान रहनेकी भूमिका निभा रहेहैं और देश-विरोधी गति-विधियोंको प्रोत्साहन दे रहेहैं एवं इस तीसरे वर्गके भारत विरोधी कार्योंमें सहयोग दे रहेहैं।

इस प्रकार वर्तमान सत्ता, इंडिश पत्रकार (साथ में प्रबुद्ध-बुद्धिजीवी और इनके सहयोगी कलाजीवी), और विदेशी सहयोगसे आन्तरिक भारत-विरोधी मुस्लिम सम्मिलित रूपसे देशके बहुमतपर केवल दबाव ही नहीं बनाये हुए अपितु इस देशके विभिन्न कालोंके शासकों-शोषकोंकी मनोवृत्तिको जागृत रखकर मानसिक स्तरपर उन्हीं युगोंकी शासित-शोषित 'प्रजा' बनाये रखनेके लिए प्रयत्नशील है, यद्यपि नाम लोक-राज और लोकतन्त्रका लिया जाताहै। इस स्थितिको बनाये रखनेके लिए और विभिन्न क्रूर और बर्बर आक्रमणों द्वारा पूरे समाजके रूपको बदलने, अपनी मान्यताओं-धारणाओं-विश्वासों-मज़हबोंको लादनेके लिए किये गये विध्वंसक कृत्योंके मानसिक दुष्प्रभावों को कम करनेके लिए ये तर्क प्रस्तुत किये जातेहै : "आजके हिन्दू समाजमें आर्यों—वे जो भी हों—की संस्कृतिके तत्त्व कोल और किरात संस्कृतियोंके तत्त्वों से घुले मिलेहैं। यवन (ग्रीक), खुरासानी, शक, कुषाण और हूण बाहरसे भारत आये और यहांके समाज और उसकी संस्कृतिके अंग बन गये।" (श्यामा चरण दुबेके लेखके कुछ प्रासंगिक वाक्य)। इस प्रकार के तर्कोंको सम्भावित धारणाके रूपमें तो लिया सकता है, क्योंकि अभी इस पुरा-इतिहासपर मात्र अभी प्रारम्भिक कार्य हुआहै। इसे किसी सामाजिक स्थिति का निर्णायक एवं निश्चित रूप स्वीकार नहीं कियाजा सकता। परन्तु इस धारणासे भी बड़ा तथ्य यह है कि इस देशमें कोलों-किरातों तथा अन्य जातियोंकी या धर्मोंकी भारतीय समाजमें किसी निर्णायक छविके दर्शन नहीं होते, जबकि, जैसाकि स्वयं श्री दुबेने स्वीकार कियाहै, इस्लाम और ईसाइयतकी पृथक् छवि बनी हुईहै। साथ ही यहभी तथ्य है कि इस 'छवि' को स्थायी बनानेके जितने प्रयत्न हो रहेहैं, इस देशपर इस 'छवि' को लादे रखनेके जितने वैदेशिक प्रयत्न हो रहेहैं और स्वयं इसी देशके प्रबुद्ध, बुद्धिजीवी, कलाजीवी, खोजी पत्रकार और इन सबकी प्रश्रयदाता भारतकी वर्तमान सत्ता प्रयत्नशील हैं, वह अन्यतम है और इतिहासमें इसके विरल उदाहरण मिलेंगे। रोचक तथ्य यह भी है कि जिन लोगोंकी पृथक् 'छवि' बनाये रखनेके आज प्रयत्न हो रहेहैं, आन्दोलन हो रहेहैं, उनका पचानवे प्रतिशत भाग अबतक हिन्दू समाजका अविच्छिन्न अंग था, जिन्हें बलपूर्वक अथवा प्रलोभन द्वारा अपनी 'छवि' परिवर्तित करनेके लिए बाध्य किया गया, उन्हें पुन: अपनी मूल छवि ग्रहण करनेकी प्रत्येक प्रेरणाका प्रबल विरोध किया गया और अबभी कियाजा रहाहै। पूरे समाजकी दो अथवा अधिक छवियोंमें विभाजित करने और एक-दूसरेके समानान्तर विरोधी शक्तियोंके रूपमें स्थापित किये रखने और इस प्रकार उनकी सभी छवियोंको सत्ताकी राज-नीतिक आकांक्षाओंका साधन बनाये रखनेका कार्य ही यह ऊपर उल्लिखित दूसरा वर्ग कर रहाहै।

आजकी सत्ता स्वयं इसी अपराध-बोधसे पीड़ित है। सत्ताधीश गर्जन-तर्जन करते अवश्य दीखतेहैं क्योंकि उनकी विवशता है, वे सत्ताको किसी अपने 'बोध' के कारण हाथसे नहीं जाने दे सकते। पर उनका अनिश्चय-पूर्ण स्थिति, विवेकहीन कृत्य, निरन्तर सत्तामें बने रहने और चुनाव न करानेकी बार-बार घोषणाएँ उनकी दुविधा और मनमें निरन्तर संघर्षशील औचित्य-अनौचित्यकी स्थितिका अच्छा आभास दे जातीहैं। वस्तुत: धरती और लोकमानसके उद्वेलन उन्हें आन्तरिक रूपसे क्षुब्ध और भयभीत किये हुएहैं, वे स्वयं अपने आपको दिशाहीन अनुभव करते प्रतीत होतेहैं और इसीलिए वे सभी प्रकारके विवादोंको तीन-चार वर्षके लिए स्थगित रखनेकी याचनाएं कर रहेहैं। सत्ताका मोह किसी संँकटका सामना करनेका साहस प्रदान नहीं करता, उससे बचनेके उपाय करनेके लिए विवश करताहै। यही कारण है कि तीन महीनेके भीतर मन्दिर समस्या सुलझा लेनेका समय लेकरभी सत्तापर मंडराते संकटसे बचनेके उपाय करते-करते सत्ता फिर उसी भंवरजालमें आ फंसीहै। देशकी समस्या किसी सत्ताधीशके सिंहासनकी नहीं है, अपितु हजारों वर्षोंसे चले आ रहे आक्रमणोंसे उत्पन्न भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक असंतुलनोंको दूर कर ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ करनेकी है जिससे देशका विकास स्वयं उसकी अपनी प्रतिभा और कार्योंसे हो, उसका कोई कार्य विरोधाभासी न हो। यदि संविधान की उद्देशिकामें कुछ संकल्प रखे गयेहैं तो उसके विभिन्न अनुच्छेदोंमें संकल्पोंके विपरीत व्यवस्थाएं नहीं होनी चाहियें। यह भी स्वीकार किया जाना चाहिये

कि आक्रमणके कारण हुए परिवर्तनोंको आज मान्यता न दी जाये, इस प्रकारके परिवर्तनोंको निष्प्रभावी किया जाये। आक्रमणके प्रतीकोंको, स्मारकोंको विदा करनेकी प्रवृत्तिसे बचा नहीं जा सकता। यह सर्वसम्मत रूपसे स्वीकार किया जाना चाहिये कि इन्हें विदा करनाही होगा, विदाके साधन क्या हों, मात्र यही विचारणीय हो। अभी तो यह स्थिति है कि आक्रमण में हुए परिवर्त्तनों, उसके प्रतीकों और स्मारकोंकी विदाईके प्रश्नको लेकर ही असहमति ही नहीं, दोनों पक्षोंमें प्रबल विरोध है। इसलिए दो समानान्तर विरोधमें जमे पक्षोंमें से एकको प्राप्त प्रोत्साहन और सहयोगको ध्यानमें रखते हुए उत्तेजना और तनाव स्वाभाविक है। गत पैंतालीस वर्षोंके अनुभवको ध्यानमें रखते हुए यह कहाजा सकताहैं कि स्वयं सत्ता पक्षकी नीतियों और व्यवहारने ही इस उत्तेजनात्मक स्थितिको प्रोत्साहन दियाहैं, जिसके चक्करमें अब वह स्वयं फंस गयीहैं।

प्राय: यह बात दोहरायी जातीहैं कि इतिहासके किसी कालखण्डमें हुए आक्रमणका प्रत्युपाय आज नहीं कियाजा सकता। यह आंशिक और अर्द्ध-सत्य हैं। इतिहासमें ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं जब सदियों तक देशों और जातियोंमें आक्रमण-प्रत्याक्रमण होते रहेहैं। सत्य यह हैं कि मानवीय चेतना आक्रमणों और प्रत्याक्रमणोंकी विरोधी हैं, फिरभी एकभी देश या जाति ऐसी नहीं हैं जो आक्रमणके प्रतीकों और स्मारकोंको सुरक्षित रखना चाहे, बल्कि वे उन्हें नष्ट कर देतेहैं। विशेषत: उस स्थितिमें जब कोई वर्ग आक्रमणके प्रतीकों और स्मारकोंको सुरक्षित रखनेके दुराग्रहपर इस सीमा तक अड़ जाताहैं, विशेष रूपसे उन क्षेत्रोंमें जहां दुराग्रही वर्गके लोग अल्पसंख्यक हैं और उनके दुराग्रहको देशकी सत्ता और वैदेशिक सत्ताएं अपने-अपने स्वार्थों के कारण मान्यता प्रदान करनेपर बल देतीहैं, विशेषत: बहुसंख्यक वर्गको अपमानित करनेकी सीमा तक, तो स्थिति गम्भीर हो जातीहैं। यही स्थिति स्वयं सत्ताने अयोध्यामें उत्पन्न करदी। उस असह्य स्थितिका परिणामभी सामने आगया, उसपर सत्ता पक्ष और चारणोंकी उग्र प्रतिक्रियाएं—बहुधा राजनीतिक कारणों से सीमाका उल्लंघन करती हुई प्रतिक्रियाएं भी सामने आगयी। सत्ता पक्षभी अब दुराग्रहकी उस सीमा तक पहुंच गयाहैं जिसपर उन्मादी मजहबी वर्ग पहलेसे ही स्थिर रूपसे जमा हुआहै। पर स्थितिकी रोचकता यह हैं कि सत्ता पक्ष जिस उन्मादी मजहबी वर्गको इस शतीके प्रारम्भसे सहलाता और पालता-पोसता आयाहै, अब उसीने सत्ता पक्षकी आकांक्षाओंके विपरीत नया स्वतंत्र मार्ग अपना लियाहैं।

मोहम्मद बिन कासिमके सिंधपर आक्रमणसे लेकर अबतक इस देशको जो अनुभव हुएहैं उनपर इतिहासके विद्वानों और आधुनिक राजनीतिमें वामपंथी उछल-कूद करनेवालोंके उद्‌गारोंपर भी, जोकि अयोध्या कांडके बाद प्रकाशित हुएहैं, एक दृष्टिपात करना कम रोचक नहीं होगा। मधु लिमये लिखतेहैं : "अरब और तुर्क मूलके विजेताओं तथा शासकोंमें सहिष्णुता और उदारताके गुणोंके विशेष प्रमाण नहीं हैं। कठोर और क्रूर व्यवहारको ही स्वाभाविक और प्रशंसनीय माना जाताथा।" इसकी पुष्टिभी श्री लिमयेने 'चिलापुरी' और 'चाचनामा' के उद्धरणोंसे कीहै। यहभी लिखा है : "अरब और तुर्क मूलके आक्रमणकारियोंसे लेकर औरंगजेब तक मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र करने, मूर्तियोंको तोड़ने और हिन्दुओंपर भेदभावपूर्ण कर लगानेकी लम्बी कहानी रहीहैं। विलापुरी और चाचनामाके लेखकसे लेकर कैफी खां तकके मुस्लिम इतिहासकारोंने इन खेदजनक कार्योंके विवरण दियेहैं।" क्या यह पूछा जा सकताहै कि अली मियां, बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटीके सदस्यों और जामा मस्जिदके इमामके विचार और मनोवृत्ति उपर्युक्त उद्धरणोंसे कुछ भिन्न है? यह स्थिति तब है जबकि वे देशमें अल्पसंख्यक हैं और बहुसंख्यकोंको अपमानित करनेवाले प्रतीकों और स्मारकोंको स्थायी बनाये रखने के सार्वजनिक वक्तव्य देतेहैं। सत्ताधीश और उनका चारण वर्ग "हिन्दू धर्मकी उदार और सहिष्णु परम्परा" की दुहाई देतेहैं। निस्संदेह अरबों और तुर्कोंके आक्रमणोंसे लेकर औरंगजेबके बर्बर शासनकालतक यह हिन्दू धर्म उदार और सहिष्णु रहा क्योंकि असहाय और अकर्मण्य था। आज सत्ता पक्ष और उसके चारण हिन्दुओंको उसी स्थितिमें लौट जानेके प्रवचन-उपदेश दे रहेहैं?

निश्चयसे आजभी हिन्दू समाज उदार और सहिष्णु है। मुस्लिम कालमें जबभी अवसर आया इसी उदार और सहिष्णु समाजने विद्रोह किया। औरंगजेब जैसे बर्बर शासकके समय भी मुगल साम्राज्यसे शिवाजी ने टक्कर ली, परन्तु वे स्वयं और उनका शासन उसी प्रकार हिन्दू समाजकी परम्पराके अनुसार उदार और सहिष्णु बना रहा। यदि आजका हिन्दू कारसेवक अपने युगकी पदचाप पहचानकर मात्र ईंट-गारेकी बाबरकी गुमटीनुमा सैनिक चौकीको भूमिसात् करताहै तो उसने केवल आक्रमणके एक स्मारकको ही धाराशायी किया, न कि किसी मस्जिदको। चारण वर्ग और उनकी संरक्षक आजकी सत्ता भले ही आंसुओंकी झड़ी लगादे!

पठनीय और संग्रहणीय ग्रन्थ

आलोचना :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	३५.००
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	४०.००
	विद्यार्थी संस्करण	२५.००
छायावाद : नया मूल्यांकन— प्रा. नित्यानन्द पटेल	सजिल्द	४०.००
'प्रकर' : **विशेषांक** ['पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के नौ अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		२७५.००

उपन्यास :

अपराधी वैज्ञानिक : (वैज्ञानिक उपन्यास) —यमुनादत्त वैष्णव अशोक	सजिल्द	६०.००
ये पहाड़ी लोग— यमुनादत्त वैष्णव अशोक	सजिल्द	२५.००
सुधा—[मलयालमसे अनूदित] —टी. एन. गोपीनाथ नायर	सजिल्द	२५.००
शकुन्तला—['अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का औपन्यासिक रूपान्तर] —विराज	सजिल्द	२५.००
प्रवासो — [बर्माके भारतीय प्रवासियोंकी कहानी]—श्यामाचरण मिश्र	सजिल्द	३०.००
संस्कृत कथाएं—[प्राचीन कथाएं]—डॉ. कृष्णकुमार	पेपर बैक	१५.००

नाटक :

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर	सजिल्द	१५.००
श्रेष्ठ एकांकी— डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	सजिल्द	१५.००

जीवन दर्शन :

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	सजिल्द	२०.००
महर्षि दयानन्द : ,, ,,	सजिल्द	२५.००
गुरु नानक : ,, ,,	सजिल्द	३०.००
श्री अरविन्द : ,, —रवीन्द्र	सजिल्द	२०.००

समसामयिक साहित्य :

रुपयेका अवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी		४०.००
विस्तारवादी चीन- जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (पुरस्कृत)	जेबी आकार	८.००
कच्छ—पद्मा अग्रवाल	,,	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश	,,	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल	,,	१०.००

'प्रकर' कार्यालय

ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-६

शब्दभेद, शब्द-वर्गीकरण, शब्द-विवेचना, नाम, आख्यात, निपात, परस्थानिक, प्रत्यय

—पं. काशीराम शर्मा

५१.० **दी. का शब्दभेद :** हिन्दीके रूप प्रक्रियात्मक ढांचेका विवेचन करनेके पश्चात् दी. ने 'शब्दभेद' प्रकरण आरंभ कियाहै जिसमें 'शब्दोंके मुख्य तीन (अथवा चार) भेद मानेहैं, फिर उनके अवान्तर भेद भी बतायेहैं। लिखाहै : "हिन्दीमें शब्दोंके तीन भेद माने जा सकतेहैं : स्वतंत्र अथवा अर्थदर्शी शब्द, सहायक शब्द तथा विस्मयादिबोधक शब्द। अनुकरण शब्दों का अलग वर्ग है। 'अर्थदर्शी' का लक्षण बताते हुए उन्हें वस्तुओं, गुणों, संख्या, व्यापार और अवस्थाओंके लक्षणोंका नामोद्देश करनेवाला बतायाहै और स्पष्टता के लिए पुन: लिखाहै : 'अर्थात् वे वास्तविकताको उनकी वस्तुओं, व्यापारों, गुणों एवं लक्षणोंको प्रतिबिम्बित करतेहैं।' फिरभी बात स्पष्ट नहीं होती अत: अर्थदर्शीके छह भेद बताकर स्पष्ट कीगयीहै : 'संज्ञा, विशेषण, संख्या शब्द, सर्वनाम, क्रिया तथा क्रिया-विशेषण'। फिर और अधिक स्पष्टताके लिए सर्वनामके विषयमें कहाहै कि वह केवल इंगित करता है जबकि शेष पांच नामोद्दिष्ट करतेहैं। अर्थदर्शीका पुन: विकारी और अविकारीमें वर्गीकरण कियाहै और कहाहै कि 'विशेषण, गणनावाचक संख्या शब्द तथा क्रिया विशेषण अविकारी है।" सहायक शब्दोंमें परसर्ग, समुच्चयबोधक तथा निपात गिनायेहैं। विस्मयादि बोधक और अनुकरण शब्दोंका पृथक वर्ग मानकर ही परिचय कराया गयाहै। पता नहीं आरंभमें शब्दोंके तीन ही भेद क्यों बताये गये ? आगे संज्ञा आदि सभी वर्गोंका परिचय दिया गयाहै। संज्ञाके प्रसंगमें लिंग, वचन, कारक तथा प्राणिवाचकताको प्रवर्ग बताया गया है। विशेषणके लिंग-वचन-कारक प्रवर्ग बताये गयेहैं। संख्या शब्दोंके भी लिंग, वचन, कारककी बात कही गयीहै। उन्हें विशेषक बताया गयाहै, विशेषणसे अलग। सर्वनामोंमें संज्ञा सर्वनाम, विशेषण-सर्वनाम, संख्या सर्वनाम भेद बतायेहैं क्योंकि दी. के अनुसार उनके प्रकार्य क्रमश: वे ही होतेहैं जो संज्ञा विशेषण और संख्याके होतेहैं। क्रियाके प्रसंगमें कहाहै कि 'इस शब्दभेदके अन्तर्गत वे शब्द आतेहैं, जो व्यापार या अवस्थाको नामोद्दिष्ट करतेहैं। हिन्दीमें क्रियाके निम्न व्याकरणिक प्रवर्ग होतेहैं : पुरुष, वचन, लिंग, काल, प्रकार, वाच्य तथा पक्ष। इनमें काल, प्रकार, वाच्य तथा पक्ष केवल क्रियाके ही प्रवर्ग हैं जबकि पुरुष, वचन और लिंग प्रवर्ग पराश्रित हैं। क्रियामें ये अन्वय से आतेहैं। हिन्दीकी क्रियाओंके रूप पुरुष, वचन, लिंग, काल तथा प्रकारके अनुसार बदलतेहैं। पुरुषनियत रूप वाक्यमें विधेय होतेहैं। क्रियाके पुरुष अनियत रूप-तुमर्थ, कृदंत तथा क्रियाविशेषण कृदंत अन्य वाक्यगत प्रकार्य कर सकतेहैं। हिन्दी भाषामें क्रियाकी रूप प्रणाली अत्यंत विकसित है, इसमें काल, पक्ष तथा प्रकार संबंधी विविधतम अर्थ व्यक्त कियेजा सकतेहैं। क्रियाके विभिन्न रूप दीर्घकालिकता नैरन्तर्य, आवृत्ति, प्रक्रमण, आकस्मिकता आदि तथा व्यापारके निष्पादन

की अन्य विधियां व्यक्त करतेहैं।' क्रिया विशेषणका लक्षण यह बताया गयाहै कि वह व्यापारका लक्षण या लक्षणका लक्षण बताताहै यह भी कहाहै कि ये शब्द वाक्यमें विशेषता बोधक होतेहैं। इसके बाद परसर्ग, समुच्चयबोधक, निपात और विस्मादि बोधकके लक्षण बतानेके यत्न हैं, पर समझमें आनेवाला लक्षण केवल समुच्चयबोधक का हैं।

५१.१ इस विवेचनके बाद दी. ने अपने वर्गीकरण का दोष स्वयं उद्घाटित करते हुए लिखाहै : 'ये शब्द भेद, अर्थात् शब्दोंके व्याकरणिक वर्ग एक दूसरेसे पूर्णतः पृथक् वर्ग नहीं है। इनकी सीमांएं बहुधा अस्थायी ही होतीहैं। प्रायः इनमें संक्रमण देखाजा सकताहै, यानी एक वर्गका शब्द दूसरे वर्गमें चला जाताहै। साथही प्रायः एक वर्गके शब्द दूसरे वर्गके प्रकार्य भी करते पाये जातेहै।' दी. ने इस कथनकी पुष्टिमें प्रमाण भी उपस्थित कियेहैं यथा: संज्ञाओंका क्रिया-विशेषणके समान उपयोग, विशेषणों और कृदंतोंका संज्ञाकरण, कृदंतोंका विशेषणोंमें संक्रमण, विशेषणों तथा गुणवाचक क्रिया विशेषणोंके बीच अति सूक्ष्म अंतर, आदि। इसीलिए दी. को कहना पड़ा कि 'अनेक ऐसे शब्द हैं, जिन्हें रूपावलीके बिना मूलरूपमें तथा प्रसंगके बिना देखने पर संज्ञा वर्गमें भी रखा जा सकताहै और विशेषण वर्गमें भी। ऐसे शब्दोंकी संरचनामें कोई विशिष्ट रूप प्रक्रियात्मक लक्षण नहीं होते जिन्हें देखकर उन्हें किसी एक निश्चित वर्गका शब्द माना जाये।' कृदंतके विषयमें भी दी. की शिकायत है कि 'यदि कोई कृदंत क्रिया शब्द शब्दभेदके अंतर्गत उसके जो प्रवर्गात्मक अर्थ हैं, उन्हें खो बैठताहै, तथा जिस क्रियासे वह व्युत्पन्न है, उससे कुछ भिन्न अर्थमें प्रयुक्त होने लगता है तो वह पूरी तरहसे विशेषण हो जाताहै।' ऐसीही शिकायत कुछ विशेषणोंके विषयमें है : 'प्रायः लक्षण या गुण नामोद्दिष्ट करनेवाले विशेषण क्रिया-विशेषण का प्रकार्य करतेहैं।' अंतमें दी. अपनी विवशता व्यक्त करते हुए लिखतेहैं : 'किसीभी शब्दका वर्गीकरण करने अर्थात् उसे किसी शाब्दिक व्याकरणिक वर्ग (शब्दभेद) में रखनेके लिए यह आवश्यक है कि वह किसी वाक्यमें प्रयुक्त हो, किसी प्रसंगमें आयाहो, क्योंकि ऐसी स्थितिमें ही शब्दके रूप प्रक्रियात्मक वाक्यगत गुण प्रकट होतेहैं, उसका ठोस अर्थ पता चलताहै।'

५१.१.० **दी. को समीक्षा** : दी. ने वर्गीकरण स्वयं किया और फिर स्वयं उसे दोषपूर्ण बताया पर दोष अपना नहीं माना। दोष सर्वत्र शब्दोंपर ही मढ़ा गया। यह शब्दोंका ही अपराध है कि दी. के बनाये गये कठघरोंमें बंद होकर नहीं रहते। इधर-उधर दूसरे कठघरोंमें जा घुसतेहैं। हमारे विचारसे वर्गीकरण करना वैयाकरणका काम है। यह काम वस्तुओंका नहीं है कि वे स्वयं वर्गीकृत होजायें। तर्कशास्त्रमें वर्गीकरणके नियम बताये जातेहैं। वर्गीकरण ऐसा होना चाहिये कि न उसमें अव्याप्ति दोष हो, न अतिव्याप्ति दोष। न कोई वर्ग छूटे। यदि ऐसा वर्गीकरण संभव है तो किया जाये, यदि नहीं संभव है तो न किया जाये। दूसरे, वर्गीकरण शास्त्र विशेषकी आवश्यकताओंको ही ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये, इतर तत्त्वोंके आधार पर नहीं। यदि हम व्याकरणकी पुस्तकमें वर्गीकरण कर रहेहों तो वह वर्गीकरण केवल व्याकरणकी दृष्टिसे ही होना चाहिये, दार्शनिक या भौतिक दृष्टिसे नहीं। दी. ने इतर दृष्टियोंको ध्यानमें रखकर पहले एक वर्गीकरण कर डाला अथवा अन्य लोगोंका किया हुआ ले डाला और बादमें जब अतिव्याप्ति दोष मिला तो उसमें दोष हिन्दी शब्दोंका मान लिया।

५१.१.१. दूसरे, दी. ने बिना परिभाषा दिये अनेक ऐसी पारिभाषिक संज्ञाएं भर दीं जिनको समझे बिना व्याकरणका बोध कठिन होताहै। पुरुष, वचन, लिंग, काल, प्रकार, वाच्य, पक्ष, पुरुषनियत, पुरुष अनियत, तुमर्थ, कृदंत क्रिया विशेषण कृदंत आदि ऐसी संज्ञाएं हैं जिनकी परिभाषाएं बताये बिना उनका प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता। तीसरे, संस्कृत व्याकरणकी सुज्ञात संज्ञाओंका मनमाने अर्थमें प्रयोग करना भी उचित नहीं है। तुमर्थ, कृदंत और क्रिया विशेषण कृदन्तके आगे अंग्रेजी पर्याय दे देनेसे भ्रम बढ़ताही है दूर नहीं होता। संस्कृत व्याकरणमें कृदन्त उन शब्द रूपोंको कहतेहैं जो 'कृत्' संज्ञक प्रत्यय जुड़नेसे बनतेहैं। 'कृत्' प्रत्ययोंकी लंबी सूची है जिसमें 'तुमन्' भी एक है जिसे 'तुमर्थ' बताया गयाहै। बी. ने पढ़ना-जाना-गाना-रोना जैसे शब्दोंको 'तुमर्थ' बताया जो यदि संस्कृत व्याकरणकी दृष्टिसे देखें तो 'ल्युडर्थ' हैं क्योंकि संस्कृतमें ल्युट् (अन्) प्रत्यय लगनेपर ही पठन-गमन जैसे रूप बनतेहैं और उन्हींका अर्थ पढ़ना-जाना आदि देतेहैं, अपितु वे उन्हींसे व्युत्पन्न हैं। सभी

कृत् प्रत्यय धातुओंमें जुड़तेहैं। उस प्रसंगको संस्कृत व्याकरण तक ही सीमित रखा जाना उपयुक्त होगा। उन्हें किन्हीं भिन्नार्थक अंग्रेजी शब्दोंका पर्याय बताना तो अनुचित हैही। दी. के वर्गीकरणमें क्या दोष है और क्यों है, इसकी चर्चा बादमें की जायेगी। पहले गु. और वा. के एतद्विषयक विवेचनपर किंचित् विचार करलें।

५२.० **गु. का शब्द-वर्गीकरण** : गु. ने आरंभ एक वाक्य 'मैला पानी अभी बहा' की विवेचनासे कियाहै और इसके चारों शब्दोंको क्रमश: विशेषण **संज्ञा**, क्रिया विशेषण और क्रिया बतायाहै। फिर कहाहै कि 'प्रयोग के अनुसार शब्दोंके औरभी भेद होतेहैं। प्रयोगके अनुसर शब्दोंकी भिन्न-भिन्न जातियोंको **शब्द-भेद** कहते हैं। शब्दोंकी भिन्न भिन्न जातियां बताना उनका **वर्गीकरण** कहलाताहै।' इसके बाद शब्द रूप-पर विचार कियाहै और 'घोड़ा-घोड़े', 'पानी गिरा-गिरेगा-गिरताहै जैसे उदाहरण देकर बतायाहै कि इसे रूपान्तर कहतेहैं। 'रूपान्तर' की परिभाषामें अच्छे शब्दोंका तो प्रयोग नहीं है फिरभी समझमें आजाताहै। वह इस प्रकार है: 'शब्द के अर्थमें हेर-फेर करनेके लिए उस (शब्द) के रूपमें जो हेर-फेर होताहै उसे रूपान्तर कहतेहै।' हमारे विचारसे न तो अर्थमें कोई हेरफेर होताहै और न रूपमें। शब्दका 'अर्थ' तो वही रहताहै, बस उसकी दिशा निर्धारित हो जातीहै। लड़का-लड़केके रूप भेदसे वचन-भेदका ज्ञान होताहै, जाता-जातीके रूप भेदसे लिंग भेदका। अत: रूपान्तर या रूप-भेदके स्पष्टीकरणमें 'हेर-फेर' शब्दका प्रयोग न होता तो अच्छा होता। इसके पश्चात् गु. ने एक शब्दसे कई नये शब्दोंके बनने की चर्चा कीहै यथा: 'दूध' से 'दूधवाला', 'दुधार', 'दूधिया' इत्यादि। दो या अधिक शब्दोंके मेलसे बनने बाले शब्दोंके उदाहरण, गंगाजल, त्रीकोन, रामपुर, त्रिकालदर्शी दियेहैं।

५२.१.१ ऊपर की भूमिकाके बाद गु. ने शब्दोंके आठ भेद होनेकी बात कहकर प्रत्येक भेदकी संक्षिप्त परिभाषा देकर भेदका नाम दियाहै। यथा:

'(१) वस्तुओंका नाम बनानेवाले शब्द—संज्ञा।
(२) वस्तुओंके विषयमें विधान करनेवाले शब्द —क्रिया।
(३) वस्तुओंकी विशेषता बतानेवाले शब्द—विशेषण।
(४) विधान करनेवाले शब्दोंकी विशेषता बतानेवाले शब्द—क्रिया विशेषण।
(५) संज्ञाके स्थानपर आनेवाले शब्द--सर्वनाम।
(६) क्रियासे नामार्थक शब्दोंका संबंध सूचित करनेवाले शब्द—संबंधसूचक।
(७) दो शब्दों या वाक्योंको मिलानेवाले शब्द-—समुच्चयबोधक।
(८) केवल मनोविकार सूचित करनेवाले शब्द —विस्मयादिबोधक।

इस प्रकार संज्ञा और संज्ञीको स्पष्ट करके एक वाक्य दियाहै जिसमें सभीके उदाहरण आ गयेहैं।

५२.१.२ शब्दभेद सोदाहरण समझाकर गु. ने रूपान्तरके अनुसार शब्दोंके दो भेद बतायेहैं : विकारी, अविकारी। फिर परिभाषा देते हुए कहाहै कि जिसके रूपमें कोई विकार होताहै उसे विकारी और जिसके रूपमें कोई विकार नहीं होता उसे अविकारी या अव्यय कहतेहैं। परिभाषासे लगताहै कि कुछ शब्दोंमें कोई दोष आ जाताहै और कुछमें नहीं आता। जब ऊपर 'रूपान्तर' समझा चुकेथे तो 'विकारी' न कहकर रूपान्तर हो सकनेवाले और 'सदा एक रूप रहनेवाले' कह देते तो बात अधिक स्पष्ट होजाती। यदि 'विकारी-अविकारी' शब्दोंका प्रयोग ही अभीष्ट था तो उन्हींकी व्याख्यामें 'जिनके रूपान्तर हो सकतेहैं', और 'जो सदा समरूप रहतेहैं' कहा जा सकताथा। अस्तु। गु. नें मान लियाहै कि हिन्दी व्याकरणका प्रत्येक अध्येता जानताहै कि 'शब्दके रूपमें विकार होने' का अर्थ क्या है।

५२.१ ३. गु. ने पूरे तीन पृष्ठोंमें अपने आठ शब्द भेदोंका औचित्य बतानेके लिए एक टिप्पणी दीहै जिसमें विस्तारसे बतायाहै कि अंग्रेजी व्याकरणोंका अनुकरण क्यों आवश्यक है, संस्कृत व्याकरणमें क्या कमियां थीं और वह क्यों अनुकरणीय नहीं है, फिरभी उसके शब्दों का अपने अभीष्ट अर्थोंमें प्रयोग क्यों उचित है। अंग्रेजीके जो विद्वान् परंपरागत अंग्रेजी व्याकरणोंका विरोध करतेहैं उन्हेंभी लताड़ बतायीहै और निष्कर्ष निकाला गयाहै कि 'शब्दोंके जो आठ भेद अंग्रेजी भाषाके वैयाकरणोंने कियेहैं वे निरे अनुमानमूलक नहीं हैं। भाषा में उन अर्थोंके शब्दोंकी आवश्यकता होतीहै और प्राय: प्रत्येक 'उन्नत भाषामें आपही आप उनकी उत्पत्ति होतीहै। भाषाशास्त्रियोंमें यह सिद्धान्त सर्वसम्मत है

कि किसीभी भाषामें शब्दोंके आठ भेद होतेहैं । यद्यपि इन भेदोंमें तर्कसंगत वर्गीकरणके नियमोंका पूरा पालन नहीं हो सकता और इसके लक्षण पूर्णतया निर्दोष नहीं होसकते, तथापि व्याकरणके ज्ञानके लिए उन्हें जाननेकी आवश्यकता होतीहै । व्याकरणके द्वारा विदेशी भाषा सीखनेमें इन भेदोंके ज्ञानसे बड़ी सहायता मिलतीहै ।' तात्पर्य यह कि गु. हिन्दीको उन्नत भाषा देखनेको आतुर हैं अत: उन्होंने उन तत्त्वोंकी हिन्दीमें उत्पत्ति कर लीहै जो अपेक्षित थे । 'संस्कृत तो रूपान्तरशील भाषा हैं अत: उसमें शब्दोंका प्रयोग व अर्थ बहुधा उनके रूपोंसे ही जाना जाताहै । यही कारण हैं कि संस्कृत शब्दोंके उतने भेद नहीं माने गये जितने अंग्रेजीमें और उसके अनुसार हिंदी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंमें माने जातेहैं ।" गु. के अनुसार यों हिन्दी संस्कृतके मार्गपर तो चल नहीं सकती अत: यदि उसे उन्नति करनीहै तो अंग्रेजीका ही अनुसरण करना होगा। उसमें अपना तो कुछ दम है नहीं । इसलिए गु. ने समझाया 'किसी-किसीका मत है कि हिन्दीमें अंग्रेजी व्याकरणकी 'छूत' नहीं घुसनी चाहिये । ऐसे लोगोंको सोचना चाहिये कि जिस प्रकार हिन्दीसे संस्कृतका संबंध नहीं टूट सकता उसी प्रकार अंग्रेजीसे उसका वर्तमान संबंध छूटना, इष्ट होनेपर भी शक्य नहीं । अंग्रेज लोगोंने अपने सूक्ष्म विचार और दीर्घ उद्योगसे ज्ञानकी प्रत्येक शाखामें समुन्नति कीहै, उसे हम लोग सहज ही नहीं भुला सकते । यदि संस्कृतमें शब्दके आठ भेद नहीं माने गयेहैं तो हिन्दीमें उन्हें उपयोगिता की दृष्टिसे माननेमें कोई हानि नहीं; किंतु लाभही है ।' शब्दभेदके लिए जिन शब्दोंका प्रयोग गु. ने किया है उनके विषयमें कहाहै कि 'अधिकांश पारिभाषिक शब्द भाषा भास्करसे लिये गयेहैं, क्योंकि निर्दोष न होनेपर भी वह पुस्तक बहुत दिनोंसे प्रचलित है और उसके पारिभाषिक शब्द हम लोगोंके लिए नये नहीं हैं ।'

५२.१.४. गु. की समीक्षा : हमारा विचार है कि अंग्रेज लोग ज्ञानकी प्रत्येक शाखामें उन्नत हों तबभी हिन्दीभाषा अपना व्याकरण छोड़कर अंग्रेजीके व्याकरणका अंधानुकरण करके समुन्नत नहीं हो सकती । अंग्रेजीका व्याकरण तो अंग्रेजी सीखनेके लिए भी उपयोगी नहीं है। उसके आठ शब्दभेद वहां भी उपयोगहीन हैं अत: उनकी अनुकृति कैसे उन्नति ला सकेगी । अष्टभेद मूलक व्याकरण तो आज अंग्रेज भाषाविद् भी अनावश्यक मानतेहैं । हां, गु. का यह कहना सही है कि 'संस्कृत रूपान्तरशील भाषा है' अत: उसके व्याकरणका अनुकरण भी हिन्दीके लिए उपयोगी नहीं है । हिन्दीका अपना स्वरूप है और उसीका विश्लेषणकरके व्याकरण बनाया जाना चाहिये । संस्कृत व्याकरणसे तो बस उसकी 'सूक्ष्मेक्षिका' लेनी चाहिये जो अंग्रेजीके पास भी नहीं है ।

५२.१.५. गु. ने प्रकरणकी समाप्ति शब्दोंके दो प्रकार बताकर कीहै : रूढ़ और यौगिक । रूढ़की परिभाषामें कहाहै कि उन शब्दोंको कहतेहैं जो दूसरे शब्दोंके योगसे नहीं बनते ।' इसीप्रकार 'जो शब्द दूसरे शब्दोंके योगमे बनतेहैं उन्हें यौगिक शब्द कहतेहैं । जैसे कतरनी, पीलापन, दूधवाला, झटपट, घुड़साल आदि ।' इन उदाहरणोंमें कतरनी और झटपट चिन्त्य हैं । आगे 'योगरूढ़' का भी विवेचन कियाहै : 'अर्थके अनुसार यौगिक शब्दोंका एक भेद 'योगरूढ़' कहाताहै जिसमें कोई विशेष अर्थ पाया जाताहै । जैसे, लंबोदर, गिरिधारी, जलद, पंकज इत्यादि । 'पंकज' शब्दके खंडों (पंक+ज) का अर्थ 'कीचड़से उत्पन्न' है पर उससे केवल कमलका अर्थ लिया जाताहै ।'

५२.१.५. गु. के विवेचनकी प्रासंगिक समीक्षा अति संक्षेपमें साथ-साथ की गयीहैं पर प्रतिपादित विषयकी समीक्षा वा. की समीक्षाके बाद ही कीजायेगी । वहां पहले 'शब्दभेद' प्रकरणपर विचार होगा और उसके पश्चात् हमारा प्रस्तावित प्रारूप होगा ।

५३.०. वा. का शब्द विवेचन : दी. और गु. ने अंग्रेजी व्याकरणोंकी पद्धति अपनाकर प्राय: शब्दोंका वर्गीकरण कियाहै। दी. ने कुछ अपनी नयी योजनाएं भी कीहैं जो ऊपर देखीजा चुकीहै । वा. अंग्रेजी व्याकरणोंके मार्गको अनुकरणीय नहीं मानते । वे हिन्दीको संस्कृतसे विकसित भी नहीं मानते पर क्योंकि स्वयं संस्कृत व्याकरणके विद्वान् हैं अत: उसके चक्करसे छूट नहीं पाते । इसीलिए प्रकरणका आरंभ 'शब्द' या 'पद' शीर्षकसे ही करतेहैं । व्याकरण और शब्दानुशासनको एक दूसरेका पूरक मानकर वे 'पद' की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत करतेहैं : 'संस्कृत व्याकरण में 'सुबन्त' और 'तिङन्त' शब्द 'पद' कहलातेहैं । 'सुप्तिङन्तं पदम्' । 'रामः करोति' में 'रामः' तथा 'करोति', ये दो पद है, एक सुबन्त दूसरा तिङन्त ।

वहां 'राम करोति' हो नहीं सकता, इसलिए सुबन्तको पद कहाहै। यही बात 'तिङन्त' के बारेमें भी है। जैसे निर्विभक्तिक 'राम' कर्त्ताकारक नहीं हो सकता, उसी प्रकार 'तिङ्' प्रत्यय रहित 'कृ' धातु भी कुछ कर धर नहीं सकती। इस अवस्थामें एक शब्द 'प्रातिपदिक' कहलाताहै, दूसरा 'धातु'। न प्रातिपदिकका प्रयोग होताहै, न धातुका। जब विभक्तियां लग जातीहैं तब 'पद' बन जातेहैं। 'पद' चलने लगतेहैं।' 'शब्द-पद' विषयक यह विवेचन कर वा. लिखतेहैं कि 'प्रातिपदिक' हिन्दीमें नहीं है, कारण यह कि यहां विभक्ति प्रयोगकी अनिवार्यता नहीं है।' निर्विभक्तिक शब्द भी प्रयुक्त होकर सब काम करतेहैं। अनेक उदाहरणोंसे वे सिद्ध करतेहैं कि 'अर्थश्चेदवगत: किं शब्देन।' फिर 'पद' और 'अर्थ' के प्रकरणपर विस्तारसे लिखतेहैं जिसका हिन्दी व्याकरणमें उपयोग नहीं प्रतीत होता। तत्पश्चात् 'ने', 'को', 'से' आदि को विभक्तियां मानकर उनका विस्तारसे विवेचन करतेहैं। ये 'विभक्तियां' हीहैं, ऐसा वा. का आग्रह है, पर ये विभक्तियां नहीं है, ऐसी स्थापना हम विगत अध्यायमें कर चुकेहैं।

५३.१. वा. का वर्गीकरण : वा. ने विदेशी पद्धति को न अपनाकर एक वर्गीकरण 'नाम-सर्वनाम-विशेषण' रूपमें कियाहै जिनमें विभक्तियां लगतीहैं। दूसरा वर्ग विभक्ति रहित का है जिसके अन्तर्गत अव्यय और उपसर्ग गिनायेहैं। फिर यौगिक शब्दोंका प्रकरण लिया है जिसमें कृदन्त, तद्धित और समासका विवेचन है। तदन्तर क्रियाविशेषणका प्रकरण रखाहै और अंतमें है क्रिया प्रकरण जिसमें संयुक्त क्रियाओंका भी उल्लेख है।

५३.२. वा. की समीक्षा : वा. ने हिन्दीके अंग्रेजी मुक्त व्याकरण-लेखनका बीड़ा उठाया, यह तो श्लाघ्य था पर हिन्दीकी संस्कृतसे पृथक् सत्ता स्वीकार करते हुए भी विवेचन ऐसा कियाहै मानो वह अभी संस्कृतके गर्भसे निकल रहीहै। 'तेरा लड़का-तेरे लड़के-तेरी लड़की' को समझानेके लिए 'तव बालक: – तव बालका: — तव बालिका' से भिन्न बताना तक तो ठीक, पर 'त्वदीय:-त्वदीया:-त्वदीया' का सहारा लेनेकी क्या आवश्यकता है। वैसे संस्कृतके दोनों ही रूपोंसे तुलना करने की आवश्यकता नहीं है। पर वा. तो 'ने' को 'एन' से व्युत्पन्न करनेका भी आग्रह करतेहैं। सीमाका उल्लंघन तो वहां हो जाताहै जहां उसे-किसे आदिके अंतके 'ए' को 'इ' का संधिगत रूप बताकर उसे कविभि: आदिके 'भि:' से जोड़तेहैं और प्राकृतोंमें बने 'हि' की कथा बताकर 'इ' तक खींच लातेहैं। विद्यार्थीको तो जानना केवल यह है कि यह 'ए' या 'इ' जोभी है, वह किन-किन शब्दोंमें लगताहै क्योंकि सबमें तो लगता नहीं। अत: उसके जन्म-जन्मान्तरोंके आख्यानका विस्तार छात्रपर नहीं लादा जाना चाहियेथा। बस यह बताना पर्याप्त था कि प्रत्येकका प्रयोग कहाँ कहां होना ठीक है।

५४.० वी. और गु. के आदर्श व्याकरणोंकी समीक्षा—जैसाकि लेखमालाके आरम्भमें बताया गया है हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओंके व्याकरणोंकी आवश्यकता तब प्रतीत हुई जब यूरोपके शासक यहां आये। उन्हें प्रशासनके अतिरिक्त ईसाई धर्मके प्रचार-हेतु भी भारतीय भाषाओंका अध्ययन आवश्यक प्रतीत हुआ। उन्हें सीखने-सिखानेके लिए व्याकरण अपेक्षित हुए। पर उनके सामने आदर्श थे अंग्रेजी आदिके व्याकरण जो स्वयं अंग्रेजीकी प्रकृतिके भी उतने अनुरूप नहीं थे जितने लातीनकी प्रकृतिके। और स्वयं लातीन वैयाकरणोंने यवन व्याकरणोंका अनुकरण कियाथा। यों भारतीय भाषाओंकी बारी आते-आते चार-पांच सीढ़ियां उतर जाना पड़ा था। सार यह कि व्याकरण रचनाकी जो शैली यवन भाषाके लिए तैयार की गयीथी वही पहले लातीनपर घटित कीगयी, फिर अंग्रेजी आदिपर और तब हमारी भाषाओंकी बारी आयी। अत: उस शैलीकी उपयोगिता यवन भाषाके बाद घटती ही चली गयी। पर सच बात तो यह है कि यवन-शैली भी सर्वथा निर्दोष नहीं थी उसमें शब्द और अर्थके भेदको स्पष्ट नहीं समझा गयाथा। हमारे देशमें पद और पदार्थका विवेचन दो पृथक् शास्त्रोंका विषय था। यह नामरूपमय जगत् है। पर इसके 'नाम-रूप' व्याकरणके विषय हैं, 'जगत्' दर्शनका। व्याकरण शब्द या पद-प्रधान शास्त्र है जबकि दर्शन पदार्थ-प्रधान। नैयायिकों और वैयाकरणों का परस्पर विरोध प्रसिद्ध है। वैयाकरण शब्दके शुद्ध प्रयोगका आग्रही है तो नैयायिक जानबूझकर 'अस्माकूणां नैयायिकेषां अर्थरि प्रयोजनं न तु शब्दरि' जैसे प्रयोग करताहै। व्याकरणमें 'पद-वाक्य' प्रयोग ही अध्ययनका विषय था तो दर्शनमें अर्थही। पर यवनानमें वैयाकरणका काम भी दार्शनिक करतेथे अत: अरिस्तु ने जो विभाजन (Categorisation) कर दिया वही

व्याकरणमें चला। वह विभाजन हमारे नैयायिकोंके द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय-अभावा: सप्त पदार्था: वाले विभाजनसे प्राय: मेल खाताहै। नगण्य परिवर्तनके साथ लातीन आदिके मार्गसे वही वर्गीकरण आधुनिक भारतीय भाषाओंके वैयाकरणोंको झेलना पड़ा। वह पद या शब्दका वर्गीकरण नहीं था, अर्थ (पदार्था: का वर्गीकरण था। इसलिए वह शब्द रूपमें उतनी रुचि नहीं लेता जितनी उसके प्रकार्यमें। वह 'लड़का गया, लड़केने पुस्तक पढ़ी, और लड़कोंने पुस्तक पढ़ी' में दृष्ट रूप-भेदपर उतना ध्यान नहीं देता जितना लड़केके कर्तृत्वपर। इसी प्रकार वह आया-आयी पुरुष-काल-मूलक वर्गीकरणमें अधिक उलझा। उसके रूपमें रुचि नहीं ली। उसे 'आया' रूप को भूतकालके साथ बांधनेकी अधिक चिन्ता रही। 'वह कल से पांच बजे आया करेगा' जैसे प्रयोगोंको वह विचलन-अपवाद माननेमें ही प्रवृत्त रहा। अत: उसने 'आया करेगा' जैसे पूरे शब्द समूहको ही भविष्यके साथ जोड़ना अधिक उचित समझा। 'आया' एक रूप है, 'करे' दूसरा और 'गा' तीसरा यह सोचने के लिए उसके पास समयही नहीं था। यह सोचनेकी परंपरा ही नहीं थी। अत: तीनोंको पृथक् तत्त्व न मानकर एक ही मानना आवश्यक था और वह सम्भव था प्रकार्यके सहारे जिसका सम्बन्ध 'अर्थ' से है 'शब्द' से नहीं। इसी लिए वर्गीकरणमें अव्याप्ति-अतिव्याप्ति जैसे दोष आने लगे। यदि रूप रचनाकी दृष्टिसे वर्गभेद नहीं है तो क्यों किया जाये, यह किसीने सोचा ही नहीं। यदि 'ने' राम, मैं, मूर्ख, आनेवाले सबके साथ समान रूपसे लग सकताहै तो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और कृदंतके भेदकी क्या आवश्यकता है, यह किसीने सोचना आवश्यक ही नहीं समझा। हम भेद करनेके विरोधी नहीं हैं। स्वयं करेंगे भी। पर व्याकरणिक आधारपर करेंगे, बाह्य आधारपर या कल्पित आधारपर नहीं। हमें भी वर्गीकरणमें अतिव्याप्तियां मिलेंगी पर उनसे समाधान भी मिलेंगे। विवशताका सहारा नहीं लेना होगा। न यह धमकी देनी होगी कि संसारकी समृद्ध भाषा अंग्रेजी का सहारा नहीं लिया तो नैया डूब जायेगी। यह सही है कि संस्कृत रूपावली प्रधान भाषा है और हिन्दी उससे सर्वदा भिन्न, अत: संस्कृतकी बैशाखियोंसे नहीं चला जा सकेगा। हिन्दीको अपने मार्गकी सर्जना स्वयं करनी होगी और वह उसमें समर्थ है।

५४.१ संस्कृत व्याकरणसे भेद—संस्कृत व्याकरण रूपावली प्रधान है। उसमें अव्यय नामक ऐसे भी थोड़े से शब्द हैं—जो गिन दिये गयेहैं—जिनको सदा एक ही रूपमें देखा जा सकताहै। शेष शब्दोंके अर्थोंकी अनेक दिशाएं होतीहैं और उन दिशाओंको व्यक्त करनेके लिए अनेक रूप व्यक्त करने पड़तेहैं। वह रूप माला इतनी विशद है कि उसको समझनेकेलिए सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित, यङ्, लुक्, णिच् जैसे अनेक प्रत्ययों की कल्पना करनी पड़ी, अनेक संज्ञाएं कल्पित करनी पड़ी, थोड़े-थोड़े रूप भेदोंको स्पष्ट करनेके लिए सूत्र बनाने पड़े। सूत्रोंसे उत्पन्न बाधाओंको दूर करनेके लिए ऐसे प्रत्यय कल्पित करने पड़े जिनके बहुत-से अंश इत् संज्ञक हो जातेथे। धातुओंके अंशभी इत् संज्ञक करने पड़े। बीच-बीचमें सुपोंका लोप देखकर समास प्रकरणकी योजना करनी पड़ी। धातुओंको रूप वैचित्र्य के कारण गणोंमें विभक्त करना पड़ा। प्रकार्यके आधारपर लकार विधान करना पड़ा। सुप् ग्रहण करनेवाले प्रातिपदिक कल्पित करने पड़ें। पूरे विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है पर इतना कह देना यथेष्ट होगा कि जिस देशके वैयाकरणोंने इतने सारे वैचित्र्यों के बीच भी नियम ढूंढ़ निकाले उस देशके वैयाकरण परमुखापेक्षी होकर कहें कि अंग्रेजीके बिना कैसे उन्नति करेंगे यह आश्चर्यकी बात है। फिरभी हम स्पष्ट करदें कि संस्कृत व्याकरणका पूरा ज्ञानभी हिन्दी व्याकरणके निर्माणमें कम उपयोगी है क्योंकि उसकी समस्याएं ही भिन्न हैं। हिन्दी व्याकरणकी रचनामें या एकके निरुक्तका वर्गीकरण थोड़ेसे संशोधनके साथ अवश्य उपयोगी है। प्रथम वर्गीकरण उस आधारपर करके अवांतर भेदोंका निरूपण करनेमें व्याकरणादिसे मार्ग-दर्शन मिल सकताहै।

५४.२ यास्कने शब्दोंका वर्गीकरण नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपातमें कियाहै जिसका उल्लेख वा. ने भी कियाहै। हम हिन्दी शब्दोंको उन चार ही भागोंमें विभक्त करनेका मार्ग तो नहीं अपना सकते पर उसका उपयोग कुछ सीमा तक अवश्य कर सकतेहैं। वैसे निरुक्त और व्याकरण दो भिन्न विषय हैं और निरुक्त का सम्बन्ध अर्थसे है। फिरभी हम उसकी पद्धतिको इसलिए स्वीकार करना उचित समझतेहैं कि उसका वर्गीकरण शब्द रूपके साथ अर्थका भी ध्यान रखताहै। यों यूरोपीय और भारतीय व्याकरणोंके बीच समन्वय

का काम कर सकताहै । निरुक्तकारने 'नाम' को सत्त्व प्रधान और 'आख्यात' को भाव प्रधान बतायाहै । इन परिभाषाओंमें 'नाम' शब्दों और 'आख्यात' शब्दोंका अर्थ भी ध्यानमें रखाहै । 'निपात' और 'उपसर्ग' रूपोन्मुख शब्द हैं । 'निपात' वह जिसका रूप सदा समान रहताहै और 'उपसर्ग' वह जो जुड़कर रूपका निर्माण करके अर्थकी दिशा निर्धारित करताहै । हिन्दी के व्याकरणमें 'नाम', 'आख्यात' और 'निपात' को ज्योंका त्यों लियाजा सकताहै और 'उपसर्ग' को छोड़ कर उसके स्थानपर 'प्रत्यय' का प्रयोग कियाजा सकता है । हिन्दीकी अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर एक पांचवां तत्त्व 'परस्थानिक' जोड़ा जा सकताहै ।

५४.३. पाणिनिकी रूप प्रधान पद्धति हिन्दी व्याकरणके लिए इसलिए कम उपयोगी है कि हिन्दीमें न तो 'प्रातिपदिक' और 'धातु' जैसे तत्त्वोंकी कल्पना करनी आवश्यक है ताकि सारी रूप रचनामें तर्कसंगति ढूंढ़ी जा सके और न प्रत्येक शब्द रूपको सिद्ध करनेके लिए नियम निर्देशक सूत्र रचना अपेक्षित है । 'अस्मद्', 'युष्मद्' आदिकी रूपमालामें प्रातिपदिकोंकी खोज करना जितना दुष्कर है उतना दुष्कर हिन्दीमें किसी 'नाम' की खोज करना नहीं है । 'आख्यात' रूपोंमें अवश्य कहीं-कहीं सम्बन्ध जोड़ना कठिन होताहै यथा 'करना-किया' का, पर ऐसे अपवाद बहुत कम है । अत: हिन्दीमें रूपसिद्धि जैसा कष्टसाध्य कार्य वैयाकरण को नहीं करनाहै ।

५४.४.० हिन्दी शब्द रचनाके प्रस्तावित पांच तत्त्वों के महत्त्वको स्पष्ट करनेके लिए उन पांचोंका परिचय अपेक्षित है । उनमें सबसे पहले 'परस्थानिक' को समझना अपेक्षित होगा जिसके समतुल्य तत्त्व संस्कृत व्याकरणमें नहीं है यद्यपि अंग्रेजोमें वैसा तत्त्व पूर्व स्थानिक (प्रिपोजीशन) है । इसको परिभाषासे समझाने की अपेक्षा उदाहरणसे समझाना अधिक सरल है 'मैंने, रामको, मूर्खोंसे, घोड़ेका, घरमें, छतपर' आदि प्रयोगों में 'ने-को-से-में-पर' तत्त्व जिन शब्दों 'मैं-राम-मूर्खों-घोड़े-घर-छत' से संबद्ध हैं उनके अर्थकी दिशासे, अर्थात् जिस वाक्यमें वे प्रयुक्त हों प्राय: उनका वाक्यकी क्रियासे, सम्बन्ध व्यक्त करतेहैं ।

५४.४.१ ये 'परस्थानिक' जिन शब्दोंके अर्थकी दिशा निर्धारित करतेहैं उन शब्दोंको 'नाम' कहना उचित है ।

५४.४.२. 'पढ़ता-सोता-गाता-रोता', 'पढ़ा-रोया-गाया-सोया, 'पढ़ना-रोना-गाना-सोना' आदिमें हम देखतेहैं कि 'पढ़-सो-गा-रो' आदि तत्त्व किसी-न-किसी क्रियाका अर्थ व्यक्त करतेहैं तो 'ता-आ-ना' क्रियार्थक शब्दोंकी अर्थ दिशाका निर्धारण करतेहैं । इस प्रसंगमें क्रिया-द्योतक या भाव-द्योतक शब्द 'आख्यात' कहे जा सकतेहैं और इनकी अर्थ-दिशाके निर्धारक तत्त्व 'प्रत्यय' ।

५४.४.३. यों हमने देखा कि 'नाम' शब्दोंकी अर्थ दिशाके निर्धारणके लिए 'परस्थानिक' अपेक्षित हो सकतेहैं जबकि 'आख्यात' शब्दोंको इस कामके लिए प्रत्ययोंकी अपेक्षा हो सकतीहै । पर ध्यान रहे हिन्दीके नाम और आख्यात सदा सहायकोंकी अपेक्षा नहीं रखते, 'देख, मैं गाय पालता हूं' जैसे वाक्य न तो 'देख' को प्रत्ययकी अपेक्षा हुई और न 'मैं' और 'गाय' को परस्थानिक की। सुविधाके लिए नाम और आख्यात को प्रधान शब्द और परस्थानिक तथा प्रत्ययको सहायक शब्द मान सकतेहैं । सहायक शब्द केवल अपने प्रधानकी सहायताके लिए प्रयुक्त होतेहैं, अकेले नहीं, जबकि प्रधान अकेले भी हो सकतेहैं । यहभी द्रष्टव्य है कि प्रत्ययोंका प्रयोग केवल आख्यातकी सहायताके लिए नहीं होता । वे नामकी भी सहायता करतेहैं । 'बालकोंने रोटियां नहीं खायीं' जैसे वाक्यमें 'बालकों' में 'ओं' और 'रोटियां' में 'यां' प्रत्यय हैं जो वचनका निर्धारण करतेहैं । इसी प्रकार प्रत्यय युक्त 'आख्यात' नाम का प्रकार्य भी कर सकताहै । ऐसी स्थितिमें आख्यात और प्रत्ययके मेलसे बना नाम अन्य नामोंके समान अकेला भी प्रयुक्त हो सकताहै और परस्थानिक की सहायता भी ले सकताहै । यथा (१) दौड़ना स्वास्थ्यवर्धक है । (२) मरे को मत मारो ।

५४.४.४. पांचवां वर्ग 'निपात' शब्दोंका है । वे सर्वतंत्र स्वतंत्र होतेहैं । न उन्हें अर्थ निर्धारणके लिए परस्थानिककी आवश्यकता होतीहै, न प्रत्ययकी । न वे किसी प्रधानके सहायक होतेहैं । वे तो वाक्यके सहायक होतेहैं । वे सदा एकही रूपमें मिलेंगे । न उन्हें लिंग चाहिये न वचन । ही, भी, और, और, हां, नहीं, न, मत, अब, कब, यहां, वहां, तरह आदि शब्द 'निपात' की श्रेणीमें आतेहैं । इनमें अब-कब, यहां-वहां जैसे स्थान-काल मूलक शब्द कभी-कभी परस्थानिककी सहायता लेतेहैं । तब वे नाम श्रेणीमें आयेंगे । यथा (१)

कबसे प्रतीक्षा कर रहाहूं। (२) यहांपर बैठो। (३) 'यहां' में और 'वहां' में अन्तर है। (४) तब का गया अब आयाहूं। तब में और अब में दुनियां बदल गयीहै।

५४.४.५ यों हिन्दी शब्दोंका पंचधा वर्गीकरण कोरा भौतिक वर्गीकरण नहीं है। वह व्याकरणिक वर्गीकरण है। उस वर्गीकरणका ज्ञान भाषामें शब्दोंके प्रयोगके कार्यको स्पष्ट कर सकताहै। अत: हिन्दीमें शब्द विचारके अन्तर्गत शब्दोंका अर्थ साधक वर्गीकरण स्पष्ट करनेके लिए हमारी प्रस्तावित रूपरेखा इस प्रकार है।

५५.० हिन्दी शब्दोंका व्याकरणिक वर्गीकरण—हिन्दी शब्दोंको उनकी अर्थ-बोधक क्षमताके आधार पर निम्नलिखित पांच वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है: (१) नाम, (२) आख्यात, (३) निपात, (४) परस्थानिक और (५) प्रत्यय। इनमें प्रथम तीन प्रधान शब्द हैं और शेष दो सहायक शब्द। इनमें (४) और (५) केवल प्रथम दो की यथावश्यक सहायता करते हैं। प्रधान शब्दके बिना उनका प्रयोग नहीं होता। (१) और (२) इनकी सहायता ले भी सकतेहैं और उनके बिना भी काम चला सकतेहैं। (३) निपात ऐसा वर्ग है जिसे सहायकोंकी प्राय: आवश्यकता नहीं होती। पांचों वर्गोंको सोदाहरण स्पष्ट करना उचित होगा।

५५.१. सर्वप्रथम 'परस्थानिक' को समझानेका प्रयास करतेहैं जो हमारा बनाया हुआ शब्द है। हिन्दीमें ने, को, से, में, पर, का/की/के जैसे शब्द प्रयुक्त होकर किसी पूर्व प्रयुक्त शब्दके अर्थकी दिशा निर्धारित करते हैं। उदाहरणोंसे बात स्पष्ट होगी: (१) मैंने बालकों को बेंतसे पीटा/इसमें 'पीटने' की पूरी हो चुकी क्रिया का उल्लेख है। उस क्रियाका कर्त्ता है 'मैं', भोक्ता हैं 'बालक', साधन है 'बेंत'। पर कर्त्ता, भोक्ता या साधन होनेका भाव क्रमश: 'ने-को-से' से व्यक्त हुआ। इन 'ने-को-से' की सहायतासे मुख्य शब्दोंकी अर्थ दिशा निर्धारित हुई। पर ये शब्द मुख्य शब्दोंके बिना प्रयुक्त नहीं हो सकतेथे। मुख्य शब्दके लिए यह सहायता सदा अपेक्षित नहीं होती। यथा: राम पुस्तक पढ़ रहा था।

५५.२. 'नाम' वह शब्द वर्ग है जिसमें क्रियाके' कर्त्ता-भोक्ता-साधन-स्थान आदिका बोध करानेकी क्षमता है और जो अपनी सहायताके लिए परस्थानिक का प्रयोग कर सकताहै। पर परस्थानिकका प्रयोग सदा आवश्यक नहीं होता। पिछले प्रच्छेदमें उदाहरण दो देखें।

५५.३. **आख्यात**—इस कोटिके शब्दोंका अर्थ कार्य या भावका द्योतक होताहै। आ, जा, उठ, चल, पढ़, लिख, सुन आदि उदाहरणोंसे स्पष्ट हो गया होगा कि किस कोटिके शब्द इस वर्गके अन्दर समाविष्ट होंगे। इस वर्गके शब्द अपने इस मूल रूपमें भी वाक्य में प्रयुक्त हो सकतेहैं और प्रत्ययके संयोगसे इनका रूप-भेद भी हो सकताहै। तू यहां आ, वहां बैठ, गाना गा, जल्दी उठ आदिमें प्रयुक्त आख्यात मूल रूपमें हैं। मूल रूपके साथ मूल रूपमें ही 'कर' आख्यात जोड़कर वह रूप बनताहै जो एक कामको समाप्तकर दूसरा आरम्भ करनेकी सूचना देताहै। यथा वह आकर बैठ गया, वह तनकर चला, सुनकर बोला। पर 'आख्यात' अपने अर्थ की दिशाएं बदलनेके लिए एक अन्य तत्त्वको भी ग्रहण कर सकताहै जिसे 'प्रत्यय' कहतेहैं। पढ़ा, पढ़ी, पढ़ीं, पढ़े, पढ़ें; पढ़ूं, पढ़ता, पढ़ती, पढ़ना, पढ़ने आदिमें क्रमश: आ, ई, ईं, ए, एं, ऊं, ता, ती, ना, ने प्रत्यय जुड़कर अर्थकी दिशा निर्धारित करतेहैं। फिरभी अर्थ की दिशा स्पष्ट न हो तो कई आख्यात प्रत्ययों सहित मिलकर भी दिशा स्पष्ट कर सकतेहैं। यथा सुन चुका था, खाता रहा होगा।

५५.४. **प्रत्यय**—प्रत्यय वह तत्त्व है जो अकेला तो प्रयुक्त नहीं होता पर नाम अथवा आख्यात शब्दों में जुड़कर उनकी अर्थ दिशा निर्धारित करताहै। आख्यातकी अर्थ दिशाके उदाहरण ऊपर दिये जा चुकेहैं। नामकी अर्थ दिशाके निर्धारणके उदाहरण देखें: बालकों ने, लड़के ने, लड़की ने, लड़कियों को। इनमें ओं, ए बहुवचन द्योतित करतेहैं तो इ स्त्रीलिंग द्योतक है और इयों स्त्रीलिंग बहुवचन। प्रत्ययके अन्य अनेक उपयोग भी हो सकते हैं जिनपर यथास्थान विचार करेंगे। प्रत्यय आख्यातमें जुड़कर उसे नाम बना सकतेहैं यथा '**पढ़ने** में कमजोर'। प्रत्यय और परस्थानिकमें यह भेद है कि प्रत्यय जिसकी सहायता करताहै उससे दूर नहीं रहता, पर परस्थानिक दूर रह सकताहै।

५५.५. **निपात**—अन्तिम वर्ग निपात शब्दोंका है जिनमें न प्रत्यय जुड़तेहैं और न परस्थानिक। वे आत्म-

पूर्ण होतेहैं। वे उस अर्थमें सहायक शब्द नहीं माने जा सकते जिस रूपमें प्रत्यय या परस्थानिक माने जातेहैं।

हां, जिन शब्दोंके साथ अथवा बीचमें आतेहैं उनके अर्थपर प्रभाव अवश्य डालतेहैं। पहले इस कोटिके शब्दों के कुछ उदाहरण देखें, फिर उनका प्रभाव। तो, भी, ही, ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, और, किन्तु, परन्तु, अपितु, नहीं, न, मत, सदा, अब, तब, यहां, वहां, इधर, आदि सदा एकसे बने रहनेवाले शब्द 'निपात' है। इनका अन्य शब्दोंपर पड़नेवाला प्रभाव देखें। 'वह तो आया ही तुम भी आये।' यहां 'तो' 'वह' के आनेकी पूरी सम्भावना व्यक्त करताहै, 'भी' 'तुम' के आनेकी बहुत कम सम्भावना। 'ही' निश्चय का द्योतक है। और 'दो को जोड़ताहै, 'किन्तु-परन्तु' पृथक् करतेहैं। इनका सबका विवरण यथास्थान देखेंगे। पर उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि इस वर्गमें कैसे शब्द आतेहैं। इस वर्गके कुछ शब्द कभी-कभी इस वर्गको छोड़कर नाम वर्गमें चले जातेहैं। ऐसे शब्द प्राय: समय और स्थानके द्योतक होतेहैं। यथा **अब से** दस वर्ष तक, **तब में** और **अब में** अन्तर है, **यहां पर** क्या रखाहै, **इधर से** चलो और **उधर को** जाओ। 'और' शब्द का एक भिन्न अर्थ (अन्यके अर्थ) में प्रयोग होताहै। यथा—मैंने **औरों** से सुनाहै। इन उदाहरणोंमें प्रयुक्त शब्द 'नाम' हैं। अत: निपात वर्गमें नहीं आयेंगे। वे निपात तभी होंगे जब इनके पश्चात् परस्थानिक न हों।

५६. यह हिन्दी शब्दोंका वर्गीकरण है। इनका विस्तृत विवेचन आगेके अध्यायोंमें होगा। यह द्रष्टव्य है कि निपात कोटिके कुछ शब्द ऐसे हैं कि वे विशेष परिस्थितियोंमें 'नाम' वर्ग में परिगणित होते हैं। फिर भी हम वर्गीकरणमें दोष नहीं मानते। कारण यह कि हम 'वर्ग' का आधार विशिष्ट लक्षणको मानतेहैं शब्द को नहीं। दी. और गु. वर्गका आधार शब्द रूपको मानतेहैं और लक्षणको उसका अनुवर्ती, अत: लक्षणसे मेल न खानेपर शब्दको दोष देतेहैं। हमारे विचारसे वर्गीकरणका आधार है लक्षण और एक शब्द कई वर्गों में जा सकताहै। जैसे मालिक और नौकरका लक्षण यदि यह मानें कि पहला आदेश देताहै और दूसरा पालन करताहै तो जो व्यक्ति एकका नौकर है क्योंकि उसके आदेशका पालन करताहै वह दूसरे का मालिक होगा जब उसे आदेश देगा। यही स्थिति शब्दोंके वर्गोंकी है। इसीलिए 'मुझे लिखना है' में 'लिखना' आख्यातका रूप है—जबकि मुझे 'लिखना' अच्छा नहीं लगता, में 'लिखना' नाम है। 'लिखनेमें तेज है' में भी 'लिखना' है नाम है। हां, प्रत्यय और परस्थानिक अन्य वर्गोंमें नहीं जा सकते। यह वर्गीकरण शब्दोंकी रूप रचनाको ही आधार मानकर किया गयाहै, अर्थको आधार मानकर नहीं। इसीलिए यह व्याकरणिक वर्गीकरण है। 'द्रव्य-गुण-क्रिया' आदिके अर्थ बोधके आधारपर किया हुआ वर्गीकरण व्याकरणिक नहीं है, भौतिक या दार्शनिक है।

[क्रमश:]

आवश्यक संशोधन

हिन्दी व्याकरण मीमांसा—लेखमालाके नवम्बरमें प्रकाशित लेखमें पृष्ठ २९ पर 'स्वर सारणी' में एक बड़ी भूल रह गयीहै जिसका निराकरण आवश्यक है।

सारणीमें रेखांकनके विषयमें टिप्पणी तो दी गयी है पर सारणीमें रेखांकन छपा नहीं है। वस्तुत: ह्रस्व के अन्तर्गत ए-ऐ, एँ-ऐँ, ओ-औ. ओँ-औँ, आ-आँ को अधो-रेखांकित छपना चाहियेथा, तभी टिप्पणी सार्थक होती।

दिसम्बर अंकमें पृष्ठ १३ पर छपा सूत्र 'रोरि' है, यह संशोधन भी आवश्यक है।

संस्कृतसे रूपान्तरित कहानियां

प्राचीन कथाएं

[सम्पा.-लेखक डॉ. कृष्णकुमार]

संस्कृत साहित्यकी कथाओंमें उत्सुकता और विचारोंकी अभिव्यक्ति दोनोंही तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हें लोककथाओं और नीतिकथाओंमें विभक्त किया जा सकताहै।

नीति कथाओंमें मनोरंजक गाथाओंकी सहायतासे सदाचार, राजनीति और व्यवहारकी सरल प्रस्तुति है, तो नीतिकथाओंका मुख्य उद्देश्य मनोरंजक द्वारा नीति सदाचारका उपदेश करनाहै।

एकही जिल्दमें दो खण्डोंकी पृष्ठ संख्या २२५ है और मूल्य है केवल १५.०० रु. (डाक व्यय पृथक्)

'प्रकर', ए-८/४२ राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-७

सिंहावलोकन

नवम दशककी हिन्दी आलोचना-२

—डॉ. वीरेन्द्रसिंह

नवम दशककी आलोचनाका विवेचन उस समय तक अधूरा रहेगा जबतक कि एक 'नये' प्रकारकी आलोचनाकी चर्चा न की जायें, मेरा संकेत अंतः अनुशासनीय आलोचनाकी ओर है। वैसे यह सत्य है कि प्रत्येक आलोचना-प्रकार न्यूनाधिक रूपसे अंतः अनुशासनीय होताहै, पर इधर विचारोंके अधिक विस्फोटके कारण और साथही, बौद्धिक-संवेदनाका बहुमुखी विकास होनेके कारण इस आलोचनाकी आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक प्रतीत होतीहै। यह आलोचना मात्र एक या दो अनुशासनों (विचारधारा भी) से सम्बंधित न होकर उन सभी अनुशासनों और विचारधाराओंका सहारा लेतीहै जो कृति या रचनाकार सृजनात्मकताको नये संदर्भोंसे जोड़ सके और इस प्रकार, आलोचनाकी 'जकडन'को कुछ तोड़ सके। यहाँ किसी आलोचना-प्रकार या 'वाद' का नकार नहीं है, अपितु रचनाके संदर्भमें उनका सही पहचान जरूरी है। प्रायः होता यह है कि एक आलोचना प्रकारके अन्तर्गत उसके अनुरूप तत्त्वोंको तो ले लिया जाताहै और उन महत्त्वपूर्ण तत्त्वोंको प्रायः छोड़ दिया जाताहै जो उस 'रूपरचना' के अन्तर्गत नहीं आते। यह कार्य अंतः अनुशासनीय "दृष्टि" के द्वारा हो सकताहैं या होता है क्योंकि प्रायः अन्य 'शास्त्रों' के अवगाहनसे हमें ऐसे नये संदर्भ प्राप्त हो सकतेहैं जो साहित्यको नये अर्थ-संदर्भोंसे जोड़कर, संवेदनाको अधिक व्यापक और अर्थवान् बना सके। उदाहरणके लिए विज्ञान बोध, सापेक्षवाद, दिक्-काल, विस्तरणशील ब्रह्मांड, टोटम, टैबू, जैविकी विकासवाद, संरचना और सृष्टि-संदर्भके नये आयाम आदि अनेक ऐसे क्षेत्र है जो उपर्युक्त आलोचना प्रकारोंसे बाहर हैं, और यहभी सत्य है कि रचनाकार इन अवधारणाओंसे अवश्य टकराताहै, यदि वह संवेदनशील है और अध्ययनशील। अतः यह आलोचना विचारधारा, सिद्धांत तथा वादको नकारती नहीं है, वरन् उनका उपयोग वहीं तक करतीहै जो कृति या रचनाकारको समझनेमें सहायक हो और अंततः विचारधाराकी अपेक्षा 'विचार-संवेदन' की गतिशीलताको स्थान देतीहै। मेरे विचारसे डॉ. रमेश कुंतल मेघ, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ. देवराज, निर्मल वर्मा, डॉ. चंद्रकांत बांदिवड़ेकर, डॉ. राजेश्वर सक्सेना तथा नंदकिशोर नवल कुछ ही ऐसे आलोचक हैं जो एक रूप रचनाके अंदर उसके अनुकूल भिन्न अनुशासनोंके सरोकारोंको लेतेहैं। फिरभी इन आलोचकोंमें अंतःअनुशासनीय दृष्टिका समावेश अवश्य है, यह दूसरी बात है कि वे किसी विशेष वाद या मतसे प्रतिबद्ध हैं। उपर्युक्त अंतःअनुशासनीय आलोचनाको एक निश्चित दिशा और व्यापकता देनेमें डॉ. वीरेन्द्र सिंहका विशेष स्थान है जो पिछले बीस वर्षोंसे इस आलोचनाके व्यावहारिक और सैद्धांतिक पक्षोंपर लिखते रहेहै जो भिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें (यथा 'आलोचना', साक्षात्कार, मधुमती, परामर्श, पहल तथा दीर्घा आदि) और उनकी प्रकाशित पुस्तकोंमें

संगृहीत हैं। इस दृष्टिसे उनकी चार पुस्तकें महत्त्वपूर्ण हैं—"बिम्बोंसे झांकता कवि-शमशेर", "वैचारिक संवेदनाओंका कवि—बलदेव वंशी", "विचार-संवेदन विविध आयाम" तथा "सृजन और अंत:अनुशासनीय परिप्रेक्ष्य"। 'मिथक-दर्शनका विकास' भी उनकी चर्चित कृति है जिसमें अंत:अनुशासनीय दृष्टिसे मिथकोंका विवेचन किया गयाहै। वीरेन्द्रसिहने इस दृष्टिके कारण रचनाकारों और कृतियोंके ऐसे नये संदर्भोंको लियाहै जो कदाचित् इससे पूर्व इस प्रकार विवेचित एवं मूल्यांकित नहीं हुएहै। उदाहरण रूपमें मुक्तिबोध, शमशेर, बलदेव वंशी, प्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदिमें प्राप्त दिक्-काल सर्जनाका स्वरूप, विज्ञान बोधके भिन्न आयाम यथा विकासवाद, परमाणु रचना, सृष्टि संदर्भ तथा सापेक्षताबाद आदि, इतिहास संदर्भ, अनुभववाद की सीमाएं, पराअनुभवकी स्थितियां तथा प्रेम-प्रकृतिके नये संदर्भ आदिको, उनके रचनात्मक वैशिष्ट्यके साथ प्रस्तुत किया गयाहै। यह तो नहीं कहा जा सकता कि यह आलोचना प्रकार अपनेमें "पूर्णता" का दावा करताहै (पूर्णता संभव भी नहीं हैं), पर यह अवश्य है कि इसके द्वारा रचना और रचनाकारको हृदयंगम करनेमें व्यापक अर्थ-संदर्भोंका अपना योगदान अवश्य है और रचनाकारके संवेदना-विचारको उसके व्यापक संदर्भोंमें देखनेकी एक "जैविक" दृष्टि है।

अंत:अनुशासनीय दृष्टिके अन्तर्गत डॉ. बच्चन सिह द्वारा एक "नये" प्रकारका अध्ययन इधर प्रारंभ हुआहै जो आलोचनाके "बीज शब्दों" (की-वर्ड्स) या पारिभाषिक शब्दोंके ऐतिहासिक अध्ययनको प्रस्तुत करताहै जो ज्ञानके भिन्न क्षेत्रोंसे हिंदी आलोचनामें आयेहैं और आलोचनाके अपने "शब्द" बन गयेहैं। डॉ. बच्चन सिहकी महत्त्वपूर्ण कृति "आधुनिक हिंदी आलोचनाके बीज शब्द "एक ऐसाही ग्रंथ है जिसमें भिन्न अनुशासनोंसे आये शब्दोंका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन है। उदाहरणस्वरूप भाषा-दर्शन तथा भाषा विज्ञानसे जो पारिभाषिक शब्द हिन्दी में आयेंहैं,—वे हैं—अग्रगामिता (फोरग्राउंडिग), संरचना, शब्द शक्तियां. काव्य शब्द-साधुत्व (ग्रामर आफ पोयेट्री), संकेत विज्ञान आदि। इसी प्रकार विज्ञानसे ऊर्जा, जैविकी, गत्यात्मकता, परमाणु, संरचना आदि जिनको डॉ. बच्चनसिहने नहीं लियाहै, संभवत: उनका ध्यान इनकी ओर नहीं गया जो इधर की आलोचनामें प्रयुक्त हो रहेहैं। इसी प्रकार दर्शन के क्षेत्रसे मार्क्सवाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, प्रभाववाद, प्रत्यक्षवाद आदि। वस्तुत: ये शब्द, शब्द न होकर अवधारणाओंके वाहक बन गयेहैं। हिन्दीमें अभी इन 'बीज शब्दोंका अध्ययन अपनी आरंभिक स्थितिमें है और इसके विकासकी आवश्यकता हैं। डॉ. तारक नाथ बाली इन शब्दोंका विस्तृत अध्ययन कर रहेहैं और निकट भविष्यमें उनकी पुस्तककी प्रतीक्षा है।

मेरे विचारसे नवम दशककी आलोचनाका सारा परिदृश्य जो सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार का है, इस बातको स्पष्ट करताहै कि हिंदी आलोचना को अभी नये संदर्भोंकी ओर आवश्यकता है जो आलोचककी अध्ययनशीलता और संवेदनशीलतापर आश्रित है। यह पूरा आकलन तबतक अपूर्ण रहेगा जबतक भिन्न साहित्यिक विधाओंकी आलोचनामें कौन-कौनसे नये आयाम एवं ग्रंथ हैं—इनका कुछ ब्यौरा न दिया जाये। कविता, उपन्यास, कहानी और नाटक-साहित्य की ये चार सृजनात्मक विधाएं हैं जिनमें से प्रत्येक विधापर आलोचनात्मक ग्रंथोंका इस दशकमें प्रणयन तो हुआहै, पर काव्य और कथा साहित्यपर (कहानीपर अपेक्षाकृत अधिक) अपेक्षाकृत अधिक। नाटक पर बहुत ही कम ग्रंथ मेरे देखनेमें आयेहैं। जिनकी चर्चा विशेष रूपसे की जाये। जहांतक शोध-ग्रंथोंका प्रश्न है, प्रकाशित रूपमें उनकी संख्याभी कम है, पर इतना अवश्य है कि कुछ ऐसे शोध प्रबंध मुझे अवश्य देखनेको मिले जो शोधके निम्नस्तरीय परिदृश्यमें कुछ "अर्थवत्ता" प्राप्त करतेहैं। इनका संकेत मैं यथास्थान करूंगा। कुछ पत्र-पत्रिकाओंने अच्छे आलोचनात्मक अंक निकालेहैं जिनकी ओर यथास्थान संकेत किया जायेगा।

नवम दशकमें कबिताके परिदृश्यका विवेचित और मूल्यांकित करनेवाली तथा कविताको नये आयामोंसे सम्बंधित करनेवाली अनेक पुस्तकें आयीहैं जो कविताकी प्रवृत्तिको, उसके नकारात्मक और सकारात्मक पक्षोंको रेखांकित करतीहै। काव्य समीक्षा की कुछ पुस्तकोंकी चर्चा हो चुकीहै अभी कुछ और पुस्तकोंको संदर्भित करना आवश्यक है। इस क्रममें विष्णु खरेकी कृति "आलोचनाकी पहली किताब"में उनके निबंध संगृहीत है जिनमें से कुछ निबंध आजकी कविता की प्रवृत्तिको लेकर लिखे गयेहैं और कलाबादोक सही

परिप्रेक्ष्य प्रदान करनेका प्रयत्न करतेहैं। इसी प्रकार डॉ. परमानंद श्रीवास्तवकी पुस्तक "समकालीन कविताका यथार्थ" में भाषिक स्तरपर यथार्थके भिन्न रूपोंका सार्थक विवेचन हैं। डॉ. श्रीवास्तव यथार्थके वाह्य और आंतरिक द्वन्द्वको बखूबी रेखांकित करतेहैं और वहभी भाषिक संरचनाकी दृष्टिसे।

इस दशकमें वैचारिक आधारको लेकर कविताके वैचारिक आयामको रेखांकित किया गयाहै। इसका कारण यह है कि आजकी कविता वैचारिक द्वन्द्वको संवेदनाके धरातलपर 'अर्थ' प्रदान कर रहीहै। डॉ. सुधीश पचौरीकी पुस्तक "नयी कविताका वैचारिक आधार" में मार्क्सवादको बहसके लिए खुले रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै और बुर्जुआ मानसिकतासे उसके द्वन्द्वको रखा गयाहै। विचारधारात्मक द्वन्द्वको कविताके द्वन्द्वसे जोड़ा गयाहै। दूसरी ओर डॉ. बलदेव वंशी की दो पुस्तकें "आधुनिक कविता और विचार" तथा 'समकालीन कविता-वैचारिक आयाम" इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं कि इसमें विचार-तत्त्वके व्यापक संदर्भों को लिया गयाहै और विचारधारा और विचारके अंतरको स्पष्ट किया गयाहैं। विचारकी गतिमें विचारधारा सहायक होतीहै, अत: यहां 'जकड़न' या "रिजिडिटी (स्थिरता) काफी कम हो जातीहै। डॉ. वंशी ने 'समकालीन कविता'—वैचारिक आयाम" में काव्यशास्त्रीय संदर्भमें विचारतत्त्वको रेखांकित कियाहै और औचित्यका सम्बन्ध भावकी अपेक्षा विचारसे अधिक जोड़ाहै। (पृ. ९-११)। इसी पुस्तकमें एक नया संदर्भ है कवितामें 'रंगोंका समावेश' जो मानवीय संघर्षमें शामिल रंगों (रक्तिम, लाल, अंधेरा, काले-स्याह) की सांकेतिकताको व्यक्त करताहै। "आधुनिक हिन्दी कवितामें विचार" में उन्होंने विचारकी आंतरिक संघटनाकी सुन्दर विवेचना करते हुए विचार तत्त्वकी भिन्न स्थितियोंके प्रत्येक काव्य खण्डमें विवेचित करनेका प्रयत्न कियाहै। इस वैचारिक आयामको डॉ. वीरेन्द्रसिंहने "विचार-संवेदन" के भिन्न आयामोंके साथ अपनी पुस्तकोंमें विवेचित कियाहै जिनका संकेत ऊपर कियाजा चुकाहै। इसी संदर्भमें डॉ. हरदयाल की पुस्तक "हिंदी कविताकी प्रकृति" में नये संदर्भों को उठाया गयाहै—एक राजनीति और कविताका सापेक्ष सम्बंध तथा दूसरे नव अध्यात्मवाद और नव प्रगतिवादका लोकेशन जो दिनकर, अज्ञेय तथा वीरेन्द्र कुमार जैनमें देखाजा सकताहै। (पृ. १७३-१७५) डॉ. हरदयालमें सातवें दशकसे प्रेम और प्रकृतिके ट्रीटमेंटमें जो बदलाव आया, उसे परिवर्तित काल-बोधके परिप्रेक्ष्यमें विवेचित कियाहै। समकालीन कवितासे सम्बन्धित कुछ निबंध डॉ. रणजीतकी पुस्तक "प्रगतिशीलता और अभिव्यक्तिकी स्वाधीनता' में है जो एक ओर 'बीमार कविता या रुग्ण कविताको संदर्भित करतेहैं, तो दूसरी ओर अज्ञेय और मुक्तिबोधके भिन्न प्रकारके बिम्ब प्रयोगोंकी संख्याका निर्धारण करते हुए निष्कर्ष निकालतेहैं कि अज्ञेयकी कविता मुक्तिबोधकी अपेक्षा अधिक बिम्बात्मक है, अज्ञेयमें प्राकृतिक बिम्ब अधिक है जबकि मुक्तिबोधमें मानव जीवन व आदिम बिम्ब अधिक हैं, अज्ञेयमें कीट पतंग बिम्ब मुक्तिबोधकी अपेक्षा अधिक है तथा अज्ञेय में ऐंद्रिय बिम्बोंकी प्रधानता है जबकि मुक्तिबोधमें दृश्य, विराट, भयावह बिम्बोंकी प्रधानता है। (पृ. ३१-४०)। इसी संदर्भमें शमशेर जैसे क्लिष्ट कविको लेकर इस दशकमें दो पुस्तकें आयीहैं—एक डॉ. नरेन्द्र वशिष्ठकी "शमशेरकी कविता" और दूसरे डॉ. वीरेन्द्रसिंहकी "बिम्बोंसे झांकता कवि—शमशेर" में शमशेर काव्यके भिन्न संदर्भोंको (यथा सूरियलिज्म मार्क्सवाद, प्रभाववाद, वैज्ञानिक बोध तथा अंतरालोंकी विशिष्टता) उठाया गया और डॉ. वीरेन्द्रसिंह ने उन्हें मार्क्सवाद के अंदर मानते हुएभी उन्हें उससे 'बाहर' भी मानाहैं, अतियथार्थके अंदर रहकर भी उसका अतिक्रमण करते हैं। उनकी काव्य चेतना जैविक, जटिल एवं बिम्बप्रधान हैं।

इस दशकमें कथा-साहित्यपर जो पुस्तकें आयी हैं, वे न्यूनाधिक रूपसे कहानी और उपन्यासके चरित्रको, उसके विकासात्मक स्वरूपको उनके भिन्न सरोकारोंको तथा साथही सृजनात्मकताके साथ वैचारिकताके संदर्भों को रेखांकित करतीहैं। इन पुस्तकोंसे गुजरते हुए एक बात नितान्त स्पष्ट दिखायी देतीहै कि यथार्थके भिन्न आयाम प्रबलताके साथ उभरकर सामने आयेहै और साथही वैचारिकता तथा संवेदनाकी गहरी-हल्की रेखाएंभी कहानी और उपन्यासके शिल्पको परोक्षत: प्रभावित करतीहैं। जैसा ऊपर कहाजा चुकाहै कि कहानी-समीक्षाकी पुस्तकें इस दशकमें अधिक आयीहै, उपन्यास समीक्षापर कम। इस पृष्ठभूमिके प्रकाशमें कुछ रचनाओंका संकेत उपयोगी होगा। एक बात

'नई कहानी' और 'समकालीन कहानी' की विभाजक रेखाको रेखांकित किया गयाहै जो भाषिक एवं कथ्यके स्तरपर यथार्थके भिन्न रूपोंमे टकरातीहैं तथा आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संकटको रेखांकित करतीहैं। यहां यथार्थसे सीधे टकरानेकी ललक है जो संघर्ष-चेतना को गति देतीहैं।

ऋषिकुमार चतुर्वेदीकी पुस्तक "हिंदी कहानी: एक दशक" में उपर्युक्त सभी तत्त्व-न्यूनाधिक रूपमे प्राप्त होतेहैं। यहां कहानी व्यक्तिसे समष्टिकी ओर अग्रसर होतीहै। शोषित वर्गका संकट-बोध यहां उभरकर आताहै और शिल्पके स्तरपर प्रयोगधर्मिताके स्थान पर एक सादगीके दर्शन होतेहैं। श्री बलरामकी "समकालीन हिंदी कहानी" और किरणबालाकी "समकालीन हिंदी कहानी और समाजवादी चेतना" में आजकी कहानीके भिन्न सरोकारोंको, भाषिक एवं कथ्यके स्तरपर चित्रित करनेका प्रयत्न हुआहै, पर बलराम स्वयं कहानीकार होनेके नाते कहानीके सर्जनात्मक पक्षपर अधिक जोर देते प्रतीत होतेहैं, वहभी यथार्थकी सापेक्षतामें। इसी संदर्भमें बटरोहीकी पुस्तक "कहानी: संवादका तीसरा आयाम" एक ऐसी कृति है जिसमें वस्तुनिष्ठताकी अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिका आग्रह अधिक है और इसका प्रमाण है उनका पूरा एक अध्याय शैलेश मटियानीपर। इसी प्रकार 'परिचर्चा' में लेखकीय संत्रास और रचनात्मक असामर्थ्य-बोधपर बटरोही और शैलेश मटियानीके संपादनमें जो चर्चा "विकल्प" (१९६७) में हुईथी, उसे यहां दिया गयाहै। इन संदर्भोंको यहां इसलिए उठाया गयाहै क्योंकि यह पुस्तक व्यवस्थित रूपसे अध्ययन एवं विचार-क्रमको प्रस्तुत नहीं करती और आजकी कहानीपर संवादका कौन-सा तीसरा आयाम खोलतीहै, यह अस्पष्ट है। फिरभी, पुस्तकमें उधेड़बुन है, संवाद है, बहस है जो सक्रियताका परिचय अवश्य देतीहै।

हिन्दी कहानीके व्यापक परिप्रेक्ष्य और उसके इतिहासको लेकर डॉ. वेदप्रकाश अमिताभकी पुस्तक 'हिन्दी कहानीके सौ वर्ष' इसी दशकमें प्रकाशित हुई जिसके प्रथम खण्डमें हिन्दी कहानीकी अन्तर्यात्राका विवेचन है जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यको पूरे रूपमें उजागर नहीं कर पाती तथा द्वितीय खण्डमें १७ प्रतिनिधि कहानीकारोंका विवेचन है जो यह स्पष्ट करताहै कि सौ वर्षोंका यह निर्वाचन पूरी तरहसे कहानीकारोंका प्रतिनिधित्व नहीं करता क्योंकि इसमें गुलेरी, बटरोही, अब्दुल बिसमिल्लाह, ज्ञानरंजन आदि प्रमुख कहानीकारोंको क्यों छोड़ दिया गया? फिरभी, इतना कहा जाना चाहिये कि यह ग्रंथ एक ऐसा प्रयास है जो सौ वर्षके दीर्घ आयामको समेटनेका प्रयत्न करताहै और यह स्वाभाविक है कि इतने लम्बे काल-खण्डमें कुछ न कुछ अनजानेमें छूट ही जाताहै। इस दशकमें एक ही आलोचककी कहानीपर चार पुस्तकोंका प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना है जो आजकी कहानीके व्यापक परिदृश्यको प्रस्तुत करतीहैं। मेरा संकेत है डॉ. पुष्पपालसिंहकी कृतियोंकी ओर, यथा—"समकालीन कहानी—युगबोधका संदर्भ", "समकालीन कहानी—रचना मुद्रा", "समकालीन हिन्दी कहानी" तथा "समकालीन कहानी—सोच और समझ"। ये सभी ग्रंथ नयी कहानीके परिप्रेक्ष्यमें समकालीन कहानीके प्रकृति तथा कथ्य और शिल्पकी नयी दिशाओंको इस प्रकार रेखांकित करतीहैं कि आजकी कहानीकी संरचना का वह रूप मुखर होताहै जो नयी कहानीसे भिन्न है। इस दृष्टिसे "समकालीन कहानी—रचना मुद्रा" विशेष रूपसे उल्लेखनीय है जिसकी विशेष चर्चा साहित्य-क्षेत्र में हुईहै। इस पुस्तकमें कहानीके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ, यथार्थके बदलते सन्दर्भों तथा कहानीकारोंकी रचनाधर्मिताको संकेतित करनेवाले सार्थक शीर्षकभी दिये गयेहैं, जो समग्र रूपसे कहानीकारों और उनकी कृतियोंका कथ्य-सार देनेमें सफल हुएहैं। उदाहरणस्वरूप विष्णु प्रभाकरके आगे शीर्षक है—धरतीपर जीवनके इर्द-गिर्द घूमती कहानियां, जगदीश चतुर्वेदी: 'काम सम्बन्धोंका प्रामाणिक स्वीकार' तथा महीप सिंह:' 'जीवनके विविध आयाम और उनमें अर्थ खोजती कहानी'। इसी प्रकार "समकालीन हिन्दी कहानी" अद्यतन कहानीपर एक व्यवस्थित पुस्तक है जिसमें आजकी कहानीकी कथ्यगत और शिल्पगत उपलब्धियोंका सुन्दर विवेचन एवं आकलन हुआहै। "समकालीन कहानी: सोच और समझ" में समय-समयपर लिखे आजकी कहानीसे सम्बन्धित निबन्ध हैं। डॉ. पुष्पपालसिंहकी एक और पुस्तककी चर्चा करना चाहूंगा जिसका दूसरा संस्करण १९८८ में निकलाहै और प्रथम संस्करण १९७९ में। यह पुस्तक है नयी कहानीके कहानीकार 'कमलेश्वर' पर—शीर्षक है "कमलेश्वर: कहानीका संदर्भ"। इसमें कमलेश्वरकी

कहानी-कलाको कहानीके व्यापक परिप्रेक्ष्यमें रखकर देखा-परखा गयाहै। इस दशकमें कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें कुछ कथाकारोंको लेकर आयीहैं जिनका संकेत आवश्यक है। श्री मदनलाल 'मधु' की पुस्तक "गोर्की और प्रेमचंद—दो अमर प्रतिभाएं" एक ऐसी पुस्तक है जो भिन्न संस्कृतियोंके लेखक होनेपर भी दोनोंकी समान रचनाधर्मिताके तत्त्वोंको उजागर करतीहै। ऐसी पुस्तकें साहित्यके परिप्रेक्ष्यको व्यापक बनातीहै, हिन्दी में ऐसी पुस्तकोंका लेखन जरूरी है। ऐसीही एक अन्य पुस्तक जो दो भारतीय कथाकारों 'जैनेन्द्र' और 'शरत्-चंद्र' के उपन्यासोंका तुलनात्मक अध्ययन करतीहै, इसके लेखक हैं डॉ. रमेश जैन और पुस्तकका नाम है—"हिन्दीके शरत्—जैनेन्द्र"। यह पुस्तक कथ्य और शिल्पके स्तरपर दोनों कथाकारोंके समान व असमान तत्त्वोंका विश्लेषण करतीहै। दोनोंमें नारीकी समस्याओंको केन्द्रमें रखाहै, दोनों मध्यवर्गके चित्रकार हैं, दोनों उपन्यासको सोद्देश्य मानतेहैं तथा दोनोंने शृंगारिकता और अतिआदर्शवादी वृत्तिको नकारते हुए उपन्यासको यथार्थके धरातलपर प्रतिष्ठित करते हैं। लेखककी यह कृति उनका शोध-प्रबन्ध है जो सामान्य शोध-प्रबन्धसे उच्चस्तरीय है।

कथाकारोंकी औपन्यासिक संरचना और कथ्यको विवेचित करती पुस्तकोंकी उपर्युक्त चर्चा उस समय तक पूरी नहीं होगी जबतक इस क्रममें दो पुस्तकोंका संकेत और न किया जाये। हैं तो दोनों शोध-प्रबन्ध, पर उनका स्तर आजके शोधको देखते हुए काफी ऊंचा है, ये प्रबन्ध कुछ आशा बंधातेहैं। प्रथम ग्रंथ है, डॉ. राजेश चौधरीका "हिन्दीका समकालीन व्यंग्य साहित्य" तथा डॉ. चेतनप्रकाश पाटनीका "हिन्दीके व्यावसायिक साहित्यका समाजशास्त्र"। डॉ. राजेश चौधरीने व्यंग्य की धारणाको स्पष्ट करते हुए उसे एक विधाके रूपमें ग्रहण करते हुए, गद्यकी सभी विधाओंमें व्यंग्यके प्रकारों और उनके सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आशयोंको विवेचित कियाहै। लेखकने व्यंग्य और हास्य, व्यंग्य और यातु, व्यंग्य और वक्रोक्ति तथा व्यंग्य और वैचारिकताके सम्बन्धको रेखांकित करते हुए शुद्ध व्यंग्यकी दृष्टिसे चार लेखकोंको व्यंग्यकार मानाहै। वे हैं—हरि शंकर परसाई, शरद् जोशी, श्रीलाल शुक्ल और नरेन्द्र कोहली। यह पुस्तक पहली बार व्यंग्यके सार्वभौमिक रूपको व्यक्त करतीहैं और प्रत्येक विधा (उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध) की व्यंग्य रचनाओंको पाठकों के सामने लातीहै। डॉ. पाटनीकी पुस्तक "हिन्दीके व्यावसायिक साहित्यका समाजशास्त्र" एक ऐसी पुस्तक है जो बाजार और 'मॉस कल्चर'के आधारपर शिष्ट और व्यावसायिक साहित्यके भेदको, उनकी मांग और खपतको, सर्वेक्षणके आधारपर रेखांकित करतीहै। लेखकने अर्थशास्त्रमें मान्य ग्रीशमके नियमका संकेत देते हुए "बुरी मुद्रा अच्छी मुद्राको बाजारसे निकाल देतीहै" के आधारपर बाजारू साहित्यकी लोकप्रियताको मानाहै जो पाठकोंके मस्तिष्कपर कमसे कम प्रभाव डालतीहैं। एक तथ्य जो सर्वेक्षण (लेखकने प्रोफार्मे भी दियेहैं जो लेखक, पाठक और प्रकाशकको दिये गये हैं और साथही समाजके भिन्न वर्गोंको) के बाद सामने आया, वह यह कि गुलशन नंदा और प्रेमचंद लगभग समान रूपसे लोकप्रिय हैं, इसके बाद शिवानी, गुरुदत्त और भारतीका नाम आया। शिष्ट साहित्य अत्यन्त अल्प रूपमें जन साधारणमें जाना जाताहै। मेरे विचारसे यह पुस्तक एक नये प्रकारके अध्ययनको प्रस्तुत करतीहै जिसकी आवश्यकता साहित्य-विधाओंके तथ्यपरक सर्वेक्षणको उजागर करतीहै।

उपन्यास-आलोचनाको लेकर दो ग्रंथ और हैं, एक है—डॉ. मृत्युंजय उपाध्यायका ग्रंथ "हिन्दीके आंचलिक उपन्यास" और दूसरे डॉ. मोहिनी शर्माकी पुस्तक "हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य"—ये दोनों ग्रन्थ शोध-प्रबन्ध हैं और इनकी प्रविधिभी शोधात्मक हैं। अत: वैचारिक उद्वेलनका अभाव है, फिरभी कुछ नये सन्दर्भ अवश्य है जैसे डॉ. मोहिनी शर्माने जीवन मूल्य की संरचना और वर्गीकरणका विवेचन करते हुए जैविक मूल्योंकी जो चर्चा कीहै, वह हमें सोचनेको विवश करतीहै। इसमें जिजीविषा सम्बन्धी, भूख, स्व-रक्षात्मक, कामतुष्टिपरक मूल्योंका विवेचन है, और उन्हें अनेक उपन्यासोंके सन्दर्भमें प्रस्तुत किया गयाहै। यह पुस्तक स्वतंत्रताके बाद उपन्यासों में प्राप्त जैविक और पराजैविक (सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि) मूल्योंके विघटन और प्रभावको पर्याप्त सीमा तक स्पष्ट करतीहै। डॉ. उपाध्यायने आंचलिकताके समाजशास्त्रीय पक्षको उजागर करते हुए, हिन्दीमें आंचलिकताको प्रेमचंदसे जोड़ते हुए उसके बहुमुखी विकासको 'रेणु' से जोड़ाहै। रेणुके 'मैला आंचल' को वे विशेष स्थान देतेहैं और उसकी तुलना जेम्स ज्वायस के 'यूलीसिस' से करतेहैं।

जब यहांपर शोध-प्रबन्धोंकी चर्चा हो रहीहै, तब मिथक काव्य-आलोचनासे सम्बन्धित दो ग्रन्थोंका संकेत उपयुक्त होगा क्योंकि ये दोनों शोध-प्रबन्ध मिथकीय अर्थ-रूपान्तरणको युगीन सन्दर्भोंमें रखकर देखतेहैं और मिथकीय अध्ययनको गति एवं अर्थ देतेहैं। मिथकीय आलोचनाके अन्तर्गत मैंने कुछ पुस्तकोंका संकेत कियाथा जिनका सम्बन्ध सैद्धांतिक पक्षसे अधिक था। ये दोनों शोध प्रबन्ध उसी सैद्धांतिक पक्षके आधारपर आजके मिथक काव्यका विवेचन करतेहैं जिनमें न्यूनाधिक रूपसे शोधपरक दृष्टिका अच्छा परिचय प्राप्त होताहै। इनमें वैचारिकताका द्वन्द्वभी अपेक्षाकृत अधिक है और वे शोध-प्रबन्धकी जड़ताको भी तोड़तेहैं, भाषिक संरचनाकी दृष्टिसे। डॉ. अश्विनी पाराशर का "नयी कविता : मिथक काव्य" तथा डॉ. सविता गोड़की पुस्तक "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी मिथक-काव्य" में आधुनिक हिन्दी कविताके पूरे परिदृश्यका संकेत प्राप्त होताहै जिसमें मिथकीय सृजनके सामाजिक-राजनीतिक-वैयक्तिक सन्दर्भोंका विवेचन प्राप्त होताहै, पर मिथकके विकासात्मक, ब्रह्मांडीय, सृष्टिपरक सन्दर्भोंका संकेत वहां नहीं है जो मिथक-काव्योंमें यदाकदा परोक्ष रूपमें प्राप्त होताहै। इनका संकेत मैंने अपने निबन्धों और पुस्तकोंमें कियाहै जैसे "अस्मिताके संवेदन" तथा "सृजन और अंत:अनुशासनीय परिप्रेक्ष्य" पुस्तकोंमें। डॉ. पाराशरने पुराचरित्रोंका सुन्दर विवेचन कियाहै और साथ ही, मिथक काव्य परम्परागत काव्यानुशासनमें नहीं बंधते अपितु उससे प्रस्थान करतेहैं। उनमें रस-योजना न होकर संवेदनात्मक घनत्व है और विचार तत्त्वकी प्रधानता है। (पृ. ११७)। डॉ. पाराशरने पारम्परिक शब्दोंकी नयी अर्थव्यंजनाओंका जो विवेचन कियाहै, वह एक नया सन्दर्भ है जो भाषाके स्तरपर घटित होताहै। (पृ. २२०-२२१)। दूसरी ओर डॉ. सविता गोड़ने अपने अध्ययनका 'प्रस्थान बिन्दु' तीन पुस्तकोंसे स्वीकार कियाहै—१. मिथक और साहित्य--डॉ. नगेन्द्र २. मिथक दर्शनका विकास—डॉ. वीरेन्द्रसिंह तथा ३. मिथक और भाषा—सं. डॉ. शंभुनाथ। लेखिकाने इन पुस्तकोंको सैद्धांतिक आधारके रूपमें लेते हुए स्वतंत्रता बादके मिथक काव्योंको भिन्न वर्गोंमें (यथा वैदिक, पौराणिक, रामायणाश्रित, महाभारत आश्रित) विभाजित कर अध्ययन प्रस्तुत कियाहै और अंतमें मिथक काव्योंके शिल्प विधानको रेखांकित कियाहै। डॉ. गोड़ने मिथकको साहित्यका पर्याय न मानकर उसे साहित्यका समानधर्मा मानाहै (पृ. ३५) तथा भस्मांकुर (नागार्जुन) कनुप्रिया (भारती) तथा 'योगनिद्रा' (कृष्णानन्दन पीयूष) कृतियोंके वैचारिक-संवेदनात्मक' अर्थ-रूपांतरणोंको सटीक रूपमें प्रस्तुत कियाहै। 'योगनिद्रा' का विवेचन मैंने पहली बार इस पुस्तकमें देखा जो आलोचकोंके द्वारा न जाने क्यों छोड़ दीगयी। यह काव्य संरचना और काव्यकी दृष्टिसे विरल है क्योंकि उसका सम्बन्ध कृष्णके अवसानसे है।

[आगामी अंकमें समाप्य]

अध्ययन : अनुशीलन

कबीर वचनामृत[1]

सम्पादक : डॉ. विद्यानिवास मिश्र
व्याख्याकार : आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी
समीक्षक : शलभ

तत्त्वज्ञम्मन्य कबीर 'धरती महारस' चखनेवाले कवि हैं, और यह आलोच्य ग्रन्थ उन्हींका वचनामृत लिये हुएहै। वे निश्चयही सन्त काव्यके शिखर और चरम आध्यात्मिक मूल्यके उपासक हैं, जिन्हें समझनेके लिए संकल्पवती साधनाकी आवश्यकता होतीहै। प्रेमकी 'अकथ कहानी' के ये श्रेष्ठ कवि सत्यत: एक श्रेष्ठ साधक और सन्तभी हैं, कोई किताबी चिन्तक या निरे तत्त्ववेत्ता दार्शनिक नहीं। वहां किसी दर्शनकी संगतिबद्ध बौद्धिक चेतना फिर कैसे मिल सकतीहै ? इसी-

---

[1] प्रका. प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। पृष्ठ : १५६; डिमा. ६१; मूल्य : ८०.००रु.

लिए इस ग्रन्थकी भूमिकाके लेखकको लगताहै कि 'कबीरदासके काव्यमें एक ओर इतनी तड़प और इतना अकेलापन है, दूसरी ओर ऐसी मस्तीका ज्वार है जो सबको, सारी सृष्टिको समेटता चला जाताहै'। ऊर्ध्व-रेतस् जो रहीहै उनकी वह चेतना —तभी तो उलट-बांसियोंमें बोलतीहै वह; जिसमें विरोधाभासी दृष्टि-उन्मेष होताहै। साथही मानवीय गरिमाका भी पूरा पक्षधर है यह कवि। अत: असत्य और अन्यायके भ्रम-जंजालोंपर अपनी तेजस्वी वाणीसे पैना प्रहार भी करता है। फिरभी उसके साधनापरक मनकी अनुभूतिजन्य वाणी बड़ी सरस, भावगर्भित और तन्मय कर देने वाली हैं। कुमार गन्धर्व जैसे गुणवन्त गायकोंने जिसे बारंबार अपना मधुर स्वर दियाहै—'राम बिन तनकी तपन न जाई। जल महि अगिन उठी अधिकाई' या बिरहिन फिरै नाथ अधीरा' अथवा 'बालम आऊ हमारे गेह रे / तुम बिन दुखिया देह रे / ऐकमेक ह्वै सेज न सोवे तब लगि कैसा नेह रे' या दुलहिन गावहु मंगलाचार/ हम घरि आये रामा राम भरतार' या फिर 'अब मोहि ले चल ननद के बीर अपने देसा' या 'कहता है गुरु ग्यानी' जैसे अनेक 'सबद' गाती वाणीकी वह समाधिलीन आत्मा अपनी गहरी अंतरंगतामें जब ऐसा कहे कि आंखड़ियां झाँई पड़ी पंथ निहार निहार/ जीभिड़यां छाला पड़या, राम पुकार पुकार' तो यह लगना स्वाभाविक ही है कि कबीर कर्म और भक्ति-योगी हैं। आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदीको भी तभी तो लगा कि 'उत्तरार्द्धमें रामानन्दसे भक्तिकी दीक्षा पाकर वे इतने सरल और भावविह्वल हुए कि उन्हें लगा कि योगसाधनाकी आवश्यकता नहीं रही, सहज ध्यानसे ही सोते-जागते लगन लगी रहतीहै'। निश्चय ही वे कृच्छ्र योगी नहीं, सहज योगी ही थे, वे स्वयं जो कहतेहैं—

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्है कोई।
जिन सहजै विषया तजी, सहज कही जै सोई॥

वे तो 'शब्द' तत्त्वके साधक हैं, और उसीकी आराधना करतेहैं—

साधो, सबद साधना कीजै।
जेहि सबद ते सब प्रकट भए ताहि गहि लीजै॥

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठीने ठीक ही तो लिखाहै कि यह 'शब्द' ही सृष्टिका उत्स है, जो अ-सृष्टि कालमें शब्दातीत है, नि:अच्छर है—सूरत यानी जीव दुभाषिया मुरशिद या गुरुका सहारा लेताहै, और मुरशिद भी अवतार है —सूफियोंके ही नहीं, भारतीय-अभारतीय सभी हृदयोंका वह अवलम्बन हैं' औरभी कि 'राग बिना रूपके हो ही नहीं सकता और 'रूप' स्वयं एक गुण है—ईश्वर, गुरु, जीवात्मा तत्वत: एक ही हैं—व्यवहारमें साधनाके लिए भिन्न'। आचार्य त्रिपाठी भक्तवर नामादासकी साक्षी—'भक्ति, भक्त, भगवन्त, गुरु चतुर नाम वपु एक' -कहकर देतेहैं। ईश्वर तो 'गुरुरात्मेति मूर्तिमय' जो है, अत: सन्तोंमें गुरुभक्ति ही भक्तिकी साधना है। गुरु और गोविन्दके समक्ष भी भक्त 'बलिहारी गुरुदेवकी गोविन्द दियो बताय' की बात अंतरंगकी गहराईसे स्वीकारताहै। तो फिर संत धाराकी यह रागात्मिका भक्ति क्या 'सगुण' नहीं होती?

आचार्यश्री रामचन्द्र शुक्लने कबीरको निरगुनिया सन्त कहाहै, वे तो यहभी मानतेहैं कि यह भक्तिधारा सूफियोंसे ली गयीहै, इसीलिए रहस्यपरक है। लेकिन भक्ति तो आध्यात्म जगत्का एक सार्वभौम सत्य है, फिर वह भारतीय-अभारतीय कैसे हो सकतीहै?—आचार्य त्रिपाठीजीने अपने सुचिन्तित विचार इसी दिशामें प्रस्तुत कियेहैं।' गुरुके लिए 'साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवेनम:' का सत्य भारतीय आचार्य भी क्या नहीं स्वीकारतेहैं?

त्रिपाठीजी शुक्लजीकी इस धारणासे कि 'निर्गुण मतका दूसरा घटक है—शांकर अद्वैत' से असहमति प्रकट करते हुए लिखतेहैं कि जो साधक कुंडलिनी शक्तिको शिवके समरस होनेमें अपनी भक्तिकी चरितार्थता मानताहै, उसका अद्वैत शंकरमत अद्वैत नहीं होगा, वह आगम सम्मत अद्वैत होगा, जिसका अर्थ है—टू इन वन—एकमें दो'। अत: कबीर त्रिपाठीजीके मतसे भक्त ही ही थे। भक्तिके लिए भक्तिही सर्वोपरि है, वह रागमयी होतीहै, उसकी व्यापकता ज्ञान और कर्मसे अधिक होतीहै। त्रिपाठीजी यहभी लिखतेहैं कि 'साधन रूपमें वह अन्त:करणकी चरमाराध्य-विषयक वृत्ति है, पर साध्य रूपमें वह चरम-सत्ताकी चिदानन्दमयी स्वरूप शक्ति है। शंकरके मायावादका इसीलिए भक्तिके आचार्योंने खण्डन कियाथा और परमसत्ताको शक्ति और शक्तिमान्का समरूप बतलाया।' उनका यह मत भी है कि 'सन्तोंमें वही आत्मशक्ति संसार रूपमें लीलाके लिए रूपांतरित होतीहै।'

कबीर भी मायाको 'महाठगिनी' मानतेहैं, जो 'तिरगुन फाँस' हाथमें लिये सर्वत्र डोलती रहतीहै । वह ब्रह्माके 'ब्रह्मानी' और शिवके घर 'भवानी' बनकर बैठीहै, पंडाके घर 'मूरत' और 'तीर्थ' में 'पानी' के रूपमें विद्यमान है, लेकिन वहीं अन्तत: कुण्डलित हो जातीहै—पिण्डमें भी और ब्रह्माण्डमें भी । 'यह शक्तिही आगम है जो अभेद रूपमें स्वरूपका बोध करादे । यही चिदाह्लादमयी क्रियाशक्ति ही भक्ति हैं'—आचार्य त्रिपाठी कबीर को इसीका पक्षधर मानतेहैं । तुलसीने भी तो यही कहाहै—'साधन सिद्धि राम पग नेह' ।

पर कबीरके राम—'ना दशरथ घरि अवतरि आवा/ ना जसुदाके गोद खिलावा' ही हैं, अत: अवतारवाद और मूर्तिपूजाका ही नहीं, बल्कि अन्धविश्वासपूर्ण प्रत्येक कर्मकाण्डका उन्होंने जोरदार खण्डन किया है । उनकी अंतरंग ज्ञानात्मक अनुभूति भक्तिके प्रगाढ़ उन्मेषकी ही देन है, देखिये —

करत विचार मनहि मन उपजा,
ना कहुं गया न आया ।

उनकी अनन्य आस्था तो 'प्रेमके आखर' पर टिकी है, वे इसीलिए कहतेहैं कि 'पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय/ ढाई अक्षर प्रेमका पढ़ै सो पण्डित होय' ।

पर वे हजरत मोहम्मद या महर्षि दयानन्दकी भांति समाज सुधारक भी नहीं थे, हालांकि मायाजाल में फंसे जीवोंको उसके सत् स्वरूप ज्ञानके लिए बारम्बार प्रबोधित अवश्य करतेहैं । फिरभी उन्होंने 'देश कालोपयोगी संभावनाओंके अनुसार नयी व्याख्यापर समाधृत समाजका नया ढांचा नहीं दिया । ..वे एक रहस्यदर्शी आध्यात्मिक सिद्ध थे, उनका प्रधान लक्ष्य था आध्यात्मिक उपलब्धि, जो किसी जाति या लिंगकी नहीं है—निश्चय ही जो गंगा-स्नान और मूर्तिपूजाका खण्डन करताहै, पूजनके नामपर कीगयी हिंसाका विरोध करताहै, कर्मकाण्डको ढकोसला बतलाताहै, चिल्लाकर ईश्वर नामोच्चारणकी आलोचना करताहै, वह पवित्रता, आस्था, सत्कर्मवृत्ति तथा परमात्मा और किसी भी मानवीय गरिमाके समक्ष समर्पणका विरोधी नहीं हो सकता ।' यही विशेषता आजके वामपंथी साहित्यकारों तक को अपनी ओर आकृष्ट करतीहै । "अरे इन दोऊ राह न पाई'—जैसे कथन क्या आज भी प्रासंगिक नहीं है ? कंकर-पत्थर चुन-चुनकर बनाये गये मंदिरों-मसजिदोंसे ऊपर कबीर साक्षात् अपरोक्षानुभूतिके ही उपासक रहेथे । और यह भी एक मनोवैज्ञानिक स्थापित सत्य है कि प्रेम जनित विरहकी भावमयी अनुभूति गहराईमें रहस्यमयी होतीहै । कबीरकी गहरी आत्मानुभूति ही वह तड़प इसीकी साक्षी है, यथा—

नैना नीझर लाइया, रहट बहै निसि धाम ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ करै, कबरे मिलइगे राम ।।

सचमुच उनके कलेजेपर तो 'एक जु पीर पिरीत' ही छा रहीहै । उसकी चोट सहते-सहते सारा शरीर जर्जर हो गयाहै; उसे या तो 'मारन हार' ही जानताहै या फिर 'जिहि लागी' सोई जानताहै । ऐसी रहस्यानुभूति तो चाहे 'साखी' हो या 'सबद' कबीरमें सर्वत्र मिल जायेगी, देखिये—

राम भगति अनियाले तीर ।
जेहि लागै सो जाने पीर ।।
तनु महि खोजौ, चोट न पावौं
औषद मूर कहां घसि लावौ ।
एक माई दीसै सब नारी,
ना जानौ को पियहि पियारी ।
कहै कबीर जाकै मस्तकि भाग
सभ गरि हरि ताको मिले सुहाग ।।

क्या रहस्यानुभूतिका ऐसा प्रभाव 'गीताञ्जलीकार' की कविताओं तक में नहीं मिलता ? कबीरने रवि ठाकुरको भी प्रभावित कियाहै । आचार्य त्रिपाठी ने उचित ही लिखाहै कि रहस्यदर्शियोंकी भाषा पैराडोक्सेजकी भाषा होतीहै—समाधि भाषा, उलटबासी या विरोधाभासी । उनकी वानियोंमें पूर्णताकी आध्यात्मिक अनुभूति छलकर उभर आतीहै' ।

लेकिन प्रश्न तो ऐसी बानीकी रसात्मकताका है, क्योंकि आचार्य शुक्लजी जैसे समीक्षक भी शंकाकुल हो सकतेहैं कि वह पाठकके मनमें रसोद्रेक कर सकती है या नहीं । वैसे भी रसग्राही सहृदय कला मर्मज्ञ होनेके साथ मेधावी भी होताहै, वह भाव, अनुभूति और चिन्तनके स्तरपर क्षमतावान् भी होताहै । यह बात और है कि हर भावककी मन:स्थिति, सामाजिक परिवेश और परिस्थितियां भिन्न हो सकतीहैं । लेकिन कबीरकी बानी लोकजीवनके तो निकट है ही । मैंने राजस्थानमें टाढ़गढ़के पास अरावलीकी सुरम्य उपत्यका [illegible] महादेवके स्थानपर कबीरपंथी

गृहस्थ ग्रामीण जनोंको देर राततक, अपने देहाती तम्बूरेके तारकी झंकृति और मंजीरोंकी टुनटुनाहटके साथ —'रस गगन गुफामें अजर झरे/ अजपा सुमिरन जाप करे।' सबद-पदको बड़ी तन्मयताके साथ गाते देखाहै। उस सत्संगी मण्डलीमें महिलाएं भी पुरुषोंसे कम नहीं थी, जो गगन-गुफासे अजर झरते रसको वे भी तल्लीनताके साथ देर रात तक पान करती रहीं। सवेरे मैंने उन्हींमें से कुछ ग्रामीणोंसे रात गाये गये पदोंके विषयमें पूछा तो उनकी सबद-ज्ञान सम्पदाने मुझे प्रभावित किया। कबीरके सबद तो गुरु ग्रन्थ साहबमें भी श्रद्धास्पद स्थान पाये हुएहैं और गुनीजन उन्हें गातेहैं। आजभी हजारों रसग्राही भावक-पाठक, बंगालसे लेकर पंजाब और मध्यप्रदेशके सीमान्त तक में मिलतेहैं; यह बात और है कि उनमें अधिसंख्य लोग ग्रामीण और अनुसूचित जातिके हैं। इस दृष्टिसे यह कवि निश्चयही एक महत्त्वपूर्ण लोक कवि, सन्त और साधक है। यह बात और है कि जैसा त्रिपाठीजीने तुलसी तक को उद्धृत कियाहै—'निर्गुन मत मोहि समुझि न आवा'—निरगुनकी अगमताको प्रमाणित करतीहै। महाकवि सूरने भी तभी तो गायाथा—'सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुण लीलापद गावै', लेकिन उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा कि 'तुलसी अलख ही का लखै, राम नाम जपु नीच।'

पर तुलसीका यह सात्त्विक आक्रोश उस परम सत्ताके प्रति फैले पाखंडपर ही प्रहार करताहै। उन्होंने तो स्वयं लिखाहै—'बिन पद चले, सुने बिनु काना/ कर बिनु कर्म करै विधि नाना'।

इसलिए आचार्य त्रिपाठीजीने 'निर्गुणमत' और 'सगुण रूप' की उपासनापर सुचिन्तित विचार-विश्लेषण 'संत कबीर : जीवनवृत्त और समीक्षा' में प्रस्तुत किये हैं। कविके जीवनवृत्तकी प्रामाणिकताके साथ, उनके काव्यकी समीक्षा कर लेखकने कविके समग्र व्यक्तित्व पर विवेकपूर्ण प्रकाश डालाहै।

'साखी' और 'सबद' की उनके द्वारा कीगयी व्याख्याएं, भारतीय सन्त-साहित्यपर उनकी मर्मज्ञता और गहरी पैठ की परिचायक है। कबीर-काव्यमें व्यवहृत पारिभाषिक शब्दों, प्रतीकों, मिथकों, आदि आदिका विवरण-विवेचन भी इस ग्रन्थकी अपनी विशेषता है। कविके काव्यकी भाषा भी लोकभाषा है, इसीलिए वह लोक-हृदयके इतना निकट रहीहै, उसके काव्य-बिम्ब, प्रतीक, रूपक—सभी लोकजीवनसे ही लिये गयेहैं, उनकी गेयता भी लोकधुनपरक है। 'बोली हमारी पूरबकी' अपना विस्तार लोकजीवनके व्यापक क्षेत्रमें इसीलिए कर पायीहै। 'कबीर' शब्दका अर्थ भले ही 'श्रेष्ठ' या 'बड़ा' रहा हो।

कविकी श्रेष्ठता तो उसकी चिन्मय काव्यानुभूतिकी ही देन है।…वह अनुभूति जो आजभी कह रहीहै—'हम सबमें, सब हममें, हम फिर बहुरि अकेला —डॉ. विद्यानिवासजी मिश्रको इसीलिए 'ऐसे सर्वव्यापी अनुभवसे गुजरकर फिरभी अकेला होनेकी कल्पना भी बड़ी रोमांचक लगतीहैं। वे तो 'गोपी प्रेमकी वैष्णव अनुभूति' से कविकी आत्माको ओतप्रोत मानतेहैं, हालांकि उसके 'हरिका बिलोवना' उसके लिए 'ऐसे बिलाइ जावे तत न जाई' ही महत्त्वपूर्ण है, जहां 'तन करि मटकी मनहि बिलोइ' और 'ता मटकि महि सबद संजोई' बहुत जरूरी है, यही नहीं, जिसे 'इला, पिंगला' और 'सुखमन नारी' 'वेगि बिलाई ठाड़ि छछिहारि' हैं। कविकी 'गूजरी' (आत्मा) तो इतनी पगला गयी कि 'मटकी' (शरीर) तक फूट गयी और वह 'जोति' में समाहित होगयी।

पर गोकुल गांवकी गोपियां तो इतनी निरीह है कि पूछती ही रहीं कि ऊधो—'निर्गुन कौन देसको वासी'। निरुपाय-सी खड़ी वे सोचती ही रहीं कि—'हमरे कौन जोग जप साधो।' अत: कबीरकी 'गोपी प्रेमकी वैष्णव अनुभूति' सामान्य नहीं, विशिष्ट अनुभूति है। यह ठीक है कि यहभी उतनीही निश्छल और सहज है अपनी अभिव्यक्तिमें। भूमिका लेखक डॉ. मिश्रने भी अपनी विनम्रतामें यह सहजही कह दिया है कि, मैं साधक नहीं पंथ का, पंथी नहीं, मर्मी नहीं, साहित्यका पाठक हूं। पहली बार मैंने कबीरको पढ़ा तो मुझे लगा कि अभी और पढ़नाहैं, अनपढ़को पढ़नेके लिए मुझे जो पढ़ा है, उसे अब-पढ़नाहै, जो सीखाहै, उसे अब सीखता है।' | क्या इस कथनमें उलटबासी ध्वनि नहीं मिलती ? उनका यह निष्कर्ष भी द्रष्टव्य है कि 'कबीर संकल्प-विकल्पोंकी अस्थिरताका सौन्दर्य नकारते नहीं, उस सौन्दर्यमें फैलना नहीं चाहते, क्योंकि दूसरा सौन्दर्य पुकारता रहताहै, वे हदका सौन्दर्य स्वीकारतेहैं, अनहदका भी, पर हद और अनहद दोनोंके पार जाना चाहतेहैं, अमृत पीना ही नहीं, अमृत बनना चाहतेहैं। वे हंसकी तरह उड़कर वहां

पहुंचना चाहतेहै, वे मीनकी तरह उलटी धार चलकर स्रोतके मूलमें पहुंचना चाहतेहैं'—उपर्युक्त कथन कबीर के साधक अंतरंगको समझनेसे लिए पर्याप्त प्रेरणा देताहै। अपनी भूमिकामें भी डॉ. मिश्रने कबीरके कुछ पदोंकी भावगर्भित और मार्मिक व्याख्या भी कीहै, जिसके माध्यमसे पाठकके लिए इस कविके काव्यत्वको और अधिक बोधगम्य बनाया गयाहै—वह कवि जो यह कहता हो कि

'हम न मरै, मरि है संसारा।
हमको मिला जियावन हारा ।।

अत: इस कविर्मनीर्ष के ऐसे चिन्मयानन्दपूर्ण काव्यत्वकी अक्षरता असंदिग्ध है ही। ⬚

निबन्ध

(१) शहर सो रहाहै
(२) उठता चांद डूबता सूरज

लेखक : डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

पिछले पचास वर्षोंसे साहित्य साधनामें लगे हुए डॉ. अय्यर दक्षिण भारतके अहिन्दीभाषी हिन्दी शोध-समीक्षकोंमें प्रथम श्रेणीके हस्ताक्षरोंमें से हैं। एम. ए. हिंदी (काशी विश्व.), संस्कृत (मद्रास विश्व.) एवं पी-एच. डी. (सागर विश्व.), ३६ वर्षोंका केरलके महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयोंमें अध्यापन, दक्षिण के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं अनेक केन्द्रीय भाषा एवं साहित्य संस्थानोंसे सम्बद्ध डॉ. अय्यर विश्व हिंदी सम्मेलनोंमें सम्मानित तथा बिहार और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किये गयेहैं। मलयालम एवं हिन्दीकी तुलना, अनुवाद, कोश तथा मलयाली लेखकोंकी हिंदी सेवाके अतिरिक्त अनुवाद बिषयक लेखनके साथ उन्होंने प्रौढ़ किशोर और पाठ्य पुस्तकों की रचना कीहैं; आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य, राष्ट्रभारतीको केरलका योगदान, केरलके प्रथम हिन्दी गीतकार तथा केशवदास उनके शोध ग्रंथ है। मलयालमसे आधी घड़ी जोड़े, और मरण सर्टिफिकेटका उन्होंने हिंदी अनुवाद कियाहै। संगोष्ठी, भाषण और मौखिकी हेतु यात्राओंसे उनकी सूजनात्मकता उद्बुद्ध हुई जिसका परिणाम 'शहर सो रहा है' तथा 'उठता चांद डूबता सूरज' निबन्ध संकलन एवं 'अभयकुमारकी आत्मकहानी' 'एक टूरिस्ट बसकी आत्मकथा' के रूपमें मुखर हुईहै। समीक्षक, शोधक, अनुवादकके अतिरिक्त डॉ. अय्यर एक सचेत सोद्देश्य सांस्कृतिक दृष्टि सम्पन्न सहज सरल जीवन्त और युवा मानमिकताके सौन्दर्य-द्रष्टा यात्री हैं। परिवेशके प्रति उनकी सहज रागात्मकता पाठकको छूती भिगोती है। प्राचीन भ्रमण स्थलोंके प्राचीन और आधुनिक सांस्कृतिक पक्षके साक्षात्कारका पूरा विकास अभयकुमारकी कहानीमें हुआहै।

'शहर सो रहाहै' तथा उठता 'चांद डूबता सूरज' के निबन्धोंको ललित विशेषण दिया गयाहैं, लेकिन वे निबन्ध अधिकांशत: व्यक्ति निबन्ध हैं जो अधिकतर घुमक्कड़ी-यायावरी वृत्तिसे प्रेरित होकर लिखे गयेहै। ललित निबन्धोंके विषयमें काफी विवाद है। सामान्यत: हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'अशोकके फूल' आदि निबन्धोंके लेखनसे एक नये प्रकारके निबन्धोंने अपना वर्चस्व स्थापित किया, तो उन्हें अन्य निबन्धोंसे अलग करनेके लिए 'ललित' विशेषण दिया गया, उनमें प्राप्त लालित्यके कारण, जो मूलत: लेखकके व्यक्तित्वका अंश था। इस प्रकार ललित निबन्ध प्राय: व्यक्ति निबन्धोंकी ही एक अलग शाखा है जिसमें लेखकके व्यक्तित्वका लालित्य, माधुर्य, सौन्दर्य-रमणीयता-व्यक्त होतीहै। इस दृष्टिसे डॉ. अय्यरके इन निबन्धोंको ललित निबन्ध माननेमें कठिनाई है। ये मूलत: वस्तु निबन्ध है, इनके केन्द्रमें केरलका सांस्कृतिक प्राकृतिक वैभव है जिसे लेखकने अपनी रागात्मकतासे जीवन्त बनायाहै। अधिकांश निबन्ध यायावरीकी देन हैं, इसीलिए इनमें यायावरी भावात्मकता, संस्कृति और चिन्तन प्रमुख है फिरभी सामान्य वस्तु निबन्धोंमें इनकी विशिष्टता ध्यान आकृष्ट करतीहै।

'शहर सो रहा हैं' निबन्धमें 'तिरुवनन्तपुरमकी रात्रि-परिक्रमा है जहां चौराहेपर स्थित श्री माधवराय की कांस्य प्रतिमाको देखकर उनके शासनके वैभव की स्मृतिसे उद्बुद्ध होकर उनसे बातचीत करताहै फिर श्री वेलन्तम्बी दलवाकी प्रतिमा है जिनके कटे मस्तककी प्रदर्शनी की गयीथी अंग्रेजी शासनसे टकराने के फलस्वरूप। स्वाधीन भारतकी स्वच्छन्दता और

अराजकताके कारण जिनके दुःख और क्षोभको व्यक्त किया गयाहै। इसी निशा भ्रमणमें निरंकुश दीवान शासनके आलोचक वीर रामकृष्ण पिल्लईकी छोटी-सी मूर्तिका भी उल्लेख है। ।'सागर और लहरें' में केरलके प्राकृतिक दृश्य हैं। मानव स्वभावकी गंभीरता, और मर्यादाके प्रतीकके रूपमें सागर और उच्छृंखलता आलोड़न-बिलोड़नके प्रतीकके रूपमें लहरोंको देखा गयाहै। 'केरलका कल्पतरु' में नारियलकी प्राकृतिक शोभा और आर्थिक उपयोगिताका उल्लेख है। 'सावन आया रे' मे प्रमुख पर्व ओणम्के सांस्कृतिक पक्षका उद्घाटन, कोचीनकी झीलोंमें तैरते बजरोंकी रोशनी, दीप स्तम्भोंकी रात्रि शोभा, कनेरकी वासन्ती और लालिमामय छवि और उससे जुड़े लोक पर्व विषु का उल्लेख, वेंकटेश मंदिर के नारायणी पूजा पर्वपर सुसज्जित हाथियोंपर स्थित देव प्रतिमाएं, उनपर ढ़लते हुए चंवर, बजते हुए मादलों की ध्वनिपर झूमते हुए गज-राजोंकी विलक्षण शोभाका वर्णन किया गयाहै। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' में पराधीनताको अंधकार और स्वाधीनताको प्रकाशके रूपमें प्रतिष्ठित किया गयाहै। दूध बहे सोनां फले भी केरलके प्राकृतिक दर्शनीय स्थलोंकी झांकी ही है। ईसाई बहुल प्रदेश होनेके कारण क्रिसमस पर्वके लोकोल्लासके साथ-साथ केरलके भव्य एवं ऐतिहासिक गिरजाघरोंका वर्णन है जहां ईसाइयतके नामपर हुई हैवानियतका उल्लेख भी है। साहित्यमें वर्णित पक्षी, राग एवं पुराने राज-दरबारोंके इतिहासकी ओर संकेत मिलताहैं। भक्त कवि नारायण भट्ट पादके भक्ति-काव्यका विवरण तथा गुरु वायुर मंदिरके कुंडमें स्नान करनेसे चर्म रोग मुक्तिके लोक विश्वासका वर्णन भी है। केरलमें नव वर्षके उल्लासपूर्ण स्वागतका उल्लेख, दर्शनीय स्थानों के प्राचीन वैभव एवं वर्तमान जीवनकी दुर्दशाका संकेत है तथा शिक्षा जगत्के गौरव एवं लज्जापूर्ण दृश्यों की झांकी भी मिलतीहै। कुल मिलाकर केरलके उल्लास तथा ज्ञानप्रद सांस्कृतिक दृश्य ही हैं अधिकांशतः यायावरीके माध्यमसे।

'उठता चांद, डूबता सूरज' भी अधिकतर केरल के अलावा आगरा, कश्मीर, कर्नाटक यात्राओंका विवरण ही है। इनमें अधिकतर सूचनाप्रद वर्णन और प्राकृतिक दृश्योंके अतिरिक्त प्राचीन इतिहास एवं आधुनिक परिवेशका संकेत है। लेखकका, आश्चर्यजनक बहुपठित बहुश्रुत एवं बहुदृष्ट व्यक्तित्व लोक एवं शिष्ट संस्कृति से परिचित कराताहै। कुछ निबन्ध तो मात्र सूचनाप्रद हो गयेहैं। कला-पूर्ण राजसी वस्तुओंके वर्णनके माध्यमसे तत्कालीन वैभवका संकेत भी हैं। कहीं-कहीं बड़ी मार्मिक सूक्तियां बड़े सहज रूपमें प्राप्त होतीहैं। राज प्रसादमें लगे बड़े दर्पणोंमें अपना प्रतिबिम्ब दीख पड़ने पर बृद्ध शासकों और अब उन दर्शकोंको ये दर्पण अपने मित्रोंकी अपेक्षा शत्रु अधिक लगते होंगे— 'बुढापेमें दर्पण ब्रड़ा मनहूस लगताहै" (पृ. ८), मनहूस तो शक्ल लगतीहै दर्पणमें देखनेपर। सहज एवं यथार्थ सुख दुःख और विचित्र अनुभव करानेवाली द्वितीय श्रेणीकी रेल यात्रा, भीड़-भाड़, जगह पानेके लिए दंद फंदके दृश्य प्रस्तुत किये गयेहैं, जनताको लूटनेवाले धूर्त पंडोंके उल्लेखके साथ। दक्षिणी और हिन्दीभाषा और साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनको प्रेरित करने वाले अपने शोध निर्देशक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के व्यक्तित्वका श्रद्धापूर्वक स्मरण' 'सागरके नीलकंठ' में किया गयाहै। गोश्रीसे श्रीनगरकी यात्रामें दक्षिण और उत्तरके सांस्कृतिक सम्बन्धोंका उल्लेख हैं। 'मानव मच्छर संवाद' लेखककी हास-परिहास मनोवृत्तिको मुखर करताहै। 'लीजिए आपकी चाय' मात्र सूचनाप्रद है चाय उद्योगके विषयमें, लेकिन चायकी पत्तियां तोड़नेवाली उंगलियोंका दर्द और उन उंगलियोंकी मालकिनकी ममता चाय पीते न पहचाननेकी कचोटकी ओर भी संकेत है तथा मेहमानोंकी अधिकतासे दुःखी गृहिणीका चायको कोसना लेखककी सूक्ष्मदृष्टिका फल है।

उत्तर-दक्षिण भारतके होली और ओणमका तुलनात्मक परिचय सांस्कृतिक समन्वयको बढ़ानेवाला है। 'आज लहरोंमें निमंत्रण' आधुनिक परिवेशको व्यक्त करनेवाली कोचीनकी परिक्रमा है। कोवलमकी समुद्रतटीय शोभा एव मध्यकालीन राम कवि श्री आशानका उल्लेख, हिन्दू मुस्लिम और ईसाइयोंकी त्रिवेणीके रूपमें केरलका साम्प्रदायिक सौमनस्य आज की धर्मान्धताकी मारकाटमें अनुकरणीय है। जहां घंटे, शंख और अजानके सम्मिलित स्वर सुनायी पड़ते हैं। द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलनकी 'आधी अधूरी स्मृतियां', मारीशसके जीवनकी झांकीके साथ-साथ विश्व में हिन्दीकी दशाका परिचय देतीहै, यूरोपीय हिन्दी विद्वानोंका अनावश्यक आदर सत्कार अन्य हिन्दी प्रेमियोंको खटकताहै। भाषा और साहित्यकी चर्चासे

अधिक विदेशी वस्तुओंके लिए बड़ेसे बड़े विद्वान् में ललककी ओर भी संकेत है। केरलकी प्रकृतिके कुछ मानवीयकरणके कुछ दृश्य आकर्षक है—केरलकी बारिश, क्रोधी संतकी तरह थोड़ी देर तक धुंआधार बरसतीहैं, जल्दी ही आसमानका चेहरा बच्चोंके मुखड़े की तरह खिल जाताहै। ग्रामीणोंमें फैशनके साथ साथ अंग्रेजीके प्रसारके प्रति चिन्ता व्यक्त की गयीहै। कश्मीर यात्रामें गाइडों और घोड़ेवाले कुलियोंके दैन्य एवं 'सूर कुटीकी यात्रा' में सूरके प्रति सरकारी उपेक्षा को उजागर किया गयाहै। □

आधुनिक हिन्दी-लेखनकी ऊर्जा[1]

लेखक : डॉ. विष्णुदत्त राकेश

समीक्षक: डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

डॉ. विष्णुदत्त राकेशके सद्यःप्रकाशित निबन्ध-संकलन 'आधुनिक हिन्दी लेखनकी ऊर्जा' का प्रत्येक निबन्ध उनके विशद् अनुभवों तथा गहन अध्ययनका प्रमाण प्रस्तुत करताहै और लेखकके 'दो शब्द' की इस सटीक उक्तिको सत्य सिद्ध करताहै—"भारतीय साहित्यकी मूल संवेदनाओंको रेखांकित करनेवाले इन लेखों में हिन्दीकी आधुनिक कविता, आलोचना, शोध, इतिहास, धर्म-दर्शन तथा वैचारिक परिवर्तनोंकी प्रवृत्ति एवं तथ्याश्रित संक्षिप्त इतिहास आ गयाहै। × × × परम्परा, वैयक्तिक प्रज्ञा तथा कलाका समग्र परिदृश्य प्रस्तुतकर पाना ही इन लेखोंका मुख्य प्रयोजन है।"

हिन्दीके मध्यकालीन-काव्यके मर्मज्ञ अध्येता एवं कवि-समीक्षक डॉ. विष्णुदत्त राकेशके प्रस्तुत ग्रंथमें संकलित तैंतीस निबन्धोंमें चार साहित्य-चेतनासे संबद्ध हैं, तो दो में 'कामायनी' एवं 'सत्यकाम' का विवेचन हुआहै! पांच निबन्धोंमें पत्रकारिता, आर्यसमाज तथा राष्ट्र-चेतनाका विवेचन हुआहै! शेष इक्कीस निबंधों में कविता, गद्य, आलोचना, उपन्यास, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्येतिहाससे जुड़े साहित्यकारोंको विवेचनका आधार बनाया गयाहै।

'साहित्य' से जुड़े निबन्धोंमें डॉ. राकेशकी भाषा-शैलीका चमत्कार जहां अपने शिखरपर हैं, वहीं गंभीर विवेचन तथा गहन विश्लेषणसे गुत्थियोंको सुलझानेकी क्षमता भी चमत्कृत करतीहै। 'साहित्यकी सांस्कृतिक चेतना'—शीर्षक निबन्धमें संस्कृतिकी सूक्तिपरक परिभाषा द्रष्टव्य है—"व्यक्तिका समष्टिगत स्तरपर अनुभव-बोध ही संस्कृति कहलाया!" (पृ. ११)। भारतीय संस्कृतिपर लेखकका अभिमत अनुभवजन्य ही लगताहै—"भारतीय संस्कृतिका मूल स्वर निराशावादी नही है। हताशामें जीवनेच्छाके स्फुलिंग ढूंढ़ना उसका लक्ष्य है। उसकी मूल चेतना है जिजीविषा! × × × भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान रहीहै। वेदके शब्दोंमें—कुर्वन्नेवेह कर्माणि'या 'त्यक्तेन भुंजीथाः' उसके मूल मंत्र हैं। 'कर्मका भोग, भोगका कर्म' का यही रहस्य है। उच्च भावना प्रधान साहित्य भारतमें इसीलिए लिखा गया कि यहाँकी संस्कृति परमार्थ प्रधान है।" (पृ. १४)।

"साहित्यकी भारतीय परम्परा"—शीर्षक निबंध में लेखकने साहित्यके प्राणतत्त्व भारतीय परम्परामें तलाशते हुए अधिकारपूर्वक लिखाहै—"भारतीय साहित्यकी अन्तश्चेतनामें लोक-संग्रह, अध्यात्मवाद, एकत्व-दर्शन, प्राकृतिक-तादात्म्य, भारतीयकरणकी चेष्टा तथा मिथकीय सृष्टि निरन्तरताके रूपमें विद्यमान रहेहैं। अतः विदेशी साहित्यकी तुलनामें भारतीय साहित्यकी परम्परा प्रौढ़ है और कम समृद्ध नहीं कही जा सकती!" (पृ. १७-१८)। इस निबन्धमें डॉ. राकेशने भारतीय साहित्यकी उन अमृत परम्पराओंको सप्रमाण रेखांकित कियाहै, जिनके कारण वह कालजयी और जीवन्त बना रह सकाहै! इस दृष्टिसे मैं एक उद्धरण यहां देना चाहूंगा—"भारतीय साहित्य अपने उद्भवसे ही मिथकीय सृष्टिपर आधारित रहाहै। किसीभी देश या जातिका साहित्य वहांकी लोक-चेतना, धर्म चेतना तथा इतिहास चेतनासे सम्पृक्त रहताहै। मिथकोंका सृजन इन तीन दिशाओंमें होता है। मिथक वे परम्परा प्राप्त अनुश्रुत कथाएं हैं, जिनका सम्बन्ध अतिमानवीय घटनाओंसे रहताहै, पर जिनकी व्याख्या बौद्धिक स्तरपर होती रहतीहै तथा जिनके सहारे हर युगकी मांगको नया रूप मिलता रहताहै।" (पृ. २५)। उक्त उद्धरणके द्वारा लेखकने जहां भारतीय साहित्यके प्राणतत्त्वके रूपमें 'मिथकीय चेतना' को स्थापित कियाहै, वहीं 'मिथक' के स्वरूपको भी अत्यन्त सरल ढंगसे स्पष्ट कर दियाहै!

---

[1] प्रका. पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ : ३७६; डिमा. ९२; मूल्य : २००.०० रु.

इसी क्रममें विशेष उल्लेखनीय निबन्ध है—"समाजोन्मुखी कविता और सामाजिक काव्यशास्त्र", जिसकी कई स्थापनाएं स्वयंमें विवादास्पद-सी लगने परभी, समीक्षाके लिए सर्वथा मूल्यवान् उपलब्धि ही हैं। डॉ. राकेशकी स्थापना है—"साहित्यके दो ही मूल्य हैं—एक लोकहित और दो आनन्दानुभूति ! भारतीय विचारक कविताके मूल्यांकनका कोईभी आधार चुनें, इन दो मूल्योंका निषेध उन्हें किसीभी स्थितिमें स्वीकार न होगा ! साहित्यिक शास्त्र जहाँ भावनात्मक और कलात्मक संवेदनोंके मूल्यांकनका शास्त्र है, वहाँ वह सामाजिक न्याय और सामाजिक लाभके उद्देश्यको भी स्पष्ट करताहै। साहित्य क्योंकि समाजके सांस्कृतिक जीवन और सुदीर्घ उन्नत परम्परा की उपज होताहै, अतः उसकी सृजनात्कक धाराको परम्परासे काटकर नहीं देखाजा सकता।"(पृ. २९)।

इसी विशिष्ट निबन्धमें काव्यशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् डॉ. राकेशने अपने चिन्तन एवं सुदीर्घ अनुभवका निचोड़ देते हुए किखाहै—"समाजशास्त्री और अर्थशास्त्रीसे साहित्यशास्त्रीकी रीति भिन्न होतीहै। वह सही और संभावित, यथार्थ और कल्पित स्थितियोंके बीच ऐसे समाजकी प्रक्रियाको चुनताहै, जो प्रत्येक देश, जाति और कालके बीच घटित होती रहतीहै। उसका केन्द्रबिन्दु अपने समग्र परिवेशमें खड़ा हुआ मानव होताहै। संस्कृति और समाजके बीचसे गुजरते हुए इसी मानवकी खोज साहित्य है और साहित्यशास्त्रमें इन्हींके आकलनसे उद्भूत संवेदनाओंका विश्लेषण होना चाहिये।" (पृ. ३७)। ग्रन्थका प्रस्तुत निबन्ध विचारोत्तेजक और नवीन स्थापनाओंके कारण महनीय बन गया है, जिससे काव्यशास्त्रकी सामाजिक भूमिकापर सोचने की परम्पराका सूत्रपात भी हुआहै।

पर्याप्त समयसे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वारमें रहकर डॉ. राकेश हिन्दी साहित्यका अध्यापन कर रहेहैं, जिसका प्रत्यक्ष सुफल यह हुआहै कि उन्नीसवीं शतीके जन जागरणदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं 'आर्यसमाज' के विषयमें उनका चिन्तन निरन्तर व्यापक और परिपक्व हुआहै। प्रस्तुत निबन्धसंग्रहके पाँच निबन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे 'आर्य समाज' तथा ऋषि दयानन्दको केन्द्र बनाकर राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक जागरणको रेखांकित करतेहैं।

'हिन्दी क्षेत्रमें नवोत्थानका शंखनाद और दयानन्द सरस्वती' शीर्षक निबन्धमें लेखकने नवोत्थानकी पृष्ठभूमिको स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्दके वैचारिक योगदानका प्रमाणपुष्ट विवेचन प्रस्तुत कियाहै। लेखकका यह कथन मूल्यवान् है—"स्वामीजीने धर्म, दर्शन, शिक्षा, राज्य-व्यवस्था तथा शासनपर अपनी स्पष्ट किंतु वेदोंपर आधारित मान्यताएं स्थापित कीं तथा प्राचीन ज्ञान-विज्ञानके साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञानका सामंजस्य बैठाते हुए अतीतके गौरव, वर्तमानके निर्माण तथा भविष्यके आशावादी दृष्टिकोणको जन्म दिया ! ××× स्वाधीनता और स्वदेशीकी भावनाको जन्म देनेमें भी स्वामीजीका योगदान भुलाया नहीं जा सकता।" (पृष्ठ ४४)।

एक अन्य निबन्ध 'स्वदेशी और स्वभाषाकी परिकल्पना' में लेखकने 'राष्ट्र और राष्ट्रभाषा' विषयके स्वामी दयानन्दजीके विशिष्ट अवदानको विश्लेषित-विवेचित कियाहै और ओजपूर्ण भाषामें स्वामीजीको राष्ट्रीय-जागरणका पुरोधा बतायाहै—"पुनर्जागरणके राममनोहर राय जैसे नेता मात्र समाज सुधारक थे, पर दयानन्द क्रान्तिके जुझारू सेनापति ! उनके एक हाथमें प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञानकी मौलिक व्याख्या और हिन्दुत्वके जागरणका महाशंख था तो दूसरे हाथमें अज्ञान, सम्प्रदाय, पाखंड, रूढ़ि और धार्मिक अंधविश्वासोंको जलानेवाली तर्क, आस्था और युक्तिकी राष्ट्रप्रेममयी क्रान्तिकी मशाल ! राजनीति, धर्मशास्त्र, स्वदेशी, राष्ट्रवाद, स्त्री-शिक्षा, राज्य-व्यवस्था, वर्णाश्रम समत्व, स्वतंत्रता, आर्थिक समानता और मानवतावादकी व्याख्या कर स्वामीजीने हिन्दुत्वका गौरव प्रतिष्ठित किया।" (पृ. ५०)।

लेखकका यह निष्कर्ष महनीय ही है—"स्वदेशी और राष्ट्रवादी आन्दोलनकी जो नींव स्वामीजीने रखी, भारतेन्दुने जिसे अग्रसर किया; गाँधीजीमें आकर वह प्रौढ़ और परिपक्व हुई। हिन्दीकी द्विवेदीयुगीन काव्य धारा दयानन्द और गांधीकी अनुवर्तिनी है।" (पृ. ५५)। वास्तवमें डॉ. राकेशने स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज की राष्ट्रके नवोत्थानमें रही सक्रिय भूमिकाका बहुत सुन्दर ढंगसे विवेचन कियाहै।

हिन्दी साहित्यकी कालजयी कृति 'कामायनी' तथा छायावादके गौरव स्व. सुमित्रानन्दन पन्तके प्रबन्ध काव्य 'सत्यकाम' पर इस ग्रंथमें दो समीक्षापरक निबंध

हैं, जिनमें डॉ. राकेशकी समीक्षा-क्षमताकी झलक हमें मिल जातीहै। 'कामायनीकी आधी सदी' शीर्षक निबंध में समीक्षक डॉ. राकेशकी कई स्थापनाएं महाकवि प्रसादकी इस रचनापर अबतक की समीक्षाओंसे हट कर हैं और लेखकने सायास अपनी स्थापनाओंको पुष्ट भी कियाहै। डॉ. राकेशका मत है—"प्रसाद मूलत: नाटककार हैं, अत: कामायनीको उन्होंने नाट्योन्मुखी रचनाके रूपमें सिरजा! महाकाव्योंकी परम्परामें यह नये सोचकी शुरूआत थी।" (पृ. १३९)। 'कामायनी' पर लिखा यह निबन्ध नयी चिन्तनाका परिचायक है।

हिन्दीके आधुनिक साहित्यकारोंपर डॉ. राकेशके सर्वाधिक निबंध इस ग्रंथमें हैं, जिससे यह ग्रन्थ हिन्दी जगत्के लिए विशेष उपयोगी और संग्रहर्णीय बन गया है! रचनाकारोंमें जहां कवि—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, 'निराला', महादेवी वर्मा, रामधारी 'दिनकर', बच्चन, जनकवि नागार्जुन तथा शिवमंगल सिह 'सुमन' पर लेख हैं; वहीं आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एवं वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे आलोचकों का मूल्यांकन भी है! भाषाशास्त्रके मर्मज्ञ आचार्य किशोरीदास वाजपेयी; 'घुमक्कड़' राहुल सांकृत्यायन, आगमवेत्ता पं. गोपीनाथ कविराज; संस्कृति एवं इतिहासके पुरोधा पं. बलदेव उपाध्याय; पाठानुसंधान के शिरोमणि आचार्य पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र एवं प्रो. सत्यकेतु विद्यालंकार जैसे महनीय व्यक्तित्वोंके सारस्वत-अवदानका श्रद्धापूर्ण विवेचन करके डॉ. विष्णुदत्त राकेश ने 'ज्ञानार्णव' का मंथन कियाहै और पाठकोंको ज्ञानामृत ही अपने लेखोंके माध्यमसे दियाहै! कथाकार जैनेन्द्र कुमार एवं फणीश्वरराथ 'रेणु' पर भी दो सुन्दर निबंध ग्रंथमें हैं!

इस निबन्ध-संग्रहके व्यक्तिपरक निबन्धोंमें दो प्रकारकी स्थितियां देखनेको मिलतीहैं। एक ओर वे निबन्ध हैं, जिनमें विवेचित रचनाकारोंके प्रति डॉ. राकेशका 'श्रद्धाभाव' रहाहै, अत: ऐसे निबन्धोंमें यत्र-तत्र भावुकता सहज रूपमें मिलतीहै और 'तटस्थ विवेचन' कहीं-कहीं नहीं हो पायाहै। फिरभी, ऐसे निबंधों में भी डॉ. राकेशने 'विवेक' तथा 'बुद्धि' की लगामसे 'हृदयके मुंहजोर घोड़े' को कसे रखनेका उपक्रम भी अवश्य कियाहै। ऐसे निबन्धोंमें हैं—'आगमोंके पुनरुद्धारक', 'हिन्दी शब्दशास्त्रके व्यवस्थापक आचार्य वाजपेयी', 'हिन्दीके मल्लिनाथ' (आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र) तथा साहित्य, कला और संस्कृतिके प्रतीक व्याख्याता: डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल' आदि! इन निबन्धोंके शीर्षकोंमें जो 'विशेषण' प्रयुक्त हुएहैं, वे डॉ. राकेशकी इन व्यक्तित्वोंके प्रति सहज श्रद्धाभावनाको ही इंगित करतेहैं! इन निबन्धोंमें 'आत्मीयता' की ऐसी कपूरी गंध व्याप्त है कि सहज ही ये 'संस्मरणात्मक निबन्ध कहे जा सकतेहैं।

दूसरी प्रकारके व्यक्तिपरक निबन्धोंमें लेखक 'तटस्थ' होकर समीक्षकका धर्म निभानेमें सफल रहाहै। ऐसे निबन्धोंमें वैचारिक तथा तार्किक दृष्टिसे विवेचन किया गयाहै! 'निरालाके काव्य नायककी खोज', 'दिनकरकी काव्य-चेतना', तथा 'जनकवि नागार्जुन' इस कोटिके महनीय निबन्ध हैं', चूंकि इनमें समीक्षाके मानदण्डोंको लेखकने अपने विवेचनका मूलाधार बनायाहै! 'जनकवि नागार्जुन' में भी लेखक स्वतंत्र स्थापनाएं करताहै, एक है—"हिन्दी कविताको जनताके बीच खड़ी करनेकी कोशिश भारतेन्दुके बाद जिस महाकविने की, वह जनकवि नागार्जुन हैं।" (पृ. २१२)।

कृति के ३३ निबन्धोंमें साहित्य, संस्कृति, दर्शन, इतिहास, पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय जागरणका जो लेखा जोखा प्रस्तुत किया गयाहै, वह प्रशंसनीय है तथा इन निबन्धोंसे हिन्दीके शोधकर्त्ताओंको प्रचुर सामग्री प्राप्त होगी! ☐

विज्ञापन दर

('प्रकर')

पूरा पृष्ठ		१०००-०० रु.
आधा पृष्ठ	७×२० से.मी. १५×१० से.मी.	५५०-०० रु.
चौथाई पृष्ठ	७×१० से.मी. १५×०५	३००-०० रु.

'प्रकर' के तीन अंकोंमें विज्ञापनपर पन्द्रह प्रतिशत, छः अंकों तक २० प्रतिशत और बारह अंकोंके लिए २५ प्रतिशत छूट।

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-७

उपन्यास

छोर[1]

[कन्नड़से अनूदित]

उपन्यासकार : एस. एल. भैरप्पा
अनुवादक : भालचद्र जयशेट्टी
समीक्षक : डॉ. उत्तम एल. पटेल

अपनोंसे ही धोखा खाकर कैसे किसीके स्वभावमें अजीब प्रकारका गुस्सा, जीवनके प्रति कुण्ठा, विकर्षण, अरुचि और शून्य-भाव तथा आत्महत्या करनेकी प्रबल इच्छा बार-बार जन्म लेते रहतेहैं, यह भैरप्पाने अपने उपन्यास 'छोर' में बहुतही रोचक, स्वाभाविक, जीवंत व मनोवैज्ञानिक रूपमें चित्रित कियाहै।

पहाड़ी क्षेत्रकी अमृता, अध्यापिका है। अपने दो बेटोंके साथ मैसूर शहरके बाहरी प्रदेशकी ललित महल रोडके किनारेकी एक पुरानी इमारतमें रहतीहै। वहीं उसकी भेंट बम्बई छोड़कर मैसूर आये वास्तुकार सोमशेखरसे होतीहै। दोनों एक-दूसरेके प्रति आकृष्ट होतेहैं क्योंकि दोनों एकही वेवलेंग्थके है। अमृताके अपने मनमें जो भावनाएं उठतीहों, यदि वही भावनाएं सोमशेखरके मनमें भी उठने लगें तो उसे सांत्वना व राहत मिलतीहै। किन्तु जब ऐसा प्रतीत नहीं होता तो उसका गुस्सा भड़क उठताहै। वह बहुतही तुनक-मिजाज है और गुस्सेमें पागल होकर भला-बुरा कुछ भी कर बैठतीहै, और उसके बाद वह शून्य-भावसे भरती जातीहै। जिससे छुटकारेका उसके लिए एकही द्वार है—आत्महत्या।

जब अमृता-सोमशेखरके सम्बन्ध शरीर-सम्पर्ककी ओर मोड़ लेतेहैं तब तो गहरी सुखद अनुभूतिके बाद 'क्या तुम्हारी हैवानी प्यास अभी नहीं बुझी?' (पृ. ४५) सुनकर सोम भौंचक रह जाताहै। तब उसे लगताहै—अजीब रूखी औरत है यह! यह एक निरे स्वार्थकी मादा मृग है। उसका गुस्सा सहसा भड़क उठताहै; आंसू बनाकर पूरी तरह बह जानेके बाद ही उसका शमन होताहै। उसके क्रोधका कारण चाहे कुछ हो या न हो, अकारण गुस्सा करना उसकी आदतभी है। वह सोमपर ही आरोप लगाकर उसे नीचा दिखानेका प्रयत्न करती हुई यहांतक कह देतीहै—"···खबरदार जो इस देहलीजको लांघकर मेरे बेडरूममें आये" (पृ. ४८), और रिवाल्वर निकालकर आत्महत्याके लिए तैयार हो जातीहै, क्योंकि सोमके साथ की संभोग-क्रिया दरम्यानभी उसे लगताहै—"उन्मादपूर्ण सुख भोगनेके पश्चात् नीच अपनी शक्ल-सूरतके बच्चे पैदा करेगा मानो वे मेरे कुछ नहीं होंगे। सम्पत्ति चाहे उन्हें मिले या जाये भाड़में, उसे फूंक देनेकी प्रतीक्षा करेगा।" (पृ. ५४)। क्योंकि पति रंगनाथ और चाची जयलक्ष्मी उसके साथ धोखेबाजी व फरेबी कर चुकेहैं। चाचीने उसका ब्याह अपने ही भाई रंगनाथके साथ इसलिए तय कियाथा कि अमृताका सारा ऐस्टेट चाचीके पीहरके हिस्सेमें चला जाये। उसके पतिको चाचीने ऐस्टेटके ही पैसोंसे पढ़ायाथा। इसके अतिरिक्त अमृताके दूसरी बार गर्भवती होनेके पीछे चाचीका ही हाथ था, जिसने रंगनाथसे कहाथा—"तुम्हारी पत्नी तुम्हें छोड़ सकतीहै, एक बार और गर्भ रहने दे; एक बच्चा और होने दे। दो बच्चे जननेके बाद पतिको छोड़ना स्त्रीके लिए सम्भव नहीं। दो बच्चोंवाली मां को कोई सूंघेगा भी नहीं।" (पृ. ९०)। जब चाचीके फरेब, धोखेबाजी तथा उसके मिथ्यावादका अनुभव भी कम नहीं हुआथा, उसे यह प्रतीत होने लगाथा कि पति भी पल्ले दर्जेका धोखेबाज है और मैं अकेली इस फरेबीके लिए बलिपशु बनीहूं।

---

[1] **प्रकाशक : शब्दकार, १५९. गुरु अंगदनगर (वेस्ट), दिल्ली-११००९२। पृष्ठ : ३६२; डिमा. ९२; मूल्य : १२५.०० रु.।**

वस्तुन: अमृताके भीतर विसंगति है। इसलिए जबभी सोमके साथ माधुर्य व मादकताकी अनुभूति स्थापित होतीहै, वह सहसा बीचमें एकाध बूंद खटाई जैसी कोई बात टपका देतीहै। जिससे सोमको लगता है मानो स्वादिष्ट खीरमें कंकड़ डाल दियाहो। परिणाम, सोम उलझनमें पड़ जाताहै कि वह ऐसा क्यों करतीहै। वह उसपर आरोप लगातीहै, उसके घर नहीं आता तो, उसे मृत्युकी इच्छा घेर लेतींहै। तब वह रिवाल्वर निकालतीहै। उसे न मौतका डर है और न जीवनका मोह ही। कभी वह सोचतीहै कि अपनी प्रतिष्ठाके लिए ही सही, ट्रिगर दबाकर अपने-आपको खत्म कर लेना होगा। किन्तु उँगली ट्रिगर छूतेही रुक जातीहै। तब फिर सोचतीहै—"यह देह ऐसी है कि हत्याकर लेने योग्य भी नहीं और उसमें हत्या करनेकी क्षमता भी नहीं।" (पृ. ११७) मर जानेकी इच्छा जब भीतरसे दबाव बनकर फूट पड़तीहै तब उसका मन करताहै कि यहीं मर जाये या मौतको ढूंढ़ते हुए, पहाड़की चोटीपर अकेली चली जाये; जानेसे अपने-आपको रोक ही नहीं सकती। क्या करने जा रहीहूं, यह अनुभव तो होताहै, पर उसे रोकनेकी शक्ति बिल्कुल नहीं रहती। दबाव इतना बढ़ जाताहै कि पहाड़की ऊंची चोटीतक जाकर आकाश और दिगंतके अंतरालवाले शून्य-वलयमें अकेली मर जानेकी इच्छा अन्तिम चरण तक पहुंच जातीहै। पर, वास्तवमें वह कभी मरी नहीं। ट्रिगर नहीं दबाती, क्योंकि इस जीवनके प्रति उसके मनमें कोई अज्ञात आकर्षण बचा है—दो बेटों तथा सोमशेखरके कारण। जिसे वह समझ नहीं पाती। यही कारण है कि वह सोमसे गर्भवती होनेके बाद गर्भपात करवा देतीहै। क्योंकि "जबतक वह पेटमें रहता तबतक ट्रिगर दबा पाना सम्भव नहीं था। अब कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती।" (पृ. २४३)।

अमृताके व्यवहारको देख-अनुभूतकर सोमभी इस निष्कर्षपर पहुंचताहै कि वह एक प्रकारके क्रूर संतोषी स्वभाव कीहै। बड़ी अहंकारी औरत है, उसमें घटिया कामना ही स्थायी है। कभी-कभी या सारा दिन बिना बात प्रत्येक बातके लिए उसे कोंचकर पीड़ा पहुंचाती है। ब्लोइंग हॉट एण्ड कोल्ड। जी भरकर चू पड़ने लायक प्यार जताकर मुझे वशमें कर लेतीहै और ऐसे जालमें फँसाकर हिंसा करने लगतीहै कि छूट न जाये; यही इसकी प्रकृति है।

सोमशेखरके नये दफ्तरकी रचना अमृताकी इच्छानुसार होतीहै, किन्तु जिस दिन उसका उद्घाटन समारोह था, वह होम-पूजा आदिके समय वहाँ उपस्थित रहतीहै किन्तु बादमें पंडितको छोड़ने जातीहै तो फिर लौटती नहीं। इसके मूलमें उसका कुंठाग्रस्त मानस ही है। उसका सोमसे यह कथन इसका प्रमाण है—"पंडितजी मंत्रोच्चार करते हुए बीच-बीचमें अर्घ्य डालकर जब आहुति दे रहेथे तब उसे देखते-देखते मेरे मनमें यह प्रश्न मँडराने लगा कि आखिर इस समस्त आयोजनमें मेरा क्या स्थान है।···नामकरण वाले होममें पंडितजीने जो मंत्र पढ़ाथा वही मंत्र अबभी पढ़ने लगेथे। वही स्मृति आजके होममें लौट आयी। नामकरणके समय···मुझे प्रतीत हुआथा कि मैंने धोखेमें आकर गर्भ धारण करके बच्चा जना। लगा कि बगलमें बैठा हुआ रंगनाथ मेरा पति नहीं है। उसके साथ बैठकर कैसा होम। कहीं भागकर आत्महत्या कर लेनेका विचार उस दिन, वहाँ आसनपर बैठे-बैठे पहली बार जगाथा। पर समारोहकी स्वामिनी मैं स्वयं थी। छोड़कर कहीं जा नहीं सकतीथी। मेरा वहाँभी ठिकाना नहीं था और तुम्हारे दफ्तरमें सम्पन्न होममें भी नहीं।" (पृ. १५६)

अमृताका क्रोध कभी-कभी पिटाईके स्तर तक पहुँच जाताहै। एक बार तो सोमको वह बायें हाथसे थप्पड़ लगा देतीहै। उसके बाद तो वह स्वयं सकतेमें आ जातीहै। उस रात सोमके चले जानेके बाद उसे आत्महत्याके लिए प्रेरित करनेवाला शून्य-भाव नहीं घेरता, न ही गहराताहै और नींद भी गहरी आ जाती है। तब वह सोचतीहै—"क्या उसके स्नेहने ही मेरी मरनेकी चाहत को प्रखर कियाथा?···स्नेहके प्रारंभिक दिनोंमें कम हुईथी। इन दिनों इतनी प्रखर हो गयीहै कि जितनी पहले कभी नहीं थी। पर, कल मैंने उसका तिरस्कार करके जो बाहर निकाल दिया तबसे मानों सहसा सुधार आ गयाहै। उसे खो देनेका खेद, व्यथाको किसी प्रकार सह सकूंगी। पर शून्य-भाव, मरनेकी चाहतकी पीड़ासे यदि मुक्त हो जाऊं तो काफी है।" (पृ. १७३)।

इस प्रकार सोमके हार जानेकी कल्पना मात्र उसे सांत्वना प्रदान करतीहै। उफनते हुए क्रोधकी प्रतिक्रिया सामनेवालेपर व्यक्त कर देनेसे उसे बहुत दिलासा मिलतीहै। यदि व्यक्त न हो तो निराश होकर और

अधिक भड़क उठताहै। सोम उसे समझने लगताहै। वह जानताहै कि—"अकारणही अमृताका गरम होना, चुभती-सी तीखी बातें करना—यह पहली बार तो नहीं था। बांयें हाथसे जो थप्पड़ मारा वह उसके पिछले व्यवहारकी अगली कड़ी मात्र थी। ऐसे क्यों बोलतीहै ? जीवनमें उसके साथ अन्याय हुआहै, धोखा हुआहै। तीस, चालीस, पचास लाख ही नहीं, बल्कि विरासतमें मिली पूरी ऐस्टेट ही हाथसे निकल जानेकी नौबत आयीहै। जिसके साथ सारा जीवन बितानाथा उस पतिके निश्चयमें भी धोखेका शिकार हुईहै। उसे सह सकनेकी क्षमता न होने के कारण विकल्पके रूपमें आत्महत्याकी प्रवृत्तिने जन्म लियाहै।…इसी प्रवृत्तिके कारण उसे गुस्सा आताहै।" (पृ. १८५)। इसी समझ से तो सोमको भी अनुभव होने लगताहै कि मैंने अमृता के सिवा किसी औरतसे ऐसा प्यार किया ही नहीं, जिसके बिना जिया न जा सकताहो। सबकुछ सहकर भी क्यों मन बार-बार उसकी ओर खिंचा जाताहै। क्या इसीको प्यार कहतेहैं ? तो कभी लगताहै शायद अपना प्यार सच्चा हैही नहीं, यह केवल दो अहंकारों की अपकर्षण-आकर्षणकी प्रक्रिया मात्र है। उसके साथ की प्रत्येक बात मनमुटावकी ओर मुड़तीहै। उसका अहंकार कभी-कभी सिर चढ़कर बोलताहै। अकारण ही अमृताका अपनेसे चिढ़ना और उसका संयमसे काम लेना अब कोई नयी बात नहीं है। द्वेष और प्रेम, दोनों एकही प्रेरणाके दो पहलू हैं। प्रेमपर सन्देह किये जाने से गुस्सा चढ़ना स्वाभाविक है। अतः सोम सोचताहै—रह-रहकर अमृताके मनसे मरनेका जो दबाव फूट पड़ता है उसे यदि वह मिटा सकेगा तो यह उसके जीवनकी सार्थकता होगी। पर उसके मनमें जीवनके प्रति प्यार कैसे उत्पन्न करे ? किन्तु एक बार वही जब उसे बतातीहै—"शून्य-भाव इतनी प्रचंड तेजीके साथ मनमें प्रवेश करताहै कि उसे रोकनेवाली किसीभी शक्ति या व्यक्तिको नष्ट करनेकी इच्छा बलवती होतीहै। परमाणु बाम्बके फटनेसे जो होताहै उसी प्रकारकी विनाश शक्ति है वह।…जब मनमें रिक्तताका भाव आताहै और रिवाल्वर मेरे पास होताहै, तब तुम मेरे पास मत आना।" (पृ. ३१३)। तब सोमको गर्व होताहै कि अमृता और उसकी मौतके बीच वह एक ढाल बन कर खड़ाहै। ऐसा इस कारण सम्भव होताहै कि अमृताको सच्चे प्यारकी आवश्यकता थी, जो सोम उसे देताहै।

जब अमृताको पता चलताहै कि सोमने दफ्तर पूरा बन्द करके जगह बेच दी है तथा नीलकण्ठप्पाका यह कथन कि "आपके स्नेहमें पड़कर उनको जीवनमें किसी बातमें रूचि नहीं रही।" (पृ. ३३१), उसे प्रतीत होताहै—पहाड़का छोरही मोक्षका स्थान बननेवाला है। किन्तु जब सोम उससे कहताहै—"जब तुममें जीवनके प्रति प्यार नहीं तब मुझमें कहांसे आ पायेगा ? जब वही नहीं रहा तब काममें रुचि कैसे उत्पन्न हो सकेगी ? मेरी गरीबी की जड़ यही है।" (पृ. ३३८)। उसे अनुभव होताहै कि वह मानसिक रूपसे दूर चला गयाहै। अपने लिए जीनेका कोई आश्रय नहीं रह गया। किन्तु मुझे नियंत्रित करनेके लिए सोमने कितना कुछ कियाहै, सोचकर मन कृतज्ञतासे भर आताहै। पति रंगनाथसे सम्बन्ध तोड़कर खुश होतीहै किन्तु शून्यसे घिरकर आत्महत्याके लिए अग्रसर होते हुए सोचती है—"विजय-विकासको अभिभावक मिल जायेंगे…लेकिन सोमूका कोई नहीं है, कोई नहीं है, किसी अभिभावकके बिना अनाथ होकर मर जायेगा।" (पृ. ३४५) और वह रिवाल्वर उठाकर निकलनेकी तैयारी ही करतीहै कि सोमका फोन आताहै। तब उसे फिर प्रतीत होताहै कि यदि वह मर जायेगी तो सोमका कोई नहीं रहेगा। मुकद्दमेको जीतका विश्वास दिलाने वाली पहली सूचना मिलनेपर वह निहाल हो उठतीहै किन्तु मृत्युकी इच्छा पीछा नहीं छोड़ती। वहीं सुब्बक्कय्यासे इस बातका पता चलताहै कि कृष्णमूर्ति चाची द्वारा उत्पन्न उसके पिताकी ही संतान है। यह रहस्य वह एलेकानु एस्टेटसे जयरामको साथ लेकर चाचीके सामने परिवारवालोंको बताकर फैसला सुनाती है—"मुझे इस सारी जायदादसे घिन हो गयीहै, इसका मतलब यह नहीं कि मुकद्दमा वापस ले लूंगी।…सुप्रीम कोर्ट तक भी जाकर मैं मुकद्दमा जीतूंगी, जीत कर सब ले लूंगी। ले लेनेके बाद पूरी जायदादमें कानूनन एक तिहाई हिस्सा मेरा होगा। दो तिहाई हिस्सा विजय-विकासका होगा। मेरा हिस्सा…जयण्णा जिस ऐस्टेटमें रहताहै वह एस्टेट जयण्णाके नाम, यह एस्टेट किट्टण्णाके नाम दान लिख दूंगी।…मैंने तो ठान लियाहै कि कलसे कोई-न-कोई काम ढूंढ़कर मेहनतकी रोटी खाऊंगी। अदालती फरमानके

अनुसार तुम्हें इसी समय इन दोनों एस्टेटों और घरों को खाली करके बाहर निकलना ही होगा। रगण्णाको पहले ही दूसरा ब्याह करके मजेमें जीवन बितानेकी छूट मैंने दे दीहै।" (पृ. ३६१)।

अमृताका यह निर्णय उसके पुनः जीवनको प्यार करने लगने तथा सोमके जीवनमें रूचि उत्पन्न करने की ओर संकेत करताहै। कुंठाग्रस्त मानससे उत्पन्न आत्महत्या करनेकी उसकी इच्छा नष्ट हो जातीहै। जिसमें वास्तुकार सोमशेखरका बहुत बड़ा योगदान है, जो मृत्यु और जीवनके छोरोंपर झूलती अमृताको जीवनकी ओर आकर्षित करताहै।

इस उपन्यासका कथानक बहुत संक्षिप्त, रोचक, जिज्ञासोत्पादक व मौलिक है। उपन्यासकी सभी घटनाएं अमृताकी कुंठा व आत्महत्याकी इच्छाको और ठोस करने तथा और अधिक गहरानेके लिए प्रयोजी गयीहैं। इन सभीका मुख्य उद्देश्य अमृताके स्वभावको उजागर करनाही है। कुछ घटनाएं इसी कारण पुनरावृत होती रहीहैं, फिरभी वे रोचक हैं। भैरप्पाने घटनाओंमें रिवाल्वरके ट्रिगरको दबाये बिना आत्महत्याकी कोशिशको और गहनता प्रदान कीहै। इस उपन्यासमें लेखकने अपने-आपमें बहुत जटिल और एक दृष्टिकोणमें समा न सकनेवाले जीवनको यथावत् ग्रहण करके, उसे समझ सकना सम्भव न होनेसे उसके एक अंशको ही लेकर कल्पनामें उसे पुनः सृजन करके देखनेके परिक्रममें उसके सत्यको ग्रहण कियाहै।

अमृता-सोमशेखर नायिका-नायक हैं। गौण पात्रों में जयलक्ष्मी, रंगनाथ, कृष्णमूर्ति, जयराम, सुब्बक्कय्या, विजय-विकास, नवीनभाई, जलजा, डॉ. राममूर्ति, नीलकण्ठप्पा मुख्य हैं। लेखक अमृता-सोमके चरित्रों द्वारा व्यक्तिकी मनःस्थिति, कुंठा तथा संघर्षका सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण जिस सीमा तक चाहिये, उसी सीमा तक उन्हें अभिव्यक्त करनेमें सक्षम रहेहैं। संवाद स्वाभाविक हैं। लेखकने मैसूर नगरके ललित महल रोडके किनारेकी एक पुरानी कोठीको कथा-क्षेत्रके रूपमें चुना है। पर्वतकी पृष्ठभूमि इस स्थानको बहुत सुन्दर बना देतीहै। जो अमृताकी प्रकृतिके बहुत अनुकूल है क्योंकि यह उसे एकाकीपनकी गहरी प्रतीति करातीहै। मैसूर के आसपासकी पहाड़ी-प्राकृतिक-सुषमाका उपन्यासकार ने उद्दीपनके रूपमें प्रयोग कियाहै। भाषा सरल, पात्रानुकूल व परिस्थितिके अनुकूल है। सक्षम भाषा उपन्यासकारकी साहित्यिक प्रतिभाका परिचायक है। शैली जीवंत व सहज है। अनुवाद सरल है।

कुल मिलाकर कहाजा सकताहै, कि कन्नड़के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री एस. एल. भैरप्पाका 'छोर' मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने धोखे व फरेबको सह न सकनेके कारण आत्महत्याके भावसे भरी अमृताको प्यारके अस्पष्ट आकर्षणमें बांधकर, जीवनके प्रति रुचि उत्पन्न करके, मनुष्य जीवनकी सार्थकता जीवन जीनेमें है, को चरितार्थ व अभिव्यक्त कियाहै। इस प्रकार 'छोर' भैरप्पाकी उपन्यास-यात्रा की एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। □

आंगन नदिया[1]

उपन्यासकार : अन्नाराम सुदामा
समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

श्री अन्नाराम सुदामा राजस्थानी और हिन्दीमें समान रूपसे लिखनेवाले ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने अपनी कृतियोंमें सामाजिक समस्याओंको विशेषतः उकेरा है। भारतीय ग्रामीण समाजके शोषक वर्गको जीवनकी सच्चाइयोंसे परिचित कराकर तथा शोषणके विरुद्ध उनमें एक नयी चेतनाका संचार करनेवाला उनका कथा साहित्य जीवनके नवनिर्माणके संकल्पसे आपूरित है। 'आंगन नदिया' उनका नवीनतम उपन्यास है जिसमें सामाजिक उत्थानका उद्देश्यपूर्ण चित्रण उपलब्ध होताहै।

'आंगन नदिया' की कथा राजस्थानी अंचलमें बसनेवाले विपन्न वर्गके जीवन संघर्षकी कथाही कही जायेगी, जो धीरे-धीरे नयी चेतनाकी ओर अग्रसर होता है। कथानायक मीठू जातिका चमार है। उपेक्षित वर्ग के इस प्रतीक-पात्रने जीवनमें असह्य दुःख सहेहैं, बावजूद इसके वह निरंतर संघर्षरत रहाहै और अन्तमें अपने आदर्श संकल्पोंमें सफल भी। एक ओर शोषणका सामन्ती-परिवेश है, तो दूसरी ओर गरीबीके हाटके बीच चेतनाके प्रतीक रूपमें यह पात्र नखलिस्तानका रूप ग्रहणकर सारे गांवमें विकृतियोंको दूर हटाताहै और सबको उत्थानकी दिशाकी ओर अग्रसर करताहै।

मीठूका प्रारंभिक जीवन बेगार करते हुए व्यतीत

---

[1] प्रका. : धरती प्रकाशन, गंगाशहर (बीकानेर)। पृष्ठ : २२८; डिमा. ९०; मूल्य : १००.०० रु.।

हुआहै, फिरभी वह सबको यथोचित सहयोग देताहै। कर्ज लेकर एक प्रकारसे यह पूरा परिवार बंधुआ-सा बन चुकाहै। सभी उसकी सदाशयताका लाभ उठाते हैं—चाहे वे हरखू महाराज हों, ठाकुर-सा हों या सेठ जी। घरमें खानेको अन्न नहीं, शरीरपर समुचित वस्त्र नहीं, मकानमें दरवाजे नहीं, पावोंमें चप्पल नहीं—फिरभी मीठू सबके काम करताहै। उसे रह-रहकर पुराने दिनोंकी याद आतीहै, जब उसपर—उसके बाप-दादाओंपर—असीमित अत्याचार हुएथे। इन सबकी स्मृतियां उसे पीड़ा पहुंचातीहैं, किन्तु पत्नी 'छोटी' अपने असीमित आत्मबल तथा सहनशीलतासे शक्ति और सहयोग प्रदान करतीहै। अपने बड़े बेटे मघियाके आग्रहपर परिवार सहित मीठू बीकानेर आकर बजरीकी खदानोंमें काम करने लगताहै, ताकि कुछ पैसे कमाकर घरका खेत खरीद ले। किन्तु दुर्योगसे मघिया खदान में दबकर मर जाताहै और बचाये हुए पैसे पुलिसवालों द्वारा हड़प लिये जातेहैं। निराश, थकाहारा और लुटा-सा मीठू अपने गाँव लौट आताहै।

गांवमें मीठूका सम्पर्क कलकत्तासे सेवामुक्त होकर आये पुरुषोत्तम दादासे होताहै। दादा वेदपाठी ब्राह्मण और मीठू अछूत तथा विपन्न। किन्तु एक बूढ़े बंगाली ने दादामें विपन्नों और उपेक्षितोंके प्रति मानवीय उदार सहयोगका करुण भाव जगायाथा, अतः मीठूके व्यवहारके कारण उनमें आत्मीयताका भाव बढ़ता चला गया। उन्होंने न केवल उसे शिक्षित किया, अपितु मानव-मूल्योंके संरक्षक सिद्धान्तोंसे भी परिचित कराकर, मीठूके मनको दृढ़ बनाया, ताकि वह दुनियाँकी सम्पूर्ण असंगतियों-विसंगतियोंका सामना कर सके। मीठूके जीवनमें एक नया विश्वास बिखरने लगा, एक नया राग चढ़ने लगा। पुरुषोत्तम दादाने उसके लिए स्वयंके पैसोंसे जमीन भी खरीदवा दी और बीज आदि के लिये पैसे भी दिये।

मीठूने खेतमें बहुत परिश्रम किया और मौसमने भी साथ दिया, परिणामतः फसल अच्छी हुई। इधर ठाकुर हीरसिंह-सुमेरसिंहने फसल उजड़वानेका प्रयत्न किया और उधर नत्थू नाईने भी ऊंच-नीचके किस्से प्रचारित किये। इससे दादाके घरपर विवादभी मचे, पर दादा अपने संकल्पके प्रति दृढ़ रहे। मीठूके दूसरे लड़केको जब ठाकुर अधमरा कर देतेहैं, तब दादाही उसका साथ देतेहैं और दोषीको दण्ड दिलवातेहैं। फसल आने पर मीठू दादाके पैसे चुका देताहै और उसका लड़का मनिया दादाकी प्रेरणा पाकर प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण करताहै। इधर दादाकी प्रेरणासे मीठू गांवमें प्रौढ़शाला चलाताहै, लोगोंको पढ़ाईकी उपयोगिता बताकर प्रोत्साहित करताहै, सहकारी भण्डारकी स्थापना करताहे, लोगोंको सफाईका महत्त्व समझाकर इस कार्यमें सपरिवार जुट जाताहै, लोगोंकी कुटेवें छुड़ाताहै और गो-सेवा-शिविर प्रारम्भ करवाता है। ये सब गांवकी भलाईके कार्यक्रम थे।

कलकत्ता जानेपर दादाकी अचानक मृत्यु हो जाती है और मीठू अकेला पड जाताहै। पर वह हारता नहीं। इसकी अपेक्षा वह अपने स्व. गुरु दादा द्वारा निर्देशित कामों एवं उच्चादर्शोंपर चलनेमें दृढ़ संकल्पित रहताहै। बीचमें कुछेक बाधाएँभी आतीहै, जैसे—गांवके कुछ लोगोंमें जागी संकीर्णता और ईर्ष्याकी भावना, साधुओंकी जमात द्वारा गांवके लोगोंको मीठू के विरुद्ध भड़कानेका प्रयास, किन्तु मीठू अपने कर्त्तव्य पथसे विचलित नहीं होता। अंतिम अध्यायमें उसे मारनेके प्रयासभी होतेहैं, किन्तु मीठू ग्रामोन्नतिके कार्य में संलग्न निर्भीक साधक बना रहताहै।

इस प्रकार यह कथा सुविचारित धरातलपर स्थित यथार्थसे आदर्शकी ओर गतिशील कथा है, जो दलित वर्गके प्रतीक मीठूके उत्थान और इसके सहारे ग्रामोत्थानकी योजनाओंको आधार बनाकर रची गयीहै। इसमें प्रेरणा चरित्र बनतेहैं। पुरुषोत्तम दादा और इलम तथा उसकी पत्नी नीरू प्रमुख सहयोगी बनतेहैं।

वस्तुतः इस कथाकी पूरी रचना प्रक्रियाको देखकर कहाजा सकताहै कि एक सुनिश्चित ढांचेको आधार बनाकर ही यह कथा रची गयीहै जो अशिक्षा, विपन्नता, भेदभाव, अन्याय, सांप्रदायिक संकीर्णता आदि ग्रामोत्थानमें बाधक स्थितियोंके विरोधमें अभिव्यक्त होतीहै। चूंकि कथाकारने एक निर्धारित फार्मूले के अनुरूप ही कथाका गठन कियाहै, अतः इस उद्देश्य की ओर उसका ध्यान प्रारम्भसे अन्त तक बना रहा है। परिणाम यह हुआ कि कहीं-न-कहीं आरोपित कथाने स्वाभाविकतामें भी बाधा पहुंचायीहैं और अनेक असंगतियोंको भी जन्म दे दियाहै। जैसे प्रारम्भमें बंधुआ मजदूरकी स्थितिको जीनेके बादभी बिना किसी अनुमतिसे लम्बे समय तक बाहर काम करने चले जाना, खेत खरीदने और ठीक आर्थिक स्थिति होनेपर

भी अकालके समय बाहर जानेको विवश होना, खदान दुर्घटनाके बाद उपन्याससे बड़ी बहूके चरित्रका गायब हो जाना और उसकी जगह उसकी लड़कीका आ जाना तथा एक लड़केके मरनेके बाद आकस्मिक रूपसे दूसरे का प्रकट होना आदि घटनाएँ अविश्वसनीय स्थितियों की रचना करतीहैं। लगताहै कि लेखकका ध्यान मूल उद्देश्यकी ओर लगा रहा, पात्रोंकी स्थिति और कथा के प्रवाहकी असंगतियोंकी ओर नहीं। इसीके साथ स्थान-स्थानपर उपदेशात्मकता इतनी हावी हो गयीहै और वहभी इतनी उच्चस्तरीय कि उससे विश्वसनीयता के साथ ही सहजपन भी न जाने कहाँ गुम हो जाता है। अतः घटना संयोजन नैपुण्यहीन लगताहै और भावुकता अत्यधिक हावी हो जातीहै।

फिरभी एक विशेषता मनको अत्यधिक आकर्षित करतीहै और वह है उसका आंचलिक परिवेश और तदनुरूप भाषा प्रयोग। चूंकि कथावृत्त राजस्थानी आंचलका है अतः भाषा-प्रयोगभी तदनुरूप है। राजस्थानीके अनेकानेक आँचलिक शब्दों, वहाँ प्रयुक्त कहावत-मुहावरोंके प्रयोगोंने अंचलकी भाषा-संस्कृति को जीवंत कर दियाहै। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर भाषाका काव्यात्मक प्रयोग भावनात्मक प्रसंगोंको मूर्त कर देताहै। होली वर्णनका प्रसंग तो मनको मोह ही लेताहै। लेखकने अत्यन्त निपुणतासे इसका विस्तृत आलेखन कियाहै, जो अनुकूल प्रभाव पैदा करनेमें पूर्ण समर्थ है। यद्यपि इस पुस्तकका मूल्य अत्यधिक है, तथापि इस सुनिश्चित उद्देश्यपूर्ण उपन्यासका स्वागत करना अयुक्तिसंगत नहीं होगा! ☐

कथा माध्यमसे वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके परिचयके लिए उपन्यास पढ़ें

अपराधी वैज्ञानिक

[लेखक : यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक']

☐ सम्भव है आपको पता न हो कि विज्ञानके अनुसार लगभग ११००० वर्ष पूर्व पृथ्वीका चौथे हिमपातसे उद्धार हुआथा। और, प्रत्येक बार हिमका आवरण एक मीलसे दो मील मोटा था।

☐ हिम-प्रलयका एक कारण पृथ्वीकी धुरीका विचलन है। इस समय पृथ्वीकी यह धुरी ध्रुव तारेसे एक अंश हटी हुईहै। इस विचलनसे ऋतुएं भी पीछे हटतीहैं।

☐ क्यों न पृथ्वीकी धुरीको सचल बनाकर पृथ्वीके विभिन्न भागोंको सूर्यके ताप और प्रकाशके सम्मुख लाकर मरुस्थलोंको उर्वर और हिम-प्रदेशोंको तप्त कर लिया जाये, वायुमण्डली कार्बन-डाई-आक्साइड, विद्युत् उत्पादन-जलवाष्पीकरण-वर्षा आदिको मानवीय नियन्त्रणमें लाया जाये।

☐ इन वैज्ञानिक आधारोंको लेकर उपन्यासका वैज्ञानिक नायक पृथ्वीकी धुरीको सचल बनाकर चुम्बक शक्तिके प्रयोग करताहै।

☐ इस रोचक आधारपर लिखा गया यह मौलिक हिन्दी उपन्यास आजसे २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआथा, पर यह समस्या आज भी है। आपभी इसे आजही पढ़ें।

पृष्ठ संख्या : ३३३; मूल्य : ६०.०० रु.

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

नाटक-कहानी

कोर्ट मार्शल[1]

नाटककार : स्वदेश दीपक
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

स्वदेश दीपककी पहचान प्रमुख रूपसे एक कहानीकारकी है तथापि दीपकने दो उपन्यास आलोच्य नाटक सहित दो नाटकभी प्रकाशित करायेहैं। दीपकके पांच-छ: कहानी संकलन भी पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुएहैं। दीपककी अनेक कहानियां अत्यन्त श्रेष्ठ लगती रहीहैं, उपन्यासोंमें एक 'मायापोत' पढ़ाहै, 'एक श्रेष्ठ रचनाकारकी अत्यंत कमजोर इस रचनाने निराश कियाहै। 'नाटक बाल भगवान' उनकी कहानी 'बाल भगवान' का उनके ही द्वारा किया गया नाट्य-रूपान्तरण है। दो और कहानियोंपर लघु टैली-फिल्मोंकी सूचना है। इनमें एक—'महामारी' 'दूर-दर्शनपर देखीहै। इस अत्यंत प्रभावशाली एवं मार्मिक टैली-फिल्मकी भरपूर चर्चा हुईहै। 'कोर्ट मार्शल' दीपकका दूसरा तथा नया नाटक है।

स्वदेश दीपकके साहित्यमें सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य मृत्यु है। लेखकने स्वीकार कियाहै—"इस मृत्यु-हठ आब्सैशनको मैं स्वीकार करताहूं। जीवनका सबसे बड़ा सत्य मृत्यु है, फिर मौतसे इतनी दहशत क्यों, आतंक क्यों?" (प्रतिनिधि कहानियां'—भूमिका)। यह सही है कि मृत्यु एक दुर्निवार सत्य है। किन्तु, विराट् सत्य का यह बहुत छोटा अंश है। यहभी सत्य है कि मृत्यु के पहले जीवन होताहै। इस जीवनको भलीप्रकार जीने वाला मृत्युको तुच्छ बना देताहै। बुद्ध, ईसा, कालीदास या कोई लिंकन, शेक्सपीयर जिस जीवनको जी लेताहै उसको अपनी छायासे कौन-सी मृत्यु आच्छादित कर पायीहै? दीपकभी, मृत्युको कल्याणी मानकर सार्थक जीनेवाले, मूल्योंके लिए जीने अथवा मरनेवाले किसी भगतसिंहको भी तो देखते। मृत्युका आब्सैशन गायब होजाता। कोईभी आब्सैशन असामान्य मानसिकताकी सूचना देताहै। दीपककी अनेक कहानियां हैं—'महामारी' इनमें एक हैं—जिनमें मृत्यु नहीं है और ये दीपककी सर्वश्रेष्ठ कहानियोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखतीहैं। आलोच्य नाटक तिहरी मृत्यु-छाया से आच्छादित है किन्तु इनमें कोई मृत्यु केन्द्रीय वस्तु नहीं है। न्यायके लिए संघर्ष नाटकका कथ्य है। 'नाटक बाल भगवान' में धर्मकी दूकान चलानेवालोंपर व्यंग्यको तीखा बनानेके लिए मृत्युका उपयोग किया गयाहै।

पुस्तकके फ्लैपपर नाटकका संक्षिप्त कथानक दिया गयाहै—"एक सैनिक रामचन्दर लगातार अपमानित किया जाताहै, क्योंकि वह 'छोटी जाति' का हैं और तथाकथित 'ऊंची जाति' के दो अफसरोंकी आंखोंका कांटा बन जाताहै। और एक दिन अपमानकी बाढ़ अनुशासनके बांधको तोड़ देतीहै, वह एक अफसरकी हत्या कर देताहै और दूसरेपर कातिलाना हमला। तब होताहै उसका कोर्टमार्शल।" यह कथानक इस अर्थमें अधूरा है कि कथानकके आगेके भागमें अमानवीय हरकतोंके बावजूद कातिलाना हमलेके दण्डसे बचा हुआ अफसर सबकी घृणाका पात्र बनकर आत्महत्या करता है तथा हत्याका अपराधी रामचन्दर मृत्युदण्डकी छाया में भी न्यायाधीश तथा अन्य अफसरोंके सम्मानका अधिकार पाताहै।

नाटकका कथ्य एक ओर कानूनकी सीमा तथा अक्षमताको प्रकट करताहै तो दूसरी ओर अन्यायको सहन करने तथा कभी-कभी समर्थन करनेवालोंको भी

---

[1] प्रका.: राजकमल प्रकाशन, १ बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ९६; का. ९१; मूल्य : ५०.०० रु.।

कठघरेमें खड़ा कर देताहै । दो दशकसे भी पहले शंकर शेषने 'फन्दी' में इसी कथ्यको आधार बनायाथा । शेष ने कठोर तथ्योंको बौद्धिक स्तरपर प्रस्तुत कियाथा, दीपकने कठोर तथ्योंको भावात्मक शैलीमें उपस्थित कियाहै । नाटकमें भावात्मक शैली अधिक उपयोगी सिद्ध होती रहीहै । नाटककी निरन्तर गतिशीलताके साथ दर्शकको प्रत्येक क्षण जुड़े रहना होताहै । भावात्मक स्तरपर दर्शक निरायास ही नाटकसे जुड़ा रहता है जबकि बौद्धिक चेष्टामें थकावटका अनुभव करते हुए किसी किसी क्षणमें वह नाटकके साथ नहीं चल पाताहै । नाटकमें एक क्षणका विलगाव नाटकके प्रभाव में बाधा उत्पन्न करताहै । संयोगसे हमने 'फन्दी' की समीक्षा भी, उसके प्रकाशनके तत्काल बाद, कीथी । हमारा विचार है कि 'कोर्टमार्शल' में जो पकड़ है वह शेषके नाटकमें नहीं थी ।

'कोर्टमार्शल' में रंग-प्रस्तुतिकी आवश्यकताओं तथा सुविधाओंका ध्यान रखा गयाहै । नाटकमें एक ही दृश्य है यद्यपि दो दिनोंका कथानक दो अंकोंमें विभाजित है । नाटकमें मंच-विधान बहुत सरल है । प्रारंभ में नाटककारने मंच-विधानके संबंधमें विस्तारसे निर्देश दियेहैं । प्रकाशनके कुछ मास पहले, १ जनवरी १९९१ को, श्रीराम सेण्टर, नयी दिल्लीमें इसका सफल मंचन हुआथा । सम्भवतः उस अनुभवका लाभ उठाकर नाटककारने आवश्यक सुधार कियेहों ।

मंच-विधानमें नाटककारने एक युक्तिको अपनाया है । मंचके पिछले भागको प्लाई-बुड द्वारा विभाजित किया गयाहै जिससे पात्रोंके जाने-आनेका गलियारा बन गयाहै । गलियारेमें, फ्रेममें, चार खिड़कियाँ हैं । वस्तुतः यह फ्रेम एक दीवारका आभास देगा । कई बार आपसमें बातचीत करते पात्रोंके चेहरे इन खिड़कियोंसे दिखेंगे । खिड़कियोंमें बोलते लोग 'कोरस' का कार्य नहीं निभायेंगे—घटना अथवा गतिपर टिप्पणी करनेका, बल्कि स्थितिके विरोधाभासको सामने लायेंगे, अलग और विरोधी विचारोंपर बात । टिप्पणी करते पात्र ।" नाटकके समग्र वातावरणमें इस मंच-युक्तिका हमें कोई विशेष प्रयोजन नहीं दिखायी दिया । यह युक्ति काफी-कुछ अनावश्यक होकर रह गयीहै । वैसे, इस युक्तिपर रंगकर्मी ही अधिकारके साथ निर्णय दे सकेंगे ।

हमने बार-बार प्रकट कियाहै कि नाटकका कार्य-व्यापार सतत विद्यमान वर्तमानका ही होता है, भूतकालिक क्षण सूच्य रूपमें में ही आ सकतेहैं । नाटकका कथानक किसीभी कालका हो, दर्शकके समक्ष वह हर समय वर्तमान बनकर ही आ सकताहै । नाटककार इस सामान्य तथ्यके प्रति उदासीन अथवा असावधान रहा है । अच्छा है कि यह असावधानी केवल निर्देशों तक ही सीमित रहीहै । निर्देशोंमें कार्य-व्यापार भूतकालिक क्रियामें है । एक उदाहरण पर्याप्त है—"(कैप्टन कपूर गवाहकी जगह आया । तभी महराबदार दरवाजेमें खड़े गार्डको एक सैनिकने कागजका टुकड़ा पकड़ाया । गार्डने कागजपर लिखा पढ़ा, तेज चालसे कर्नल सूरत सिंहके सामने पहुंचा, पैर ठोके)" (पृ. ७९) । सही रूपमें होना चाहियेथा—'कैप्टन कपूर गवाहकी जगह आताहै । इसी समय दरवाजेपर खड़े गार्डको एक सैनिक कागजका टुकड़ा पकड़ाताहै ' आदि । अच्छा हो कि नाटककार ऐसी भूलसे दूर रहे ।

स्वदेश दीपकके दोनों नाटक पुरस्कृत हो चुकेहैं । हम आश्वस्त हैं कि ये पुरस्कार किसी तिकड़मके कारण नहीं मिले । 'कोर्टमार्शल' की प्रस्तुतिपर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (६ जनवरी १९९१)में कविता नागपालने मत व्यक्त करते हुए चिन्ता व्यक्त कीथी कि उत्तर भारतमें 'रंगमंचके योग्य उत्तम नाटकोंका अकाल सा बना रहाहै । यह स्वीकार करतेहैं कि उत्तम रंगमंचीय नाटकोंकी हिन्दीमें कमी है । किन्तु, यह कमी अकाल नहीं कहीजा सकती । पिछले दो दशकोंमें हिन्दी में अनेक उत्तम रंगमंचीय नाटक प्रकाशित हुएहैं । कविताजीने हिन्दी नाटकोंको देखा तो होता । कुछ वर्ष पूर्व आल्बेयर कामूके नाटकके हिन्दी अनुवाद 'अर्थदोष' की समीक्षामें हमने लिखाथा कि हम पश्चिमी नाटकोंके समक्ष जिस विनय भावसे खड़े होजातेहैं, उसकी आवश्यकता नहीं है । आलोच्य नाटकको ही लें । भारतीय रंचमंचके लिए यह कामूके 'अर्थदोष' से अधिक श्रेष्ठ है । हिन्दीमें कम सही लेकिन अच्छे नाटक लिखे जा रहेहैं । कविताजीकी चिन्ताका सम्मान करते हुए भी वैसी चिन्ताके लिए कोई कारण नहीं है ।

पुस्तकके फ्लैपपर डॉ. जयदेव तनेजाका मतभी दिया गयाहै । हमें इस मतमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण विचारणीय तथ्य लगाहै कि 'नाटककार-निर्देशककी साझी रचनात्मकताकी जरूरत' है । हम विनम्रतासे यह भी जोड़ना चाहेंगे कि नाट्य-समीक्षककी भी साझीदार होना

चाहिये। समीक्षक मठाधीश बनकर फतवे देकर अपने दायित्वका पालन नहीं कर सकता। एक प्रबुद्ध पाठक-दर्शकके रूपमें उसको रचनात्मक साझेदारीमें जुड़नेका प्रयास करना चाहिये। नाटककारका कार्य भिन्न है और निर्देशकका भिन्न। तब भी दोनों एक दूसरेके कार्यमें सहायक हो सकतेहैं, होते रहतेहैं। तब समीक्षक क्यों अलग रहे ?

'कोर्ट मार्शल' का हम स्वागत करतेहैं तथा स्वदेश दीपकसे निरन्तर नये नाटक पाते रहनेकी अपेक्षा भी हम सबको रहेगी। □

काले सूरजमुखी[१]

कहानीकार : राजेन्द्र सक्सेना

समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

कथाकार श्री राजेन्द्र सक्सेनाके इस नये कहानी संग्रहमें उपभोक्ता संस्कृतिमे उत्पन्न नगरीय संत्रास, सम्बन्धोंकी विडम्बना, तनाव खिचाव तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंके विभिन्न संदर्भ—ये सभी तत्त्व उनके इस संग्रहमें भी है, और इससे पूर्वके संकलनोंमें भी। यह संग्रह लेखकके चिन्तन, संवेदन, उनकी जीवन-दृष्टि तथा मानसिकताको संकेतित करताहैं। अपने पिछले कथा-संग्रहोंकी भाँति लेखकने इस संग्रहमें भी ''लीक-से हटकर नया कहने या बुननेकी कोशिश नहीं कीहै। उनकी अधिकांश कहानियाँ समाजके एक विशेष वर्ग, उच्च-मध्य-वर्ग या उच्च-वर्गसे संबंधित हैं, और वहभी इस वर्गके एक पक्षपर अर्थात् सेक्स या यौन सम्बन्धोंसे उपजी विकृतियों, कुंठाओं, धनके बलपर नारीका शोषण और नारी द्वारा उससे उभरनेकी कोशिश इनमें हैं। इसी संदर्भमें यह बातभी है कि यहांभी नारीका स्वर आक्रामक नहीं बन सकाहै, उसमें वे संघर्षकी स्थितियाँ नहीं आ पायीहैं, जो नारीकी अस्मिता और उसके संघर्षशील व्यक्तित्वको साकार कर सकें। राजेन्द्र सक्सेनाके सारे लेखनके केन्द्रमें नर-नारीका संबंध ही कार्य करताहै—यह नाभिकीय केन्द्र ही है, अन्य सरोकार इस केन्द्रके चारों ओर परिक्रमा करते हैं।

यहां एक तथ्यकी ओर संकेत आवश्यक है। कहानियोंका परिवेश उच्च-मध्यवर्ग, व उच्च-वर्ग है, पर इस वर्गके अनेक ऐसे भी पक्ष हैं जिनकी ओर लेखक उन्मुख हो सकताथा। उदाहरणस्वरूप ऐसे पक्ष हैं—पैसेकी होडमें टूटते परिवार, उपेक्षित बच्चोंका मनोविज्ञान, बुर्जुआ मानसिकताके विभिन्न रूप, व्यापारिक घुटन और तनाव, मूल्योंका ह्रास और आधुनिकतावादका वर्तनोन्मुख रूप जो पूंजीवादी व्यवस्थामें और साम्यवादी व्यवस्थामें समान रूपसे देखेजा सकतेहैं। इस वर्गके ये पक्ष यदि उभरकर सामने आते, तो इस वर्गका पूर्ण ''चरित्र'' अपनी बहुआयामिकताके साथ प्रकट होता।

अनेक कहानियां घुमाफिरा कर एकही विषयको प्रस्तुत करतीहैं। कठपुतलियाँ ''बिना चेहरेका दुःख'', अप्रस्तुत, ''तिलिस्म'', ''एक और ययाति' ''कितनी बार'', ''उत्सव और ''काले सूरजमुखी'' आदिमें प्रायः प्रेम और सेक्सको केन्द्र में रखा गयाहै। ''एक और ययाति''में जहां श्रीधर मेहता अपनी उम्रसे काफी छोटी इलाको अपने पैसेके बलपर भोग करना चाहताहै वहीं ''काले सूरजमुखी'' में श्रीमती लता अपनेसे काफी छोटे विनयका उपयोग करना चाहतीहैं। एक तरफ श्रीधर मेहता अकेले हैं, धनी हैं तो दूसरी ओर लता सुहेलिका एकाकी हैं, धनीभी है। इसी प्रकार अन्त उपर्युक्त कहानियोंमें एकही विषयको परोक्ष रूपसे पाठकोंके सामने परोसा गयाहै। ''बिना चेहरोंका दुःख'' कहानीकी प्रस्तुति भोंडी बन गयीहै जहां अकालके मारे अभय और मंगली मेहनत मंजूरी करतेहैं। कहानीका आरंभ प्रभावी है, पर यहांभी लेखक अपनी सीमाओंसे उभर नहीं पाता। न जाने कब वे पहुंच जातेहैं मि. मेहताके घर जो सम्पन्न वर्गका प्रतिनिधित्व करतेहैं, और फिर मि मेहताका मंगलीके प्रति वही कामुक व्यवहार। एक दिन उसे अकेली पाकर जबरन सोफेपर बैठाना, आइसक्रीम खिलानेकी जिद करना—यह सब कुछ भोंडा एवं सस्ता लगताहै, नितान्त फिल्मी ढंगका। वस्तुतः, अभिव्यक्ति जब संयमका बांध तोडने लगतीहै, तो प्रायः ऐसा ही होताहै। यहभी देखनेमें आयाहै कि लेखक कहानीमें वर्णनात्मकताको अधिक स्थान देने लगताहै, जबकि कहानीकी संरचनामें घटनाचक्र और पात्रके

---

[१] प्रका. : अरविन्द प्रकाशन, १५ दुर्गा नर्सरी रोड, अशोक नगर, मेन रोड उदयपुर-३१३००१। पृष्ठ : ११८; डिमा ९१; मूल्य : ६०.०० रु.।

न्द्वसे वस्तुका विकास होना चाहिये। सक्सेनाजीकी कहानियोंमें कहीं-कहीं इसीसे संरचनात्मक कसावका कमी प्रतीत होतीहैं ।

हां, इस संकलनकी कुछ कहानियां अवश्य ऐसी हैं जिनमें रचनात्मक कसावका समावेश अपेक्षाकृत अधिक है, और ऐसी कहानियोंमें लेखक अपनी सीमाओंको तोड़नेका प्रयत्न भी करताहै । ऐसी कहानियां हैं—'अवांछित', 'विकल्प' 'दूसरा घर'' तथा कुछ सीमा तक ''आत्मदाह'' ।

''अवांछित'' कहानीमें जहां एक ओर आजकी उपभोक्तवादी संस्कृति, आधुनिकताकी गलत पहचान और पहचानकी होड़में पुरानी पीढ़ीकी मानसिकताको बखूबी चित्रित किया गयाहै, वहीं ''दूसरा घर'' में पिताकी मृत्युसे उत्पन्न मांके दुःखसे बेखबर संवेदनहीन बच्चे मांको बेघर करनेकी मनोदशा एक ऐसी अभिवृत्तिको सूचित करतीहै जो विडम्बनाका संवेदनहीन रूप है। 'अवांछित'' तथा अन्य कुछ कहानियोंमें लेखक वैचारिकताको घटना व पात्रोंके द्वन्द्वमें समाहित कर देताहै। अवांछित कहानीमें यह कथन लें—''किन्तु यह आधुनिकता (पतनोन्मुख रूप) केवल घरकी चार-दीवारोंके भीतर ही नहीं व्याप्त थी। उसमें रहनेवाले प्राणियोंके भीतर भी कहीं व्याप्त थी—तुषार, कुंतल, चित्रा सभीमें अपने अपने ढंगसे जीवन जीनेकी ललक है, अपनेही निजी सुख और सुविधाकी ढूंढ। रिश्तोंकी बजाए निजत्व ढूंढनेकी कौन-सी सम्पूर्णता है जिसे ये लोग खोज रहेहैं ?'' (पृ. ४६)। लेखककी अनेक कहानियां विसंस्कृतीकरण और भोगवादी संस्कृतिके विरूपोंको प्रकट करतीहै। कभी-कभी ऐसे प्रसंगोंमें लेखक प्रतीकोंका सुंदर निर्वाह करताहै—रिश्तोंके रूपको व्यक्त करनेके लिए। एक ऐसाही उदाहरण है ''पत्नी'' कहानीसे—''वे अत्यन्त निकट खड़ेथे, किन्तु शेफालीको लगा कि उनके बीच एक नदी बह रहीहै। जलकी नहीं, पिघले कोलतारको नदी। फिर उसमें एक कमल उग आयाहै, रक्त कमल जो धीरे धीरे काला पड़ताजा रहाहै।'' (पृ. ९३)। ऐसे प्रसंग रचनात्मक हो उठेहैं, और साथही ''कथ्य'' को गहराते भी हैं।

समग्र रूपसे, यह कहना आवश्यक है कि लेखक अपनी रचनात्मक सीमाको तोडनेका प्रयत्न तो कर रहा है, पर कहीं गहरेमें स्त्री-पुरुषका आद्यरुप उसे इस प्रकार जकड़े हुएहै (पूरे लेखनके संदर्भमें भी) कि वह उसे ही मात्र सत्य मान बैठाहै। उच्च वर्ग, उच्च-मध्यवर्ग और मध्य वर्गमें अनेक ऐसे ''कथ्य'' एवं विषय है जो संघर्ष, तनाव और विडम्बनाको व्यक्त कर सकतेहैं—आवश्यकता है उन्हें पहचानकर उनकी तहोंमें घुसना। यह अनुप्रवेश बहुआयामी होगा और राजेन्द्र सक्सेनाके पास वह दृष्टि और अनुभव हैं जो यह कार्य कर सकनेमें समर्थ हैं। रचनात्मकताकी मांग है कि लगातार अपनेको तोड़ना—यह तोड़नेकी प्रक्रिया रचनाकारको ''टाईप'' नहीं बनने देती। राजेन्द्र सक्सेनाकी इधरकी रचनाशीलता (६-७ वर्ष) यह आशा बंधातीहै कि वे ''टाईप'' नहीं वन पाये हैं जिसकी संभावना मुझे ७-८ वर्ष पूर्व लगीथी। लेखकके लिए यह एक शुभ स्थिति हैं। □

काव्य

चतुष्पदी तथा अन्य कविताएं[१]

कवि : तारिणीचरण दास 'चिदानन्द',

समीक्षक : डॉ. सुधांशुकुमार नायक

हिन्दी तथा उड़ियाके साहित्य-चिन्तक, समीक्षक तथा कवि डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द' का चौथा काव्य संकलन है। इसके पूर्व उनकी 'मनकी बातें (गद्य कविता), 'इतिवृत्त' तथा अन्य कविताएँ (शब्दों और रेखाओंका समीकरण) एवं 'कविता—१९९९' (काव्य-रूपोंके विविध प्रयोग) प्रकाशित हो चुकीहैं। आलोच्य काव्य-संकलनमे 'चतुष्पदी' नामक अन्तर्बद्ध 'महाकविता' (महाकाव्यात्मक दीर्घ कविता)

---

[१] प्रका. : ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी द्वार, अलीगढ़—२०२००१। पृष्ठ : ५२; डिमा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

का प्रवर्त्तन कियाहै; अन्य लघु कविताओंमें पुरावृत्तों तथा दंतकथाओंके आधारपर मानवीय चित्तवृत्तिका उद्घाटन कियाहै। 'चतुष्पदी' चार कविताओंके समाहारसे बनी एक शिल्पपूर्ण लम्बी कविता है, जिसमें मिथकों, आद्यबिम्बों, प्रतीकों तथा रूप कल्पोंकी भरमार है। इस महा-कवितामें जितनी पंक्तियां है, उतनी ही भाव-व्यंजनाएं निहित हैं। खंडित बिम्बोंके सम्पर्क-सूत्रोंसे जान पड़ताहै कि यह कविता टी. एस. इलियट की 'दॅ, वेस्टलैंड' की शैलीमें लिखी एक स्वतंत्र रचना है, जिसमें इलियटकी अनास्था और निराशाका खंडन किया गयाहै। पहली कविता 'तलाश' में कविका पठन-क्षेत्र काशी नगरीको केन्द्रितकर कथा-सूत्र आगे बढ़ता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका विद्यार्थी कवि चिदानन्द सह-पाठिका इलाके साथ नगर भ्रमणमें निकलेहैं—और मानसिक यात्रामें क्रमशः इला पौराणिक इलामें परिणत हो जातीहै तथा कविपर राजकुमार रोहिताश्वका आरोपण हो जाताहै। भ्रमणके ब्याजसे लिखी गयी यह लम्बी कविता काशीके विभिन्न स्थानोंके वर्णनके साथ तत्कालीन पीड़ित युवककी आर्थिक दशा, बिवशता तथा संघर्षको सूचित करती पितृ अन्वेषण वृत्तिमें समाहित हो जातीहै, राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वकी विजय सत्य, सहिष्णुता तथा मृत्युपर अमृतकी विजय है। खण्डित बिम्बों तथा चेतना प्रवाहपर आधारित यह कविता कविके गुरु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीके स्वरके साथ नयी अर्थवत्ता और आस्था लेकर समाप्त होतीहै। दॅ वेस्टलैंडमें आये लंडनके पुलकी भाँति यहाँ काशीका राजघाट-पुल या मालवीय पुल आताहै। पर यह टूटता नहीं है, जो भारतीय महाकाव्यके सुखवाद, आनन्दवाद तथा आस्था को ही सूचित करताहै।

इस कविताके दूसरे (ख) अंशमें ध्रुवचरितके सांकेतिक बिम्ब सामने आतेहैं। राजपुत्र ध्रुव तथा उनकी माताकी निरादृति समाजमें नारीकी स्थिति और नवयुवकोंके संघर्षको सूचित करतीहै। इस अंश में मातृप्रेम तथा पितृ-विरोधी प्रवृतिको रूप दिया गया है। प्राचीन मूल्यों, अन्यायपूर्ण आदेशोंके विरुद्ध युवा शक्ति द्वारा विरोध प्रगट किया गयाहै। संघर्ष, त्याग, तपस्या और सेवाके द्वारा समाजका उद्धार इस अंश का मूल स्वर है। (इसमें निरालाजीका स्वर गूंजता है।)

दूसरी कविता 'दर्वेंगरा' जल बिन्दु तथा वीर्यका प्रतीक है। इसमें उर्वरक मिथकका प्रयोग किया गया है। अतः ऋष्यशृंग तथा जरताका प्रसंग वर्णित है। इलियटकी पंक्ति 'सिर्फ जल शब्द···पर जल नहीं' का इसमें विरोध किया गयाहै और कहा गयाहै कि जल सर्वत्र है—मनुष्यका प्रयत्न मात्र चाहिये, शुष्कतापर हरियालीकी बन्ध्यात्वपर नवीन सृजनकी विजयके संदेश, मृत्युपर जीवनकी विजयके पूर्व संदेशको उजागर करते हैं।

अन्तिम अंश (ग) में चीनी लोककथाके प्रयोग द्वारा आत्मत्याग द्वारा अर्थात् मृत्यु द्वारा मृत्युपर विजय की घोषणा की गयीहै। यह खंडित बिम्बभी पूर्व प्रकरणोंका परिपूरक है।

चतुष्पदीकी तीसरी कविता' 'पछाड़' में देश-विदेशके आद्यरूपों—प्रोमेथिस्, ऑरफ्यूस और नचिकेता आदिको लेकर गृह तथा राष्ट्रकी अशान्तिपर गहरा चिन्तन है। इस कवितामें अंधकार और मृत्यु को पछाड़कर मानवके चिर-विजयी बननेके कई प्रतीक है। मृत्युको जीतनेके मानवीय प्रयास, गृह शान्ति तथा विश्व शान्तिके लिए नचिकेतीय प्रयत्न बड़ेही कथात्मक बन पड़ेहैं। यमालयसे नचिकेताके लौटनेपर आश्रमकी स्थितिमें जो परिवर्त्तन दिखलाया गयाहै, वह गहरे राष्ट्रप्रेमको उद्बुद्ध करताहै—प्रभूत खाद्य-उत्पादन तथा सुरक्षाके प्रबन्धसे ही राष्ट्रकी अखंडताकी रक्षा सूचित होतीहै। मानवकी विजिगीषा और जिजीविषा इस कविताका मूल स्वर है।

(इस कवितामे महादेवी वर्मा तथा एकाध सप्तकीय कविके स्वर सुन पड़तेहैं)।

चतुष्पदीकी चौथी कविता 'रोशनी'में 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की वाणी निहित है। यह कई मिथकीय प्रतीक खंडोंके समायोजनसे बनीहै। विशेषत: बाइबिल, बौद्ध जातक तथा भागवतके मिथक तथा आद्यबिम्ब इसमें प्रयुक्त हुएहैं। गडरिया (भगवान्), श्रीकृष्ण, महाकाली, स्वर्णहंस आदि विभिन्न अर्थ ध्वनित करते हैं। कवि इस कवितामें देशके अनुप्रवेश, विश्वमें फैली अशान्ति, मनुष्यकी लोभ प्रवृत्ति, अपराधबोध आदिपर जागरूक है। इसमें वीरमाता (Hero saviour) मिथक, दंडपरक मिथक आदिका प्रयोग किया गयाहै। राजा परीक्षितके द्वारा कलिके लिए जो दंडविधाम किया गयाहै उससे द्यूत-क्रीड़ा, स्वर्ण, नारी और हत्याको मानव

समाजके अध:पतनका स्थान बताकर मानव कल्याणके लिए आध्यात्मिकताकी ओर बढ़नेका संकेत किया गया है। इस प्रकरणमें भी मृत्यु (सर्पदंशन) पर आध्यात्मिकता द्वारा मनुष्यकी चरम विजय उद्घोषित हुईहै।

"सांप भांप था
त्यागा तन नरेशने
भजन पूजनसे"

स्वर्णहंसके बिम्बोंसे मनुष्यमें छिपी लोभवृत्ति, अनुदारता, धोखेकी प्रवृत्तिपर व्यंग्य किया गया एवं सहावस्थान तथा मैत्रीपर जोर दिया गयाहै।

इलियटके उभयलिंगी पात्र टेरेशियसकी भांति कविने नर और नारीकी अनुभूति प्राप्त इलाको मुख्य नायिका चुनाहै। समूची कवितामें इलाही सबकुछ देखतीहै और पुरुरवाको (मनुष्य मात्रको) सजगकर कहतीहै—

"ओ पुरुरवा, पुत्र मेरे !
तुम न दौड़ना उर्वशीके पीछे
(वह हवा है, हवा है)
प्यार करना सीखो मनुष्यसे
पड़ोससे.. परिवेशसे।"

प्यार और सहावस्थानके इस संदेशको "ॐ सहनाववतु, सह नौ भुनक्तु" आदि उपनिषद् वाक्योंसे पुष्ट किया गयाहै।

इसप्रकार चार कविताओंसे अन्तर्बद्ध लम्बी कविता 'चतुष्पदी' इस विधामें एक नये अध्यायका योग करतीहै। यह मात्र लम्बी कविता नहीं एक शिल्पात्मक संक्षिप्त महाकाव्य है, जिसे हिन्दीका "दें वैस्ट लैंड" कहा जाना असंगत नहीं होगा।

अन्य कविताएं :—

अन्य कविताओंमें से 'शीला दीदी' प्राचीन तथा आधुनिक नारीका प्रतिनिधित्व करती सहानुभूतिकी पात्र बन जातीहै। और भवदत्तजी टिपिकल बनारसी हीरो हैं, जिनकी मृत्यु असम्भव है। दूसरी कविताएं भी मिथकों, आद्यबिम्बों तथा किम्वदंतियोंपर आधारित हैं। जिनमें आधुनिक मनुष्यकी प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखायी देतीहैं। संक्षेपमें इन कविताओंमें क्रमश: मानवीय अहम् (सिंह-मूषिक उपाखयान), शठता (मित्रता), अकृतज्ञता (शेर और ब्राह्मण), कमजोरी (निर्णय), विवशता (वाल्मीकि), आस्पर्द्धा (संपाती), सफाई (जयन्त), निरंकुशता (हिरण्यकशिपु), संतानजननकी अनिच्छा (परिचय), परवशता (शकुन्तला), राष्ट्रप्रेम (बृहन्नला) तथा प्रेम और मानविकता (हिडिम्बा) आदि भावनाएं व्यक्त हुईहैं। अत: अन्तमें यह कहाजा सकता है कि 'महाकविता' तथा क्षुद्र कविताओंका यह संकलन हिन्दी काव्यके विकासमें एक सफल योगदान है। □

गंध गई जाने किस देश[1]

[नवगीत संकलन]

कवि : भोलानाथ

समीक्षक : डी. डी. तिवारी

भारतीय साहित्यमें गीतिकाव्य परम्परा प्राचीनकालसे रही है। सूर, तुलसी, मीरा, विद्यापति और जयदेवके गीत आजभी लोकप्रिय है। आधुनिक हिन्दी साहित्यमें द्वितीय महायुद्धके बाद विभिन्न साहित्यिक आन्दोलन पल्लवित हुए, जिनमें नयी कविता, नयी कहानी और नवगीत प्रमुख हैं। नवगीत आन्दोलन नयी कविता और नयी कहानी आन्दोलनका अनुकरण है। गीत तो मात्र गीत होताहै। नया क्या, पुराना क्या ? लय, तुक और संगीतात्मकता उसके प्राण हैं।

'गन्ध गई जाने किस देश' श्री भोलानाथका कविता-संग्रह है जिसे कविने नवगीत संग्रह नाम दिया है। इसमें कुल सत्तावन गीत एवं कविताएँ हैं।

कविने इस कविता (नवगीत नहीं) संग्रहमें आज के मानव जीवनकी विषमताओं, औद्योगिक युगकी नीरसता, कुण्ठा, विक्षोभ, अलगाव, मोहभंग और विडम्बनाओंसे उद्भूत मानव संघर्ष और उसके अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त करनेका प्रयास कियाहै। जिसके लिए कवि सम्भवत: गीतको माध्यम बनानेका आकांक्षी है, किन्तु नवगीतकी विशेषताओंके निकषपर संकलित गीत खरे नहीं उतरते। अधिकांश गीतोंमें सुर और लयका अभाव है। संकलनका प्रथम गीत 'गन्ध गई जाने किस देश' आकर्षक शीर्षकसे परिपूर्ण होते हुएभी गेयता और संगीतात्मकताकी दृष्टिसे पाठकको निराश करताहै। उदाहरणार्थ गीतकी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

---

१. प्रका. : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-११००५५। पृष्ठ : ८७; डिमा. ९१; मूल्य : ३०.०० रु.।

अन्तहीन बीहड़में
खिला एक अर्थहीन मौलश्री

स्याह हुए अंखुर अलापते
संख्याके गीत आखिरी। (पृष्ठ ९)

पूरे गीतकी भाषा क्लिष्ट और उसका भावबोध भी अस्पष्ट है। गीतितत्त्वके अभावमें यह गीत कम तुकान्त कविता अधिक है। गीतात्मकताकी दृष्टिसे 'पनघट', 'चितचोर कन्हैया', 'आती यादें गांवकी', 'पापी मधुमास उतर आया', 'आये दिन फागुनके', और 'मन चम्पाका फूल होगया' स्तरीय गीत हैं। इसके अतिरिक्त 'फूल हंसा भौजीकी कोखमें', 'गीत दर्दके गाऊंगा', 'गाते गीत चुनचुनके' और 'देहरीका निश्चित सीमाएं' अच्छी बन पड़ीहैं। कुछ गीतोंमें कविने सुर और लय तथा संगीतकी पायल पहनायीहैं। जैसे--

"कमल कली तालमें,
कुमकुम है भालमें,
दिशा-दिशा फैल रही
अनसूंघी गंध
ठहरी हुई झीलें
मोह-मन्त्र कीलें

नेह लहर पालकी। (पृष्ठ ५३)

जहांतक कविता और गीतोंमें कथ्य और शिल्पका प्रश्न है। इसके सन्दर्भमें यह कहना समीचीन होगा कि कविका कथ्य-चयन शिल्पकी अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है। कहीं-कहीं कविता/गीतोंका शिल्प भावानुकूल भी है।

कविने आजकी बदलती स्थिति, संत्रास, घुटन एवं कुण्ठाको काव्यका विषय बनायाहै। कवि यथार्थ-द्रष्टा है। उस श्रमजीवीकी पीड़ाको कविने अनुभव कियाहै, जो दिन-रात पसीना बहाकर अपने हाथोंसे सृजनकी गीता रचताहै। किन्तु उसे रोटीभी नसीब नहीं होती। केवल अपने भाग्यको दोष देताहै। मजदूरकी व्यथा 'चढ़ी उमरके दिन बीते' में व्यंजित हुईहै—

"भूखकी बेड़ी
पांव पड़ी है

× × ×

शिकन चेहरेपर
आंखोंमें पचता गम
विषभोगी
पीड़ाएं पीकर
सृजनकी गीता रचता श्रम, (पृष्ठ १२)

इस विषभोगी निम्नवर्गकी आहत आकांक्षाओंको अभिव्यंजित करनेका प्रयास 'टी. वी. दर्शन बेमतलब के' में भी किया गयाहै। बिटियाको सम्बोधितकर कवि ने अभावग्रस्त जीवनको अभिव्यक्त कियाहै। जिनके लिए रोटी उपलब्ध न हो वह बिस्कुट या ब्रेडकी कल्पना कैसे कर सकतेहैं? इसी पीड़ाको अभिव्यक्त करते हुए कवि कहताहै :—

"बिटिया री
फेरे अभिलाषाके
अंजुरी भेंट नहीं धरते,
बिस्कुट ब्रेडका
नाम न लेना—कोदो-कुटकी
सामा-पसही
की रोटी काफी है।" (पृष्ठ १८)

अधिकांश गीतों और कविताओंमें कविका जीवन दर्शन अभिव्यक्त है। जीविकाकी तलाशमें शहरकी ओर पलायन करनेवाले व्यक्तिके मानसिक उद्वेगोंकी अभिव्यक्ति 'घरकी याद निलकतीहै' गीतमें हुईहै।

सामान्यजनकी पीड़ासे कविका हृदय संतप्त है। निर्धनों, दुखियों और पीड़ितोंके शोषणसे वह तिलमिला उठताहै। शोषितोंकी दयनीय स्थितिका चित्रण इस संकलनकी अनेक कविताओंमें हुआहै। 'थमी नहीं लहर' में कविने उस निर्धनकी पीड़ाको स्वर दियाहै, जिसके पास भयंकर ठंडसे बचनेके लिए ओढ़नी नहीं है। विवशता और गरीबीकी शाल ओढ़कर बेचारा अपनी कुहनियोंको वक्षसे लगाये रात भर करवट ही बदलता रहा। इस कवितामें प्रेमचन्दकी कहानी 'पूसकी रात' का छायाभास है। केवल शीत ही नहीं, भूखभी उसे पीड़ित कर रहीहै। उसीका यथार्थ चित्रण द्रष्टव्य है :

हहर-हहर चली
थमी नहीं शीत लहर
रात-रात कांपते रहे
अदल-बदल करवटें
पस्त की, हमने पुआल तोड़कर,
सिसियाते-दांत कटकटाते
विवशताकी शाल ओढ़कर,
अटे-फटे चादरमें
घटे-घटे वक्ष कुहनीसे
रात-रात ढांपते रहे। (पृष्ठ ३४)

भोलानाथने आजकी समसामयिक स्वार्थजन्य और परिवेशजन्य तिक्तताका चित्रण भी कियाहै। जो भ्रष्ट है, सत्तालोलुप धोखेबाज है, वही सबका भाग्य-विधाता बनकर अपने पैने पंजोंसे भोली-भाली जनताको जख्मी कर रहाहै। ढोंगी नेताओंके झूठे वादोंने निरीह लोगों की छातीपर घात-प्रतिघातकर उसे छलनी बना दिया है। इसी अवसरवादिताका अंकन 'एक सालके सधे-बधे लय', 'लोह पींजरेमें', 'सभ्य नस्ल वाले बहेलिए' आदि गीतोंमें कियाहे। आज चारों ओर छल-प्रपंच है, वफा कटघरेमें बन्द हो गयीहै, समाचार, अखबार मात्र कोरी हमदर्दीके विज्ञापन हैं, रिश्ते-नाते सब जहर उगलतेहैं, नेताओंके वादे मात्र वोटोंके लिए हैं। समाजकी इस सतप्ततासे कवि मर्माहत है। कविने समाजमें व्याप्त साम्प्रदायिकताके विषैले जहरसे उत्पन्न दहशतको चित्रित कियाहै :—

"धुंधमें मधुरी वाणीके
जहरीले बाण चलाते
सभ्य नस्लके सभ्य बहेलिए
चिड़ियोंपर घात लगाते
× × ×
पैने-पैने पंजोंसे
धोखेबाजीने दिलको छुआ
गांव हुए वीरान, शहर, मरघट
मुखिया बेताल हुआ,
वर्दीमें,
अनजान सिपाही
घर-घर लावा बांटतेहैं। (पृष्ठ ५७)

'प्रजा है सहमी-सहमी' में पौराणिक प्रतिमानोंके द्वारा वर्तमान समयमें बदलते जीवन मूल्यों एवं विघटन को व्यक्त कियाहै।

कविने जहां सामाजिक पीड़ाको व्यंजित कियाहै, वहां प्रणयी हृदयके विविध मनोभावोंका भी सुन्दर अंकन कियाहै। प्रेयसीने एक प्यार भरी दृष्टिसे क्या देखा कि प्रेमीका हृदय 'चम्पाका फूल' हो गया। नारी सुलभ विविध चेष्टाओंका चित्रांकन कविने सहज और सरल शब्दोंके माध्यमसे व्यक्त कियाहै। यथा —

विस्मित हो नयनोंमें
बिम्बको सरेखना
आय-हाय कोरोंसे
नखीसे देखना। (पृष्ठ ६५)

प्रेमकी पुकार उनकी 'पलकोंका आमन्त्रण' में भी व्यंजित हुईहै। संयोगके साथ-साथ विरहिणीके हृदयके मनोभावोंको गीतके माध्यमसे अभिव्यक्त कियाहै। प्रकृति विविध उपादानोंसे अलंकृत हो रहीहै, हवा अमृत लुटा रहीहै, ऐसेमें उसका आग्रह है कि—

"सूने वीरान मन
औचक ही
नेह अंकुर आया
संन्यासी
दर्पणपर पापी
मधुमास उतर आया
हिय तलके दांव
मनुवाके गांव
च-ले मधुमास चले आइये। (पृ. ३३)

इन गीतोंमें प्रकृति भी अपने पूर्ण सौन्दर्यके साथ उद्भूत हुईहै। 'आये दिन फागुनके' में कविने फागुन की ऋतुके साथ होलीके रंगोंका अद्भुत साम्य किया है। 'सिलसिले वे घाटियोंके' में घाटीका सुन्दर और मनोहारी रूप अंकित कियाहै।

अपनी सहज भावाभिव्यक्तिके लिए कविने लोक भाषाके शब्दोंका भी प्रयोग कियाहै। जैसे—अषढ़िया, चम्पईया, बरखा, मड़वे, ढावे, मनखे, मथानी, भमरी, दूलह, दोहनियां, पनही, चिड़ी, हलदिया, मनुआं और निदिआ आदि-आदि। कुछ ऐसे शब्दोंका प्रयोग भी कियाहै जो अभिव्यक्तिमें सहायक हुएहैं। यथा—

"परदेशीके मन फोड़े-सी
घरकी याद चिलकतीहै" (पृष्ठ २८)

'चिलकती' शब्द प्रवासीके मनमें उठ रहे अथाह उद्वेगोंके लिए सटीक है। कविने उर्दू भाषाके शब्दों जैसे बेमानी, दरारों, शिकवे शिकायत, अरमान, बेशर्त, मजहब, आदमखोर, अनजान, दहशत, वफा, इरादा, खामोशी, हकीम और नुस्खे आदिका प्रयोगभी बेहिचक कियाहै।

कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग भी मिलता है। जैसे—छलक रहा अन्तरका घेलना या आज अन्तर में हेलना। इसमें घेलना और हेलना प्रचलित शब्द नहीं हैं। भाषाकी क्लिष्टता भी यत्र-तत्र है। संग्रहके अधिकांश गीतोंमें गीतके अनुकूल कोमल, सरस और हृदयग्राही भाषाका अभाव है। जैसे—

"टूटी कमान

तीर तरकसमें सोये
तकादे-उधारके,
घाट-घाट तोते हैं ।   (पृष्ठ ४९)

यह भारी भरकम भाषा गीतके प्रतिकूल है ।

संग्रहको नवगीत संग्रह नाम दिया गयाहै किन्तु गीतोंमें लय एवं सुरका अभाव खलताहै तुकान्तताका बौद्धिक प्रयास अधिक है, जिससे गीतकी प्रतीति कम कविताका आभास अधिक होताहै । यथा—

समय हुआ दफ्तरका
ओंठ जलेहैं
चायके प्याले
टी. वी. दर्शन बेमतलबके ।   (पृ. १७)

पंक्तियोंमें लय-तुक का समन्वय न होनेसे गेयतत्त्व का पूर्णत: अभाव है ।

इसके अतिरिक्त कविने कतिपय कविताओंमें जीवनकी विषम परिस्थितियोंसे उद्‌भूत संवेदनाको स्वर प्रदान कियाहै, तो कहीं नारी और प्रकृति सौन्दर्य को निहाराहै, और कहीं विन्ध्यांचलकी सोंधी माटीकी भीनी-भीनी गन्धको समेटनेका प्रयास कियाहै । कविने नवगीत और गीतको काव्य-शिल्पकी स्थूल ओढ़नी ओढ़ाकर भोग्य यथार्थको अभिव्यक्ति प्रदान कीहै ।

प्रस्तुत संकलनका शीर्षक पाठकको भ्रममें डालताहै क्योंकि संकलनमें गीत नाम मात्र हैं शेष कविताएं हैं । सशक्त कथ्यके बावजूद शिल्प खुरदुरा है । गीति तत्त्वकी दृष्टिसे कृति स्तरीय नहीं कहीजा सकती। यद्यपि गीतों और कविताओंके साथ बने चित्र भावाभिव्यक्तिकी स्पष्टतामें सहायक हैं । यह कविका सफल प्रयास कहा जायेगा । संकलनमें गीतों और कविताओंका अनुक्रम एक साथ होना चाहियेथा जिससे पाठक असुविधासे बच सकताथा, अनुक्रमका एक साथ न होना खटकताहै । पुस्तकका मूल्य भी अधिक है ।

श्रीराम कथा[1]

कवि : ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज'

समीक्षक : डॉ. रामानन्द शर्मा

'श्री रामकथा' भगवान् रामके आख्यानको लेकर लिखित तथा श्रद्धाभावसे पूरित सुन्दर रचना है जो बालक राम, ताड़का वध, अहल्या उद्धार, श्रीराम विवाह, श्री रामवनगमन, भरतभक्ति, पंचवटी काण्ड, समुद्रविजय, लंकाविजय, भरत मिलाप तथा रामराज्य ग्यारह खण्डोंमें विभक्त, जिन्हें रचयिताने 'भाग' कहा है तथा १४८५ छन्दोंमें पूरित है । 'सुख-दु:ख भव-सागर लहरें / तट राम-नामके ठहरें ।' को बीजमन्त्र मानकर कविने इस कृतिका प्रणयन कियाहै और प्रत्येक खण्डके समापनके समय कथाभागका महत्त्व बताते हुए श्रद्धाभाव व्यक्त कियाहै ।

कविने रामजन्मसे लेकर राज्याभिषेक तक ही नहीं, कुशके राज्याभिषेक और रामके सरयूतटपर कुटीरवास तक का कथानक चुनाहै, पर कृतिके कलेवरको ध्यानमें रखकर अनेक क्षुद्रानुक्षुद्र प्रकरणोंको छोड़ दियाहै अथवा संक्षिप्त उल्लेख मात्र कर दियाहै । कथानककी सरलता और संक्षिप्ततासे सरसता और मौलिकता आहत नहीं हुईहै । कई स्थलोंपर कविने नूतन उद्‌भावनाएं भी कीहैं जो महत्त्वपूर्ण भी हैं तथा मौलिक दृष्टिकी परिचायक भी । उदाहरणार्थ, दशरथकी तीन रानियोंको सत्त्व, रजस् और तमस्‌का प्रतीक माना गया है, ताड़का वधके समय नारीपर आक्रमणविषयक विचार उठाया गयाहै, अहल्याको पाषाण न दिखाकर, पतिपरित्यक्ता होनेके कारण निराभरणा और पाषाणवत् (जड़-मात्र) दिखाया गयाहै, हनुमानको उछलकर नहीं, तैर कर समुद्र पार करते दिखाया गयाहै तथा मेघनादको कुम्भकर्णके युद्ध दिवसमें ही घरसे निकालकर युद्धक्षेत्र में लक्ष्मण द्वारा विजित अंकित किया गयाहै । किष्किन्धा-निवास, सुलोचना-सती, अहिरावण-वध, लंका राक्षरी आदि वृत्तोंको छोड़ दिया गयाहै । कथानककी दृष्टिसे कविने निश्चय ही कुछ रोचक और मौलिक प्रसंग रखेहैं । शिक्षाका महत्त्व, पतिका दायित्व आदि बातेंभी कविने उठायीहैं जो निश्चयही ससार चिन्तन है ।

कविकी दृष्टि मूलत: श्रद्धाभावसे पूरित रहीहै, इसलिए काव्यात्मकता और कलात्मकताकी कुछ उपेक्षा अवश्य हुईहै । कविने न तो प्रकृतिको महत्त्व दियाहै और न रसयोजनाको । रसात्मक स्थलोंकी मार्मिक प्रस्तुति भी कवि नहीं कर पायाहै । 'वस्तुत: भक्त कवि को रामकथाकी प्रस्तुतिही अभीष्ट रहीहै, सरस और सफल प्रबन्ध-सृष्टि नहीं ।

---

[1] प्रका. : एकता प्रकाशन, बी-२-बी-१४, जनकपुरी, नयी दिल्ली-५८ । पृष्ठ : १३६; क्रा. बु.:९१ ।

भाषाकी दृष्टिसे कृति सर्वाधिक निराश करतीहै। लगताहै, कविने भाषाके विषयमें कोई नीति निर्धारित नहीं कीहै और भक्तिभाववश काव्यरचना प्रारम्भ कर दीहै। भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। वैसे गुंजाइश, खातिर, आखिर जैसे दर्जनाधिक अरबी-फारसीके शब्द भी मिल जातेहैं जिन्हें दूषण नहीं कहाजा सकता। कवि ने पंचम वर्णके लिए अनुस्वार न लगाकर, संस्कृत शैलीमें पंचम वर्णही प्रयोग कियाहैं और रङ्ग, सङ्ग, हुङ्कार, जङ्गल, रञ्जित, पञ्चवटी जैसे शब्दरूप प्रयोग कियेहैं। किन्तु सर्वत्र ऐसा ही नहीं है, कहीं लंका लिखा गयाहै तो कहीं लङ्का। कहीं जङ्गल और पञ्चवटी लिखा गया है तो कहीं जंगल और पंचवटी। इस शैलीसे यही सम्भावना कीजानी चाहिये कि कविने तत्सम रूपोंका ही प्रयोग किया होगा अथवा विशुद्धताका ध्यान रखा होगा, लेकिन ऐसा नहीं है। सुरग (स्वर्ग), सादूल (शार्दूल), रिदय (हृदय), प्रक्रिति (प्रकृति), ह्न्स (हंस), रिशि (ऋषि), रिन (ऋण), दक्खन (दक्षिण), सन्न्यासिन (संन्यासिन), सन्सारी (संसारी) आखर (आखिर), शुक्ती (शुक्ति), अहिल्या (अहल्या), ताड़िका (ताड़का), रिचा (ऋचा), ग्यान (ज्ञान), (अज्ञता) जैसे शब्द बहुतायतमें मिलतेहैं। हृदयको सर्वत्र 'रिदय' लिखा गयाहै और ऋ तथा ज्ञ को रि और ग्य। कहीं निमन्त्रण और कैकेई लिखा है तो कहीं निमन्त्रन और कैकई। इसी प्रकार सिंहासन, सिंघासन और सिङ्हासन तथा आशिश, आशिष और आशिस तीन-तीन रूप उपलब्ध होतेहैं। तुक या मात्रा के लिए 'दूकानें' तथा 'पारंगद' (पारंगत) भी उपलब्ध होतेहैं तथा अनुरूप और अश्रु को क्रमश: 'अनुरुप' और 'अश्रू' रूपमें भी लिखा गयाहै। 'सिम्मत' (पृ. ३) तथा 'रयि' (पृ. ३३) तो मेरी बुद्धिके लिए गम्य ही नहीं हुएहैं। जोभी हो, भाषाकी दृष्टिसे कविने किसी निर्धारित नीतिका पालन नहीं कियाहै।

अलंकार योजना सहज और नैसर्गिक है। कवि की भक्तिभावना कदाचित् कृत्रिमताके लिए अवकाश ही नहीं रहने देती। कविने प्रस्तुतके साधनभूत—रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंका ही विशेष प्रयोग कियाहै। कहीं-कहीं यमक, श्लेष आदिका सहज प्रयोगभी मिल जाताहै। मूलत: सहज तथा विषय साधक अलंकारोंका ही कविने प्रयोग किया है। यथा :

१. मन-सर में खिलते रहे, कमल सरिस शुभ धर्म।
२. दशरथ के आंगन हुआ, ग्यान सूर्य विस्तार।
३. चारों बच्चे यों बढ़े, पढ़-सुनकर ज्यों ग्यान।
राखें-सेवें यों पिता, ज्यों खेती किरसान।

छन्दोविधानकी दृष्टिसे कविने गोस्वामीजीको आदर्श मानाहै, पर वैसी शुद्धता, प्रवाहमयता और विविधता यहां उपलब्ध नहीं होती। कविने मुख्यत: हाकलि और दोहा का प्रयोग कियाहै, कहीं-कहीं सोरठा, चौपाई, भरत, सीता, रूपमाला और प्रमाणिका का प्रयोग भी मिल जाताहै। कवि छन्दोयोजनाकी दृष्टिसे लगभग सफल रहाहै। अच्छा यही होता कि भावुक स्थलोंपर भावानुरूप छन्द:परिवर्तन किया जाता तथा निश्चित हाकलि छन्दोंके पश्चात् ही दोहा या सोरठाका सम्पुटन लगाया जाता। कहीं-कहीं छन्दोभंग भी उपलब्ध होतेहैं।

वस्तुत: कृतिकी आत्मा मूलत: भक्तिमयता है और उसमें कवि सफल रहाहै। मनके कोमल बिस्तर पर रामसे विश्राम करनेकी प्रार्थनाके साथ कविका यह प्रास्ताविक कथन :

कथा रामकी गूढ़, इसे सदा समझो कहो।
इस सागरमें बूड़, बार-बार मुक्ता लहो॥

नितांन्त स्वीकार्य और शिरोधार्य है, किन्तु 'रामचरितमानस' अपनी भक्तिभावनाके साथ अविशुद्ध एवं कलात्मक कृति होनेके कारणही प्रत्येक सहृदयका कण्ठहार बन सकीहै—यह ध्यातव्य है। काव्यात्मकता की दृष्टिसे कृतिके संशोधन-संवर्धनकी महती आवश्यकता है। 'अराज' जी की क्षमता और भक्तिमयता सर्वथा निर्विवाद है। हिन्दी जगत् इसका स्वागत करेगा —ऐसी आशा है। ☐

गीतों भरी शाम[१]

कवि : कृष्ण खुल्लर
समीक्षक : डॉ. रामानन्द शर्मा

'गीतों भरी शाम' वयोवृद्ध साहित्यकार श्रीकृष्ण खुल्लरकी कविता, गीत और शायरीका नवीनतम संग्रह है। नामकरणके विषयमें कविने कहाहै : ये गीत

---

[१] प्रका. : समकालीन प्रकाशन, नयी दिल्ली—५५।
पृष्ठ : ९६; डिमा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

मेरे जीवनकी संध्यामें ऐसी लालिमा है जो मेरे अन्तःकरण तक को ज्योतिर्मय बना रहीहै, इसीलिए मैंने इस पुस्तकको 'गीतों भरी शाम' की संज्ञा दीहै।" वस्तुतः ये गीत जीवन-संध्याके हैं, पर इसमें केवल गीत ही नहीं हैं। हां, प्रमुखता उनकी अवश्य है और महत्त्वपूर्ण भी वही हैं।

संग्रहके गीत मुख्यतः दो प्रकारके हैं : बृहत् और लघु। बृहत् गीतोंका कलेवर प्रायः पांच-छः पृष्ठोंतक फैला है। इन गीतोंमें कविका प्रतिपाद्य (वर्ण्य) बिखर-सा गयाहै, फलतः अनुभूतिकी गहनता और आकुलता आहत हुईहै। उदाहरणार्थ 'धूम्रपान' शीर्षक में अनेकानेक भावचित्र प्रस्तुत किये गयेहैं जिनमें अन्तरंगताकी कमी है, फलतः गीत वैचारिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण होकर भी प्रभविष्णु नहीं हो पायाहै। 'जिन्दगीके तीन रूप', 'गीतोंकी गंगा' आदिकी स्थिति भी ऐसी ही है। लघु गीत प्रायः एक पृष्ठसे कम आकारवाले हैं और वे भाव और भाषा दोनों दृष्टियोंसे सक्षम और सप्राण बन पड़ेहैं। इनकी भावधारा भी संयत और सम्बद्ध है। ये गीत अत्यधिक सफल बन पड़ेहैं। कविताएं प्रायः निष्प्रभ हैं और शायरी साधारण। लगताहै, कविने हृदयसे नहीं, बुद्धिसे प्रेरित होकर लिखीहैं। सम्पूर्ण काव्यका महत्त्वपूर्ण पक्ष संगीतात्मकता है। कविने सर्वत्र लयका विशेष ध्यान रखाहै, फलतः छन्दोयोजना सर्वत्र अनवद्य है। कहींभी मात्रा, लय, गति-यतिविषयक दूषण नहीं दिखायी देता। हां, काव्यात्मकताका किञ्चित् अभाव अवश्य है। शब्द-विधान और आलंकारिकताको कविने महत्त्व नहीं दिया है।

भाषाकी दृष्टिसे स्थिति शोचनीय अवश्य है। पजाबी मूलके होनेके कारण भाषामें अरबी-फारसी तथा पंजाबी शब्दोंका होना तो स्वाभाविक ही है और इसे दोष भी नहीं मानाजा सकता, पर आत्म स्वाभिमान (स्वाभिमानमें ही आत्मवाचक 'स्व' उपसर्ग विद्यमान है), आध्यात्म (अध्यात्म), भूख (भूक), भीढ़ (भीड़), गरुढ़ (गरुड़), तच्छुक (तक्षक), उमढ़ते (उमड़ते) जैसे शब्द बहुत उपलब्ध होतेहैं। कहीं 'सत्यमेव जयते' जैसे शब्दोंको गीतमें बलात् रखा गयाहैं। प्रणयको सर्वत्र 'पुण्य' ही लिखा गयाहैं। मुद्रणकी त्रुटियां भी हैं।

कुल मिलकर, कविको प्रेमगीतों और राष्ट्रीय भाव-प्रधान गीतोंमें विशेष सफलता प्राप्त हुईहैं। लय और छन्दोविधानपर कविको पूर्ण अधिकार हैं। संग्रह पठनीय हैं और कविसे प्रेमगीतोंके नवीन संग्रहकी अपेक्षा हैं। आशा हैं, वे अपनी क्षमतासे मां-भारतीके भण्डारकी अभिवृद्धि करेंगे। □

व्यक्ति : जीवन

जाने पहचाने लोग[१]

लेखक : हरिशकर परसाई

समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

'जाने पहचाने लोग' श्री हरिशंकर परसाईके संस्मरणात्मक लेखोंका संग्रह है, जिसमें साहित्य-जगत् के समकालीन प्रसिद्ध व्यक्तियोंके शब्द-चित्रोंके साथ परसाईजीने अपने सम्पर्कमें आनेवाले कुछ ऐसे लोगोंके भी संस्मरण प्रस्तुत कियेहैं, जो समाजकी दृष्टिमें बड़े लोग भले ही न हों पर जिन्होंने अपनी चारित्रिक विशेषताओंसे उन्हें प्रभावित कियाहै। पुस्तककी भूमिका 'मेरे समकालीन' में इस संबंधमें अपनी मान्यताओंको स्पष्ट करते हुए वे लिखतेहैं—

---

[१] प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२५; क्रा. ९१; मूल्य : ५०.०० रु.।

'जिस पानवालेके ठेलेपर मैं लगातार २५-३० वर्ष रोज बैठता रहाहूं, वह पानवाला मित्रभी मेरा समकालीन है। अपने मुहल्लेका वह रिक्शावाला जो मुझे २५-३० साल ढोता रहाहै, वह भी मेरा समकालीन है। जिस नाईसे ३० साल दाढ़ी बनवाता रहा, बाल कटवाता रहा और घंटों गपशप करता रहा, वहभी मेरा समकालीन है। मेरे 'घर' में काम करनेवाला ढीमर···वह भी मेरा समकालीन है।'

परसाईजीने जिन प्रसिद्ध लेखकोंको निकटसे देखा, जाना, परखा तथा जिन्हें 'जाने-पहचाने लोग' में स्थान दियाहै, उनमें प्रमुख हैं— सर्वश्री श्रीकांत वर्मा, केशवप्रसाद पाठक, रामविलास शर्मा, पं. रामेश्वरप्रसाद गुरु, शमशेर बहादुर सिंह, डॉ. नामवरसिंह तथा पं. माखन लाल चतुर्वेदी। इनसे संबद्ध शब्द-चित्रोंकी विशेषता है कि इनमें संबद्ध व्यक्तिके व्यक्तित्व तथा कृतित्वको सहज ढंगसे उकेरा गयाहै। पुस्तककी भूमिकामें लेखक की जो व्यंग्यपूर्ण शैली उभरीहै, शब्द-चित्रों तक पहुंचते-पहुंचते उसकी दिशा बदल गयीहैं। भूमिकामें पं. माखनलाल चतुर्वेदीपर लेखककी टिप्पणी है— "···परम श्रद्धेय पंडित माखनलाल चतुर्वेदीको पूरी नाटकीयताके साथ मंचपर लाया गया। दोनों तरफसे दो आदमी उन्हें सहारा दे रहेथे। माखनलाल जीको अभ्यास था कि कब और कैसे बीमार दिखना, कितने पाँव डगमगाना, कितने हाथ कंपाना, कितनी गर्दन डुलाना, चेहरेपर कितनी पीड़ा लाना।" पर 'पंडित माखनलाल चतुर्वेदी' शब्द-चित्रमें उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्वकी इन शब्दोंमें निरुपित किया गयाहै —"मझोले कद, गोर वर्ण, चिन्तनशील आँखों और लंबी नुकीली नाकवाले इस व्यक्तित्वमें एक गजब कोमलता तथा दबंगपन था। यह आदमी जब मुंह खोलता या कलम चलाता तो लगता कि या तो ज्वालामुखी फूट पड़ा है या नर्मदाकी शीतल धार बह रहीहै। माखनलाल जी जैसा बोलतेथे, वैसाही लिखतेथे। उनका भाषण भी काव्यमय होताथा। ऐसे व्यक्तिको कलमके धनी या वाणीके धनी कहनेसे काम नहीं चलता। शायद कोई शब्द-या शब्द-समूह उन्हें व्याख्यायित नहीं कर सकता।' 'कल जो हमने बातें कीथीं', 'खूल प्याली है मगर खाली है, जिसके कानोंमें हवा भर गयी' शब्द-चित्रोंमें क्रमश: श्रीकांत वर्मा, केशवप्रसाद पाठक तथा प्रभातकुमार तिवारी 'प्रभात' के जीवनके मर्मस्पर्शी क्षणों तथा उनके कृतित्व पर संक्षेपमें प्रकाश डाला गयाहै। पं. रामेश्वरप्रसाद गुरु विषयक शब्द चित्र श्रद्धासे पूरित है।

शमशेरबहादुर सिंह तथा डॉ. नामवरसिंह विषयक शब्द-चित्र आत्मीयतासे परिपूर्ण हैं। डॉ. नामवरसिंहकी समीक्षा-पद्धति तथा भाषाकी प्रशंसा लेखकने इन शब्दोंमें की है—"नामवरसिंहकी समीक्षा तथा सैद्धांतिक व्याख्यामें रचनात्मक साहित्य जैसा लालित्य है। लगताहै, कोई ललित गद्य पढ़ रहेहैं। आमतौरपर समीक्षाकी भाषा शुष्क और उबाऊ होती है, पर नामवरजीकी भाषा और शैली बहुत प्रभावी है। उनकी भाषामें विलक्षण 'नुसिडिटी' है। कटाक्ष है, व्यंग्योक्ति है, वक्रोक्ति है, व्याज-स्तुति और व्याज-निंदा है और 'विट' है।'

अन्य शब्द-चित्रोंमें न्यायमूर्ति ब्रजकिशोर चतुर्वेदीके दबंग व्यक्तित्व, 'नवीन दुनियाँ' के संपादक पं. मुंदर शर्माके व्यावहारिक कौशल, डाक्टर जार्ज डी. सिल्वाके वात्सल्य-भाव तथा शुभचिन्तक प्रेसके मालिक बाबू बालमुकुंद गुप्तके व्यापारिक दायित्वके साथ-साथ पत्रिका 'वसुधा'के मुद्रणके प्रति उदार भावका समवेत रूप देखनेको मिलताहै। होटलके नौकर भोलारामकी जीवंतता तथा मस्ती और चिरऊ महाराजकी निष्ठा एवं समर्पित जीवनभी पाठकोंपर अपना प्रभाव छोड़ते हैं।

'जाने-पहचाने लोग' के शब्द-चित्र अपनी विशेष भाव-भंगिमा तथा शैलीकी दृष्टिसे अद्वितीय हैं। हिंदी के संस्मरण-साहित्यमें उनका अपना विशिष्ट स्थान रहेगा।

दो तरहके लोग[1]

लेखिका : इन्दिरा मिश्र

समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला

"इन्दिरा मिश्र जैसी मार्मिक कवयित्री और प्रखर लेखिकाकी यह पुस्तक एक साधारण यात्रा-विवरण न होकर विचारपूर्ण और काव्यात्मक कृति है जो आपके भीतर अनेक प्रश्नोंको जन्म देगी, गहरे द्वन्द्वका अनुभव

---

[1] प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ११४; डिमा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु.।

कराते हुए सोचकी नयी मंजिलपर ले जायेगी और नये जीवनानुभवका सुख तो देगीही ।"

इन्दिरा मिश्रकी इस 'दो तरहके लोग शीर्षक यात्रा-विवरण संबंधी कृतिसे गुजरते हुए फ्लैपपर प्रकाशित यह वक्तव्य बार-बार दिमागमें कौंध-कौंध जाताहै । वस्तुतः यह यात्रा-विवरण पाश्चात्य और पौर्वात्य (भारतीय)—दो सभ्यताओं-संस्कृतियोंकी विशिष्टताओंको तो एक चलचित्रकी भांति सामने लाता ही है, काव्यका आस्वादभी प्रदान करताहै और विचारों को झकझोरताभी है ।

इन्दिरा मिश्र अक्टूबर ८६ में यार्क विश्वविद्यालयमें कोलंबो प्लेनके अंतर्गत चल रहे कोर्सका प्रशिक्षण प्राप्त करनेके लिए इंग्लैंड गयीथी । वहां वे लगभग वर्ष भर रहीं । उसी दौरान इंग्लैंड और यूरोप के जन-जीवन और वहांकी सभ्यता-संस्कृतिके जिस रूपसे अपने अनुभवात्मक धरातलपर वे परिचित हुईं, उसीका शब्द-चित्र अपने इस यात्रा-विवरणमें उन्होंने प्रस्तुत कियाहै । स्पष्ट है, जब किसी अन्य सभ्यता और संस्कृतिसे किसी विचारशील और सांस्कृतिक चेतना-सम्पन्न व्यक्तिका आमना-सामना होताहै, तो अपने देश व भूमिकी संस्कृतिका रंग-रूप भी उसके मानसमें उभरता रहताहै और उसका तुलनात्मक विश्लेषण करनेके लिए वह विवश-सा हो जाताहै ।

लेखिकाने इंग्लैंड व यूरोपमें जो कुछ अपनी आंखों देखा और अनुभव किया, उससे वे बहुत प्रभावित हैं, इसमें संदेह नहीं । उन्होंने महसूस किया कि यूरोपकी सभ्यताका अपना अनुशासन है । अपने दायित्वको बखूबी जानताभी है और निभाताभी है । अपने कामके प्रति वहांका हर व्यक्ति सजग और निष्ठावान् है । लेखिकाने वहां एक बार भी बिजली गुल होते, पानी आना बंद होते या किसी नलको ऊंघते नहीं देखा । वहां शारीरिक परिश्रम करनेवालोंका भी उतना सम्मान है, जितना मानसिक कार्य करनेवाले का । किसीभी व्यक्तिको रास्ता पूछनेके लिए, रेलमें जगह पानेके लिए, दुकान खोलनेके लिए किसीकी जेब गर्म नहीं करनी पड़ती । यदि किसी दुकानसे आपने कोई चीज खरीदीहै, और किसी कारण उसे बदलनाहै तो आप उसे उस दुकानके मालिकके पास ले जाइये और रसीद दिखाकर सही चीज़ या रिफंड ले लीजिये । ऐसी व्यवस्था भला किसे पसंद नहीं आयेगी ? कौन उससे पूर्ण आश्वस्त होकर गहरी नींद नहीं सोयेगा ? भारतीय व्यवस्थाका रूप इसका विलोम ही माना जायेगा । लेखिकाके मनके किसी कोने को यह बात बराबर मथती रहतीहै । यहाँ (भारत) की गरीबीभी लेखिकाके मनको खिन्न करतीहै और मानतीहै कि 'हां, यह गरीबीही है जिसने कई सदियोंसे हमारा पीछा नहीं छोड़ाहै ।' लेकिन इस दर्दके साथ लेखिकाको इस बातका गर्व भी है कि यह देश संतों, योगियों, कवियों और दार्शनिकोंका देश भी है । बुद्ध, अरविंद और गांधी जैसी महान् विभूतियोंने इस देश को गौरवान्वित कियाहै । साथही, लेखिकाने यूरोपीय सभ्यताकी उन दुर्बलताओंका भी बड़े तटस्थ भावसे वर्णन कियाहै, जिसने उसे एक प्रकारसे आत्मकेंद्रित और स्वार्थ-प्रवणभी बनायाहै ।

इस कृतिकी मेरी दृष्टिमें, सबसे बड़ी विशेषता है, लेखिकाकी चित्रात्मक भाषा । इस कृतिमें स्थान-स्थान पर ऐसे विवरण मिलतेहैं, जो आंखोंके सामने अपनी संपूर्णतामें उभर आतेहैं । कृतिके अंतमें, लेखिकाने लिखाहै :

तुम कभी तो मिलोगे इंग्लैंड
मैं तुम्हें गलेमें हार-सा
पहन लूंगी ।
अपनी आंखोंसे
तुम्हें सबको दिखाऊंगी ।

और, निस्संदेह, इस कृतिके माध्यमसे लेखिका इंग्लैंड को 'अपनी आंखोंसे' हम सबको दिखानेमें समर्थ हुईहै ।

जो लोग इंग्लैंड या यूरोपकी सभ्यता संस्कृति तथा जीवनके विविध पहलुओंसे परिचित होना चाहते हैं, बिना वहां गये अपनी आंखोंसे उसके आचार-व्यवहार और जीवन-प्रणालीको देखना चाहतेहैं, उन्हें यह यात्रा विवरण जरूर पढ़ना चाहिये । ☐

पत्र-व्यवहारमें ग्राहक संख्याका
उल्लेख करना न भूलें.

हिन्दी : बढ़ते चरण

हिन्दीको हैदराबादकी देन[1]

लेखिका : डॉ. एस. पद्‌मा

समीक्षक : डॉ चन्द्रप्रकाश आर्य

दक्षिण भारतमें हिन्दीका प्रचार-प्रसार प्रकारान्तरसे राष्ट्र-सेवाका इतिहास है । दक्षिणके जिन राज्यों में हिन्दीका प्रसार हुआ, उनमें आंध्र प्रदेश अग्रगण्य हैं । आंध्र प्रदेशमें हिन्दीके विकासमें हैंदराबादका विशिष्ट स्थान हैं । लगभग तीन दशक पूर्व श्री पी. के. केशवन् नायरने अपने 'दक्षिण भारतके हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास' नामक ग्रंथमें इसका संक्षेपमें वर्णन कियाहैं । डॉ. एस. पद्‌माका प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध 'हिन्दीको हैंदराबादकी देन' इसी दिशामें एक प्रयास हैं, जिसमें हैदराबादमें हिन्दीके विकासपर विस्तार से प्रकाश डाला गयाहैं । प्रबंधका प्रणयन एवं प्रकाशन हैंदराबादके चार सौ वर्षके उपलक्ष्यमें हुआहैं ।

समीक्ष्य शोध-प्रबंध पांच अध्यायोंमें विभक्त हैं । 'पीठिका' शीर्षक प्रथम अध्यायमें लेखिकाने हैंदराबाद की भौगोलिक स्थिति, चालुक्य, राष्ट्रकूट और यादव वंशके समय भाषाओंकी स्थिति, मुस्लिम शासकों तथा उत्तर भारतसे आंध्र पहुंचनेवाली कुछ जातियोंके इतिहासका संक्षेपमें वर्णन कियाहैं । कुतुबशाही वंशके शासकों तथा लम्बाड़ा, पारधी, सूर्यवंशी, लोधे एवं कायस्थ जातियोंने हिन्दीके प्रसारमें उल्लेखनीय योगदान दिया ।

पुस्तकके द्वितीय अध्याय 'हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी' में डॉ. पद्‌माका मत हैं कि हैंदराबादमें हिन्दीके लिए हिन्दवी, दक्खिनी, गूजरी, तुर्की, भाषा आदि शब्दोंका प्रयोग हुआहैं । उन्होंने तर्कोंके आधारपर सिद्ध कियाहैं कि दक्खिनी (दखनी) हिन्दी और उर्दू में पर्याप्त अन्तर हैं ।

प्रबंधके 'दक्खिनी युग' शीर्षक तृतीय अध्यायमें लेखिकाका विचार हैं कि मुस्लिम बादशाहोंने दक्खिनी को प्रोत्साहन दिया । मुस्लिम कवियोंने यद्यपि कई स्थानीय शब्दों और भारतीय अलंकारोंको काव्यमें स्थान दिया तथापि उन्होंने सामान्यत: छंद और शब्द अरबी-फारसीके अपनाये और लिपि अरबी रखी। दक्खिनी हिन्दीके चार केन्द्र थे--गुलबर्गा, बीजापुर, औरंगाबाद और गोलकुण्डा । डॉ. पद्‌माने गोलकुण्डाके साहित्यकारोंपर विशेष रूपसे ध्यान केन्द्रित कियाहैं। दक्खिनीके लोक-साहित्यका संक्षिप्त वर्णन रोचक हैं । दक्खिनी खड़ी बोली साहित्यका विभाजन इस प्रकार किया गयाहैं—धार्मिक और नैतिक साहित्य, प्रशस्ति काव्य, प्रतीकात्मक कथा-काव्य, नख-शिख वर्णन, प्रेम और शृंगार काव्य, वीर काव्य तथा लोक साहित्य ।

समीक्ष्य कृतिके चतुर्थ अध्याय 'आधुनिक युग' में पिछले बयालीस वर्षोंमें हैंदराबादमें हिन्दीके विकास पर विस्तारसे प्रकाश डाला गयाहैं । डॉ. पद्‌माका मत हैं कि हैंदराबादमें हिन्दीकी उल्लेखनीय प्रगति पुलिस कार्यवाही १७ सितम्बर, १९४८ ई. के पश्चात् आरम्भ हुई । उन्होंने हैदराबादमें हिन्दीके विकासको तीन भागों— संक्रांति काल, संघर्ष काल तथा निर्माण कालमें विभाजित कियाहै । संक्रांति कालके कवियोंमें मौलाना गुलाम अली, आजाद बिलग्रामी, लक्ष्मीनारायण, दाग इकबाल, गिरधारीप्रसाद, शीतलप्रसाद, मुहम्मद अली रजा आदि प्रमुख हैं। संघर्ष कालमें नव-स्थापित उस्मानिया विश्वविद्यालयमें हिन्दीको स्थान नहीं मिल

---

[1] **प्रका. : श्री निकेतन प्रकाशन, १०-४१/१, न्यू-गड्डी अन्नाराम, हैदराबाद—५०००६६०। पृष्ठ : ८७; डिमा. ९१; मूल्य : ६०.०० रु. ।**

सका। इस कालमें आर्यसमाजका हिन्दीके प्रचार-प्रसार में पर्याप्त योगदान रहा। निर्माण कालमें १९४९ ई. में उस्मानिया विश्वविद्यालयमें हिन्दीमें एम.ए. कक्षाएं आरम्भ हुईं। अबतक उस्मानिया विश्वविद्यालयसे १३७ शोधार्थियों तथा हैदराबाद विश्वविद्यालयसे २० शोधार्थियोंने पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कीहैं, जिसकी क्रमवार तालिका लेखिकाने प्रस्तुत कीहै। डॉ. पद्माने उस्मानिया विश्वविद्यालयके हिन्दी प्राध्यापकों, हैदराबादकी हिन्दीकी प्रचारक संस्थाओं, महाविद्यालयों एवं विद्यालयों, पुस्तकालयों, पत्रकारिता, कार्यकर्त्ताओं तथा साहित्यकारोंका भी संक्षिप्त विवरण दियाहैं। पत्रकारिताके अन्तर्गत उल्लिखित 'कल्पना' पत्रिकापर किंचित् विस्तारसे प्रकाश डालाजा सकताथा।

पुस्तकके पंचम अध्याय 'उपसंहार' के अन्तर्गत प्रबंधका सार प्रस्तुत किया गयाहैं। हिन्दीको हैदराबाद की देनकी दृष्टिसे पुस्तकका महत्त्व असंदिग्ध हैं। लेखिकाने यत्र-तत्र दक्खिनीकी संदर्भित पुस्तकोंकी पृष्ठ संख्याका उल्लेख नहीं कियाहैं। प्रबंधके अन्तमें सहायक ग्रंथ-सूचीका अभाव खटकताहैं।

मत-अभिमत

याद हो कि न याद हो

'प्रकर' दिसम्बर ९२ अंकमें डॉ. काशीनाथ सिंह की उपर्युक्त कृतिकी समीक्षा है। समीक्षक डॉ. सेठिया ने सही लिखाहै कि जिन्होंने काशीनाथ सिंहकी कहानियां नहीं पढ़ी, वे भी यदि एक बार इन्हें पढ़ लेंगे तो फिर बार-बार पढ़ेंगे।

हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा नामवर सिंहके संस्मरण ऐसेही है। त्रिलोचनका भी संस्मरण बड़ी गहरी आत्मीयताके होते हुएभी पर्याप्त तटस्थताके साथ लिखा गयाहै। 'किस्सा साढ़े चार यार' में बहुत कुछ पाठकीय मतलबका नहीं है, नितान्त सामान्य और निजी बातों की चर्चा है, परन्तु बेलाग बातचीत और बिना किसी रूरियायतके लिखी गयीहैं। हजारीप्रसाद द्विवेदीका व्यक्तित्व मिथकीय आकर्षण कुतूहल और घटनाओं और व्याख्याओंसे भरपूर होकर उभराहै होल्कर हाऊस में द्विवेदीमें। एक ओर काशीनाथ सिंह जैसे शिष्योंका महाकाव्यके नायकोचित स्वागत सम्मानका भाव है तो दूसरी ओर हिन्दी विभागके कुछ वरिष्ठ गरिष्ठ महानुभावों और उनके शिष्योंका तिरस्कार उपेक्षा ईर्ष्या द्वेषजनित व्यवहारभी व्यक्त हुआहै जिसे द्विवेदीजीको काफी समय झेलना पड़ाहै। यही हाल नामवरजीकी असाधारण अध्ययनप्रियता भाषण वाद-विवादप्रियता और साहित्यिक एवं आजीविकाके लिए किये जानेवाले संघर्षमें हैं। शायद ही कविता कहानी और आलोचना का कोई ऐसा प्रसंग हो पिछले बीस-पच्चीस वर्षका, जिसके केन्द्रमें नामवर न हों या उन्हें न घसीट लिया हो। फिरभी अपने बौद्धिक वर्चस्व प्रचंड तार्किक मुद्रा और अद्यतन जानकारीके कारण नामवरजी किसीके लिए भी उपेक्षणीय नहीं रहेहैं। नामवरजीका यह व्यक्तित्व भलीप्रकार उभराहै, परन्तु 'देख तमाशा लकड़ीका' में क्या है जिसे काशीनाथ सिंहने उभारना चाहाहै। शिवके त्रिशूलपर टिकी तीन लोकसे न्यारी इस नगरीके सांस्कृतिक वैभव, धार्मिक ऐतिहासिक पुरातात्त्विक वर्चस्वको केन्द्रमे न रखकर निठल्ले ठलुए अक्खड़-फक्खड़ कुछ काशीवासियोंकी बात-बातमें और बिना बात गाली-गलौच करनेवाले शिवके इन मलंग गणोंकी अकथनीय अवर्णनीय गालियां सुनानेके पीछे कौन-सी ऐसी सांस्कृतिक आंचलिक क्षेत्रीय या निजी विशेषता थी जिसे अपने पूरे फूहड़पन अश्लीलता अवांछनीयताको डंकेकी चोट दिनदहाड़े बिना किसी अपराधबोधके एक प्राध्यापक होते हुए काशीनाथ सिंह ने लिखाहै। इसका कोई उत्तर उनके या पुस्तकके समीक्षकके पास हो तो कृपया उसेभी छापिये हिन्दी पाठकोंके कल्याण हेतु।

—कृष्णचन्द्र गुप्त (डा.), (सनातनधर्म कालेज),
१८६/१२ आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१.

लेखक : समीक्षक

☐ डॉ. उत्तम एल. पटेल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, श्री वनराज आर्ट्स एण्ड कामर्स कालेज, धरमपुर-३९६०५०.

☐ श्री पं. काशीराम जी शर्मा, बी-३/३२, नाबार्ड नगर, ठाकुर संकुल, कांदीवली (पूर्व), मुम्बई-४००१०१.

☐ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, १८६/१२, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१.

☐ प्रो. घनश्याम शलभ, ११ ख, रवींन्द्र नगर, उदयपुर-३१३००१.

☐ डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य, हिन्दी विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ. प्र.).

☐ डॉ. डी. डी. तिवारी, (उपाचार्य हिन्दी), कृष्णापुर महल, तल्लीताल, नैनीताल-२६३००२.

☐ डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, २३ आजाद मार्ग, शाजापुर (म. प्र.).

☐ डॉ. भगीरथ बड़ोले, २८६ विवेकानन्द कालोनी, फ्रीगंज, उज्जैन-४५६००१.

☐ डॉ. भानुदेव शुक्ल, ११ लवकुश अपार्टमैंट्म, ईदगाह हिल्स, भोपाल (म. प्र.)-४६२००१.

☐ डॉ योगेन्द्रनाथ शर्मा, प्राचार्य, बी. एस. एम. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूड़की-२४७६६७.

☐ डॉ रामानन्द शर्मा, बी-९, जिगर विहार मुरादाबाद-२४४००१.

☐ डॉ. रामस्वरूप आर्य, १४ बी, नयी बस्ती, बिजनौर-२४६७०१.

☐ डॉ. वीरेन्द्र सिंह, ५ झ १५ जवाहरनगर, जयपुर-३०२००४.

☐ डॉ. सुधांशुकुमार नायक, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, रमादेवी महिला महाविद्यालय, भुवनेश्वर-७५१००७.

विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका

'प्रकर'

शुल्क विवरण

☐	**प्रस्तुत अंक**		७ ०० रु.
☐	**वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) :**	संस्था : ७५.०० रु.;	व्यक्ति : ६५.०० रु.
☐	**आजीवन सदस्यता :**	सस्था : ७५१.०० रु.;	व्यक्ति : ५०१ ०० रु.
☐	**विदेशोंमें समुद्री डाकसे** एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें		२००.०० रु
	विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए)—एक वर्षके लिए :		४८०.०० रु.

☐ दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि '**प्रकर**' के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' : फरवरी'९३ : पंजीकरण संख्या [illegible] : डाक पंजीकरण संख्या : डीएल : १९००६/९३

आगामी अंक

स्वर : विसंवादी

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको नव विक्रम संवत्का प्रवर्तन होगा और विक्रमाब्द २०५० का समारम्भ होगा। इस अवसरपर 'प्रकर' में भारतीय भाषाओं—हिन्दी सहित—के वाङ्मय, विशेषत: साहित्य और इतिहास इस प्रकार वामनसे वामनतर होता गयाहै कि आजके भारतीय साहित्यकी किसी 'अस्मिता' की चर्चा नहीं कीजा सकती। वह असाधारण रूपसे यूरोपीय और मार्क्सवादी अध्ययनोंकी पुनरावृत्ति और अन्धानुवृत्तिका साहित्य बन गया है। ऐसे व्यक्तित्वहीन साहित्यके सम्बन्धमें 'प्रकर' की ओरसे **'स्वर : विसंवादी'** में चर्चा प्रारम्भ की जायेगी।

हिन्दी व्याकरण मीमांसा

अबतक की हिन्दी व्याकरण मीमांसामें सत्व प्रधान शब्दोंको 'नाम' कहा गयाहै और उनमें किसी क्रियाके साथ कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि सम्बन्ध स्थापित करनेकी क्षमता होतीहैं। 'नाम' कोटिके शब्द रूप-रचनाके आधार पर परस्थानिक ग्रहणकर सर्वनामों और संज्ञाओंमें विभक्त कियाजा सकताहै। इसी रूप-रचनाके आधारपर संज्ञाओंका अवान्तर भद विशेषण, विशेषणका अवान्तर भेद संख्याबोधक भी बतायाजा सकताहै। इस रूप रचनात्मक शब्दभेदकी तो उपयोगिता है, पर केवल बौद्धिक व्यायामके रूपमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, संख्यावाचकके अनेक भेद-प्रभेद करते जानेका कोई लाभ प्रतीत नहीं होता। लेखक हैं **: पं. काशीराम शर्मा।**

नवम दशककी हिन्दी आलोचना

उपर्युक्त शीर्षक लेखमालाके अन्तर्गत अबतक मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय, मिथकीय, संरचनावादी, सौन्दर्य शास्त्रीय, शैली वैज्ञानिक, अन्त:अनुशासनीय दृष्टि और उसके अन्तर्गत "बीज-शब्दों' (की-वर्ड्स) या पारिभाषिक शब्दोंके ऐतिहासिक अध्ययन, कथा-साहित्यकी प्रवृत्तियों और इनसे जुड़ी शोधकृतियोंकी चर्चा हुईहै। इस लेखमालाके अन्तिम अशमें नाट्य-समीक्षाओं और समीक्षात्मक पत्र-पत्रिकाओंके योगदानपर चर्चा प्रस्तुत कीजा रहीहै। लेखक हैं : डॉ. वीरेन्द्र सिंह।

इतिहास : यूरोपीय चिन्तनसे आहत इतिहास

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्ने हिन्दीमें 'इतिहास' नामसे एक पत्रिका प्रकाशित कीहै, जिसकी सामग्री १९७४ में प्रकाशित परिषद्की अंग्रेजी पत्रिका 'इण्डियन हिस्टोरिकल रिव्यू' से ली गयीहै। सम्भव है कि १९७४ से पूर्व और अबतक भारतीय इतिहास स्थिर रहाहो, वैचारिक स्तरपर कोई नयी शोध न हुई हो, परन्तु ऐसी सामग्रीभी सरकारी व्ययसे प्रचारार्थ प्रकाशित की गयीहै जिसकी मूल स्थापनाएं खण्डित हो चुकी हैं। इस पत्रिकाके सम्पादक हैं **विवेकानन्द झा।** समीक्षक हैं **: भगवान सिंह।**

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी,
चमेलिया रोड, दिल्ली-६
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७. दूरभाष : ७११३७६३.

प्रकर

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya

चैत्र : २०५० [विक्रमाब्द] :: मार्च : १९९३ [ईस्वी]

25
3

26/3/93

समाज शास्त्र
उपन्यास
कहानी
कविता
दर्शन शास्त्र
विज्ञान
जीवन और साहित्य
नाटक
भाषा विज्ञान
अर्थशास्त्र
इतिहास
दर्शन शास्त्र
जीवन और साहित्य
अर्थशास्त्र
इतिहास

नवसंवत्सर
की
मंगलकामनाएं

अंक सामग्री

स्वर : विसंवादी

भारतीय साहित्य-वाङ्मयमें अनुकृति १
पत्र-पत्रिकाएँ ४
इतिहास—सम्पादक : विवेकानन्द झा ५ भगवान सिंह
समकालीन सृजन-१४—शंभुनाथ ६ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
ब्रज गरिमा—सम्पादक : डॉ. भगवान सहाय पचौरी १० डॉ. प्रेम दुबे

सिंहावलोकन

नवम दशककी हिन्दी आलोचना-३ १२ डॉ. वीरेन्द्र सिंह

अध्ययन-अनुशीलन

रचना : अस्मिताकी तलाश—घनश्याम शलभ १८ डॉ. मूलचन्द सेठिया
छायावादोत्तर हिन्दी कविता—डॉ. द्वारकाप्रसाद ब. सांचीहर २० डॉ. वीरेन्द्र सिंह
छायावादी काव्यमें संगीत तत्त्व—डॉ. कौशलनन्दन गोस्वामी २२ श्री घनश्याम शलभ

काव्य

धौलाधार—शान्ताकुमार, सन्तोष शैलजा २४ डॉ. प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय
तब चारुवाक बोले—मदनमोहन तरुण २७ डॉ. पारुकान्त देसाई
चितकबरी—मनोज सोनकर ३० डॉ. वीरेन्द्र सिंह
अनलप्रकाश—गुप्त बन्धु ३३ डॉ. हरिद्वारीलाल शर्मा

उपन्यास

बेगम हजरत महल—सुरेन्द्रकान्त ३४ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
तीसरा प्रहर—प्रह्लाद तिवारी ३६ डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर

कहानी

आयेंगे अच्छे दिन भी—स्वयंप्रकाश ३८ डॉ. हरदयाल

चिन्तन और जड़ता

भारतके जलते प्रश्न—ओशो ३९ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

हिन्दी व्याकरण : नयी दृष्टि

हिन्दी व्याकरण मीमांसा—७(१) ४२ पं. काशीराम शर्मा

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

प्रकर [अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षाको मासिक-पत्रिका]

ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २५ अंक : ३ चैत्र : २०५० [विक्रमाब्द] मार्च : १९९३ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

भारतीय साहित्य-वाङ्मयमें अनुकृति

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको नव विक्रम संवत् २०५० का समारम्भ हो रहाहै, यही विक्रमाब्द कहलाता है। इस नव वर्षके प्रवर्तनके अवसरपर 'प्रकर' की ओरसे शुभ और मंगलमय कामनाएं प्रेषित करते हैं। हमारी ये कामनाएं मात्र भौतिक स्तर तक सीमिति नहीं हैं, अपितु वैचारिक-चिन्तनात्मक और चेतनात्मक स्तरके लिए भी हैं, क्योंकि इन्हीं स्तरोंके संकटका ही अधिकाधिक विस्तार हो रहाहै। इसी मंगलमयी कामना और भावनासे प्रेरित होकर हम निरन्तर मुख्य रूपसे साहित्यिक और प्रसंगवश राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संकट की चर्चा करते आ रहेहैं। जिस प्रबलता विस्तार और गहराईके साथ हिन्दी सहित भारतीय भाषाएं, साहित्य एवं सम्पूर्ण वाङ्मय वामनसे वामनतर होते गयेहैं, उसमें भारतीय साहित्य-वाङ्मयके नव-वामनावतार द्वारा तीन पगोंमें विश्व-साहित्यको अपनेमें समा लेनेकी तो कल्पना कल्पान्तकी प्रतीक्षा होगी। समग्र भारतीय जीवनमें अवतरित होती सर्वभक्षी अनुकृति-वृत्ति भारतीय साहित्य, वाङ्मय और इतिहासको ही शून्यमें परिवर्तित करनेकी दानवाकृति धारण कर गयीहै। आजकी प्रचलित परिभाषिक शब्दावलीमें कहा जाये तो यह प्राचीनता-नव्यता, परम्परा- आधुनिकताका द्वन्द्व है। वस्तुत: नव्यता और आधुनिकताके रूप-सौन्दर्यपर मुग्ध होकर प्राचीनता और परम्पराको प्रताड़ित कर उसे जीवन-पद्धतिसे ही विस्थापितकर, वैचारिकता, चिन्तनात्मकता और चेतनात्मक रूपसे विस्थापित कर मात्र नव्यता और आधुनिकताको ओढ़कर युगानुकूल प्रगतिशीलताका प्रदर्शन किया जाताहै, तो वह 'अनुकृति' ही होतीहै, क्योंकि उसमें सर्जनात्मक कृतित्व और विकासका जभाव होता है। भारतीय साहित्य-वाङ्मय इसी नव कृतित्व और विकासकी परम्परासे शून्य होकर आयातित विचार-चिन्तनका चर्वित-चर्वणका अभ्यस्त होताजा रहाहै, जिसका आधुनिक पारिभाषिक नाम 'प्रगतिशीलता' है।

प्रतिभाहीनताकी यह स्थिति किसी विशिष्ट क्षण में आज उत्पन्न नहीं हुई। यह बहुत मन्द गतिसे विकसित हुईहै। इस अधोविकास क्रमका आरम्भ हम विदेशी आक्रमणोंसे मान सकतेहैं। आन्तरिक विग्रहोंके कारण आक्रमणकारियोंको निमन्त्रित करनेके उल्लेख भारतीय साहित्यमें उपलब्ध हैं, इन्हींमें शक आक्रमण बहुचर्चित है। इन शकोंकी विक्रमादित्यके नेतृत्वमें मालवगणों द्वारा पराजयके उपलक्ष्यमें विक्रम संवत्का प्रवर्तन हुआ, परन्तु लगभग ८४ वर्ष बाद शकोंके दूसरे आक्रमणमें अपनी विजयके उपलक्षमें शक सम्वत्का प्रवर्तन किया, उसे इस देशके लोगोंने स्वीकार कर लिया। यह भी उल्लेखनीय है कि यवन, शक, पह्लव आदि अनेक आक्रमणकारी इस देशमें आये, पर शीघ्र पूरे भारतीय बन गये, भारतीय नाम भाषा जीवन धर्म अपना लिया, भारतको अपनी मातृभूमि बना लिया। शक संवत् आक्रमणकारियोंका भारतीय जीवन-पद्धति-समाजमें आत्मसात् होनेका, यहांकी मुख्यधारामें विलीन होनेका स्मारक है। परन्तु स्वीकार करना होगा कि ईस्वी सन्‌से बंधे आक्रमणकारी इतने प्रबल सिद्ध हो रहेहैं कि उस सन्‌को यहां लानेवाले आक्रमणकारी यह देश अवश्य छोड़ गये परन्तु सांस्कृतिक-सामाजिक स्तरपर ऐसे अंधभक्त और अंधानुकरणी

लोगोंको शासन और सत्ता सौंप गये जिन्होंने इस देशपर न केवल इस सन्को अपने देशपर आधुनिक प्लास्टिक गौंदसे चिपका दियाहै । अब ये अनुकरणी शासक पूरी सतर्कताके साथ इससे चिपके रहनेकी रक्षा तो कर ही रहेहैं और साथही ब्राह्मी लिपिसे विकसित देवनागरी अंकोंके स्थानपर संविधानके माध्यमसे उन "भारतीय अंकोंका अन्तर्राष्ट्रीय रूप" लाद दिया है, जिन्हें अंग्रेजी कोशोंमें 'अरैबिक अंक' कहा गयाहै यद्यपि स्वयं अरबमें इनका रूप इससे पूर्ण रूपसे भिन्न है। अपने देशके दक्षिणी भागमें तो बहुत पहले ये तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय अंक स्वीकारकर लिये गयेथे । अब, संवैधानिक प्रक्रियासे गुपचुप स्वीकार करा लेनेके बाद हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें भी प्रयुक्त होने लगेहैं, चाहे मन से इन्हें स्वीकार न किया गयाहो ।

अनुकरणकी यह प्रवृत्ति कितनी प्रबल और व्यापक है, इसे कुछ और उदाहरणोंसे स्पष्ट करना उपयुक्त होगा । जिस प्रकार ग्रियर्सनने संस्कृत परिवारके अन्तर्गत देशकी—विशेषतः उत्तर भारतकी—भाषाओंका वर्ग बना दिया, (भाषावैज्ञानिक स्तरपर उनके युगमें उपयुक्त विश्लेषणकी संभावनाएं कमही थीं, बाह्य शब्द-साम्य और संस्कृत प्रभावके आधारपर उन्होंने वर्गीकरण कर दिया), उसके बाद काडवेलने दक्षिणी भाषाओंका द्रविड वर्ग बनाया (इस वर्गीकरणकी भी वर्षोंतक उपेक्षा हुई, बादमें मद्रास विश्वविद्यालयने काडवेलकी पुस्तकको पुनः प्रकाशितकर इस वर्गीकरणको प्रतिष्ठित किया ।) निरन्तर आक्रमणों और आक्रमणकारियोंकी तेजस्विताके सम्मुख भारतीय वर्गकी बौद्धिकता पराजित होगयी और इन अंग्रेजोंके निष्कर्षों को अक्षरशः स्वीकारकर वर्ष प्रतिवर्ष विश्वविद्यालयोंमें इनकी पुनरावृत्तिकर इन्हें स्वयंसिद्ध रूपोंमें प्रतिष्ठापित कर दिया गयाहै । अनुकरणी-वृत्तिके भक्तोंने जो श्रद्धा-निष्ठा भाषा-विज्ञानके इन साधकोंमें प्रदर्शित कीहै, वह इस देशके ब्रह्म-भक्तोंके लिए अनुकरणीय है। ऐसी ही निष्ठा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके ईसाई-प्रचारकों द्वारा निर्मित व्याकरणोंमें प्रदर्शित कीहै जो लिखेही अंग्रेजी व्याकरणकी पद्धति पर हैं । सबसे अधिक भक्ति-निष्ठा तो देशके उस इतिहासमें प्रदर्शित की जातीहै जो यूरोपीय इतिहासज्ञों द्वारा लिखे गयेहैं जिसे ब्रह्म-वाक्य मानकर निरन्तर पुनरावृत्ति इस देशके इतिहासज्ञ पुनःपुनः अपनी इंडियन इंग्लिशमें करते रहतेहैं और जिसके इतिहास को वर्तमान सत्ताका शिक्षा विभाग सत्ता-बलसे प्रश्रय देताहै ।

जबभी इस देशके स्वतन्त्रचेता पत्रकार स्वतन्त्र समाचार-संकलनके लिए प्रस्तुत होतेहै, तभी वर्तमान सत्ता उन्हें आर्थिक सहायतासे वंचित कर पंगु बना देतीहै । दो हिन्दी समाचार एजेंसियां आर्थिक अनुदान बंद हो जानेसे समाप्त होगयीं । अन्तःविकासके सभी साधन छिन जानेपर, प्रोत्साहनका स्थान विवशता द्वारा ले लेनेके कारण अनुकृति ही एकमात्र विकल्प शेष रह गयाहै जो किसी अन्य समाजमें विलीनीकरण का मार्ग होताहै । आज हम इसी संकटमें फंसे हैं ।

इस स्थितिमें यह प्रश्न सामने आताहै कि क्या अनुकृति संघर्षोंके अन्तस्तलसे फूटते जीवन-बोधके अन्वेषणके लिए प्रेरणा दे सकतीहै ? अन्वेषणके लिए तो प्रज्ञात्मक संवेदन-दृष्टिकी अपेक्षा होतीहै और यह दृष्टि अनुकृति के विपरीत रचनात्मक सृजन कर्ममें सहायक होतीहै । मानवीय अन्तश्चेतनाका संवेदन जब रचनात्मक रूपमें प्रस्फुटित होनेका प्रयत्न करताहै तो वह सार्थकताका सहभागी होकर उद्भूत होताहै । इसके विपरीत अनुकृतिकी जड़ता न केवल सार्थक सृजनशील चिन्तनमे बाधक होतीहै, अपितु सांस्कृतिक चेतनाको ही परिवर्तित करनेके लिए प्रवृत्त होतीहै, सामाजिक संबंधों को खण्डित करतीहै और तनावका वातावरण उत्पन्न करतीहै । तनावसे भी बढ़कर अनुकृति सृजनात्मकता का स्थान लेकर सवेदनहीन यातना-आतंकपरक वातावरणकी सृष्टि करतीहै । क्रूरता और अमानवीयताके माध्यमसे राष्ट्रीयताको भी खण्डित करतीहै । स्वस्थ सर्जनात्मक कलाको 'कलाबाजी' में परिवर्तित करती है । यह इतिहासके सोद्देश्य एवं प्रयोजनपूर्वक स्थापित छद्मों और असत्योंको पूरी हठवादिताके साथ नकासे इनकार कर देतीहै, इन्हीं छद्मों और असत्योंके पुनः पुनः वाचनके लिए आग्रहशील रहतीहै क्योंकि पुनरावृत्ति और पुनर्पुनर्वाचन अनुकृतिके मूल तत्त्व हैं । उसके अंग है : संकल्पहीनता, अवसरवाद, सिद्धान्तोंका विपरीत दिशामें रूप-परिवर्तन अथवा मूल रूपसे सिद्धान्त-परिवर्तन ।

अनुकृतिकी अपनी सत्ताका एक भावपक्ष भी होता है, जिसे 'अनुकृतिकी अस्मिता' का नाम दियाजा सकताहै । उसका यह भाव पक्ष शब्द और अर्थके

संबंधको भी परिवर्तित कर देताहै, अर्थ-व्यंजनाको भी परिवर्तित कर देताहै। उसमें मत-मतान्तर, पन्थ, मजहब, रिलिजन ही 'धर्म' हो जाताहैं। वोट-स्वार्थकी संलग्नता धर्मनिरपेक्षता, पूंजीवादी वृत्ति-शोषण-अर्थ संलग्नता समाजवाद, बन्दूक-लाठी-प्रचार-वैचारिकदमन लोकतन्त्र। प्राचीन कालमें राजाओंकी प्रजा हुआ करतीथी, उसके पालन-पोषण-दमन-हरण-हननके सर्वाधिकार राजामें निहित हुआ करतेथे, अनुकृतिकी नींव रखकर लोकतंत्रने लोक और उनका अर्थ प्रजामें परिवर्तित कर दियाहै। प्राचीन कालसे चली आ रही आक्रमण की स्थितिको समाप्त करनेके प्रयत्नों और कार्योंको 'साम्प्रदायिकता' बना दियाहै। प्राचीन साहित्यकार आदरवाचक 'सम्प्रदाय' शब्द भले ही अपना सिर धुनता रहे। अनुकृतिकी मौलिकता भी यही है वह स्वहितके लिए शब्दार्थ और अर्थ व्यंजनाको परिवर्तित कर देताहै। वैचारिकता, सत्य और सौन्दर्यकी नयी परिभाषाएं प्रस्तुत करतीहै।

अनुकृतिसे उपलब्ध राजनीतिक-ऐतिहासिक-साहित्यिक सुविधाकी भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। इस प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है कि अनुभव और विचार संवेदनाको गहराई प्रदान करें। आवश्यकता है केवल यूरोपीय साहित्य-पठनसे संकलित विचार और तज्जन्य चेतनाको मात्र शब्द और भाषा अन्तरणके साथ इंडियन इंग्लिश और भारतीय भाषाओंमें अवतरित करनेकी। उस साहित्यका संवेदनात्मक पक्ष तो मूल भाषा-भाषियोंके लिए सुरक्षित रहताहै और भारतीय पाठकोंकेलिए उसका अनूदित रूप। भारतीय पाठक मूलसे अपरिचित, अनुकृतिकारके फतवोंपर विश्वास करनेको वाध्य है क्योंकि वही फतवा ही प्रामाणिक है। यह सुविधा अर्थदायिनी भी है और रचनात्मक शक्तिके प्रदर्शनकी सामर्थ्य भी, अर्थात् विनाशात्मक विधियां रचनेकी अपार क्षमता। उसमें जीवन-बोधकी नहीं मृत्यु-बोधकी सर्जनात्मक शक्ति है। भारतीय साहित्यका नचिकेता जीवनतत्वकी याचनाके लिए यमके द्वार गयाथा, आजका अनुकृतिकार यम रूपमें मृत्यु बोधकाका निःशुल्क वितरण करताहै। उसका मार्ग समकालीन साहित्यके माध्यमसे राजनीतिक संलग्नताओं और प्रतिबद्धताओंका साहित्य वितरित करताहै जिसमें चुनौतियों और जीवनकी संभावनाओंके स्थान पर आरोपित समस्याओंकी विभीषिकाओंके चित्र प्रस्तुत करनाहै।

अनुकृतिकारकी दृष्टि अतीतके भारतीय साहित्यके प्रति निष्काम है, असंलग्न है, वह उपभोक्तावादी है, संभोगपरायण है। इस वृत्तिकी विशिष्टता ही संवेचेदनहीनता है। साहित्यमें अपनी अर्थवत्ता और प्रयोजनीयता प्रतिपादित करनेके लिए वह अपने वातानुकूलित कक्ष-प्रकोष्ठमें बैठकर दृष्ट-श्रुत यथार्थके चाहे कल्पित चाहे स्वप्न-चित्र उभारताहै। इससे सृष्टि संवेदना-शब्द आक्रोश और हताशाके होतेहैं, इनमें उसकी कल्पित प्रतिक्रियाएं होतीहैं। उसे ये प्रतिक्रियाएं नहीं, इस भौतिक जगत्की पीड़ाओं-यातनाओंमें से उभरते चीत्कार कहता-मानताहै, जिसे वह 'कालजयी आक्रोश-क्षोभ काव्य' का नाम देताहै, उस काव्य-सौन्दर्यके स्वयं ही गीत गाताहै। जिसे वह स्वयं रूपवादी सौन्दर्य कहताहै, उसी रूप-सौन्दर्यके आकर्षणमें बंधा रूपवादी चक्रकी परिक्रमा करता रहता है। अपनी इस तल्लीनतामें आधुनिकताको उसकी नव्यतासे वंचितकर रूढ़ बना रहा होताहै। यह रूढ़ व्यायाम पूर्ण साहित्यके प्रति मोहभंग कर देताहै। इस मोहभंगके बीज उसके आधुनिकताके प्रति उपभोगवादीं दृष्टिकोणमें निहित हैं जो उसे व्यायामके लिए प्रेरित करतेहैं और अतीतसे सम्पूर्ण विमुखता। अनुकृतिकार निरन्तर प्रवाहशील कालका एक वर्तमान क्षण हैं, वर्तमान क्षणका अतीतके क्षणोंकी अस्वीकृतिको दम्भ इसलिए कहना होगा क्योंकि समग्रता और सम्पूर्णतामें प्रत्येक क्षण (अतीत और वर्तमान) का, उसके निवर्तमान हो जानेपर भी, एक अंश शेष रह जाताहै जो प्रवहमान काल का ही अंग होताहैं। मानवीय समग्रताका यही रूप है।

आक्रमणोंकी निरन्तर शृंखलाने संघर्षसे दूर रहने, एवं जिस उपभोक्तावृत्ति और आक्रमणकारियोंसे सहयोग की संस्कृतिको जन्म दियाहै, उसके सुविधापूत साहित्य में यथार्थ-पीड़ा-आतंकका उद्घाटन करनेके गीत गाते हुए सत्तासीनोंकी भागीदारी अथवा कृपा-अनुकम्पाके आकांक्षी बने रहतेहैं और सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्षके प्रत्येक प्रयत्नको असफल बनातेहैं। इस गतिरोधको समाप्त करनेके लिए अनुकृति.संस्कृतिको नष्ट कर मूल-सृजनकी मानसिकता और चेतनाको जागृत करने की प्रबल आवश्यकता है, नक्कारखानेमें तूती बजाने की नहीं। ⊡

मत-अभिमत

☐ हिन्दी व्याकरण मीमांसा : नया दृष्टिकोण

'प्रकर' में 'हिन्दी व्याकरण मीमांसा' पर पं. काशीराम शर्माकी लेखमाला एक नयी जमीन तोड़तीहै। बहुधा यह पूछा जाताहै कि आजका सर्वोत्तम हिन्दी व्याकरण कौन-सा है। कामताप्रमाद गुरूके व्याकरण का नाम पहले तो तत्काल जिव्हापर आताथा पर वह कितना कालातीत हो गयाहै यह उसे पढ़कर ही पता लगताहै। काशीरामजीके बिन्दुवार विवेचनमें यह और भी स्पष्ट हो जाताहै। 'दीमशित्स' का व्याकरण कलेवर में बड़ा है और नवीनतम होनेके कारण अधिकृत हैं, ऐसा माना जाताहै। पर काशीरामजीके विवेचनसे यह धारणाभी ध्वस्त हो गयीहै। वाजपेयीजीका व्याकरण 'समीक्षा' और 'मीमांसा' अधिक है, 'विवरण' कम। काशीरामजीने इन सबकी मीमांसाके रूपमें बड़े तात्त्विक बिन्दु उठायेहैं। सबसे अच्छी बात यह है कि वे अपना सिद्धान्त पक्ष भी सामने रखतेहैं जिससे यह लगताहै कि इन सबपर विचारके अनन्तर लिखे जानेके कारण यही पक्ष सर्वाधिक संतुलित, प्रामाणिक और मान्य है।

हमारा सुझाव है कि पंडितजीसे अनुरोध किया जाये कि वे इसी प्रक्रियामें एक दोषमुक्त और विशद व्याकरण लिख डालें। हो सकताहै इससे हिन्दी व्याकरण क्षेत्रमें एक नया युग ही शुरू होजाये क्योंकि पंडितजीके परस्थानिक, आख्यात, निपात आदि पारिभाषिक शब्द नयी लीकपर चलतेहैं। उनकी लेखमाला पर प्रतिक्रियाएंभी आमंत्रित की जायें और यह क्रम जारी रखा जाये तो बहुत स्वागत योग्य होगा।

इस सराहनीय लेखमालाके लिए लेखक तो साधुवादके पात्र हैंही, 'प्रकर'का सपादन एवं प्रकाशक मण्डलभी बधाइयोंका पात्र है।

—कलानाथ शास्त्री, निदेशक भाषा विभाग, राजस्थान सरकार, सी-८, पृथ्वीराज रोड, जयपुर (राजस्थान).

☐ उम्र भरका हिसाब

'उम्रभर का हिसाब' (जनवरी ९३ अंक) काव्य संग्रहकी समीक्षामें विद्वान् समीक्षक डॉ. प्रयाग जोशी ने रचनाओंके भीतर प्रवेशकर बहुत सूक्ष्मतासे विश्लेषण-विवेचन और मूल्यांकन कियाहै किन्तु न तो पुस्तक की भूमिका पढ़ी और न आवरण पृष्ठके अन्तमें दिया हुआ परिचय पढ़ा। मैंने 'रोशनीकी तलाशका रचनाकार' शीर्षकसे लिखी भूमिकाकी तेरहवीं पंक्तिमें स्वर्गीय (स्व.) शब्दका प्रयोग कियाहै और 'परिचय' में भी निधन तिथि २२ सितम्बर १९८८ छपा हुआहै। यदि कृतिको आद्योपांत देखा गया होता तो यह गलती न होती कि समीक्षक महोदय अंतमें लिखते—'चन्द्रकांत जी लम्बी उम्र पायें और कविताएं लिख-लिखकर छपवायें।'

चूंकि मैंने इस पुस्तिकाका संपादन कियाहै अतः इस तथ्यको उजागर करना अपना दायित्व समझा। इस प्रकारकी त्रुटियोंसे बचना समीक्षकके लिए नितान्त आवश्यक है। वैसे डॉ जोशी एक माने हुए समीक्षक हैं और अध्ययनशील भी, फिरभी सतर्कता सदा निमन्त्रण देती रहतीहै।

—संतोषकुमार तिवारी, फुटेरा
वार्ड २, दमोह (म. प्र.)-४७०६६१.

☐ पुरस्कृत भारतीय साहित्य (विशेषांक १९९२)

'प्रकर' का स्वाधीनता दिवसके उपलक्ष्यमें पुरस्कृत भारतीय साहित्यपर विशेषांक (अगस्त ९२) का 'स्वर : विसंवादी' स्तंभ अवश्यही महत्त्वपूर्ण है। साहित्य अकादमी इससे कुछ सीख पायेगी तथा पुरस्कार योजना में ग्रन्थके महत्त्वको आधार बनायेगी, ऐसी आशा है। 'झनां दी रात' ही नहीं, पिछले वर्षों पुरस्कृत कई ग्रंथ विवादके विषय बनेहैं। मलयालमके कुछ ग्रन्थभी अपवाद नहीं रहे। आपने सही विचार प्रस्तुत करके बड़े साहस एवं निर्भीक पत्रकारिताका परिचय दियाहै।

—डा. एन. पी. कुट्टन पिल्लै, १९०, स्टेट बैंक कालोनी, गाँधीनगर, हैदराबाद-५०००८०.

पत्र-पत्रिकाएं

इतिहास[1]

सम्पादक : विवेकानन्द झा
समीक्षक : भगवान सिंह

इतिहास अनुसंधान परिषद्ने हिन्दीमें **इतिहास** नामसे एक पत्रिका प्रकाशित कीहै । पत्रिकामें घोषित किया गयाहै इसमें "प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक भारतीय इतिहासके विविध विषयोंपर व्यापक रुचिके गवेषणात्मक लेख, समीक्षा लेख, पुस्तक समीक्षाएं, महत्त्वपूर्ण मुद्दोंपर विचार विमर्श एवं दस्तावेजोंके अध्ययन प्रकाशित किये जायेंगे और ऐतिहासिक घटनाओं, तथ्यों, स्थितियों, संस्थाओं तथा विचारोंके मूल स्रोतोंके आधारपर उनके संदर्भ, निरंतर परिवर्तन तथा विकासकी प्रक्रिया एवं समग्रताके परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत करने तथा वैज्ञानिक दृष्टिसे ठोस, वस्तुपरक एवं विवेचनपूर्ण सामग्री उपलब्ध करानेका प्रयास होगा।"

घोषणा हमें आश्वस्त करतीहै पर यह पढ़कर विस्मय होताहै कि "इस अंककी विषयवस्तु (संभवतः विषयवस्तुका प्रयोग सामग्रीके लिए किया गयाहै ले.) हमने १९७४ ई. से प्रकाशित परिषद्की प्रतिष्ठित पत्रिका "**इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू**' से लीहै । इससे **इतिहास**के भावी स्वरूपका आभास मिलेगा।" यदि "निरंतर परिवर्तन तथा विकासकी प्रक्रिया" का परिचय इस रूपमें ही दियाजा सकताहै तो हमें यह मानना होगा कि संपादकोंकी समझ इतनी सूक्ष्म है कि वह पत्रिका और पुराने लेखोंके संकलनके बीच अन्तर नहीं कर पाती। पत्रिकामें नयी और मौलिक तथा पहले अप्रकाशित रचनाएं ही प्रकाशित होतीहैं और यदि किसी बाध्यतावश या असाधारण महत्त्व या प्रासंगिकताके कारण कोई पुराना लेख लियाभी जाताहै तो यह ध्यान रखा जाताहै कि इससे पत्रिकाका स्वरूप बिगड़ने न पाये। यहां तो कुछ ऐसा हैही नहीं जो नया हो। इतनाही नहीं पुनःप्रकाशित निबंधोंमें ऐसा निबंध भी बिना किसी टीका-टिप्पणीके प्रकाशित किया गयाहै जिसकी मूल स्थापनाएं खंडित हो चुकीहैं और आश्चर्य कि इसके बाद भी यह संपादकोंके लिए प्रासंगिक बना रह गयाहै। अतः मानना होगा कि संपादकोंकी दृष्टि दशकों पुरानी है। उनका संपर्क हिन्दीसे तो कटाही हुआहै इतिहासके क्षेत्रमें हो रहे अद्यतन अनुसंधान और विकाससे भी वे अनभिज्ञ रह गयेहैं। यदि ऐसा नहीं है तो इसका कोई अधिक गंभीर कारण होना चाहिये, जिसपर परदा डालाजा रहाहै, और इसलिए यह चकितही नहीं, आतंकितभी करता है। अतः अनेक दृष्टियोंसे यह मात्र इतिहासकी पत्रिका नहीं है अपितु ऐतिहासिक इतिहासकी पत्रिका है।

इस पत्रिकाका प्रकाशन एक ओर तो एक नया कीर्तिमान स्थापित करताहै और दूसरी ओर कई नये प्रश्न खड़ा करताहै। कहें, यह संभवतः विश्वकी पहली पत्रिका है जो समग्रतः पूर्वप्रकाशित रचनाओंका अनुवाद करके छापी गयीहै और इस दृष्टिसे इसका महत्त्व इतिहासकारोंके लिए कम और गिनीज बुक ऑफ रिकार्ड्सके लिए अधिक है। प्रश्न इसीसे जुड़ा हुआ यह कि क्या परिषद् और **इतिहास**के संपादकोंकी दृष्टिमे हिन्दी अंग्रेजीका कूड़ाघर है कि यहांका दसियों वर्ष पुराना माल इसके लिए अधुनातन बनाकर फेंक दिया जाये? क्या इतिहासकारोंमें कोई ऐसा नहीं है जो हिन्दीमें कुछ लिख सके? क्या एकभी मौलिक निबंध प्रथम अंकमें प्रकाशित नहीं हो सकताथा? यदि नहीं तो भविष्यमें कैसे हो पायेगा? यदि हां, तो वह हड़बड़ी क्या थी कि अंकको ऐसी सामग्री जुटाये बिना ही प्रकाशित किया गया?

---

[1] **प्रकाशक : भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की ओर से राजकमल प्रकाशन, १ बी नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ३२०; अंक १: जन. ९२; का. दुगना; मूल्य : ५०.०० रु.।**

यह देखकर आश्चर्य होताहै कि अनूदित निबंधोंके साथ अनुवादक/अनुवादकोंका नाम तक नहीं दिया गयाहै। हिन्दी लेखकों और अनुवादकोंके प्रति इतिहास अनुसंधान परिषद्का रवैया इतना तिरस्कारपूर्ण है कि वे उनका नामोल्लेख तक आवश्यक नहीं मानते और उन्हें निरा मजदूर मानतेहैं जिन्हें अधिकसे अधिक अपनी मजदूरीका दावा करनेका ही अधिकार है ? अंग्रेजीकी अपेक्षा हिन्दीमें अपने विचारोंको अधिक सुविधासे रखनेमें समर्थ अनुसंधानकर्ताओं और लेखकोंके अंग्रेजीमें लिखनेको बाध्य होनेके पीछे भी क्या प्रोत्साहन और हतोत्साहनका यह सूत्र ही है ? ऐसे मजदूर जो सभी दायित्वोंसे मुक्त हों, क्या विश्वसनीय अनुवादक मानेजा सकते हैं ? क्या अनुवाद किसी ऐसे व्यक्तिको उपकृत करनेके लिए कराये गयेहैं जिसका नामोल्लेख करनेसे कुछ ऐसी बातें उजागर होतीं, जिन्हें छिपाना जरूरी माना गया ? क्या संपादकोंको यह पता नहीं कि अनुवादकका नाम देनेका अर्थ और औचित्य क्या होताहै ? यदि अनुवादकका नाम नहीं जाताहै तो यह भ्रम पैदा होता या कियाजा सकताहै कि लेखक उस भाषाका उस स्तरका ज्ञाता है जो अनुवादसे प्रकट होताहै। दूसरोंकी शोध कृतियोंको अपने नामसे प्रकाशित करा लेनेवाले पीठस्थ आचार्योंके किस्से जबतब पढ़नेको मिलते रहतेहैं। दूसरोंके अनुवादको अपना अनुवाद प्रमाणित करनेवालोंको उनसे किस दृष्टिसे भिन्न माना जा सकताहै ? अनुवादकका नाम न होनेकी दशामें उसके द्वारा हुई भूलों या चूकोंके लिए भी लेखकको उत्तरदायी मान लिया जाताहै, जो अनुचित हैं। अतः अनूदित रचनाओंमें अनुवादकोंका नाम देना एक अकादमिक उत्तरदायित्वसे जुड़ा हुआहै जिसका बोध संपादकोंको शायद नहीं है।

'इतिहास' का प्रकाशन, कहें इतिहासपर हिन्दीमें एक स्तरीय पत्रिकाका प्रकाशन एक स्वागत योग्य कार्य है, परंतु जाननेके अधिकारको पिछड़ा बनानेकी साजिशमें नहीं बदला जाना चाहिये। यह गलत है कि जो बातें अंग्रेजी जाननेवालोंको वर्षों पहले मालूम हो चुकीहों उनका पता हिन्दीवालोंको इतने समय बाद चले। अनुवादके साथ यही खतरा रहताहै। अतः यदि अनुवाद ही होनाहै तो कमसे कम अगले अंकोंसे **'इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू'** के प्रकाश्य अंकोंका समग्र अनुवाद करते हुए हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण दोनों साथ-साथ प्रकाशित किये जायें। हिन्दीके ज्ञान-पिपासुओं के लिए अंग्रेजीका उच्छिष्ट ही काफी है और इसे ही हिन्दीप्रेमियों द्वारा इतिहास अनुसंधान परिषद्का अनुग्रह मानते हुए शिरोधार्य करना चाहिये। यह अहंकारपूर्ण रवैया ठीक नहीं है और इसका त्याग किया जाना चाहिये। इससे अच्छा है हिन्दीमें कुछ न प्रकाशित करना। कमसे कम इससे कोई भ्रम तो नहीं पैदा होगा। निश्चयही इसमें किसी एकही अनुवादकको लंबा अवकाश देकर उपकृत करनेका गौण लाभ नहीं मिलेगा पर अद्यतन अनुसंधानसे हिंदी पाठकों को भी अंग्रेजी पाठकोंके साथ परिचित होने और उनकी समकक्षतामें बने रहनेका अवसर तो मिलेगा।

ऊपरकी इन बातोंके साथ तीन बातें और हैं जिनसे पता चलताहै वे पत्रके प्रति गंभीर नहीं हैं। पहला है लेखोंके साथ **इंडियन हिस्टारिकल रिव्यू** में प्रकाशनकी तिथि या कहें मूल पत्रिकाके अंक और वर्ष संख्याका अभाव, जिससे ही यह पता चला सकताथा कि निबंधमें उक्त लेखकके अमुक समयतक के विचार अंकित हैं और यदि उसी विषयपर उसकी या किसी अन्य लेखककी कोई पुस्तक या निबंध उपलब्ध हो तो यह तय कियाजा सके कि अद्यतन मान्यताके लिए किस रचनापर भरोसा किया जाये।

दूसरा है प्रकाशित निबंधके लेखन-कालसे अबतक हुए अनुसंधानों और प्रमाणोंको टिप्पणीके माध्यमसे, या, जैसाकि उत्तरदायित्वका बोध अनुभव करनेवाले संपादक करतेहैं, उसी विषयके किसी अन्य अधिकारी व्यक्तिकी टिप्पणीका साथ-साथ प्रकाशन करके अंतराल होते हुएभी इसे अधिकतम उपादेय बनानेका प्रयत्न, जो नहीं किया गया। परंतु इनसे भी अधिक उपेक्षा समीक्षित कृतियोंको लेकर देखनेमें आतीहैं जिससे यह पता चलताहै कि संपादकोंको अपने लक्ष्य भूत पाठकों तकका बोध नहीं है। यदि यह पाठकवर्ग वही है जो अंग्रेजी जानताहै तो ही उसके लिए अंग्रेजीमें प्रकाशित ग्रंथोंकी समीक्षाकी कोई उपादेयता हो सकतीहै परंतु उस दशामें उसने मूल समीक्षा अंग्रेजीमें पढ़ ही ली होगी, अतः यह मात्र शृंगारिक महत्त्वका काम हुआ। यदि पाठककी गति अंग्रेजीमें नहीं है तो उसके लिए इनका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि यह जान लेनेके बाद भी कि पुस्तक पठनीय है वे उसे पढ़ नहीं सकते। ऐसी दशामें हिन्दीके पाठकोंके लिए इन कृतियोंकी समीक्षाके

स्थानपर इनका सार संक्षेप या परिचयात्मक टिप्पणी का ही कोई अर्थ हो सकताथा। जोभी हो, प्रत्येक दशा में हिन्दीका पाठक इतिहासके उन ग्रंथोंकी समीक्षा पढ़ना चाहेगा जिनका प्रकाशन मूल या अनूदित रूपमें हिन्दीमें हुआहै और जिन्हें उसने पढ़ रखाहै पर जिनके गुण-दोषके विषयमें अन्य विद्वानोंके विचारभी जानना चाहताहै या जिनके विषयमें उसने सुन रखाहै पर उनको पढ़नेसे पहले उनके महत्त्वको जानना चाहता है। या जिनके विषयमें सबसे पहले उसे जानकारी समीक्षाके माध्यमसे ही मिल सकतीहै। या तो संपादकोंको ऐसे ग्रंथोंका स्वयं भी पता नहीं है और जैसाकि हम कह आयेहैं वे अपने विषयमें स्वयं अद्यतन विकासों और अनुसंधानोंसे कटे हुएहै सो दूसरोंको नये विकासों और अनुसंधानोंसे परिचित करा पानेकी स्थितिमें नहीं हैं, या उन ग्रंथों और अनुसंधानोंसे उन्हें घबराहट हैं और उनमें जो नयी स्थापनाएं दी गयीहैं उनसे पाठकोंका ध्यान विचलित करना, कहें इतिहासके क्षेत्रमें नये अनुसंधानों और विकाससे परिचित कराना नहीं, अपितु उनसे विमुख करना **इतिहास**का एकमात्र अघोषित लक्ष्य नहीं, तो भी अघोषित लक्ष्योंमें से एक है। यह माननेका कोई कारण नहीं हैं हिन्दीमें ऐसा कुछ लिखाही नहीं गयाहै, जो इतना स्तरीय न हो जिसे यह पत्र समीक्षाके योग्य मान सके।

इस अंकमें प्रकाशित अधिकांश लेख रोचक हैं, अनुवाद अच्छा है, और बहुत कम स्थलोंपर ही कुछ यांत्रिक प्रतीत होताहै, पर वहांभी, प्रवाहमें अवरोधके बावजूद, आशय समझनेमें कठिनाई नहीं होती। प्रकाशनमें वर्तनी आदिके दोष नगण्य हैं और इस मामलेमें पर्याप्त सावधानी बरती गयीहै जिसकी हिन्दी प्रकाशनोंमें सामान्यत: चिंता नहीं की जाती, यद्यपि राजकमल मोटे तोरेपर इसका अपवाद है।

इस पत्रिकाका कुछ मामलोंमें राजकमल प्रकाशनसे ही प्रकाशित पुस्तक '**इतिहासकी पुनर्व्याख्या**' से भी साम्य है। इसमें रामशरण शर्मा, विवेकानंद झा, बी. एन. एस. यादव, शीरी मूसवी, सतीशचंद्र, एम. अहतर अली, इरफान हबीब, भारती राय, सुमित सरकार, तथा रवींद्रकुमारके लेख हैं।

रामशरण शर्माके निबंध **ऋग्वैदिक समाजमें संघर्ष वितरण और विभेदीकरण** में उनकी पुरानी मान्यताओंको ही दुहराया गयाहै जिनको अमान्य कियाजा चुकाहै या कहें, यह लेख इतिहासका दस्तावेज बन चुकाहै। शर्माजीके इतिहास विश्लेषणका मुख्य दोष यह है कि वह टैक्स्ट या साहित्यिक सामग्री और संदर्भसे अधिक ध्यान प्रयुक्त शब्दोंपर देतेहैं। वह यह भूल जातेहैं कि शब्दोंके अनेक अर्थ होतेहैं और इनका अपना इतिहास होताहै और येभी हमारी तरह अपने इतिहासके सहित —प्राचीन आशयोंको अपने भीतर समेटे हुए—जीवित रहतेहैं। अत: किसीभी अध्ययनमें इनकी सीमित भूमिकाही होतीहै। किसी कालके शब्दकोशके आधार पर उस कालका इतिहास लिखना मनोरंजक तो हो सकताहै पर तथ्यपरकताका भ्रम देते हुए भी तथ्यपरक नहीं, उसी प्रकार ऋग्वेदकी अनुक्रमाणिकामें शब्द देखकर उनका यथेच्छ अर्थ करते हुए वैदिक इतिहास लिखना हास्यकृतिके रूपमें तो ठीक है पर इतिहासके रूपमें नहीं। इस प्रकारका प्रयत्न तभी कियाजा सकता था जब कृति उपलब्ध न होती और अनुक्रमणी मात्र बची रह गयी होती। इतिहास तबभी गलत होता पर अन्य किसी साधनके अभावमें कोई विकल्प न होता।

शर्माजीकी व्याख्या-रीति भी निर्दोष नहीं लगती। वे स्वयं मानतेहैं, "'विश्' का मतलब बस्ती भी है, 'वेश' का अर्थ है बसनेवाला और 'वेश्मन्' का घर या आवास।" और वे फिरभी यह नहीं स्वीकार पाते कि जिस समाजके जन समुदायको ही विश् कहा जाताथा वे यायावर नहीं यायावरोंके बीच अकेले स्थायी निवासी और स्थायी निवाससे जुड़ी अर्थव्यवस्थापर निर्भर रहे होंगे। वे तर्क देतेहैं कि "गृह शब्द (विभिन्न रूपोंमें (घर या परिवारके अर्थमें) ऋग्वेदमें बानवे स्थलोंपर आयाहै, जिसमें चौंतीस उल्लेख कुटुंब मंडलोंमें आयेहैं। इस प्रकार अति प्रारंभिक ऋग्वैदिक समाजमें परिवार कोई प्रमुख इकाई नहीं था।"

शर्माजी समर्थ हैं और 'समरथ के नहि दोष गुसांई', वे कुछभी साबित कर सकतेहैं। जो कहेंगे उसे उनके सामर्थ्यपर्यन्त माननेवाले कुछ आर्त और कृतार्थ जन मिल ही जायेंगे। सामर्थ्य रहते अपने विचारोंमें परिवर्तन लाना उनकी महिमाका ह्रास होगा। उनसे तर्क करके यहभी नहीं समझायाजा सकता कि इतनी सूक्ष्म सांख्यिकीका इतिहास विश्लेषणमें यूं भी अर्थ नहीं होता, विशेषत: तब जब घरके दर्जनों पर्याय ऋग्वेदमें आयेहों, पर जिस समीकरणपर उन्होंने इतना बड़ा

निर्णय कर डालाहै उससे तो यही प्रकट होताहै कि प्राचीनसे नवीन मंडलों तक कोई अंतर आया ही नहीं क्योंकि ९२१३४ को ६५०४१३९६६ से अधिक भिन्न नहीं माना जा सकता जो अनुपातत: नये और पुराने मंडलोंकी मंत्र संख्या है। इस प्रकार गहन विश्लेषणके स्थानपर सतही जोड़तोड़के कारण प्रामाणिकताका भ्रम देनेवाले विश्लेषणके स्थानपर सतही जोड़तोड़के कारण प्रामाणिकताका भ्रम देनेवाले विश्लेषण केवल उन्हींके लिए प्रामाणिक रह जातेहैं जो न वेदसे परिचित हैं न विवादसे। जो इसकी छानबीनमें जाना चाहतेहैं उन्हें तो यहभी सोचना पड़ताहै कि जिस गणन-गुणनपर शर्मा जी इतना जोर देतेहैं उनकी सांख्यिकीय शुद्धता तक की चिन्ता वे क्यों नहीं करते। गृह शब्दकी आवर्तिता गिननेमें भी भूल हुईहै।

प्राचीन भारतपर प्रकाशित दो अन्य निबंध, विवेकानंद झा का 'चांडाल और अस्पृश्यताका उद्भव" तथा डॉ. बी. एन. एस. यादवका "कलियुगके वर्णन और समाजका प्राचीनकालमें संक्रमण", मुख्यत: तथ्यपरक हैं। झाजीके निबंधकी आत्मा शर्माजीके निबंधके निकट होते हुएभी इनमें शब्द विचारका कम और साहित्यिक साक्ष्योंका अधिक सहारा लेनेके कारण यदि कुछ छूटा रहभी गयाहै तो उससे बहुत अधिक अन्तर नहीं पड़ता। मुख्य बात यह है कि इन निबंधोंमें प्रतिपादित मतको, किसी प्रकारकी चुनौती दी गयीहो इसका पता हमें नहीं है अत: इनके प्रकाशनके औचित्य को अस्वीकार नहीं कियाजा सकता। झाजीके निबंधमें संभवत: ऋग्वेदमें व्रत और अव्रतकी परिकल्पनापर भी ध्यान दिया जाना चाहियेथा। वहां कुत्तेका मांस खानेका भी उल्लेख—अव्रत्या शुनि आंत्राणि पेचे—है और इसका चांडालोंकी अस्पृश्यतासे संबंध हो सकताहै या नहीं इसपर विचार किया जाना चाहियेथा। वैसी स्थितिमें अस्पृश्यताकी समस्या कुछ अधिक गहन विश्लेषणकी मांग करती।

शीरीं मूसवीके निबंध **मुगल साम्राज्यका सकल राष्ट्रीय उत्पाद** एक साहसिक प्रयत्न होते हुएभी निर्णायक तथ्यों और आकड़ोंके अभावके कारण अनुमानों और दूरारूढ़ सूचनाओंकी एक शृंखलाका रूप ले लेता है। फिरभी, अंधेरेको धुंधलकेमें बदलनेका काम तो करताही है।

सतीशचंद्रका निबंध **औरंगजेबके शासनके [illegible] में उसकी धार्मिक नीति** प्रकृति और विवेचनमें इसी विषयपर उनके निबंधमें जो **इतिहासकी पुनर्व्याख्या** नामक पुस्तकमें सम्मिलित हैं। इसमें औरंगजेबकी धार्मिक असहिष्णुताको राजनीतिक तकाजोंसे प्रेरित और इसलिए लचीला सिद्ध किया गयाहै।

एम. ताहिरअलीका लेख **अठारहवीं सदीके भारत के बारेमें अधुनातन सिद्धांत** वेलीकी एक पुस्तकसे प्रेरित एक संक्षिप्त निबंध है जिसमें इरफान हबीबकी इस मान्यताको कि अठारहवीं सदी "भारी लूटमार और अराजकता और विदेशी विजयका काल" थी, जो कि "मराठा राजनीतिक व्यवस्थाको डाकू राज्य बताने वाले वी. ए. स्मिथके विचारों और इसके प्रति ब्रिटिश विजयको अंतिम दुर्दशा बतानेवाली राष्ट्रवादी धारणाका एक मिश्रित रूप है खारिज करताहै। लेखकने वेलीके मतसे असहमति प्रकट कीहै।

इरफान हबीबका लेख **प्राक् औपनिवेशिक और औपनिवेशिक भारतमें संचयकी प्रक्रियाएं** एक अच्छा निबंध है जो कतिपय सरलीकरणोंको तोड़ताहै। भारती रायका लेख **बंगालमें स्वतंत्रता आंदोलन और महिलाओंमें जागृति**, १९११-१३ भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्के अनुदानपर किया गया शोधनिबंध है और इस दृष्टिसे मूल्यवान् भी। सुमित सरकारका निबंध **गांधीवादी राष्ट्रवादका तर्कशास्त्र** तथा रवीन्द्र कुमारका **जवाहरलाल नेहरु, भारतीय कांग्रेस** और **फासीवाद-विरोधी संघर्ष** (१९३९-४५) गंभीर विवेचनपरक निबंध है।

हम आशा करतेहैं कि इतिहासके भावी अंक पूर्वप्रकाशित प्राचीन लेखोंके संग्रह बनकर नहीं आयेंगे और यदि इनमें किन्हीं लेखकोंकी भाषागत सीमाओंके कारण अंग्रेजीसे अनूदित भी किये गये तो वे लेख नये होंगे। मुख्य आशा इस बातकी कि अंक अपनेको सही साबित करनेके लिए नहीं अपितु इतिहासको सही रूप में रखनेके एकमात्र उद्देश्यसे और दलगत पूर्वाग्रहोंसे ऊपर उठकर और हिन्दीमें लिखने-लिखानेके अनुरोध और संकल्पके साथ निकाले जायेंगे। इसी रूपमें यह प्रयास कृत-कार्य होगा अन्यथा च्यवनप्राशके बलपर जर्जरों को युवा और प्रासंगिक बनाये रखनेके लिए सरकारी [illegible]। □

समकालीन सृजन—१४[१]

सम्पादक : शंभुनाथ

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

लघु पत्रिकाएं अपने सीमित क्षेत्रमें ही सही परंतु एक वैचारिक सृजनात्मकताको मुखरित करती रहीहै। यह ऐसी ही पत्रिका है, जिसमें सामयिक समस्याओं पर केन्द्रित लेखनकी ही प्रचुरता है। वैशिष्ट्य इसका यह है कि दस्तावेजके रूपमें बुद्ध, महावीर, गांधी जैसोंके विचारोंको रेखांकित करते हुए सामयिक विभीषिकाओंमें उनकी सार्थकताको उजागर कर परम्परासे अपनेको जोड़ाहै। अप्रैल ९२ का यह अंक 'हिंसाकी चुनौती' पर केन्द्रित है। 'हिंसाकी सभ्यता' शोर्षक सम्पादकीयमें आधुनिक परिवेशमें बढ़ती हुई हिंसाकी अपरिहार्यताके कारण और निवारण खोजे गयेहैं। अहिंसाके सबसे बड़े समर्थक गांधीजीने भी जम्मू और कश्मीरमें सेनाकी लड़ाईका समर्थन कियाथा (द्रष्टव्य पृ. २) पर आज हिंसाके नामपर जो अराजक हिंसाका तांडव चल रहाहै उसमें रावणको मारना हिंसा नहीं है किन्तु रावण तक गोली पहुंचती कब है। महात्मा गांधीका यह विचार मार्क्सवादियोंके लिए विचारणीय है—"लोगोंका प्रजाका इतिहास भविष्यमें लिखा जायेगा। जब यह इतिहास लिखा जायेगा तब हम देखेंगे कि उसके पन्नोंमें अहिंसात्मक असहयोग भरा पड़ाहै" (पृ. १७)। भले ही करोड़ों लोग एक साथ इस बात (अहिंसात्मक असहयोग) में श्रद्धा न रखें, हथियार उठानेके लिए कौन करोड़ों तैयार बैठे हैं। (पृ. १८)। 'हिंसाकी चुनौती' एक संवादमें आठ चिंतकोंके मत दियेहैं, जिनमें अधिकांशत: चर्वित चर्वण ही है। प्रेषित प्रश्नावली मुख्यत: मार्क्सवादने "सामाजिक बदलावके लिए हिंसाकी वकालत कीहै" पर केन्द्रित है। केदारनाथ सिंहने हिंसा और लोकतन्त्रमें सोवियत संघके विखंडनसे उत्पन्न समस्याओंकी चर्चा कीहै और बुद्धजीवी वर्गपर व्यंग्य कियाहै जो सबसे अधिक अप्रासंगिक बहस-मुबाहस करता रहताहै और चुप हो जाताहै। किशन पटनायकने लिखाहै कि कार्ल मार्क्सकी धारणामें हिंसा अनिवार्य होते हुएभी गौरवान्वित नहीं है। आर्थिक साम्राज्यवादका एक रूप उनके अनुसार धनी और गरीब देशोंके बीचका अन्तर्विरोध है। उन्होंने सांस्कृतिक प्रतिमानोंको बनाये रखने एवं परिष्कार करनेका उत्तरदायित्व बुद्धिजीवियोंका ही मानाहै तथा सांस्कृतिक विफलताका दोष बुद्धिजीवियोंको देतेहैं जो अन्तर्मुखी और देशकाल निरपेक्ष होते जा रहेहैं और राजनीतिज्ञके द्वारा पैदा किये गये उन्मादको रोकनेमें असमर्थ रहतेहैं। के. जी. सुब्रह्मण्यम् ने चीनकी सांस्कृतिक क्रांतिमें हुई बर्बर हिंसाके नायकोंको अधिक घातक बताया। साम्यवादी शासन स्थापित करनेके लिए प्रारम्भिक युद्धकी तुलनामें क्षुद्र राजनीतिक और आर्थिक लाभके लिए मानवीय मूल्योंको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिए नेताओंको सही उत्तरदायी ठहरायाहै। सच्चिदानन्द सिन्हाने रूसमें निजी खेतीको समाप्तकर सामूहिक खेतीकी व्यवस्था कायम करनेमें हुई दसों लाख किसानोंकी बलिका उल्लेख कियाहै। नन्दकिशोर आचार्यने अपनी टिप्पणी 'परम्परा, अहिंसा और प्रौद्योगिकी' में भारतीय चित्र मानवमूलक न मानकर समग्रतामूलक मानाहै, पर 'मानवमूलक' का तात्पर्य स्पष्ट नहीं किया। मृत्युंजयके अनुसार आजकी बढ़ती हुई उग्रता आक्रामकता और हिंसाके वातावरणमें अहिंसा अछूत और अप्रासंगिक है। यह परिचर्चा पाठकोंको आज इस दिशामें सोचनेको प्रेरित तो करतीही है।

कहानियोंमें अब्दुल बिस्मिल्लाहका 'भाटा मिरलाकी कहानी' लोककथाओंकी तर्जपर एक दुर्बल निष्प्रभावी फैंटेसी है। लगताहै भाटा और मिरलाके नामकरणके बहानेसे औद्योगिक घराने बाटा और बिरलाकी ओर संकेत करताहै। डॉ. माहेश्वरकी 'भूख' भी लोककथाकी तर्जपर फैंटेसी है लेकिन भूखा मरता क्या न करता जैसी लघुकथा होकर रह गयीहै। सहज सरल आदि जीवनकी व्याख्यायिका इन कहानियोंमें लोककथाके शिल्पकी वापसी आज कितनी सार्थक है? यह एक प्रश्न है। पुन्नीसिंहकी 'कौवेने खुजलाई पाँखें' नितान्त सामान्य कहानी है, अध्यापकोंकी कर्त्तव्यहीनतापर संकेत करती हुई। संजयकी 'खल्ली छुलाई' कहानी एक शोषित देहातीके अपने लड़केको पाठशाला

---

[१] प्रका. : भारतीय साहित्य संस्थान, २० बालमुकुन्द मक्कर रोड, कलकत्ता-७०००७। पृष्ठ : १६०; डिमा. ९२; प्रस्तुत अंक . १०.०० रु., वार्षिक सदस्यता : ३२.०० रु.।

में भर्ती करवानेके बाद छोटा-मोटा अफसर होकर देहातके शासकोंसे मुक्तिके दिवा स्वप्नपर आधारित है जिसमें आंचलिक शब्दोंके प्रयोगसे कहीं-कहीं सम्प्रेषणमें बाधा पड़तीहै। लोकोक्तियोंका प्रयोग भाषा को जीवन्त तो बनाताहै यथार्थ चित्रणके नामपर, पर पाठकोंका क्षेत्र बहुत सीमित भी कर देताहै। केदार सारथीकी 'दर्प भंग' कहानी छोटे लोगोंके बड़प्पन और बड़े लोगोंके छोटेपनको उजागर करतीहै, पर यहांभी कुछ आंचलिक शब्द खटकतेहैं। नगेन्द्र नागदेव की 'मंत्रमुग्ध' महत्त्वाकांक्षी बेटेकी पिताके प्रति भक्ति और कर्त्तव्यको एकही झटकेमें नष्ट कर देनेकी त्रासदी की मार्मिक कहानी है। आजकी भौतिकवादी अंधी दौड़में सम्बन्ध कुचले जा रहेहैं। मंजुरानी सिंहकी 'दिशा' कहानी तथाकथित आधुनिकता और परम्परा तथा संस्कृतिके बीच पिसते बच्चोंकी करुण कथा है जिसमें नयी पुरानी पीढ़ीकी मानसिक असंगतिको उभारा गयाहै। ज्ञानप्रकाश विवेककी 'तलाश' एक भिखारिनके लोमहर्षक कष्टोंकी कहानी है। अलका सरावगीकी बीज कहानी रुग्ण मानसिकता वाली स्त्री की आशंकाको चीरकर उबरनेवाली स्त्रीके जुझारूपन को व्यक्त करतीहै। उपलकी 'काली आग' शीर्षक कविताएं आधुनिक मानसिक उद्वेलनको मुखर करती हुईभी आशाका संकेत देतीहै—'लेकिन भीतर जलका एक सोता है फूटनेको बेचैन / मुझे अस्थिर करतेहुए (पृ. ४५)। घृणा और उन्मादकी विभीषिकाओंकी यह अभिव्यक्ति भी दर्शनीय है—"अलग-अलग इलाके बांट लियेहैं कुत्तोंने। उसमें गैर कुत्तोंका प्रवेश नामुमकिन है" (पृ. ४६)। मानिक बच्छावतने 'बौद्ध चित्रकलाकी परम्पराओंको आधुनिक संदर्भमें देखने-रचने की सामयिक आवश्यकताका प्रतिपादन कियाहै।

कुल मिलाकर पत्रिकाका वैचारिक पक्ष थोड़ा बहुत कुरेदता है, सृजनात्मक पक्ष तो सामान्य ही लगा। बढ़ती हुई व्यावसायिकताके दबावमें लघु पत्रिका निकालना बड़े साहसका काम है परन्तु इस साहसके परिणामस्वरूप जो निकलताहै उसका कोई वैशिष्ट्य भी तो होना चाहिये। □

ब्रज गरिमा[1]

[मलखानसिंह सिसौदिया : व्यक्तित्व एवं कृतित्व]

सम्पादक : डॉ. भगवान सहाय पचौरी
अतिथि सम्पादक : डॉ. गोपालकृष्ण शर्मा
समीक्षक : डॉ. प्रेम दुबे

आधुनिक हिन्दी साहित्यके विकासकी अनेक विलक्षण प्रवृत्तियों में से एक है—उसका अव्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओंके द्वारा पोषित होना। छोटे स्थानोंसे छोटे (साधनहीन) लोगों द्वारा निकाले जानेवाली, छोटी-छोटी पत्रिकाओंने बड़ी-बड़ी व्यावसायिक पत्रिकाओंकी स्पर्धामें अबतक भी न केवल अपनेको टिकाये रखाहै, अपितु साहित्यकी पहचानको व्यावसायिक हाथोंमें कैद होनेसे बचाये रखाहै। यह एक अद्भुत बात है। यह इस तथ्यको भी सिद्ध करताहै कि पत्रिकाओंके प्रकाशन और साहित्यके मूल्योंकी रक्षाके लिए अर्थकी तुलनामें जिजीविषाके लिए संघर्षरत साहित्यकारोंके संकल्पकी भूमिका कहीं अधिक बड़ी रहीहैं। यह आवश्यक नहीं कि ऐसी सभी लघु-पत्रिकाएं समस्तरीय और समादर्शी हों। उनकी भी अपनी अलग-अलग सीमाएं—(स्थानीयसे लेकर राष्ट्रीय स्तर की) और अलग-अलग आयाम (आंचलिकसे लेकर विचारधारागत स्तर तक है। महत्त्व इनका इसमें है कि ये अपनी सीमाओंमें भी कभी-कभी बड़ा काम कर जातीहै। विशेषत: किसी रचनाधर्मी या मूल्य, या मुद्देको लेकर निकाले गये विशेषांक इन दिनों बड़े अच्छे आयेहैं। अपने प्रकाशनके पांच वर्षोंमें कुल नौ अंक निकाल पानेवाली मथुरासे प्रकाशित 'ब्रज गरिमा' के ताजे अंकको इसी परिप्रेक्ष्यमें देखा जाना चाहिये। हिन्दीकी जनवादी 'कविता-धाराके आद्य-कवियोंमें से एक—मलखानसिंह सिसौदिया'पर केन्द्रित यह अंक इसी अर्थमें महत्त्वपूर्ण है।

मलखानसिंह सिसौदिया प्रगतिशील-जनवादी कवितामें आन्दोलनसे शुरूआती दौरसे जुड़े कवि हैं। १९४५ में अपने प्रथम कविता-संग्रहमें बंगालके अकाल

---

[1] **प्रका. : ब्रज गरिमा मासिक, बाढ़पुरा, पो. बा. ३१, मथुरा (उ. प्र.)। वर्ष : ५, अंक : ८-९, फर-मार्च : ९१।**

पर लिखी उनकी पंक्तियां :—

"उधर दूसरी ओर चीरकर धरती माताकी छाती।
अन्न खत्तियोंमें भरताहै अन्नचोर मानवघाती ।।
जनताके प्राणोंके कौर चबाताहै धीरे - धीरे।
खून लग गयाहै दाढ़ोंसे गिनताहै नीलम-हीरे ।।
× × ×
आजादीकी नींव नहीं उठतीहै कब्रिस्तानोंमें।
दाढ़ी-चोटी नहीं लगीहै भूखोंके भी प्राणोंमें ।।

आजभी प्रासंगिक हैं। तभीसे सिसौदियाजीके आडम्बरहीन किन्तु संघर्षशील व्यक्तित्व-सी ही उनकी कविताकी यात्रा आजतक जारी है। रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, केदार, रांगेय राघव और यशपाल जैसे दिग्गज रचनाकारोंके वे समकालीन रहेहैं। समकालीन होनेकी बात भर हो तो वह अपने आपमें बहुत महत्त्व नहीं रखती क्योंकि किसी एक धाराके चलनके दौरमें बतौर 'चलन' (फैशन) के ही अनेक स्वर उगने लगते है। सिसौदियाजीकी विशेषता यह हैं कि उनमें १९४४ से १९९० तक कहीं भी भटकाव नहीं है, जबकि उनके बहुत बाद आये अनेक प्रगतिशील ऐसे है जो नयी कविता-अकविताकी न जाने कितनी धाराओंमें बहकर अपने आजके मुकामतक पहुंचेहैं।

'ब्रज गरिमा' का प्रस्तुत विशेषांक मलखानसिंह सिसौदियाके काव्यानुशीलनकी प्रचुर सामग्री देताहै। विशेषांकके १०४ पृष्ठोंमें कुल २० लेख संकलित हैं। आरम्भके दो-तीन आलेख कविके वैयक्तिक जीवन और विचारोंको जाननेमें सहायता देतेहैं। डॉ. भगवान सहाय पचौरी द्वारा लिखा गया साक्षात्कार अच्छा तो है, पर केवल सूचनात्मक होनेके कारण वह अपर्याप्त लगताहै। कवि और समालोचकके बीच साक्षात्कारकी जगह वह किसी कोरे जिज्ञासु द्वारा रचनाकारसे संकलित विवरणकी प्रकृतिकी एकतरफा भेंट अधिक लगताहै। इसीलिए वह संवादके स्थानपर सूचना बन कर रह गयाहै। इसकी तुलनामें सूचनात्मक होनेपर भी सुशीलचन्द्र दीक्षितके द्वारा सिसौदियाजीकी जीवनीपर लेख इस अर्थमें अधिक स्तरीय है। उससे कवि मलखानसिंह सिसौदियाकी रचनाओंकी पृष्ठभूमि को समझनेमें सहायता मिलतीहै।

कृतित्वपर लिखे गये लेखोंमें रमेश रंजकका लेख बहुत अच्छा है। डॉ. कुंवरलाल सिंह, वेदप्रकाश अमिताभ, विजयबहादुर सिंह, गोपालकृष्ण शर्माके लेख सिसौदियाजीकी कविताओंकी विभिन्न विशेषताओं और प्रवृत्तियोंको सामने लातेहैं। अन्य लेख प्रायः विभिन्न काव्य-संकलनोंको दृष्टिमें रखकर लिखी गयी समीक्षाएं हैं। पूर्व-नियोजन, या समयके अभावके कारण विभिन्न पक्षोंपर विशिष्ट लेखकोंके आलेख न लिखाये जानेके कारण लेखोंकी सामग्रीमें दोहराव बहुत अधिक हैं। परिणाम यह हुआहै कि विषय-सामग्रीमें जितना फैलाव है, उतनी कसावट नहीं आ सकीहै। विशेषांकमें संकलित सभी लेख इस तथ्यको सामने लाते हैं कि सिसौदियाजीकी कविता उनके जीवनकी ही तरह संघर्षोंमें पलीहै। पारिवारिक, स्वास्थ्यगत, व्यक्तिगत, परिवेशगत, ब्रिटिश शासनसे और फिर पूंजीवाद से—अनेक आयाम संघर्षोंके हैं। सजग वाम-चेतनासे निरन्तर उनकी कविता झंकृत रहीहैं। यह इस बात की भी पुष्ट करतीहै कि जनान्दोलनोंमें सक्रिय भागीदारी यदि हो, तो सीधे-सादे शब्दोंमें भी चिंगारी भरी जा सकतीहैं।

अपनी सीमाओंके होते हुए 'ब्रज गरिमा' का यह विशेषांक उन सभीके लिए अत्यन्त उपयोगी है, जो हिन्दीकी प्रगतिशील कविताके पुरस्कर्ताओंके बारेमें जाननेकी जिज्ञासा रखतेहैं। कुछेक बड़े नामोंको छोड़ दें तो अबभी मलखानसिंह सिसौदिया और अन्य जनकवियोंके साहित्यसे इतिहासको परिचित करानेका काम एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है, जिसका निर्वाह किया जाना चाहिये। विभिन्न आन्दोलनोंके ऐसे सशक्त हस्ताक्षरोंके अनुसंधान और उनपर संकलित ऐसी सामग्रीकी आवश्यकता हमेशा बनी रहेगी। ☐

पुरस्कृत भारतीय साहित्य
(अगस्तका विशेषांक)

☐ प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाला यह विशेषांक इस बार 'स्वाधीनता दिवस' के अवसर पर प्रकाशित होगा।

☐ इसमें साहित्य अकादमी, भारतीय ज्ञानपीठ और के. के. बिड़ला फाउण्डेशन द्वारा पुरस्कृत पुस्तकों की समीक्षाएँ रहेंगी।

आनुमानिक मूल्य : ४०.०० रु.

(अभीसे अपनी प्रति सुरक्षित करायें।)

सिंहावलोकन

नवम दशककी हिन्दी आलोचना–३

—डॉ. वीरेन्द्र सिंह

नाट्य समीक्षाके क्षेत्रमें डॉ. नरनारायण रायका नाम उल्लेखनीय ही नहीं, अपितु अनिवार्य है क्योंकि उन्होंने इस दशकमें (और पहलेभी) ऐसी कृतियोंको दियाहै जिन्होंने नाट्य शिल्प और बोधको समकालीन कृतित्वसे जोड़ाहै। इनमें से कुछ पुस्तकें महत्त्वपूर्ण है जैसे "नाट्य रचना विधान और आलोचनाके प्रतिमान", "नटरंग विवेक", 'हिन्दी नाटक : संदर्भ और प्रकृति', 'नाट्य विमर्श' तथा इसीके साथ, जगदीशचंद्र माथुर, मोहन राकेश तथा लक्ष्मीनारारण लालके नाट्य शिल्पपर मूल्यांकनपरक पुस्तकें। "नटरंग विवेक" एक ऐसी रचना है जो नृत्य नाट्य, बाल रंगमंच, असंगत नाट्य, कहानियोंका रंगमंच तथा शारीरिक रंगमंचके स्वरूप तथा महत्ताको रेखांकित करतेहैं। असंगत नाट्य विधामें व्यावहारिक जीवनमें व्यक्तिको भिन्न भूमिकाएं निभानी पड़तीहैं यही है आतंरिक जीवनकी विसंगति। इसे ही 'एब्सर्ड' कहा गया है। (पृ. ८४)। फिर इसे 'एब्सर्ड नाटक' ही क्यों न कहा जाये, असंगत कहनेका क्या औचित्य है? लेखकका माननाहै कि कहानीका रंगमंच अभिनयाश्रित है, नकि संवादात्मक" (पृ. ९७-९८)। इस प्रकारके मतोंका इस पुस्तकमें बाहुल्य है और लेखक "नाट्य रचना विधान और आलोचनाके प्रतिमान"में दृश्य-काव्य और आलोचनाके नये प्रतिमानोंकी तलाशमें है जो एक द्वन्द्वात्मक स्थिति को समक्ष रखताहै। सारे नाट्य रचना विधानमें सहायक एवं विधायक तत्त्वोंका सुन्दर विवेचन इस पुस्तक में प्राप्त होताहै। "हिन्दी नाटक : संदर्भ और प्रकृति" में लेखकने स्वतंत्रता पूर्व और बादके नाट्य शिल्प और संरचनाके अंतरको स्पष्ट कियाहै और भिन्न महत्त्वपूर्ण कृतियोंका मूल्यांकन प्रस्तुत कियाहै। इस दृष्टिसे 'आधे अधूरे' (मोहन राकेश) तथा 'कोणार्क' (माथुर) नाटकोंका विवेचन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इनमें कथ्यके दृश्यत्वका सुंदर विवेचन है। यही बात नाटककारोंमें सम्बंधित पुस्तकोंके बारेमें भी सत्य है।

इस दशकमें डॉ. नरनारायण रायके दो संपादन भी आयेहैं, एक 'वैज्ञानिक एकांकी' तथा दूसरे "असंगत नाटक और रंगमंच"। 'वैज्ञानिक एकांकी' एक नये प्रकारका संपादन है क्योंकि इस विषयपर हिन्दीमें कम ही नाटक आयेहैं, इस दृष्टिसे यह संपादन महत्त्वपूर्ण है।

सरला गुप्त 'भूपेंद्र' की पुस्तक "समकालीन हिन्दी नाटक : चेतनाके आयाम", डॉ. राजमल बोरा द्वारा संपादित पुस्तक "हिन्दी नाटक और रंगमंच", डॉ. दिनेशचंद्र वर्माकी 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान', डॉ. केदारनाथ सिंहकी "हिंदीके प्रतीक नाटक और रंगमंच" और प्रो. मदनलाल "नाटककार मोहन राकेश : संवाद शिल्प"। ये सभी पुस्तकें आजके नाटकको विविध संदर्भोंमें विवेचित करतीहैं और समग्र रूपसे नाटक और रंगमंचके आपसी रिश्तेको भी रेखांकित करतीहैं। सरला गुप्तने "समकालीन हिन्दी नाटक"में एक महत्त्वपूर्णतथ्य यह रखाहै कि जितनी तीव्रतासे नाटकका स्वरूप बदला और विकसित हुआहै उतनी गतिसे उसका साहित्यशास्त्र नहीं। लेखिकाने व्यक्ति चेतनाकी सापेक्षतामें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रोंके नाटकोंका जो विवेचन प्रस्तुत कियाहै, वह चेतनाके द्वन्द्वात्मक रूपको भी समक्ष रखतेहैं। इस पुस्तकका दूसरा अध्याय "विविध विधाओंमें व्यक्ति चेतना" का कोई औचित्य नहीं हैं, मात्र नाटक विधाको ही लिया जाता और प्रसंगानुसार अन्य विधाओंको ही लिया जाता और प्रसंगानुसार अन्य विधाओंको तुलनात्मक रूपमें रखा जाता। इसी क्रममें डॉ. दिनेशचन्द्र वर्माका "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक" में स्वतंत्रताके बाद मध्यवर्गीय

समस्याओं, सामाजिक-राजनीतिक, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, वर्ग चेतना और मूल्य-विघटनकी समस्याओंको विवेचित किया गयाहै। इस अध्ययनमें हिन्दीतर नाटकों(मराठी, तेलुगु, गुजराती आदि) का विश्लेषण किया गयाहै और हिन्दी नाटकोंसे उनकी तुलनाकर यह प्रदर्शित किया गयाहै कि भारतीय नाटक समान रूपसे उपर्युक्त समस्याओंको ही रचनात्मक संदर्भ दे रहेहैं। । इस दृष्टिसे "हिन्दीतर नाटकोंमें समस्याएं" महत्त्वपूर्ण अध्याय है जिसमें विजय तेंदुलकर, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड आदिके नाटकोंका सुंदर विवेचन रंगमंचकी दृष्टिसे और साथही, नाट्य लेखनकी दृष्टिसे किया गयाहै। इसी क्रममें डॉ. केदारनाथ सिंहकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक "हिन्दीके प्रतीक नाटक और रंगमंच" प्रतीक और रंगमंचके सैद्धांतिक विवेचनके साथ प्रसादोत्तर प्रतीक-नाटकोंकी रंगमंचीय (वेशभूषा, रंग संयोजन, प्रकाश, वस्तुएं प्रतीकके रूपमें आदि) समीक्षा की गयीहै। लेखकका यह माननाहै कि आजका रंग-सृजन प्रतीकोंके माध्यमसे ही हो रहाहै। प्रतीक-नाटकोंका क्षेत्र व्यापक है जैसे असंगत नाटक, पात्र-प्रतीक, वस्तु प्रतीक आदि जिन्हें लेखकने अत्यंत विस्तारसे विवेचित कियाहै। "प्रतीक-नाटकोंकी मंच-सज्जा" एक सुंदर प्रकरण है जिसमें वेश भूषा, रूप विन्यास, प्रकाश योजना तथा संगीत योजनाको लेकर प्रतीक-नाटकोंका मूल्यांकन किया गयाहै।

नाटक-समीक्षाकी उपर्युक्त तीन पुस्तकें आधुनिक नाटककी वस्तु-योजना और रंगमचीय रूप-विधानके सापेक्ष महत्त्वको प्रस्तुत करतीहैं। इस दशक में दो ऐसी पुस्तकें और हैं जो नाटक (नाटककार) के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षको उद्घाटित करतीहैं। एक संम्पादन है डॉ. राजमल बोरा/ नारायण शर्माका 'हिन्दी नाटक और रंगमंच' तथा दूसरी पुस्तक है प्रो. मदन लालकी ('नाटककार मोहन राकेश : संवाद शिल्प')। डॉ. बोराने इस संपादनमें भिन्न समीक्षकों द्वारा नाटक रंगमंचके सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षोंका आकलन है। प्रथम तथा द्वितीय खण्डमें नाट्य रचना विधान तथा रंगमचीय विधानपर आलेख हैं तथा तीसरे खण्डमें 'नाटक-रंगमंच : व्यावहारिक पक्ष' को लेकर प्रसादोत्तर तथा आजके नाटकोंपर आलेख है। 'अंतरंग रंगमंच' (विष्णुकांत शास्त्री) सुंदर लेख हैं जिसमें 'शताब्दी' द्वारा चालित 'अंगन मंच' जिसमें अभिनेता और दर्शक एक दूसरेके बहुत निकट होतेहैं, का विवेचन है। इन्द्रनाथ चौधुरी (नाट्य रचना विधान), लोकनाट्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य (सूर्यनारायण रणसुभे), रंगमंच : सैद्धांतिक स्वरूप (अनीता राजूरकर, डॉ. नगेन्द्र) तथा समकालीन नाटक (नरनारायण राय) इस संग्रहके ऐसे निबंध हैं जो नाटकके समग्र रूपको (रंगमंच सहित) प्रस्तुत करतेहैं।

प्रो. मदनलालकी पुस्तक मोहन राकेशके नाटकोंमें संवाद-शिल्पको व्याख्यायित करतीहैं। इसमें मोहन राकेशके संवादोंको तीन वर्गोंमें—आकारगत, श्रोतव्यगत तथा प्रमाणगत—के अन्तर्गत रखा गयाहै। इसीप्रकार संवाद संरचनामें भाषा, प्रतीक, बिम्ब और अन्य रूपाकारोंका विवेचन है जो राकेशके संवादोंको अर्थवत्ता प्रदान करतेहैं। लेखकका निष्कर्ष है कि मोहन राकेश की सारी चेतना उनके नाट्य-संवादोंमें ही समायी हुई है। मूलतः कथानकोंका विकास, व्यक्तित्वका उद्घाटन, मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व तथा अपनी वैचारिकताको इन्हीं संवादों द्वारा संकेतित किया गयाहै। इस दृष्टिसे यह पुस्तक यह मांग करतीहै कि अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककारोंको इसी दृष्टिसे विवेचित किया जाये। यह प्रयास एक आरंभ है जहांतक 'संवाद'का प्रश्न है।

पत्र-पत्रिकाएं

साहित्य तथा आलोचनाके विकासमें पत्र-पत्रिकाओंका भी अपना विशिष्ट योगदान रहाहै; अतः यह आवश्यक है कि उन पत्रिकाओंके वे विशेष अंक जो किसी-न-किसी रूपमें आलोचना या विचारसे सम्बन्धित रहेहैं, उनका संक्षिप्त संकेत किया जाये। हिन्दीकी प्रतिष्ठित आलोचनात्मक पत्रिका "दस्तावेज" में इस दशकमें तीन विशेष अंक निकाले—एक "आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी" पर, दूसरा "रामविलास शर्मा" पर तथा तीसरा "आठवें दशककी कविताओंपर।" डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारीने इनका जो संपादन कियाहै, वह श्रमका परिचायक है। "आचार्य द्विवेदी' अंकमें संस्मरण, शोध, आलोचना उपन्यास तथा द्विवेदीजीके पत्र तथा समकालीनोंकी दृष्टिमें द्विवेदी जी आदि खण्डोंमें द्विवेदीजीके कृतित्व और व्यक्तित्व का एक समग्र बिम्ब उभरकर आताहै। दूसरा विशेष अंक 'आठवें दशककी कविता" पर केंन्द्रित हैं जिसमें आठवें दशकके महत्त्वपूर्ण काव्यों (४०) का भिन्न आलोचकोंद्वारा विवेचन-मूल्यांकन है और दूसरे खण्डमें कवितासे भिन्न संदर्भोंपर आलेख हैं यथा विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अनंत मिश्र, प्रभाकर श्रोत्रिय, वीरेन्द्र सिंह, हरदयाल तथा नगेन्द्र सिंहके आलेख। तीसरा

विशेष अंक 'रामविलास शर्मा' पर केन्द्रित है जिसमें 'साक्षात्कार' (स्वयं संपादक द्वारा), शर्माजीकी इतिहास दृष्टि (रामचंद्र तिवारी), रहवरी हमल (विश्वंभरनाथ उपाध्याय), प्रेमचंद सम्बन्धी मूल्यांकन (मधुरेश), भाषा चिंतन (वीरेन्द्र सिंह), हिंदी नवजागरण (गीता शर्मा) आदि विषयोंपर आलेख हैं। एक खण्डमें शर्माजीकी आरंभिक कविताओंको भी दिया गयाहै ।

दूसरी महत्त्वपूर्ण पत्रिका "समकालीन सृजन' (संपादक : डॉ. शंभुनाथ) है जिसने तीन विशेष अंक प्रकाशित किये। प्रथम महत्त्वपूर्ण अंक "राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन तथा प्रसाद" जिसमें प्रसादको नये संदर्भमें प्रस्तुत किया गयाहै। इसमें नवजागरणके परिप्रेक्ष्यमें, साम्राज्यवाद और शोषणके संदर्भमें प्रसाद साहित्यको परखा गयाहैं, भिन्न आलोचकों द्वारा यथा शिवकुमार मिश्र, विजयबहादुर सिंह, राममूर्ति त्रिपाठी, सुरेन्द्र चौधरी, वीरेन्द्र सिंह आदि। इस अंककी एक विशेषता यहभी है कि इसमें प्रसाद-संगीत (स्वर लिपियों सहित — अजयराम द्वारा) के नामकरणकी बात कीगयी है जैसे रवीन्द्र संगीत। दूसरा महत्त्वपूर्ण अंक है "जातिवाद और रंगभेद" पर जिसमें जातिप्रथा रंगभेद, तीसरे विश्वमें रंगभेद, मेन्डेलापर लेख तथा काली कविताएं और कहानियोंका संग्रह है। यह अंक साहित्यके संदर्भमें रंगभेद-जातिप्रथाके रचनात्मक संदर्भको प्रस्तुत करताहै। दलित साहित्यपर चंद्रकांत बांदिवडेकरका लेख, रामायण-महाभारतमें जाति विरोधी स्वरपर मंजु अस्मिताका लेख, अफ्रीकी मुक्ति संघर्षपर अंकुश बी. सामंतका लेख तथा रंगभेद, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्थापर गिरिजेश पंतका लेख आदि इस अंकके विस्तृत परिप्रेक्ष्यको प्रस्तुत करतेहैं। तीसरा अंक केन्द्रित हैं "गणेशशंकर विद्यार्थी और हिन्दी पत्रकारिता"पर। संभवत: यह पहला प्रयास है जो विद्यार्थीजी के कृतित्व और कार्यको, उनकी देनको समग्र रूपसे प्रस्तुत करताहैं। पहले खण्डमें विद्यार्थीजीकी पत्रकारिता (लक्ष्मीशंकर व्यास लेख), क्रांतिकारी विचारक (भरतसिंह), विचारात्मक संघर्ष (प्रदीप सक्सेना), 'प्रताप' की भूमिका (गोपालकृष्ण शर्मा) आदि विषयोंपर लेख हैं। दूसरे खण्डमें हिंदी पत्रकारिता आंदोलन, अन्तर्विरोध और समस्याओंपर सुन्दर आलेख हैं। ये तीनों अंक हिन्दी एवं भारतीय साहित्य के लिए उपलब्धिके रूप है।

तीसरी महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'पहल' (सं. ज्ञानरंजन) का "अफ्रीकी साहित्य" अंक है जो पहली बार अफ्रीकी साहित्यके भिन्न साहित्यिक संदर्भोंको पाठकोंके सामने रखताहै। इस अंकमें अफ्रीकाकी मौखिक परम्पराके गीत, दक्षिण अफ्रीकाकी कहानी, अफ्रीकाकी समकालीन कविता, नाइजीरियाई कहानी और कविता तथा अन्तमें अफ्रीका महाद्वीपकी अनूदित कविताएं संगृहीत हैं। गोबियल ओकारा, सेरोटे और कोफी अवूनूर जैसे कवियोंसे बातचीत, अफ्रीकी भाषा, कलाओंका रूप, तथा यूरोपीय मिथकोंकी अप्रासंगिकताको स्पष्ट करताहै। यह अंक तीसरी दुनियांके परिदृश्यको बखूबी उपस्थित करताहै।

कुछ अन्य पत्रिकाओंके विशेष अंक भी इस दशक में आयेहैं। "दीर्घा" (सं. डॉ. विनय) का "समकालीन उपन्यास अंक" में समीक्षात्मक लेख (कुश सत्येन्द्र, सुखकारी सिंह आदि) तथा विवेकी राय, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, रामदरश मिश्र, आनंदकुमार, निरुपमा सेवती तथा गिरिराज किशोर आदिके उपन्यासोंपर क्रमश: श्री मान्धाता राय, वीरेन्द्र सिंह, रामदेव शुक्ल, चंद्रकांत बांदिवडेकर कुश सत्येन्द्र, तथा जगमोहन चोपड़ा आदिके आलेख हैं। इसमें लगभग आजके सभी चर्चित उपन्यासकारोंको सम्मिलित किया गयाहै। इस दृष्टिसे यह अंक महत्त्वपूर्ण है। 'सम्पर्क' (सं. सुरेशचंद्र त्यागी) के 'नागार्जुन' अंकमें नागार्जुन के पूरे कृतित्वको मूल्यांकित किया गयाहै। 'मधुमाधवी' (सं. नलिनी उपाध्याय) के दो विशेष अंक 'रामविलास शर्मा तथा "समकालीन आलोचना विशेषांक" उल्लेखनीय हैं। रामविलास शर्माके कवि रूपपर (डॉ. गोविंद रजनीश) तथा उनके समीक्षक विचारक रूपपर आलेख हैं जो समग्र रूपसे डॉ. शर्माके बहुविध रूपको रेखांकित करतेहैं। समकालीन आलोचना अंक की विशेषता यह है कि इसमें आजके विभिन्न आलोचकों (रामविलास, विद्यानिवास मिश्र, इन्द्रनाथ मदान, शिवदान सिंह चौहान आदि) से साक्षात्कार हैं और दूसरे खण्डमें भिन्न आलोचकोंके अपने आलोचना-कर्मपर आत्मकथ्य हैं। इसी संदर्भमें एक अन्य पत्रिका 'वैचारिकी' (सं. मणिका मोहिनी) के 'अज्ञेय अंक' में तीन खण्डों (संस्मरण, दृष्टिकोण तथा समीक्षा) के द्वारा

अज्ञेयके व्यक्तित्व और कृतित्वको परखा गयाहै । अंत में इस दशकमें "प्रकर" (सं. वि. सा. विद्यालंकार) के "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांकोंका महत्त्व इसलिए है कि साहित्य अकादमी तथा अन्य आयोजकों द्वारा पुरस्कृत पुस्तकोंकी आलोचनाएं इनमें दी जातीहैं जो प्रति वर्षके पुरस्कृत साहित्यकी समग्र रूपसे तथा समग्र भारतीय साहित्यका तुलनात्मक रूप पाठकोंके सामने प्रस्तुत करतीहैं । इस श्रमसाध्य एवं महत्त्वपूर्ण कार्यको 'प्रकर' के संपादक श्री विद्यासागर विद्यालंकार कई वर्षोंसे कर रहेहैं ।

उपर्युक्त नवम दशकके आलोचनाके व्यापक परिदृश्यको देखकर एक बात स्पष्ट एवं तटस्थ रूपसे कही जा सकतीहैं कि इधरकी हिन्दी आलोचनाने कई पड़ाव तय कियेहैं और अपनी एक निश्चित दिशाको पकड़ा है। भिन्न ज्ञानानुशासनोंके संदर्भ इधरकी आलोचनामें मात्र आये ही नहीं हैं वरन् आलोचकोंमें इनके द्वारा साहित्यके नये रचनात्मक संदर्भोंको विवेचित कियाहै । इधर रूसके विखण्डनने भी साहित्य और आलोचनाके तेवर बदलेहैं और प्रगतिवादी शिविरका मोहभंग हुआ है जिसका एक अच्छा प्रभाव उभरकर यह आयाहै कि यहांके रचनाकार और आलोचक रूसका अंधानुकरण न कर अब मार्क्सवादको भारतीय संदर्भमें देखनेका प्रयत्न कर रहेहैं । तीसरी दुनियांके परिप्रेक्ष्यमें अब मार्क्सवादको पुनः व्याख्यायित करना होगा, उसमें आवश्यकतानुसार नये कृतित्वोंको सम्मिलित करना होगा । मार्क्सवादका अंत हो गयाहै, यह प्रचार भ्रामक है क्योंकि कोईभी विचारधारा जो जन-मानसको अर्थ देतीहै, वह समाप्त नहीं हो सकती, उसकी भिन्न व्याख्याएं हो सकतीहै । 'गतिशील' विचार कभी मृत नहीं होता और गतिशील आलोचना भी कभी मरती नहीं ।

इधरकी आलोचनासे एक बात यह उभरकर आती है कि अभी हिन्दी आलोचनाको 'वैज्ञानिक दृष्टि' के और विकासकी अपेक्षा है क्योंकि एक तटस्थ (अधिक से अधिक निर्वैयक्तिक, पूरे रूपमें निर्वैयक्तिक होना सम्भवभी नहीं है) दृष्टिकी माँग करतीहै । यहां प्रश्न सही प्रतिपादनका है, पूर्वाग्रहजनित प्रतिपादनका नहीं । इस दशककी आलोचना अनेक दिशाओंमें विकसित हुई, परन्तु एक दिशाकी ओर नहीं, क्योंकि इस दिशामें रचनाओंका अभाव ही रहाहै । यहाँ संकेत विज्ञान-बोध से सम्बन्धित रचनाओंकी ओर है क्योंकि विज्ञान-बोध से सम्बन्धित कथा साहित्यका अस्तित्व न होनेसे उनकी आलोचनाका प्रश्न ही नहीं है । इस क्षेत्रमें श्री हरीश गोयल, नार्लिकर (मराठी अनूदित हिन्दीमें) तथा डॉ. रामकुमार वर्मा (नाटक एक या दो) और यमुनादत्त वैष्णव अशोकने कुछ रचनाएँ दीहैं । पर यह परम्परा विकसित नहीं होसकी । उसके विकासकी आवश्यकता है । यह सही है कि विज्ञान-बोधका प्रमाण अनेक रचनाकारोंपर पड़ाहै ।

समग्र रूपसे, नवम दशककी आलोचना हमें भविष्य की ओर ले जानेका मार्ग प्रशस्त करतीहै और नये कृतित्वों, विचारों, संवेदनाओं तथा अभिवृत्तियोंके लिए मार्ग खोलतीहै । यही आलोचनाका अंतःअनुशासनीय परिप्रेक्ष्य है जो विचार-संवेदनके भिन्न आयामोंको उद्घाटित करतीहै ।

संदर्भित पुस्तकें एवं पत्रिकाएं :

१. आलोचनाकी पहली किताब, विष्णु खरे, नेशनल, दिल्ली (१९८३)

२. अतीतका हंस : मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्लीं, (१९८८)

३. आधुनिक हिन्दी कविता, डॉ. देवराज, कल्पकार प्र., लखनऊ (१९८९)

४. आलोचनाकी नयी तलाश, डॉ. राघव प्रकाश, साहित्यागार, जयपुर (१९८७)

५. आधुनिक कविता और मिथक, डॉ. शंभुनाथ, नेशनल (१९८१)

६. आधुनिक कवितामें विचार, डॉ. बलदेव वंशी, मैकमिलन, दिल्ली (१९८२)

७. आधुनिक हिन्दी आलोचनाके बीज-शब्द, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्र. दिल्ली (१९८४)

८. प्रगतिशील आयाम, डॉ. शिवकुमार मिश्र, पंचशील प्र., जयपुर (१९८७)

९. अस्मिताके संवेदन, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, श्याम प्रकाशन, जयपुर (१९९०)

१०. काव्य-रस : चिन्तन और आस्वाद, डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन; वाराणसी (१९९०)

११. हिन्दी कहानी : सोच और समझ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, आत्माराम, दिल्ली (१९८६)

१२. गोर्की और प्रेमचंद : दो अमर प्रतिमाएं, मदनलाल 'मधु', पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

१३. कविताकी तीसरी आंख, प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल, दिल्ली (१९८५)

१४. काव्यके जीवनदायी द्वन्द्व और रामचंद्र शुक्ल, डॉ राजेश्वर सक्सेना, श्याम प्रकाशन, जयपुर (१९८९)

१५. पाश्चात्य नव्यालोचन, डॉ. श्यामबिहारी लाल।

१६. दूसरी परम्पराकी खोज, डॉ. नामवर सिंह, राजकमल, दिल्ली (१९८२)

१७. तीसरा यथार्थ, शंभुनाथ, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद (१९८४)

१८. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और भारतीय काव्य शास्त्र, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय।

१९. मीमांसा और पुनर्मूल्यांकन, डॉ. विश्वंभर नाथ, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर (१९८८)

२०. तुलनात्मक साहित्यकी भूमिका, डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी, नेशनल, दिल्ली (१९८३)

२१. मिथक-दर्शनका विकास, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद (१९८४)

२२. नाटककार मोहन राकेश : सम्वाद शिल्प, प्रो. मदनलाल, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली (१९९०)

२३. नयी कविताका वैचारिक आधार, सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण, दिल्ली (१९८७)

२४. प्रगतिशीलता और अभिव्यक्तिकी स्वाधीनता, डॉ. रणजीत, साहित्य निकेतन कानपुर (१९९०)

२५. रचना एक यातना है, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल, दिल्ली (१९८५)

२६. विचार-संवेदन : विविध आयाम, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर (१९९०)

२७. वैचारिक संवेदनाओंका कवि : बलदेव वंशी, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, सरस्वती प्रेस, दिल्ली/इलाहाबाद (१९९०)

२८. लोक साहित्य और संस्कृति, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद।

२९. बिम्बोंसे झांकता कवि : शमशेर, वीरेन्द्र सिंह, पंचशील, जयपुर (१९८३)

३०. वाद : विवाद : संवाद, डॉ. नामवर सिंह, राजकमल दिल्ली (१९८७)

३१. शैली विज्ञानका इतिहास, डॉ. पांडेय शशिभूषण शीतांशु।

३२. शैली विज्ञान : प्रकार और प्रतिमान, डॉ. शीतांशु, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ (१९८७)

३३. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी मिथक काव्य, डा. सविता गौड़, आशिर प्रकाशन सहारनपुर (१९८८)

३४. समकालीन हिन्दी नाटक : चेतनाके आयाम, सरला गुप्त भूपेन्द्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर (१९८७)

३५. समकालीन नाटक और रंगमंच, सं. राजमल बोरा, पंचशील, जयपुर (१९८९)

३६. सृजन और अंत:अनुशासनीय परिप्रेक्ष्य, वीरेन्द्र सिंह, श्याम प्र. जयपुर (१९८५)

३७. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान, डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा, अनुभव प्रकाशन, कानपुर (१९८७)

३८. समकालीन मार्क्सवाद, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पंचशील, जयपुर (१९८८)

३९. समकालीन आलोचना, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पंचशील, जयपुर (१९८७)

४०. साहित्य और किसान चेतना, डॉ. शंभुनाथ।

४१. साहित्य : अध्ययनकी दृष्टियां, डॉ. उदय भानु सिंह, नेशनल, दिल्ली (१९८६)

४२. साहित्य, समीक्षा, संस्कृतबोध, डा. देवराज।

४३. समकालीन कविताका यथार्थ, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, हरियाणा साहित्य अकादमी, (१९८८)

४४. समकालीन कविता : वैचारिक आयाम, डॉ. बलदेव वंशी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली (१९८६)

४५. समकालीन हिन्दी कहानी, बलराम, राजकमल, दिल्ली

४६. कहानी : सम्वादका तीसरा आयाम, बटरोही, नेशनल, दिल्ली (१९८५)

४७. समकालीन कहानी : युगबोधका सन्दर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, नेशनल (१९८६)

४८. समकालीन कहानी : रचना मुद्रा, डॉ. पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, (१९८६)

४९. समकालीन हिन्दी कहानी, डॉ. पुष्पपाल सिंह, हरियाणा साहित्य अकादमी (१९८७)

५०. हिन्दी कहानीके सौ वर्ष, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ।

५१. हिन्दीका समकालीन व्यंग्य साहित्य, डॉ. राजेश चौधरी, संघी प्रकाशन, जयपुर/उदयपुर (१९९०)

५२. हिन्दीके शरत् जैनेन्द्र, डॉ. रमेश जैन, विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर (१९८८)

५३. हिन्दीके व्यावसायिक साहित्यका समाजशास्त्र, डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, जोधपुर (१९८५)

५४. हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, साहित्यागार, जयपुर (१९८६)

५५. हिन्दीके आँचलिक उपन्यास, डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद (१९८९)

५६. हिन्दी नयी कविता : मिथक काव्य, डॉ. अश्विनी पाराशर, दीर्घा साहित्य संस्थान, दिल्ली (१९८५)

५७. हिन्दी कविताकी प्रकृति, डॉ. हरदयाल, सरस्वती प्रेस, दिल्ली (१९८६)

५८. हिन्दीके प्रतीक-नाटक और रंगमंच, डॉ. केदारनाथ सिंह, विद्या विहार, कानपुर (१९८५)

५९. हिन्दी कहानी, एक दशक : डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी, तारामंडल, अलीगढ़ (१९९०)

६०. नाट्य रचना विधान और आलोचनाके प्रतिमान, डॉ. नरनारायण राय, इन्द्रप्रस्थ प्रका. दिल्ली (१९८०)

६१. नटरंग विवेक, डॉ. नरनारायण राय, सन्मार्ग प्र. दिल्ली (१९८१)

६२. हिन्दी नाटक : सन्दर्भ और प्रकृति, डॉ. नरनारायण राय, पचौरी प्रका. दिल्ली (१९८७)

६३. नाट्य विमर्श, डॉ. नरनारायण राय, सन्मार्ग प्रका. दिल्ली (१९८४)

६४. रंग शिल्पी मोहन राकेश, डॉ. नरनारायण राय, कादम्बरी प्रका. दिल्ली (१९९०)

६५. कोणार्क रंग और संवेदना, डॉ. नरनारायण राय, कादम्बरी प्रका. दिल्ली (१९८७)

६६. असंगत नाटक और रंगमंच, डॉ. नरनारायण राय, वाणी प्रका. दिल्ली (१९८१)

६७. वैज्ञानिक एकांकी, डॉ. नरनारायण राय, सन्मार्ग प्रका. दिल्ली (१९८०)

पत्रिकाएँ (विशेषांक)

१. समकालीन सृजन (सम्पादक डा. शंभुनाथ, कलकत्ता) के तीन अंक —

(क) राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और प्रसाद अंक ४-६ (१९८८-८९)

(ख) जातिवाद और रंगभेद अंक ७-८ जुलाई-दिसम्बर १९८९।

(ग) गणेशशंकर विद्यार्थी और हिन्दी पत्रकारिता, अंक ९-१२ जनवरी १९९०।

२. दस्तावेज (सम्पादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, गोरखपुर) तीन अंक।

(क) हजारीप्रसाद द्विवेदी स्मृति अंक ५-६ अक्तूबर १९८०।

(ख) आठवें दशककी हिन्दी कविता अंक १३-१४ अक्तूबर १९८१।

(ग) रामविलास शर्मा, अंक २३-२४ अप्रैल-जुलाई १९८४।

३. पहल (सम्पादक ज्ञानरंजन, जबलपुर) का अफ्रीकी साहित्य अंक ४१ (१९९०)

४. दीर्घा, संपादक : डॉ. विनय, (दिल्ली) समकालीन उपन्यास अंक ४ दिसम्बर (१९८७)

५. मधुमाधवी (संपादिका नलिनी उपाध्याय) जयपुरके दो अंक।

(क) समकालीन आलोचना, अंक २२, जून १९८५।

(ख) डॉ. रामविलास शर्मा अंक ३१-३२, जुलाई दिसम्बर १९८७।

६. वैचारिकी (संपादिका, मणिका मोहिनी, बम्बई) का अज्ञेय अंक : अप्रैल-जून १९८८।

७. सम्पर्क (सम्पादक : डा. सुरेशचंद्र त्यागी, सहारनपुर) नागार्जुन अंक मार्च १९८४।

८. प्रकर (संपादक वि. सा. विद्यालंकार, दिल्ली) 'भारतीय पुरस्कृत साहित्य' विशेषांक १९८१-१९९२ (प्रत्येक वर्ष) ☐

अध्ययन : अनुशीलन

रचना : अस्मिताकी तलाश[1]

लेखक : घनश्याम शलभ

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

प्रो. घनश्याम 'शलभ' हिन्दीके प्रख्यात कवि, कथाकार और आलोचक हैं। 'रचना : अस्मिताकी तलाश' के नामसे उनके समीक्षात्मक निबन्धोंका संग्रह अभी हालमें प्रकाशित हुआहै, जिसमें उन्होंने हिन्दीके शीर्ष साहित्यकारों—मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर 'प्रसाद' आदिके कृतित्वका मूल्यांकन प्रस्तुत कियाहै। परन्तु संग्रहके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबन्ध डॉ. रांगेय राघव और विजयसिंह 'पथिकके साहित्य-सृजनसे सम्बन्धित हैं। 'शलभ' ने साहित्यकी रचना-प्रक्रियाके सन्दर्भमें यह प्रश्न उठायाहै कि कोई रचना 'कालजायी' होते हुए भी 'कालजयी' होनेमें समर्थ कैसे हो जातीहै ? उधारके विचारोंको भीखकी भाषामें व्यक्त करनेवाली रचनाएं अपनी सार्थकताको प्रमाणित करनेमें सक्षम नहीं होतीं क्योंकि उनमें सर्जक के अन्तरंगका साक्षात्कार नहीं होता। वे फुलझड़ीकी भांति जलते ही बुझने लगतीहैं। 'शलभ' की मान्यता है "हर रचनाकार अपनी कृतियोंमें सृजन-कार्यके अन्तरालमें अस्मिताकी तलाश निरन्तर जारी रखताहै।" उन्होंने रचनाके समान्तर आलोचनाके स्तरपर भी रचनाकारकी इसी अस्मिताकी तलाशको आविष्कृत करनेका प्रयास कियाहै।

"जो पीछे आ रहे उन्हींका, मैं आगेका जयजयकार" घोषित करनेवाले मैथिलीशरण गुप्तके कन्धोंपर बैठकर ही हिन्दीकी एक अर्द्ध-शताब्दीकी कविता-यात्रा सम्पन्न हुईहै। उनके समवयस्क माखनलाल चतुर्वेदीने यह निर्द्वन्द्व भावसे स्वीकार कियाहै "मेरे लिए तो उस समय गुप्तजी ही सब कुछ थे। वे प्रेरक थे, मार्ग-दर्शक थे और क्या नहीं थे।" छायावादकी महीयसी कवयित्री महादेवी वर्माको भी यह स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं होता कि "यदि दद्दा नहीं होते तो हमलोग न होते। मेरा मतलब है कि छायावाद युग आता ही नहीं।" इन प्रशस्तियोंके साथ ही गुप्तजीकी कविता पर बहिर्मुखता, इतिवृत्तात्मकता, अति आदर्शवादिता, प्रतिगामिता और रूढ़ नैतिकतासे ग्रस्त होनेके आरोप भी लगाये जाते रहेहैं। 'शलभ' को भी यह शिकायत है कि गुप्तजीकी नायिकाएं तो पौराणिक सामन्त वर्ग की सीमाके बाहर आ ही नहीं सकीथीं। परन्तु विष्णुप्रियापर भी क्या यह आरोप लगायाजा सकताहै ? हम यह भूल नहीं सकते कि गुप्तजी ही एकमात्र ऐसे हिन्दी कवि हैं जिन्होंने कार्ल मार्क्सकी पत्नी जेनीको भी 'जयिनी' के नामसे अपनी एक लम्बी कविताकी नायिका बनायाहै। कुल मिलाकर, गुप्तजीके सम्बन्धमें डॉ. शलभका यह वक्तव्य नपा-तुला प्रतीत होताहै "उन्होंने राष्ट्रके अतीतकी गहराइयोंमें उतरकर, पुराकालिक जीवन-गाथाओं और इतिवृत्तोंको नवोन्मेषके साथ फिर रूपायितकर, उस मूल्यवान् सांस्कृतिक निधिकी और आजके बदलते और विनष्ट होते हुए मानवीय सम्बन्धों की रक्षा की।"

आलोच्य पुस्तकमें कविवर 'प्रसाद' से सम्बन्वित दो निबन्ध हैं। जयशंकर 'प्रसाद' पुनर्मूल्यांकनके बिन्दु में किसी उपाध्याय (जिनका नाम-निर्देश नहीं किया गयाहै) के द्वारा उठायी गयी आपत्तियोंके निराकरणका प्रयास किया गयाहै। इन उपाध्यायको छायावादमें तथाकथित धर्मवादके बीज दिखायी पड़ेथे। परन्तु, डॉ. शलभ न 'प्रसाद' को सामन्तवादी स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत है और न पुरा मूल्योंका प्रवक्ता। उनकी स्थापना है कि 'प्रसाद' की मूल्यदृष्टि लोकोन्मुखी और जनधर्मी है। दूसरे निबन्धमें कवि मुक्तिबोधकी

---

[1] प्रका. : श्याम प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : १७६; डिमा. ९२; मूल्य : १००.०० रु.।

पुस्तक 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में प्रस्तुत इस अवधारणाका प्रबल प्रतिवाद किया गयाहै कि 'प्रसाद' का श्रद्धावाद प्रतिक्रियावादी और शुद्ध पलायनवादी है। 'मुक्तिबोध' की मान्यताके विरुद्ध डॉ. शलभने यह प्रतिपादित कियाहै : 'लोकसेवा' वह मूल्य है, जिसे 'प्रसाद'जी ने बार-बार रेखांकित कियाहै। "इस तुमुल कोलाहलके कलह युगमें 'कामायनी' जो मनुष्यके 'हृदयकी बात' कहतीहै, वह अबभी अत्यन्त प्रासंगिक और मनुष्यताके लिए श्रेयस्कर है।"

डॉ. शलभने कवियोंके कवि माखनलाल चतुर्वेदी और चिन्तक कथाकार जैनेन्द्रकुमारके साहित्यकी भाव-भूमिका विश्लेषण करते हुए दो निबन्ध प्रेषित कियेहैं, जो इन सुप्रतिष्ठ साहित्यकारोंके सम्बन्धमें प्रचलित धारणाओंका ही पुनर्प्रस्तुतीकरण करतेहैं। "दादा अलखकी आवाजको अनसुनी न करते हुए भी 'समय के पाँव'को पूरी तरह पहचानतेथे। दादाकी क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता महज राजनीतिकी राष्ट्रीयता नहीं है जो राजनीतिके समय-समयके रूपोंके साथ बदलती रहती है। उनकी राष्ट्रीयता तो भारतकी गौरवपूर्ण सांस्कृतिक विरासत है।" डॉ. शलभकी इस मान्यतासे सभी सहमत नहीं होंगे कि जैनेन्द्रके पात्र उस कृती चिन्तक की कठपुतली भर हैं; क्योंकि जैनेन्द्रने अपने नारी पात्रोंके अन्तस्‌में प्रवेशकर उनके गहन अन्तर्द्वन्द्व और वैचारिक ऊहापोहको जो सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है, उसे अनदेखा नहीं कियाजा सकता।

अपने अल्पावधिक रचना-कालमें प्रभूत साहित्य-सृजन करनेवाले डॉ. रांगेय राघवपर समीक्षकोंका ध्यान बहुत कम गयाहै। डॉ. शलभने अपने निबन्धमें इस उपन्यासकारके 'घरौंदा', 'हुजूर', 'मुर्दोंका टीला', 'कबतक पुकारूं' और 'आखिरी आवाज' आदि प्रमुख उपन्यासोंकी अन्तर्वस्तुका सामाजिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें विशद विश्लेषण प्रस्तुत कियाहै। रांगेय राघव ने प्रागैतिहासिक कालसे लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक भारतके विभिन्न युगोंको अपने उपन्यासोंमें उनके पूरे समय-सन्दर्भके साथ चित्रित कियाथा। अपने मार्क्सवादी दृष्टिकोणके आधारपर उपन्यासकारने समाजमें व्याप्त वर्ग-वैषम्य और तज्जनित संघर्षको अपने औपन्यासिक कृतियोंके केन्द्रमें प्रतिष्ठित कियाहै। उन्होंने शोषण-चक्रमें पिसनेवाले दासों, श्रमिकों और कृषकोंको अपनी अकुण्ठ सहानुभूति प्रदान कीहै। नारी तो प्रत्येक युगमें शोषणका शिकार रहीहै। डॉ. शलभके निबन्धमें ये सभी बिन्दु उभरकर सामने आयेहैं। रांगेय राघव की 'गदल' कहानी हिन्दीकी शीर्ष कहानियोंमें स्थान पाने योग्य है। आलोच्य निबन्धमें आलोचकने उनकी कहानियोंके कथ्य और शिल्पका विश्लेषण करते हुए अपना यह प्रमाण-पुष्ट मत प्रस्तुत कियाहै "....इनकी कहानियां जीवनके विविध पक्षोंको उजागर करतीहै। प्रेमचन्दके बाद जीवनका इतना वैविध्य, विस्तार और उसकी अंतरंग गहराई एकही लेखकमें बहुत कम मिलतीहै।"

आलोच्य पुस्तकका सबसे महत्त्वपूर्ण निबन्ध है—क्रान्तिचेता 'पथिक'जी के सृजनात्मक साहित्यकी भावभूमि'। विजयसिंह 'पथिक' नाम है क्रान्तिकी एक ज्वलन्त चिनगारीका जिसने सरदार पटेलके बारडोली आन्दोलनके पहलेही राजस्थानके एक पिछड़े हुए बिजोलिया अंचलमें संगठित किसान आन्दोलनके द्वारा अंग्रेज सरकार, मेवाड़की रियासती हुकूमत और बिजोलिया ठिकानेकी जागीरी तानाशाहीकी सम्मिलित शक्तियोंको घुटने टेकनेके लिए मजबूरकर दियाथा। उत्तरप्रदेशके गुठावली ग्राम (जिला बुलन्दशहर) में जनमे भूपसिंहको प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता रासबिहारी घोषने शस्त्र खरीदनेके लिए राजस्थानमें भेजाथा; परन्तु यही भूपसिंह बिजोलियामें किसान आन्दोलनके सर्वेसर्वा बनकर तत्कालीन रियासती राजनीतिके प्रमुख सूत्रधारके रूपमें उभरकर सामने आयेथे। यह विधिकी विडम्बना ही कही जायेगी कि एक बार राजनीतिके शीर्षपर आरोहण करनेके बाद 'पथिक' अधिक समय तक उसपर आरूढ़ नहीं रह सके। गांधीजीके साथ मतभेदकी उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। उनके सम्बन्धमें स्वयं गांधीजीने एक बार 'हरिजन' में लिखा था "वह (पथिक) सिपाही है, बहादुर है, जोशीला है, और तेजमिजाज है, लेकिन जिद्दी है।" जिद्दी तो वह था क्योंकि यदि अपने विचारोंके लिए उसका दुरन्त आग्रह नहीं होता तो क्या वह साम्राजी, रियासती और जागीरी सत्ताकी सम्मिलित शक्तियोंके विरुद्ध अंगदकी भांति पांव जमाकर खड़ा हो सकताथा? उनके प्रखर तेजको उनके साथी और अनुयायीभी सहन नहीं कर सके। उनके विरुद्ध शक्तिशाली क्षत्रियों द्वारा जो मुहीम चलायी गयी, उसने 'पथिक' को मंचसे उतारकर राजनीतिके नेपथ्यमे ढकेलकर छोड़ा। यह

विधिका एक व्यंग्य ही कहा जायेगा कि राजस्थानकी राजनीतिके तीन सर्वाधिक ज्वलन्त और शक्तिमान पुरुष —अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह 'पथिक' और केशरीसिंह बारहठ अपने जीवनकी सांध्य-वेलामें घोर उपेक्षा और अवहेलनाके शिकार हुए और अपनी मृत्यु के पूर्व ही राष्ट्रीय जीवनके हाशिएपर चले गयेथे। डॉ. शलभने अपने निबन्धमें 'पथिक' को एक राजनेता के रूपमें नहीं, हिन्दी और राजस्थानीके समर्थ कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहासके अनुसंधाताके रूपमें उपस्थित किया है। जो नर-शार्दूल अपनी एक टांग नरभक्षी बाघकी दाढ़में फंसी हुई होनेपर भी अपने हाथसे गोली मार कर उसका काम तमाम करदे, उसका साहित्य कल्पना के सुख-स्वर्गमें विहार करनेके सपनोंका साहित्य नहीं हो सकता। उनकी कविताओंकी पंक्तियां आगकी चिनगारियोंकी भांति हैं जो मुर्दोंमें भी शक्ति और स्फूर्तिका संचार कर सकतीहै। 'पथिक'ने हिन्दीमें ही नहीं; उर्दू और राजस्थानीमें भी काव्य-रचना कीथी। उनका प्रबन्ध काव्य 'प्रह्लाद विजय' एक ऐसी उत्कृष्ट रचना है, जो असत्यपर सत्यकी विजयके माध्यमसे अंग्रेज सरकारपर राष्ट्रीय स्वतंत्रताके संघर्षकी सफलताका जयघोष करतीहै। 'पथिक' की सभी रचनाओंमें—चाहे वह कविता हो या कहानी, उपन्यास हो या गद्य काव्य —राष्ट्रीय स्वतंत्रताके महान् लक्ष्यके प्रति प्राणोत्सर्ग और सर्वस्व समर्पणकी वीर-भावनाकी ही अभिव्यक्ति हुईहै। अपने ऐतिहासिक ग्रंथोंमें भी उन्होंने भारतकी राष्ट्रीय अस्मिताको रेखांकित करने का ही प्रयास कियाहैं। अपने एक मित्रको पत्र लिखते हुए 'पथिक' ने अपने मनकी व्यथा और विक्षोभको इन शब्दोंमें व्यक्त कियाथा "जिन व्यक्तियोंके हाथमें इस समय सत्ता और साधन हैं, वे जहां सत्ता और साधनके लिए परस्पर लड़ रहेहैं और जीवनके पवित्रतम सिद्धांतोंका बलिदान कर रहेहैं, वहां उनमें दूसरोंके कामोंका श्रेय खुद लूटनेकी धुनभी सवार हो गयीहै। झूठे इतिहास गढ़े जा रहेहैं। तिलक, रासबिहारी बोस और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तक भुलाये जा चुकेहैं। फिर औरोंकी बात ही क्या?" ऐसे ही एक बिस्मृत लोकाराधक और साहित्य साधककी विविध विषयक उपलब्धियोंको प्रकाशमें लाकर डॉ. शलभने एक सारस्वत श्राद्ध करनेका पुण्य-लाभ कियाहै।

'रचना : अस्मिताकी तलाश' का लेखक एक आलोचक होनेके साथही कवि भी है। उन्हें इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिये कि इन समीक्षात्मक निबन्धोंमें वे कवि सुलभ भावुकता और पक्षधरतासे दूर रहते हुए यथासंभव एक विवेचकके लिए अपेक्षित यथातथ्यताके आंचलको आग्रहपूर्वक पकड़े रहेहैं। 'मैथिलीशरण', माखनलाल', 'प्रसाद' और जैनेन्द्र आदि के सम्बन्धमें उन्होंने आलोचनाके विविध स्तरोंका समाहार करते हुए जो कुछ लिखाहै, उसमें विशेष नव्यता या मौलिकताका आभास न होते हुएभी अतिवादितासे मुक्त रहनेका सुचिन्तित प्रयास अवश्य दृष्टिगोचर होताहै। डॉ. रांगेय राघवपर उन्होंने जम कर लिखाहै। क्रान्तिचेता 'पथिक' के साहित्यकी भावभूमिका डॉ. शलभने जो समग्र विवेचन प्रस्तुत कियाहै, वह इस संग्रहका सबसे महत्त्वपूर्ण आलेख है और केवल इसके कारणही यह पुस्तक स्मरणीय और संग्रहणीय बनी रहेगी। ⊡

छायावादोत्तर हिन्दी कविता[1]

लेखक : डॉ. द्वारिकाप्रसाद ब. सांचीहर

समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

डॉ. सांचीहरके प्रस्तुत शोध प्रबंधसे गुजरते हुए मुझे हमेशा यह लगता रहा कि मैं शोध प्रबन्धकी संरचनासे तो अवश्य गुजर रहाहूँ (क्योंकि इसकी प्रविधि होतीहै), पर इसके साथही, लेखककी वैचारिकता और कुछ नये आयामोंको देखकर लगा कि यह शोध प्रबंध, आजके शोधप्रबंधोंकी निम्न स्तरीयताको तोड़ताहै। इस पूरे प्रबंधमें छायावादी कविताको परंपरा के रूपमें लेते हुए, उसके संबंधको परवर्ती काव्य-धाराओं में निर्दशित करते हुए लेखकने विचार-बोध, भावबोध और शिल्पबोधके अन्तर्गत आयावादके बादकी कविता को विवेचित कियाहै। लेखकने विचार-भाव बोधको अलग-अलग लियाहै—यदि इसके स्थानपर 'विचार-संवेदन' का प्रयोग होता तो विवेचन और मूल्यांकनका एक नया प्रारूप समक्ष आता। इसका कारण यह है कि आजकी आलोचनामें नये पारिभाषिक आलोचना

---

[1] प्रका. : चिन्ता प्रकाशन, पिलानी (राजस्थान)। पृष्ठ : ३०४; डिमा. ९०; मूल्य : १६०.०० रु.।

के बीज शब्द आ रहेहैं और विचार-संवेदन, संरचना, ऊर्जा, गुरुत्वशक्ति, अंतःअनुशासनीय आदि ऐसेही बीज शब्द है। यह तथ्य यह स्पष्ट करताहै कि भिन्न ज्ञानानुशासनोंके 'शब्द' हमारी आजकी आलोचनामें क्रमशः स्थान पाते जा रहेहैं। यदि लेखक इस बातका ध्यान रखता एवं प्रयोग करता, तो मेरे विचारसे यह शोधप्रबंध और महत्त्वपूर्ण होजाता। फिरभी, लेखकने अत्यन्त श्रमसे और तार्किक विधिसे काव्य धाराओं और अवधारणाओंका जो विवेचन-विश्लेषण कियाहै, वह लेखककी आलोचनात्मक शक्तिका परिचय देतेहैं जिसकी अनेक संभावनाएँ हैं।

लेखकने छायावादके भिन्न पक्षोंका विवेचन किया है जो अधिकतर होता आयाहै। छायावादके राष्ट्रीय आंदोलन पक्षपर कम विवेचन हुआहै क्योंकि यह पक्ष छायावादके मूल्यांकनमें नकारा गयाहै या सतही तौर पर संकेतित किया गयाहै। "प्रसाद और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन" पर इधर काफी कार्य हुआहै, विशेषकर डॉ. शंभुनाथने 'समकालीन सृजन' पत्रिका (कलकत्ता) के एक अंकको ही इस विषयपर केन्द्रित कियाहै। फिरभी, लेखकने 'तुलसीदास' (निराला) को पहली मनोवैज्ञानिक रचना (पृ. ३१) कहकर उसे एक नया सन्दर्भ दियाहै। यही नहीं, लेखकने छायावाद और छायावदोत्तर काव्यकी सीमा निर्धारित करते हुए दोनों के संवादको रेखांकित कियाहै। उसका माननाहै कि छायावादी कविताकी सीमा-पूर्ति वैयक्तिक कविताने की तो वैयक्तिक कविताकी सीमा-पूर्ति सामाजिक यथार्थवादी-प्रगतिशील कविताने की, प्रगतिशील कविताकी मर्यादाओंको प्रयोगवादी कविताने और प्रयोगशील कविताके सीमाचिह्नोंको नयी कविताने मिटाया" (पृ. ६३)। मेरे विचारसे छायावादी कविता को एकांतिक वैयक्तिक कविता कहना अतार्किक होगा और सत्यके प्रति आंख मूंदना। इसपर भी लेखकने छायावादोत्तर कविताके विकास एवं द्वन्द्वको रेखांकित करते हुए, उसे एक ऐतिहासिक फलक देनेका जो प्रयत्न कियाहै, वह सराहनीय है।

स्वच्छंदवादी कविताका मूल्यांकन करते हुए लेखकका यह कहना न्यायसंगत है कि "इस कविताका मुख्य अंश हालावाद है, पर वह समग्र नहीं (पृ. ६८)। इसका कारण यह है कि हालावादका मानदण्ड सभी कवियों (यथा दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि) पर समान रूपसे लागू नहीं होता। वस्तुतः यह काव्य धारा छायावादकी अतिसूक्ष्मताके स्थानपर 'स्थूलता' और जीवनके रागतत्वको व्यापक संदर्भ देतीहै। प्रगतिवादी कविताके मूल्यांकनके संदर्भमें यह बात काफी सही है कि इस दर्शनको न पचाकर कई कवियों ने मात्र उसकी प्रशंसा और प्रशस्ति गाकर अपनेको मार्क्सवादी सिद्ध करना चाहा, इससे परिपक्व विचार-बोध भी नहीं आ सका! (पृ. १४०)। इसपर भी लेखकने इस धाराके कवियों (यथा पंत, निराला, अंचल आदि)को सही निर्धारित करते हुए, प्रगतिवाद के साहित्यिक रूपको मान्य ठहराया क्योंकि अनेक कवियोंने इस चेतनाकी जीवन्त रचनाएं प्रस्तुत कीं। (पृ. १४०-१४१)।

लेखकने प्रयोगवादी और नयी कविताका सापेक्ष सम्बन्ध मानते हुए नयी कविताको एक व्यापक संदर्भ में लियाहै। प्रयोगशील कविता जहां कलात्मक सिद्धि को, अहंके दूषित रूपको, तथा परम्परासे विच्छिन्नता की स्थितिको महत्त्व देतीहै, वहीं नयी कवितामें इन तत्त्वोंका सही प्रतिपादन भी हुआ और साथही, जीवन-यथार्थके बाह्य एवं आंतरिक रूपोंके प्रति एक सजग विचार-संवेदनकी 'रचनात्मकता' सामने आयी। लेखक ने इस पूरे संदर्भको विचार, भाव और शिल्प-बोधकें अन्तर्गत विवेचित कियाहै जो शोध प्रविधिके अन्तर्गत एक अनिवार्य शर्त है। लेखकने अतियथार्थवादका जो विवेचन कियाहै, उसमें इसे फ्रायडके मनोविश्लेषणवाद से जोड़ाहै, जो ठीक हैं, पर अतियथार्थवाद मार्क्सवाद से प्रभावित है, यह न्यायसंगत नहीं हैं क्योंकि अति-यथार्थवाद अन्तर्मुखतापर बल देताहै तो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद बाह्य यथार्थको। (पृ. १५६)। एक छोर पर यदि अतियथार्थवाद है, तो दूसरे छोरपर मार्क्सवाद। हां, इतना अवश्य है कि मार्क्सका द्वन्द्व-न्याय एक आंतरिक तथ्य भी है जितना बाह्य, इससे अन्तर्मुखताके द्वन्द्वगत रूपको अवश्य समझा जा सकताहै।

नयी कविताके संदर्भमें लेखकने 'क्षण और 'सम्पूर्ण' के सम्बन्धका जो विवेचन कियाहै, वह सार्थक है। 'क्षण'के प्रवाहमें सम्पूर्णता व्याप्त होतीहै जो विज्ञान-दर्शनका भी सत्य है उसे भी संकेतित करना आवश्यक था। यदि लेखक कालबोध और विज्ञानबोध को भी लेता तो ये नये विषयभी होते पर लेखकने इन्हें

नहीं लिया जबकि नयी कवितामें कालबोध और विज्ञान बोधके अनेक सुन्दर रूप प्राप्त होतेहैं।

नयी कविताके सन्दर्भमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं जिसे लेखकने प्रस्तुत कियाहै। एक यह कि "नयी कविताने सिद्ध कर दियाहै कि कविता मुद्रित अथवा गेय रूपमें ही नहीं, पाठ्य रूपमें भी सम्प्रेषणीय हो सकतीहैं।" (पृ. २८८)। दूसरी बात लयके भिन्न रूप हैं जिसमें 'शब्दकी लय' और 'अर्थकी लय' का विवेचन सार्थक है तथा लेखकने यह सही मानाहै कि शाब्दिक लयसे 'अर्थकी लय' अधिक महत्त्वपूर्ण है। फिरभी दोनोंका सापेक्ष सम्बन्ध हैं। (पृ. २८९-९०)।

अंतमें, लेखकने नयी कविताकी विकसनशील प्रकृतिका जिक्र करते हुए उसे महत्त्व दियाहै, लेकिन नयी कविताका दौर १९६० के बाद एक नयी दिशा की ओर अग्रसर है जो संघर्षशीलता और यथार्थसे सीधे जुड़कर, विचार-संवेदनके भिन्न आयामोंको, भाषाकी 'सहजता' को पूरे रूपमें आत्मसात् करते हुए, युग-चेतनाको वाणी दे रहीहै। लेखकने साठोत्तरी कविता को नहीं लियाहै जो शायद शोध-प्रबंधके अन्तर्गत न लिया गयाहो।

समग्र रूपसे, लेखकका यह शोध प्रबंध विचार-संवेदनके नये रूपोंको तथा पुराने प्रत्ययोंको पुनर्विवेचित करनेमें सफल हैं और शोध प्रबंधके 'बंध'के अन्दर लेखक ने अपनी मौलिक एवं विवेचनात्मक दृष्टिका सुन्दर परिचय दियाहै। आशा है कि लेखक इस दृष्टिको और विकसित करेगा। ☐

छायावादी काव्यमें संगीत तत्त्व

लेखक : डॉ. कौशलनन्दन गोस्वामी

समीक्षक : शलभ

भारतीय काव्यकी वरणीय गुणवत्तामें सन्निहित संगीत-तत्त्वने सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायीहै। वैदिक वाङ्मयके छांदस नादसे लेकर आधुनिक युगतक में भी नरेश मेहता जैसे अनुभूति-प्रवण कविके कृतित्वमें आन्तरिक संगीतकी लयात्मकताका प्रभाव देखाजा सकताहै। यहभी कितनी महत् सत्य-प्रतीति है कि हमारे यहां कभी 'सप्तस्वर सप्तसिन्धुमें उठे' थे 'छिड़ा तब मधुर साम संगीत'—और उस उपलब्धिकी अनुगूंज अबभी हिन्दी काव्य-युगके ऋतुराज कहे जाने वाले छायावादी काव्यके सर्वाधिक समर्थ पुरोधा कवि प्रसादके कृतित्वमें, अन्त:सलिलाकी तरह स्वरित होती रही।

इसी काव्य-युगकी देन है महादेवीभी, जो बकौल सुमित्रानन्दन पंतके "वसंत वनकी सबसे मधुर भाव-मुखर पिकी है।" स्वर, श्रुति, मूर्च्छना, लय, तान, नाद, मीड़-मात्रा, ताल, गति-ग्राम आदिसे सम्पन्न है इस गीति-काव्य युगका विशिष्ट और विस्तृत सीमान्त।

वाल्मीकिकी कल्पनाप्रसूता अमर लेखनीने जिस रागात्मक काव्यको जन्म दियाहै, उसके आन्तरिक संगीतकी प्रेयस लय समग्रत: भारतीय काव्यकी अपनी विशिष्टता रहीहै, उसकी अक्षरता आजभी बनी हुई है। 'तंत्री, नाद, कवित्त-रस' की भाववादी काव्य-शास्त्रीय परम्परा, इस देशके वागर्थियोंकी उज्ज्वल उपलब्धि रहीहै। 'मेघदूत' की गेयतामें 'मंदक्रान्ता' का कितना योगदान रहाहै, वह छिपा नहीं है। हमारे रवि ठाकुर तक कहतेथे कि कोई विरहिणी उनके अन्त:-करणमें बैठीहै, जो निरंतर गाती रहतीहै। वहीं जहां कभी 'आहसे उपजा होगा गान' तभी चुपचाप अनजाने ही बनी होगी कविता भी। पंतकी वाणीका 'गुंजन' तभी तो उनके तपते मधुर मनका गीत बन पाया? फिर 'आराधना' हो या 'अनामिका', 'अर्चना' हो या 'गीतिका', 'नीहार' हो या 'दीपशिखा', हिन्दीके इस काव्य-वसंतमें तो प्रेमकी कालिन्दी तक 'गाती यमुना नृत्यपर, गीत कल-कल स्वर'। यही नहीं, इस काव्य-युगके विद्रोही कविके ये आत्मनिनादित स्वर कि—'तुम रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य/मैं मुखर मधुर नूपुर ध्वनि' की ओजस्विनी चेतना युगपरिवर्तनके लिए उद्वेलित दिखायी देतीहै। श्यामासे गुहारती रहीहै यही वाणी कि 'एक बार तू फिर नाच री श्यामा'। क्योंकि इस युगका कविभी 'बरसो ज्योतिर्मय जीवन' का प्रकामी जो रहाहै? जीवनकी समरसताका गीत वह भी गाता रहाहै—'गूंजे जय ध्वनिसे आसमान/मानव मानव सब हैं समान'। समानताकी इसी अवधारणा का गीत-संगीत 'कामायनी' में महत् उत्कर्षपर पहुंच पायाहै। नृत्य, गायन और वादनका समारोहपूर्ण

---

१. प्रका. : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली। पृष्ठ : २६०; डिमा. ९१; मूल्य : १५०.०० रु.।

आरोह-अवरोह इस काव्य-युगकी अपनी विशेषता रही है, नृत्यके विषयमें तो स्वयं कविने कहाहै—

'नाचमें यह मेरा ही जीवन खुला
पैरोंसे मैं ही तुला ।
कत्थक हो या कथकली या बालडांस
क्लियोपेट्रा, कमल-भौंरा, कोई रोमांस
बहेलिया हो, मोर हो, मणिपुरी, गरबा
पैर, माथा, हाथ, गर्दन, भौंहें मटका
नाच अफ्रीकन हो या यूरोपीयन
सबमें मेरी ही गढ़न—(निराला)

इस युगके कवियोंको रवीन्द्र-संगीत भी बहुत प्रीतिकर लगाथा । पंत और निरालाका गेयताकी ओर रुझान इस बातकी साक्षी है । रवि ठाकुरका काव्य-युगभी समसामयिक जो रहाथा, तो उसका प्रभाव उपर्युक्त कवियोंपर पड़ना स्वाभाविक ही था । 'छंदके बंध' खुल जानेपर भी 'प्राश' मय गीति-स्वरोंके 'रजत-पाश' इस युगकी कवितामें सदैव विद्यमान रहे—उसकी मानसिक चेतनाकी आन्तरिक लयात्मक झंकृति के रूपमें । पूर्व और उत्तरछायावादी कवियोंने भी इस काव्ययुगके स्वर-संयोजनमें महत्त्वपूर्ण योग दियाहै—'वेणु लो, गूंजे धरा' या 'आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय' जैसे भावोच्छलित गीत 'एक भारतीय आत्मा' और वर्माजी (डॉ. रामकुमार वर्मा) की लेखनी या उस समय लिखती रहीथीं ।

'छायावादी काव्यमें संगीत-तत्त्व' के लेखकने श्रमपूर्वक इस युगके लगभग सारे काव्य-सीमान्तमें स्वरित सुरीले शास्त्रीय संगीतकी राग-रागिनियोंके प्रभावका न केवल आकलन कियाहै, बल्कि कतिपय महत्त्वपूर्ण गीतोंकी स्वरलिपियां भी प्रस्तुत कीहैं । अपना यह प्रबन्ध उसने ग्यारह अध्यायोंमें विभक्त कर, प्रथमतः 'साहित्य और संगीत : तात्त्विक विवेचन' कियाहै । दूसरा अध्याय —'भारतीय वाङ्मयमें 'संगीत परम्परा' का है । तीसरा 'छायावादी कवियोंकी संगीताभिरुचि : कारण और प्रभाव' पर है । तदनन्तर 'प्रसादके काव्यमें संगीत-तत्त्व', 'पंतके काव्यमें संगीत-तत्त्व', 'महादेवीके काव्यमें संगीत-तत्त्व', निरालाके काव्यमें संगीत-तत्त्व', और 'छायावादके अन्य प्रमुख कवियोंके काव्यमें संगीत-तत्त्व' निरूपणपर है । सांगीतिक शब्दावली और संगीत तत्त्वोंका विश्लेषण भी इसी सन्दर्भमें किया गयाहै । विविध नृत्य प्रणाणियों, तालों और तालवाद्यों एवं तार-वाद्योंका भी परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै ।

यही नहीं, विवेच्य कवियोंकी सांगीतिक रुझानों, उनके काव्यमें व्यक्त शंख, तुरही, मजीरे, करताल, क्लेरीयनेट, ड्रम, फ्लूट, गीटार, मृदंग, ढोलक, तबला खंजरी, घड़ियाल, घंटे, जलतरंग, वीणा, सितार, सरोद, वेणु, वायलिन आदिका परिचयात्मक उल्लेख किया गयाहै । 'वर दे वीणावादिनी वर दे', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', 'बदरिया थम थमकर झर री', 'एक दीपक किरण कण हूँ', 'मैं नीरभरी दुखकी बदरी', 'तप रे मधुर मधुर मन', 'बीती विभावरी जागरी', 'तुमुल कोलाहल कलहमें, मैं हृदयकी बात रे मन' जैसे बहुचर्चित गीतोंकी स्वरलिपियां मय राग और तालके उल्लेखके साथ दी गयीहैं । राग देश, भैरवी, भीमपलासी, मियां मल्हार, सिन्दूरा, हिन्दोल, श्री, बहार, वृन्दावनी सारंग, यमन, बिलावल, बसंत, पूरिया, आसावरी आदि, ऋतु और समय-सिद्धान्त आदिका विवरण-विश्लेषण भी इस ग्रन्थकी अपनी विशेषता रहीहै । इसके आरम्भमें ही लेखकने संगीतप्रेमी पाठक के लिए संगीत-संकेत सूची भी दीहै । राग और रसका भी परिचय लेखकने दियाहै । छायावादी काव्यमें सन्निहित संगीतके कलापूर्ण स्वर-संयोजन, लय और तालका विवेचन इस ग्रंथका महत्त्वपूर्ण पक्ष है । काव्य के बहाने लेखकने अपने शास्त्रीय संगीतके ज्ञानका परिचय करायाहै ।

वस्तुतः 'म्यूजिक हैथ चार्म'—शेक्सपीयरकी यह उक्ति इस बातकी परिचायक है कि काव्यको संगीतके स्वर चमत्कारी स्पर्शकी दीप्ति देतेहैं । आचार्य रामचंद्र शुक्ल तो मानतेही थे कि 'नाद सौन्दर्यसे कविताकी आयु बढ़तीहै ।' एडगर ऐलन पो जैसे कृतिकारने भी 'काव्यको सौन्दर्यकी संगीतात्मक सृष्टि' कहाहै । इस लेखकने भी रोमांटिक रिवाइवल युगके कतिपय साहित्य-चिन्तकोंके विचार प्रारंभिक अध्यायोंमें उद्धृत कियेहैं । शोध-प्रबन्ध लेखनकी पारम्परिक प्रक्रिया का चक्कर ही ऐसा है कि हर अनुसंधित्सुको उससे गुजरना पड़ताहै । हिन्दीके अधिसंख्य शोध प्रबन्ध इसके साक्षी हैं, बार-बार उन्हीं चिन्तकोंके विचारोंका प्रदर्शन, अपने विषय-प्रतिपादनके लिए शोधार्थी करते रहतेहैं तो पाठकके मनमें ऊब पैदा करतेहैं ।

भारतीय काव्य-संसारके गीतिकाव्यकी सुदीर्घ

परम्परा स्वयं इस बातका प्रमाण है कि वह मनुष्यके अन्त:करणमें रागात्मक बोध जगाती रहीहै। न जाने कितने समयसे कितने संतों, भक्तों, कवियों और शास्त्रीय तथा लोकगीत गायकोंने अपने गीतोंकी सरस लेकिन सार्थक गहरी अर्थवत्तासे जनमनको उद्वेलित कियाहै। उसे प्रेरणास्पद भावानुभूतिसे भराहै, समय-समयपर उसे जागृति-चैतन्यसे मंत्रविद्ध-सा कर दिया है।

परन्तु यहभी उतनाही सच है कि छायावादी काव्यने ही हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें मुक्तछंदकी अवतारणा कीथी, जिसके श्रेयस महाकवि हैं निराला। फिरभी छंदकी आन्तरिकताकी लय-सत्ताने उसे निरन्तर गतिशील बनाये रखा। 'रामकी शक्ति पूजा', 'शेरसिंहका शस्त्र समर्पण', 'जागो फिर एक बार' या 'कुकुरमुत्ता' जैसी रचनाएं इस बातकी साक्षी हैं। लगताहै इसीलिए मुक्तछंदमें होते हुएभी इन रचनाओंने अपने रचनाकारोंकी पहचानभी निरन्तर बनाये रखी है। इस काव्ययुगकी एक बड़ी उपलब्धि है—विगलित रूढ़ियोंसे जकड़ी नारीकी मुक्ति, और छंदके गतानुगतिक बन्धनोंसे मुक्ति। इस विशाल प्रकृतिके आन्तरिक अन्वेषणके लिए एक मुक्त मानवीय दृष्टिभी दीहै। पर उसका सांगीतिक कला पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है ही, जिसे डॉ. कौशलनन्दन गोस्वामीने इस ग्रन्थमें उजागर करनेका प्रयास कियाहै। सम्भव है इस दिशा-दृष्टिका यह अकेला ग्रन्थ हो।

इस लेखकको कतिपय संगीतकारों और संगीत मर्मज्ञोंका भी सक्रिय सहयोग रहाहै 'जिन्होंने संगीत-तत्त्वों और राग-तालके प्रायोगिक बोध तथा ग्रन्थोंको उपलब्ध करानेमें' सहायता कीहै। 'प्राक्कथन' में इस लेखकने उनके प्रति आभार प्रकट कियाहै।

स्पष्टत: यह ग्रंथ साहित्य-संगीतके जिज्ञासु पाठकोंको दिशाबोध करानेमें सहायक होगा। ◻

काव्य

धौलाधार[1]

कवि-दम्पती : शान्ताकुमार, संतोष शैलजा
समीक्षक : डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय

'धौलाधार' सन्तोष शैलजा और शान्ताकुमारकी कविताओंका संयुक्त काव्य संग्रह है, इससे पूर्व उनका काव्य संग्रह 'ओ प्रवासी मीत मेरे' शीर्षकसे प्रकाशित हुआथा। प्रस्तुत काव्य-कृतिका मूल स्वर तो प्रकृति-चित्रणका है, किन्तु उसीके साथ इसमें प्रेमकी संयोग और वियोगात्मक तथा सामाजिक कविताएं भी हैं। संतोषजीकी कविताएं 'धौलाधार पर्वतमालाकी सुरम्य घाटीके आंचलसे सहेजी हुईहैं', जिनमें 'दूर-दूर तक फैली···आंखोंको बांधती-सी हरियाली, कल-कल छल-छल करती छोटी-बड़ी नदियां···देवदार और चीड़के ऊंचे वृक्षोंकी आमन्त्रण-भरी फैली बाहें और रंग-बिरंगी ओढ़नी—जैसे चटख फूलोंसे भरी वादी तथा बदलती ऋतुओंके संग नित नये रूप बदलती धौलाधार पर्वतमाला ही मूर्तिमान हो उठीहै। प्रथम कविता 'धौलाधार' में ही धौलाधारका मानवीकरण करते हुए, उसके कोमल रूपमें उसे 'शैलबाला' और 'लजीली वधु' कहते हुए तदनुरूप उसका श्रृंगार वर्णन किया गयाहै, तो उसके कठोर रूपमें उसे 'महाशक्ति' बताते हुए उसके वक्र तेवर और क्रूर मुट्ठीको उद्घाटित किया गयाहै। प्रकृतिके रमणीय रूपोंको वे अपनी कल्पना शक्तिसे अनेक अप्रस्तुत विधानोंमें बांधनेकी क्षमताभी रखतीहैं। वर्षाकी फुहारोंमें सद्य:स्नाता उजली-

---

[1] प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १०७, क्रा. ९२; मूल्य : ९०.०० रु.।

उजली धरतीकी देहका परिमल उन्हें ऐसे लुभाताहै जैसे कोई कुसुम कली चांदनी-सा तन और किरणों-सा मन लिये दूधिया मुस्कराहट बिखेर गयीहो। सावनकी फुहार, बौछार, बादलोंका घिरना, घटाओंका उमड़ना और रिमझिम बूंदोंका चित्रण हुआहै 'एक ही बौछार' कवितामें, तो 'यह चित्रित मोर-सी घाटी'में घाटीका विस्तृत चित्रण है। घाटीके संदर्भमें सर्पिली डगर, छितराये हुए सिन्दूरसे नन्हे घर, ऊंचे देवदारू, छलछल बहती नदीकी धार, सिन्दूरी सांझ, गुनगुनाती भोर, घाटीका सूनापन, बांसुरीकी तान, घंटियोंकी धुन, बर्फका शृंगार किये मुग्धा नायिका-सी उजली धौली-धार, ज्यामिति रूपवाली सीढ़ीनुमा, सोना बिखेरती खिली हुई सुनहली धूप, मूक प्रहरी बने मंदिर-कलश आदिका भी चित्रण हुआहै।

चांद सम्बन्धी दो चित्रोंमें से एकमें कवयित्रीने ग्रामीणोंका, चांद और चांदनीको देखकर हर्षित होना और दूसरे चित्रमें विद्युत प्रकाशमें जगमगाते, रासरंग में डूबे, चहल-पहल और शोरगुलमें निमग्न नगरमें किसीको पूर्णिमाकी रातमें चांदकी ओर देखनेका भी अवकाश न होनेका चित्र और यह देखकर निराश होकर चांदके आकाशसे चले जानेका उल्लेख कियाहै (चांद दो चित्र, पृ. ३९-४१)। कोयलकी कूकको भी कवयित्रीने विविध उपमाओं, रूपकों आदिमें बांधकर प्रस्तुत कियाहै। कवयित्रीने उसे 'अनाम गन्ध-सी महकती', 'मनमें हूक-सी भरती', 'रसवन्ती दूती', 'धूपसे झुलसे फूल', आमके उगते बूर और पीरसे व्याकुल हृदयपर आम्र-रस-सी झरनेवाली, कृष्णकी संगिनी और जीना सिखानेवाली कहाहै (कुहुक कोयलियाकी, पृ. ४४-४५)।

'धौलाधार' में प्रकृतिके अतिरिक्त सन्तोषजीकी प्रेमानुभूतियां भी चित्रित हुईहैं। प्रेमानुभूतिके पूर्वकी यौवनानुभूतिके अन्तर्गत कवयित्रीकी जिज्ञासा है कि कुंआरे यौवनमें क्यों दिशाएं महकी-महकी लगतीहैं पवन पागल-सा लगताहै, फूलोंकी पायल पहन पत्ती पत्ती नाचती-सी लगतीहै, क्यों अधरोंपर अनजाने मीठे बोल मचल उठतेहैं—कवयित्री नहीं जानती कि ऐसेमें वह कौन है जो मनकी किवड़िया खोलनेके लिए कहता है। कौन उसके आंचलको लहरा जाताहै, कौन पुकारताहै, और वह कौन है जिसके अपना बनजानेपर दुनियां पराई लगने लगती है; वह कौन छलिया है जिसे उसके व्याकुल नयन ढूंढ़ रहेहैं और वह कौन है जिसकी अगवानी सूरज कर रहाहै, जिसे चंदा निहार रहाहै; और वह कौन मोहक मितवा है जिसे अम्बरके सितारे बुलातेहैं? (कौन, पृ. ४६-४७)।

प्रियकी प्रतीक्षामें कवयित्रीको हर आहट प्रियकी आहट लगतीहै, हर पल 'वह' आता-सा लगताहै, उसकी मन-वीणापर एक पहचाना-सा स्वर गाता-सा लगताहै; प्रतीक्षाकी सांझ हृदयमें पीढ़ी सिहरन भर लायी है। और जब प्रिय पास होताहै तो कवयित्रीको नीरवताभी मृदु लगतीहै, सुधियोंके रतनारे पल निस-दिनको उजियारे कर देतेहैं, जीवनमें उल्लास ऐसे झरने लगताहै जैसे हर सिंगार झरताहै, और जब उसके प्रेमका सम्बल होताहै तो पथभी पाथेय बन जाताहै (तुम होते हो पास अगर, पृ. ४८-४९)।

कवयित्री ऐसा मानतीहै कि प्रेमकी सार्थकता तभी है जब वह प्रियको पास खींच लाये। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जब पपीहेसी प्यास बादल बने तो वह श्याम नीरद घनको धरापर खींच लाये, जब राधाकी पीर बांसुरीके स्वर बनें तो राधाका कृष्ण उनसे खिंचा चला आये, जब निशाका श्याम आंचल सूरजकी कोर ढूंढ़ता हो तो निशाका पट चीरकर उजली उषा विहंस दे? और क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जिस सुबह प्रियको आना हो उस सुबहकी रात न हो? और इसके विपरीत जब प्रिय पास न हो तो अम्बर और धरा मौन होजायें, कालका चक्र और साथही उसकी स्वयंकी धड़कन भी रुक जाये? (क्या ऐसा नहीं होसकता, पृ. ५०-५१)।

प्रेम सम्बन्धी ये सभी कविताएं चाहे वे प्रियसे सम्बन्धित हों चाहे सखियोंसे, और चाहे उनमें संयोग पक्ष हो चाहे वियोग, गहन भावुकता और अनुभूतिसे सम्पन्न और प्रसूत हैं, इनमें रस-सिक्त करनेकी शक्ति है।

श्रीमती संतोष शैलजाने नारीके सम्बन्धमें भी अपने भाव और विचार व्यक्त कियेहैं। वे नारीको केवल काया और सपनीले रंगोंकी माया मात्र न मान कर जीवनदायी सलिल-धारा मानतीहैं। अग्नि वर्षामें उसके आंचलको ममताकी फुहारका स्पर्श मानतीहैं; अंधकार और सूनेपनमें आंगनको जगमग कर देनेवाला नेह-दीप मानतीहैं; उसे उन्होंने ठुकराये हुओंको सम्बल और भुला दिये जानेवालोंको अपनानेवाली, समस्त

स्रोतोंके रीत जानेपर अचूक स्नेहका सागर, कीचड़में भी उजली और मदिर मुस्कानसे विहंसती कुमुद-कली, कांटोंको हंसते-हंसते सहनेका सन्देश देनेवाली, वीणा-वादिनी और दुर्गा, जीवन-नौकाको खेनेवाली श्रद्धा और जीवन-रक्षक कहाहै (नारी, पृ. ३१-३२)।

कवयित्री की स्व. जयप्रकाशनारायणपर लिखी एक कविताभी इस संग्रहमें संकलित है जिसमें उन्होंने जयप्रकाश बाबूको मृत्युंजय, कलका फूल और आज की खुशबू, सेवी, और स्वार्थमुक्त कहते हुए एक ऐसा व्यक्तित्व बतायाहै जिसकी सपनीली आंखोंके सामने सपनोंके महल बने और टूटे, और जो तनसे ही नहीं, मनसे भी रीत चलेथे (जे. पी. पृ. ३३-३४)।

शैलजाजीका मानववाद उनके इस विचारसे व्यक्त होताहै कि पर्वतपर स्थित मन्दिरकी फहराती ध्वजा यह संदेश देतीहै कि 'जय देव' नहीं, 'जय मानव' कहो (जय मानव कह)।

शैलजाजीकी काव्य सर्जनाका कला पक्षभी उतनाही समृद्ध है जितना उनका भाव पक्ष। उन्होंने हिमपात, धौलाधार, सांझ आदिके रूपमें प्रकृतिके अनेक चाक्षुष बिम्ब तो दियेही हैं, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, मानवीकरण, क्रिया वक्रता आदिके भी सफल प्रयोग उन्होंने कियेहैं। और ये भी प्रकृति-चित्रणके संदर्भमें ही कियेहैं। उपमाओंके सुन्दर प्रयोग देखिये—

नव शिशु-सी दूब/दूधकी दंतुली-सी/नोकपर/चमक रहे/वर्षा-कण/ज्यों शिशु-अधरोंपर/अंकित हों / मांके चुम्बन !

श्वेत मृग छौनोंसे/रूईके खिलौने जैसे/हल्के-फुल्के/बादल दल।

इसी प्रकार सुन्दर उत्प्रेक्षाओंके प्रयोगके उदाहरण हैं—

१. हरियाली धरतीने/नीले आकाशसे/होड़ करली होजैसे।

२. कोमल कपासके फूल-सी/मृदु बर्फकी फुहार/प्रकृति पुरुषको पहना रही/ज्यों बर्फकी जयमाल।

रूपकका प्रयोग 'सांझ' कवितामें 'परदेशी पाहुन सूरज' लिखकर कियाहै तो मानवीकरणके उदाहरण उनकी 'हिमपात' कवितामें देखेजा सकतेहैं—

१. बादल दल/लगे खेलने/आंख मिचौनी।

२. इक दिन यूं सोचा बादलने—/बांध लूं धरा की/बांहोंमें/भर दूं/हरियाले आंचलमें/धवल बर्फके फूल।

और क्रिया वक्रताका उदाहरण है—'अनाम गन्ध-सी महकती/कूक कोयलकी।'

कवयित्रीने प्रेम जैसे कोमल भावकी अभिव्यक्तिके लिए देशज शब्दोंका भी प्रयोग कियाहै जैसे अंगना, अमुवा, धुंआरी, किवड़िया, टेर, लागे, निहारे, मितवा आदि, जिनसे काव्यमें माधुर्य गुणका समावेश हुआहै। कवयित्रीने अधिकांशतः मुक्त छंदका ही प्रयोग किया है, पर उनके रचना-विधानमें प्रवाह और लयात्मकता का अभाव है, यद्यपि कुछ कविताएँ छन्दबद्ध तुकांत और गीत-शैलीमें भी हैं।

'धौलाधार' में संकलित श्री शांताकुमारकी कविताओंमें एक आत्मपरक, एक प्रकृति विषयक और एक प्रेम सम्बन्धी है, शेष सभी कविताएं सामाजिक-चेतना सम्पन्न हैं। इस संग्रहमें संकलित अपनी प्रथम कविता —'मैं और मेरा कवि' में ही शांताकुमारजीने अपने कवि, अपनी रचना-प्रक्रिया और अपने काव्य स्वरूपके बारेमें लिख दियाहै कि 'मैंने जीवनके हर कदमपर/ऊबड़ खाबड़ कंटीली राहपर/आंधियों तूफानोंके बीच/पुरुषार्थके पटपर, विश्वासकी कलमसे/छन्द लिखेहैं/शब्दों से नहीं/पर कृतिसे गीत गायेहैं।" "आजभी जब किसी रूखे-सूखे धूपसे तपते/आग उगलते वर्षोंसे प्यासे/किसी गांवमें नये नलसे/पानीकी धार निकलतीहै/मुझे लगता है/मेरी कविताही झर-झर फूट पड़तीहै/मैं मूल रूपसे कवि हूं राजनेता नहीं/मैं तो छोटा-सा/कलमका सिपाही हूं/शब्दोंसे न नहीं/मैं कृतिसे कविता करूंगा/और मेरी कविताके छंद/झोंपड़ीमें/सदियोंसे सिसकती गरीबी/की आंखके आंसू पोंछेंगे।" (पृ. ७६-७७)। इस कविता में व्यक्त उनकी प्रगतिशील चेतनाके अनुरूप ही उन्होंने जयप्रकाशनारायणके निधन और अंतिम संस्कारके तुरंत बाद देशवासियोंसे, अपनी 'फूल लेकर आयेथे' कविता में कहा—"काश तुमने जयप्रकाशकी/चिता जलनेसे पहले/जयप्रकाशके आंसू पोंछ दिये होते" (पृ. ४७) और लिखा—"जिसने देशको सब कुछ दे दिया/उसे देश इतनाभी न दे पाया/उन्हीके सामने/उन्हींकी भावनाएं/क्षत-विक्षत कर दीं/सपना तोड़ डाला।" और साथही एक तीखा व्यंग्य कियाहै उनको जेलमें डालने पर कि "देशको आजाद करानेवाला आजाद देशमें बंदी बनाया गया/ उसने अंग्रेजकी जेल तोड़ डालीथी/इन्होंने जेलमें ही उसे तोड़ डाला/वह सारी उम्र कुर्सी से दूर रहाथा/इन्होंने कुर्सीके लिए उसेही दूर कर डाला।" (पृ. ८९)।

कविने आजादीके बादभी लगातार झोंपड़ीमें जीवन बितानेवालोंकी नियति और उसके लिए जिम्मेदार सड़े पुरानों नारोंकी बदबू, और भूले वायदोंकी घुटनको भी व्यक्त कियाहै—'लोग कहतेहैं' कवितामें। उनकी प्रगतिशील कविताओंमें एक, टूटकर मर जाने वाली युवतीपर भी है—'अपनेही भारसे'। अपनी 'अन्त्योदय' कवितामें कविने उस गरीबकी विडम्बनाको भी चित्रित कियाहै जो मुरझाया चेहरा लिये, झुर्रियों की लकीरोंमें बुझा-बुझा, निराश आँखोंमें गरीबीका दर्द और नंगे पांवोंमें फटी काली बिवाइयां लिये मैले चिथड़ों में लिपटा, लम्बी अंधेरी जिन्दगीका बोझ ढोता आजादी के बादसे अच्छे दिनोंके इन्तजारकी घड़ियां गिन रहाहै, और जिसके "नामपर योजनाएं बनीं/बनकर चली गयीं/हवेलियां आसमानको छूती रहीं", पर उसकी झोंपड़ी के घासके तिनके/योजनाके नारोंकी हवामें/फड़फड़ाते रहे/यह वही गरीब हैं/हर पांच सालके बाद जिसे याद किया गया/इसकी गरीबीको/सरे आम बेचा गया/और उससे जो मिला/उससे/सिंहासन सँवारे गये—सजाये गये।"

कविके विचारसे "यहभी इतिहासका/एक नया अचम्भा है/आर्थिक विकास तो हुआ, पर गरीबी नहीं गयी/गरीब और अमीरकी खाई/पहलेसे अधिक बढ़ गयी।" अत: वे राजनीतिके घटिया खिलाड़ियोंसे कहते हैं कि —"अपनी स्वार्थ नीति और भ्रष्ट राजनीतिको छोड़कर सेवा त्याग तपस्याकी राजनीतिकी नयी गंगा बहा दो।" (पृ. १०३) और गांधीका सपना पूरा कर डालो, अन्त्योदयके इस महायज्ञमें अपनी आहुति डालो। (पृ. १०४)।

पर इन प्रगतिशील सामाजिक चेतनाके स्वरोंके साथ उनकी एक दो कविताओंमें प्रकृतिके दृश्य और प्रेमके स्वरभी हैं। शिमलामें रहनेके कारण, स्वाभाविक रूपसे शिमला भी उनकी एक कविताका विषय बनाहै। बादलों और धुंधमें लिपटा शिमला उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो "सुहागकी/मधुयामिनीकी पहली रातके बादके/पहले प्रभातमें/ गोरीकी बाहोंमें लिपटा पड़ाहो कोई।"

इसके अतिरिक्त उनकी 'एक क्षण' कवितामें प्रिया के प्रथम दर्शनके आकर्षण, उसकी आंखोंमें छिपे भाव का अनिश्चय, पर उसीमें भटकने और फिर उसे कोई सही नाम न दे पाने, नाम देनेकी अनावश्यकता बढ़नेपर उस प्रियाको केवल स्वयंके रूपमें देखने और स्वयंके उसमें विलीन हो जानेकी अनुभूतियाँ चित्रित हुईहैं। यह अनाम भाव और अद्वैतता ही इस कविता का मूल स्वर है।

कहना न होगा, शान्ताकुमारजीकी कविताओंमें अनुभूति और विचारकी सच्चाईके साथ एक अनलंकृत सहजता है, मुक्त छंदका प्रयोग होते हुएभी उसके विधानमें लयात्मकता और प्रवाह है। यही प्रगतिशीलता, अनलंकृत सहजता, प्रवाह और लयात्मकता उनकी कविताओंको उनकी पत्नी श्रीमती संतोष शैलजाकी कविताओंसे पृथक् करतीहै। यदि कुछ समानता है तो प्रकृति और प्रेमानुभूतिके चित्रणकी।

इस प्रकार कवि-दम्पतीकी यह काव्य कृति—'धौलाधार'—अपनी कला और सहजता दोनोंके साथ, हमें पर्वतीय प्राकृतिक दृश्यों, प्रेम और सामाजिक सरोकारोंसे एक साथ परिचित करातीहै। ⊡

तब चारुवाक बोले[1]

कवि : मदनमोहन तरुण

समीक्षक : डॉ. पारूकान्त देसाई

"तब चारुवाक बोले" के कवि मदनमोहन तरुण नयी पीढ़ीके आक्रोश एवं विद्रोहके मशालची हैं, उसका आभास तो पुस्तककी उद्घोषक-पंक्ति—"हमें आपका आशीर्वाद नहीं चाहिये"—से ही होने लगता है। "संत्रास" (उपन्यास), अभिशप्त पीढ़ीका चौथा संसार" (नव-चिंतन), "मदनमोहनकी कविताएं" (कविता) तथा 'स्वाधीनोत्तर हिन्दी साहित्य और भारत" (आलोचना) प्रभृति रचनाओंके द्वारा वे अपनी एक विशिष्ट पहचान बनातेजा रहेहैं। प्रस्तुत काव्य-कृतिभी उसीका एक उपक्रम है। जड़ीभूत परम्पराओंके प्रति विद्रोह और साथही नूतन-मूल्य-दृष्टिकी विकलता तरुणजीकी काव्यगत विशेषताएं हैं।

प्राचीन काव्य या वाङ्मयका कोई प्रतीकार्थ जब

---

[1] प्रका. : माधुरी लता मधु; डी-२/१५८-बी/एन. डी. ए. खड़कवासला, पुणे-४११०२३। पृष्ठ : ८०; डिमा. ६१; मूल्य : २५.०० रु.।

काल्पनिक कथारूपको प्राप्त करताहै तब वह मिथक कहलाताहै। इस कथा-रूपके रहते हुएभी उसमें प्रतीकार्थ तो शेष रहताही है जो युग-सापेक्ष नवीन अर्थों का उद्घाटक है। फलत: प्रत्येक युगका मेधावी कवि अपनी नवीन विचार-सृष्टिकी सर्जना-हेतु इन मिथकों के मंथनमें प्रवृत्त होताहै। जहां इन मिथकोंका उपयोग संस्कृति एवं सभ्यताकी व्याख्या या पुनर्व्याख्या या हेतु होताहै; वहीं सांप्रत अभिशप्त-बोधसे उत्पन्न विद्रोह-भावनाके कारण उनका उपयोग नितान्त नये विचारोंके उद्घाटन-हेतुभी हो सकताहै। प्रस्तुत काव्य-कृति उसका एक उदाहरण है, जिसमें तरूणजीने हमारे बड़े प्राचीन पुरा-कल्पन 'समुद्रमंथन' का उपयोग अपनी नवीन विचारधाराको प्रेषणीय बनानेके लिए कियाहै।

प्रारंभिक कवि-कथन—"हमें आपका आशीर्वाद नहीं चाहिये" में कविने पारम्परिक कल्पनों एवं मान्यताओंके कुछ कवि-अभिप्रेत अर्थोंका उद्घाटन कियाहै, जो काव्यके नये पाठकोंके लिए उपादेय है, यद्यपि उनकी काव्याभिव्यक्ति ही अधिक सशक्त प्रतीत होती है।

प्रस्तुत काव्य-कृतिको एक "विचार-खण्डकाव्य" कहाजा सकताहैं। उसकी नाटकीयता एवं दृश्य-परिधान उसे गीति-नाट्यके समीपस्थ कर देतेहैं। काव्यका प्रारंभ ही एक नाटकीय विधानसे होताहै—"और आदमी।/ पूछाथा चारुवाकने विष्णुसे/ जब तैयारियां हो रहींथीं/ समुद्र-मंथनकी।" (पृ. १) वस्तुत: पृ. १७ पर चारुवाकने देवाधिदेव विष्णुसे अनंत संभावनाओंसे युक्त मनुष्यकी इस शकवर्ती घटनामें अनाहुतताके संदर्भमें प्रश्न कियाथा, सो यह प्रारंभिक १७ पृष्ठोंका कथन इसीकी पूर्व-दीप्तिके रूपमें आयाहै जिसमें कविने देव-दानव विषयक अपनी नवीन अवधारणोंको रखाहै। देवोंकी विलासिता, उससे उत्पन्न अकर्मण्यता, शारीरिक ऋजुता, उनकी उन्नत-भू-प्रकृति, उनकी आकाशगामिता, अदृश्यात्मकता, रहस्यमयता, उनका छल-बल, उनकी सर्वद्रोहकता आदिको कविने स्पष्ट कियाहै। और यह इतनी कुशलतासे संपन्न हुआहै कि सांप्रत-समाजकी शोषणोन्मुखी समाज-व्यवस्था (या कुव्यवस्था) के ताने-बाने भी खुलते गयेहैं। हमारा उन्नत-भू-समाज—सत्ता-संपन्न प्रभु-वर्ग—एरिस्ट्रोक्रेट वर्ग—जिसमें बड़े-बड़े राजनेता, पूंजीपति और दस्यूराज (स्मगलर्स) आतेहैं: सहजतया उनकी तुलना काव्यमें निरूपित देवता-समाजसे हो जाती है। अमरीका, यूरोप तथा जापान जैसी प्रभु-सत्ताएं भी देवताके प्रतीकार्थको स्पर्शतीहैं; तो हमारे तईं हमारा तथाकथित उच्च-वर्गभी उसीसे समता रखता हैं।

देव-समाजकी विलासिताके संदर्भमें प्रमुख छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत 'कामायनी' महाकाव्यके चिन्ता सर्गमें कुछ सार्थक उल्लेख आयेहैं, जहां कविने उन्हें "विकल वासनाके प्रतिनिधि" (पृ. १०) तथा "अमरताके चमकीले पुतले" (पृ. ८) से संबोधित कियाहै और उनकी निर्बाध विलास-लीला, उनके देवांगनाओंसे आलिंगन, पुलक-स्पर्श, विलासिनी सुरबालाओंकी निर्लज्ज चेष्टाओं, उनके वातायनोंकी मधु-मदिरता आदिकी भर्त्सना कीहै। प्रस्तुत काव्य में यह छायावादी रंग कविकी अपनी विद्रोही मुद्राके साथ कुछ अधिक उघड़े रूपमें आयाहै जिसे प्राचीन गरिमा-गौरवके हामी-हिमायती पाठक कदाचित् नापसंद भी कर सकतेहैं। "पृथुल रंभाओंकी जंघाओं, योनियों, स्तनोंके/ थलबलाते प्रफुल्ल विहारमें/ देहासव पीते हुए/ मदविह्वल थे/ देवता और दानव।" (पृ. १-२), "मेरा पूरा जीवन/ विलासमयी रमणियों की भारी जंघाओंमें/ उफनते अधीर मदनोत्सवके सिवा और क्या है।" (पृ ४); "इन्द्र अब भी वही है बन्धु/ सहस्त्रों योनियोंमें प्रतिपल पसीजते हुए" (पृ. १२); "जैसे महामारीमें समाजसेवाको निकलीहों/ प्रफुल्ल योनियों और चुनौतियोंकी तरह तने/ उन्नत स्तनों वाली रंभाएं-उर्वशियां/ स्वस्थ पुरुषोंकी खोजमें।" (पृ. २८); "खुली योनि-सी लक्ष्मी" (पृ. ५१) जैसी शब्दावलियोंसे कविने देव-समाजकी उस विलासिताके प्रति घृणा-भावको अभिव्यक्ति दीहै।

उसके प्रथम सत्रह-पृष्ठीय कथा-भागमें ही विष्णु के कथनों द्वारा कविने देवता-समाजके षडयंत्रोंकी कलई खोलीहै। देवता वह है जिसकी जड़ जमीनमें नहीं रह गयी हैं, वह अपना अस्तित्व शून्यमें और निवास आकाशमें बनाताहै। वह अधिकसे अधिक अदृश्य रहकर, अदृश्यताकी इस रहस्यमयतासे मानवोंको आतंकित रखनेके अपने छल-छद्ममें हमेशा सफल रहताहै। देवताओंकी इस छल-छद्मी प्रकृतिके दो दृष्टान्त यहां उपलब्ध है। सूर्यसे भी भास्वर और प्रचण्ड, देह और मेधाके महाकार अवतारसे महर्षि दधीचिके अबाधित

तेजो-विस्तारसे चमत्कृत व हतप्रभ इन्द्र एक तीरसे दो शिकार करताहै। राक्षसराज वृत्र भी चुनौती सिद्ध हो रहाहै। अतः धर्मके दलालों द्वारा यह प्रचारित किया जाताहै कि वृत्र शत्रु है, मनुष्यताका, देवताओंका, पशुओं का, धर्मका, धनका, वाणीका, विचारोंका, उन सबका जो पृथ्वीको अपना घर समझतेहैं। (पृ. ८)। परन्तु वह अवध्य है परंपरागत शस्त्रास्त्रोंसे। उसका वध तो केवल महर्षि दधीचिकी अग्नि-सी सर्वदाहक तेजस्वी अस्थियोंसे निर्मित शस्त्रसे ही संभव है। शनैः शनैः विधिवत् कुशतापूर्वक किये गये इस प्रचार-कार्यकी परिणति महानाशक जनाक्रोशमें होतीहै—"दधीचिकी हड्डियां लेकर टूट पड़ाथा/ महानाशक जनाक्रोश/ और थोड़ीही देर बाद / वृत्रकी महाकार अंधेरी सत्ता/ धूल की ढेरी थी।" (पृ. ११) बिना कुछ किये, केवल, प्रचार-युद्धसे, दधीचि और वृत्र दोनों चुनौतियोंकी समाप्ति। क्या हमारी महासत्ताएं भी कुछ ऐसाही नहीं कर रहीं आजकल? "मॉब-सायकोलोजीका एक आयुधके रूपमें प्रयोग आदि-अनादि कालसे होता रहा है।

राक्षस देवताकी वह शक्ति है जिससे वह स्वयं अलग रहकर सब कुछ करा लेताहै। राक्षस मानवोंके संसार से उठाकर देवताओंकी षडयंत्र-निर्माता प्रयोगशालाओं में पुनर्निर्मित वह दैहिक शक्ति हैं जिसका विस्तार मात्र कबन्ध तक है। उसके पास मस्तक नहीं। वह यंत्र है, महाविनाशक यंत्र, देवताओंकी कूटनीतिसे परिचालित एक रोबोट। वह आग-सा बरसकर सब कुछ भस्म कर सकताहै। वह भय है, आतंक है। देवताओंके वर्चस्वको बनाये रखनेवाला एक अंध महाअस्त्र है वह! विष्णुको भलीभांति विदित है कि समुद्र-मंथन में वासुकिके फनोंसे उत्पन्न हूहूभरी महानाशकारी प्रभंजक अग्निका सामना करनेमें विलासी देवता-समाज असमर्थ है। अतः छद्मपूर्वक देवताओंकी कुछ प्रशंसा करके उन्हें मस्तिष्क-भागमें खड़े रहनेकी सूचना विष्णु देतेहैं। मस्तिष्क-बुद्धि-विहीन दानव उसे अपनी शक्ति का अपमान समझतेहैं। विष्णुको यही अभीष्ट था। अतः अपनी वाणीमें अतिरिक्त मिठास घोलते हुए विष्णु घोषित करतेहैं—"अच्छा, अच्छा/ पूंछकी ओर रहें देवता/ और वासुकिके मुखभागको धन्य करें दानवगण।" (पृ. १४)।

परन्तु देवोंको सबसे अधिक भय है मनुष्यसे। मनुष्यका तना हुआ मस्तक, उसकी इयत्ता, गरिमा, उसकी निरंतर सर्जना-शक्ति, उसका संघर्षरत व्यक्तित्व। और, मनुष्यका गौरव है उसकी रीढ़में, उसकी तनी हुई ग्रीवामें, उसके चिन्तनमें; सो उस रीढ़को ही तोड़नेमें लगाहै समूचा देवताओंका प्रचार-तंत्र! धर्म, वेद, पुराण, उपनिषद् आदि इसी प्रचार-तंत्रके हथियार हैं। इनके द्वारा ही छला गयाहै मनुष्यका पौरुष। देवता नहीं चाहते कि मनुष्य उठे। अतः उसे निरंतर झुका हुआ चरणोंमें श्रद्धावश प्रणमित रखना चाहतेहैं वे। अमरीका और यूरोपकी महासत्ताएं जैसे विश्वभर में बुद्धि-धनको खींचकर अपनेको सर्वशक्तिसंपन्न और श्रेष्ठ सिद्ध कर रहीहैं; उसी प्रकार जो मनुष्य मानव-सीमाओंसे ऊपर उठकर उठ जाताहै उसका दैवीकरण कर दिया जाताहै—"मेरा युद्ध लड़ते रहे राम और कृष्ण,/ किन्तु,/ महाकाव्योंका नायक बना मैं,/...हर शक्तिशाली पार्थिवतामें / मेरा भ्रम उत्पन्न करते रहे मेरे दलाल।" (पृ. ५)। इसलिए आदमीकी हर तनी गरदनके खिलाफ देवता युद्ध-विश्वयुद्ध आयोजित करते हैं ताकि "आदमीकी गरदनें बनी रहें/ देवताओंके पांवों का/ हमेशा खिलवाड़।" (पृ. २१)।

दानव तो देहका उबाल मात्र है, मदान्ध उत्तेजना है, गर्दन-विहीन कबन्ध है (पृ. २२); परंतु आदमी तो आग है, विस्फोटक आग, अतः उसे समुद्र-मंथनके अवसरपर बुलावा देना विष्णु ठीक नहीं समझते, क्योंकि मनुष्यमें तो दानवके भी सर्जकको जगानेकी शक्ति है। मनुष्यके रहते देवतागण समुद्र-मंथनसे उत्पन्न रत्न-राशिको समेट नहीं सकताथा।

अतः प्रस्तुत काव्य मनुष्यकी उस महिमाका काव्य है। चारुवाक मनुष्यकी चेतनाका ही प्रतीक है। कविने समुद्रको भी जन-सागरका प्रतीक बनायाहै। इस जन-सागरको हमेशा मथा जाताहै देव-दानवों द्वारा, ताकि उनका ऐश्वर्य और बढ़े और वे औरभी प्रभु-सत्ता-संपन्न हों। काव्यके अंत भागमें कवि इस जन-सागरको आह्वान देते हुए देवताओंके षडयंत्रोंके विरोधमें उसे सावधान कर देताहै। हमारे देशके प्रभु-सत्ता-संपन्न वर्गको देवता; अशिक्षित, निरीह, गंवार जनताको राक्षस तथा देशके बुद्धिजीवी वर्ग—देशकी समूची चेतना—को चारुवाकका प्रतीक मान लिया जाये तो यह एक अच्छा अन्योक्ति-काव्य भी हो सकताहै।

सांप्रतिक चेतना-संपन्न जागरूक पाठकको काव्य-संग्रह की अनेक पंक्तियोंमें हमारे वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवनकी विसंगतियों एवं विडम्बनाओं का प्रत्यक्षीकरण हो तो आश्चर्यंकी बात नहीं है।

काव्यके मिथकीय-परिवेशके अनुरूप संस्कृतनिष्ठ ओजस्वी शैलीका निर्वाह आद्योपान्त हुआहै। "विमथित सागर", "संकल्पोंके भाण्ड", "संकल्पोंकी अटूट मथानी", "अविश्वासभरी नयी पीढ़ी", "कंकालों के ठूंठे जंगल", "आशीर्वादकी अंधेरी द्वन्द्व-घाटियां", "व्यक्तित्वका कबंध" "शब्दोंके धनुषपर संकल्पकी टंकार" (पृ. ३९, ५५, ६१, ७२) जैसे शब्द-समूह काव्य-देहको एक अनूठा सौष्ठव प्रदान करतेहैं। समूचे काव्यमें ऐसे कई अनुबन्ध है, जिन्हें बारबार पढ़नेपर नयी अर्थवत्ता प्राप्त होतीहै। शब्दकी इस व्यंजनाशक्तिकी अनेक स्तरीयतासे ई. एम. फार्स्टर जिसे कृति की "एवर वर्जिनिटी" कहतेहैं, सारस्वत-कौमार्यता (!), वह सिद्ध होतीहै और उसकी संवेद्यतामें अनेक गुनी वृद्धि हो जातीहै। कुछ पंक्तियां विशेष रूपसे संवेद्य बन पड़ीहैं, यथा —

(१) गीतकी पंक्तियां चुरा लो/ चुरा लो चाहे/ पूरा-का-पूरा कृतित्व/ अक्षरजीवीका/ किन्तु/ सर्जनके क्षणोंका उन्माद/ कौन चुरायेगा बन्धु।" (पृ. ५०)

(२) नहीं होतीहैं श्लाध्य वे ऊंचाइयां/ जो खड़ी होतीहैं/ मुर्दोंके ढेरपर। (पृ. ७१)

(३) अंधविश्वासोंकी हद तक समर्पण छल है/ ...हर प्रतिष्ठित मूर्तिकी परीक्षा करो/ बहुत संभव है वही हो पिशाचोंका घर/...कुछ भी सनातन नहीं/ कुछ भी नहीं है पूर्ण/ प्रतिपल सजगतासे/ खुदको भी जांचो/ जितनाभी हो कोई श्रद्धाका पात्र/ भूल मत/ उसको भी आगमें आंचो।"

मानवताको केन्द्रमें रखकर लिखा गया यह "विचार खण्ड-काव्य" अनेक दृष्टियोंसे पठनीय ही नहीं, अपितु पुनः पुनः पठनीय बन पड़ाहै। कवि पुणे में हैं, अतः बहुत संभव है कि उनकी यह कृति "दलित-चेतना"से संवलित हुईहो। ⊡

चितकबरी[1]

कवि : मनोज सोनकर
समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

समकालीन कविताके व्यापक परिदृश्यमें अनेक काव्य विधाएं या रूप इधर विकसित हुएहैं। जिनमें मुक्त छंद (जो आजकी कविताकी मुख्य विधा है) के अतिरिक्त नवगीत, गजल, केप्सूल कविता, हायकु आदि के भिन्न रूप अपनी-अपनी अर्थवत्ताको प्रकट कर रहे हैं। ये सभी रूप इस तथ्यको सामने रखतेहैं कि यांत्रिकता, समयाभाव, सघनता तथा संवेदनाकी जटिलताने अभिव्यक्तिको भी प्रभावित कियाहै, जिसका फल है आजकी रचनाशीलतामें संक्षिप्त एवं सघनीकृत रूपाकारोंका क्रमशः विकास और संयोजन। उपर्युक्त सभी छंद-रूप न्यूनाधिक रूपसे इसी संक्षिप्त सघनीकृत रूपको 'अर्थ' प्रदान कर रहेहैं। इन सभी रूपोंमें हायकु, क्षणिकाएं और केप्सूल कविता सबसे अधिक संक्षिप्त एवं सघनीकृत कहीजा सकतीहैं। इनमें से भी हायकु सबसे अधिक संक्षिप्त और सघनीकृत हैं। यह माना जाताहै कि हायकु अनुभूति तथा सूक्ष्म आवेगों की कविता है, लेकिन मेरे बिचारसे हायकुकी यही सीमा नहीं है; उनमें विचार संवेदनके भिन्न आयाम भी सांकेतिक रूपसे व्यक्त कियेजा सकतेहैं। इसका प्रमाण है श्री मनोज सोनकरकी नवीनतम कृति 'चितकबरी' जो हायकु संकलनका एक ऐसा रूप है जो विचार संवेदनके भिन्न आयामोंको, सांकेतिक बिम्बों और रूपाकारोंके द्वारा अभिव्यक्त करनेमें काफी सीमा तक सफल हुआहै। 'ओस-धुआं' (१९७८) सोनकर की नवगीत व गजल-संग्रह कृति है जिसमें वे अधिक सघनीकृत नहीं हैं; पर ऐसा प्रतीत होताहै कि 'ओस-धुआ' की रचनाएँ वह पीठिका प्रस्तुत करतीहैं जिसने संक्षिप्त-सघनीकृत रूपको कविताकी संवेदनामें ढालने का काम किया और 'चितकबरी' उसीका और परिमार्जित एवं सघनीकृत रूप है। विकासकी दृष्टिसे इस तथ्यको ध्यानमें रखना आवश्यक है।

हायकु जापानी छंद है और हिन्दीमें अज्ञेयने इसका प्रयोग सबसे पहले किया। इसके पश्चात् सत्य-

---

[1] : प्रका. : पराग प्रकाशन, दिल्ली।

पाल चुघ, सत्यभूषण वर्मा तथा आदित्यप्रसाद सिंह आदिने हायकुमें रचनाएँ कीहैं और इसी क्रममें मनोज सोनकरका नाम उल्लेखनीय है। सोनकरका यह मानना सही है कि हायकुमें उन्हें कथ्यकी सीमा स्वीकार नहीं है, क्योंकि उनके हायकु भिन्न सन्दर्भों और सरोकारोंको लेकर चलेहैं; वे मात्र प्रकृति तक सीमित नहीं हैं, उनमें बाह्य और आंतरिक यथार्थका द्वन्द्व है और इस द्वन्द्वके बीचमें प्रकृति-सम्बन्धी हायकु हैं। कविने आंतरिक और बाह्य धरातलके बीचमें 'प्रकृति' को रखाहै जो यह प्रकट करताहै कि हायकुका क्षेत्र यथार्थका बहुआयामी रूप है और प्रकृति बाह्य और आन्तरिक रूप दोनोंमें समान रूपसे अन्तर्व्याप्त है। कुछ लोग हायकुको प्रकृति तक सीमित मानतेहैं; इस सीमाको सोनकरने तोड़ाहै और प्रकृतिको एक व्यापक सन्दर्भमें लियाहै, उसे मानव जीवन और यथार्थसे जोड़ाहै। एक हायकुमें ठूंठकी कठोरता और लताकी कोमलताकी विलोम स्थितिके द्वारा यथार्थके संवेदनात्मक रूपको कुशलतासे प्रस्तुत कियाहै। ठूंठ आजके कटु जीवनका यथार्थ है:

ठूंठ पे लता
छायीं स्नेहिल नर्स
मरीजपर। (पृ. ५२)

इसी प्रकार बाह्य यथार्थके संघर्षको सांकेतिक रूप से प्रकृति-वस्तुओं-घटनाओंके द्वारा व्यक्त किया गया है:

संघर्ष कड़ा —
अंधेरेमें जुगनू
गुरिल्ला बड़ा। (पृ. ६४)

ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकतेहैं जो समग्ररूपसे यह प्रकट करतेहैं कि प्रकृति मात्र यहां आलंबन या उद्दीपन नहीं है; वह एक ऊर्जा है, शक्ति है; उसका सम्बन्ध यथार्थके बाह्य और आन्तरिक पक्षसे है। वह मानव संघर्षके साथ है, वह मात्र सौन्दर्य नहीं है; उसका सौन्दर्य संघर्ष सापेक्ष है। समकालीन कवितामें प्रकृतिका यही सन्दर्भ है जिसे संक्षिप्त रूपाकारमें मनोज सोनकरने प्रस्तुतकर अंग्रेजीकी इस कहावतको, कि "संक्षिप्तता आत्माकी वाग्विदग्धता है" को अर्थ प्रदान कियाहै। इन हायकुओं और अन्योंमें भी 'शब्द' परिकलित हों और शब्दोंका यह परिकलन विचार-संवेदनके सायामोंको 'शब्द' में इस प्रकार केन्द्रीभूत एवं सघनीकृत कर देताहै कि प्रत्येक शब्द अपने अर्थ-संकेतों के सहसंवाद द्वारा 'अर्थ' की समग्र भावभूमिको प्रक्षेपित करताहै। मनोजके हायकु 'शब्द' की इसी भावभूमिको संकेतित करतेहैं। हायकुको व्यंग्यका भी माध्यम बनाया जाताहै जो शब्दोंके सांकेतिक अर्थपर आश्रित है। यहां पर शब्द कचोट और विक्षोभ उत्पन्न करतेहैं जिसमें विसंगतिका और चीजों तथा व्यापारोंका विद्रूपीकरण इस प्रकार होताहै कि व्यंग्यकी काट तीव्र हो उठतीहै। सौन्दर्यपर एक 'काट' देखें:

सौन्दर्य चाह
'लक्स' की गुलाम
टी. वी. आन है। (पृ. ११७)

यहांपर सौन्दर्यका प्राकृत रूप पृष्ठभूमिमें चला जाताहै और उसका विकृत रूप या आरोपित रूप मुखर हो उठताहै जो एक व्यंग्यकी सृष्टि करताहै। एक अन्य व्यंग्य 'तिरंगे को लेकर है जिसकी छायामें पुत्र नंगा है—"झंडा तिरंगा / महान् माता गंगा / पुत्र नंगा।" (पृ. ११४] एक अत्यन्त सधा हुआ भाषिक व्यंग्य हैं यह। पूरी अर्थ व्यवस्थापर यह एक सटीक व्यंग्य है। भगवानसे स्वर्ग न मांगकर कवि रोटी, वस्त्र, मकान मांगताहै [पृ. ११३], जो स्वर्गकी धारणा पर ही व्यंग्य है और कविकी जनवादी संघर्षमूलक दृष्टिका परिचायक है जो हमें 'शोषितनामा' [कविकी सुन्दर कृति] में भी द्रष्टव्य है। कविके अनेक हायकु इस संघर्ष और शोषण-व्यथाको व्यक्त करतेहैं और यहां पर कविकी रचनाशीलता यथार्थके कटु-तिक्त रूपको प्रस्तुत करतीहै; यथा—"शोषण-व्यथा/सफदर हाशमी/संघर्ष-कथा" (पृ. ७३)। राजनीतिक स्तरपर विदेशी पूंजी शोषणकी व्यथा है—"विदेशी पूंजी/जहां-जहां भी जाये/नाच नचाये" [पृ. ७३] और इसका दूसरा पक्ष है—"लगाके घात/पूंजीवाद लीले है/लेनिन-मार्क्स" [पृ. ७५]। पूंजीवाद और समाजवादका यह संघर्ष एक ऐतिहासिक सत्य है और मार्क्सवाद ही एक ऐसा दर्शन है जो शोषितका दर्शन है जो इतनी उग्रताके साथ इससे पहले इतिहासके पटलपर अवतरित नहीं हुआ। मनोजकी काव्य-संवेदना इसी जनवाद या समाजवादसे गहरी जुड़ी हुईहै और उनकी रचनात्मकताके भिन्न आयाम परोक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे जनहित और जनसंघर्ष से जुड़ जातेहैं।

मनोज सोनकरकी रचनात्मकताके दो आयाम इन

हायकुओंमें प्राप्त हैं। ये आयाम हैं प्रेम संदर्भ और मिथकीय अर्थ रूपांतरण। मनोजके यहाँ प्रेमका स्वरूप विलास और भोगका नहीं है; अपितु उसमें विरह, मिलन, स्मृति तथा समकालीन यथार्थका विक्षोभजन्य रूप इस प्रकार अन्तर्निहित है कि वह हमारे सोच और मर्मको आन्दोलित करताहै। कबूतर-कपोतीकी पारम्परिक योजनाको कवि मिलनका रूप देताहै—"चोंच लड़ाते/कबूतर-कपोती/मिलन बेला" तथा दूसरी ओर जोगिया रागके संदर्भमें विरहकी गहराईका चित्र लें—"रोये सारंगी/रुलायेहैं जोगिया/विरह-वेला" [पृ. २९]। यही नहीं—"प्यार; मुँहासा/हर उम्र उभरे/दिखे-न-दिखे" [पृ. २९]। कवि फूली चमेलीकी महकको प्रिय की स्मृतिसे जोड़ताहै—"फूली चमेली/महका हुआ मन/तुम्हारी कमी" [पृ. २३]। इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट ध्वनित होताहै, कि कवि प्रेमको पारम्परिक एवं आधुनिक आशयोंसे जोड़कर उसे एक व्यापक फलक प्रदान करताहै। यही बात मिथकीय आद्य रूपों व प्रतीकोंकी है; क्योंकि कवि इन आद्य रूपोंको आजका सन्दर्भ देता है। यह एक सत्य है कि कवि चाहे जिस वाद या सिद्धांतसे प्रतिबद्ध क्यों न हो, वह इन मिथकीय प्रसंगों व चरित्रोंसे कट नहीं सकताहै, क्योंकि ये आद्य रूप जातीय मानसमें बार-बार नये 'अर्थों' के साथ अवतरित होतेहैं। सीताहरण, द्रौपदी चीरहरण, हनुमान, नृसिंह, महाभारतके चरित्र व प्रसंग, हरिश्चन्द्र, आकाश-धरती, अन्धकार-प्रकाश, माता-पिता—ये सभी आद्य रूप हैं जो मनोजकी कविताओं [हायकु] में भिन्न अर्थ-सन्दर्भोंको प्रकट करतेहैं और परोक्ष रूपसे आजके संघर्ष, सोच तथा विडम्बनाको किसी-न-किसी स्तरपर संकेतित करतेहैं। कविने सीताहरणको बाज और गौरेयाके बिंब द्वारा जहाँ एक ओर रावण (बाज) और गौरेया (सीता) के द्वन्द्वको संकेतित कियाहै, वहीं इनके द्वारा परोक्षतः आजके शोषणको 'अर्थ' प्रदान कियाहै :

कहाँ शरण
बाज ग्रस्त गौरेया
सीता-हरण ! (पृ. ५६)

इसी प्रकार समाजकी व्यथा यह है कि उसमें नर भी है और सिंहभी, लेकिन 'नृसिंह' नहीं हैं (पृ. ७४) जो हिरण्यकश्यपुका अन्त कर सकें। यही नहीं आज पूरे देशका चीरहरण सफल हो रहाहै; लेकिन 'कृष्ण' गायब हैं—"चीर हरण/सफल हो रहाहै/गायब : कृष्ण" (पृ. ९८)। यहांपर मैं उन हायकुओंके संकेतका लोभ संवरण नहीं कर सकता जो महाभारतके पात्रों व व्यापारोंका सुन्दर स्थानान्तरण जनतंत्रकी विडम्बनाओं में करतेहैं। यह स्थानान्तरण इस तथ्यकी ओर भी संकेत करताहै कि कविने महाभारतके पूरे परिदृश्यको कुशलताके साथ आजके सन्दर्भमें प्रबलता और संक्षिप्तताके साथ चित्रित कियाहै। यही संजय धृतराष्ट्रसे कह रहेहैं, कुछ उदाहरण लें :

१. "सुनो राजन् !/द्रौपदी; रूपाजीवा/जनतंत्रमें" [पृ. १२४]
२. "सुनो राजन् !/कृष्ण; ऐंबासेडर/जनतंत्रमें" [१२५]
३. "सुनो राजन् ! दुर्योधन; फूलेगा/जनतंत्रमें" [पृ. १२६]
४. "सुनो राजन् !/एकलव्य; जुझारू/जनतंत्रमें" [पृ. १२७]

और अन्तमें जनतंत्रमें पूरा देश महाभारत हो गयाहै :

"सुनो राजन् !
देश; महाभारत
जनतंत्रमें" [पृ. १२८]

अन्तमें एक बात और। मनोज सोनकरने जहां एक ओर मुक्त छंद, गीत गजल, प्रबन्ध तथा हायकु—सभी क्षेत्रोंमें अपनी रचनात्मकताको गतिशील कियाहै; वहीं दूसरी ओर भिन्न 'रूपाकारों' का एक सजीव, बोलता हुआ संसार, उनके रचना संसारमें [हायकुमें विशेष रूपसे] प्राप्त होताहै। ये रूपाकार अधिकतर लोकधर्मी हैं जो जनमानसके निकट हैं; पर ज्ञान-विज्ञान के आशय और रूपाकार अपेक्षाकृत कम हैं। ऐसा लगताहै कि कविने विचार-साहित्यका उस रूपमें मंथन नहीं किया जो संवेदनाको अधिक अर्थवान् और बहुआयामी बना सकताहै। अनुभव और विचारका 'घोल' संवेदनाको गहराई देताहै; इस दृष्टिसे मनोज सोनकरसे आशा है कि वे इस क्षेत्रमें भी अवगाहन करनेका 'और' प्रयत्न करेंगे। जन-चेतना और संघर्ष को जितना भी तीव्र रूप दिया जायेगा, वह 'विचार संवेदन' की तीव्रतापर ही निर्भर करताहै और यह 'तीव्रता' सोनकरकी रचनाशीलतामें प्राप्त होतीहै। हायकुओंसे सदा यह अनुभव होताहै कि सोनकरमें अभी अपार संभावनाएँ हैं; यह बात मात्र कहनेके लिए नहीं

कहीजा रही, अपनी उस समझ और संवेदनाके प्रकाश में कह रहाहूं जो मैं निरन्तर अध्ययन और अनुभवसे प्राप्त कियाहै । □

अनल प्रकाश[१]

रचयिता : गुप्त-बन्धु
सम्पादक : डॉ. स्वर्णप्रभा अग्रहरि
समीक्षक : डॉ. हरिद्वारीलाल शर्मा

प्रस्तुत कृति खण्ड काव्य ही कहीजा सकतीहै, यद्यपि इसने अपनी परिधिमें भारतीय इतिहासके एक बड़े और विशिष्ट अध्यायको काव्यायित कियाहै । जिसका तात्पर्य है कविकी क्रान्तदर्शी दृष्टिसे सौन्दर्य-माधुर्य-उदात्तको देखना और दिखाना ।अपने उक्त गन्तव्य को प्राप्त करनेमें यह काव्य सफल है । कवि-प्रतिभा सौन्दर्य-माधुर्य उदात्तको रूपायित करतीहै । रूप देना, रूपायन, कविकी कारयित्री प्रतिभाका अभीष्ट होता है। गुप्त-बंधुकी प्रतिभा शृंगार-करुण-शान्तको, जो शास्त्रकी दृष्टिसे "चित्तद्रवीमयोऽऽह्लादः' = चित्त के द्रवीमय आह्लादका भाव है, उतना महत्त्व नहीं देती, और न मात्र रूप-सौन्दर्यको, यद्यपि सौन्दर्य और माधुर्यकी छटाएँ यत्र-तत्र बिजली-सी कौंध जातीहैं । सब मिलाकर, अनल-प्रकाश उदात्त श्रेष्ठ कोटिका काव्य है । उदात्तमें महान्की अनुभूति होतीहै ।

अनल-वंश और इसके वंशज महान् हैं । महान् का अर्थ है बड़े-बड़े कर्म करनेवाले, श्रेष्ठ और प्रियकी कामनासे मुक्त होकर श्रेष्ठके कठोर मार्गपर चलने वाले, जो तप-त्याग-तितिक्षाकी प्रतिमूर्तियां है । अवश्य ही, यह काव्य सामान्य स्तरपर मधुर और रसनीयके रसास्वादनके लिए नहीं है, और न माधुर्यमे मग्न होनेके लिए, वरंच उदात्तके अनुभवसे जीवनके महामूल्योंकी ओर प्रेरणा देनेके लिए लिखा गयाहै । इस प्रेरणासे चित्त-विस्फूर्ति होतीहै, महान्के अनुध्यापनसे पाठक स्वयं महान् होनेका अनुभव करताहै, और मात्र सुख ही नहीं, स्वयं महिमासे मण्डित होताहै ।

साधारण समीक्षाका विचार रहाहै कि वह मात्र शब्दार्थके साहित्यमें काव्यके समूचे सार एवं सत्यको समेट सकतीहै । सामान्य रूपसे यह संभव नहीं है, और उचित भी नहीं, क्योंकि काव्य संपूर्ण चेतन, अचेतन और अतिचेतन अस्तित्वकी उन गहराइयोंमें जन्म लेता है, और स्वतःस्फूर्त होताहै, जहांसे "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह", मन-वाणी लौट आतेहैं, वहां क्रान्तद्रष्टा कविही पहुंचताहै, और यहीं काव्यका काव्यत्व है । ऐसी स्थितिमें, काव्यकी मात्र साहित्यिक कसौटी पूरी खरी नहीं उतर सकती । जीवनकी समग्रतामें साहित्यके अतिरिक्त, इतिहास-कला-दर्शन-मन-अतिमन, सृजनात्मक प्रतिभा आदि सभी रहतेहैं । काव्य की समग्रतामें सब कुछ सहित होताहै, खण्डशः नहीं । यही यहां "साहित्य" की परिभाषा है। अनल-प्रकाशमें शब्द और अर्थकी छटाएं, अलंकार और व्यंजनाओंका पद-पदपर झरता आलोक-प्रवाह गंगोत्रीकी यात्राकी भांति दिखायी देताहै । इस आलोक-प्रवाह अथवा अध्ययन-यात्रामें भारतीय इतिहास और उच्चतम जीवन मूल्योंकी चमचमाती झलक, गम्भीर, आध्यात्मिकता, सभी उजागर होतेहैं । यह काव्यकी पुष्टि और समग्रता है जो कमही दिखायी देतीहै । मनकी गहराइयोंमें उपजे प्रतीक और बिम्ब, मिथक और प्रतिमान, और अतिमनकी ऊंचाइयोंसे झरती हुई आदर्शोंकी "अनल-प्रकाश" की धाराएं । सावधान पाठक इनका आस्वादन करेगा, आश्चर्य और चमत्कारके साथ । और, स्पष्ट ही, वह "रसे सारश्चमत्कारः" के सत्यकार साक्षात्कार भी करेगा ।

संपूर्ण काव्यका प्रभु-स्वर अथवा वादी-स्वर राष्ट्रीयता है । इस दृष्टिसे यह काव्य संपूर्ण संगीत है । जिसमें एक अनेक संवादी और रसीले स्वर सुनेजा सकतेहैं । विवादी स्वर कोई नहीं है । पूर्ण संगीतमें नृत्यको स्थान मिलताहै, जो अनल-प्रकाशमें नये-पुराने अनेक छन्दोंकी छमछममें देखा-सुनाजा सकताहै । इसकी शब्द-योजना में अनेक वाद्य-यंत्रोंकी झंकार है । सब मिलाकर लगता है, मानो पाठक यात्रियोंके सार्थवाहके साथ अलकनन्दा की घाटीमें उच्च शिखरकी ओर चढ़ा जा रहाहै। और, लगताहै कि दूर-दूरसे वैदिक ऋचाओंके साम-संगीत के स्वर गूंज-अनुगूंज करते हुए सुनायी पड़तेहैं, आलोक और आनंदसे छलछलाते चषक ।

प्रस्तुत काव्य उदात्तकी काव्य-योजना प्रतीत होता

---

१. **प्रका. : सर्व-सुलभ-साहित्य-सदन बी-१५४, लोक विहार, डा. घ. रानीबाग, दिल्ली-११००३४। पृष्ठ : ३७४; डिमा., सं. २०४८; मूल्य : ९५.०० रु. ।**

है जिसका संबंध कलात्मक मौन्दर्य और माधुर्यकी अपेक्षा महान्‌की अनुभूतिसे अधिक है। महान् अर्थात् जीवनके उदात्त मूल्योंका प्रखर अनुभव। जीवनका यह महामूल्य उक्त काव्यमें राष्ट्रीयताका पर्याय है। स्वतंत्रता इसका प्राण हैं। स्वतंत्रताके लिए अनल-वंशका त्याग-बलिदान और इसके साथ संघर्ष, आशा-निराशा के बीच झूलता जीवनका हिन्दोल, और श्रेष्ठ जीवनका संपूर्ण संगीत जिसका कभी अवसान न होगा—ये सब भारतीय पाठकके लिए प्रेरणाके अजस्र-स्रोत हैं। काव्य का मूल प्रयोजन कविके लिए पाठकका प्रसादन इतना नहीं जितना उच्च आदर्शोंके प्रति प्रेरित करनाहै, कवि हिन्दी पाठकोंकी ओरसे बधाई और साधुवादके पात्र हैं। □

उपन्यास

बेगम हजरत महल[1]

उपन्यासकार : श्री सुरेन्द्रकान्त
समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

हिन्दी उपन्यास क्षेत्रमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी एक बिशिष्ट परम्परा रहीहै और उपन्यासकार 'इतिहास' का प्रतिपादन न करते हुए कथात्मक रूपमें जिस ऐतिहासिक प्रकरणका प्रस्तुतीकरण करतेहैं, उसे 'इतिहास रस'का नाम दिया गयाहै। स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद उपन्यासका क्षेत्र आधुनिक जीवन, यथार्थ चित्रण, मनोविश्लेषण तथा अहंकेन्द्रित नारी या पुरुष तक सीमित होगया। परिणामस्वरूप प्राचीन गौरव, इतिहासकी कड़ियां विशृंखलित होती चली गयीं। आचार्य द्विवेदी, रांगेय राघव, यशपालने पुनर्स्थापनकी दिशामें जो मार्गदर्शन कियाभी, वह आगे विस्तार नहीं पा सका। विगत दशकमें तीव्रताके साथ उभरे और केन्द्रीय सेवासे अवकाश प्राप्त बासठ वर्षीय श्री सुरेन्द्रकान्तने ऐतिहासिक उपन्यासके रूपमें आलोच्य कृतिमें सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राममें सक्रिय रूपमें जूझते हुए नारी पात्रकी अद्भुत गौरव कथाकी विस्मृत कड़ियोंको बड़ी सजीवताके साथ प्रस्तुत कियाहै। इससे पांच वर्ष पूर्व वे एक अन्य ऐतिहासिक उपन्यास 'शाह आलम ('प्रकर' में इसी लेखक द्वारा समीक्षित) हिन्दी उपन्यास जगत्‌को दे चुकेहैं तथा 'मुखौटे और मुखौटे' (व्यंग्य कृति) भी दीहै।

उपन्यासकारने प्राक्कथनमें स्वयं कहाहै कि सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्रामकी—'प्रमुख भूमिकामें है अदम्य साहस, अनुपम वीरता, अद्भुत संगठन शक्ति तथा अनुकरणीय देशभक्तिसे ओत-प्रोत एक महान् वीरांगना अवधकी बेगम हजरत महल। इस विलक्षण नारीने अवधमें स्वतंत्रता संग्रामका अलख जगाया और उसे एक राष्ट्र-स्तरीय अभियानमें परिणत कर दिया। उसके आह्वानपर अवध, बिहार, रुहेलखण्ड और मध्यभारत आदिके विस्तृत क्षेत्रमें अनेक स्वतंत्रता सेनानी सक्रिय होगये और वहां लम्बे समय तक संग्राम की ज्वाला प्रज्ज्वलित रही जिसने वर्षों ब्रिटिश अधिकारियोंकी नींद हराम किये रखी (पृ. ५)। इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें कथाके ऊज्वंसित् स्रोतकी खोजमें श्री कान्त ने संक्षिप्त रूपमें १७६४ के बक्सर युद्धके बाद अवधपर ब्रिटिश अधिकारियोंके शिकंजे तथा नवाबोंको विलासमय जीवनमें धकेलते रहनेकी कूटनीतिका स्पष्ट संकेत कियाहै।

उपन्यासका आरम्भ छत्तर मंजिलके शयनागारमें वाजिदअली शाहके शराब और शबाबमें डूबे रहनेकी

---

१. प्रका. : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : १८४; डिमा. ८६; मूल्य : ७५.०० रु.।

प्रवृत्ति और कमजोरीसे कियाहै तथा यहभी स्पष्ट किया है कि विलासिताके गर्तमें डूबे वाजिदअली शाहके वजीर अली नकी खां और बेगम हजरत महल राज्यकी चिन्ता और अंग्रेजों द्वारा देहातों में लूटमार कराने, औरतोंको बेइज्जत करके आमजनतामें नवाबकी बदइन्तजामीका जिम्मेदार बतानेकी कारगुजारियोंके प्रति सजग थे और वे जानतेथे कि वाजिदअली शाहको इसकी कतई चिन्ता नहीं है। राज्यमें रेजीडैण्टका ही हुक्म चलताथा। वजीर गुपचुप फौजकी तैयारी करनेकी इजाजत चाहते थे पर शाहको यह स्वीकार नहीं था, पर समयोचित परामर्शसे ताल्लुकेदारोंको खुफिया फरमान भिजवा दिया गया। बेगम हजरत महलने शाहकी राज्यकी तरफ बढ़ती बेरूखीपर राज्य व्यवस्थामें रुचि लेना आरम्भ कर दिया।

जेम्स आटरमने बादशाह, वजीर और अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों तथा अंग्रेज अधिकारियोंके साथ मंत्रणा करके ऐसा मार्ग खोजनेकी चेष्टा कीथी ताकि प्रशासन सुचारु रूपसे चल सके परन्तु कुछभी सम्भव न था क्योंकि परिस्थितियां काफी बिगड़ चुकीथी। इसी समय गवर्नर डलहौजीकी कुत्सित योजना अवध पर अपने आधिपत्यका पंजा बढ़ाने लगी। बेगम हजरत महल भी चुप नहीं थी। वजीर तथा अन्य विश्वास पात्रोंके साथ गुप्त मंत्रणाएं की। परिणामस्वरूप फैजाबादके मौलवी अहमदुल्ला शाहने सहयोगका हाथ बढ़ाया। इधर डलहौजीके आदेशानुसार शाही महलको अंग्रेजी फौजने घेर लिया तथा बादशाह वाजिदअली को नजरबंद करके कलकता भेज दिया।

बेगम हजरत महल अकेली पड़ गयी पर उनका चिन्तन नहीं रुका। तभी मौलवी अहमदुलना दरियाबादके जागीरदार बलवन्तसिंहके साथ राय-मशविरा करके बेगमके पास खुफिया ढंगसे पहुंचे। वहीं गुप्त रूपसे प्रविष्ट राजा जैलाल सिंह भी पहुंचे तथा बताया कि महबूबखां, शराफुद्दौला, अली नकी, जससिंह आदि की गुप्त बैठकोंकी सूचना भीदी। तभी एक दिन दरियाबादके किलेके अन्तःकक्षमें चुल्हावलीके राजाके वेषमें बेगम वाजिद अलीशाहको नजरबन्दीसे छुड़ानेके लिए लन्दनमें रानी विक्टोरियाको लिखे जानेवाले खतका मजमून सभीकी पुष्टिके लिए प्रस्तुत कराते हुए निर्णयात्मक रूपमें कहतीहैं कि अब वक्त आन पहुंचाहै कि हम पूरे मुल्कमें आजादीके लिए जिहाद छेड़ें—अब ये अवध के लिए नहीं, बल्कि पूरे हिन्दके लिए जंग होगी (पृ. ७२)। दरियाबाद, नवाबगंज या फैजाबादकी नियमित होनेवाली बैठकोंमें योजनाबद्ध रूपसे स्वतंत्रता संग्राम का शंख फूंकाजा रहाथा और सबसे पहले मौलवी अहमदुल्ला शाह उर्फ खलीफा तुल्लाहने फैजाबादमें अंग्रेजी राज्यका अन्त घोषितकर वाजिदअली शाहके राज्यकी पुनःस्थापना घोषित की। उसी क्रममें योजनाबद्ध रूपमें सीतापुर, बहराइचमें भी अंग्रेजी राज्य समाप्त होगया। कानपुर, मेरठ तथा दिल्लीसे अच्छे समाचार मिले तो बेगमने आम सभाको सम्बोधित करते हुए जन जागृतिका शंख फूंका कि—अब वक्त आ गयाहै कि हम लोग जीजानसे इस जंगे-आजादीमें शरीक होकर मुल्कको इन फिरंगियोंसे हमेशाके लिए निजात दिलायें। फिलहाल हमें लखनऊमें पूरे जोशो खरोशसे इन लोगोंसे लोहा लेनाहै--फैजाबाद, गोरखपुर सीतापुर, गोंडा और बहराइच वगैरहसे हजारों सिपाही लखनऊ पहुंच चुकेहैं (पृ. ८८)।

बेगमकी बढ़ती गतिविधियोंसे ब्रिटिश अधिकारी भी अपरिचित नहीं थे। उसके जासूस निरन्तर खबरें दे रहेथे, पर बेगमने बड़ी कुशलतासे रेजीडेंसी और मच्छीभवनकी घेराबन्दी करादी। हेनरी लारेन्सको अपने जासूसों और मेजर गॉलकी मृत्युने चिन्तित और निराश कर दिया तथा अपने सुरक्षा प्रबन्ध कड़े करने में व्यस्त हुआ तो बेगमके हमलेमें ढील रहनेके कारण उसका हौसला बढ़ गया तथा चिनहटमें उसने सेनाएं और तोपखाना जमाकर हमलेकी पहल की। बेगमकी फौजोंने कर्नल बर्कत अहमदके नेतृत्वमें अंग्रेजी फौजको चारों ओरसे घेर लिया उधर अंग्रेज तोपचियोंने भी, विद्रोहकर दिया, देशी घुड़सवार अवधकी सेनामें आ मिले। अंग्रेज पराजित हुए। उनका तोपखाना बेगमके अधिकारमें आ गया। अंग्रेज स्त्री पुरुष बालकोंको शरण देनेमें भी भारतीय स्वतंत्रताके दीवाने पीछे नहीं थे।

रेजीडेन्सीपर अधिकारकी असफलताका विश्लेषण अपने सहयोगियोंसे करके बेगमने स्वाधीनता संग्रामकी एकरूपता और उसके राष्ट्रीय स्वरूपके लिए अवयस्क बिरजिस कादरका राज्याभिषेक कराया तथा अभिभावकके रूपमें शासन एवं युद्धका कार्यभार संभाला। इसी अवधिमें नाना साहब पेशवाने कानपुर और बिठूर हाथसे निकल जानेकी सूचना दी। बेगमने अपने सेना-

नायकोंके साथ जनरल हैवलॉकसे मुकाबिला किया तथा उसे खदेड़ दिया तथा वह गंगा नदी पार करके कानपुर जा पहुंचा और कैम्पबैलने कमान सम्भाली जिसके साथ उसी समय इंग्लैण्डसे भेजे गये सैन्यदल और अस्त्र--शस्त्रथे तथा नेपालकी सहायतासे बेगम हजरत महल परास्त हुई, उधर दिल्लीमें भी हारकी खबर आ गयी। गोरखपुर और सुल्तानपुरसे भी ऐसे ही समाचार मिलें। बेगम सभीके आग्रहके कारण लखनऊ खाली कर गयीं। कुंवरसिंह लखनऊसे आजमगढ़ जा पहुंचे। अंग्रेज जनरल लार्ड केनिंगने बेगमको आत्मसमर्पण करनेका प्रस्ताव किया लेकिन अंग्रेजों के विरुद्ध कभी खत्म न होनेवाली लड़ाईका ऐलान करनेवाली बेगमको यह स्वीकार नहीं था। नेपाल नरेश अंग्रेजोंका मित्रथा फिर भी हिन्दू परम्पराके अनुसार बेगमको शरण दी। वहीं बेगम सुनन्दा और नेपालके प्रधानमंत्री शमशेर जंगके सहयोगसे हथियार बनानेका कारखाना बनाया गया और गुप्त रूपसे बने हथियार क्रान्तिकारियोंको भारतमें भेजे जाने लगे। बेगमका नेपालमें ही निधन होगया।

उपन्यासकार श्री सुरेन्द्रकान्तने ऐतिहासिक वृत्त को प्रसादात्मक और कथात्मक रूप देकर ऐसे कथाक्रममें गूंथाहै कि एक बैठकमें ही सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ जाने योग्य है। उपन्यासकी भाषा सुष्ठु, प्रांजल, पात्रगत तथा मनोभावोनुकूल है तथा स्थान-स्थानपर संक्षिप्त एवं नाटकीय सम्वाद शैलीने उपन्यासकी प्रवाहात्मकता निरन्तर बनाये रखीहै। ऐतिहासिक उपन्यासके क्रममें हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धिमें यह उपन्यास हमारे स्वतंत्रता संग्रामकी हुतात्माओंके तत्कालीन उत्सर्गका दस्तावेज बन सकनेकी सकल सम्भावनाएं लिये हुएहै। उनसे ऐसे ही सरस, प्रवाहपूर्ण, ऐतिह्य संग्राहक उपन्यासोंकी अपेक्षा है। ☐

तीसरा प्रहर[1]

लेखक : प्रह्लाद तिवारी

समीक्षक : डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर

प्रस्तुत उपन्यासकी रचना मध्यवर्गीय जीवन-सन्दर्भोंको आधार बनाकर की गयीहै। इस औपन्यासिक कृतिके तीन खण्डोंमें कथानायकके जीवन-विकासकी भिन्न-भिन्न स्थितियोंको उभारा गयाहै। इस प्रकार उपन्यास कथानायकके सम्पूर्ण जीवन-विकासकी झांकी प्रस्तुत करताहै।

उपन्यासके प्रथम खण्डमें नायकके प्रेम-सम्बन्धको उभारा गयाहै। किशोरावस्थामें उसका प्रेम सम्बन्ध पड़ोसमें रहनेवाली इन्दिरा नामक लड़कीसे हो जाता है। दोनोंकी पारिवारिक घनिष्ठताके कारण पहले तो इस प्रेम-सम्बन्धमें क्रमिक रूपसे प्रगाढ़ता आतीहै, किन्तु बादमें विषम परिस्थितियोंके कारण इसपर आघात पहुंचताहै। वस्तुतः भाभीके द्वारा इन्दिरापर यह दबाव दिया जाताहै कि वह उसके भाई कपिलसे विवाह कर ले, किन्तु कपिलकी चारित्रिक दुर्बलताओंके कारण उसके मनमें उसके प्रति वितृष्णा एवं घृणाका इतना तीखा भाव निहित है कि वह इस विवाहके लिए तैयार नहीं होती और विद्रोह स्वरूप आत्मघात कर लेतीहै। इन्दिराकी आत्महत्याके लिए नायक अपने-आपको दोषी मानने लगताहै और इसके परिणामस्वरूप वह मानसिक रूपसे दग्ध और संतप्त होता रहताहै। इस प्रकार इन्दिराके आत्मघातके कारण नायकके प्रेम सम्बन्धका पटाक्षेप हो जाताहै, इतना ही नहीं, यहांपर आकर उसके जीवनके कैशोर्य कालकी समाप्ति भी हो जाती है।

नायकके जीवनमें प्रेम-सम्बन्धकी भाँतिही निराशा की दूसरी स्थिति वैवाहिक प्रसंगमें उत्पन्न होतीहै। महेन्द्रसिंह पहले तो नायकको लक्ष्य करके ही अपनी पुत्री सरलाके विवाहका प्रस्ताव लेकर आतेहैं किन्तु यहां पर भी नायक को निराशाका सामना करना पड़ताहै। स्थिति यह होतीहै कि सरला अपने वैवाहिक प्रसंगमें नायकको नकारकर उसके छोटे भाई नरेशको ही अपने लिए उपयुक्त मान लेतीहै। इस प्रकार सरला नरेशके साथ वैवाहिक सूत्रमें बंध जातीहै, किन्तु प्रतिक्रियास्वरूप नायकके मनमें हीनताकी ग्रंथि पैदा हो जाती है। यह हीनत्व ग्रन्थि भी उसके मनमें निराशाका संचार करती रहतीहै और वह आन्तरिक रूपसे दुर्बलता का शिकार होता चला जाताहै।

नायकके जीवनकी यह दुर्बलता विशेषतः उसके खंडित एवं विघटित दाम्पत्य-जीवनके सन्दर्भमें उभरकर प्रकट होतीहै। नायकका प्रेम-सम्बन्ध अपने ही महा-

---

[1] प्रका. : दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १९६; क्रा. ९०; मूल्य : ५०.०० रु.।

विद्यालयकी प्राध्यापिका शुभ्राके साथ स्थापित होताहै और इसकी परिणति इन दोनोंके विवाहमें होतीहै। प्रारम्भके कुछ वर्षोंमें तो दोनोंके दाम्पत्य-जीवनमें अनुकूलता बनी रहतीहै, किन्तु परिस्थितियोंकी विषमता कुछ इस प्रकार उभरतीहै कि दोनोंके बीच कटुता और अलगावकी स्थिति बन जातीहै। बादमें यह स्थिति इतनी विस्फोटक हो जातीहै कि शुभ्रा पुत्र वैभवको अपने साथ लेकर उससे अलग रहने लगतीहै। इस प्रकार नायक न केवल अपनी पत्नीकी कटुताको ही झेलनेको बाध्य होताहै बल्कि उसे अपने पुत्र वैभवकी घृणाका दंश भी सहना पड़ताहै। जब वह वैभवसे मिलने छात्रावास पहुंचताहै तब उसे अपने प्रति उसकी (वैभवकी) तीव्र घृणाके साथ ही सम्बन्धहीनताका भी अनुभव होताहै। इस अवसरपर उसे स्पष्ट रूपसे यह अनुभूति होतीहै कि वैभवके इस अलगावपूर्ण व्यवहारके मूलमें शुभ्राकी घृणा ही निहित है।

'असुरक्षाका अनचाहा दर्द मेरे भीतर विस्तार पा रहाहै। मेरी प्रासंगिकता कहां रहीहै। मैं तो घृणाका पात्र बनताजा रहाहूं। मुझे नकारा जा रहाहै, मेरी पहचानको खंडित किया जा रहाहै। मेरा दोष क्या है, यह कोई बताना नहीं चाहता। यहां मैं स्पष्ट करना चाहताहूं इस 'कोई' से आशय शुभ्रा है। शुभ्राके माध्यमसे सन्दर्भहीन मानकर खारिज करनेकी स्थिति मुझे समाजके सन्दर्भसे खारिज नहीं करेगी? खारिज करनेके लिए ठण्डी प्रतिक्रिया ही पर्याप्त होतीहै। मौन के बीच लोग मुझसे असम्वादकी स्थिति बनालें, यही मेरे लिए घातक है।' (पृष्ठ १६५)।

वस्तुत: नायकके जीवनकी सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि वह अपनी पत्नी शुभ्रा और पुत्र वैभवके लिए घृणास्पद बन गयाहै। दोनोंकी इस घृणा-भावनाकी चरम परिणति तो कथाके अन्तिम अंशमें उभरकर प्रकट होतीहै जब वे दोनों ही उसे अपनी पारिवारिक जीवन-परिधिसे बिल्कुल बहिष्कृत करके ही रख देतेहैं। इसकी प्रतीति कुछ चित्रोंके माध्यमसे होतीहै। इन चित्रोंमें पुत्र वैभवके विवाहमें नायककी उपेक्षा, वैभव और उसकी पत्नीकी इच्छापर नायकका आश्रित होना, घरके नवीमीकरणके क्रममें नायकका निष्कासन और वैभवके पुत्रके जन्मदिवसके आयोजनके अवसरपर उसका तिरस्कार आदि स्थितियोंका सन्निवेश मिलताहै। निश्चयही इन चित्रोंके माध्यमसे अपनेही परिवारमें नायककी दयनीय जीवन स्थितियोंका बड़ा ही मार्मिक अंकन हुआहै। इस उपन्यासमें सामाजिक यथार्थके चित्रणका एक भिन्न सन्दर्भ भी उपलब्ध होताहै। उपन्यासकारने नायककी विधवा चाचीके कमजोर और सम्मानहीन जीवनके माध्यमसे भारतीय परिवारोंमें वैधव्यका जीवन बितानेवाली स्त्रियोंकी दयनीय दशा का चित्रण भी कियाहै। नायककी चाची पहले तो नरेश और उसकी पत्नी सरलाके साथ रहतीहै और फिर बादमें नायक और शुभ्राके साथ, किन्तु इन दोनों ही परिस्थितियोंमें उसे अनादर और अपमानका दंश ही झेलना पड़ताहै। नायककी चाचीकी यह अपमानजनक स्थिति इस रूपमें महत्त्वपूर्ण मानीजा सकतीहै कि इसके माध्यमसे भारतीय परिवारोंमें आधारशून्य विधवाओंकी दीन और दुर्बल जीवन-स्थितियोंका बोध होताहै। इस प्रकार चाचीके जीवनके इस दयनीय पहलू के अंकनके माध्यमसे वर्त्तमान भारतीय जीवनके एक बहुत बड़े सामाजिक यथार्थका बड़ा ही सटीक चित्रण किया गयाहै।

उपन्यासमें सामाजिक यथार्थके अनैतिक पक्षका भी अंकन हुआहै। यह अंकन कतिपय वैसे पात्रोंके जीवन को आधार बनाकर किया गयाहै जो मुक्त यौन सम्बन्धोंके आग्रही है। कपिल और विक्टोरियाका यौन सम्बन्ध इस तथ्यको उदाहृत करताहै। जहां एक ओर कपिल अपनी भ्रमरवृत्तिके कारण विक्टोरियाकी ओर बढ़ताहै, वहीं दूसरी ओर विक्टोरिया अपने अधेड़ पति राबर्टसे अतृप्त रहनेके कारण कपिलसे अवैध दैहिक सम्बन्ध बना लेतीहै। इस प्रकार दोनोंके अवैध सम्बन्ध-निर्माणसे एक सामाजिक कुत्साका जन्म होताहै। सामाजिक जीवनमें व्याप्त ऐसी कुत्सित स्थितिका दूसरा उदाहरण रोहित वाजपेयीके उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द आचरणमें मिलताहै। समाजके सम्पन्न अथवा उच्च मध्यवर्गकी कई युवा स्त्रियोंसे रोहितका अवैध सम्पर्क है जिसके माध्यमसे महानगरके रुग्ण एवं विकृत स्वरूप का पता चलताहै।

उपन्यास शिल्पके धरातलपर भी एक नयापन रखताहै। इस उपन्यासकी शिल्पगत नवीनता इस रूप में देखनेको मिलतीहै कि इसमें कथानायककी डायरीके पृष्ठोंमें दिये गये विवरणोंके आधारपर कथाके सूत्रको बढ़ाया गयाहै।

भाषा सामान्यत: प्रवाहपूर्ण हैं। इसमें कथाविकास

के साथही पात्र-पात्राओंकी चारित्रिक विशेषताओंको स्पष्टरूपेण प्रस्तुत करनेकी क्षमता है, किन्तु कहीं-कहीं उपन्यासकारने बौद्धिक स्थापनाओंकी प्रस्तुतिके निमित्त भाषाको अस्वाभाविक रूप देनेका प्रयास कियाहै। निश्चयही ऐसे स्थलोंपर भाषाकी कृत्रिमता खटकने लगतीहै।

यह कहाजा सकताहै कि उपन्यासमें मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेशके माध्यमसे कथा-नायकके व्यक्तित्व विकासके विविध मोड़ोंको प्रस्तुत किया गयाहै और इसी विशिष्ट सन्दर्भमें पाठकोंके समक्ष इस रचनाकी उपादेयता मानीजा सकतीहै। □

कहानी

आयेंगे अच्छे दिन भी[1]

लेखक : स्वयंप्रकाश

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

स्वयंप्रकाश युवा पीढ़ीके चर्चित कहानीकार हैं। अबतक उनके पांच कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुकेहैं। 'आयेंगे अच्छे दिनभी' उनका नया कहानी-संग्रह है, जिसमें उनकी ग्यारह कहानियां संगृहीत हैं।

'आयेंगे अच्छे दिनभी' में संगृहीत कहानियोंमें से प्रत्येक कहानीकी दुनियां अलग है; लेकिन इनमें से अधिकांश कहानियोंको एक सूत्रमें पिरोतीहै मार्क्सवादी दृष्टि। अधिकांश कहानियोंको पढ़नेके बाद यही दृष्टि उभरकर सामने आतीहै। पहली कहानी 'अशोक और रेनुकी असली कहानी' में इंजीनीयर अशोक और उसकी पत्नी एम. एस-सी., बी. एड., रेणुकी कहानी कही गयीहै। अभी उनके विवाहको तीन वर्ष हुएहैं इन तीन वर्षोंमें ही रेणु बुझने लगीहै; क्योंकि वह स्त्री है और स्त्री होनेके नाते दाम्पत्यमें उसकी स्थिति गौण है। लेखकने इस कहानीमें स्त्रीकी इसी गौणताको उभाराहै और उसपर प्रश्नचिह्न लगायाहै। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस कहानीमें मार्क्सवादी दृष्टि इस रूपमें सामने आयीहै कि स्त्री शोषित है, आर्थिक रूपसे वह पराधीन हैं, इसलिए उसके व्यक्तित्वका हनन होताहै, चाहे वह कितनीही रूपसी, शिक्षित और गुणवती क्यों न हो! दूसरी कहानी 'मरनेकी जगह' में स्थानीय अखबारके विपन्न, शोषित प्रूफरीडरकी कहानी कही गयीहैं। प्रूफरीडर मिश्राका दैन्य घोर है। वह सीढ़ियोंपर से फिसलकर गिर पड़ताहै और अपने पीछे विपन्न, असहाय परिवार छोड़कर दिवंगत हो जाताहै। अन्तत: उसका बड़ा लड़का राजेन्द्रभी उसी जगह कम्पोजीटर बन जाताहै। वह स्वेच्छासे वहां नहीं आयाहै; उसकी विवशता उसे वहां लायीहै, क्योंकि मजदूरके लौंडेका मजदूर बनना उसकी नियति है। इस कहानी में निम्न मध्यवर्गकी आर्थिक विवशताका चित्रण है और इस आर्थिक विवशतासे मुक्तिका उपाय विषम समाज में कुछ नहीं है। 'गुमशुदा' कहानीमें वर्ग वैषम्यका चित्रण है। इस कहानीमें एक अफसर और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारीके सम्बन्धोंका चित्रण है। ऊपरी तौरपर समताका आचरण करनेपर भी अन्तत: अफसर अपनी अफसरियत दिखाही देताहै और चतुर्थ श्रेणीके कर्मचारी को निराश होना ही पड़ताहै। 'बेमकान' में सामाजिक वर्ण-व्यवस्थाकी विषमताका चित्रण है। एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्तिको किरायेपर मकान इसलिए नहीं मिलता; क्योंकि वह हरिजन है। हरिजन होनेके कारण उसे मकान ही नहीं मिलता, अपितु शारीरिक ताड़ना भी सहनी पड़तीहै। कहानीके अन्तमें कहानीकारने

---

[1] प्रका. : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., १ बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १५०; क्रा. ९१; मूल्य : ५०.०० रु.।

पाठकोंसे पूछाहै कि "क्या आप मोहनलालजीको अपने मोहल्लेमें कोई मकान दिलवा देंगे ? या जबतक मकान न मिले उन्हें अपने साथ बतौर पेइंग गेस्ट रख लेंगे ?" (पृ. ६३) । मैं समझताहूँ कि अनेक दशकोंकी हरिजन-उद्धार और उत्थानकी योजनाओं-प्रयत्नोंके होते हुए भी अभी इस प्रश्नका उत्तर नकारात्मक ही होगा । 'चोरकी माँ' में टेलीफोन आपरेटर पप्पूके पतनकी कहानी कही गयीहै। शुरूका नेक पप्पू अन्तत: रिश्वतखोर और नशेड़ी बन जाताहै । अपने पतनके लिए वह स्वयं उत्तरदायी नहीं है, बल्कि वह व्यवस्था उत्तरदायी है जिसका वह अंग है । इस व्यवस्थामें सरकारी तन्त्र, पूरा समाज और उसका परिवार शामिल है । कहानीकारने पप्पूके सुधरनेकी सम्भावनाकी ओर संकेत करके अपनी आशावादिताको संकेतित कियाहै । 'संहारकर्त्ता' में एक ट्रेड यूनियन नेताके पतन और 'नैनसीका धूड़ा' में गरीब आदमी और पशुकी समाज नियतिका चित्रण है ।

जिन कहानियोंकी चर्चा हमने कीहै, उन्हें आसानी से मार्क्सवादी दृष्टिकी कहानियाँ कहाजा सकताहै । भारतमें मार्क्सवादी दृष्टिका एक और सायाम विकसित हुआहै । वह है साम्प्रदायिकताके सन्दर्भमें हमेशा बहुसंख्यक वर्गको दोषी ठहराना । यह दृष्टि कितनी सदोष या निर्दोष है, इस बहसमें यहाँ पड़ना व्यर्थ है; लेकिन यह एक तथ्य है । इस दृष्टिसे देखें तो 'पार्टीशन' और 'आलेख' को भी मार्क्सवादी कहानियां घोषित किया जा सकताहै । इन दोनों कहानियोंमें साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण है और दोषी बहुसंख्यक वर्गको ठहराया गया है ।

इन कहानियोंके बाद संग्रहमें दो कहानियाँ बचती हैं और वे इनसे सर्वथा भिन्न हैं। एक कहानी है 'झक्की', जिसमें एक छोटे-से रेलवे स्टेशनके तीन व्यक्तियोंका चित्रण है—एक स्टेशनमास्टर उपाध्याय, एक अध्यापक श्रीमाली, और एक नौजवान डाक्टर । इनमें से पहले दो व्यक्ति ऊबे हुएहैं, क्योंकि उनके पास करनेके लिए कुछ विशेष नहीं है । इनके विपरीत डाक्टर मस्त और व्यस्त है। दोनों उसे झक्की समझतेहैं। यह कहानी विशेष परिस्थितिमें तीन व्यक्तियोंका चारित्रिक अध्ययन प्रस्तुत करतीहै । इसलिए इस कहानीको मनोवैज्ञानिक कहानी कहाजा सकताहै । शेष बची कहानी 'अफसरकी मौत' भी चारित्रिक अध्ययनकी ही कहानी है । इसमे कहानीकारने बाबूसे अफसर बननेवाले लालूरामकी व्यथाका चित्रण कियाहै । बाबूपनकी अनौपचारिकता, फक्कड़ता और मस्तीके अभ्यस्त लालूरामको अफसरकी औपचारिक जिन्दगी उबातीहै । वे छटपटाते हैं, किन्तु उससे छूट नहीं पाते; क्योंकि उनकी दशा सांप-छछूंदर वाली हो गयीहै । यह भी एक मनोवैज्ञानिक कहानी है ।

'आयेगे अच्छे दिन भी' की कहानियां सामान्यत: रोचक हैं, उनका शिल्प मँजा हुआहै, उनकी भाषामें आंचलिकताका पुट है, उनकी दृष्टि प्रगतिशील हैं; लेकिन कुछ चीज है जिसका उनमें अभाव है; जिसके कारण स्वयंप्रकाशकी कहानियां न हमें उत्साहित करती है और न गहरे स्तरपर प्रभावित करतीहैं । जिस चीज का स्वयंप्रकाशकी कहानियोंमें अभाव है, वह चीज है अनुभवके तापका अभाव । इन कहानियोंमें आत्मकथात्मकताकी झलक हमें कहीं-कहीं मिलतीहै; फिरभी हम बरावर यह अनुभव करतेहैं कि लेखक जो कुछ कह रहा है वह उसका स्वानुभूत सत्य नहीं है । यह दोष हिन्दीके प्राय: सभी पीढ़ियोंके प्रगतिशील कथाकारोंमें रहाहै और स्वयंप्रकाश इस दोषसे सर्वथा मुक्त नहीं हैं । ⊡

चिन्तन और जड़ता

भारतके जलते प्रश्न[1]

लेखक : ओशो
सम्पादन : मां अमृत साधना,
स्वामी दयाल भारती
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

"भारतके जलते प्रश्न" ओशोके पाँच व्याख्यानों का संग्रह है । ये व्याख्यान कब और कहाँ दिये गये—इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया, पर व्याख्यानमें चर्चित एक-दो स्थानोंपर की गयी टिप्पणियोंसे पता चलताहै कि ये व्याख्यान अहमदाबादमें १९७२ से पहले दिये गयेथे । पुस्तकमें जिन समस्याओंकी चर्चा की गयीहै, इन २० वर्षोंमें उनके नये-नये आयाम विकसित हुएहैं, पर ओशोने अनेक समस्याओंको मूलसे पकड़ने का प्रयास कियाहै, इसलिए उन समस्याओंपर उनके विचार आजभी प्रासंगिक हैं और तबतक रहेंगे जब तक हम मौलिक परिवर्तन नहीं करते ।

---

[1] प्रका. : डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., २७१५ दरियागंज, दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : १४३; क्रा. ६१; मूल्य १२.०० रु.; (पेपरबैक) ।

पुस्तक पांच अध्यायोंमें विभक्त है जिनका नामकरण सम्पादकोंने किया होगा । 'समस्याओंके ढेर' शीर्षक पहले व्याख्यानमें ओशोंने कुछ समस्याओंकी चर्चा कीहै और श्रोताओंका आह्वान कियाहै कि 'जो भी आपको जलते हुए प्रश्न लगतेहों, वह आप लिखकर दे देंगे तो मैं तीन दिनोंमें उनकी बात करना चाहूंगा (पृ. ३६), पर पुस्तकमें इसके बाद चार अध्याय हैं और हर अध्यायका समापन व्याख्यान समाप्त करनेकी ओशोकी अपनी शैलीमें ही हुआहै । अतः ये तीन नहीं, चार व्याख्यान हैं ।

विभिन्न समस्याओंके प्रति ओशोके दृष्टिकोणका आभास पाठकको प्रथम अध्यायमें ही हो जाताहै । अपने विचारोंकी दृष्टिसे ओशो उन विचारकोंकी श्रेणीमें आतेहैं जो परम्पराओंमें बंधना स्वीकार नहीं करते और जो लोक-सहमतिकी चिन्ता किये बिना अपनी बात कहनेमें संकोच नहीं करते । एक शिष्यने प्रश्न किया कि देशकी वर्तमान परिस्थितिके लिए कौन उत्तरदायी है ? यह वास्तवमें एक ऐसा आधारभूत प्रश्न है जो सभी लोग लगभग प्रत्येक समस्याके सन्दर्भ में पूछा करतेहैं । ओशोंने ठीकही उत्तर दिया कि ''सदासे हम यही सोचते रहेहैं कि कौन जवाबदार है ? इससे यह भ्रांति पैदा होतीहै कि कोई और हमारे सिवाय जवाबदार होगा । इस देशकी परिस्थितिके लिए हम जबाबदार है'' (पृ. ८८), ''जो भी चारों तरफ हो रहाहै, हम सब उसमें साथी सहभागी हैं .. .. इस देशको सामूहिक दायित्वकी धारणाको सीखना पड़ेगा'' (पृ. ९०) ।

पुस्तकमें यों तो राष्ट्रीय एकता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, साम्प्रदायिकता, आधुनिकता, अश्लीलता, चरित्र, व्यभिचार, युवकोंकी भटकन, सन्तति नियमन आदि अनेक समस्याओंपर ओशोके विचार संक्षेपमें आयेहैं, पर 'गरीबी और समाजवाद' तथा 'पूंजीवाद की अनिवार्यता' शीर्षक अध्याय २ और ४ में गरीबी और पूंजीवादकी चर्चा कुछ विस्तारसे हुईहै । ये दोनों परस्पर पूरक अध्याय हैं । गरीबीके कारणोंकी खोज करते हुए ओशोने ठीक कहाहै कि ''बड़ीसे बड़ी हमारी समस्या गरीबीकी, दरिद्रताकी दीनताकी है । पर इस देशने दीनता, दरिद्रताको दूर करनेके स्थानपर ऐसी व्याख्याएं स्वीकार कर लीहैं जिनसे दरिद्रता कभी भी दूर न हो सके......साधु और संत और महात्मा गांव-गांव लोगोंको यही समझाते फिर रहेहैं कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मोंके फलके कारण । गरीबीको पिछले जन्मोंसे जोड़ देनेका अभिप्राय यह है कि गरीबी नहीं बदलीजा सकती । उसके बदलनेका कोई उपाय नहीं है, उसे भोगनाही पड़ेगा । वह अपने कर्मों का फल है'' (पृ. ३८-३९) ।

साम्प्रदायिकताके बारेमें भी ओशोका यह कहना उपयुक्त है कि जबतक हम आदमीको हिन्दू या मुसलमान या कुछ और बनाते रहेंगे, तबतक शान्ति नहीं होसकती, साम्प्रदायिकता दूर नहीं होसकती । जो लोग बुद्धिमान हैं, वे स्वयं अपनेको भी इसी रूपमें ढालें, और लोगोंको यही समझायें कि हम हिन्दू-मुसलमान नहीं, केवल मनुष्य हैं'' (पृ ११-१६, ७६-७८)।

सन्तति नियमनके बारेमें भी ओशोने उन सुझावों को दुहरायाहै जो समझदार लोग काफी समयसे दे रहे हैं जैसे, जिसके जितने कम बच्चे हों, उसे उतनी अधिक सुविधाएं मिलें, जो निस्संतान हों, उसे पुरस्कृत किया जाये, आदि । ओशोने यह भविष्यवाणी भी कीथी कि १९७८ में भारतमें भयंकर अकाल पड़ेगा जिसमें कमसे कम दस करोड़ लोग मरेंगे (पृ. १४१)। ऐसा तो नहीं हुआ, ऐसी भविष्यवाणियां कभी सही होतीभी नहीं, पर इससे सन्तति-नियमनका महत्त्व कम नहीं होता ।

चरित्रके सम्बन्धमें हमारे समाजमें जो संकीर्णता आयीहै, उसपर भी ओशोने विचार कियाहै। हमने चरित्र को सेक्सपर केन्द्रित कर दियाहै । किसी व्यक्तिको चरित्रहीन कहतेही ''हमें यही ध्यान आयेगा कि उसके यौन सम्बन्धोंकी कोई गड़बड़ है । हमें कभी ध्यान नहीं आयेगा कि यह आदमी झूठ बोलता होगा'' (पृ. १०८), या उसमें समयका पालन न करना, दिये वचनको पूरा न करना जैसी आचरणकी और कमियां होगी। पर, ओशोका यह कहना ठीक नहीं कि सेक्स केवल दो व्यक्तियोंके बीचका सम्बन्ध है । इस रूपमें तो चरित्रके सारे गुण-दोष व्यक्तियोंके बीचके ही सम्बन्ध हैं, किसी तीसरे व्यक्तिको क्या लेना-देना ।

इस पुस्तकका सबसे कमजोर अध्याय है 'राष्ट्रभाषा और खण्डित देश' । ओशोका कहना है, भारतमें राष्ट्रभाषाकी कोई भी जरूरत नहीं है......भारतकी प्रत्येक भाषा राष्ट्रभाषा होनेमें समर्थ है......राष्ट्रभाषा बनानेका ख्याल ही राष्ट्रको खण्ड-खण्डमें तोड़ने का कारण बनेगा......यदि राष्ट्रको बचानाहै तो

राष्ट्रभाषासे बचना पड़ेगा ।......गांधीजीके कारण कुछ बीमारियां इस देशमें छूटीं, उनमें एक बीमारी हिन्दीको राष्ट्रभाषाका वहम देनेकी भी है (पृ. ६२-६३) । स्पष्ट है कि ओशोने न तो राष्ट्र और राष्ट्रभाषाके अन्त:संबंधोंपर कोई ध्यान दियाहै और न इस इतिहासपर कि हिन्दीको राष्ट्रभाषा नाम गांधीने नहीं, राजा राममोहन राय, आचार्य केशवचन्द्र सेन, महर्षि दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, न्यायमूर्ति रानडे जैसे लोगोंने दिया । और इनसे भी शताब्दियों पहले 'राष्ट्रभाषा' अर्थात् देशके विभिन्न भाषाभाषियोंके बीच सम्पर्क भाषाके रूपमें हिन्दीका प्रयोग दक्षिणके वल्लभाचार्यने, पूर्वके चैतन्य महाप्रभु जैसे लोगोंने किया । वास्तविकता यह है कि हिन्दीका सारे भारतमे प्रचार इतिहासकी किन्हीं घटनाओंका परिणाम है, किसी भाषायी आन्दोलनका नहीं । इसलिए ओशोका यह कहना एकदम गलत है कि 'जैसेही राष्ट्रभाषाका प्रश्न उठा और हिन्दीने प्रयत्न किया कि राष्ट्रभाषा बन जाये,......वैसेही तनाव पैदा होगया और रेसिस्टेंस शुरू होगया । सारा मुल्क तन गया और उसने कहा, यह बरदाश्त नहीं कियाजा सकता (पृ. ६६) । जिस तनावकी बात ओशो कर रहेहैं, वह 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के प्रति न पहले कभी था, न आज है। "जीविकाकी भाषा : राजभाषा" के प्रति भी पहले नहीं था, क्योंकि संविधान सभाने निर्णय सर्वसम्मतिसे लियाथा, पर आज है। सो भी "पैदा हुआ नहीं," "पैदा किया गया", उन्हीं राजनीतिज्ञोंके द्वारा जिनकी मूर्खतापर कटुतम टिप्पणियाँ करते ओशो अघाते नहीं (देखें पृ. ६९, ७०-७२, ९८, १२७-१२९ आदि)। ओशोने 'राष्ट्रभाषा' और 'राष्ट्रीय भाषा' में भी अन्तर नहीं किया । इसीलिए कह दिया, "मेरी दृष्टिमें भारतमें जितनी भाषाएं बोली जातीहैं, सब राष्ट्रभाषाएं है" (पृ. ६२) । फिर तो भारतमें जितने भी गीत है, सब राष्ट्रगीत कहेजा सकतेहैं, जितने भी झंडे हैं सबको राष्ट्रध्वज मान लेना चाहिये । और 'सारा मुल्क तन गया', का क्या मतलब ? क्या उग्र क्षेत्रीय राजनीतिका शिकार तमिलनाडु, और उसमें भी राजनीतिके कुछ बाजीगर ही सारे मुल्कका पर्याय है ?

ऐसा प्रतीत होताहै कि ओशोने गांधीका विरोध करनेकी कसम खा लीथी, इसलिए विवेकको परे रखकर वे उस प्रत्येक बातका विरोध करते चले गये जिसका गांधीने समर्थन किया, फिर चाहे वह राष्ट्रभाषाकी बात हो या किसी औरकी, अंग्रेजी शिक्षाका गांधीजीने विरोध किया और स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए युवकोंका आह्वान किया, ओशोने लिखाहै, "असलमें गांधीजी तो शिक्षाके विरोधी थे, उन्होंने अपने बेटोंको पढ़ाया लिखाया नहीं, सबकी जिन्दगी खराब की" (पृ. १२५) । इस शिक्षाका विरोध तो स्वयं ओशोने भी कियाहै (देखें, 'प्रकर' मई, १९९२, (पृ. १३-१७), वह भी क्या युवा पीढ़ी की जिन्दगी खराब करनेके लिए है ।

विभिन्न अंधविश्वासों, कुरीतियों, आधारहीन मान्यताओंपर प्रहार करते-करते ओशोने इतिहासके उन तथ्योंपर भी प्रहार करनेका प्रयास कियाहै जो प्रमाणों से पुष्ट हैं । प्रसिद्ध इतिहास आरनोल्ड टायनबीने तो लिखाहै कि संसारका आर्थिक इतिहास तभी समझमें आ सकताहैं जब इसमें भारतके योगदानपर विचार किया जाये क्योंकि अन्य क्षेत्रोंकी भाँति भारत आर्थिक क्षेत्रमें भी संसारके इतिहासमें एक प्रमुख शक्ति रहा है, पर ओशोका मानना है कि हिन्दुस्तानने पांच हजार सालोंमें जमीनपर चलने लायक रास्ता नहीं बनाया, स्वर्गपर पहुंचनेके रास्ते खोजेहैं (पृ. ११५) । जिस देशकी समृद्धिकी चर्चाने दूर-दूरके विदेशियों तक को आकर्षित किया, लुटेरे जहांसे सम्पत्ति हजारों घोड़ों, ऊंटों. गाड़ियों, जहाजोंमे लाद-लादकर ले गये उसके बारेमें ओशोका कहनाहै कि "हम अमीर कभी भी नहीं थे......देश हमेशासे गहरी गरीबीमें रहा है" (पृ. ३८) ।

हमारी संस्कृतिने आवश्यकताओंको कम करनेपर बल दियाहै । ओशोने इसका विरोध कियाहै । कम आवश्यकताओंको वे गरीबीका पर्याय मानतेहैं (पृ. ३०-३२) । ओशो अमरीकाके बड़े प्रशंसक थे । उसकी समृद्धिसे प्रभावित थे । उसकी जीवन-शैलीके दीवाने थे । उसे वे धरतीका स्वर्ग मानतेथे जहाँ देवता बसतेहैं जो कभी झूठ नहीं बोलते और इसका प्रमाण यह है कि अपनी चरित्रहीनताके आंकड़े दे देतेहैं । हमारी संस्कृति तो "पाखण्डी है क्योंकि हमने जो नियम निर्मित कियेहैं वह आदमीको झूठा होनेके लिए मजबूर करतेहैं" (पृ. ३२) । पर "अमरीकामें जिन्दगीको पाखण्डकी तरह नहीं, सीधेसादे ढंगसे जिया जाताहै" (पृ. १०६) ।

इसीलिए समाजशास्त्रीय सिद्धान्तोंको बलाए ताक रखकर ओशोका माननाहै कि जीवन-शैलीके, चरित्रहीनताके, अत्यार्शाके जो आंकड़े अमरीकामें इकट्ठे किये गये हैं, वे "सारी दुनियांके आदमीपर लागू हैं' (पृ. १०६)। यदि वहां चालीस परसेंट लड़कियां कहतीहैं कि हमने विवाह पूर्व यौन सम्पर्क रखेहैं (पृ. १०५) तो यह आंकड़ा पूरी दुनियांपर लागू है । अमरीकाका प्रशस्ति गान ओशोको कितना प्रिय है, इसका एक उदाहरण और । एक शिष्यने पूछा कि अमरीकामें तो आत्महत्या बढ़ रहीहै ? तो ओशोने आत्महत्याका सम्बन्ध बुद्धिके विकाससे जोड़ा और समझाया कि, "जैसे-जैसे बुद्धि विकसित होतीहै, आत्महत्या बढ़ेगी ……और बुद्धि विकसित होगी तो और हत्याके बाद आत्म-साधना शुरु होगी (पृ. १०४) ।" क्या इस सब पर किसी टिप्पणीकी आवश्यकता है ?

ओशो अपने भाषणोंमें प्रायः कहा करतेथे, और यहांभी उन्होंने कहाहै, "मेरी बातोंको मानता जरूरी नहीं है ।…… मेरी बातें इतना ही करदें कि आपको उकसा दें, आपके भीतर थोड़ी चोट करदें, एक शॉक लग जाये आप थोड़े हिल जायें और सोचना शुरु करदें तो मेरा काम पूरा होगया" (पृ. ३६) । इस दृष्टिसे इस पुस्तकको सफल मानाजा सकताहै । □

हिन्दी व्याकरण : नयी दृष्टि

हिन्दी व्याकरण मीमांसा—७ (१)

नामरूप प्रकरण

—पं. काशीराम शर्मा

५७. **नाम शब्दोंका वर्गीकरण**—विगत अध्यायमें सत्त्व प्रधान शब्दोंको 'नाम' कहा गयाहै । उनमें किसी क्रियाके साथ कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि सम्बन्ध स्थापित करनेकी क्षमता होतीहै । इस वर्गमें जो शब्द आतेहैं उन्हें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, तुमर्थ, कृदन्त विशेषण, संख्या शब्द आदि कहनेकी प्रथा रहीहै । परन्तु वह वर्गीकरण करते समय प्रत्येक वर्गका आधार कोई व्याकरणिक तत्त्व ही हो, इस बातका ध्यान नहीं रखा गया । हम बता चुकेहैं कि मैं ने, राम को, मूर्खों से, घर में, छत पर, चलते में, मरों को, पांचों ने आदिमें परस्थानिक समान रूपसे जुड़तेहैं । तब इन्हें सर्वनाम, संज्ञा, संख्या शब्द, विशेषण, तुमर्थ, कृदन्त जैसे वर्गोंमें विभक्त करनेकी आवश्यकता है क्या ? इस विषयमें पाणिनि व्याकरण तो सबको 'प्रातिपदिक' कहनेका सुझाव देगा । पर हिन्दीमें प्रातिपदिक जैसे कल्पित शब्दकी आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि किसीमें शब्दमें सुप् जोड़कर उसके रूप सिद्ध करनेकी अपेक्षा ही नहीं होती । अतः पहले अन्य आचार्योंके विचारोंकी समीक्षा करना उचित होगा ।

५८.० **दी. का वर्गीकरण**—दी. ने पहले शब्दोंको १. अर्थदर्शी, २. सहायक और ३. विस्मयादि बोधक तथा अनुकरणमें विभक्त करके उनके तीन या चार भेद कियेहैं । फिर अर्थदर्शीके १. संज्ञा, २. विशेषण, ३. संख्या शब्द, ४. सर्वनाम, ५. क्रिया तथा ६. क्रिया विशेषण नाम छः भेद किये हैं । इनमें से प्रथम चार ऐसे हैं जो प्रायः हमारे नाम वर्गके अन्तर्गत आ जाते हैं । दो चार वर्ग व्याकरणिक आधारपर नहीं हैं । इनका आधार परम्परागत अर्थमूलक वर्गीकरणका है । और जब वर्गीकरणमें व्याकरणिक आधारकी चिन्ता ही नहीं है तो उस वर्गीकरणको चाहे जितना लम्बा खींचा जा सकताहै । अतः प्रत्येक भेदके उपभेद, अनुभेद, प्रभेद करते जानेमें बुद्धिका जितना उपयोग कियाजा सकताथा, दी. ने जी खोलकर कियाहै । चाहे प्रत्येक भेदोपभेदका व्याकरणिक महत्त्व हो या नहीं । हम

यहां प्रथम चारको ही प्रासंगिक मानकर उनके अवांतर भेद-प्रभेदोंपर विचार करेंगे ।

५८.१. **संज्ञा**—दी. का आधार शब्दमूलक कम और प्रकार्यमूलक अधिक है अतः उसने लिखा : 'संज्ञाएं वाक्यके विभिन्न अंगोंके रूपमें प्रयुक्त हो सकतीहै, मुख्यतः इनका प्रयोग उद्देश्य तथा कर्मके रूपमें ही होताहै और ऐसा शब्द भेदके अर्थ—वस्तुत्व द्वारा निर्धारित होताहै । समानाधिकरण एवं परिमाणके सूचकके रूपमें संज्ञाओंका प्रयोग लाक्षणिक है ।' इसके बाद 'संज्ञा' वर्गके शब्दोंके जो उदाहरण दियेहैं वे छात्र को संदेहकी दोलापर आरूढ़ किये बिना नहीं रहते । इस **नगर में**, **तीस टन**, **ढाई मीटर** जैसे उदाहरण अधोरेखांकित करके दिये गयेहैं । आगे **बीमारीके कारण** को भी अधोरेखांकित किया गयाहै । यह सब कदाचित् दी. की निजी देन है । इसके पश्चात् संज्ञाके जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भेद बतायेहैं और कहाहै कि 'जातिवाचक संज्ञाओंमें समूहवाचक संज्ञाएंभी आतीहैं ।' फिर व्यक्तिवाचक संज्ञाओंके परिचयमें कहाहै : 'ये किसी एक व्यक्ति, पशु, देश, परिघटना आदिका नाम होती है, जैसे राम, भूरा कुत्ता, जनयुग, भारत, दिल्ली, 'भूरा कुत्ता' किसी एक पशुके लिए है अतः व्यक्तिवाचक । आगे जातिवाचक और व्यक्तिवाचकका व्याकरणिक भेद यों बतायाहै : 'व्याकरणिक दृष्टिसे व्यक्तिवाचक और जातिवाचक संज्ञाओंमें भेद यह है कि व्यक्तिवाचक संज्ञाओंका रूप नियमतः नहीं बदलता ।' क्योंकि यह स्पष्ट व्याकरणिक भेद हैं अतः 'भूरा कुत्ता' ने जैसे प्रयोग ही हो सकेंगे । अस्तु, व्यक्तिवाचक और जातिवाचक दोनोंके ही प्राणिवाचक-अप्राणिवाचक भेद भी बतायेहैं । पता नहीं और आगे बढ़कर तत्त्व, यौगिक, जीववाचक, अजीववाचक, कशेरुक, अकशेरुक, स्तनी, पक्षी, मत्स्य आदि अनन्त भेद क्यों नहीं गिना दिये । जब बौद्धिक व्यायाम करनाथा तो चाहे जितना किया जा सकताथा । हां, जिसका व्याकरणिक महत्त्व सम्भव था और जिसका उल्लेख वा. ने कियाहै; उसे स्थान नहीं दिया गया । वा. ने बतायाहै कि मानव और मानवेतरमें अन्तर है । 'राम ने शेर मारा' तो ठीक है पर 'राम ने रावण मारा' ठीक नहीं हैं वहां 'रावणको' होना चाहिये । पर दी. ने ऐसे भेदको महत्त्व नहीं दिया । पर जातिवाचकके अन्तर्गत पदार्थवाचक, मूर्त, भाववाचक, गणनीय, अगणनीय आदि भेद-प्रभेद कियेहैं । इस बौद्धिक व्यायामको सैकड़ों भेदों-प्रभेदोंमें खींचाजा सकताथा पर लेखकने छात्रोंपर दया की । इन सब भेदों-प्रभेदोंकी उपयोगिता दी. ही बता सकतेहैं ।

५८.२. **दी. का विशेषण प्रकरण**—दी. के अनुसार 'विशेषण ऐसा शब्द भेद है जो वस्तुके लक्षणको, उसकी विशेषताको, नामोद्दिष्ट करताहै तथा विशेषकके नाते संज्ञाके साथ प्रयुक्त होताहै ।' तदनुसार विशेषण रंग, परिमाण, आकार, गुण, अवस्था, पदार्थ, प्रयोजन, स्थान, समय तथा दिशाका बोध करा सकतेहैं । तदनन्तर विशेषणके भेद गुणवाचक, सम्बन्धवाचक और अनिश्चित परिमाणवाचक बतायेहैं । गुणवाचकके चार अवान्तर भेद भी बतायेहैं । पता नहीं इस सम्पूर्ण वर्गीकरणका व्याकरणमें क्या लाभ है ! पर दी. को इस वर्गीकरणसे ही संतोष नहीं है उसने विशेषणोंकी कोटियोंकी भी चर्चा की है जिनके दर्शन हमें तो हिन्दीमें कहीं हुए नहीं । पर क्योंकि अंग्रेजी व्याकरणमें 'बिग-बिगर-बिगेस्ट' तथा संस्कृतमें 'उच्च-उच्चतर-उच्चतम' जैसी कोटियां दृष्टिगोचर होतीहैं अतः उन्हींका भाव हिन्दीमें कैसे व्यक्त होताहै, यह समझानेकी चेष्टा दी. ने चार-पांच पृष्ठोंमें कीहै । मूल, उत्तर और उत्तम कोटियोंके उदाहरणोंसे ही प्रसंगकी निरर्थकता सिद्ध हो जायेगी । यथा—मूल कोटि—अच्छा आदमी, कमजोर लड़का; उत्तर कोटि—लोहा लकड़ीसे कड़ा होताहै; उत्तम कोटि—वह कक्षामें सबसे अच्छा विद्यार्थी है । हमें लगताहै कि दी. ने हिन्दीकी दरिद्रता बतानेके लिए यह प्रकरण दियाहै कि देखो हिन्दीमें 'कोटि' हैही नहीं । या फिर अनुवादकके लिए ।

५८.३. **संख्या शब्दोंका वर्ग**—परम्परागत वैयाकरण संख्याबोधक शब्दोंकी गणना विशेषणोंके अन्तर्गत ही करते रहेहैं पर दी. ने उन्हें पृथक् वर्ग मानाहै और पूरे दस पृष्ठोंमें उनका विस्तारसे विवेचन कियाहै । पढ़नेपर लगताहै कि व्याकरणकी नहीं गणितकी पुस्तक पढ़ा रहेहैं । विषयका आरम्भ गणनावाचक, क्रमवाचक और समुदायवाचकके भेदसे किया गयाहै । गणनावाचक शब्दोंको अक्षरों और अंकोंमें लिखे जा सकनेका उल्लेख करके सामान्य जटिल और संयुक्तमे वर्गीकरण किया गयाहै । यहभी बताया गयाहै कि 'एक हजारसे अधिक और दस हजारसे कमकी गिनतीमें हजारको सैकड़ोंमें बदल दिया जाता है, जैसे सैंतीस सौ पैंसठ । गणनावाचक शब्दोंकी विशेषता बतायीहै कि उनका रूप,

लिंग, वचन और कारकके अनुसार नहीं बदलता। हजार, लाख, अरब आदिके विषयमें कहाहै कि ये प्राय: दसी-बीसी-सैंकड़ा आदि गणनक शब्दोंकी भांति प्रयुक्त होतेहैं और तब इन शब्दोंकी ही भांति इनमें 'ओं' प्रत्यय जुड़ताहै जिससे अनिश्चित अनेकत्वका बोध होताहै। दसी-बीसी-सैंकड़ा आदि गणनक संज्ञाएं हैं संख्यावाचक शब्द नहीं। अन्य संज्ञाओंकी ही भांति इनका भी व्याकरणिक लिंग होताहै, इनके साथ भी विशेषक आ सकतेहैं। समुदायक वाचक शब्दोंमें 'ओं' प्रत्यय लगताहै—दोनों, तीनों, पांचों। इनके बाद खंड-वाचक संख्या शब्दोंका विस्तारसे परिचय है। पाव, चौथ, चौथाई, तिहाई, आधा, पौन, पौना, पौने, सवा, डेढ़, ढाई, साढ़े सब गिनाये गयेहैं। एकसे सौ तक संख्याएं दी गयीहै। 'आधेसे कुछ अधिक' जैसे रूप भी दिये गयेहैं। डेढ़, ढाई आदिके सौ-हजार-लाख-करोड़के मेलसे बनी संख्याएं अंकोंमें भी दीहैं, अक्षरोंमें भी; एक चौथाई कम, एक चौथाई अधिक जैसे प्रयोगभी दियेहैं। पौने निनावे ९८ $\frac{३}{४}$, साढ़े निनावे ९९ $\frac{१}{२}$ आदि बीसियों प्रयोग समझायेहैं। पौने सौ-७५, पौने तीन सौ-२७५, पौने हजार-७५०, पौने तीन लाख-२,७५००० आदि प्रयुक्त-अप्रयुक्त सभी संख्याओंकी कवायद की गयीहै। पौने दो बजे (एक बजकर पैंतालीस मिनट), ढाई बजे (दो बजकर तीस मिनट) आदि बतानेके साथ-साथ १। (सवा एक), १।। (डेड़), १।।। (पौने दो) आदि अनेक संख्या विस्तार दिये गयेहैं। सरल भिन्न चार बटा पांच $\frac{४}{५}$, सात बटा आठ $\frac{७}{८}$ आदि के वैकल्पिक रूप सात बटे आठ आदि भी दिये गयेहैं। दशमलव भिन्न ०.७ (शून्य दशमलव सात), १२०.३६५ एक सौ बीस (पूर्णांक) दशमलव तीन छह पांच से भी संतोष नहीं हुआ तो २ $\frac{३}{५}$ + १.७८---दो पूर्णांक तीन बटे पांच योग एक दशमलव सात आठ जैसे उदाहरण भी दिये गये। फिरभी नौ में से पांच (हिस्से), छह दसवें भाग, सौंवा भाग (हिस्सा), आठ सौंवें भाग आदि बताकर गणना प्रकरण समाप्त किया गया है। यह गणितशास्त्र छह पृष्ठोंमें है। फिर सवा तीन पृष्ठोंमें क्रमवाचक संख्या शब्द, आवृत्ति वाचक संख्या शब्द (जिनमें **तीन गुनेसे लेकर पांच गुने तक, कई गुना** जैसे प्रयोग रेखांकित हुएहैं), लगभग मात्राकी अभिव्यक्ति (लगभग, करीब, तकरीबन सोदाहरण), कोई तीस सात एक, दस बारह आदि) और प्रतिशत (फीसदी) आदि सभी का परिचय दिया गयाहै। सार यह कि गणितको भाषामें कैसे व्यक्त किया जाये इस सम्बन्धी बहुत-सी जानकारी दी. ने जुटा दीहै। आशा है भावी वैयाकरण इसे पूर्णता देनेका यत्न करेंगे।

५८.४ **दी. का सर्वनाम प्रकरण**---दी. ने सर्वप्रथम परिभाषामें कहाहै: 'सर्वनाम ऐसे शब्द हैं जो संज्ञा शब्दों, विशेषणों तथा संख्या शब्दोंके स्थानपर प्रयुक्त होतेहैं। फिर इन तीनोंके नामोद्देशक होने और सर्वनामोंके इंगितकारी होनेकी बात कही गयीहै। यहभी कहाहै कि सर्वनामका स्थार्या शाब्दिक अर्थ नहीं होता। फिर संरचनाकी दृष्टिसे सर्वनाम के दो भेद कियेहैं: सामान्य और संयुक्त। सामान्य सर्वनामोंके पुरुषवाचक, निर्देशवाचक, प्रश्नवाचक, स्वामित्ववाचक, निजवाचक, सम्बन्धवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक नामक आठ भेद कियेहैं। फिर संयुक्त सर्वनामोंको प्रयोगके अनुसार सम्बन्धवाचक, निश्चयवाचक और अनिश्चय वाचकके समकक्ष बतायाहै। तदनन्तर प्रकार्यात्मक वर्गीकरण है: १. संज्ञा सर्वनाम, २. विशेषण सर्वनाम और ३. संख्या सर्वनाम। इन सर्वनामोंके रूपान्तरकी भी चर्चा की गयीहै। तालिकाएं बना-बनाकर सभी प्रकारके सर्वनामोंके रूपान्तर विस्तारसे समझाये गयेहैं। पुरुषवाचक सर्वनामोंको उत्तम-मध्यम और अन्य नामक उपवर्गोंमें विभक्त किया गयाहै। संख्या सर्वनामोंमें विकारी-अविकारीका भेद किया गयाहै। कई, अनेक, बाज, चंद, कितना, उतना, जितनाके वर्गीकरणको तालिकासे भी समझायाहै। संयुक्त सर्वनामोंमें हर कोई, सब कोई, किसी और, सब कुछ, किसी न किसी कुछ-कुछ आदि गिनाये गयेहैं। सभी, तुम्हीं, इसी, हमीं आदिको अवधारक रूप बताया गयाहै। सर्वनामोंकी पुनरुक्तिकी भी चर्चा की गयीहै। यथा क्या-क्या, किस-किस, जिन-जिन, अपना-अपना, कौन-कौन-सी, क्या का क्या, क्या से क्या। यों कोई तीस पृष्ठोंमें सर्वनामोंको अनेकधा विभक्त किया गयाहै।

५९.० **गु. का संज्ञा प्रकरण**—गु. ने संज्ञा, सर्वनाम और विशेषणके क्रमसे नाम वर्गके शब्दोंपर विचार कियाहैं। लिखाहै: 'यदि हम संज्ञाका न्यायक्त लक्षण करना चाहें तो हमें उसकी जाति और असाधारण धर्म बताना चाहिये। विकारी शब्द संज्ञाकी जाति

है और प्रकृत अथवा कल्पित सृष्टकी किसी वस्तुका नाम सूचित करना उसका असाधारण धर्म है। जो विकारी शब्दकी उपजातियों अर्थात् सर्वनाम विशेषण आदिमें नहीं पाया जाता।' यों अपनी परिभाषाको उचित बताकर कहाहै कि लक्षणमें अव्याप्ति-अतिव्याप्ति दोष नहीं होना चाहिये। गु. के अनुसार संज्ञा के दो प्रकार हैं: १. पदार्थवाचक, २. भाववाचक। पदार्थवाचकके भी दो भेद हैं; १. व्यक्तिवाचक और २. जातिवाचक। व्यक्तिवाचकका लक्षण 'अर्थहीनता' बताया गयाहै और जातिवाचकका 'अर्थवत्ता'। पर ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्मांड आदिके लिए कहाहै कि 'व्यक्तिवाचक होनेपर भी अर्थवान् हैं। यों अपनी परिभाषाको गु. ने स्वयंही दोषपूर्ण मान लियाहै। फिर लिखाहै: 'जब व्यक्तिवाचक संज्ञाका प्रयोग एकही नामके अनेक व्यक्तियोंका बोध करानेके लिए अथवा किसी व्यक्तिका असाधारण धर्म सूचित करनेके लिए किया जाताहै तब व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक हो जातीहै जैसे 'यशोदा हमारे घरकी **लक्ष्मी** है' में 'लक्ष्मी'।' भाववाचक संज्ञाको अलग मानकर परिभाषा दीहै: 'जिस संज्ञासे पदार्थमें पाये जानेवाले किसी धर्मका बोध होताहै उसे भाववाचक संज्ञा कहतेहैं।' संज्ञाके तीन भेद बताकर संज्ञाके स्थानपर प्रयुक्त होनेवाले अन्य शब्दोंका परिचय सोदाहरण दिया गयाहै: १. सर्वनाम—मैं, २. विशेषण—**बड़ों** का संकल्प है, ३. क्रिया विशेषण—हां में हां मिलाना, ४. विस्मयादिबोधक—**वाह-वाह** हुई। तदनन्तर संज्ञाभेद विषयक अन्य लोगोंके मतोंका उल्लेख है जो गु. को स्वीकार्य नहीं है।

५९.१. सर्वनामोंका वर्गीकरण—गु. के अनुसार सर्वनाम किसी संज्ञाके बदलेमें आता है। सर्वनामकी अन्य परिभाषाओंपर भी विचार किया गयाहै यथा सर्वादिवर्गके शब्द और 'सब नामों' (संज्ञाओं) के बदले आनेवाला शब्द। इन्हें ठीक नहीं माना गयाहै। उसके स्थानपर 'संज्ञा प्रतिनिधि' जैसे प्रयोग भी ठीक नहीं माने गयेहैं। सर्वनामोंकी कुल संख्या ११ बतायी गयीहै और भेद छः। यथा—१. पुरुषवाचक—मैं, तू, आप, २. निजवाचक—आप, ३. निश्चयवाचक—यह, वह, सो, ४. सम्बन्धवाचक—जो, ५. प्रश्नवाचक—कौन, क्या, ६. अनिश्चयवाचक—कोई, कुछ। इस वर्गीकरणके पश्चात् लिखाहै: 'वक्ता अथवा लेखककी दृष्टिसे सम्पूर्ण सृष्टिके तीन भाग किये जातेहैं—पहला, स्वयं वक्ता या लेखक, दूसरा, श्रोता किंवा पाठक और तीसरा कथा विषय अर्थात् वक्ता और श्रोताको छोड़कर और सब। सृष्टिके इन सब रूपोंको व्याकरण में पुरुष कहतेहैं। और ये क्रमश: उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष कहातेहैं। इन तीनों पुरुषोंमें उत्तम और मध्यमही प्रधान है क्योंकि इनका अर्थ निर्धारित रहताहै। अन्य पुरुषका अर्थ अनिश्चित होने के कारण उसमें बाकीकी सृष्टिके अर्थका बोध होता है।' सब संज्ञाओंको भी अन्य पुरुष बताया गयाहै। यों सर्वनाम प्रकरणमें अन्य पुरुषके कारण सभी संज्ञाएं भी आ गयीहै। इस चर्चाके बाद ग्यारह सर्वनामोंके बहुवचन रूपोंपर विचार किया गयाहै और अनेक अप्रासंगिक चर्चाएं की गयीहैं। ऐतिहासिक पुरुषोंके विषयमें आदर हेतु बहुवचनका प्रयोग हो या नहीं, इस पर भी चर्चा करके एक वचनका प्रयोगही उचित बताया गयाहै। अन्य पुरुष सर्वनाम सृष्टिके सभी प्रसंगोंके लिए प्रयुक्त हो सकताहै अत: गु. को व्याकरण का क्षेत्र छोड़कर दर्शन-विज्ञानके क्षेत्रमें उतरना पड़ा। हमें तो इस सम्पूर्ण वर्गीकरणका कोई उपयोग समझमें आया नहीं। संस्कृत वैयाकरणोंने भी पुरुष विभाजन कियाथा पर वह धातु रूपोंका था जो सर्वथा सार्थक था। उत्तम पुरुषके धातु रूप 'अस्मद्' शब्दके साथ प्रयुक्त होतेहैं, मध्यम पुरुषके 'युष्मद्' के साथ और प्रथम पुरुष के शेष शब्दोंके साथ। हिन्दीके तो आख्यात भी ऐसा नियम नहीं मानते। अलग-अलग शब्दोंके साथ अलग-अलग रूप धारण करतेहैं। यही दशा अंग्रेजीकी है। पर अंग्रेजी व्याकरण सर्वनामोंके तीन पुरुष भेद मानते हैं और हिन्दीको भी अंग्रेजीके समान समृद्ध होनाहै, अंतः गु. ने यह सब विचार आवश्यक समझा।

५९.२. गु. का विशेषण प्रकरण—लिखाहै: 'जिस विकारी शब्दसे संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित होतीहै उसे विशेषण कहतेहैं।' विशेषणके द्वारा जिस संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित होतीहै, उसे विशेष्य कहतेहैं, जैसे 'काला घोड़ा' वाक्यांशमें 'घोड़ा' संज्ञा, काला विशेष्य (कदाचित् भूलसे विशेषणके स्थानपर प्रयोग हुआहै) है। 'बड़ा घर' में घर विशेष्य है। "इस परिभाषाके बाद उनके मतका खंडन है जो विशेषणको संज्ञाका उपभेद मानतेहैं। व्यक्तिवाचक संज्ञासे पूर्व प्रयुक्त विशेषणको समानाधिकरण बताया गयाहै। लगताहै गु.

अंग्रेजी व्याकरणोंके विशेषणके साथ संस्कृत व्याकरणके समानाधिकरणकी तुलना करनेका लोभ सँवरण नहीं कर सकेहैं। फिर ‘विशेष्य विशेषको और विधेय विशेषणके चक्करमें भी पड़ेहैं । लिखाहै : ‘विशेष्य विशेषण विशेष्यसे पूर्व और विधेय विशेषण क्रियाके पहले आताहै। विधेय विशेषण समानाधिकरण होता है।’ इस चर्चाके पश्चात् गुरु निष्कर्षपर पहुंचेहैं कि विशेषणके तीन मुख्य भेद किये जातेहैं—१. सार्वनामिक विशेषण, २. गुणवाचक विशेषण और ३ संख्यावाचक विशेषण। इस वर्गीकरणके समर्थनमें टिप्पणी दीहै : ‘यह वर्गीकरण न्याय दृष्टिसे नहीं, किन्तु उपयोगिताकी दृष्टिसे किया गयाहै। सार्वनामिक विशेषण सर्वनामोंसे बनतेहैं। इसलिए दूसरे विशेषणोंसे उनका अलग धर्म मानना उचित है। फिर व्यवहारमें गुण और संख्या भिन्न-भिन्न धर्म हैं, इसलिए इन दोनोंके विचारसे विशेषणके और दो भेद गुणवाचक और संख्यावाचक किये गयेहैं। इस औचित्य सिद्धिसे हम केवल इतना समझ पातेहैं कि गु. व्याकरणिक भेदको आधार नहीं मानते, धर्म भेदको आधार मानतेहैं। हम व्याकरणमें धर्म-निरपेक्ष रहना चाहतेहैं इसलिए समझ नहीं पाते कि यह वर्गीकरण कितना उपयोगी है, चाहे न्याय दृष्टिसे ठीक न हो। सार्वनामिक विशेषण और सर्वनामका भेद समझाया गयाहै कि ‘जब उनके साथ संज्ञा आतीहै तब वे विशेषण होतेहैं। यहभी बताया गयाहै कि पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनाम सार्वनामिक विशेषण नहीं बनते। शेष सर्वनाम बनतेहैं। पर उदाहरणमें : ‘वह नौकर नहीं आया’ के ‘वह’ को विशेषण बताया गया है जिसे अन्यपुरुष सर्वनाम भी बताया गयाहै। अवश्य कोई रहस्य है जो गु. जानतेहैं पर हम नहीं समझ पायेहैं। फिर सार्वनामिक विशेषणकी व्युत्पत्तिके आधारपर दो प्रकार बतायेहैं : मूल सर्वनाम (जैसे वह लड़का), और यौगिक सर्वनाम (जैसा आदमी, उतना काम)। यहभी लिखाहै कि ‘यौगिक सार्वनामिक विशेषणोंके साथ जब विशेष्य नहीं रहता तब उनका प्रयोग संज्ञाओंके समान होताहै।’ पहले तो यह बताया कि परवर्ती संज्ञाके कारणही सर्वनाम सार्वनामिक विशेषण हो जाताहै और अब परवर्ती संज्ञारहित सार्वनामिक विशेषणकी सत्ता ही स्वीकार नहीं करते अपितु उसका व्यवहार भी संज्ञा तुल्य बतातेहैं। यह अतिरिक्त सूचना भी दी गयीहै कि ‘परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण बहुवचनमें संख्यावाचक होतेहैं’ और ‘यौगिक सार्वनामिक विशेषण कभी-कभी क्रिया विशेषण होते हैं।’ यह नहीं बताया कि तब उन्हें विशेषण मानें या क्रिया विशेषण या दोनों। उसके बाद गुणवाचक विशेषणोंके मुख्य छः अर्थ बतायेहैं : काल, स्थान, आकार, रंग, दशा, गुण। गुणवाचक विशेषणके विषय में कुछ अतिरिक्त सूचनाएँ दी गयीहैं। यथा : १. इनके साथ हीनताके अर्थमें ‘सा’ प्रत्यय जोड़ा जाताहै (बड़ा-सा पेड़); २. नाम (या नामक) ‘सम्बन्धी’ और ‘रूपी’ संज्ञाओंके साथ मिलकर विशेषण होतेहैं (परंतप नामक राजा, घर सम्बन्धी काम, तृष्णा रूपी नदी); ३. समान और तुल्यका प्रयोग कभी-कभी सम्बन्धसूचक के समान होताहै (थन घड़ेके समान बड़े थे), ४. ‘योग्य’ सम्बन्धसूचकके समान आकर भी बहुधा विशेषण ही रहताहै। (मेरे योग्य काम लिखें); ५. गुणवाचक विशेषणके बदले बहुधा संज्ञाका सम्बन्धकारक आता है (जैसे घरू झगड़ा, जंगली जानवर), ६. जब गुणवाचक विशेषणोंका विशेष्य लुप्त रहताहै तब उनका प्रयोग संज्ञाओंके समान होताहै (बड़ोंने सच कहाहै)। गुणवाचकके इस विस्तृत विवेचनके पश्चात् संख्यावाचक विशेषणोंकी चर्चा की गयीहै। वह चर्चा बहुत कुछ दी. जैसी है। लगता है दी. ने गु. से ही प्रेरणा लीथी पर इतना अधिक किया कि चर्चाके आकारका विस्तार कर दिया और संख्या शब्दोंको विशेषण शब्दोंसे अलगकर उसका घर अलग बसवा दिया। हम यहाँ गु. के विवेचन की पुनः समीक्षा नहीं करेंगे क्योंकि वह विवेचन प्रायः दी. जैसा ही है। वस्तुतः व्याकरणके ‘गणिताध्याय’ के जन्मदाता गु. ही हैं। दी. ने तो केवल उसे पृथक् राष्ट्र की श्रेणीमें रखाहै। उसे विशेषण संघसे स्वतंत्र किया है।

६००. वा. का नाम, सर्वनाम, विशेषण वर्गीकरण—वा. ने अपने एक अध्यायका शीर्षक रखाहै ‘नाम, सर्वनाम तथा विशेषण’। उससे पूर्ववर्ती अध्याय में वा. ने बतायाथा कि विभक्तियां नाम या सर्वनाममें लगतीहैं। इस अध्यायमें वे पहले ‘नाम’ और ‘संज्ञा’ शब्दोंपर विचार करतेहै। लिखतेहैं : ‘नाम’ को हिन्दी व्याकरणोंमें ‘संज्ञा’ नाम दिया गयाहै। परन्तु ‘नाम-सर्वनाम’ सीधे हैं। पाणिनि पद्धतिमें ‘नाम’ चलताहै। ‘नाम धातु’ का वर्णन हिन्दी व्याकरणोंमें भी आताहै (नाम को संज्ञा कहनेपर सर्वनामको ‘सर्व संज्ञा’

तथा 'नाम धातु' को 'संज्ञा धातु' कहना ठीक होगा।' यहांतक 'संज्ञा' की तुलनामें 'नाम' के पक्षधर प्रतीत हो रहेथे पर फिर एकदम पैंतरा बदल दिया : 'परन्तु हम झंझटमें क्यों पड़ें ? नाममें क्या रखाहै ? कामसे मतलव । 'संज्ञा' ही कहते चलिये ।' फिर लिखाहै : 'अर्थके जितने भेद होंगे । शब्द उतनेही भेदोंमें विभक्त हो जायेगा । हिन्दीमें जाति, व्यक्ति तथा भाव उन विभागोंके लिए रखे गयेहैं । 'वस्त्र' जातिवाचक शब्द है, शुक्लता, श्वेतिमा आदि गुणवाचक संज्ञाएँ हैं जिन्हें हिन्दी में भाववाचक संज्ञा कहतेहैं । राम, गोविन्द आदि शब्द हिन्दीमें व्यक्तिवाचक संज्ञा कहलातेहैं । करना—खाना-पीना आदि कृदन्त क्रियाएँ हैं पु. विभक्तिसे युक्त हैं इसलिए 'लड़का' जैसी संज्ञाओंके समान चलतीहै । हिन्दीमें इन्हें 'भाववाचक संज्ञा' कहतेहैं । यों वा. ने गु. कृत वर्गीकरणको स्वीकार किया है पर सीधे ही तीन भेद करके । पहले पदार्थवाचक और भाववाचकका द्विधा वर्गीकरण करके नहीं ।

६०.१. वा. के शीर्षकमें क्रम नाम, सर्वनाम, विशेषण का था । पर जैसे 'नाम' के स्थानपर 'संज्ञा' को स्वीकार करके परिवर्तन किया वैसे ही क्रममें भी विशेषण पहले रखा, सर्वनाम बादमें । 'विशेषण' के विषयमें लिखाहै : 'शब्दोंकी एक पृथक् श्रेणी बनायी गयी, पदार्थोंकी विशेषता प्रकट करनेके लिए : 'नीला आकाश, नीला कागज, नीला वस्त्र' आदि विशेषणसे स्वरूप पाठक या-श्रोताके सामने आ जाताहै ।' परिभाषा इस प्रकार दी है, 'जरूरत पड़नेपर, किसीकी विशेषता बतलानेके लिए जिन शब्दोंका उपयोग किया जाताहै, उन्हें विशेषण कहतेहैं ।' फिर विशेषणके गुणवाचक, अवस्थावाचक, परिमाणवाचक भेद बतायेहैं । लिखाहै : 'विशेषता रंगरूपमें, आकार प्रकारमें, स्वादमें, परिमाण में तथा अन्य विविध रूपोंमें होतीहै । विशेषताओंके इन्हीं प्रकारोंके आधारपर विशेषण शब्दोंका श्रेणीकरण किया जाताहै : गुणवाचक विशेषण अवस्थावाचक विशेषण, परिमाणवाचक विशेषण ।' फिर लगा कि 'संख्यावाचक' का भी उल्लेख करना चहिये, अतः लिखा : कहीं शब्दभेद **न** होनेपर भी प्रयोगभेदसे नाम भेद हो जातेहैं—कुछ दूध, कुछ कपड़ा, कुछ गेहूं—यहां दूधके साथ कुछ विशेषण परिमाण बतलाताहै । परन्तु कुछ आदमी, कुछ पुस्तकें, कुछ बकरियां आदिमें कुछ संख्या बतलाता है, इसलिए यह 'संख्यावाचक' विशेषण है । इस प्रसंगमें वा. व्याकरणको छोड़कर विशेषणोंके इतिहास सागरमें गोते लगातेहैं और लिखाहै : विशेषण पृथक् बना लेनेसे भाषामें अनन्त सौकर्य हो गयाहै । सभी भाषाओंमें विशेषण होतेहैं । भाषाके प्रारम्भिक कालमें विशेषण नहीं होते । पहले तो साधारण प्राणियों के तथा पदार्थोंके नाम (संज्ञाएं) और फिर उनकी विशेषताओंको देख-देखकर विशिष्ट 'इन्दीवर' जैसे नाम । परन्तु संसारके अनन्त प्राणियोंके तथा पदार्थोंके वैसे विशिष्ट नाम कहांतक रखे जायें ! शक्तिग्रह भी कठिन ! प्रत्येक विशिष्ट पदार्थके नाम याद करते-करते ब्रह्मा भी थक जाये ? इसलिए 'विशेषण' शब्द गढ़े गये । 'काला' समझ लिया और बस ! जहां भी यह शब्द लगा होगा । समझ लिया जायेगा कि इस रंगकी चीज । भाषामें 'नाम' रखनेके अनन्तर 'विशेषण' बने; इसीलिए व्याकरणमें भी उसी क्रमसे उल्लेख ।' पता नहीं इस इतिहाससे छात्रको विशेषणका प्रयोग समझनेमें क्या लाभ होगा : 'गणिताध्याय' में वा. का भी मन रमाहै पर भिन्न दिशामें । वे शब्दोंकी विकास कथामें प्रवृत्त हुएहैं । हिन्दीकी संख्याएँ कैसे बनी, यही समझानेसे संतोष नहीं, 'षोडश' की कथा भी बतातेहैं । दोनों-तीनों आदिका इतिहास बताते हुए खड़ी बोली, कौरवी, पंजाबी सबके भूभागमें घुमातेहैं । ब्रजभाषाके 'दोऊ' से मिलवाते हैं । 'दोनों' में 'तीनों' की छाया पड़ी बतातेहैं जिससे 'न' का आगम होगया । फिर गुण-संधि—दोनों । 'हू' अव्यय प्रथम प्राकृतसे ही लुढ़कता-पुढ़कता आयाहै । संस्कृतमें तथा उपलब्ध प्राकृतोंमें इसका अता-पता मुझे नहीं मिलाहै ।' इस व्याकरणका पाठक भाषाके निर्माण काल से आजतक की कहानी भलेही जान जाये या उसपर विश्वास करले, पर प्रयोग करना शायदही सीख पाये । इस चिन्तामें जरूर घुलेगा कि जब आधा-आधे, पौना-पौने होतेहैं तो सवा-सवे क्यों नहीं होते । हम तो इस बातकी चिन्ता करते नहीं कि जो भाषामें नहीं है, वह क्यों नहीं है । हम तो उसीको समझना चाहतेहैं जो है । पर वा. समझाये बिना नहीं मानेंगे । लिखाहै : यह विशेषण संस्कृत 'सपाद' का विकास है । 'सपाद' के 'द' का लोप और 'पा' को 'वा' । यानी हिन्दीकी पुं विभक्ति यहां नहीं है । इसीलिए 'आ' को 'ए' नहीं होता । 'सवा चार रुपये' का मतलब है—चार रुपये, चार आने (पच्चीस नये पैसे) इसी प्रकार 'ऐसा-वैसा' को समझानेके लिए उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश

सब जगह घुमायाहै और संस्कृत, प्राकृत, हिन्दीकी तुलना के अतिरिक्त राजस्थानी ब्रज और खड़ी बोलीकी भी तुलना कीहै। 'जैसे मनोहर राम सखी, सुनु तैसी विदेह सुता मन मोहे' जैसी काव्यकी बानगी भी दीहै। पर इतनेसे ही संतोष नहीं अतः 'विशेषण' प्रकरणमें आत्मकथाका भी अवसर निकलाहै और एकही बातको दो प्रच्छेदोंमें लिखाहै : 'हिन्दी व्याकरणोंमें 'राम मूर्ख है।' इत्यादि प्रयोगोंमें 'मूर्ख' जैसे शब्दोंको पूरक नाम दिया गयाहै।···परन्तु 'ब्रजभाषाका व्याकरण' प्रकाशित होने के अनन्तर प्रवाह बदल गया। 'मूर्ख लड़का दुख पाता है' में विशेषण उद्देश्य रूपसे है और 'लड़का मूर्ख है' में 'मूर्ख' विशेषण विधेय रूपसे है। कुछ स्पष्टतासे विधेय विशेषण।' फिर एक प्रच्छेदमें उद्देश्य विशेषण, विधेय विशेषण और क्रिया विशेषणकी चर्चा कीहै और अगले प्रच्छेदमें फिर आत्मकथा तथा शास्त्रार्थ है। 'विधेय विशेषणको हिन्दी व्याकरणोंमें पूरक कहा करते थे। जब ब्रजभाषाका व्याकरण छपा तब स्थिति बदली, व्याकरणोंमें संशोधन होने लगे। परन्तु प्रमुख वैयाकरणने 'विधेय विशेषण' स्वीकार करके भी उद्देश्य विशेषणको 'विशेष्य विशेषण' नाम दियाहै। विशेष्यके विशेषण तो सभी हैं। विधेय विशेषण जिसकी विशेषतापर जोर देताहै वह क्या विशेष्य रहीं।···विशेष्य विशेषण नाम गलत है। विधेय विशेषण और उद्देश्य विशेषण ठीक हैं।'

६०.२. **सर्वनाम विवेचन**—वा. का सर्वनाम प्रकरण भी भाषाके आदिकालसे आरम्भ होताहै : 'संसारके प्राणियोंके नाम रखे गये, पदार्थोंके रखे गये, गुणोंके तथा भावोंके रखे गये। बड़ा विस्तार होगया। ···व्यवहारमें सुगमता, स्पष्टता, सुन्दरता लानेके लिए फिर कुछ थोड़ेसे ऐसे शब्द गढ़े गये जो सभी नामोंके बदले आ सके। इन्हें 'सर्वनाम' नाम मिला। सबके नाम सर्वनाम।' इस इतिहास और परिभाषाके बाद पुरुष प्रकरण जो इस प्रकार है : 'मैं-तू' सर्वनाम है—उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष। अन्य पुरुष सर्वनाम है : यह, वह। औरभी इनके भेद हैं। उत्तम पुरुषको अंग्रेजीमें थर्ड पर्सन कहतेहैं (पता नहीं जो विषय ज्ञात नहीं था उसमें क्यों प्रवेश किया)।' फिर लिखाहै : 'मैं-तू से अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण संसार अन्य पुरुषके दायरेमें है। अन्य पुरुष सर्वनाम—यह और वह है। जो तथा कौन आदिभी अन्य पुरुष ही हैं। परन्तु उनकी एक पृथक् श्रेणी है।' फिर इधर-उधर, यहां-वहां, ऐसा-वैसा को भी यह वह से निष्पन्न बताकर सर्वनाम माना है। फिर याद आ गया कि ऐसा-वैसा को तो विशेषण प्रकरणमें ईदृशः-तादृशः से व्युत्पन्न कियाया अतः लिखा : 'दोनों तरह से संभावित है।' हमारे विचारसे व्याकरणका विषय शब्द विकास समझाना नहीं है अतः व्यर्थकी चिन्ता है। फिर दूसरी चिन्ता हुई कि यदि यहां-वहां सर्वनाम है तो 'अब-तब' भी हैं क्या ? तब बताया कि नहीं, क्योंकि वे अव्यय हैं। तदनन्तर 'आप' के दो अर्थ और विकासका इतिहास है। उसे मध्यम पुरुषभी बतायाहै अन्य पुरुषभी। सो-तो के प्रयोगोंकी भी चर्चा है। क्या-कुछ की भी चर्चा है पर उन्हें अव्यय बताया है। फिर 'कुछेक' पर दीर्घ विवेचन है। कस्मिन्-एकस्मिन्का साम्य भी समझाया है। 'कौन'को प्रश्नार्थक सर्वनाम बतायाहै, 'क्या' को अव्यय। 'कौन' को अनिश्चयार्थक भी बतायाहै। 'कोई' को सामान्यार्थक सर्वनाम बतायाहै। कोई को 'कोपि' से व्युत्पन्न बताया है, 'कोऊ' का भाईभी। 'कोई-कोई, किसी-किसी' की भी चर्चा है। इसी बीच 'क्या-कुछ' पर पुनर्विचार कर चुकेहैं। पहले बतायाथा कि ये दोनों अव्यय हैं। अब कहतेहैं कि 'क्या और कुछ' सर्वनाम हैं तो अव्यय-कल्प सर्वनाम हैं और अव्यय हैं तो सर्वनाम प्रतिरूपक अव्यय है। मतलब यह कि सर्वनामका काम देतेहैं ये दोनों और सदा एक रूप रहतेहैं। परन्तु सभी कारकों में चलते नहीं। अब नाम आप इनके चाहे जो रख लीजिये। इसी प्रकार कह सकतेहैं 'क्या तथा कुछ' सर्वनाम भी हैं या अव्यय भी या अव्यय भी हैं और सर्वनाम भी। देवदत्त मिठाई बनाने बेचने लगे तो हलवाई, कपड़ा बेचे तो बजाज तो यथास्थान हलवाई भी बजाज भी।' सार यह कि वा. सर्वनाम प्रकरणका विवेचन संधाभाषा में करना अच्छा समझतेहैं। छात्र एक बात समझनेको तैयार होताहै, तब तक उससे विपरीत प्रतिपादन कर देतेहैं। उन्होंने यह बात पूरी तरह सही कही कि जब जो काम करे तब वही कहलायेगा। फिर वर्गीकरण क्यों किया जाये। यही बात आरम्भमें कह देते तो निरर्थक वर्गीकरणसे पृष्ठ क्यों भरते। पर फिर इतिहास, भूगोल और आत्मकथा लिखनेका अवसर कहां मिलता। पर संतोष तब भी नहीं हुआ और कोडीकृत शब्दोंकी भी चर्चा की जैसे 'आदमी' जिसमें स्त्रियां भी सम्मिलित हैं। 'पचास आदमी आये' का अर्थ 'पचास स्त्रीपुरुष आये भी हैं'। □

[विवशताके कारण यह लेख दो खण्डोंमें बांटना पड़ाहै, इसका उत्तरार्द्ध आगामी अंकमें]

लेखक : समीक्षक

☐ श्री पं. काशीराम शर्मा, ए-२/३१ नाबार्ड नगर, ठाकुर संकुल, कांदीवली (पूर्व) मुम्बई-४००१०१.
☐ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, १८६/१२ आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१.
☐ डॉ. घनश्याम शलभ, ११ ख, रवीन्द्रनगर, उदयपुर-३१३००१.
☐ डॉ. पारुकान्त देसाई, एम-४, न्यू विक्रमबाग, प्रतापगंज, बड़ोदा-३९०००२.
☐ डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय, १०५ अग्रसेन बाजार, कोटा-३२४००६.
☐ डॉ. प्रेम दुबे, पंचवटी लेन, गंगाराम नगर, महाराष्ट्र भवनके पास, रायपुर-४९२००२.
☐ प्रो. भगवान सिंह, १३६ महाराणा प्रताप एन्क्लेव, दिल्ली-११००३४.
☐ डॉ. मूलचन्द सेठिया, ८/२७६, विद्याधर नगर, जयपुर-३०२०१२.
☐ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, २१/जी मेकर गार्डन, लिडोजुहू, सान्ताक्रूज (पश्चिम), मुम्बई-४०००४९.
☐ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, ३४/१०० धूलकोटके पीछे, बोहरा गणेश मार्ग, उदयपुर-३१३००१.
☐ डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर, वार्ड १०, रोसड़ा (समस्तीपुर)-८४८२१०.
☐ डॉ. वीरेन्द्र सिंह, ५ झ १५, जवाहर नगर, जयपुर-३०२००४.
☐ डॉ. हरदयाल, एच-५०, पश्चिमी ज्योतिनगर, गोकुलपुरी, दिल्ली-११००९४.
☐ डॉ. हरिद्वारीलाल शर्मा, ३७ जेल रोड, मेरठ-२५०००५.

विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका

'प्रकर'

शुल्क विवरण

☐ प्रस्तुत अंक ७.०० रु.
☐ **वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) :** संस्था : ७५.०० रु.; व्यक्ति : ६५.०० रु.
☐ **आजीवन सदस्यता :** संस्था : ७५१.०० रु.; व्यक्ति : ५०१.०० रु.
☐ **विदेशोंमें समुद्री डाकसे** एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें २००.०० रु.
☐ **विदेशोंमें विमान सेवासे** (प्रत्येक देशके लिए)—एक वर्षके लिए : ४८०.०० रु.
☐ दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि **'प्रकर'** के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' : मार्च'९३ : पंजीकरण संख्या १७५८२/६९ : डाक पंजीकरण संख्या : डीएल : १९००९/९३

आगामी अंक

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध मानस

मिश्रजीके व्यक्तित्वमें भारतकी लोक-संस्कृति—लोकगीतोंकी मार्मिकता उनके अनेक ललित निबन्धोंकी सर्जनाका मूल बनीहै। वस्तुतः लोक संस्कृति ही है अधिकांशतः, जिसके प्रतीक उपादान, परिवेश, तत्त्व एवं विविध रूप-रंगोंका आकर्षण मिश्रजीको आकर्षित करते रहेहैं। परम्परा, रीति-रिवाज, लोकानुष्ठानों का भूला बिसरा स्वरूप प्रतिष्ठित कर लोकजीवनकी मधुरता और कल्याणमयताको उन्होंने उजागर किया है। नागर संस्कृतिमें भी भारतीय शिल्पमें खजुराहोकी विवादास्पद मिथुन मूर्तियोंमें निहित साधनाका रहस्य उद्घाटित कियाहै। अपने निबन्धोंमें लोक और नागर संस्कृतिके अनेक प्रतीकों और उपादानोंके औदात्यको व्यक्त कियाहै। समीक्षक हैं : **डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त**।

नागरजीके कुछ निबन्ध-सकलनोंका विवेचन-आलोचन लेखमालामें प्रस्तुत किया जा रहाहै, प्रथम लेख आगामी अंकमें।

व्यावहारिक हिन्दी शुद्ध प्रयोग

प्रस्तुत कृतिके लेखककी मान्यता है कि भारतीय प्रशासन और सत्तामें जिस वर्गको अंग्रेजीके कारण वरीयता मिलती रहीहै वह अंग्रेजीकी समाप्ति नहीं चाहता, इसलिए हिन्दीका हौवा खड़ा करताहै; स्वयं हिन्दीभाषी हिन्दी साहित्यको इतर भारतीय साहित्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझतेहैं, परन्तु 'राजभाषा' हिन्दी भाषा है, उसका साहित्य 'राज-साहित्य' नहीं; आजका शिक्षित युवक अमरीकी अंग्रेजी भाषा शास्त्रके व्याकरणके आधारपर ही अपनी योग्यता स्थापित करतेहैं, भारतीय भाषाओंके संस्कृत-बहुल रूपसे अपरिचित होतेहैं; यद्यपि हिन्दी बोलीका व्यवहार व्यापक है, पर उसका परिनिष्ठित रूप अभीतक स्थिर नहीं है। लेखक संविधानके अनुच्छेद ३५१ के आधारपर उसका रूप निर्धारित करना चाहताहै। इसी आधारपर वह व्यावहारिक हिन्दीके शुद्ध प्रयोगोंकी चर्चा करताहै। लेखक हैं : **डॉ. ओम्प्रकाश** और समीक्षक हैं : **डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी**।

हिन्दी व्याकरण मीमांसा

इस क्रमिक लेखमालामें बताया जा चुकाहै कि शब्दोंका वर्गीकरण व्याकरणिक आधारपर कम है इतर आधारोंपर अधिक। इन वर्गीकरणोंसे छात्रको अनेक पारिभाषिक संज्ञाओंकी जानकारी मिलतीहै, वर्गीकरण का बौद्धिक व्यायाम होताहै, कोई-न-कोई आधार मानकर वर्गीकरण करनेकी पद्धति आ जातीहै, पर यह सब तर्कशास्त्रका विषय है, व्याकरणका नहीं। "नाम शब्दोंका वर्गीकरण कैसे सम्भव है" इस शीर्षकके अन्तर्गत आगामी लेख खण्डम पाणिनिके व्याकरणसे वर्गीकरणका आधार ग्रहणकर उसका हिन्दीकी प्रवृत्तिके अनुरूप प्रस्तुत किया जायेगा। लेखक हैं : **पं. काशीराम शर्मा**।

'औरत'—नारी जीवनकी ताप-कथा

हिन्दीके मूर्धन्य उपन्यासकार डॉ. शिवप्रसाद सिंहने पूर्वांचल स्थित करमूपुरा क्षेत्रकी सोनवा, रूपवा, सुलखिवा और चन्द्रा जैसी नारियोंके जीवनकी व्यथा और विडम्बनाको चरित्रनायक शिवेन्द्रके माध्यमसे विद्रोह और सक्रिय संघर्षके स्तरपर चित्रित कियाहै। उपन्यासकारके शब्दोंमें यह "नारीकी पाप कथा नहीं, तापकथा" है। समीक्षक हैं : **डॉ. मूलचन्द्र सेठिया**।

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी,
चमेलिया रोड, दिल्ली-६
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७. दूरभाष : ७११३७६३.

प्रकर

वैशाख : २०५० [विक्रमाब्द] :: अप्रैल : १९९३ [ईस्वी]

5/5/93

25
4

अंकको विशिष्ट सामग्री

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध मानस-१

—डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

औरत

उपन्यासकार : शिवप्रसाद सिंह, समीक्षक : मूलचंद सेठिया

व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग

लेखक : डॉ. ओमप्रकाश, समीक्षक : डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-७ (२)

—डॉ. काशीराम शर्मा

अंक सामग्री :

स्वर : विसंवादी

जाकी रही भावना जंसी, प्रभु मूरत देखी तिन तंसी १

अध्ययन-अनुशीलन

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध मानस-१ ५ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्य
आंच अलावकी (निबन्ध)—डॉ. श्रीराम परिहार १० डॉ. भानुदेव शुक्ल
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एव कृतित्व— डॉ. सान्ध्यप्रभा ११ डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया

काव्य

चिनार—देवराज १२ डॉ. जवाहर सिंह
बबूलके सायेमें मोगरा—पृथ्वीनाथ मधुप १६ डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त
रजनीगन्धा—आरसीप्रसाद सिंह १७ डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
सतहसे उठते हुए—डॉ. एन. सिंह १८ डॉ. शिवचद्र 'उमेश'

उपन्यास

औरत—शिवप्रसाद सिंह २० डॉ. मूलचन्द सेठिया
पर्यटन—(कन्नड़से अनूदित)—बी. वी. वैकुण्ठ राजू २३ डॉ. सुमंगला मुम्मिगट्टी

कहानी

दूसरे देश कालमें—राजी सेठ २५ डॉ. केदार मिश्र
बड़ी मछली—दयाकृष्ण विजयवर्गीय २७ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
इस बार—कमलेश भारतीय २७ डॉ. महाराजकृष्ण जैन
काले दिन—सम्पादक : हरिशंकर सक्सेना २९ डॉ. यशपाल वैद

व्यंग्य

असली गधेसे इण्टरव्यू—कन्हैया अगनानी २९ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
हँसी घरके आइने—घनश्याम अग्रवाल ३० डॉ. विश्वास पाटिल

जीवनांश : साक्षात्कार

जो मैंने जिया—कमलेश्वर ३२ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
स्व. धर्मदत्त वैद्य स्मृति ग्रन्थ—सम्पादक : राम सुमिरनलाल ३४ प्रो. मधुरेश
अपने अपने आइने —विक्रमकुमार ३५ डॉ. राधा दीक्षित

लेखक निर्देशिका

हिन्दी-साहित्यकार विवरणिका—सम्पा. जगदीश चतुर्वेदी ३६ माधव पंडित
हैदराबादके हिन्दी लेखक—सम्पा. तेजराज जैन ३७ ”

भाषा-प्रयोग—व्याकरण

व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग—डॉ. ओम्प्रकाश ३८ डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी
हिन्दी व्याकरण मीमांसा—७ (२) ४१ पं. काशीराम शर्मा
विविध ४६ डॉ. हरिश्चन्द्र

प्रकर
[अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षाको मासिक-पत्रिका]
सम्पादक वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २५ अंक : ४ वैशाख : २०५० [विक्रमाब्द] अप्रैल : १९९३ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी

गत वर्षके अन्तिम मासोंके अंकोंमें धर्म, राजनीति और सत्ताके अन्त:सम्बन्धोंकी चर्चा धर्म और सत्ताके सहयोग और प्रतिद्वन्द्विताको लेकर ऐतिहासिक संदर्भोंके साथ की गयीथी। भारतीय समाजमें आदर्श परम्परा धर्म और सत्ताका सहयोग-समन्वय रहाहै। आदर्श पुरुष राम तथा अन्य पूर्ववर्ती और परवर्ती राज्य व्यवस्थाओंका जो रूप भारतीय वाङ्मय और साहित्यके माध्यमसे उपलब्ध होताहै वह न केवल दोनों के समन्वयका चित्र है, अपितु तुलनात्मक स्तरपर यह समन्वय धर्मको अधिक महत्त्व देताहै। वाल्मीकि रामायणका पारायण करनेवाले सामान्य संस्कृतप्रेमी और तुलसीके रामचरितमानसका दैनिक पाठ करनेवाले साधारणजन इसकी पुष्टि करनेके लिए आजभी इसी भारत-भूतलपर विद्यमान हैं। धर्म और सत्ताका यह समन्वय देशके साधारणजनके लिए न अद्भुत है न आश्चर्य, इसके विपरीत वह इसे सहज-सरल रूपमें जीवनके अनिवार्य अंगके रूपमें ग्रहण करताहै। दीर्घकालसे चली आ रही इसी परम्पराका ही यह प्रभाव है कि भारतीय वाङ्मयमें सत्तासीनों--राजाओं-सम्राटों—को धर्मपरायण और प्रजारक्षक रूपमें चित्रित करनेकी परम्परा रहीहै, उनके लिए निर्धारित आदर्श रहेहैं। यह नहीं था कि इस कालमें समाज और सत्ता आदर्श रूप में थे, परन्तु आदर्श रूप धारण करनेकी यह सामाजिक प्रेरणा थी और इसके साथ धर्म और धार्मिक आदर्श और प्रक्रियाएं जोड़कर उसके पीड़ादायक रूप को नियंत्रित कर उसे कल्याणकारी राज्यके रूपमें परिवर्तित करनेके प्रबल और व्यावहारिक प्रयत्न थे। सत्ता और लोक, प्रजा और राजाको एक दूसरेके निकट लाकर सम्पूर्ण समाज और व्यवस्थाको संतुलित करने की यह एक दिशा थी।

परन्तु आधुनिक-बोधकी पीड़ासे छटपटाते इसी देशमें ब्रिटिश-शिक्षा-दीक्षासे संस्कारित इस अवधारणा को नकारनेपर इसलिए आग्रहशील हैं क्योंकि आधुनिक यूरोपीय चिन्तनमें राज्य (सत्ता) और धर्मको दो सामानान्तर शिविरोंमें विरोधी पक्षोंके रूपमें स्थापित कर दिया गयाहै। इसका उग्रतम रूप सोवियत अधिनायकवादमें मुखर हुआ और उसी देशमें दो विरोधी शिविर स्थापित होनेके बाद वह अन्तर्भूत विरोध तथा उसके कारण उत्पन्न सामाजिक और राजनीतिक विखण्डन पूरे सोवियत संघको लील गया। परन्तु हमारे देशका, इस भारत-भूखण्डका, यह मात्र अनुकरणजीवी 'प्रबुद्ध और बुद्धिजीवी' वर्ग आधुनिक राजनीतिक आन्दोलनके परिणामस्वरूप उभरे धर्मके प्रतीक

कर रहाहै कि एक राम जनताके हैं और दूसरे राम महन्तों-मठाधीशोंके हैं। उनकी भाषामें कहना चाहें तो एक राम बुर्जुआ वर्गके हैं, दूसरे सर्वहारा वर्गके। अनुकरणके प्रबल आवेग एवं बौद्धिक द्वार बन्द कर देनेके कारण डिप्लोपिया (एकके दो देखना) रोगसे पीड़ित हैं। उनकी दृष्टि और इसकी व्याख्या है : "गरीब जनता दुःखमें रामको याद करतीहै, इसके लिए उनका मन्दिरमे जाना आवश्यक नहीं होता। वह वहां जिस परिस्थितिमें होतीहै उसे याद कर लेतीहै। महन्तों। मठाधीशोंका काम मन्दिरके बिना नहीं चलता - 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'; प्रभुकी छवि गरीब जनताके मनमें एक प्रकार कीहै, महन्तों और मठाधीशोंके मनमें दूसरी तरहकी।" इस प्रकार रामको बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्गके दो वर्गोंमें बांटकर राजनीतिक स्तरपर अयोध्यामें राम मन्दिरके निर्माणके लिए आन्दोलन करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको— चाहे वह साधु-सन्त हों, चाहे राजनीतिसे जड़ा नेतृ वर्ग हो अथवा श्रमदान करनेवाला समाजका निम्नतम व्यक्ति हो—सभीको एक साथ बुर्जुआ वर्ग —महन्त मठाधीशोंके शोषक वर्ग--में ला खड़ा किया है।

परन्तु आधुनिक-बोध सम्पन्न अनुकरणजीवी 'प्रबुद्ध और बुद्धिजीवी' वर्गकी इस साम्यवादी शास्त्रीय व्यवस्थाने कांग्रेस कल्चरमें दीक्षित बुर्जुआ वर्गके लिए निरभ्र-वृष्टि कर दी। यह वर्ग पहलेसे ही धर्मस्थलोंको राजकीय अर्थात् अपने नियन्त्रणमें ले रहाथा। स्वतंत्रता प्राप्तिके बादसे ही कांग्रेस राजनीति और कल्चरने धर्मस्थलोंमें हस्तक्षेप करना शुरू कर दियाथा और विभिन्न चरणोंमें देशके अनेक धर्मस्थल राजकीय नियंत्रणमें आ गये। राजकीय समितियां (जोकि प्रायः कांग्रेसी चारणोंसे भरी रहतीथी) स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियोंके माध्यमसे इनका संचालन करने लगीं। इन धर्मनिरपेक्ष कांग्रेसी चारणों और प्रशासनिक अधिकारियोंको धार्मिक स्थलोंके नियंत्रण और संचालन के नामपर उनकी पूंजी, सम्पत्ति और आयका और उसके साधनोंका उपभोग करनेका अनुपम अवसर मिल गया। इन धर्मस्थलोंकी यात्राके समय हमें कभी अनुभव नहीं हुआ कि इन स्थलोंकी प्रबन्ध-व्यवस्था पहलेसे अच्छी है, इसके विपरीत अनुभव हुआ कि स्वतंत्रतापूर्व इन स्थलोंकी प्रबन्ध व्यवस्था अधिक अच्छी थी। देशके प्रधानमन्त्रीके इष्टदेवका स्थल तिरूपति, आन्ध्रप्रदेशकी राज्य सरकारोंका सदा दोहन-स्थल रहाहै। 'राम' को भी दो वर्गोंमें विभाजितकर यह प्रचारित नियन्त्रणका लक्ष्य भी यही था। केरलके धर्मस्थल वाममार्गी-पंथी दलोंके शोषणके विशेष केन्द्र बने हुएहैं, यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि कांग्रेस और वाम पंथ दोनों ही इन स्थलोंके अधिकसे अधिक दोहनमें प्रतिद्वन्द्वी रहेहैं। उत्तरप्रदेशके बद्री-केदार सहित विभिन्न धर्मस्थल इसी राज्यस्तरके कांग्रेसी नियंत्रण के अन्तर्गत अपने दलोंके लिए मुक्त और अनियन्त्रित राजस्व कोष बन गयेहैं। इसी परम्पराके अन्तर्गत धर्मस्थलोंके धन और प्रशासनके स्रोतोंपर केवल नियंत्रण ही नहीं अपितु पूंजीवादी पद्धतिका अधिकार करनेके लिए और अपने इष्टदेवके धर्मस्थान तिरूपतिकी अगणनीय सम्पदा और उसके स्रोतोंपर नियंत्रणके अनुभवोंको ध्यानमें रखकर प्रधानमत्रीने अयोध्याके राममन्दिरको केन्द्रीय सत्ताके अधीन करनेके लिए अध्यादेशसे लेकर ट्रस्ट निर्माण तकके सभी कार्य अपने हाथमें लेनेकी घोषणाके साथ संसद्से भी अधिकार प्राप्त कर लियाहै। धर्मस्थलोंके नियंत्रणके नामपर अपने अधिकारमें लेने, उसकी पूंजी-सम्पत्तिका राजनीतिक एवं वैयक्तिक प्रयोजनोंसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपभोगको कांग्रेस कल्चरके साहसिक जन लोकतंत्रका नाम दे सकतेहैं क्योंकि उसमें लोक तो होगा ही नहीं, तंत्र केन्द्रीय प्रशासनका होगा, उसका उपभोक्ता भी वही केन्द्रीय प्रशासन और तंत्र होगा। यह वही स्थिति है जो विभिन्न धार्मिक स्थलोंको राज्य सरकारों द्वारा अपने नियंत्रणमें लेनेसे उत्पन्न हुईहै। एक ओर यह धार्मिक दमनका यह रूप है, दूसरी ओर इस देशमें अवैध रूपसे आये या लाये गये वंगलादेशियोंकी दिल्लीकी नयी सीमापुरीमें बसाकर उनके लिए जामा मस्जिदका निर्माणकर वक्फ बोर्डको अर्पित कर दी गयीहै। हिन्दू धर्मस्थल शोषणके लिए हैं, मस्जिदें देशकी धनराशिपर निर्मित होनेवाले धर्मनिरपेक्ष धर्मस्थल !

यह उस सिद्धान्तका व्यावहारिक चमत्कार है जिसमें धर्मको राजनीतिसे दूर रखकर पूंजीवादी आर्थिक शोषणका मार्ग अपनाया गयाहै। धर्म राजनीतिका आर्थिक सेवक बनायाजा रहाहै। इसी प्रकार का शोषण सोवियत संध और पूर्वी यूरोपमे किया जाताथा। धर्मस्थलोंकी सम्पूर्ण सम्पत्तिपर एकाधिकार स्थापित करना एकाधिकारवादी सत्ता और पूंजीवादी सत्ताका ही स्थापन है। इस प्रकारकी द्वि-आयामी सत्ता स्थापित करनेका कारण भारतीय जनता पार्टी द्वारा अयोध्याके धार्मिक आन्दोलनका नेतृत्व बताया जाताहै और इस आन्दोलनको साम्प्रदायिक घोषित करते-करते अपनेही साम्प्रदायिक रूपको अधिकाधिक प्रकाशमान

कियाजा रहाहै क्योंकि इस कल्चरका आधारही प्रत्येक आक्रमणकारी तत्त्वका समर्थन करना और उसका विरोध करनेवालोंके विरुद्ध साम्प्रदायिकताका आरोप लगाकर अपनी ओरही ध्यान खींचना रहाहै, सत्ता में आनेके बादसे सत्ताका दुरुपयोग करते हुए देश-विदेश से उचित-अनुचित साधनोंसे सम्पत्ति-मुद्रा संचय रहाहै। अयोध्याके राम मन्दिरकी सम्पत्तिको तथा अन्य व्यक्तिगत और सार्वजनिक सम्पत्तिका प्रशासनिक अधिग्रहण, दलीय चारणोंके माध्यमसे उसपर नियंत्रण। और अब उपभोगके लिए ये चारणगण अभीसे दलबद्ध होकर आन्तरिक संघर्षमें जुट गयेहैं।

राजनीतिके धार्मिक क्षेत्रमें प्रवेशसे वही स्थिति बन जायेगी जो राजनीतिने आर्थिक क्षेत्रोंसे जुड़कर आर्थिक क्षेत्रोंको राजनीतिक शोषणसे उत्पन्न कीहै और तस्करीको सुगठित रूप देकर राजनीतिज्ञ और प्रशासनिक वर्ग उसमें भागीदार हो गये हैं। इन्हींके सहयोगसे प्रलयंकारी विस्फोट होने लगेहैं। अबतक का आतंकवाद. अपनी सीमाओंको पारकर अब गृहयुद्धका देशव्यापी रूप लेने लगाहै, जिसका आस्वादन हम कश्मीरमें प्राप्त कर रहेहैं।

धर्मस्थलोंकी सुरक्षाके नामपर सत्ताके माध्यमसे धर्मस्थल तो गरीबकी जोरू बना दिये गयेहैं विधि-विधानोंकी शक्तिसे; पर यह स्थिति केवल 'हिन्दू' नामक प्राणियोंके लिए सुरक्षित है और इसीसे 'धर्मनिरपेक्षता' को जीवित रखाजा रहाहै क्योंकि यह 'हिन्दू' नामक प्राणी अपने देश, अपनी भूमि और अपने धर्मस्थलोंपर हुए आक्रमणोंको निरस्तकर अपने देश, अपनी भूमि और अपने विविध धर्मोंके पूजास्थलोंको उन्हीं धर्मोंकी आस्थाओं-पद्धतियों-रूपोंमें पुनर्निर्मित देखना चाहताहै, अपने सहस्राधिक धर्मों-पंथों-मत-मतान्तरोंके प्रति समभाव रखना चाहताहै, इसीलिए वह साम्प्रदायिक है। पर सत्तासे वह वंचित है, सत्ता पर अधिकार तो कांग्रेस कल्चर और वाममार्ग-पंथका है, जिनकी पूरी पृष्ठभूमि यूरोप और काल-कवलित और इस प्रकार कालातीत चिन्तनोंकी है। सत्ता-बलसे वे जिसे चाहें धर्मनिरपेक्ष घोषित करदें, जिसे चाहें साम्प्रदायिक। वे ही काल-पुरुष हैं, काल-विधायक हैं। इसी शक्ति-सम्पन्नताकी भूमिपर खड़े होकर हिन्दू समाजकी भावनाओंको कुचलनेके लिए सदा तत्पर रहते है, इनके इतिहासका निर्णय भारतीय वाङ्मयके स्रोतों से निर्धारित करनेके स्थानपर मिल जैसे भारतद्वेषी इतिहासज्ञकी मानसिक बौद्धिक तरंगोंके आधारपर निर्धारित किया जाताहै, उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवनकी अन्तर्धाराका निर्धारण उनका 'हिन्दू' नामकरण होनेके बादकी स्थितियोंके आधारपर उनलोगोंके वंशजों द्वारा प्रस्तुत किया जाताहै जिनके पूर्वज मध्यकालके आक्रमणकारियोंके साथ कंधेसे कंधा भिड़ाकर इस देशको हत्याकाण्डों और विनाशके लिए उत्तरदायी थे। आक्रमणकारियोंके साथ आये चारणों और जीवनीकारोंने भी अपने आश्रयदाताओंकी आवश्यकताओं और रुचिको ध्यानमें रखकर ही विवरण लेखबद्ध कियेथे। इसी कारण धर्मनिरपेक्ष सत्तासीन लोगोंने धर्मनिरपेक्षताका वाह्य रूपही वर्तमान हिन्दू समाजकी भावनाओंको कुचलना, उन्हें लांछित करना मान लियाहै। यह कार्य ये सत्तासीन लोग गर्वके साथ करतेहैं। यदि कभी इनके दुर्भाग्यसे इस गर्वको भंग करते हुए यह हिन्दू प्राणी-समाज आक्रमणके एकभी प्रतीकको नष्ट करनेमें सफल हो जाताहै तो उनका महान् उद्‌गार होगा: "हिन्दू तो हम भी हैं, परन्तु देशका विखण्डन करनेवाले इस विनाश कार्यसे हमारा सिर लज्जाके मारे झुक गयाहै।" यह वर्ग वह है जो ब्रिटिश कालमें ब्रिटिश साम्राज्यकी ब्रिटिशोंके लिए रक्षा करता हुआ कभी लज्जित नहीं हुआ!

इन परिस्थितियोंमें यदि आजकी भारतीय राजनीतिमें सत्तादलकी धर्मनिरपेक्षताको 'छद्‌म धर्मनिरपेक्षता' का नाम दे दिया गयाहै तो किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इनका चिन्तन भी छद्‌म रूप धारणकर गयाहै। एक ओर रामभक्तोंको वे दो वर्गोंमें बांटकर 'राम' को ही उपहासास्पद बनातेहैं, दूसरी ओर 'राम-रहीम' की दुहाई देतेहैं 'ईश्वर-अल्ला तेरे नाम' का कीर्त्तन करतेहैं तो 'राम' को 'पूंजीवादी राम' और और 'सर्वहारा राम' के दो रूपोंमें प्रस्तुत करतेहैं। इसी रूपको हम उन्हीं रामको विभाजित करनेवालोंके ऊपर उद्धृत शब्दोंकी पुनरावृत्ति करना चाहेंगे "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।"

वस्तुस्थिति यह हो गयीहै कि 'धर्मनिरपेक्षता' के रौरव नादके साथ अपनेको भारतीय राजनीतिमें स्थापित करनेके लिए प्रयत्नशील कांग्रेस कल्चरसे ओतप्रोत और जनवादका जाप करनेवाले वाममार्गी वर्गोंका इतिहास अल्पसंख्यक विशेष रूपसे मुस्लिम साम्प्रदायिकताको प्रतिष्ठापित करनेका रहाहै। यह स्मरण रखना चाहिये कि मानवीय सत्ता, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति राजनीतिक संरक्षणपर निर्भर नहीं है। मानवीय सत्ता सजग है, वह मूलत: स्वतंत्र प्रकृतिकी है, वह चिन्तनशील, कारयित्री, और संघर्षशील है। इसी कारण तिरस्कार, उपहास, दमन उसे अपनी आस्था-निष्ठासे विरत नहीं कर पाते।

पठनीय और संग्रहणीय ग्रन्थ

आलोचना :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	३५.००
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	४०.००
	विद्यार्थी संस्करण	३०.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रा. नित्यानन्द पटेल	सजिल्द	४०.००
'प्रकर' : विशेषांक ['पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के दस अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		२७५.००

उपन्यास :

अपराधी वैज्ञानिक : (वैज्ञानिक उपन्यास)—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	सजिल्द	६०.००
ये पहाड़ी लोग—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	सजिल्द	२५.००
सुधा—[मलयालमसे अनूदित]—टी. एन. गोपीनाथ नायर	सजिल्द	२५.००
शकुन्तला—['अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का औपन्यासिक रूपान्तर]—विराज	सजिल्द	२५.००
प्रवासी—[बर्माके भारतीय प्रवासियोंकी कहानी]—श्यामाचरण मिश्र	सजिल्द	३०.००
संस्कृत कथाएं—[प्राचीन कथाएं]—डॉ. कृष्णकुमार	पेपरबैक	१०.००

नाटक :

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर	सजिल्द	१५.००
श्रेष्ठ एकांकी—डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	सजिल्द	१५.००

जीवन दर्शन :

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	सजिल्द	२०.००
महर्षि दयानन्द : ,, ,,	सजिल्द	२५.००
गुरु नानक : ,, ,,	सजिल्द	३०.००
श्री अरविन्द : ,, —रवीन्द्र	सजिल्द	२०.००

समसामयिक साहित्य :

रुपयेका अवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी		४०.००
विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (पुरस्कृत)	जेबी आकार	८.००
कच्छ—पद्मा अग्रवाल	,,	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश	,,	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल	,,	१०.००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर', ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध-मानस-१

—डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

मिश्रजीके व्यक्तित्वमें भारतकी लोकसंस्कृतिके प्रति मोह प्रमुख है। लोकगीतोंकी मार्मिकता उनके अनेक ललित निबन्धोंके सृजनका मूल बनीहै। वास्तवमें लोक संस्कृतिके प्रतीक, उपादान, परिवेश, तत्त्व एवं त्रिविध रूप रंगोंका आकर्षण ही सिश्रजीको प्रेरणा देते रहे हैं। परम्परा, रीतिरिवाज आदि लोकानुष्ठानोंका भूला बिसरा स्वरूप प्रतिष्ठितकर लोकजीवनकी मधुरता और कल्याणमयताको उन्होंने उजागर कियाहै। नागर संस्कृतिमें भी भारतीय शिल्पमें खजुराहोकी विवादास्पद मिथुन मूर्तियोंमें निहित साधनाका रहस्य उद्घाटित किया गयाहै। भारतीय लोक और नागर संस्कृतिके अनेक प्रतीकों और उपादानोंके औदात्यको उन्होंने व्यक्त कियाहै। इधर पिछले दो दशकोंसे पश्चिमके अस्तित्ववादी दर्शनके मृत्युबोध, अकेलापन, निर्वासन, अपूर्णता और व्यर्थताका भी प्रभाव उनपर पड़ाहै। भारतमें औद्योगीकरण-यांत्रिकताके दैत्यकी तांडव लीलासे भी वे आक्रांत हुएहैं। विमानवीकरण के बढ़ते हुए संकटसे ग्रस्त होते हुए, संत्रास, निर्वासन व्यर्थताको ही मिश्रजी अनिवार्य नियति समझ बैठेहैं। प्रारम्भसे जो सहज विश्वासी, सरल, रसिक व्यक्तित्व उनका था, अब वह द्विविधा, संशय, आतंक, मृत्युमय अकेलेपनके कुहासेमें खो गयाहै, यद्यपि इस कुहासेको चीरनेकी छटपटाहट उनमें यत्र-तत्र दिखायी पड़तीहै। पर यह छटपटाहटही है उसको ध्वस्त करनेकी जिजीविषा, जो लोक और नागर संस्कृतिके उदात्त और तेजस्वी तत्त्वोंसे प्राणवंत थी, अब मरणासन्न लगती है। आधुनिकताके अभिशापका आतंक कुछ आवश्यकतासे अधिक ही, उनपर, सवार लगताहै। लोकगीतोंकी स्वर-लहरियोंसे मुग्ध होनेवाला उनका मन-मृग आधुनिकताके तथाकथित नृशंस तांडवसे अधमरा तो अवश्य ही हो गयाहै। वैसे, ऐसे ललित कोमल, सहज सरल व्यक्तित्वकी यह परिणति आश्चर्यजनक नहीं है, दुःखद भले ही हो, क्योंकि अपेक्षित विवेक और दृढ़ताके अभावमें यह होना ही था। तो इसी मनकी शाब्दिक अभिव्यक्ति हैं उनके ललित निबन्ध। मिश्रजीके व्यक्तित्वका लालित्य यदि छुईमुई न भी माना जाये तो लोक संस्कृतिके ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीर जैसा तो था ही, जो यथार्थ जीवनके पाप-तापकी अनिवार्य प्रचंडताको नहीं झेल सका जबकि उनके अग्रज हजारीप्रसाद द्विवेदी और अनुज कुबेरनाथ राय दोनोंने ही अपने ललित व्यक्तित्वको इस प्रकार आहत नहीं होने दिया। तो मानसकी इसी अंतरंग यात्राका लेखा-जोखा उनके ललित निबन्धोंमें व्यक्त हुआहै।

१-सांस्कृतिक-प्राकृतिक उपादानोंका प्रतीकीकरण

मिश्रजीने अपने ललित निबन्धोंका आरम्भ लोकसंस्कृतिके मांगलिक उपादानों—हल्दी, दूब अक्षत, रोलीके प्रतीकीकरणसे कियाहै। उन्होंने स्पष्टतः अपने संस्कारोंके मूलमें उक्त तथ्योंके लोक-मांगलिक और मधुर रूपोंको प्रेरक मानाहै। उन्होंने आधुनिकताके जालमें फंसे हुए अपने ग्रामीण मनको पालने-पोसनेवाले परिवेशको और उसमें व्याप्त उक्त सांस्कृतिक उपादानोंको मुख्य मानाहै जो विवाहके मांगलिक

लोकगीतोंमें मुखर होतेहैं—"मैं अवश हूं, फीरोजी-सुरमई भूमिया और चम्पई इन रंगोंसे घिरा हुआभी नवांकुरित दूबकी हरित पीत आभाकी ओर मेरा मन दौड़ ही जाताहै और धरती माटी मानव आस्था, निष्ठा सत्य चेतना और युग मानसके इन सभी उपासना मंत्रोंके कोलाहलमें भी हरद दूब, दधि, अच्छत मूलाकी गीतिकी स्फूर्तिके पीछे वह भटक जाताहै, उन्हें कैसे समझाऊं कि मेरे ये संस्कार ही मेरे अस्तित्व हैं।" (गांवका मन, पृष्ठ ७९)।

लोक-संस्कृतिके इन उपादानोंसे प्रेरितहो प्रभावित मिश्रजी लोक-परिवेशके प्रति भी इतनेही सहृदय है। गांवके मसानके किनारे खड़ा हुआ छितवनका पेड़ उन्हें मसान जगानेवाला परम संतोष और वैराग्यका प्रतीक लगताहै—"वह मरघटका शृंगार है, वह मिट्टीके शरीरका उत्कर्ष है और शरीरके मिट्टीमें मिल जानेपर उसका एकमात्र अवशेष" (छितवनकी छांह, पृष्ठ २६)। इसी प्रकार तुलसीके थालेपर संझा माईकी आरतीका दिया या दीवालीकी रातमें लक्ष्मीके पूजनके लिए जलाया गया दीप श्री सौभाग्यकी अतृप्य लालसाका प्रतीक है, जिसके तेलमें सरसोंकी पीतिमाके साथ-साथ तेलीके कोल्हूकी चरर-मरर बत्तीमें कपासके फूलोंकी उजास तथा दीपमें मिट्टीकी सोंधी गंध ही नहीं, कुम्हारके चाककी गति और उसके नन्हें मुन्ने बच्चोंकी कोमल हथेलियोंका गठनभी प्रतिबिम्बित होताहै" (द्रष्टव्य, वही, पृष्ठ १०४)।

इसी प्रकार चैत नवरात्रमें लोकदेवीके रूपमें पूजित संझा गोसाइनि, भीतर बाहरकी भयावह तामसिक परिस्थितियोंमें वसन्तके आलोकका स्रोत बन जातीहै—"दुस्सह शीतमें वसन्तकी जीतीजागती कल्पना रखनेवाली घनान्धा तामस मानसमें परमज्योति को आमंत्रण देनेवाली और दुःखके निविड़ श्यामल प्रसारमें घनश्यामकी दामिनी दमकानेवाली कवि कल्पनाके लिए साध्य यदि है तो यही संझा गोसाइनि (वही, पृष्ठ १२३)। ऐसे ही लोकजीवनकी सर्वाधिक मस्तीवाला लोकपर्व होली न केवल मृत सवंत्सरकी चितासे नूतन संवत्सरके उद्भवका पर्व है अपितु बिना किसीको आहत किये हुए पारस्परिक आमोद-प्रमोदका पर्व है और जनता जनार्दनमें घुलमिलकर अपनी क्षुद्र संकीर्णताओंको ध्वस्त करते हुए वास्तविक मोक्षका सांसारिक रूप है—"वह (होलीका पर्व) सीमाके भीतर रहते हुएभी शिव-संकल्पके बलपर उन सीमाओंका दृढ़ नकार है और नकारमात्र होकर रहना भी वह नहीं जानता। वह पारावर पूरन अपार ब्रह्म राशिके साथ एकाकार होनेकी प्रक्रियाभी है। इसीलिए वह प्रेमाश्रयी भी है और उसका विराग भी विषयसे है, विषयीसे नहीं। होली इसी मोक्षका लौकिक अनुभावन है, इसीलिए वह जनजनका उत्सव है, लोक इसमें खोकर ही अपनेको पाताहै" (आंगन का पंछी और अनजाना मन, पृष्ठ ९८)।

इसी प्रकार एक अन्य मांगलिक और धार्मिक प्रतीक है 'श्री'। देश काल जाति धर्मकी संकीर्णतासे उतारकर शोभा लक्ष्मी सुख ऐश्वर्यकी वाचक 'श्री' को सर्वांगीण विकास और मानवीय जिजीविषाके चरम लक्ष्यके रूपमें प्रतिष्ठित किया गयाहै—"श्रीका स्मरण इस उदार रमणीय पृथ्वीका स्मरण है, समुद्रवसना पृथ्वीका स्मरण है, एक देश या एक राजनीतिक भूगोल या इतिहासका स्मरण नहीं है। कमलकी उत्फुल्लता का आमोदपूर्ण आनन्द और सूर्यके नये प्रकाशका चैतन्योदय दोनोंको जोड़नेवाली अस्ति सत्ता है श्री।… यह न किसी जाति तक सीमित है न एक समयसे बंधा है, न किसी एक राजनीतिक इकाई या सामाजिक इकाई या मजहबी इकाई तक सीमित है यह मनुष्यकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति है" (कौन तू फुलवा बीननिहारी, पृष्ठ १००) यह लेखकका अपने धर्म और संस्कृतिके प्रतीकोंके प्रति अत्यधिक मोहही है जो भारत में भी केवल हिन्दू और उनमें भी सनातनी सगुन साकारोपासक मनोवृत्तिके लोगोंमें मान्य 'श्री' को देशकाल परिस्थितिसे ऊपर उठाकर मनुष्य मात्रकी सर्जनाके रूपमें देखताहै। इसे विवेकसंगत तर्कपुष्ट नहीं माना जा सकता।

हिन्दू मानसिकता और अनुष्ठानोंमें प्रतिष्ठित नारियल आन्तरिक कोमलता, बाह्य दृढ़ताके समन्वय का प्रतीक माना गयाहै तथा बाह्य तापको झेलनेके लिए धरतीसे प्राण तत्त्व-जल-ग्रहणकी अनिवार्यता भी इसके माध्यमसे प्रतिपादित की गयीहै—"नारियलके फल सरीखे ऊपरसे कठोर और भीतरसे सरस जीवन का उपभोग करो। इसकी (नारियलकी) जड़ें निरंतर रससिक्त रहतीहैं शरीर विशेष रूपसे निरन्तर सीधी कड़ी धूपमें उत्तप्त होताहै, यह चिंतन, यह तपन दोनों मिलकर ही तो जीवन है" (अग्निरथ, पृ. ४३)।

इस प्रकार चिर-परिचित प्राकृतिक और सांस्कृतिकके उपादानोंमें निहित उच्चतर मानव मूल्योंका साक्षात्कार उन्हें प्रतीक करके स्तरोंपर प्रतिष्ठित किया गयाहै । यह व्यक्तिनिष्ठ दृष्टि ही है जो देश जातिवर्ग विशेषमें प्रतिष्ठित इन उपादानोंको सार्वभौम मानवीय जिजीविषाके सामर्थ्य और शीलमात्रके प्रतीकके रूपमें प्रस्तुत करतीहै, जिनमें यत्रतत्र मोह तो दिखायी पड़ताही है ।

२—जातीय अस्मिताको व्याख्या

मिश्रजीने वैयक्तिक दृष्टिसे भारतके अनेक पर्वों, उपादानों और प्रतीकोंके साक्षात्कारके माध्यमसे भारतीय अस्मिताके औदार्यको प्रतिष्ठित कियाहै । भारतीय जनसामान्यका वास्तविक परिचय लोक पर्वोंमें ही उजागर हो पाताहै । कुंभ पर्वपर लाखों स्नानार्थियों और कल्पवास करनेवालोंकी मानसिकता और अमृतत्वकी लालसाको रेखांकित किया गयाहै—"हिन्दुस्तानका आदमी हूं, बाहरवालोंकी नजरमें कभी वज्र आलसी कभी वज्र निश्चल, सब कुछ झेलकर बर्दाश्त करके भी एकदम स्थिर, परिवर्तनमें अपरिवर्तनशीस और अपनी नजरमें कुंभपर्वमें ऐसा अनुभव करता हुआ कि नया जन्म हो रहाहै, जीवनका नया साक्षात्कार हो रहाहै, 'अमृतत्वकी नयी दीक्षा ले रहा हूं', मृत्युका नया नकार पा रहाहूं, विश्वासहीनताकी रेतीको बोरती हुई नयी रसधारमें बहाये चला जा रहाहूं" (कौन तू फुलवा बीननि हारी, पृष्ठ १५) । इसी मानसिकताके कारण गंगा आजभी पतित पावनी और सबको गोदमें समेटनेवाली लगतीहै । इसका स्पर्श पाकर चेतनही नहीं जड़ पदार्थोंमें भी चेतनाका संचार होता हुआ दिखायी पड़ताहै—"भारत सही मानेमें एक भावधारा है जो हर पानीमें गंगाका आवाहन करतीहै, ऐसी गंगा जो अभिशप्त प्रेतोंको तारनेके लिए ही शंकरके जटाजूटसे उतरतीहै, जो हर पत्थरमें एक चेतन देवता देखतीहै, क्योंकि उसको पत्थरभी छूताहै जो हर फूलमें हरपत्तीमें एक आकांक्षा पढ़तीहै जो हर आदमीमें एक अनन्त चेतना सम्भावना देखतीहै" (वहीं, पृष्ठ ६५) ।...भारतीय होनेका अर्थ है सबकी चिन्ता रखना क्योंकि सब हममें है। हमारे भीतर नदी है, पहाड़ है, पेड़ है, पशु है, पक्षी है" (वही, पृष्ठ ६७) ।

पिंडमें ब्रह्मांडकी अनुभूति और ब्रह्मांडमें आत्मचेतनाका दर्शन करना बड़ी ऊंची साधना है, जो अन्ततः 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का अनुभव कर प्राणीमात्रको आत्मीयता प्रदान करतीहै । लेखकके अनुसार यह अनुभूति भी संगम स्नानसे ही आतीहै—"संगम स्नानका एक गहरा अर्थ है । केवल तारनेवाली जल राशिमें नहीं डूबना है, मनुष्यको मनुष्यसे जोड़नेवाली भावधाराके साथ एक होना भी है" (वही पृ. ६७) । यह यथार्थ कथन नहीं है आदर्श कामना हैं, यह एक भारतीयका भोला विश्वास है, जिसके ठगे जानेकी पूरी-पूरी आशंका ही नहीं, अपितु प्रत्यक्ष प्रमाण है । फिरभी जिसकी सहजता, सरलता अभिप्रेत तो हैही, उपर्युक्त भावसे सम्पन्न हिन्दुको संकीर्णताओंसे मुक्तकर उसके उदात्त स्वरूपकी कामना की गयी है—"हिन्दू होनेका अर्थ मेरे लिए श्री सम्पन्न होनाहै, रचनाशील होनाहै, दूसरेके लिए अर्पित होनाहै संवादशील होनाहै, और परिणामदर्शी होनाहै, इसीलिए विवेकशील होनाहै" (वही, पृष्ठ १०३) । यहाँ तथाकथित हिन्दू मानसिकताके द्वेष 'दुराग्रह' संकीर्णतासे मुक्तिकी कामना कीहै ।

देवत्वको मनुष्यसे अलग या ऊपर नहीं माना गयाहै—"देवता मनुष्यका विश्वासही तो है, इसीलिए वह मनुष्यकी सुषुप्त शक्ति है" (वही पृष्ठ ३८) ।

लेखकके अनुसार त्याग बलिदान तपस्या सहजता, सरलतासे पवित्र स्थान ही भारतीय मानसमें सर्वाधिक श्रद्धेय है न कि राजसी तामझामसे लकदक महल या दरबार: "मेरे देशके सबसे बड़े घर है श्रीरामके चित्रकूटकी कुटिया, राधाकी वह गोशाला जिसमें श्री कृष्ण गाय दुहने जातेथे, बुद्धकी वह आमकी बगीची का डेरा जिसे उन्होंने वैशालीकी नगरवधू अम्बपाली से भिक्षामें लियाथा । गांधीजीके साबरमती आश्रममें सीधीसादी कुटिया, जो सही अर्थोंमें हृदय कुंज है" (तमालके झरोखेसे, पृष्ठ ३०)। यह है भारतीय जीवन दृष्टि है कि, जो ऐश्वर्यसे अधिक त्याग और निर्लिप्ति को महत्त्व प्रदान करतीहै । परोपकारही सबसे बड़ा जीवनमूल्य माना गयाहै —"जीवनको दूसरोंके आस्वादनके लिए ऐसेही पेरते रहो और मृत्यु आये तो मानो अनुष्ठान पूरा हुआ । अब यज्ञ समाप्ति—अवमृदा स्नान होनाहै" (वहीं, पृष्ठ ८८) । स्वार्थ और अहंकारके अकांड तांडवमें यह स्वर वांछनीय तो हैही । दूसरोंके

दुःखसे तादात्म्यको जीवनका साध्य मानाहै—"यदि तो ऐसी भूमिका चाहिये जहाँ दूसरेकी पीड़ा अपनी पीड़ा हो जाये।" (अग्निरथ, पृष्ठ २३)।

तुलसीके 'स्वांत: सुखाय' के अर्थ ही मिश्रजीने अपने लेखनका उद्देश्य—अपनी प्यास बुझानाही माना है, परन्तु उनकी प्यास केवल जनके कंठ तक ही—सीमित नहीं है—"भारतीय संस्कृतिमें रचे-बसे असंख्य लोगोंकी प्यास है। "अपने जीवनकी प्यास बुझानेके अतिरिक्त कोई बड़ा उद्देश्य मेरे सामने नहीं है" (वहीं, भूमिका पृष्ठ ३)। इसे विनम्रता ही मानना चाहिये। रसकी तलाशको मिश्रजीने भारतीय परंपराकी सबसे बड़ी विरासत मानाहै; (द्रष्टव्य वही पृष्ठ ८४)। इस रसकी सार्थकता उच्चतर जीवन मूल्योंके प्रति 'एकान्त समर्पणमें हीहैं—"जीवनका समस्त रस है आराध्य मूल्योंके प्रति अर्पित होकर निश्शेष हो जायें" (वही, पृष्ठ ४६)।

भारतीय जीवन साधनामें प्रतिष्ठित संतोषको अकर्मण्यता एवं विवशता मान लिया जाताहै। लेखकने बिना परपीड़नसे जो मिल जाये, उसीको संतोष मानाहै—"संतोषका अर्थ नियतिका स्वीकार नहीं है। संतोषका अर्थ है उचित साधनोंसे दूसरोंको संताप दिये बिना जो प्राप्त हो उसे बहुत मानना" (वही पृष्ठ ६७)। इसी प्रकार लोकायत नास्तिकता नहीं है, लोकायतका अर्थ प्रत्यक्षका स्वीकार है, प्रत्यक्ष कार्यके लिए, प्रत्यक्ष व्यवस्थाके लिए, प्रत्यक्षका "स्वीकार" (पृष्ठ १०१)। लोक-संग्रह भी आवश्यक माना गया है विराट्को 'साधनाके लिए'—"सबको समेटो और चल पड़ो अनन्तकी ओर" (शेफाली झर रहीहै—पृष्ठ १८)। इहलौकिक जीवन और उसके उत्कर्ष-यौवनको ही एकमात्र सत्य मानाहै—"यौवनके क्षयकी आशंकासे डरो मत, बुढ़ापेसे डरो मत, मृत्युका स्वप्न देखो मत। सत्य है केवल यह जीवन और इस जीवनका उत्कर्ष—यौवन है। इस यौवनके द्वारा ही हम जीवनको साध सकतेहैं। इसके लिए दमनसे अधिक उन्नयनकी आवश्यकता है" (तुम चन्दन हम पानी--पृष्ठ १७)। भारतीय धर्म साधनामें प्रतिष्ठित सर्वोच्च मूल्य—'मोक्षकी साधना देहके माध्यमसे ही संभव है—"भारतीय कला या भारतीय साधना मोक्षकी जो बात करतीहै और मोक्षको ही परम पुरुषार्थ मानतीहै वह इस उद्देश्यसे नहीं कि इस शरीरको छोड़कर वह उसे प्राप्त करे, बल्कि कला केवल इस शरीरके अंदर ही अंदर ऐसा रस प्रवाहित करे जो इस शरीरके श्वास-प्रश्वासको चराचर विश्वके श्वास-प्रश्वासके साथ एकाकार कर सके" (वही, पृ. ३३) जीवात्माके विश्वात्मासे तादात्म्यकी संभावनाका आधार यही शरीर माना गयाहै परशुराम कल्प सूत्र 'आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितं' के आधार पर।

भारतीय धर्म साधनाके इन तत्त्वोंकी व्याख्याओंके साथही भारतीय मूर्ति शिल्पके सर्वाधिक आकर्षक परन्तु विवादास्पद खजुराहोकी अप्सराओंकी प्रणय मुदित भंगिमाओं और मिथुन मूर्तियाँ हैं जिनके अभिप्रायके बारेमें परस्पर विरोधी मत हैं। जीवनके उच्च लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए वासनाकी इन पुतलियोंके मायालोकका अतिक्रमण लेखकने आवश्यक मानाहै—"ये भौतिक आमोद-प्रमोद 'परमानंदकी चढ़ाईमें सबसे निचले सोपान है और इनका प्रत्याख्यान करना न तो संभव है और न अपेक्षित ही। इसी प्रकार देव मूर्तियोंको परिवेष्टित करनेवाले सुर सुन्दरियोंके आकर्षण तथा देवमूर्तियोंके अंकनमें उस आकर्षणके प्रभावसे विमुक्त सौम्यताका अभिव्यंजन साधकके ऊर्ध्वमुखीन जीवनमें सौंदर्यके प्रलोभनों और उनसे बचावके लिए उपास्य भावनाओं, दोनोंका एक प्रतिबिम्बन करतेहैं" (वही, पृष्ठ ४८)। अनेक पक्षोंमें से एक पक्ष यहभीहै, जो पूर्णत: स्वीकार्य नहीं है। लेखकके अनुसार तंत्र साधनाके संदर्भमें ये मूर्तियां बाह्य आकर्षक सौंदर्यके अतिक्रमणकी परोक्ष प्रेरणा देतीहैं—"तंत्रका मार्ग सौंदर्यसे उन्मथित होनेका मार्ग नहीं हैं, अपितु सौन्दर्यको उन्मथित करके आनन्दकी प्राप्तिका मार्ग है… "पूर्ण रूपसे आत्मविस्मृत रतिमुदिताओंको जो अंकित किया गयाहै वह उसका (आनन्दका) साधन है, अंतिम साध्य नहीं...ये समस्त अभिप्राय साधकको सांसारिक जीवनमें पूर्ण रूपसे घुमाते फिराते हुएभी बराबर उससे ऊपर उठनेके प्रयत्नको औरभी अधिक पुष्ट करतेहैं . ...इन वाणोंसे जो उन्मथित न हो सके और प्रत्येक कोनोंमें अंकित शार्दूलोंकी भांति सुन्दरियोंके रूप मदको कुचलता हुआ हुआ उठता जाये वही सर्वोच्च साधना है, उसकी दृष्टि दमनकी नहीं, उन्नयनकी है" ("वहीं, पृष्ठ ५२-५३)।

वासनाका उन्नयन भी दमन जैसा ही कठिन है फिरभी लक्ष्य तो उन्नयन ही है यद्यपि यह वासनाके मायाजालसे होकर जाताहै। फिरभी खजु-

राहोंकी इन मूर्तियोंके शिल्पी और बनवाने वालेकी दृष्टि इन आकर्षणोंको पार करके चरम लक्ष्य प्राप्त करनेकी ही रही होगी। "साधककी अर्चनाके केन्द्र-बिन्दु गर्भ-गृहमें निराकुल अकेली प्रतिमा है या आलोंमें समासीन पार्श्ववर्ती आकर्षणोंसे निरुद्विग्न और बलदायी ध्यान का आधार बननेवाली देव प्रतिमा है" (वही पृष्ठ)। विषयानन्दके इन चित्रणोंमें इसके सहोदर ब्रह्मानन्दको प्रतिबिम्बित करके इन क्षुद्रताओंका अतिक्रमण कर लेखकके अनुसार चिरन्तन परमानन्दकी ओर संकेत किया गयाहै। 'वह (खजुराहोका कलाकार) कायिक वासनाको तीक्ष्णतम धार देकर शिवोन्मुख बनानेमें लगाथा, वह उन्मुक्त आमाद-प्रमोदको, आखेट और मधुपानको, नृत्य और गीतको परमानन्दकी झांईके रूप में प्रतिबिम्बित करनेमें लगाथा, वह शक्तिके ऊर्जस्वी प्रवाहको शार्दूल प्रतिमाओंमें उभारनेमें लगाथा, और वह शिवके शाश्वत संकल्पको आलोंमें प्रतिष्ठित देव-प्रतिमाओंमें उतारनेमें लगाथा" (आंगनका पंछी और वंजारा मन—पृष्ठ ४८)

इतनाही नहीं मन्दिरके शिखरपर घड़ेके ऊपर बना हुआ आंवलाभी उसे वासनाके घृणित परिवेशसे घिरे हुए मोक्षका प्रतीक लगताहै—"गर्भगृहके केन्द्र में यदि उपास्य प्रतिमा है तो ठीक उसीकी सीधमें ऊपर शिखर भागपर आमलक अर्थात् मनकी शुचिता के ऊपर अधिष्ठित अमृतघटको भेदकर ऊपर चली जानेवाली नोंक है जो ससीम आत्माकी विमुक्तिकी प्रतीक है।" (वही, पृष्ठ ५०)। भारतीय कला और शिल्प साधनाको भारतीय जीवन साधनाका प्रतिफलन माननेके कारण खजुराहोकी इन विवादग्रस्त मूर्तियों और शिल्पकी ये व्याख्या यदि नितान्त ग्राह्य नहीं है तो त्याज्य भी नहीं हैं, क्योंकि प्रतिमा और प्रतिमालय दोनोंकी प्रतीकात्मकता भारतीय शिल्पमें मान्य तो है ही, भलेही उसके विभिन्न अभिप्राय हों। खजुराहोमें निर्मित रति-मूर्तियोंकी कोई प्रासंगिकता तो होनी चाहिये, स्वच्छन्द भोग-विलासको उत्तेजित करनेके अतिरिक्त, अतः ये व्याख्या विचारणीय तो हैही।

इसीप्रकार रामचरितमानसकी श्रेष्ठताको सिद्ध करनेवाली एक रूढ़िका भी अभिप्राय मिश्रजीने खोजा है—"वेद एक विवर्तमान सत्यानुसन्धित्साका उपलक्षण है। वेदकी समग्रार्थसंहिता या ब्राह्मण ही नहीं हैं पुराण काव्य लौकिक गीत हैं ये सब मिलकर। नहीं तो तुलसीके रामचरितमानसका विश्वनाथजीके मन्दिर में संहिता आदि सबसे ऊपर चले जानेकी अनुप्रथाका और क्या तात्पर्य हो सकताथा?" (वसन्त आ गया, पर कोई उत्कण्ठा नहीं, पृष्ठ २०) इसी शृंखलामें भागवत धर्मका अन्तिम लक्ष्य निजी दुःख स्वयं ही झेलना है न कि उसको दूसरों या प्रियकी ओर मोड़ना—"भागवत धर्मकी चरम सार्थकता परपीड़ाकी ज्वाला के वरणसे शुरु करके अपनी पीड़ाकी ज्वाला प्रियकी ओर मोड़नेके स्थानपर पुनः अपनी ओर मोड़ देनेमें है।" (संचारिणी पृष्ठ ९५) रूमानियांके कलाकार ब्रांकुशके स्वरमें स्वर मिलाते हुए लेखकने शुद्ध आनन्दकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के लिए यह दृश्यमान सौन्दर्यके उपादान कारण—अर्थात् कच्चे माल—मानाहै—"दृश्य रूप सम्भारमें से ही शुद्ध आनन्दका क्षण सिरजा जाताहै धुंधले रहस्यों से आनन्दकी सृष्टि नहीं होती।" (तमालके झरोखेसे, पृष्ठ ५१)। कहीं-कहीं रूढ़िवादितासे ग्रस्त होकर अंधविश्वास और दुराग्रही स्वर भी सुनायी पड़ताहै आधुनिक बोधके मसीहा राजा राममोहन रायको अंग्रेजी परस्त कहना उचित नहीं है "संघर्ष नये और पुरानेके बीच नहीं, नये और नयेके बीच है। राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित अंग्रेजीपरस्त नये और आजके सब ओरसे त्रस्त भर्त्सित और आशंकित नयेके बीच है।" (वसन्त आ गया, पर कोई उत्कण्ठा नहीं, पृ. २१) एक अन्य प्रसंगमें भी बंकिमचन्द चट्टोपाध्यायपर, राजा राममोहन रायके साथ आधुनिक बोध अभिशापके रूपमें हिन्दू धर्मके संकुचित होने एवं गतिहीन होनेके लिए दोषी मानते हुए व्यंग्य कियाहै—"राजा राम मोहन रायकी जय हो, भारतीय बौद्धिक पुनर्जागरणके पितामह बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायकी जय हो। हिन्दू धर्मको नये तकाजोंके डरसे सिकुडकर भीतर घुसना पड़ा, उसका विवर्तमान रूप पीछेकी खिड़कीसे निकलकर अलग रपटनेवाली पगडण्डियोंपर अलख जगाने चल पड़ा और फिर सिंहपौरसे उसका बड़ा सजा-संवरा रूप राजमार्गपर शानदार रथयात्राके जुलूसके रूप में परिणत होकर आगे बढ़ने लगा और चलते-चलते एकाएक पता नहीं, निरन्तर चढ़ती फूलमालाओंके बोझसे या रथ ढोनेवाले विचारकोंकी थकानके बोझ

से रथयात्रा एक जगह ठहर गयी।" (गांवका मन, पृष्ठ ५८)। हिन्दू धर्म यदि जड़ और रूढ़ि रीतिग्रस्त हुआ तो इसका कारण उक्त दोनों महापुरुषों द्वारा परिवर्तित बौद्धिक पुनर्जागरण नहीं, अपितु इसका अभाव ही है, जो पोंगापन्थी पाखण्ड और प्रतिक्रियावादी तत्त्वोंके हावी हो जानेसे हुआहै।

यहां लेखककी प्राचीन मध्यकालीन और ग्रामीण मानसिकता, उसकी दृष्टिको धुंधली किये हुएहै। ऐसी ही आधुनिक जीवनकी व्यावहारिक चुनौती झेलने तथा ज्ञान-विज्ञानकी नयी नयी दिशाओंमें अपने देशको आगे बढ़ानेके लिए, जो ज्ञानकी नयी शाखाएं विकसित हो रहीहैं उनके प्रति लेखककी शंका नयेके प्रति असहिष्णुता और निराधार भयको व्यक्त करतीहैं— "मनुष्यकी शक्तिके परिचालनके लिए, व्यवसाय प्रबन्धके पाठ्यक्रम शुरु किये जाये तो मन बहुत आतंकित हो उठताहै मनुष्यके भीतर सोयी हुई चिंगारीकी अपनी लौ नहीं रह पायेगी। हर मनुष्य संवेदनशून्य यन्त्र बन जायेगा। संवेदना भी इसमें जैसे चाहे वैसे यन्त्र द्वारा भरी जा सकेगी, जैसे चाहे वैसे यन्त्र निः-संवेदन किया जा सकेगा। इस पाठ्यक्रमके पीछे मुझे एक गहरी अभिसंन्धि दिखायी पड़तीहै।' (अंगदकी नियति, पृष्ठ १०)। [क्रमशः]

आंच अलावकी[1]

[निबन्ध संकलन]

लेखक : डॉ. श्रीराम परिहार
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

डॉ. श्रीराम परिहार मूलतः कवि हैं। अनेक गीत तथा कविताएं प्रकाशित हो चुकीहै। साथही उनके ललित निबन्ध भी समय-समयपर प्रकाशित हुएहैं। 'आंच अलावकी' उनके अठारह ललित निबन्धोंका संकलन है। संभवतः पुस्तक रूपमें प्रकाशित यह उनकी पहली कृति है।

संकलनके अधिकतर निबन्ध—कुल चौदह—'माटीसे जुड़े हुएहै' जिनमें माटीकी सोधी गन्ध मनको लहका-लहका देतीहै। नगरीय जीवनमें उलझा मन यदि इन निबन्धोंके माध्यमसे कुछ समय प्रकृतिकी गोदमें विश्राम करने लगे तो आश्चर्य नहीं। चार निबन्ध भिन्न प्रकारके हैं। उनमें शैली तो ललित निबन्धकी है किन्तु कथ्य चिन्तन-परक, प्रायःही बौद्धिक हो गयाहै। डॉ. परिहारने आग्रह कियाहै कि "मनुष्यकी जीवनानुभूतियां माटी-गंधी होतीहैं।" महानगरोंमें जन्मे, पले और बड़े हुए करोड़ों व्यक्ति इससे कितना सहमत होंगे यह तो पता नहीं किन्तु निश्चयही ऐसे माटीकी गन्धसे अपरिचित व्यक्तिभी निश्चय ही इन निबन्धोंमें अपने आदिम संस्कारोंको पुनर्जीवित होते देख सकेंगे।

लेखकका कवि-मन प्रकृति-साहचर्यके क्षणोंमें मगन हुआहै किन्तु वह बाह्य-यथार्थके प्रति उदासीन नहीं है। "घर आंगनसे लेकर खेतों तक हरियाली कुलाचें मारतीहै, लेकिन गांवसे कभी अभाव विदा नहीं ले पाया। ब्याजोंके बोझ, साहूकारके तकादे और समयकी मार हरियालीको निगल जातीहै।" तारू दादाकी भीगती अस्थिपंजर देह, आशाओंके तार-तार से घोंसला बुनती वृद्ध आंखें, अभावों और गरीबीसे विवश अनखुले होठोंमें एक सम्पूर्ण जीवन प्रवहमान हो रहाहै।" मिट्टीको सोंधापन देनेवाले प्रस्वेदको लेखकने बहते देखाहै और देखीहै खून-पसीना एक करनेवालोंकी मजबूरियां। ये सब डॉ. परिहारके निबंधोंमें हैं किन्तु वे वर्ग-संघर्षके झण्डा-बरदार नहीं हैं। लेखकका निमाड़की धरतीसे, इस धरतीसे उपजी लोक-संस्कृतिसे तथा उस माटीकी सन्तानोंसे गहरा लगाव है जिसने उसे ये सब अनुभूतियां दीहैं। इन अनुभूतियोंके रचनात्मक आकार कहीं हमारे अन्तर्मन में भी छवि पैदाकर जातेहैं।

तथापि, डॉ. परिहार केवल अनुभूतियोंके प्रवाह में बह नहीं गयेहैं। एक बुद्धिजीवी और प्रबुद्ध-नागरिक की चिन्ता उनके चिन्तनमें उभरीहै। "देशके लिए खाद्यान्न, मशीनें, अस्त्र-शस्त्र और भी कुछ विदेशोंसे मांग लेंगे, परन्तु पीढ़ियां आयात नहीं कीजा सकतीं। हमारी पीढ़ी भली-बुरी जैसीभी है, उसेही तराशना है। सुन्दर बनानाहै। समय उसका है। देश उसका है। वे राष्ट्रकी हैं।" यह चिन्ता एक शिक्षा-विद्की है जो नयी पीढ़ीको तराशनेमें जीवन खपा रहाहै। क्या हमारे देशके, हमारे शिक्षा-जगत्के, पीढ़ियोंके भविष्य

---

[1] प्रका. : पंकज प्रकाशन, सी-८/१५८ ए, लारेंस रोड, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १०४+१२; मूल्य : ३०.०० रु.।

के कर्णधार बन बैठे सत्ताधारियोंकी भी यह चिन्ता है? डॉ. परिहार हुए अप्रिय सत्यको समझते अवश्य होंगे, किन्तु यहां वे हम सबकी तरह खिन्न भावसे चुप हैं।

निबन्धोंमें एक ओर 'पॉजीटिव' चिन्तनकी धारा है तो दूसरी ओर, साथ-साथ, निपट ऐकान्तिक भावाभिव्यक्तियां भी हैं। अपनी संस्कृतिके साहचर्यके अवसरपर लेखक चिन्तक है और अपनी प्रकृतिके बीच में आकर वह कवि है। "सुबहकी ताजा हवा पलकें धोने लगी। आंखें खुलीं। खिड़कीके रास्ते दृष्टि भागी और खिड़कीसे सटे हरसिंगारपर अटक गयी। हरसिंगारकी टहनीसे मौसमके स्वागत-गीत फूट गये। पत्र-पत्रमें रांगोली मांड दी। आकाशने साफ कपड़ेसे चेहरेके ओस-कण पोंछे। सूरज-किरणोंने कुंकुम बिखेरा। गौरैया चहकी। खंजनने नैन नचाये। कांस फूले। कमल खिले। हंस लौटे। दूब गहरायी। गरबा गूंजा। धानने नकबेसर पहनी। लटा लूम कपासके ठहाके मेड़के बाहर तक दौड़े।" इस उद्धरणमें बिम्बात्मक-प्रतिभा तथा छोटे-छोटे वाक्योंमें निहित लय उल्लेखनीय है।

हिन्दीमें ललित निवंधकार अनेक हैं। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र आदि भाव-विभोर भी होतेहैं, अपनी संस्कृतिकी सतत प्रवहमान धारमें डुबकियाँ लगाते, चिन्तन-रत भी होतेहैं किन्तु माटीमें रचा-पगा ऐसा लेखक दूसरा खोज पानेमें हम कठिनाईका अनुभव कर रहेहैं। इस अर्थमें डॉ. श्रीराम परिहारकी अपनी अलग पहचान है तथा उनके निवंध ललित निबंध साहित्यमें विशिष्ट हैं। श्रीकान्त जोशीके शब्दोंमें "ये निबंध प्रकृतिके उत्सव हैं जो उत्सवकी प्रकृतिसे लिखे गयेहैं और मनुजकी गहन वेदना और श्रम-साधनाको स्पर्शकर सम्पूर्ण और जीवंत हो उठेहैं।" □

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व[1]

लेखिका : डॉ. सान्ध्यप्रभा

समीक्षक : डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया

विवेच्य कृति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयकी पी-एच. डी. उपाधिके लिए हिन्दीका एक शोध प्रबंध है जो आठ अध्यायोंमें विभक्त है।

प्रथम अध्यायमें लेखिकाने स्पष्ट कियाहै कि द्विवेदीजी वैद्यनाथसे हजारीप्रसाद कैसे बने, परिवार की ज्योतिष विद्याने एक दिन उन्हें ज्योतिषाचार्य बना दिया, शास्त्राचार्य उत्तीर्ण कर उन्होंने शान्ति निकेतन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा पंजाब विश्वविद्यालयमें विभागाध्यक्ष बनकर हिन्दी प्राध्यापन किया, अन्तमें वे हिन्दी संस्थानके उपाध्यक्ष भी रहे। शान्तिनिकेतनसे उनका लेखन धर्म मुखर हो उठा। अनेक अनूठे ग्रंथोंने उन्हें कीर्तिके कैलाश तक पहुंचाया। डी. लिट्., साहित्य वाचस्पति तथा पद्मभूषण जैसी अनेक उपाधियोंसे द्विवेदीजीको अलंकृत किया गया।

द्वितीय अध्यायमें सुधी लेखिकाने बखूबी उजागर कियाहै कि हृदयका संतुलन, रूढ़ियोंका विरोध, संयम और समाहार शक्तिका सामंजस्य, भारतीय गौरव गरिमा, संवेदनशीलता और आशावादिता जैसे विरल किन्तु आत्मिक गुणोंकी अद्भुत शक्ति समीकरण द्विवेदीजीके गरिमामय व्यक्तित्वके रूपको स्वरूप प्रदान करताहै।

तृतीय अध्यायमें उनका जीवन दर्शन चर्चित है। मानवतावाद, विकासवाद, रसवाद, जनवाद उनके जीवनमें किस प्रकार संचरण करताहै, लेखिकाने स्पष्ट कियाहै। इसी अध्यायके अन्तमें द्विवेदीजीका समाज और साहित्य विषयक दृष्टिकोण भी स्पष्ट किया गया है।

चतुर्थ अध्यायमें निबन्धकार द्विवेदीजीका रूप उद्घाटित किया गयाहै जिनमें उनके निबन्धोंको

---

[1] प्रका. : ग्रन्थायन, सर्वोदयनगर, सासनी द्वार, अलीगढ़-२०२००१। पृष्ठ : २०८; डिमा. ६१; मूल्य : १००.०० रु.।

साहित्यिक, सांस्कृतिक, आलोचनात्मक, ज्योतिष, भाषा तथा शिक्षा वर्गोंमें वर्गीकृत किया गयाहै। लेखिकाने प्रमाणित कियाहै कि द्विवेदीजी निबन्धकार के रूपमें नयी विधाको नया रूप प्रदान करतेहैं साथ ही नयी गद्य शैलीके नये प्रवर्तककी भूमिकाका निर्वाह भी।

पंचम अध्यायमें उपन्यासकारके रूपमें द्विवेदीजी का मूल्यांकन किया गयाहै, जिसमें सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, और ऐतिहासिक शक्ति और सम्पदाको अभिव्यक्त किया गयाहै । सुधी लेखिकाने उनके सभी उपन्यासोंकी शास्त्रीय शैलीमें समीक्षा प्रस्तुत कीहैं, साथही उनके संदेशको सार और सारांश रूपमें प्रस्तुत कियाहै।

षष्ठ अध्यायमें द्विवेदीजीका इतिहासकार रूप उपन्यस्त किया गयाहै। हिन्दी साहित्यका इतिहास लेखन में प्रवृत्तियोंका वर्गीकरण एवं काल-विभाजनमें उनके मौलिक चिन्तनका मूल्यांकन है। लेखिकाने स्पष्ट कियाहै कि द्विवेदीजीने अपभ्रंश साहित्य तथा आदिकालीन एवं भक्तिकालीन समग्र साहित्यका विशद मंथन कियाहै।

सप्तम अध्यायमें शोधकर्त्ता एवं समीक्षकके रूप में द्विवेदी-लेखनका विषद विवेचन किया गयाहै। लेखिकाने सप्रमाण सिद्ध कियाहै कि द्विवेदीजीकी आलोचना शास्त्रीयताकी अपेक्षा भावात्मक अधिक है। आधुनिक समीक्षक डॉ. शिवप्रसाद सिंहके आक्षेप को अगाड़ी रखकर प्रमाणित कियाहै कि मौलिक लेखनकी अपेक्षा उनका आलोचक पक्ष कमजोर है।

अष्टम अध्यायमें द्विवेदीजीकी अन्य साहित्यिक विधाओंका विवेचन किया गयाहै, साथही उनके अनूदित कार्यका भी उल्लेख किया गयाहै।

विदुषी लेखिकाने उपसंहारमें कृतिकी शक्ति और मूल्यका सार-सारांश इस प्रकार शब्दायित कियाहै द्विवेदीजीका हिन्दीको अवदान स्पष्ट हो जाताहै।

विवेच्य कृतिकी विषय उपस्थापन शैली लेखिका के गम्भीर अध्ययन अनुशासनसे अनुप्राणित तथा अनूठी है। प्रौढ़ और प्राञ्जल भाषामें द्विवेदीजीपर लिखी यह खोज-किताब नयी खबर, नया अन्दाज और नया मूल्यांकन प्रस्तुत करनेमें पहल करतीहै। इतनी सुन्दर कृतिकी भूमिका लिखकर डॉ. त्रिभुवनसिंहने कृतिके महत्त्वको बढ़ायाहै। ⊡

काव्य

“चिनार”[1]

कवि : देवराज

समीक्षक : डॉ. जवाहरसिंह

“चिनार” कवि देवराजकी २२ वर्ष लम्बी काव्ययात्रा (१९७०-९२) के विभिन्न पड़ावों और मोड़ों को रेखांकित करनेवाली अलग-अलग मूड-मिजाज और तेवरवाली ४५ छोटी-बड़ी कविताओंका प्रथम एकल संग्रह है। ये कविताएं कवि देवराजको प्रतिपक्ष के एक सामर्थ्यवान् और सम्भावनापूर्ण कविके रूपमें प्रक्षेपित करनेमें पूर्णतः समर्थ हैं।

“चिनार” की कविताओंसे गुजरते हुए न जाने क्यों मुझे बार-बार केदारनाथ सिंहकी कविता “मुक्ति” की

---

[1] प्रका. : सौम्या प्रकाशन, २१-चौक, नजीबाबाद-२४६७६३। पृष्ठ : १२८; डिमा. ९२; मूल्य : ६०.०० रु.

कुछ पंक्तियां याद आती रहीं —"मैं पूरी ताकतके साथ/ शब्दोंको फेंकना चाहताहूं आदमीकी तरफ/ यह जानते हुए कि आदमीको कुछ नहीं होगा।/ मैं भरी सड़कपर सुनना चाहताहूं वह धमाका/ जो शब्द और आदमीकी टक्करसे पैदा होताहै / ये जानते हुए कि/ लिखनेसे कुछ नहीं होगा।"

"लिखनेसे कुछ नहीं होगा" की हताश भावना की अभिव्यक्ति "चिनार" में "हिरोशिमाकी औरत" भी कविको बार-बार अपनी त्रासद स्थितिके बारेमें कुछ भी न लिखनेका वर्जनाभरा संकेत देकर करतीहैं। क्योंकि परमाणु युद्धकी विभीषिकासे ग्रस्त हिरोशिमा की वह गर्भवती महिलाभी अपने अनुभवोंसे जान गयी है कि लिखनेसे...मात्र लिखनेसे आदमीका कुछ नहीं होगा,…कुछभी नहीं—न संहारक युद्ध रुकेंगे न अन्याय-अत्याचार और दमन रुकेंगे और न साम्राज्यवादी विस्तारवादी सत्ताकी लोलुपता एवं हिंस्रवृत्ति रुकेगी।

लेकिन यहां एक बात ध्यान खींचनेवाली है कि केदारनाथ सिंहकी भांति देवराजका अभी शब्दोंकी शक्तिसे पूरी तरह मोहभंग नहीं हुआहै। इस कविके भीतर अबभी कहीं-न-कहीं शब्दोंकी सत्ता और उनकी मारक मंत्र-शक्तिके प्रति गहरे विश्वासका बीज छिपा है। तभी तो वह इस संग्रहके प्रारम्भमें ही अपने इस विश्वासको संग्रहका बीज-मंत्र घोषित करता हुआ कहताहै—"शब्द चेहरे हो गयेहैं/ यह बतानेके लिए/ अब नहीं तैयार हम हैं/ सर झुकानेके लिए।"

शब्दोंका चेहरोंमें बदल जाना और उनका ताल ठोंककर खड़ा हो जाना कविताकी शक्तिपर विश्वास का ही द्योतक है। "हे मेरी भाषा/ मेरा साथ दो/ रातके उस पहरमें / जब कोई स्त्री / नाखूनोंके विरुद्ध लड़ते हुए/ दीवारसे टकरा जातीहै/ ऐसे ही समय/ मैं आना चाहताहूं बाहर/ सड़क और चौराहोंपर/ तोड़ डालना चाहताहूं / कारोंके शीशे/ इमारतोंकी खिड़कियां/ और तुम्हारा/ गलत इस्तेमाल करते/ नेताओं के जबड़े।" (भाषा : स्त्री : कवि)

पिछले दो दशकोंमें अनेक युवा कवियोंने क्रान्तिकारी तेवरवाली बहुतही तल्ख-तुर्श ज्वलनशील कविताएं लिखीहैं। ये कवि अत्युत्साहमें उस अतिवामपंथी राजनीतिसे मानसिक स्तरपर जुड़ेथे जिसे आमतौरपर नक्सलवाद कहा जाताहै। इन लोगोंने भारतमें तत्काल खूनी क्रान्तिकी सम्भावना देखीथी और इसी समझसे निर्मित नारे दिया करतेथे। ऐसी राजनीतिक समझ सामाजिक यथार्थको वस्तुगत रूपमें न देखकर मनोगत या मनोवांछित रूपमें देखनेके कारण ऐसा भ्रम उत्पन्न करतीहै।

सौभाग्यसे उसी दौरके कवि होकर भी देवराज न तो ऐसे किसी भ्रमके शिकार हुएहैं और न अपने भीतर क्रान्तिकारी कवि होनेका भ्रम ही पालाहै। "चिनार" का कवि बन्दूक-बम लेकर इस भ्रष्ट सत्ता और दमनकारी तंत्रपर हमला बोलता कहीं नहीं दिखायी देता। इस देशकी क्षुब्ध और नाराज जनता को हथियारोंसे लैस होकर अपने वर्ग-शत्रु पर हमला बोलनेके लिए प्रेरित करते हुए वह कहीं दिखायीं नहीं देता : "गांव भरकी नाभियोंमें / उग आयीं चिमनियां/ शहरभर के पेट/ हो उठे भट्ठियां/ चिमनियोंसे उठ रहा/ बिनब्याही लड़कियोंके स्तनोंका धुंआं/ भट्ठियों में दहक रहा।/ छुट्टन मजदूर/ सौ-साला बूढ़े-सा/ ठुकुर-ठुकुर देखता/ बेबस है देख।" (देश), लेकिन वह इस तथ्यको भी जानताहै कि ऐसी बेबसी क्रान्तिका ईंधन ही बन सकतीहै, बिगुल नहीं बन सकती। इसीलिए "चिनार"का कवि प्रत्येक अन्याय अत्याचार दमन और शोषणका निर्भीक विरोध करना अपना मौलिक अधिकार मानकर देशकी जनतासे कहताहै—"कबतक डरते हुए/ रेतके टीलेपर/ नाखूनसे/ निशान बनाते रहेंगे हम/ आज नहीं तो कल/ हमें चीखना/ ही पड़ेगा/ उसके खिलाफ और तैयार होजाना पड़ेगा/ हवामें लहाराते हाथको/ चाकू बनानेके लिए।" (संविधान)। 'आज नहीं तो कल और तैयार हो जाना पड़ेगा' से कवि स्पष्ट संकेत दे रहाहै कि अभी जमीन पकी नहीं है, क्रान्तिका बिगुल बजाना निहत्थी जनताको क्रूर सत्ता-शेरके जबड़ेमें झोंकने जैसा होगा। पहाड़-सा धीरज और धरती-सी अपार/ सहनशीलता अपनी छातीमें दबाये इस देशकी आम जनताकी आजकी दमनकारी स्थितियोंके प्रति गहरी उदासीनता देखकर कवि क्षुब्ध होकर भर्त्सना पर उतर आताहै—"अगर धमनियोंका लहू/ पानीमें तब्दील नहीं होगयाहै/ तो क्यों/ देख रहाहूं/ कापुरुषोंकी तरह सूरजको जहर पीते हुए/ अगर मुंह टेप-रेकर्डरमें नहीं ढल गयाहै/ तो क्यों गा रहाहै/ आजभी/ समाजवाद/ लोकतंत्र/ धर्मनिरपेक्षता/ और झण्डेकी अमरताके गीत/ जबकि अब/ इस देशमें/

इनमें से कोईभी शेष नहीं है।" (धमनियोंका लहू)।

ऐसे हालातके उद्घाटन वर्णनके तुरत बाद जहां अनेक अतिवादी क्रान्तिकारी मानसिकतावाले कवियोंने संशयग्रस्त इस देशकी जनताको सशस्त्र विद्रोहका एक मात्र रास्ता दिखाकर उसकी मानसिक और भौतिक तैयारीका बिना ख्याल किये, उसके थरथराते कंधोंपर बन्दूक और अनाड़ी हाथोंमें बम थमा दियाहै, वहीं "चिनार" का कवि अपनी ओरसे ऐसा कुछ न कर जनतांत्रिक पद्धतिसे सत्ता परिवर्तनकी वर्तमान प्रक्रिया पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उसे इस प्रक्रियाकी सार्थकता पर मात्र पुर्नविचार करनेकी राय देकर उसके सामने दोनों विकल्पोंको खुला छोड़ देताहै :—

> "जब जीभसे चाटने लगे/ प्रधानमंत्री संविधान को/ और सींगोंपर उठाकर कुर्सी/ भागने लगे सीमाओंकी ओर/...जब काटने लगे प्रधानमंत्री/ जनताकी जीभ/ शामिल कर लें सहयोगी मंत्री/ भाषणमें गालियां/ और कसने लगें नाखून/ लोकतंत्रके टेंटुएपर/ तब जनताको अपने वोट डालने के अधिकारपर/ फिरसे विचार करना चाहिये।"
>
> (पुर्नविचार)

सत्ता परिवर्तनके इन दो विकल्पोंमें से किसी एक को चुननेके पहले पूरी स्थितिपर पुर्नविचार करनेकी इस लिए भी आवश्यवता है कि "देशको नाग लीले हुएहैं, सूरज कैदमें मर रहाहै," "भेडियोंने अंधेरोंसे दोस्ती गांठ लीहै और धर्म घृणाका राग, गा रहाहै" और यह सब देखते-भोगते हुएभी इस देशकी जनता अभी किंकर्त्तव्य विमूढ़ बनी अनिर्णयकी स्थितिमें बार बार कह रहीहै, "अब हम क्या करें।' अक्षरोंकी आंखमें आग तो कवि देख रहाहै किन्तु जनता अबभी, 'अब हम क्या करें' के मानसिक द्वन्द्वमें फंसी हुईहै। (अक्षरों की आंखमें हैं आग)।

यह 'अब हम क्या करें' का भाव जनताकी गहरी हताशा, असमर्थता बोध और कुछभी न कर पानेकी मानसिक पीड़ाका भी द्योतक हो सकताहै?

देवराजकी इस चिन्तामें क्या आज प्रत्येक सही सोचनेवाले देशवासीकी चिन्ता नहीं मुखरित हो रहीहैं?

संग्रहकी कविताओंमें कविने सृजनकी सम्पूर्ण प्रक्रिया को समसामयिक जीवन-यथार्थके साथ रचनाधर्मिता की हिंस्र मुठभेड़के रूपमें रेखांकित कियाहै। इसलिए इन कविताओंके केन्द्रमें कोई-न-कोई दुर्घटना है। (हिरोशिमाकी औरत, इतिहास-इमर्जेन्सी, एक पुरानी कहानी, राक्षस आदि) और प्रायः इन दुरित घटनाओं का संदर्भ राजनीतिक या सामाजिक विसंगतियां हैं।

"चिनार" की अधिकांश कविताओंमें व्यवस्थाका राजनीतिक चेहरा ही अधिक उजागर हुआहै। और इस चेहरेकी वास्तविकताको दर्पण दिखानेके लिए कवि कहीं तीखे व्यंग्यका माध्यम अपनाताहै (लोग, भाषण देनेवाले कुर्सी दौड़, देश आदि), कहीं एलिगोरी का (राक्षस, एक पुरानी कहानी) और कहीं स्पष्ट कथन तथा उद्बोधनका।

"चिनार" की कविताओंका क्षेत्र बड़ा व्यापक है जिसमें देशकी वर्तमान दशा (दुर्दशा), सत्ताकी क्रूरता जननेताओंका दोगलापन, पाखण्ड, स्वार्थपरता, देशमें व्यर्थ हिंसाका वातावरण, बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता, आतंक, असुरक्षा, भ्रष्टाचार, दमन, मोहभंग, निराशा वह सब कुछ है जिनके बीच आज देशका सामान्य जन (आम आदमी) घिरा हुआ अपनेको असहाय और अकेला अनुभव करने लगाहै।

देवराजकी कविताओंके केन्द्रमें मनुष्य है और मानव-अधिकार, मानवकी अस्मिता, मानवीयताकी रक्षा तथा उसको प्रेरित-प्रभावित करनेवाली परिस्थितियां ही कविकी चिन्ताके मुख्य विषय हैं। "चिनार" में जहां पर्यावरण समस्याके राजनीतीकरण का उद्घाटन किया गयाहै, वहीं "हिरोशिमाकी औरत", "मेरे बच्चेको साथ" और "बच्चे" में सर्वभक्षी युद्धके, विरोधका स्वर सुनायी देताहै। "मांका बयान" और "उत्सव" कविताएं सांप्रदायिकताके विरोधमें खड़ीहैं। परन्तु संग्रहकी अस्सी प्रतिशत कविताएं देशकी वर्तमान दुर्दशा और इस दुर्दशाके लिए उत्तरदायी सत्ता-केन्द्रित शक्तियों और तत्वोंकी शल्य-चिकित्सामें संलग्न हैं। इस दृष्टिसे "इतिहास", "संविधान" "धमनियोंका लहू", एक पुरानी कहानी", "कुर्सी दौड़" "तिरंगा : दिल्ली: औरत", "राक्षस", "भाषा : स्त्री : कवि", तथा "मेरा देश" कविताओंका विशेष उल्लेख किया जा सकता है।

> तिरंगेमें लहराता हुआ/ मेरा देश/ शाहजहांके लाल किलेकी प्राचीरसे/ भाषण दे रहाहै/ और मैं भी चिन्गारीदार आंखोंवाली/ बिल्ली दांतोंके बीच दबे/ विवश कबूतर-सा/ भाषण सुन रहाहूं/ लगातार चवालीस सालसे ही/" (तिरंगा : बिल्ली : औरत)।

इसी कवितामें आगे कवि कहताहै :—

"मेरे अन्दर धीरे धीरे/ एक लम्बे नाखूनोंवाला बच्चा/ आकार लेने लगाहै/ जो चिन्गारीदार आँखोंवाली/ बिल्लीके दाँत/ तोड़ डालनेकी/ तैयारी करता दिखताहै ।"

आज स्थिति औरभी नाज़ुक है । धर्म और सम्प्रदायके नामपर तनाव गहराता ही जा रहाहै । इस देश की धर्मप्रिय जनताकी भावनाओंको भड़काकर राजनीतिके क्षेत्रके कुशल खिलाड़ी अपना उल्लू सीधाकर रहेहैं । धर्मको सत्ता-प्राप्तिकी सीढ़ियोंके रूपमें काममें लाया जा रहाहै । ऐसी स्थितिमें कोईभी संवेदनशील कवि अपने परिवेशसे तटस्थ रहकर कैसे रचनारत रह सकताहै । "माँ का बयान" कवितामें एक मां अपने बच्चेके बार-बार पूछनेके बावजूद उसे उसके पिताका नाम इसलिए नहीं बतलाना चाहती क्योंकि उसका धर्मान्ध पति "उन्मादका रूमाल गलेमें बाँधे घूम रहाहै भीड़ के साथ/शहरकी उन गलियोंमें/जहां दूसरे धर्मवाले रहतेहैं/ वह जला रहाहै/ दूसरे धर्मवालोंके घर/ उनकी दुकानें/ पकड़ रहाहै/ उनकी लड़कियां...देवराज अपनी कविताओंमें स्थितियों और प्रसंगोंकी जाँच-परख करते हैं और कहीं-कहीं बहुत बारीक और तीखे व्यंग्यका सहारा लेकर उस द्वैतको उभारतेहैं, जो आजके सामाजिक-राजनीतिक जीवनका घिनौना यथार्थ हैं । "चिनार" की कविताएं मूलतः गहरे मानवीय लगाव की कविताएं हैं । इसी गहरे लगाव और संवेदनाने देवराजकी कविताको मात्र बौद्धिक व्यापार या शाब्दिक चमत्कार होनेसे बचायाहै । इसी कारणसे इनकी कविता सहज, सरल आदि गहरे जुड़ावकी कविता बनी रहीहै ।

संग्रहकी अंतिम दस कविताएं यह प्रमाणित करतीहैं कि कबि देवराजकी सामाजिक-चेतना उनकी वैयक्तिक-चेतनाको पूरी तरह निगलकर आत्मसात् नहीं कर सकीहैं । वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक यथार्थकी अनगढ़ रूखड़ी चट्टानोंपर सिर पटक-पटक कर उनके भीतरकी कोमल संवेदनाएं पूरी तरह टूट बिखर नहीं गयीहैं । मानव और प्रकृति सौंदर्य तथा मानवीय राग-विरागके प्रति उनका हृदय संवेदनशून्य नहीं हुआहै ।

यद्यपि इस सुलगते वर्तमानके नंगे यथार्थको भोगनेवाले इस कविको इस खराब मौसममें प्यार-मुहब्बतके चोंचले अच्छे नहीं लगते और वह उसके लिए इस दमघोट वातावरणको उपयुक्तभी नहीं समझता : "नालियोंमें बह रहाहै/गन्दे रक्त/ और नरमांस के टुकड़ोंसे बना दुर्गन्धित कीचड़/ ऐसेमें तुमसे प्यार की बात कहांपर हो ?कहो-कहां कैसे...?/ घरमें बन्द रहकर/ किताबोंके पन्ने उलटते हुए प्यारकी कविताएं भी/ किस अधिकारसे पढ़ूं ?" लेकिन फिरभी देहधरम धारण करनेवाले प्राणियोंके लिए प्रेम-प्यार की प्राकृतिक मांगसे कोई कैसे इन्कार कर सकताहै !

इसलिए "अरहरकी यौवनोन्मादित/ पत्तियोंके साथ/ आइस-पाइस खेलती ज्योत्स्ना/ बीच-बीचमें/ ताली बजाकर हंस पड़तीहै/ भोली ग्राम्य-बाला-सी ।" और "अनमना-सा धानका पौधा/ समूचे गांवका चेहरा ।" जब बन जाताहै तो कवि अपनी प्रियाके नाम पाती लिखनेसे अपनेको रोक नहीं पाता "वे गुलाबी दिन/ तुम्हारे नाम/ जिनके वक्षपर चिन्हित/ हमारा प्यार है अभिराम ।" ऐसेमें उसका मन अगर उससे पूछताहै कि होलीकी क्या परिभाषा है, तो वह तपाकसे कह उठताहै — केवल मादकता । बस इतना अर्थ जरा-सा । जिस मनने होलीकी परिभाषा "केवल मादकता" के रूपमें दी वह मन अगर "रंगोंकी लेकर/ गलबहियां/" इतना नाचने लगे कि "आखोंमें गोकुल झूम उठे/ प्राणोंमें झूमें वृन्दावन" तो कौन-सा आश्चर्य है ।

"चिनार" की अंतिम पांच कविताएं उस भौगोलिक, प्राकृतिक और मानवीय परिवेशको समर्पित हैं जो कविका वर्तमान है, जिस हवा-पानी और आकाश में वह आज सांस ले रहाहै । यहाँ स्वर्ग लौट जानेकी राह भूल मणिपुरकी इस सौंदर्यमयी धरतीके—"आकर्षणकी मदिरामें/ डूबी नम्बूल/" नदी है, खम्ब थोइबी जैसे शाश्वत प्रेमी-युगलकी क्रीड़ाभूमि वह लोकताक झील हैं जो "जलकी झिलमिल/नील सतह पर/ तैराती परिहास मधुर/ गीतोंके धागोंसे/ निर्मित इलमें/ उलझाती मीन/ वायुके हाथ पातियां भेज/ बुलाते लहर यौवनाओंको ।" इसी झीलके आसपास कहीं "सुरबाला वह पवन पुष्पकी/चंगेरीपले डोलती" वह रूप-यौवन और मानवीय-प्रेमकी आदर्श बाला थोइबीभी है जिसे बादल-खम्ब-परस देता और वह धीरे धीरे अपने अंतरकी गाँठे खोलने लगतीहै ।

लेकिन यहाँ एक शहर इम्फाल भी तो है । मणि-

पुरकी राजधानी। एक अजूबा शहर जो अपने भीतर से ग्राम्यताकी गंध मिटाये बिना आधुनिक सभ्यता और आधुनिकतम फैशनके सारे आडम्बरोंसे आवेष्ठित ऊंघते ऊंघते भी हवामें नारे उछालने लगताहै और प्रेमिकाका मनुहार करते-करते विद्रोह के झण्डे लेकर सड़कोंपर निकल पड़ताहै।

इस प्रकार "चिनार" मे कवि देवराज अपने व्यक्तित्व और चिन्तन तथा संवेदना और कल्पनाके सारे उलझे बिखरे तारोंको समेटकर अपनी सम्पूर्णतामें उपस्थित दिखायी देतेहैं। इसमें युग-यथार्थ भी है और व्यक्ति यथार्थभी।

"चिनार" अपने कविको समकालीन हिन्दी कवियों की उस पंक्तिमें सम्माननीय स्थान दिलानेमें सक्षम होगा, जो आज चर्चाओं परिचर्चाओंके घेरेमें हैं। □

बबूलके साएमें मोगरा[1]

कवि : पृथ्वीनाथ मधुप

समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

कवि पृथ्वीनाथ 'मधुप' का यह चौथा काव्य-संग्रह है। इससे पूर्वके संग्रहोंके नाम हैं—वे मुखर क्षण, खोया चेहरा, खुली आंखकी दास्तान।

प्रस्तुत काव्य-संग्रहमें कविकी त्रिविध अनुभूतियां, विभिन्न मनःस्थितियां, बहुकोणीय भंगिमाएं उतरी-उभरीहै। इन कविताओंकी सबसे बड़ी विशेषता है इनका सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेशसे जुड़ाव। कविकी सबसे मुखर संचेतना संकलनके शीर्षकवाली, संकलन मे प्रस्तुत पहलीही कविता 'बबूलके साएमें मोगरा' द्वारा प्रकट हुईहै। कविकी संघर्षशीलता, पराजयकी मजबूरी और उस पराजयबोधसे उभरनेकी ललक इस प्रकार व्यक्त हुईहै—

कई वार/छिदा/बिंधी चेतना/कांपा/कराहा/फिर
भी/महक भेजता रहा/झकोरों द्वारा/बबूलके साये
में का/मोगरा।

कविने मिथकका प्रयोगभी उसके विविध आयामों को भाव और विचारके तलोंपर बहुत गहराईसे उरेहकर किमाहै। मिथको स्वात्ममें जगाकर अतीतके प्रतीकको वर्तमानसे जोड़ना उसकी विशेषता है—

नहीं/सांपोसे नहीं/समझौता/सांप बननेका/तुम/
प्रज्ज्वलित करो/यज्ञानल/अब देर नहीं/× × ×
जिन्दा हैं अबभी/मेरा जनमेजय।

यहांभी कविका स्वर पराजय-बोधसे उभरकर संघर्ष-चेतनाका वाहक बनाहै। कविको यह बोध है कि उसके कंधोंपर भारी जिम्मेदारी है। इस दायित्व को निभानेकी कसक और निभा न पानेका दर्द बार-बार उफन पड़ताहै—

आखिर मैं/कौमका मेमार हूं/क्या हुआ/गर तार-
तार हूं।

कवि यहभी सोचताहै कि एकान्त चिन्तनको सार्वजनिक, सुनियोजित कार्यक्रमके रूपमें कैसे परिणत किया जाये! एक प्रश्न यहभी है कि क्या यह दूसरा चरण बिशुद्ध कवि-कर्मका अंग है; अथवा वहां कवि कवि न रहकर राजनेता या इसी प्रकारकी कोई अन्य संज्ञा प्राप्त करके रह जाताहै। एक दर्द यहभी है कि उसके चारों ओर फैली धरतीपर साधनोंकी कमी नहीं है; 'बहुत-कुछ' है वहां! किन्तु यह 'बहुत-कुछ' कुछ ही लोगोंके हिस्सेकी चीज बनकर रह गयाहै। जबकभी बहुतोंकी आवश्यकताएं पूरी करनेका प्रयत्न किया जाताहै, वह 'बहुत-कुछ' सहसा गायब हो जाता है—

मैं/जबभी/कुम्हलाई कलियों/व झुलसी दूबको/देने
को होता/अंजूरीभर/फुहार/तो/क्यों हो जाती/
गंगा यमुना—/सरस्वती!

आजके दमघोंटू वातावरणकी टीस यदि बहुत गहरी है तो उसकी अभिव्यक्तिके लिए कविके पास उपयुक्त शब्दावली और तकनीक भी है—

रंग वो/खुशबू वो/मौसम वो/न जाने अब कहां/
फलक तक वो घुटन दी/बेइन्तिहा/बारूदने।

यह स्थिति एक ओर कश्मीरके वर्तमानका यथार्थ अंकन है तो दूसरी ओर सार्वभौमिक संवेदनासे जुड़ावभी व्यक्त करतीहै।

कवि, एक समाजशास्त्रीकी भांति, वातावरणकी विद्रूपताके लिए उत्तरदायी व्यक्तिकी पहचान करने का प्रयत्न करताहै और वहां वह अपने आपको भी क्षमा नहीं करता—

रीते घटकी/भाषा रूखी/अखरेगी निश्चय आंखों

---

[1] प्रका. : जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जागृति निकेतन, जम्मू-१८०००१। पृष्ठ : ११६; डिमा. ९२; मूल्य : ३५.०० रु.।

को/भरा हुआ घट/अपने हाथों/लुढ़के तो/कहिए क्या पीजे ?

वह देखताहै कि मूल्य खंडित हो रहेहैं; आस्थाएं ढह रहीहैं; आशाके सम्बल, शक्तिके आधार लुढ़क रहेहैं। वह जानताहै कि भगीरथ घोषणाएं कर रहेहैं। वह जानताहै कि भगीरथ घोषणाएं कर रहेहैं पर मुसीबत यह है कि—

कब/फाइलोंसे निकल/फूट पड़ेगी/गंगा ?

वह शास्ताकी शातिर चालको समझने और हर अकेलेके संगठित होनेकी बात करताहै लेकिन एक बार फिर अपने उपकरणोंकी असमर्थतासे क्षुब्ध होकर दर्द के बेपनाह समन्दरमें डूबने लगताहै—

मुट्ठियोंमें/घूंसे···/जो तुम सिर्फ/कागजमें लगाते हो/कागजको दिखातेहो/कागजका मारतेहो!!!

कवि मूलत: कश्मीरका निवासी है इसलिए कश्मीर घाटीकी वर्तमान स्थितिका तथ्यपरक चित्रण उसकी अनेक कविताओंमें दिखायी पड़ताहै। हां, यह दर्द प्रत्येक भारतवासी या प्रत्येक मनुष्यका दर्द भी हो सकताहै। निम्नलिखित हाइकूमें कवि कश्मीरकी स्थितिका वर्णन करता हुआ इसे समग्र राष्ट्र और मानवीय सांस्कृतिक संकटसे जोड़ देताहै—

बहुत उदास है/चिनारकी घनी छाया/पत्ते/षड्यन्त्र रच रहे/ जड़ोंको उखाड़नेका।

अन्तमें, पुनः, याद रखनाहै कि कवि निराशावादी नहीं है। उन्हें अपने राष्ट्रकी प्रज्ञापर विश्वास है—

आश्वस्त है चिनार/××× वह जानताहै/हवाओं व मौसमकी/बदमिजाजीसे ऊबे/लोग/उसकी छायामें आयेंगे। □

रजनीगन्धा[1]

रचयिता : आरसीप्रसाद सिंह

समीक्षक : डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

'रजनीगन्धा' कविमनीषी आरसीप्रसाद सिंहका, हिन्दीमें लिखित स्वच्छन्दतावादी प्रबन्ध काव्य है; क्योंकि इसमें उन्होंने स्वच्छन्द कथावस्तुका स्वच्छंदता से संयोजन कियाहै और पूरी रचना-प्रक्रियामें 'फन्तासी' या मिथकीय चेतनाका सहारा लियाहै। मोहक सौन्दर्य, रमणीय कल्पना और आवर्जक बिम्बों की त्रिवेणीसे संवलित इस काव्यमें, बहुपत्नीक प्रथाको मूल्य देनेवाले प्राचीन संस्कृत काव्य-वाङ्मय, विशेषत: नाटकोंके वस्तु-संयोजनका ही पुनरुद्भावन हुआहै।

उदाहरणार्थ, महाकवि कालिदासके प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' में जिस प्रकार धीर ललित नायक 'विक्रम' की प्रधानमहिषी दक्षिणनायिका 'देवी' अपने आर्यपुत्र विक्रमके प्रसादनके निमित्त उनके अन्य नायिका से प्रेम होनेपर भी उनके प्रति अनुकूल भाव बनाये रखतीहै, उसी प्रकार आरसीजीकी 'रजनीगन्धा' की कल्पित काव्यकथामें वाग्मती नदीके तटवर्ती श्रीनगर के युवराज शालिवाहनकी परिणीता वधू, कामपुर नरेशकी राजकुमारी अपराजिताने अपने पति धीर ललित नायक युवराजके चित्त-प्रसादनके निमित्त श्रीनगरकी पुरवधूकी पुत्री मल्लिका, जो वस्तुतः अपराजिताकी ही सगी मौसेरी बहन है, को उनकी (युवराजकी) दूसरी पत्नी बनानेमें स्वयं पौरोहित्य करके अपनेको अनुकूल दक्षिणनायिका सिद्ध करतीहै। इस प्रकार, इस काव्यकी कथावस्तुके मुख्य तीन अंगों --शालिवाहन, अपराजिता और मल्लिकामें मल्लिका की भावोत्तेजक भूमिका आविष्ट करनेवाली है और इस काव्यकी चरित्रनायिका भी नहीं है। कहना न होगा कि रहस्य-रोमांचका गुदगुदी और सिहरनसे भरा यह काव्य अवश्यही हिन्दी-काव्य पाठकोंके लिए नवीन आस्वादका परिवेषक बन गयाहै। स्वयं कविने इसे जो 'रहस्य-रोमांच, विस्मय-कौतूहल, दुस्साहस और असमंजसके भावोंसे ओतप्रोत नारी-मनोविज्ञान की एक मर्मस्पर्शी काव्यकथा' कहाहै, वह सर्वथा उपयुक्त है।

कविवर आरसीजीके यथाप्रकाशित प्रबन्धकाव्यों में सर्वोत्कृष्ट काव्यकृति 'रजनीगन्धा' उनके प्रौढि-प्रकर्षका द्योतक तो हैही, 'नन्ददास', 'संजीविनी', 'आरण्यक', और 'कुंवरसिंह' से प्रारम्भ करके 'रजनीगन्धा' तक पहुंचना उनके काव्य-विकासकी एक ऐसी यात्रा है, जो सातिशय सुखप्रद होनेके साथही श्रम-साध्य और प्रतिभा सापेक्ष है। 'रजनीगन्धा' आरसी जीकी काव्यसाधनाका अक्षर शिखर है। इसकी रचना उनके साधना-सातत्य और गहन चिन्तनकी व्युत्पन्नता का सूचक है।

---

[1] प्रका. : तारामण्डल, १३-बी, राजेन्द्रनगर, पटना-८०००१६। पृष्ठ : १६८; डिमा. ९०; मूल्य : ७५.०० रु.।

सात परिच्छेदोंवाली 'रजनीगन्धा' प्रबन्ध काव्य की रचना-यात्रा आधी शतीसे भी अधिक, लगभग तिरपन वर्षोंकी है। यह पहले वर्तमान शतीके पांचवें दशकमें 'नारी और नारी' नाम से यशोधन सम्पादक पण्डित रूपनारायण पाण्डेय द्वारा सम्पादित हिन्दीकी कालोत्तीर्ण मासिकी 'माधुरी' में छपीथी। सम्प्रति उसीका ततोऽधिक पल्लवित रूप 'रजनीगन्धा' के नाम से (रजनीगन्धाके प्रेमी कविको यही नाम सर्वाधिक पसन्द आया) नवकल्पताके साथ काव्य पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत हुईहै। इस सन्दर्भमें कविकी यथोपन्यस्त सोलह पृष्ठोंकी भूमिका साहित्येतिहासके अद्यावधि अनास्वादित अनेक आयामोंसे अन्वित होनेके कारण साग्रह पठनीय है। कुल मिलाकर, यह प्रबन्ध-कृति काव्यशक्तिके निदिध्यासनपूर्वक अभ्यास और भाषिक व्युत्पन्नताके साथ रची गयी एक प्रातिभ काव्य कृति है, जिसकी छान्दस पदशय्या महाप्राण निरालाकी ख्यात-विख्यात कविता 'जुहीकी कली' के समानही छन्दोबद्ध न होते हुए भी लयबद्ध है।

कविवर आरसीजीने 'रजनीगन्धा' की कथावस्तु को अपने चिन्तन, मनन, मीमांसा और कल्पना-विधान से गूढार्थ बनानेकी चेष्टा कीहै, तथापि इसका सामान्य साहित्यिक प्रतिपाद्य अर्थ है—कामकला या प्रेमकला। इस प्रसंगमें उन्होंने कवि जयदेवके 'गीतगोविन्द' से अनुप्राणित बिम्बमयी काव्यभाषाके माध्यमसे राजकुलोचित संगीत और कला-सज्जासे मण्डित आपात मधुर सांस्कृतिक वातावरणके निर्माणमें प्रीतिकर प्रतीक-सन्दर्भोंके साथही व्यतिरेक और उदात्त बिम्बों का सर्वाधिक विनियोग कियाहै, जिसमें अभिराम प्राकृतिक बिम्बोंका हृदयावर्जक विन्यास हुआहै। एक उदाहरण :

> 'विमद ताम्बूलकी/मृगनाभि-मिश्रित आन्तरिक/अत्युष्णतासे व्यग्र होकर/ऊंघता था कक्ष भी/चिर श्रान्त, मधु आलस्य में/युवराजके उन्नत शिखरपर/स्फीत मुक्ता-मालिका-सम/शरद-वनमें ओस दूर्वादलोंपर, ज्यों,/अमित श्रमकण विमल-उज्ज्वल/बिखर त्यों ही गये चारों ओर झलमल।' (पृष्ठ २)

'रजनीगन्धा' के सातों परिच्छेदोंकी कथावस्तुको संकेतित करनेवाले शीर्ष इस प्रकार हैं : १. ग्रहयोग; २. प्रिया और प्रेयसी; ३. तिमिराम्बरा; ४. कृष्णाभिसारिका; ५. असूर्यम्पश्या; ६. राजहठ और ७. नारी और नारी। इन सातों परिच्छेदोंमें काव्यकुशल एवं नारी मनोविज्ञानके मर्मज्ञ कवि शालिवाहन, अपराजिता और मल्लिकाकी द्वन्द्विल मानसिकताके संघर्ष और उन्मन्थनके विभिन्न आयामोंके उपस्थापनमें काम-मनोभावोंकी विचित्रताको बड़ी बारीकीसे लक्ष्य किया है।

पारद जैसी तरल-चपल और शहद जैसी मीठी मल्लिकाको सहज भावसे अपनी सपत्नीके रूपमें स्वीकार करके धीरा नायिका अपराजिताने अपनी उदारता, धीरता और बड़प्पनका ही प्रदर्शन किया है। पराजित होकर भी वह अपराजिता ही बनी रहतीहै। मल्लिकाके साथ युवराजके सार्वजनिक परिणयोत्सवके साथही इस प्रबन्ध काव्यकी पूर्णाहुति होतीहै। परिणयोत्सवके कर्मकाण्डकी एक झलक :

> 'जनता-जनार्दनकी उपस्थितिमें/भुवन-भास्कर स्वयं साक्षी बने;/अपराजिताने ही किया अपने करोंसे/वर-वधूका ग्रन्थि-बन्धन/मल्लिकाका कर लिया/युवराजने पाणि-ग्रहण;/अपराजिताने अन्य कर थामा।/लगे फेरे; भरी भांवर गई;/होमाग्निकी ज्वाला/घृताहुतिसे उठी उद्दीप्त-सी होकर!/पड़ी मन्दार-वरमाला/वधूके कण्ठमें अभिनव।' (पृ. १६६)।

यथाप्रसंग कविने वाग्मती नदीकी जो काव्य-कल्पना कीहै, उसके तीरके वर्णनमें निर्मित चाक्षुष बिम्बका स्वाभाविक सौन्दर्य दर्शनीय है : 'वाग्मतीके तीरपर एकान्त/जल भरती घटोंमें;/मचलकर चलतीं;/कलशके भारसे यौवन विनत;/परिहासभी करतीं परस्पर/हासिनी, प्रियभाषिणी।/कर स्नान कोई रूपसी/कंचनशिखा-सी वारि-सिंचित,/शुभ्र उज्ज्वल शरत-वारिद-पुंजमें/विद्युत्-कला-सी/नग्न-यौवन विरल-वसना/कांपती थर-थर शिशिरकी/तुहिन सद्यःस्नात ऊषा-सी।' (पृ. २१)।

इस प्रकार, रससिद्ध कविने 'रजनीगन्धा' में एक ओर जहां नाटकीय चाक्षुषता भरनेके लिए अनेक मनोरम कलात्मक दृश्य-निर्देशोंका विनियोग कियाहै, वहीं दूसरी ओर भंगीबहुल रत्यात्मक मांसल चाक्षुष बिम्बोंकी भी उत्तेजक सृष्टि कीहै। मल्लिकाके हृद्गत भाव-संघर्षका चित्रणभी अतिशय हृद्य है।

यहं कहना अप्रासंगिक न होगा कि काव्यकलाकी दृष्टिसे 'रजनीगन्धा' में अनेक ऐसी काव्यभाषिक एवं

तात्त्विक विशेषताएँ निहित हैं, जिनका स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है। जैसे समास और कारककी वक्रता, वर्ण-गुम्फ की योजना, भावोद्रेचक बिम्बविधान, जटिल अन्तर्द्वन्द्वका सूक्ष्म निरूपण, उदात्त और रमणीय वातावरणकी सौम्य सृष्टि, आत्मानुभूतिकी रसोच्छल अभिव्यक्ति आदि निश्चय ही ये काव्यतत्त्व इस प्रबन्ध काव्यके कलारंजित शिखर हैं।

छान्दस लय-निर्वाहके लिए अनेक स्थलोंपर कवि ने मात्रापूरक उपसर्गोंको जोड़कर असहज शब्दोंका विकुंचनभी उपस्थित कियाहै, जिससे तुन्दिल बने शब्द सार्थक होकर भी रसाघात उत्पन्न करतेहैं। 'विभय', 'विभौतिक', 'निरोदन', 'अनुदीर्ण', 'विनन्दित', 'प्रसीदित', 'विस्फीत', 'अभिदर्प', 'निगुंजित', 'निनन्दित' इत्यादि इसी कोटिके शब्द हैं। इस भाषिक अनुपयुक्तताके होते हुएभी कविकी काव्यभाषा सरल और तरल है, जो काव्यकलाके सर्वथा उपयुक्त है।

कुल मिलाकर, ललित कलाओंके तात्त्विक मिश्रण, विशेषत: काव्य और संगीतके पारस्परिक नैकट्यके स्वच्छन्द विनियोगसे उत्पन्न स्वच्छन्दतावाद (रोमाण्टिसिज्म) को कलाभूयिष्ठताके साथ उपन्यस्त करनेवाले आरसीजीकी यह स्वच्छन्दतावादी प्रबन्ध-कृति केवल कथ्य और शिल्पकी सुष्ठुताकी दृष्टिसे ही नहीं; वरन् नन्दतिक सौष्ठवकी दृष्टिसे भी एक कलावरेण्य काव्यकृति है, इसमें सन्देह नहीं ◻

सतहसे उठते हुए[1]

कवि : डॉ. एन. सिंह

समीक्षक : डॉ. शिवचन्द उमेश

प्रस्तुत नव्यतम काव्य-संग्रहमें १९७९ के बादके एक दशककी कविताएँ है। कविने न केवल १९७५का आपात्काल ही देखाहै बल्कि १९७७ का जनाक्रोश और जनतापार्टी द्वारा लायी गयी दूसरी आजादी और उसका हश्र भी देखाहै। देखाहै—लोकनायक जयप्रकाशके चेलोंके आजके विभिन्न नये रूप, साथही देखाहै आतंकवादकी आगमें जलते हुए देशके दो-दो प्रधानमंत्रियोंको।

भारतीय जीवनमें व्याप्त आजकी हताशा, घुटन, संत्रास, मूल्योंके विघटन, भ्रष्टाचार, बेकारी आदि वर्तमान समस्याओंसे कवि अपना दामन नहीं बचा सकाहै, कारण वह इन समस्याओंका मौन-द्रष्टा ही नहीं अपितु स्वयं भोक्ताभी है। सतहके आदमीकी उपेक्षा, अवहेलना और शोषणका शिकार तो होना ही पड़ताहै। जब वह सतहसे उठना चाहताहै उसे भ्रष्टाचारका सामना करना पड़ताहै। डॉ. सिंहका जीवन संघर्षोंकी वीरगाथा एवं और दुःखोंका महाकाव्य है।

सतहसे उठकर कविने जान लियाहै कि धरती पर किये जानेवाले श्रममें उसका भी हिस्सा है। अत: श्रमके वास्तविक भागीदारोंको कवि कभी नहीं भूलता। यही कारण है कि इस संग्रहकी कविताओंसे आम आदमी कभी ओझल नहीं होता। 'लकीरें रेत पर', 'समुद्र किनारेकी जिन्दगी', 'सतहसे उठते हुए', 'झुर्रियोंमें अंकित है', आदि कविताएँ इसी आम-आदमीके संघर्षों और संवेदनाओंसे सम्बद्ध हैं।

यदि आजके राजनीतिक 'दोगलेपन' पर उनकी सहज अभिव्यक्ति है :

"एक बार तुम पहुंचा दो हमको संसद तक।
पांच बरस तक फिर तो हम ना उल्टे पांव फिरे॥"

आज राजनेताओंकी कथनी और करनीमें आकाश-धरतीका अन्तर है। योजनाओंकी घोषणाएँ होती रहतीहैं और वे फाइलोंमें दबकर रह जातीहैं। दूसरी ओर नव-निर्माणोंकी प्रत्याशामें गांवके गांव उजड़ते जा रहेहैं। आजके इस परिवेशको चित्रित करती हुई कविकी यें सार्थक पंक्तियां हैं :

"दफ्तरमें फाइल, फाइलमें बन्द योजनाएं सारी।
निर्माणोंकी बाट जोहते उजड़ गया है गांव॥
आशाओंके घाट न पहुंचा उपलब्धिकी नाव।"

या

"भाषणोंमें कह रहे थे जो बुरी है शराब।
मैक़दे में जाम बन वे, खनकने लगते हैं लोग॥"

विधि-विधानों और संविधान पर टिप्पणी है :

"उड़ रहीहैं चिंदियां कानूनकी।
धार पैनी हो रही नाखूनकी॥"

और

"जुल्म बढ़ते जा रहेहैं भावसे।
राजनीति हाट है परचूनकी॥"

---

[1] प्रका. : राज पब्लिशिंग हाउस, ९/५१२३, पुराना सीलमपुर पूर्व, दिल्ली-११००३१। पृष्ठ : ८०; बिमा. ९१; मूल्य : ४०.०० रु.।

जब कानूनकी धज्जियां उड़ने लगें, पानीकी तरह खून सड़कोंपर बहने लगे, पैसेपर अस्मत और ईमान बिकने लगें, जब महल बनानेवालोंका झोपड़ा भी सुरक्षित न हो तब यह जानते हुएभी कि व्यवस्थाके ठेकेदार कविकी जुबान खींच लेंगे, नवीनताके प्रति आस्थावान् कवि आम-आदमीका आह्वान करते हुए लिखताहै—

"उन सभी शोलोंको अब मिलकर हवा दें।
जो छिपे दिलमें सुलगते ही रहे हैं॥"

× × ×

"कुछ करें हम कि वे भी खबरदार हों।
अब कसो भी कमर इस समरके लिए॥"

× × ×

"जागरणके वास्ते सुनो कलम मशाल है।
बस इसे विलासका न माध्यम बनाइये॥"

सम्पूर्ण काव्य-संग्रह राजनीतिक खोखलेपन आम आदमीके शोषण और वर्तमान युगमें आदर्शोंके अवमूल्यनका यह अभिधावाची जीवन्त दस्तावेज है। ☐

उपन्यास

औरत[1]

उपन्यासकार : शिवप्रसाद सिंह
समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

डॉ. शिवप्रमाद सिंह हिन्दीके मूर्धन्य उपन्यासकार है। उनका बहुचर्चित उपन्यास 'अलग अलग वैतरणी' की गणना आंचलिक उपन्यासोंमें की गयीहै, परन्तु उसमें करैता ग्रामांचलके माध्यमसे धरती और मनुष्यके जिन बनते-बिगड़ते सम्बन्धोंका चित्रण किया गयाहै, वे जितने स्थानीय हैं उससे कहीं अधिक सार्वभौम है। व्यास सम्मानसे समलंकृत 'नीला चांद' उपन्याम हिन्दीके उन इने-गिने ऐतिहासिक उपन्यासों में परिगणित कियाजा सकताहै, जो केवल बाह्य इतिवृत्त तक सीमित न रहकर युगके हृत्स्पन्दनको पकड़ने का प्रयास करतेहैं। 'नीलाचांद' का प्रतीकार्थ है, मनुष्यकी अमोघ इच्छा शक्ति। ग्यारहवीं शताब्दीके काशी जनपदमें केन्द्रित इस उपन्यासका चरितनायक कीरत वरमा कहताहै "संकटमें न भगवानका नाम-जप काम आताहै, न रुद्राक्षकी स्फटिककी मालाएं सहायक होतीहै। बस सहायक एक वस्तु होतीहै, वह हैं इच्छा शक्तिकी दृढ़ता। यह उदात्त जीवन-दृष्टि इस ऐतिहासिक उपन्यासको एक उच्चतर सांस्कृतिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर देतीहै।

"औरत' में डॉ. शिवप्रसाद सिंहने पूर्वांचलके नाबदानमें स्थित करमूपुरा क्षेत्रकी सोनवां, रूपवा, सुलखिया और चन्द्रा जैसी नारियोंके जीवनकी व्यथा और बिडम्बनाको इस उपन्यासके चरितनायक शिवेन्द्र के माध्यमसे विद्रोह और सक्रिय संघर्षके स्तरपर चित्रित करनेका प्रयास कियाहै; उपन्यासकारके शब्दों में "यह नारीकी पाप-कथा नहीं, ताप कथा है।" चाहे नगर हो या ग्राम, हिन्दू हो या मुसलमान और अभिजात समाज हो या दलित वर्ग, "नारीकी दीनता, उसकी नियति, उसकी ट्रेजेडी एक जैसी है। ..किसी के मनमें औरतके लिए जगह नहीं है।" परन्तु, इस

---

[1] प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : २१२; डिमा. ९२; मूल्य : ६०.०० रु.।

उपन्यासका नायक शिवेन्द्र अपनेही गांवकी एक दुसाध लड़की सोनवांको अपने अन्तर्मनसे प्यार करताहै। वह उसकी बाल-संगिनी थी, जो बादमें उसके सपनोंपर छा गयीथी। वह उससे विवाह करनेको प्रस्तुत था। परन्तु गांवका जमींदार सोबरन राय एक ओर उसका 'गॉड फादर' बनताहै और दूसरी ओर उसके लठैत उस दलित कन्याका झोटा पकड़कर उसे घसीटते हुए जमीदारकी कोठीमें ले जातेहैं। वहां सोबरनके बलात्कार से सोनवां गर्भिणी हो जातीहै। शिवेन्द्र उस नरपशु के गर्भको भी अपना मानकर उसकी मान रक्षाके लिए ही प्रस्तुत नहीं होता, उसे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करनेके लिए भी तैयार हो जाताहै। परन्तु सोनवां अब अपनेको शिवेन्द्रके योग्य न माननेके कारण आत्महत्या कर लेतीहै। उसने मरनेके पूर्व एक सवाल किया था—'क्या शिवेन्द्र तीन साल पहले आकर उसे सोबरनके पंजेसे बचा नहीं सकताथा ?" परन्तु, शिबू जो यथार्थके धरातलपर चलनेका अभ्यस्त रहाहै, अपने बचाव में कहताहै "बिना पढ़ाई पूरी किये, बिना नौकरी पाये, उसे कहां ले जाता ?" सोनिया सदाके लिए चली जातीहैं; परन्तु अपनी प्रणय-पूजिता नारीकी इस दुर्गतिको वह कभी भूल नहीं पाता। औरतके साथ अत्याचार करनेवाले नराधमोंके प्रति उसका आक्रोश बादलोंकी तरह गुमड़कर ही नहीं रह जाता, वज्र बनकर टूट भी पड़ताहै। "बहुत-से कालियानाग पैदा हो गयेहैं करमूपुरा जनपदमें। हम और तुम मुहुआर बनकर नाग नचैया करेंगे।" सोबरनको वह कदम-कदमपर ललकारताहै; उसको फंसानेके लिए पुलिसका जाल बिछाताहै; उसे अदालतके कठघरेमें खड़ा करनेकी पूरी तैयारी करताहै। एक बार वह मधुमक्खीके छत्तेको छेड़कर उनकी पूरी फौजका सोबरन और उसके लठैतों पर हमला करा देताहै। उनके डंककी नोक टूटकर इन आततायियोंके शरीरमें ही रहतीहै और उन्हें नारकीय कष्ट भोगनेके लिए विवश करतीहै। दूसरी बार, वह सोबरनके कमरेमें रोशनदानसे सरकाकर एक गेहुंअन सांपको उसेर देताहै जो चारपाईपर पड़े हुए सोबरनकी रजाईपर जा बैठताहै। भयसे उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो जाताहैं, आंखें पथरा जातीहै और इसके बार जो कुछ होताहै वह एक साथ भयानक और बीभत्स रसकी पराकाष्ठाको संकेतित कर देताहै। उसकी दुर्गतिको देखकर एक गांववाला कहताहै "अहसन डेकर-डेकर केर कलपते हमने कोई जानवरको भी नहीं देखा अपनी जिनगानीमें। हाँ, कसाई जैसे रेत रहा हो और गोमाता छटपटाये, वैसे साला तड़प रहाथा।" वह स्वाभाविक ही है कि सोबरन जैसे नृशंस और जुल्मी जमींदारकी नारकीय दुर्गतिको देखकर सबके मनमें प्रसन्नताकी लहर उठती है। उपन्यासके पाठकोंका सात्त्विक आक्रोशभी संतृप्ति का अनुभव करताहै। शिवेन्द्र अपने इन करतबोंके द्वारा अपने इस संकल्पकी परिपूर्तिसे सन्तुष्ट हो सकता है ' "तुम अगर गरीब और मासूम औरतोंके लिए नरक बना सकतेहो तो मैं तुम्हारे लिए कुम्भीपाक बनाऊंगा।" परन्तु, यहभी तय है कि सोबरन जैसे दुष्टोंका दलन करनेमें ये मधुमक्खियां और गेहुंअन सांप एक सीमा तक ही कारगर हो सकतेहैं। अन्याय पर आधारित इस व्यवस्थाको जड़से उखाड़नेके लिए तो एक सुनिर्धारित कार्यक्रमके आधारपर जनगणकी संगठित शक्तिको ही संघर्षरत होना पड़ेगा।

सोनवांके प्रति शिवेन्द्रके उत्कट अनुरागके कारण उसकी आत्महत्याने 'औरत' के चरितनायकको बड़ी गहराईसे उद्वेलित कियाहैं। उसके प्रति अपने प्रणयाकर्षणका स्मरण करते हुए वह जैसे कविताके पंखोंपर उड़ने लगताहै: "सोनवां गदराए धान-खेतोंकी सुगंध थी। अधपके हेमन्ती वर्णके धानोंकी बालियोंमें भरे कचरसका स्रोत थी। वैसा स्वादिष्ट नारियलके पानी जैसा सुगंधित रस केवल उसीके शरीरके मधुचक्रोंमें शहद जैसा भर सकताथा।" सोनवांपर पर किये गये अत्याचार और उसकी आत्महत्या शिवेन्द्रके मनको गहरे अवसाद और तीव्र प्रतिशोधके भावसे भर देतीहै। वह अपने अंतरंग मित्रके समक्ष अपना हृदय खोलकर कहताहै' "प्रेंमू, में जिस तारेको प्यार करताथा वह तो आसमानसे टूटकर धरतीमें विलीन होगया। मैं हमेशा दूसरोंके द्वारपर ही दीपक जलाता रहाहूं। मेरे घरका द्वार तो सदाके लिए अंधेरेमें डूब गयाहै।" वह व्यथित होकरभी कुण्ठित नहीं होता। उसके जीवनमें रसके स्रोत सूख जातेहैं, पर कर्तव्यकी पुकार उसे औरभी प्रखर होकर सुनायी पड़तीहै। वह नारीके अपमानको किसीभी रूपमें सहन नहीं कर सकता। सोनवांके बाद, सोबरन जब हरिजन कयान सुलखियाको अपनी काम-बुभुक्षाकी शिकार बनाताहै ता उसके प्रतिशोधके लिए भी वह कुछ उठा नहीं रखता। वह अपने आंसू तो पी जाताहै परन्तु किसी औरतका आंखोंमें आंसू नहीं देख सकता। अन्यायके प्रतिकारमें वह निष्करुण ही नहीं, क्रूर भी है। जो क्षमाकी बात कहतेहैं, उनके आदर्शवादपर वह थूकता है। उसकी तो एक ही प्रतिज्ञा है "इस नीच आदमीने अपनी जांघोंके सुखके लिए कितनी गरीब औरतोंके साथ

बलात्कार कियाहै मैं उन्हीं जांघोंमें सुई चुभा-चुमाकर उसे मारूंगा ।" क्षमावादियोंको आड़े हाथ लेते हुए वह पूछताहै "जब वह हंटरसे हरिजन औरतोंको पिटवा रहाथा तो कोई था माईका लाल इस गांवमें जो उनकी दर्दभरी चीत्कार सुनकर बचानेके लिए आयाहो ?

नारीके प्रति शिवेन्द्रका सहज आकर्षण रहाहै, परन्तु इसमें यौन भावकी अपेक्षा पूजा भावका ही प्राधान्य रहाहै । नारी उसके लिए हमेशा दाता रही है । सोनवां शिवेन्द्रके लिए अपने तन-मनमें उद्दाम आकर्षणका अनुभव करतीथी । उससे मिलनेके लिए वह समुद्रकी तरह उफनतीथी । उसीके शब्दोंमें "मेरा सारा शरीर शिबूसे मिलनेके लिए तड़पताथा, मेरी चोलीके बन्द टूट-टूट जातेथे ।" परन्तु शिबूने केवल एक बार उसे अपने अंकवारमें भराथा । सोनवांके बाद शिवेन्द्रके जीवनमें एक और औरत आतीहै—उसके अभिन्न मित्र कल्पनाथकी पत्नी चन्द्रा । उसके अपने निकटतम सम्बन्धी ही सम्पत्तिके लोभसे उसके पतिकी हत्या करवा देतेहैं और शिवेन्द्रके साथ उसके सम्बन्धों को लेकर कुत्सित प्रवाद फैलानेमें भी संकोच नहीं करते । परन्तु, वह इस सारे लोकापवाद और विरोध के तूफानको झेलकर भी चन्द्रा और उसके परिवारके साथ कंधेसे कंधा लगाकर खड़ा होताहै । वह अविचलित रहकर इन सारी विडम्बनाओंके विषको पी जाताहै । चन्द्राका कृतज्ञ मन उसके सुखका साथी तो नहीं बनना चाहता परन्तु उसके बालोंमें तेल डालकर पल भरके लिए उसके दुःखको हलका करना चाहता है । परन्तु, शिवेन्द्रको यह भी स्वीकार नहीं होता । वह यह मान ही नहीं पाता कि 'नारीके अपना होने का मतलब चुम्बन, हरारत या शारीरिक सम्पर्क' है । "नारी क्या पुरुषकी केवल भोग्या होतीहै ? वहभी शरीर तक सीमित ? नहीं, रिसर्चर । तुमने वह अमृत कभी नहीं चखा जो शरीरके तापको लांघकर प्यार को शरीरसे अलग मनके धरातलपर ले जाताहै ।" डॉ. शिवप्रसाद सिंहके आलोच्य उपन्यासमें नारीकी युग-युगसे चली आती हुई कष्ट-कथाके प्रति इतनी आकुल संवेदना और इतना उबलता हुआ विद्रोह है कि वह अनायासही उसे एक हाड़-मांसकी पुतलीके स्तरसे ऊपर उठाकर दैवी पवित्रताकी आभासे अभिमण्डित कर देताहै । उपन्यासकारने इस तथ्यको भी एकाधिक बार रेखांकित कियाहै कि नारीको देवी बनाकर उसे प्रवंचित ही किया गयाहै : ...."तुम मेरी प्रेरणा हो, तुम मेरे मनकी रानी हो, सुनकर, वह ऐसी लट्टू हो जातीहै कि जानवरके हाथोंमें अपनेको सौंप देतीहै और उसे प्रेरणाकी देवी कहनेवाले असभ्य, धोखेबाज और चालाक लोग सब कुछ भोगकर गन्नेका रस चूसकर उसे कूड़ेदानमें फेंक देतेहैं ।" नारीको जब बहुत ऊंचे पैडेस्टलपर बिठा दिया जाताहै तो उससे नीचे उतरने की कल्पनाके साथही उसकी आंखोंका पानी उतरने लगताहै और उतनी ऊंचाईपर बैठे रहनेमें उसकी सांसे उखड़ने लगतीहैं । डॉ. शिवप्रसाद सिंहने 'औरत' में नारी-निर्यातनके प्रति उग्र विरोध, विद्रोह और सक्रिय प्रतिरोधका परिचय देते हुएभी उसे कुछ ऐसी ही अगम्य ऊंचाइयोंपर प्रतिष्ठित कर दियाहै ।

संसारमें चाहे कहींभी युद्ध हो, साम्प्रदायिक संघर्ष हो या और कोई उत्पात हो, सबसे भीषण संकट नारीको ही झेलना पड़ताहै, सबसे भयंकर दुर्गति उसीकी होतीहै । इस संकटसे मुक्त होनेके लिए नारी को संगठित रूपसे अपने अंतस्तेजको जागृत करना होगा । अपने शरीरको ड्राइंग रूमकी तरह सजाकर रखनेवाली नारी पुरुषकी लोलुप दृष्टिसे अपनेको कैसे बचा सकतीहै ? "एकदम सतेज आधुनिका यह सब दिखावा तो दूर अपने शरीरपर ऐसा तिनकाभी धारण नहीं कर सकती जिसपर उसके प्रेम या फिर भ्रमका हक न हो !" क्या सजी-धजी आधुनिकाएं इस चुनौती को स्वीकार कर सकेंगी ? यदि नहीं तो चाहे एक नहीं सौ प्रतिभा बंसल पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट बन जायें, वे अपनी बहनोंकी तो क्या अपनी ही रक्षा नहीं कर सकेंगी । जिस युवकसे वह शादी करना चाहतीथी, उसने उसके कर्म-क्षेत्रमें प्रवेश करते ही यह कहकर उसका पाणिग्रहण करना अस्वीकार कर दिया कि घरसे बाहर निकलकर काम करनेवाली हर औरत चरित्रहीन होतीहै । जब उसने अपने क्षेत्रके चुने हुए कुकर्मियों और आततायियोंपर हाथ डालना शुरु किया तो उसके अधिकारियोंनेही उसे बनारससे उठाकर गोरखपुर फेंक दिया । बंसलके चलाये हुए हथियार लौटकर उसीपर बार करने लगे । 'औरत' की सामाजिक-आर्थिक स्थितियोंमें बुनियादी बदलाव लाये बिना उसकी अस्मिताको दीजा रही चुनौतियोंका सफलतापूर्वक सामना किया ही नहीं जा सकता ।

'औरत' में डॉ. शिवप्रसाद सिंहकी दृष्टि केवल शिवेन्द्र और उससे संबद्ध सोनवां, रूपवा, सुलखिया और चंद्रा जैसे नारी-चरित्रोंपर ही केन्द्रित नहीं हैं, उसने पूर्वांचलके पूरे ग्रामीण परिवेशको भी उसकी सम्पूर्ण यथार्थताके साथ उभारनेका प्रयास कियाहै । करमूपुरा क्षेत्रके नाबदानसे जो दुर्गन्ध उठ रहीहै,

उसपर उपन्यासकारने इत्रसे भींगा हुआ रेशमी रूमाल नहीं रखाहै। 'शराफत तो गांवमें ही जनमीथी। लाखों गांवोंमें शराफतके पलने टंगे रहतेथे। आज उस शराफतका गला, शहरसे भी अधिक घिनौने तरीकेसे गांवमें घोंटाजा रहाहै। यहाँ पैसेके लिए मनुष्यही नहीं, मनुष्यताका खून भी कियाजा सकताहै। जातिवादकी जड़ें गाँवोंमें गहरी घुसी हुईहैं क्योंकि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियोंको लोग कोटकी तरह पहने ही नहीं, चमड़ेकी तरह चिपटाये हुए रहतेहैं। जातिवादके कोढ़ने राजनीतिने खाजकी तरह घुसकर उसके नखदन्तको औरभी पैना कर दियाहै। कुछ महाबली लाठी और थैलीके बलपर अपनी-अपनी जातिके वोट-बैंकपर कब्जा जमाये हुए बैठेहैं और उन्हींके इशारेपर सरकारके कलपुर्जे हिलतेहैं। ये अपने पैसे और प्रभावके बलपर सरकारी अधिकारियोंको खरीदतेहैं और प्रतिभा बंसलकी तरह जो बिकनेसे इन्कार करतेहैं, उनको सब तरहका दण्ड भुगतनेके लिए तैयार रहना पड़ताहै। औरत तो चाहे किसीभी जातिकी हो उसकी दुर्गति ही होतीहै और सुलखिया जैसी दलित जातिकी औरतें तो जैसे बड़े लोगोंकी कामाग्निमें स्वाहा होनेके लिए ही जन्म लेतीहैं। 'गरीबकी गायको सब दूहना चाहतेहैं। कहनेको जमींदारी प्रथा समाप्त हो गयीहै; परन्तु आजभी सोबरन जैसे जमींदार छुटे सांडकी तरह दहाड़ते हुए फिर रहे हैं। पहले ये अंग्रेजोंके पिट्ठू थे तो अब खादीकी रामनामी चादर ओढ़कर मंत्रियोंके बगलगीर हो गयेहैं। शिवेन्द्र कहताहै नारी-शोषकोंको खुलेआम चौराहेपर फांसी दे दी जाये तो एक सालमें यह निकृष्टतम कुकर्म बन्द हो जाये।" परन्तु, उनको फांसी दे कौन? वे तो स्वयं अपने हाथमें दूसरोंके लिए फांसीका फन्दा थामे हुएहैं। पिछले दो दशकोंमें कई पार्टियोंकी सरकारें आयी-गयीं; परन्तु, सत्ता-प्रतिष्ठानके मूल चरित्रमें कहीं कोई परिवर्तन उपस्थित नहीं हुआ। इसीलिए, शिवेन्द्र अपने लिए शाश्वत विपक्षमें रहनेके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए प्रतिभा बंसलसे कहता है "जब मेरे मनका कोई दल सत्तामें आ जायेगा तो विपक्ष सत्ता पा जायेगा। लेकिन, शिवेन्द्र उस समय विपक्षके साथ चला जायेगा, यह देखने कि दोनोंमें सिर्फ नामका ही फर्क है या कामका भी। कौन जनताका है और कौन चोरों और तस्करोंका? इस प्रकार शिवेन्द्र 'शाश्वत विपक्ष' के नामपर सदा 'जनताके द्वारका प्रहरी' बना रहना चाहताहै। आजके युग-सन्दर्भमें शाश्वत विपक्षकी इस अवधारणामें कुछ संगति प्रतीत हो सकतीहै परन्तु इसे शाश्वत सत्यके रूपमें तो स्वीकार नहीं कियाजा सकता।

'अलग अलग वैतरणी' का बिपिन उपन्यासके छोर पर आकर कहताहै 'मारो साले गांवको गोली यह एक जीता-जागता नरक है।' 'औरत' का करमूपुरा क्षेत्रभी नरकसे बदलकर स्वर्ग नहीं बन गयाहै। विपिन गांवसे चला जाताहै तो पांच दिनके प्रवासके बाद शिवेन्द्रभी कर्मनाशा स्टेशनपर मुगलसराय जानेवाली गाड़ीपर चढ़ता हुआ दिखायी पड़ताहै। रिसर्चरकी तरह वह गांवको 'अलविदा नहीं कहता।' मांको भी अलविदा कहा जाताहै कभी!" परन्तु, उपन्यासकी इस अन्तिम पंक्तिसे ध्वनित होनेवाला आशावाद अन्तत: खोखला ही प्रतीत होताहै। शिवेन्द्रने कहाथा कि वह सोबरनको टिकटीपर चढ़ा कर ही गांव छोड़ेगा; परन्तु, मधुमक्खियों, गेहुंअन सांप और प्रतिभा बंसलके बूट प्रहारके बाद भी सोवरनका पराभव क्षणिक और अस्थायी प्रतीत होताहै। उपन्यासकारने सोवरनके रूपमें प्रतिपक्षको, जो पैसेके बलपर नौकरशाहीको ही नहीं, राजनीतिक दलोंको भी अपने बचावमें खड़ा करनेमें समर्थ है, काफी अशक्त रूपमें प्रस्तुत कियाहै। शिवेन्द्रने अपने पाँच दिनके प्रवासमें उसे जितनी आसानीसे निरस्त कर दियाहै, वह स्थिति के सही आकलनकी अपेक्षा उसके सरलीकरणपर आधारित है। प्रतिपक्षकी यह दुर्बल परिस्थिति कहीं पूरे उपन्यासकी परिकल्पनामें ही दरारें डाल देतीहैं। ये सवाल अपनी जगहपर खड़ेही रहतेहैं; पर, इन सबके बावजूद नारीकी अस्मिताके प्रति ऐसा गहरा लगाव और उसका ऐसा तीव्र उद्घोष हिन्दीके किसी अन्य उपन्यासमें सुनायी नहीं पड़ता। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। □

पर्यटन[1]

[कन्नड़से अनूदित]

उपन्यासकार : बी. वी. बैंकुण्ठ राजू
अनुवादक . प्रो. धरणेन्द्र कुरकुरी
समीक्षक : डॉ. सुमंगला मुम्मिगट्टी

प्रस्तुत उपन्यास कन्नड़के प्रमुख लेखक बी. वी.

---

[1] प्रका. : अयन प्रकाशन, १०४ ए/११८ रामबाग, कानपुर। पृष्ठ : १५०; डिमा. ९२; मूल्य : ६५.०० रु.;

वैंकुण्ठराजूका चौथा उपन्यास है। इनके प्रथम तीन उपन्यास हैं—अन्त्य, आक्रमण और उद्भव। कन्नड़में उपन्यासका प्रकाशन यद्यपि १९७८ में हुआ, परन्तु हिन्दी अनुवाद १९९२ में प्रकाशित हुआ। दोनों सत्तर के बाद प्रकाशित हुएहैं, परन्तु उपन्यासकी कथा स्वतंत्रता प्राप्तिके आसपासकी है।

उपन्यासकारने भूमिकामें सूचना दीहै कि यह उपन्यास 'सुधा' (पत्रिका) कार्यालयके कलाकार श्री जी. के. 'सत्य' के जीवनकी एक सत्य घटनापर आधारित हैं। सत्य जब पांच वर्षके थे, तब उनके पिता खण्डोजीराव किसी कारणवश अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर चले गयेथे। वे पच्चीस वर्ष बाद लौटे। ···आत्मीय होनेके कारण उपन्यासकारने उन्हींसे उनके प्रवास कालके सम्बन्धमें सूचनाएं प्राप्त कीं। उपन्यासकारको इस घटनाक्रमकी जिस वस्तुने सबसे अधिक आकर्षित किया, वह थी भावसार क्षेत्रीय खण्डोजीराव का दिल्लीमें परिस्थितिके दबावके कारण ब्राह्मण बन जाना। 'पर्यटन' इसी विशिष्ट घटनाका परिणाम है।

उपन्यासका नायक कृष्णोजीराव ही खण्डोजीराव हैं। अस्मितारहित व्यक्तित्वहीन गरीब कृष्णोजीराव अपने एक मित्रकी साइकिल चुराकर उसे गिरवी रखना चाहताहै और चोरीके आरोपमें फंस जाताहै। बचनेके लिए वह पत्नी और बच्चोंको छोड़कर आशा-निराशा की भूलभुलैयामें भटक जाताहै। पुलिसको देखते ही यमदर्शन जैसा अनुभव करता हुआ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भागता-छिपता फिरताहै। पर पेटकी मांगभी तो है, भूख शान्त करनेके लिए किसीभी अवसरका खूब लाभ उठाताहै। दिल्ली पहुंचकर नारायणमूर्तिकी सहायतासे 'सौथ इंडियन असोसियेशन', में लिपिक बनताहै। असोसियेशनके विश्वनाथ शास्त्री आदिकी कृपासे भावसार क्षेत्रीय कृष्णोजीराव ब्राह्मण कृष्णशास्त्री बनताहै। इस अब्राह्मणको ब्राह्मण बनानेके लिए बिधिवत् उपनयन संस्कार तथा गुरुदीक्षा दिलवायी जातीहै। इस प्रकार तमिल वाधार बनकर कृष्ण शास्त्री अपर कर्म करने लगताहै। अब्राह्मण कृष्णोजीरावका ब्राह्मण बनते समय उत्पन्न मानसिक संघर्ष, शंकाएं एवं रूढ़-परम्परागत खोखली मान्यताओंको नकारकर नये सुधारका तर्कसंगत विश्लेषण उपन्यासकारकी प्रतिभा व सुलझे हुए विचारोंका प्रमाण है। इस सन्दर्भमें वर्णाश्रम धर्मका सही अर्थ समझानेका लेखकीय प्रयास रोचक और आकर्षक है। साथही ब्राह्मण नामधारी लोगोंकी कमजोरियोंपर भी प्रकाश डाला गयाहै।···अपनी निरुद्देश्य भटकनके अन्तमें परिस्थितियोंका शिकार और अपने दायित्वको दुत्कार कर भागा हुआ कृष्णोजीराव अपनोंमें आत्मीयताकी खोजका प्रयास करताहै, पर असफल रहताहै। अतएव किसीसे कहे बिना एकदिन वह फिर निरुद्देश्य चल देताहै इस धारणाके साथ कि 'चार दीवारीके अन्दर अकेले रहनेकी अपेक्षा खुले मैदानमें अकेला रहना अच्छा है। अब अपना कोई नहीं, अब अपनी कोई जाति भाषा नहीं।' मानो उससे जीवनका शाश्वत दार्शनिक सत्य—'जीव अकेला आताहै और अकेला चला जाताहै'—का साक्षात्कार कर लियाहै।

समीक्ष्य कृतिका प्रथम प्रभाव यह पड़ताहै कि कृष्णोजीरावकी अनावश्यक उलझनें जीवन एवं तज्जन्य भटकन अथवा 'पर्यटन' ही उपन्यासकी धुरी है। उपन्यासका मूल उत्स वास्तवमें वर्णाश्रम धर्मका सही प्रतिपादन ही है। लेखकने अन्य प्रासंगिक समस्याओंका रोचक चित्रण कियाहै। आर्थिक संकटकी विकृति, अनमेल विवाह व उसका परिणाम, देशका बंटवारा व शरणार्थी समस्या, स्वतंत्रता-सेनानीके नाम से सत्ताकी कुर्सीपर गिद्धकी आँख गड़ाये रंगप्पनायक जैसे स्वार्थियोंकी दयनीय स्थिति, लुटेरे वाणीपुरके शंकरानन्द तीर्थस्वामी जैसे दाम्भिकोंका पाखण्डपूर्ण व्यवहार और उनके द्वारा अबोध जनताका ठगा जाना आदि।

मूल कन्नड़ उपन्यासकी कथावस्तु यथावत् अनूदित हुईहै। पढ़ते समय यह अनुभव ही नहीं होता कि यह अनुवाद हैं। इतनी गंभीरता अनूदित कृतिमें पायी जातीहै। मूलकथाके साथ अनुवादकी तुलना करनेपर ग्यारहवां अध्याय अधूरा लगताहै और प्रतीत होताहै यह अन्तिम अध्याय बीचमें छोड़ दिया गयाहैं। इसके तीन कारण हो सकतेहैं: (१) अनुवादककी असावधानी, (२) अनामधेय संन्यासीकी जीवनगाथा के प्रसंगको छोड़ देनेका अभीष्ट, क्योंकि कृष्णोजीराव तथा संन्यासीके जीवनमें कुछ सीमा तक समानता है। एक ही विशेष असामनता पायी जातीहै—संन्यासी सचको स्वीकारनेमें हिचकिचाता नहीं और अपने जीवनके सम्बन्धमें स्वयं निर्णय लेनेकी क्षमता रखता है। कृष्णोजीरावमें इन गुणोंका अथवा इस प्रकारकी क्षमताका अभाव है। यहभी सम्भव है कि मूलकथाके दोहरानेसे उपन्यासकी कथामें उत्पन्न शिथिलताको दूर करनेका विचार रहाहो। और (३) जिस अनामधेय संन्यासीकी बातोंसे कृष्णोजीराव अत्यधिक प्रभावित होताहै उसे तथा उस संन्यासीके जीवनके कड़वे अनुभव

की, उसकी पत्नीके पतनकी अभिव्यक्ति, संभवतः अनुवादककी भायी नहीं, क्योंकि उससे संन्यासीके प्रभावी व्यक्तित्वके धूमिल होनेकी आशंका रहीहो। ग्यारहवें अध्यायको बीचमें ही समाप्त करनेपर भी यह आभास नहीं होता कि मूलकथाका कुछ भाग छूट गयाहै। कथामें प्रवाह बना हुआहै। यह इसलिए सम्भव हो पायाहै कि अनुवादकभी स्वतः एक रचनाकार है। इसीलिए मूल कन्नड़ उपन्यासके कथावृत्ति दोषसे अनूदित रचना बच गयीहै, जो कवि अनुवादक की प्रतिभाका प्रमाण है।

अनूदित कृतिकी समीक्षामें विशेषतः भाषा-शैली का विश्लेषण किया जाताहै। जिस प्रकार कथावस्तुमें प्रवाह बना हुआहै उसी प्रकार अनूदित कृतिकी भाषामें भी प्रवाह है। बोलचालकी भाषाके प्रयोगसे स्वाभाविकता तथा आत्मीयता अनायास ही आ गयी है। बीच-बीचमें कन्नड़की भाषा शैली, मुहावरों और लोकोक्तियोंका हिन्दीमें अकृत्रिम प्रयोग हिन्दी भाषा-कोषकी वृद्धिमें तथा भाषाओंकी एकात्मकता अथवा भाषा बान्धवत्वके स्थापनमें सहायक बन गयाहै। उदाहरणके लिए दिवालिया पिटना, कहानी उड़ाना, दुःखका बांध फूटना टूटना, गुस्सा फूट पड़ना, उड़ाकर ले जाना, सड़ना, तिथि करना आदि। सन्दर्भोचित कवित्व प्रयोग भी हैं। इस प्रकार भाषाके सरल, सहज एवं स्वाभाविक प्रयोगने अनूदित कृतिको मूलकृतिका स्तर प्रदान कियाहै। अनूदित कृतिमें प्रूफकी असावधानीसे भाषा व्याकरण सम्बन्धी दोष और एक-दो स्थानोंपर अस्पष्टता आ गयीहै। फिरभी अनुवादककी भाषा संरचना एवं शैली अनूदित कृतिकी सफलतामें विशेष सहयोगी रहीहै। हिन्दी साहित्यकी एक विधा —अनूदित कथा साहित्य—की श्रीवृद्धिमें हिन्दी 'पर्यटन' का महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। □

कहानी

दूसरे देश कालमें[१]

लेखिका : राजी सेठ

समीक्षक : डॉ. केदार मिश्र

समाज, परिवेश एवं व्यक्ति—इन सबके मध्य सम्बन्धोंकी खोज और गृहस्थ जीवनकी संगतियोंकी सहज कथाकार राजी सेठकी कथा कृति 'दूसरे देश कालमें' की ग्यारह कहानियोंमें नारी-लेखनकी विविधता तथा मानवीय प्रवृत्तियोंकी सहज अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है।

'सम्बोधित आपको' शीर्षकमें लेखिकाने रचनाकालकी सार्थकताकी चर्चा कीहै। 'गलियारे' कहानीमें देवा पात्रके माध्यमसे 'अपंगगृह' की मानसिकताको व्यक्त कियाहै—"लोग आतेहैं। खाना देकर, मिठाइयां परोसकर, कपड़े बांटकर चले जातेहैं। कभी-कभी झुंडके झुंड बच्चे या औरतें या लड़के एक साथ आ धमकते है, जैसे नुमाइश लगीहो।" देवाका तरल मन कोमल अनुभूतियोंको व्यक्त करताहै। सहानुभूति एवं अपनत्व की कामनामें आन्तरिक सम्बन्धोंको जीताहै। (पृ. १-१२)।

'सदियों से' शीर्षक कहानी स्त्री पात्र मिन्नीके मनके द्वंतको व्यक्त करतीहैं। विगतकी स्मृतियां मानसिक बिखराव उत्पन्न करतीहै मनमें अपराध-बोध, अस्थिरता, अज्ञात डर-सा उद्वेग भरतेहैं, साथही विवाह की सच्चाई एवं सार्थकताका प्रश्न उपस्थित करतेहैं। (पृष्ठ १७)। किस्सा बाबू बृजेश्वरजीका तथा तदुपरांत कहानी मानवीय संवेदनाओंके दो भिन्न रूप

---

[१] प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १००; डिमा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

व्यक्त करतीहैं। बृजेश्वरजी सेवा निवृत्त, बृज रानी दफ्तर जाती, पहले मदद करतेथे, अब लेटे रहतेहैं घुन्ने बनकर (पृष्ठ २६)। 'सुजाताकी उठान·· सलिलकी आवारगी···और बृजेश्वरजी यह घर बैठे उफनता क्षोभ।' (पृष्ठ २९)। पंकजसिंहके बुलावेकी बात सुन बृजरानीने दूधसे गूंधकर परांठे बनाये, प्रेस किये कपड़ोंकी याद दिलायी। घर लौटे तो एक अधीर आतुरता उनकी अगवानी करती मिली।' (पृ. ३०)। तदुपरान्त कहानीमें पति अमृतकी मृत्युके उपरान्त—'अमृतके रहते बात और थी', अब एक ओर वह अकेली औरत है', तबभी अमृत न होकर भी उस परिवेशमें था—'यानी कि अमृत यहां है। सबकी जुबानको रोकेहैं।' 'उन पुलोंके बीचोंबीच मौजूद है जिसके एक छोरपर वह खुद और दूसरेपर वह सब खड़ेहैं।' (पृष्ठ ३८)।

'विकल्प' कहानीके प्रमुख पात्र नीलिमा और अश्विनी—इन सप्ताहोंमें दिल्ली दर्शन, काठमंडू, भोपाल और आगराकी यात्राएं भी आयोजित थीं। 'पहली बार लगाथा कि आत्मीयता केवल व्यक्तिकी ही नहीं, अपनी हवाकी, अपनी धरतीकी भी होतीहै।'' (पृ. ४६-४७)।

'स्त्री' शीर्षक कहानी मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं कामनाओंकी अभिव्यक्ति है। कमली कितनेही दिनोंसे सुन रहीथी कि शहरमें एक सिद्ध ज्योतिषी आयेहैं। 'कल सबेरे कमलीने पांच रुपयें मांगेथे दुलीसे। मांगे थे किसी बातको मनमें रख कर···। (पृष्ठ ५१), 'पर बाबा अगर चले गये तो उसके मनमें हर घड़ी, हर पल गुड़गुड़ाती बातोंका जवाब कौन देगा', 'कौन बतायेगा कि पिछले दो सालों में दुलीको लीचीका माल भर लेनेसे जो घाटा हुआ वह इस साल पूरा होगा या नहीं···गायत्री बहूकी गोद उसरेगी या कि वह ऐसे ही कलपती रहेगी? बिटिया के मर्दकी नशेकी लत कबतक जान मचोड़ती रहेगी और असली तो यह है कि ज्ञानूकी तरक्की···।' दुली लाख कहे कि तू अनपढ़, गंवार ठहरी तरक्कीकी बात क्या समझेगी, पर इस बातसे ज्ञानूकी जो गेह खिलेगी उसे क्यों नहीं समझेगी कमली...ज्ञानूकी मां।' (पृष्ठ ५३)।

'घोड़ोंसे गधे' शीर्षक कहानीमें 'महिला मंडल' की सदस्या समाज सेवा एवं शिक्षा प्रचारके नामपर बालक दीनानाथ एवं उसकी भावनाओंका शोषण करतीहैं (पृष्ठ ५४-६३) 'अभी तो शीर्षक कहानी राष्ट्रभाषा प्रेमकी वास्तविकता, पति-पत्नीके रिश्तेकी सार्थकताकी खोजकी कहानी है। 'वृन्दाको खोज थी एक ऐसे पुलकी जो— 'उसकी क्षमता और बाहरी जरूरतोंके बीच बन सकताहै।' वृन्दाके संस्कार, आत्म-गौरवकी भावना, हिन्दीभाषा प्रेम, असंगतियां, परिवेश और स्थितियां—''अभी तो अपनेभी उपकरण ढीले-ढाले हैं, अपनीभी निष्ठा पोली-पोचीहै।''

'लेखक गृहमें लेखक' कहानी लेखकीय मानसिकता की एक स्थिति विशेषको व्यक्त करतीहै। 'कबतक' कहानी मानव मनके विवश सपनोंकी कहानी है, जिसमें बौद्धिक जागृति विवशताकी स्थितिमें मौन दैन्य बन जातीहै। (पृष्ठ ८४-८९), 'दूसरे देश कालमें' कहानी समाज-संरचनामें मानवीय संवेदनाकी कहानी है। सामाजिक-संरचना एवं समाजके नियम और मानव-मन! शुचि और रोहित। रोहित और उसकी पत्नी। रोहित और उसकी पत्नीके मध्यकी स्थिति समाजकी देन थी, शुचि और रोहितके मध्यकी स्थिति मनकी देन थी—''चूंकि मनको कोई पकड़ नहीं सकता इसलिए शरीरको पकड़ताहै। मैं पूछतीहूं जिस मनने बात को देह तक पहुंचाया उसे कोई क्यों नहीं पकड़ता।' उस स्थितिसे उत्पन्न प्रश्नोंमें मानवीय भावनाओंसे सरोकार व्यक्त हुआहै। 'इन्सानके जन्मको छोटा करके मानतीहो? 'एक इन्सानका जन्म अगर महत्त्वपूर्ण है तो है।' 'विवाह और जन्म' 'हम तो यह भी भूल गये थे कि हम जिनसे डरतेहैं, उन्हेंभी हमने ही पैदा किया है।' (पृ. ९५)। स्थितियां क्षोभ उत्पन्न करतीहैं—''मैं कितना···कितना चाहतीहूं कि हम, हमारा समय··· हमारी पीढ़ी, सब कुछ गलत सिद्ध होजाये···तुम लोगों में से कोई उठे और सड़ी-गली केंचुलीको उतार फेंके···।' (पृष्ठ ९६)। और यह सामाजिक संरचना—''कोई जमाना रहा होगा जब किसी चीजका कोई नाम नहीं होगा। सब चीज़ोंको नाम दिये गयेहैं, धीरे-धीरे···अपनी ओरसे।- अपनी जरूरतसे··और वही सब सच होगये आगे चलकर।' (पृष्ठ ९९-१००)। व्यक्ति और समाजकी इस भावनात्मक कहानीमें पात्र स्वयंको किसी दूसरे देश-कालमें पाताहै, ऐसी स्थितिमें जिसमें देश-काल पीछे छूट जाताहै।

आलोच्य कथा-संग्रहमें सहज कथा-शिल्प 'भाव,

एवं भाषाका अपनापन, मानवीय संवेदनाओंकी अभिव्यक्ति, व्यक्ति-समाज-परिवेश, स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध, पारिवारिक एवं सामाजिक स्थितियाँ आदि अनुभूतियों के साथ द्रष्टव्य हैं । अनेक कथाकृतियोंसे समादृत राजी सेठका यह कथा-संग्रह सहज लेखकीय रागानुभूतिसे युक्त है । □

बड़ी मछली[1]

लेखक : दयाकृष्ण बिजयवर्गीय

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

श्री दयाकृष्ण विजयवर्गीयकी उन्नीस कहानियों का यह संकलन सामान्य स्तरका है। 'समर्पण' में जिस लोकजीवनको प्रतिबिम्बित करनेके लिए इन कहानियों को लिखनेकी बात कही गयीहै उस लोकजीवनका कोई विशेष-मौलिक-यथार्थ दर्शन इन कहानियोंमें नहीं मिलता। समय काटनेके लिए पढ़नेवालोंके मतलबकी ही कहानियां ये हैं। हिन्दी कथा साहित्यके इतने विपुल लेखनमें अपनी विशेष पहचान बनानेके लिए जिस सूक्ष्मता, व्यापकता, मौलिकता और विशिष्टताकी आवश्यकता होतीहै वह इनमें नहीं मिलती। फिरभी सामान्य पाठककी तृप्ति इनसे हो जातीहै। सामाजिक आर्थिक, साम्प्रदायिक समस्याओंको ये कहानियां कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ पातीं।

विवाहिता प्रेमिकासे प्रताड़ित होनेपर पत्नीकी निष्ठा और सेवासे स्वस्थ होनेवाले पतिकी कहानी है। पारिवारिक कलहको त्यागसे समाप्त करनेकी आदर्शवादी कहानी है 'वसीयत'। धनकुबेर बननेकी आपाधापी में पड़े हुए व्यक्तिकी उपेक्षिता पत्नीके दुखदर्दकी अभिव्यक्ति हुईहै 'बड़ी मछली' में। पारिवारिक जीवनके मोह और दंभके द्वन्द्वको विवेकसे सुलझानेकी चेष्टा 'मोहभंग' में हुईहै। कन्याके प्रेमविवाहसे विचलित व्यक्तिके रोषके सहज ममतासे नष्ट होनेकी कहानी 'ममत्व' में है। विधवा माताके परपुरुषसे अनैतिक सम्बन्धोंके कारण आहत बेटेका स्वाभिमान जीवनका स्वस्थ मार्ग प्रशस्त करताहै 'स्वाभिमान' कहानीमें। दुराचारके प्रति पुत्रके क्रोधका यह बड़ा सात्विक रूप है। 'संकल्प' अछूत कन्याके सवर्णोंके अत्याचारसे जूझ कर स्वाभिमानपूर्वक अपना भाग निकालनेके संघर्षकी प्रेरक कथा है लेकिन यह दुर्लभ एवं अव्यावहारिक यथार्थ लगताहै। क्योंकि जातिगत द्वेष, इतनी सरलता से हार माननेवाला नहीं है। 'भविष्यद्रष्टा' में विश्वसनीय कथा नहीं लगती, यद्यपि इसका शिल्प चुस्तदुरुस्त है, अन्य कहानियोंकी तुलनामें। 'गायकी पूंछ' भी घटनाप्रधानता और आकस्मिकताके कारण यथार्थ नहीं बन पायीहै। पैतृक सम्पत्तिके लोभमें मांकी सेवा करनेवाले लालची बेटोंकी कहानी है 'सोनेकी मोहरें'। 'बंशीवाला' प्रेरक आदर्श कहानी है। चरित्र निर्माणके लिए दहेजके लालची राक्षसोंकी नृशंसताको उघेड़नेवाली कहानी है 'संवेदन के क्षितिज'। 'आमके पेड़' कठमुल्ले साम्यवादियोंपर व्यंग्य करनेवाली कहानी है। 'आधा परांठा' लोक 'बोधकथा जैसी उपदेशात्मक है। विवशताको दार्शनिकता माननेकी व्यावहारिकताकी कहानी है 'अबतार' जिसमें एक सिख युवकको हास्टेलमें रैगिंगके कारण अपने बाल कटवाने पड़तेहैं। 'पर्देके पीछे' में साम्प्रदायिक घृणाद्वेषका जहर, आतंकवाद और अलगाववादके पीछेकी शक्तियोंके राजनीतिक मुखौटेको उघाड़ा गयाहै। आजकी एक वीभत्सताको उजागर करनेवाली कहानी हैं यह।

परधी, नोहरा जैसे आंचलिक शब्द खटकतेहैं। ऐसे ही मूर्तिके लिए 'तस्वीर' शब्दका प्रयोग तथा 'स्वर्ग की 'वैतरणी' है। □

इस बार[1]

[लघु कथाएं]

लेखक : कमलेश भारतीय

समीक्षक : डॉ. महाराजकृष्ण जैन

प्रस्तुत लघुकथा-संग्रहमें ऐसी लघुकथाएं बहुत कम हैं, लघुकथाके आचार्य और आलोचक अपने सिद्धान्तोंके आधारपर जिनको चीथकर उनकी धज्जी-धज्जी न उड़ा सकें। पर ऐसा प्रत्येक संवेदनशील

---

[1] प्रका. : सत्साहित्य प्रकाशन, २०५ बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ । पृष्ठ : १७५; क्रा. ९२; मूल्य : ६५.०० रु. ।

[1] प्रका. : तारिका प्रकाशन, अम्बाला छावनी (हरियाणा) । मूल्य : ३०.०० रु. (सजिल्द), २० ०० रु. (पेपरबैक) ।

पाठक-लेखक-आलोचक, जिसकी लघुकथाके शास्त्रसे कोई प्रतिबद्धता नहीं है, अपितु जिसकी प्राथमिकता साहित्यका रसास्वादन है, कमलेशकी कथाओंको पढ़कर भावविभोर हुए बिना नहीं रहेगा ।

सामान्यत: एक नया लघुकथाकार १५-२० कथाएं लिखते-लिखते शिल्पके जिन लटकों-झटकोंका उपयोग करना सीख जाताहै, कमलेश उनकी ओर झांकते भी नहीं । वे तो बस अपने दिलमें चुभी बात आपके सामने रखेंगे एक हमराज लंगोटिया यारकी भांति । इसीलिए प्राय: उनकी कथाओंके 'आरम्भ' में दुराव-छिपाव नहीं होता, न अन्तमें हथौड़ीकी चोट या बिच्छूका-सा डंक । इसके विपरीत उनका शिल्प है एक आयासरहित, असाधित, अकृत्रिम खुलापन । ऋतुता, निश्छलता । यहीं वे लघुकथाके पण्डितों-आचार्योंके लिए एक गम्भीर बन जातेहैं और अनायास, अनजानेमें, लघुकथाके इतने भागीरथ परिश्रमसे स्थापित मानकोंको तहस-नहस कर डालतेहैं ।

कमलेश शिल्पपर जोर नहीं देते । वे कथानक तथा शिल्पकी बजाय कथ्यसे संवेदित होकर लिखतेहैं, वे अनुभूति या विचारमें तन्मय होकर उसे अपनी कथाके माध्यमसे सम्प्रेषित करतेहैं । केवल एक स्थिति होतीहैं —दैनिक जीवनकी सामान्य-सी स्थिति, जिसमें कोई मोड़ या बदलाव नहीं आता । उस स्थितिपर ही लेखक अपने विशिष्ट, नये और मौलिक कोणसे सर्वथा नये आयामों, अर्थों और निष्पत्तियोंको आलोकित करता है । उदाहरणके लिए ''मनीप्लांट और मैं'' देखिये । पत्नीके आग्रहपर नायकने मनीप्लांट लगायाहै । यह कोई 'घटना' नहीं है । परन्तु लेखक जब निष्कर्ष देताहै कि पैसेका प्रतीक वह पौधा छाया और अंधेरेमें पनपता है तो यह 'अ-घटना' एक सशक्त लघुकथाका रूप ले लेतीहै । ८-१० पंक्तियोंमें यह निष्कर्ष आपको थमातेहैं, एक हल्के व्यंग्यके साथ । लघुकथासे प्राय: हृदयहीन आलोचना और सीधे प्रहारकी मुद्रा अपना लेतीहै । ये आक्रामक और बहिर्मुखी होतीहै और 'दूसरे' को कटघरेमें खड़ा करतीहैं । किन्तु कमलेशकी कथाएं आक्रामकता और प्रहारसे कोसों दूर हैं, वे अन्तर्मुखी हैं । अपनी कथाओंमें वे आत्मावलोकन और आत्मालोचन अधिक करतेहैं ।

अपनी आकारगत सीमाओंके कारण लघुकथा संवेदनाके निर्वाहके लिए—जिसे काव्यशास्त्रमें रसका परिपाक कहा गयाहै—उपयुक्त माध्यम सिद्ध नहीं होती । परन्तु कमलेशकी कथाओंमें शिल्पगत चमत्कार अथवा तर्क कौशलके स्थानपर संवेदनाही उनका मुख्य तत्त्व है । ऐसी कथाओंमें मुख्य हैं : 'सर्वोत्तम चाय', 'बदला हुआ नक्शा', 'मैं नहीं जानता', 'जन्मदिन', 'दयाकी जगह' ।

कमलेश लघुकथाको 'आरोपपत्र' नहीं बनाते । इसका उदाहरण उनकी हृदयग्राही रचना 'जन्मदिन' है । हमारे पुरुष-प्रधान समाजमें माता-पिता पुत्रकी तुलनामें कन्यासे भेदभाव करतेहैं । सृजनशीलता एवं संवेदन-रहित दृष्टि कथामें इस आचरणके लिए माता-पितापर दोषारोपणकर इति कर लेतीहै । फलत: कथा रचना न बनकर तथ्य कथन या सूचना मात्र रह जातीहै । कमलेश अभियोग पक्षके वकीलकी भूमिकामें नहीं उतरते । उनकी कथामें एक नन्हीं बच्ची छुट्टियोंमें ताऊ-ताईके पास आयी हुईहै । वह उनसे पूछतीहै कि क्या वे उसका जन्मदिन मनायेंगे, केक काटेंगे, मोमबत्तियां जलायेंगे, मेहमान उपहार देंगे आदि । वह बतातीहै घरमें उसके भाईका जन्मदिन तो मनाया जाताहै, उसका नहीं । ताई की आंखें भर आतीहैं और ताऊ-ताईका आश्वासन पाकर बच्चीकी आंखोंके आंसू इन्द्रधनुषमें बदल जाते हैं ! कमलेशकी दृष्टि पूर्ण रूपमें विधेयात्मक है—वह है एक बच्चीके आंसुओंको इन्द्रधनुषमें बदल देना ।

कथाकारके यहां घटनाका उपयोग केवल अपने भावना-संसारमें प्रवेश करनेका निमित्त मात्र है । ''बदला हुआ नक्शा'' अखबारमें सरेआम कुछ लोगों की हत्या होनेके समाचारसे आरम्भ होतीहै, किन्तु यह हिंसाकाण्ड लेखकको पहुंचा देताहै उस पत्र मित्र लड़की की मीठी यादोंमें जो कभी उस चौकमें रहतीथी । उन मीठी यादोंका हमेशा छाया रहनेवाला नशा आज इस खबरसे टूट गयाहै । हत्याकाण्डसे लेखक या उस लड़की का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसके स्थानपर है लेखकके स्मृतिकोषका एक पन्ना और उसकी आहत, क्षत-विक्षत संवेदना । कमलेशने समाचारको रचना बना दियाहै अपनी संवेदनाके सागरमें डुबोकर ।

जनवादी और वामवादी समीक्षकोंको इसमें व्यक्तिवाद और बुर्जुआपन दिखायी देगा, क्योंकि उनकी विडम्बना यही है कि वे साहित्यके सूक्ष्म व गहन अर्थोंका मूल्यांकन न करके उथले और बाहरी इतिहास को ही महत्वपूर्ण समझतेहैं । फिरभी जनवादी लेखनमें

रुचि लेनेवालोंको 'बड़प्पन', 'सपनोंकी मौत', 'जागृति', 'तलाश', 'महत्त्व', एवं 'आग और आग' में जनवादी लेखन अपने स्वस्थतम रूपमें मिलेगा। इन कथाओंमें बेकारीकी आग है, गरीबीका बड़प्पन है और मजदूरोंकी जागृति है। पंजाबमें फैले आतंकवादकी त्रासदी भी कथाओंका विषय बनीहै, जैसे 'इस बार', 'चौराहेका दीया', 'बदला हुआ नक्शा', 'दु:खवा मैं कासे कहूं' आदि। पंजाबके बिभाजनने भी लेखकको क्षत-विक्षत कियाहै, 'निशान', 'घर' और 'पड़ोसी धर्म' इस तथ्यका प्रमाण है कि अर्थहीन आतंकवादके इस अंधे युगमें भी कमलेशकी मनुष्यकी मूलभूत मनुष्यतामें अडिग आस्था है।

कमलेश कवि हैं, उनके कथाकार रूपने उनके कवि को आच्छादित कर रखाहै। अधिकांश कथाओंमें कवि जैसी आन्तरिकता, तल्लीनता, संवेदना और अ-सजगता! कथाओंका अनगढ़पन उनकी काव्यात्मकताके आलोकमें तुरन्त समक्षमें आ जाताहै, इसीलिए लघुकथाके समीक्षकोंको वे अटपटी और अजीब भी लग सकतीहैं। ☐

काले दिन[1]

सम्पादक : हरिशंकर सक्सेना

समीक्षक : यशपाल वैद

'काले दिन' में दस कहानियां संकलित हैं और अन्तमें लेखक परिचयके अतिरिक्त प्रारम्भमें 'कहानी' पर मधुरेश और सम्पादक हरिशंकर सक्सेनाके दो महत्त्वपूर्ण लेख हैं। कहानी और व्यावसायिकतामें मधुरेशने जिन प्रसंगोंको उठायाहै, वे सभी विचारके लिए महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु आज जबकि व्यावसायिक पत्रिकाएं भी न जाने किस विवशता और नीतिके अन्तर्गत दम तोड़ रहीहैं और लघु साहित्यिक पत्रिकाएं खेमेवालोंका शिकार होकर सार्थक भूमिका निभानेमें असमर्थ हैं, कुछ पत्रिकाएं फिरभी हैं चाहे उसमें 'हंस' का ही नाम लें या 'पहल' को भी दलबन्दीमें रखकर महत्त्वपूर्ण मानना पड़े, अन्यथा बहुतसे नये युवा सम्पादक उन बड़े नामोंसे जुड़ना पसन्द करतेहैं जो उन्हें कुछ असाहित्यिक दे सकतेहैं या उन युवा लेखकोंको आगे लाना चाहतेहैं जो उन्हें आगे लानेमें सहायता दे सकतेहैं। प्रश्न उठ सकताहै 'आगेसे' क्या अभिप्राय है। अभिप्राय यही है कुछ प्रशंसनीयकी कम प्रशंसा और अप्रशंसनीयकी चर्चा। वस्तुत: 'समकालीन हिन्दी कहानी' लेख भी पक्षपातपूर्ण-सा लगताहै या अधूरा है—विस्तारकी अपेक्षा है।

कहानियोंमें 'सड़कका आदमी' एक सशक्त कहानी है। ईश्वरशरण सिंहलने फेंटेसीका सहारा लियाहै पर पाठकको सोचनेके लिए विवश भी कियाहै। स्वार्थ, हिंसाने मानवताकी जड़ें खोखली कर दीहैं। 'जीवन राग' में हृदयेश मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तुके अस्तित्व के प्रश्नपर दृष्टिपात करतेहैं। 'उपेक्षिताकी बात' (महेश राही) निबन्ध-कहानी है, व्यंग्य तो है किन्तु सपाट जैसा कि मेरी (यशपाल वैद) कुछ प्रारम्भिक कहानियोंपर आरोप लगा और मैंने स्वीकारा। 'काली नदी' (ध्रुवप्रकाश उपाध्याय) की कथ्यपूर्ण धोखादही की कहानी वर्ना है। 'टूटा पत्ता' (कुष्ठ रोग) में चंद्रप्रकाश आर्य—चिन्तनशील हैं। अन्य कहानियां 'सुहाग-चिह्न (महाश्वेता चतुर्वेदी) पूर्वार्द्ध (हरिशंकर सक्सेना) 'नो वेकेन्सी' (अनुराग दीपक, दो-मुंहे लोग (ओंकार सिंह रघुवंशी) पठनीय हैं और जीवनके अनुभवोंको रेखांकित करते हुए सामाजिक विसंगतियोंपर चोट करतीहैं—विशेषकर सुहाग चिह्न और पूर्वार्द्ध। 'काले दिन' एक सार्थक प्रयास है। ☐

असली गधेसे इण्टरव्यू[1]

लेखक : कन्हैया अगनानी

समीक्षक : डा विजय कुलश्रेष्ठ

राजस्थानमें युवा-सृजनका विधात्मक विकास स्पृहणीय है। इधर व्यंग्य विधामें कतिपय हस्ताक्षर उभरेहैं। सर्वश्री धनराज चौधरी, पूरन सरमा, यशवन्त कोठारी, सुरेन्द्रकान्तके बाद हाल हीमें एक नाम तेजीसे उभरा है- कन्हैया अगनानी। यद्यपि गधोंकी प्रशस्तिके निमित्त श्री (स्व.) कृश्नचन्दरको याद किया जाताहै

---

[1] प्रका. : विचार बिन्दु प्रकाशन, बरेली। पृष्ठ : ६९; डिमा. ९०; मूल्य : २०.०० रु.।

[1] प्रका. : एम. बी. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, ५७, नाटाणी भवन, मिश्र राजाजीका रास्ता, जयपुर-३०२००१। पृष्ठ : ५०; क्रा. ९१; मूल्य: ३०.०० रु.।

और कहें कि गधा-साहित्यधर्मिताके प्रवर्त्तक ही थे वे, तो अन्यथा न होगा। एक-दो समर्थ और हुएहैं इस गधा गद्यात्मक विधाके क्षेत्रमें; परन्तु नवीनतम कृतित्व 'असली गधेसे इण्टरव्यू' के रूपमें सामने आयाहै। यह श्री कन्हैयाके लिए महत्त्वपूर्ण ही कहा जायेगा कि इसका लोकार्पण करनेके लिए इन्होंने सही वक्तपर सही व्यक्तिका चयन किया और भूरि-भूरि धाक डाली व्यक्तित्व-गरिमापर क्योंकि उनका मन्तव्य 'असली' से ही था।

राजस्थानमें जयपुरके पास लूणियावासके निकटस्थ ग्राम पंचायतके भावगढ़ बन्धा नामक ग्राममें प्रतिवर्ष भरनेवाले गधोंके मेलेके आधारपर इस कृतिका प्रणयन कियाहै। इस मेलेकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एक शोधात्मक वृत्ति लिये हुएहै। मिश्चित ही यह श्री कन्हैयाकी श्रम सार्थकता एवं धैर्यका प्रचुर प्रमाण है कि वे आजके पैसे खर्च करके साक्षात्कार करानेवाले और प्रचारोन्मुखी 'व्यक्ति' से साक्षात्कार न लेकर इस सृष्टिके विशिष्ट प्राणीसे साक्षात्कार करतेहैं। यह साहसपूर्ण एवं विशिष्टतापूर्ण कर्म है तभी श्री राजेन्द्र अवस्थी (सम्पादक कादम्बिनी) ने इस कृतिके सम्बन्ध में अपनी टिप्पणीमें लिखाहै कि—अपनी इस कृतिमें गधेकी विशेषताओंको उजागर कियाहै। शीर्षकसे ही यह कृति हास्य-व्यंग्यसे सराबोर रचना प्रतीत होतीहै लेकिन वास्तवमें वह तथ्यात्मक है।"

श्री कन्हैयाने शीर्षकमें व्यंग्यात्मक शैली न अपनाकर तथ्यात्मक निरूपणका ही प्रयास कियाहै, पर लेखक के अतिरिक्त शीर्षक पढ़नेवाले पाठक अथवा आलोचक के नेत्रोंपर लगा एक वही कृश्नचन्दरिया चश्मा कहीं आलपिन चुभती अनुभव करने लगे तो यह दोष श्री कन्हैयाका नहीं है।

श्री कन्हैयाका लेखन बहुविधात्मकही नहीं, द्विभाषी है। वे अधिकारके साथ हिन्दी एवं सिन्धी भाषाओंमें नाटक, कहानी एवं निबन्ध लिखतेहैं। व्यंग्य या यह प्रयास मात्र व्यंग्य नहीं है जो गुदगुदी करके रह जाताहो। बाबू गुलाबरायकी व्यंग्य रचनाओंकी परिणति सदैव एक विचार देकर जातीहै, ठीक वैसीही स्थितिमें इस कृतिकी स्थिति स्वीकार कीजा सकतीहै क्योंकि गधोंके मेलेको केन्द्रीय भाव स्तरपर ग्रहण कर ज्ञानोपयोगी कृतित्वका संकेत स्वतः ही कर गयेहैं। सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं पत्रकार चन्द्रगुप्त वार्ष्णेयका मत है कि—कन्हैया अगनानीने गधेको विषयवस्तु बनाकर एक पुस्तक लिख डाली, जिसे यदि शोध-प्रबन्ध मान लिया जाये तो वहभी अपने नामके आगे 'डाक्टर' की उपाधि लगा सकतेहैं। निश्चित ही यह प्रयास स्तुत्य है, और वार्णेयजीभी यह प्रयास कर लें तो बुरा क्या है, वे भी 'डॉ. चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय' हो जायेंगे। लेकिन इतना होना व्यंग्यात्मक संस्पर्शके लिए पर्याप्त है क्योंकि 'गधा' प्रतीकात्मक है और आजके युगमें इसकी महिमा कम नहीं है, फिर अगनानी न प्रतीकात्मक बात कह रहेहैं, न बिम्बात्मक, न लक्षणा, न व्यंजनामें उतर रहेहैं, वे तो सीधेही 'असली गधे' का अन्तःव्यूह (इण्टरव्यू) देखकर कलम उठा रहे हैं और वहभी गम्भीरताके साथ।

इस अवसरपर श्री कन्हैया अगनानीके कृतित्वकी सार्थकता इसलिए भी प्रतीत होती है कि सामान्यतः लोकजीवनमें इस प्राणीकी उपेक्षा भलेही हो पर राजनीतिक जगत्‌में महत्ताका प्रतिपादन इस प्राणीके संदर्भ में हमारे पूर्व प्रधानमंत्री एवं समाजवादी नेता चन्द्रशेखर ने भोंड़सी आश्रममें गधेकी प्रतिमा स्थापित कराके उसे माल्यार्पण करते हुए अपने औचित्यपूर्ण भाषणमें कहा था कि—"लोग जब हर तरहके देवताओंको पूजतेहैं तो गधेको क्यों नहीं पूजा जाना चाहिये। भोंड़सीको आज जो रूप मिलाहै, उसे संवारनेमें पांच साल तक गधे मेरे साथ रहेहैं।" अतः इस ओर ध्यान केन्द्रित करानेकी आवश्यकतापर पूर्व प्रधानमंत्री बल दे चुकेहैं तो श्री कन्हैयाके कृतित्वके उज्ज्वल पक्षपर दृष्टि जानी ही चाहिये। ◻

हंसी घरके आइने[1]

लेखक : घनश्याम अग्रवाल

समीक्षक : डॉ. विश्वास पाटील

हास्य जीवनकी महान् उपलब्धि है। हास्य और व्यंग्य ही ऐसे औजार हैं जिन्होंने मिलकर मनुष्यकी मूर्तिको तलाशने और तराशनेका काम निहायत ईमानदारीसे कियाहै। मनुष्यकी अनेक परिभाषाओंमें इसीलिए 'जो हंस सकताहै वह मनुष्य' यह परिभाषा अपनी

---

[1] प्रका. : दिनमान प्रकाशन, ३०१४ चर्खेवालान, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १२७; डिमा. ९०; मूल्य : ४०,०० रु.।

सार्थकताको सत्यमेव ही रेखांकित करतीहै। हंसना, दूसरोंपर हंसना सहज है पर अपने आपपर हंसना--हंस सकना इस कलाकी चरम स्थिति है। अपने 'हंसी घर के आईने' हास्य-व्यंग्य निबंध संकलनकी भूमिकामें लेखक लिखतेहैं—'बंदरसे आदमी तक की यात्राकी उपलब्धि यही तो है कि आदमी हंस सकताहै, जानवर नहीं।'

कुल अट्ठाईस निबंधोंके इस संकलनको मुख्य रूपसे तीन भागोंमें विभाजितकर देखाजा सकताहै। साहित्य, राजनीति और भारतीय फिल्में। वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन प्रक्रियाकी समझ और सोचसे सजे निबंध इस संकलनमें हैं जो हास्य और व्यंग्यकी दुहरी निपुणतासे सुंदर बन पड़ेहैं। व्यक्ति जीवनको तलाशते हुए उसकी सामाजिक अर्थवत्ताको समझनेकी दृष्टि से लेखकका प्रयत्न अनेक रचनाओंका निर्माण करता है। सर्वत्र एक निश्छल हंसी और सहज तादात्म्य भाव के कारण ये रचनाएं पाठकको एक परिचित दुनियां की झांकी देतीहैं। लाल फीताशाही और दफ्तरोंकी राजनीतिकी ढुलमुल अवस्थाको जानलेनेकी दृष्टिसे 'आजादीकी दुम', 'फिर एक आदिवासी यात्रा', 'ईमानदारीकी खोज' जैसे निबंध पढ़ने योग्य हैं।

भारतीय जीवन और जन मानस किस प्रकार छूंछा, दरिद्र, आरामतलब और स्वार्थमय हो गयाहै इसका सार्थक अंकन इस लेखनमें हुआहै। निबंधोंका विवेचन जब तल्ख होकर सामने आताहै तब कहताहै अपनी बात अपनेही तेवरमें, कि स्कूल तो मात्र फाइलों में ही होतेहैं (४६), या दवा पीकर और खा न पीकर भी आदमी मरतेहैं (४९) या आजकल के राक्षस इसलिए पहचाने नहीं जाते कि उन कंबख्तोंने सींग और दांत कटाकर देवताओंका यूनिफार्म पहन लियाहै। (५१)।

हमारे विवाह समारोह और दूल्होंकी बारातोंका खोखलापन कितना विद्रूप-विरूप होताजा रहाहै उसका सटीक और सम्यक् चित्रण 'मौसम है दूल्होंका', 'आज मेरे यारकी शादी है' जैसे निबंधोंमें पाया जाताहैं। विवाहके बाजारमें दूल्होंकी कीमत आंकते हुए इसीलिए लेखक कहताहै—'वैसेभी गधोंकी तुलनामें घोड़े कम ही होतेहैं। इसलिए लड़कीवालोंको दूल्हा तय करनेसे अधिक घोडा तय करनेमें कठिनाई होतीहै।' (५७)। विवाहकी व्यथाको रेखांकित करते यहभी पढ़ने योग्य हैं—'आजकल सामूहिक विवाह प्रथाका भी जोर है। एक साथ बीस दूल्होंको जाते देख, अखबारकी यह खबर पता नहीं क्यों अचानक याद आ गयी कि कुछ लोगोंने मिलकर सामूहिक रूपसे आत्महत्या की है।' (५८) और 'सच्चा मित्र वही जो मुसीबतके समय काम आये, इसी सिद्धान्तके अनुसार हर मित्र अपने मित्रकी शादीमें जाताहै।' (५०)।

अग्रवालजीने समाजजीवनको जिस तन्मयतासे देखाहै उसीका परिणाम है इस लेखनकी अन्तरंग आत्मीयता! एकदम अकृत्रिम और सही अंकनके कारण ये निबंध हमें अपने सुहृदोंकी भांति मिलते हैं। स्पष्ट है कि हम उनमें से सभीको हृदयसे मिलना स्वीकार नहीं करते? यही कारण है कि अपनी व्यंग्यात्मक चुभती भूमिकामें शरदजी जोशी लिखते हैं—'घनश्याम अच्छा गद्य लिखताहै...... इस पुस्तक के समापनपर आपभी कहें और गौरवान्वित अनुभव करें।' समीक्षा लिखनेकी परंपरा और बेतुकी परंपरा को चीरकर रखते हुए शरदजी ठीकही लिखतेहैं कि आज बिना पुस्तक पढ़ेही समीक्षा लिख लेखक अथवा कविको स्थापित करनेकी प्रथा है।

अग्रवालजी सुभाषितोंके समान वाक्योंकी संरचना द्वारा अपनी बातको सहज प्रस्तुति देतेहैं—यथा—

- गुम हुआ राशनकार्ड पुनः बनवाना तो गुलाम देशको आजाद करने जैसा है। (१४)
- अक्सर बिजली शामको गुल हो जातीहैं क्योंकि यही समय बिजली आनेका रहताहै। (४०)
- वार्ता शुरु हुई। वार्ता खत्म हुई। वार्ता असफल हुई। (६५)
- यदि आप शरीफ और ईमानदार लोगोंसे ही बात करनेका नियम बना लेंगे तो, जीवन भर आपको इस देशमें मौन ही रहना होगा। (६७)
- मुख्यमंत्रीकी बात तो वो टाले जिन्हें भूतपूर्व कहलानेका शौक हो। (७९)
- सही ढंगसे जीना हमारी पारंपारिक एलर्जी हैं। (७७)
- इक्कीसवीं सदीमें समस्याओंका निवारण नहीं, सिर्फ नूतनीकरण होगा। (१०५)

कुछ मराठी शब्दोंका प्रयोगभी लेखकने कियाहै, जिससे वातावरण निर्मितिमें सहायता मिलीहै यथा भावगड, खोली, काकू आदि। भाषा सधी, प्रवाहात्मक और पात्रानुकूल होनेके कारण कभी संक्षिप्त हैं तो कभी विस्तारपूर्वक विवेचनकी क्षमतासे भरपूर।

अग्रवालजीका व्यंग्य चोट नहीं करता, आक्रमण नहीं करता, तिलमिला नहीं देता, व्यथित नहीं करता —यह सब इनके लेखनकी मर्यादा है लेकिन वह झटका देताहैं, एक समझ ईजाद करताहै, सोचको प्रतिष्ठा देता है, चिन्तनकी नयी सरणी उद्घाटित करताहै, अनुभवकी नयी इयत्तासे पार कराताहै यह उसकी उपलब्धि है। उन्होंने इसमें महिलाओंको लेकर—श्रीमतीजीको लेकर फूहड, अभद्र, और ऊटपटांग लतीफे कसनेकी मुद्रामें आकर कुछ नहीं लिखा। यह उनकी संस्कारी कलमकी पहचान है। समय, अवसर और सुविधा होते हुएभी संयम, संस्कार और मर्यादा भाव इनके लेखनको एक नया परिमाण दे जातेहैं। ☐

जीवनांश : स्मृति ग्रन्थ: साक्षात्कार

जो मैंने जिया[1]

लेखक : कमलेश्वर

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

कमलेश्वर (हिन्दीके लोकप्रिय कहानीकार) जीवनके उस मोड़पर आ गयेहैं जहां खड़े होकर पीछे देखनाभी सुख देने लगताहै। इसीलिए उन्होंने पिछली लगभग आधी शताब्दीकी विभिन्न घटनाओंको याद करनेकी कोशिश कीहै और इन्हें "आधारशिलाएं--" की संज्ञा दीहै। इसकी व्याख्या करते हुए "जो मैंने जिया" शीर्षक भूमिकामें लिखाहै, "...ये मेरी वह आधारशिलाएं हैं ("वे" नहीं, व्याकरणकी दृष्टिसे ऐसे स्खलित प्रयोग अन्यत्र भी हैं) जिनकी सतहपर मेरी वैचारिक और रचनात्मक भूमिका तय होती रहीहै।" लेखकका विशेष संबंध नयी कहानी आन्दोलनसे और इलाहाबादसे रहाहै। अतः अधिकांश घटनाएं इन्हीं दोनोंसे संबंधित हैं। इलाहाबाद उस समय देशकी शैक्षिक और साहित्यिक गतिविधियोंका प्रमुख केन्द्र था। लेखककी शिक्षा और कहानीमें दीक्षा वहीं हुई। उससे पहले समाजवादी क्रान्तिकारी पार्टीसे जुड़ने, पं. सुन्दरलालकी "भारतमें अंग्रेजी राज्य" जैसी जब्त पुस्तक अपने साथ पवित्र ग्रंथकी तरह रखने, और सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय, आत्म-सम्मानके सपने जागती आंखोंसे देखनेके बावजूद वह साहित्यसे या कहानी-सम्राट् प्रेमचंद तकके नामसे अपरिचित था। वह विज्ञानका विद्यार्थी था। परिस्थितियोंवश उसे हिन्दीका विद्यार्थी बनना पड़ा, पर आज उसका मानना है कि "अगर मुझे साहित्यका रास्ता न मिलता तो शायद मैं (राजनीतिक सपनोंसे हताश हो जानेके कारण) आत्महत्या करता या किसीकी हत्या करके फांसीपर चढ़ जाता (पृ. ४३)।" उसे इस बातका संतोष भी हैं कि उसे जो पहचान हिन्दीने दी, वह विज्ञान नहीं दे पाता (पृ. ४३)। उसके व्यक्तित्वके निर्माणमें इलाहाबादके उस समयके माहौलका बहुत बड़ा हाथ है। उस समय इलाहबादका नागरिक "सरकारी अफसरोंके घरोंमें उतना परिचित नहीं था, जितना अपना लेखकों, साहित्यकारोंके घरों और गलियोंसे (पृ. ६४)।" तब "गिरिधर गोपाल और रमानाथ अवस्थीके गीतोंको

---

[1] प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : २२५; डिमा. ९२; मूल्य : ९०.०० रु.।

गुनगुनाते हुए इलाहाबाद जागताथा (पृ. ५५)।" इलाहाबादका यह विशेष मिजाज और ठाठ था कि बड़ेसे बड़ा और तेजसे तेज मजाकभी लोग बरदाश्त कर लेतेथे क्योंकि "तब लेखकोंके रिश्तोंमें कोई तरेड़ या फांस नहीं थी (पृ. ५४-६०)।" पूरा इलाहाबाद ही जैसे भारद्वाज आश्रम था। रचनाका आश्रम। अखबारोंके हाकर और डाकिये तक अपने इन लेखकों को पहचानतेथे। (पृ. ६१-६७)। इन्हीं कारणोंसे लेखकने इलाहाबादका जहां भी स्मरण कियाहै, मनकी गहराईसे कियाहै, पूरी आत्मीयताके साथ कियाहै, भावों में डूबकर कियाहै।

समयकी दृष्टिसे इन संस्मरणोंमें चार दशकोंसे भी अधिक अवधि समाविष्ट है। लेखकने इस अंतराल की ऐसी अनेक घटनाओंका उल्लेख कियाहै जिनमें मित्रोंकी चुहुलबाजी, मित्रताके नामपर स्वार्थसिद्धि, मित्रोंकी ईर्ष्या, मित्रताके लिए किये गये त्याग, साहित्यकारोंके आपसी सम्बन्ध, गुटबाजियां, राजनीति और साहित्यके बनते-बिगड़ते-बदलते समीकरण, पुरस्कारों और अभिनंदनोंकी संस्कृतिका उदय एवं विकास, विश्वासों, विचारों और सिद्धांतोंको भूखसे भी ऊपर रखनेका साहस, हिमालय जैसी नैतिकताके मानदण्ड जैसी तमाम बातें सिमट आयीहैं।

ये संस्मरण एक कहानीकारके हैं। अतः विभिन्न स्थानोंपर किन्ही घटनाओंका विवरण देने या मानसिक द्वंद्वकी चर्चा करनेके बाद लेखक जब यह टिप्पणी करता है कि उसी रात मैंने अमुक कहानी लिखी तो पाठकका लेखकके साथ ऐसा साधारणीकरण हो जाताहै कि उस कहानीको फिरसे पढ़ने और समझनेकी उत्सुकता बढ़ जातीहै।

कुछ संस्मरणोंमें प्रसंगवश, हिन्दीकी भी चर्चा हुई है। हिन्दी इस देशकी राष्ट्रभाषा है। उसमें एक प्रकार की उदारता है। यही कारण है कि "भारतमें सबसे पहले हिन्दीने ही भाषाई दीवारोंको तोड़ा और अपनी छाती को चौड़ा करके तमाम भाषाओंके जातीय अनुभवको अपनी विराट बांहोंमें संभाल लिया (पृ. ९५)।" सरकारने राजभाषाके पदपर अभीतक तो हिन्दीको बिठाया नहीं है, पर उसे राजभाषाकी संज्ञा देते ही "लोग यह भूल गये कि हिन्दी किसीकी मातृभाषा भी है। हिन्दीने जो विचार-सम्पदा और अपनी जड़ोंसे प्राप्त ऊर्जा संजोई थी—उसपर विचार व्यक्त करनेका अधिकार उन लोगोंको मिला जो हिन्दीके अधिकारी विद्वान् नहीं थे (पृ. १६७)।" जो लोग कार्यालयी कामकाज तो दूरकी बात, अपने पारिवारिक पत्र तक हिन्दीमें नहीं लिखते, हिन्दीका कभी समाचारपत्र तक नहीं पढ़ते, वे भी सरकारी कर्मचारी होनेके नाते हिन्दी पर, उसके साहित्यपर, उसकी शब्दावलीपर, उसके व्याकरणपर, देवनागरी लिपिपर टीका-टिप्पणी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझतेहैं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा दोनों ही रूपोंमें हिन्दीकी स्थितिको कमजोर बनानेकी जो कोशिशें ऐसे सरकारी कर्मचारियोंके अलावा फोर्ड फाउण्डेशन, कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम जैसी संस्थाओंने, सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमके अंतर्गत समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र या भाषा-विज्ञानपर शोध करने आये अमरीकी विद्यार्थियोंने, और डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे भाषावैज्ञानिकोंने कीं, उनकी भी चर्चा लेखकने कीहै (पृ. १५९-१६८)।

इन संस्मरणोंमें कई ऐसे प्रसंग है जिन्हें छोड़ाजा सकताथा क्योंकि उनका कोई संबंध "आधार शिलाओं' से दिखायी नहीं देता। किसी गंभीर विषयकी चर्चाके संदर्भमें यदि कहा जाये कि यह सारी बात बीयर पीते हुए हुई, तो इससे तो यही पता चलताहै कि उस विषय के प्रति चर्चा करनेवाले गंभीर नहीं थे जबकि लेखक जिन निष्कर्षोंकी चर्चा यहां कर रहाहै उन्हें अत्यंत महत्वपूर्ण बता रहाहै (पृ. १६८)। इसी प्रकार "ड्राइ-डे" के दिन परसाईके साथ बीयरकी तलाशमें टैक्सीमें यहां वहां भटकते फिरे और आजके मुकाबले सस्ते जमानेमें भी सवा सौ रुपये टैक्सी बिलके अदा किये (पृ. २०८)। क्या यह मदिरा-प्रेम "आधार शिला" का भाग है? दुष्यन्तके गांवके जिन लड़कोंके बोर्डकी परीक्षाके प्रश्नपत्र खराब हो गयेथे, उनसे दुष्यन्तने ठगी की। इस प्रकारकी घटनाओंका उन आधार शिलाओंसे क्या कोई संबंध है जिनकी सतहपर लेखककी "वैचारिक और रचनात्मक भूमिका तय होती रहीहै?"

ये संस्मरण किसीकी जीवनगाथा नहीं,- युगके दस्तावेज जैसे हैं। अपने अतीत और वर्तमानको समझने में सहायक हैं। ३१ अध्यायोंमें विभक्त इन संस्मरणों का प्रारंभ दूरदर्शनके लिए लेखकके चयनसे होताहै जिसे लेखककी असुविधाको देखते हुए प्रारंभमें इलाहाबाद रेडियोंके लिए कर दिया गया। समयकी दृष्टिसे कभी आगे तो कभी पीछे चलते हुए संस्मरणोंका यह सफर

"नई कहानियाँ" शीर्षक पत्रिकाके सम्पादनको अलविदा कहकर होताहै। "सण्डे मेल" में इनका धारावाहिक प्रकाशन हो चुकाहै। लेखकके समकालीनोंमें से कुछने इनपर अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं (दो प्रतिक्रियाएं पुस्तकमें भी दी गयीहैं, तो कुछ अन्य लोगोंने स्वयंभी संस्मरण लिखना शुरु कर दिया। लेखकने अपने संस्मरणोंपर फिलहाल विराम लगा दियाहैं, पर भूमिकामें दिये आश्वासन और पुस्तकके शीर्षक, "आधार शिलाएं-१" के अनुरूप आगामी संस्मरणोंकी प्रतीक्षा रहेगी। □

धर्मदत्त वैद्य स्मृति ग्रन्थ[1]

सम्पादक : डॉ. रामसुमिरन लाल
तथा सम्पादक-मण्डल

समीक्षक : प्रो. मधुरेश

पं. धर्मदत्त वैद्य बरेली जनपदके एक जाने-माने व्यक्ति थे। उन्होंने अनेक क्षेत्रोंमें अपनी सक्रियताकी छाप छोड़ीहै। एक सामान्य मध्यवर्गीय परिवारमें जन्म लेनेपर भी वे सफलताकी अनेक सीढ़ियां चढ़ सके। उन्होंने अपने छात्र-जीवनसे ही देशके स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लिया। यह वस्तुत: वह काल था जब किसी भी स्वाभिमानी और देशानुरागी युवकका इस प्रवाहसे अपनेको अलग रख पाना कठिन था। देशकी स्वाधीनताके बाद उत्तरप्रदेश सरकारने उनके संघर्षका भरपूर पुरस्कार भी उन्हें दिया। राजनीति, आयुर्वेद, शिक्षा, संस्कृति और समाज—अनेक क्षेत्रोंमें उन्होंने अपनी कर्मठता और कार्यकुशलताकी छाप छोड़ीहै।

ऐसे व्यक्तिको केन्द्रमें रखकर उनके अभिनन्दनकी योजना बनायी, लेकिन दुर्भाग्यवश उनके अभिनन्दनकी योजना उनके जीवन-कालमें कार्यान्वित न हो सकी। एक बृहत् अभिनन्दन ग्रन्थकी योजना बनीथी, अन्तत: वह "स्मृति-ग्रन्थ" के रूपमें सामने आया।

स्व. धर्मदत्त वैध स्मृति-ग्रन्थके संपादकोंने इस और विशेष ध्यान दियाहै कि वैद्यजीके जीवनके अनेक पक्षोंपर उनके घनिष्ठ सम्पर्कमें आये लोगोंसे लिखवाया जाये। उनके परिवारके लोगोंने अनेक रूपोंमें इस तथ्यको स्पष्ट कर दियाहै कि वस्तुत: परिबार ही वह क्षेत्र है जहाँ व्यक्तिकी वास्तविक पहचान होतीहै। इस क्षेत्रमें उसकी हार या जीत दूसरे क्षेत्रोंमें भी अपना प्रभाव डालतीहै। एक भरे-पूरे परिवारको उनकी वत्सल छाप मिलीथी, जिसका भरपूर उपयोग भी उन्होंने किया, यह इन संस्मरणोंसे स्पष्ट है।

वैद्यजीका परिचय-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। अत: अनेक लोग उन्हें निकटसे जाननेका गर्व कर सकतेथे। देश और प्रान्तके अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नेताओंके साथ उनका सम्पर्क था और उन्होंने किसी-न-किसी स्तरपर कार्य कियाथा। उन सबके हार्दिक उद्गार इस स्मृति-ग्रन्थमें सुलभ हैं। अनेक क्षेत्रोंमें स्व. धर्मदत्त वैद्य द्वारा किये गये कार्यका लेखा-जोखा इस ग्रन्थ में संकलित अनेक लेखोंमें सहज ही उपलब्ध है। सम्पादकीय उदारताका परिचय इस दृष्टिसे भी मिलताहै कि इसमें कुछ ऐसेभी संस्मरण सम्मिलित हैं जो राजनीतिक विचारधाराकी दृष्टिसे वैद्यजीकी दिशामें नहीं सोचतेथे। निश्चय ही ऐसी सामग्रीसे इस ग्रन्थकी प्रमाणिकता बढ़ीहै।

"स्व. पं. धर्मदत्त वैद्य स्मृति-ग्रन्थ" का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यहभी है कि इसमें बरेली नगरकी अनेक विभूतियोंको भी स्मृति क्षेत्रमें लानेका प्रयास किया गयाहै। श्री राघवाचार्य, पं. भोलानाथ शर्मा. पं, राधेश्याम कथावाचक और पं. नाथूराम शर्मा "नम्र" आदि व्यक्तियोंने अपने-अपने क्षेत्रोंमें इस जनपदकी अभूतपूर्व सेवा कीहै। वैद्यजीके संदर्भमें उनको पुन: स्मरण करके इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ जाती है।

स्मृति-ग्रन्थमें ऐसे ही अनेक लेख हैं जो सीधे वैद्यजीके कृतित्व और जीवनपर विचार न करते हुएभी उनसे असम्बद्ध नहीं है। अनेक लोगोंने वैद्यजीके कालकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियोंको केन्द्रमें रखकर अपने विचार प्रगट किये है। इस सामग्रीका क्षेत्र बहुत व्यापक है। नारी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, नयी शिक्षा नीति आदिसे लेकर जनपदकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उपलब्धियोंको उसमें विस्तारपूर्वक रेखांकित किया गयाहै।

---

१. प्रका. : स्व. धर्मदत्त वैद्य स्मृति-ग्रन्थ 'प्रकाशन समिति', धन्वन्तरि मार्ग, बरेली-२४३००३। पृष्ठ : ४४२; क्राउन दुगना, २०४८ (सम्वत्); मूल्य : २५०.०० रु.।

स्वतन्त्रता संग्रामके संदर्भमें साहित्यकी अनेक विधाओं. रचनाकारों ओर प्रवृत्तियोंका आकलन इस स्मृति-ग्रन्थ में हुआहै।

अपने वर्तमान रूपमें पं. धर्मदत्त वैद्यसे सम्बन्धित होनेपर भी यह स्मृति ग्रन्थ एक सन्दर्भ-ग्रन्थका रूप ले सकाहै। जिसमें वैद्यजीके बहाने पूरे जनपद, प्रान्त और देशकी अनेकविध गतिविधियोंका आकलन पर्याप्त प्रामाणिक और विश्वसनीय रूपमें हो सकाहै। ☐

अपने-अपने आइने[1]

साक्षात्कार कर्ता : विक्रमकुमार

समीक्षक : डॉ राधा दीक्षित

प्रस्तुत पुस्तकमें आठ महिलाओं व्यंग्यरचयिता अरुणा शास्त्री, ब्रह्मकुमारी भगिनी आरती, साहित्यकार आशा कोटिया, कवयित्री आशालता मलैया परोपकारी मनोरमा शर्मा, उद्योगी मीना जरे, प्रसिद्ध कथा सर्जक मेहरुन्निसा परवेज तथा अध्यापिका लता जैनसे लिये गये साक्षात्कारों (लेखकके शब्दोंमें समालाप) को संयोजित कियाहै। उक्त सभी साक्षात्कार संग्रहमें प्रकाशित होनेसे पूर्व सन् ८६ से सन् ९० के बीच 'नवभारत' तथा 'ऋतुचक्र' में प्रकाशित हो चुकेहैं। लेखककी साक्षात्कारकी दो पुस्तकें 'नावमें बैठे समन्दर' एवं 'गहरे उतरे लोग' भी पूर्व-प्रकाशित हैं।

प्रत्येक साक्षात्कारके प्रारंभमें संबंधित महिलाका संक्षिप्त परिचय है, जिससे पाठकको साक्षात्कारकी दिशाको समझनेमें सुविधा होतीहै। साक्षात्कारकर्ताके प्रश्न व्यक्तित्वोंके अन्तर्मनको परत-दर-परत खोलनेमें सक्षम है, कहीं भी विनोद हुआ शैलीमें प्रश्नोंमें आतंकित करने, हावी होनेकी चेष्टा नहीं है। साक्षात्कारों में सरल और सहज प्रवाह हैं।

भगिनी आरती, आशालता मलैया एवं मेहरुन्निसा परवेजके साक्षात्कार अच्छे बन पड़े हैं। भगिनी आरती ने ब्रह्मकुमारी बननेसे पूर्वके जीवनकी वैचारिकताको निस्संकोच व्यक्त कियाहै। आशालता मलैयाका व्यक्तित्व कर्मठताके प्रतिरूपमें उभराहै। चर्चित कथाकार मेहरुन्निसा परवेजका साक्षात्कार उनके रचनाकारकी अनेक परतोंको खोलनेमें तथा उनकी रचना प्रक्रियाको रेखांकित करनेमें पर्याप्त सीमा तक सक्षम है।

यह बात कुछ खटकती है कि साक्षात्कारोंमें एक प्रश्न किया गया कि आपका नाम 'अमुक' है, तो आप पर आपके नामका प्रभाव कितना पड़ा। यह या इस जैसा एक प्रश्न। साक्षात्कारकर्ता नामकी चिन्ता छोड़ कर उसके स्थानपर एक अन्य उपयोगी प्रश्न कर सकता था। स्थानाभाव रहा हो या समयाभाव या फिर दृष्टिका अभाव, आशालता मलैयाको छोड़कर शेष साक्षात्कार कुछ अधूरे-से लगतेहैं। कुछ अन्य वैचारिक प्रश्नोंके द्वारा संबंधित महिलाओंसे जुड़े अनछुए पहलुओंको उजागर कियाजा सकताथा।

साक्षात्कार विभिन्न अभिरूचियोंसे जुड़ी महिलाओंसे लिये गयेहैं। इसलिए पुस्तक 'मोनोटोनस' नहीं है और पाठककी रुचि बनाये रखनेमें सक्षम है। ☐

'प्रकर'का प्रकाशन-संबंधी विवरण

फार्म ४ (नियम ८)

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-६

प्रकाशन अवधि : मासिक

मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक : विद्यासागर विद्यालंकार

नागरिक : भारतीय

पता : ए-८/४२, राणाप्रताप बाग दिल्ली-६

स्वामित्व : विद्यासागर विद्यालंकार

मैं विद्यासागर विद्यालंकार घोषित करताहूं कि मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

२८-२-९३. —विद्यासागर विद्यालंकार

---

[1] प्रका. : विक्रमकुमार, ६५ पत्रकार कालोनी, इन्दौर-४५२००२। पृष्ठ : ७४; क्रा. ९१; मूल्य : १८.०० रु.।

लेखक-निर्देशिका

हिन्दी साहित्यकार : विवरणिका[1]

सम्पादक : जगदीश चतुर्वेदी
समीक्षक : माधव पंडित

यह विवरणिका हिन्दी कृतिकारों और भाषा एवं साहित्यकी सेवामें समर्पित व्यक्तित्वोंका संक्षिप्त परिचय है। इसमें केवल जीवित लेखकों और व्यक्तियोंका परिचय है। सामान्य रूपसे नामोंके चयनपर सन्तोष व्यक्त कियाजा सकताहै, परन्तु अनेक महत्त्वपूर्ण नाम छुट गयेहैं, क्योंकि विवरणिकाके लिए नाम चयनका आधार यह रखा गयाहै कि ऐसे 'साहित्यकारोंके नाम निर्देशिकामें सम्मिलित किये जायें जिनका जन्म स्वतंत्रतासे पूर्व हुआही और जिनकी कमसे कम दो पुस्तकें प्रकाशित हों। इसी कारण सम्मिलित लेखकोंकी प्रकाशित कृतियोंके नाम, उनके प्रकाशन' वर्ष आदि भी सम्मिलित कर लिये गयेहैं। नाम-संकलनका आधार सीमित होनेसे विवरणिकाका नाम-चयन भी सीमित हैं। बहुतसे ऐसे चर्चित नाम भी रह गयेहैं जो लम्बे समयसे पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो रहेहैं, परन्तु उनके लेखकके पुस्तकाकार रूप ग्रहण न करनेसे वे इस निर्देशिकाकी सीमामें नहीं आ पाये। फिरभी, जो प्रकाशित है, वह बहुत उपयोगी, सूचना और संदर्भ आदिकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। इसलिए स्वागत योग्य है।

इस विवरणिकाकी एक यह भी विशेषता है कि इसमें वे नामभी सम्मिलित किये गयेहैं जो हिन्दीतर हिन्दी-लेखक हैं। ये नाम केवल विवरणिकाकी शोभा बढ़ानेकी दृष्टिसे नहीं, अपितु यथार्थ रूपसे हिन्दीके लिए समर्पित व्यक्तित्व हैं। हिन्दीके कोटिके लेखकोंके साथ उनका नामोल्लेख और कृतित्वका परिचय इसलिए उल्लेखनीय है क्योंकि हिन्दीभाषी और हिन्दीतर भाषियोंके कृतित्वको लेकर जो विभेदक रेखाएं खींचकर असन्तोषका वातावरण बनाया जाताहै, उसका यह सार्थक उत्तर है। इस प्रसंगमें यह चर्चा करना उपयुक्त होगा। इंडियन इंग्लिश (इंडिश) में लेखनमें प्रवृत्त बुद्धिजीवियोंकी अंग्रेजीके साहित्यिक क्षेत्रों और विवरणिकाओंमें सम्मिलित होनेकी महत्त्वाकांक्षा अभीतक पूरी नहीं हुई। दुर्भाग्य यह है कि यही बुद्धिजीवी अंग्रेजी-साहित्य-क्षेत्रसे निष्कासित होनेपर भी चुप्पी साधे रहतेहैं, परन्तु उनकी हीनग्रंथि भारतीय भाषाओं के क्षेत्रमें यह विद्वेष फैलानेमें सक्रिय रूपसे तत्पर रहतीहै और भाषायी स्तरपर वे देशमें भाषा-विवाद को विस्तार देते रहतेहैं। इसमें उनका चातुर्य यहभी होताहै कि वे यह नारा भी लगाते रहतेहैं कि हमें 'भाषावाद' को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। इसी आधारपर वे इण्डिश साहित्यको भारतीय भाषाओंमें सम्मिलित करातेहैं और इसी आधारपर सम्मान-पुरस्कारके अधिकारीभी माने जातेहैं और वह प्राप्तभी करतेहैं। ये इण्डिश भाषी लेखक क्योंकि वर्तमान सत्ता के अंग हैं, इसलिए अपनी इसी विशिष्टताके कारण असन्तोष और विद्वेषका वातावरण तैयार करते हुए भी भारतीय साहित्यमें सम्माननीय माने जातेहैं।

क्योंकि प्रशासनिक स्तरपर, सत्तापर नियंत्रण इन्हीं इण्डिशभाषियोंका है, इसलिए इस प्रकारकी उपयोगी विवरणिकाओंको जनसामान्यतक न पहुंचने देनेके लिए इसका सरल उपाय यह किया गयाहै कि इस एक सौ

---

[1] प्रका. : केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-६६। पृष्ठ : १७२; डिमा. ९२; मूल्य : २२६.०० रु.।

बहत्तर पृष्ठकी विवरणिकाका मूल्य २२६.०० रुपये रखा गयाहै। इस असाधारण मूल्यपर इसे न कोई खरीदेगा, न इसकी उपयोगितासे परिचित होगा। हिन्दी प्रचारके संवैधानिक दायित्व एवं विभिन्न भाषा-भाषियोंमें सौहार्दभाव बनाये रखनेके प्रयत्नों—दोनोंको निष्फल करनेकी इस तत्परता और इस रूपसे देशको ही विखण्डित करनेके लिए क्रियाशील रहनेके भारत सरकारके इस कौशलका अभिनन्दन किया जाना चाहिये। ☐

हैदराबादके हिन्दी लेखक[१]

सम्पादक : **तेजराज जैन**
समीक्षक : **माधव पंडित**

हिन्दी लेखक संघ, हैदराबादके द्विशतक संगोष्ठी समारोहके अवसरपर यह पुस्तक प्रकाशित की गयीहै। इसमें हैदराबाद और सिकन्दराबाद—नगरद्वयके प्रमुख हिन्दी लेखकोंका परिचय प्रस्तुत किया गयाहै। इस तेलुगुभाषी नगरद्वयमें न केवल हिन्दीभाषी पर्याप्त संख्यामें हैं, बल्कि मराठी; गुजराती तथा दक्षिण भारत के अन्य क्षेत्रोंके भी लोग पर्याप्त संख्यामें हैं। हैदराबाद-सिकन्दराबादमें तेलुगुभाषियों और अन्य भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्कका माध्यम ही केवल हिन्दी नहीं है, अपितु सृजनात्मक लेखनका भी दक्षिण भारतमें एक प्रमुख केन्द्र है। इसी कारण यहां हिन्दी-लेखन कार्यमें प्रवृत्त प्रबुद्ध वर्गकी ओरसे यह लेखक-परिचय पुस्तक प्रकाशित हुईहै। यह न केवल नगरद्वयके लोगोंके लिए उपयोगी है, अपितु दक्षिणके इस केन्द्र स्थलसे सम्पर्क रखनेवालोंके लिए भी उपयोगी है।

पुस्तकमें अकारादि क्रमसे लेखकोंका विवरण और संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत किया गयाहै। इनमें वहां व्यवहारमें आनेवाली सभी भाषाओंके अधिकतम हिन्दी लेखकोंका परिचय है। यह प्रयत्न न केवल इन सभी लोगोंको एक सूत्रमें बांधनेका साधन है, अपितु देश के अन्य केन्द्र-स्थलोंपर केन्द्रित हिन्दीके सृजन-कार्यमें संलग्न लोगोंके लिएभी प्रेरणा-स्रोत। देशके पूर्वी भागमें कलकत्ता, गुवाहाटी और इम्फाल तथा अन्य भागों और क्षेत्रोंमें ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनसे इस प्रकारकी पुस्तकोंके माध्यमसे सरलतासे सम्पर्क स्थापित किया जा सकताहै और सम्पर्क निकटतामें परिवर्तित हो सकताहै। इसलिए ऐसे प्रयासोंका केवल स्वागतही नहीं, उन्हें प्रोत्साहनभी दिया जाना चाहिये।

यह संस्थागत निजी प्रयास है। परन्तु भावनात्मक स्तरपर पूरे क्षेत्र और विभिन्न भाषाभाषियोंमें सम्पर्क-सूत्रका माध्यम प्रदान करने एवं देशके विभिन्न महानगरोंके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे तो यह स्वागत योग्य कार्य हैही, सरकारी और प्रशासनिक कार्योंकी तुलनामें यहां जिस हार्दिकता और उत्साहके दर्शन होते हैं, वह प्रशंसनीय है। ☐

'प्रकर' के संग्रहणीय विशेषांक

"पुरस्कृत भारतीय साहित्य"

प्रतिवर्ष पुरस्कृत होनेवाली सभी भारतीय भाषाओं—हिन्दी सहित—की कृतियोंपर इन विशेषांकोंमें समीक्षा-आलेख संकलित हैं। विशिष्ट पुरस्कार विजेताओंके लेखनपर भी सामग्री दी गयीहै। ये विशेषांक अलगसे उपलब्ध हैं।

प्रकाशन वर्ष	मूल्य	प्रकाशन वर्ष	मूल्य
१९८३	२०.००	१९८८	३०.००
१९८४	२० ००	१९८९	३५.००
१९८५	२०.००	१९९०	३५.००
१९८६	३०.००	१९९१	३५.००
१९८७	३०.००	१९९२	४०.००

सभी विशेषांक एकसाथ मंगानेपर २३५.०० रु. होंगे। डाक व्यय 'प्रकर' देगा।

राशि ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से भेजें।

'प्रकर'

ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

---

[१] प्रका.: हिन्दी लेखक संघ हैदराबाद। प्राप्ति-स्थान : मारवाड़ी प्रेस, अफजलगंज, हैदराबाद—५०००१२। पृष्ठ : १०४; प्रकाशन वर्ष १९९१; मूल्य : २०.०० रु.।

भाषा प्रयोग

व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग[1]

लेखक : डॉ. ओम्प्रकाश

समीक्षक : डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी

भारतीय संविधानमें हिन्दीको राजभाषा स्वीकार कर लिये जानेके उपरांत उसके व्यावहारिक पक्ष और प्रयोगमें आनेवाली समस्याओं व कठिनाइयोंपर प्रकाश डालने और उनका समुचित निराकरण करनेवाली आधिकारिक तथा व्यावसायिक लेखकों द्वारा प्रणीत अनेक पुस्तकें पिछले वर्षोंमें आयीहैं—यह स्वाभाविक भी था। पर कतिपय कृतियोंको छोड़कर इस दिशामें अधिकांश प्रयास या तो छात्रोंपयोगी कोटिसे बाहर नहीं निकल पाये या सरकारी प्रकाशनोंकी ढर्रा-पद्धतिकी एकरसता व्यूहके ही बन्दी बने रहे। इसीलिए वे विषयमें गहरी पैठ, सम्यक् प्रतिपादन, शैली संयोजन आदि किसीभी रचनाको अभीष्ट प्रभावपूर्ण और सहज संप्रेष्य बनाने वाले निकषपर सही नहीं उतर पायीं। आज स्थिति यह है कि संख्याकी दृष्टिसे राजभाषा हिन्दीके व्यावहारिक स्वरूपका परिचय करानेवाली पुस्तकोंकी भरमार है, पर इतर भाषा-भाषीजन हिन्दी भाषाके अध्येता अथवा शुद्ध हिन्दीको सीखने अथवा समझनेके इच्छुक सामान्य देशवासी जनके लिए स्तरीय पुस्तकोंका अबभी प्रायः अभाव है। ऐसे परिप्रेक्ष्यमें हिन्दी भाषा, साहित्यके अनुभवी प्राध्यापक और विद्वान् डॉ. ओम्प्रकाशकी—"व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग" पुस्तकका प्रकाशन एक सामयिक सराहनीय उपलब्धि स्वीकार कीजानी चाहिये।

समीक्ष्य कृतिकी रचनाके मंतव्यका विश्लेषण करते हुए सुधी लेखकने प्रारम्भमें राजभाषाके रूपमें हिन्दीके प्रयोग मार्गमें आनेवाली चार मुख्य कठिनाइयोंकी ओर हमारा ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट कियाहै—"प्रथमतः यह कि जिस वर्गको अंग्रेजीके कारण वरीयता मिलती रहीहै वही वर्ग अंग्रेजीकी समाप्ति नहीं चाहता; वह खुलकर अंग्रेजीका समर्थन तो नहीं कर सकता, परन्तु हिन्दीका हौवा खड़ा करके भोलेभाले लोगोंको डराता रहताहै। द्वितीय कठिनाई हिन्दीभाषियोंकी ओरसे है, वे लोग हिन्दी साहित्यको इतर भारतीय साहित्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझतेहैं। उनको यह जानना चाहिये कि हिन्दी भाषा तो 'राजभाषा' है परन्तु हिन्दीका साहित्य 'राज-साहित्य' कभी समझा नहीं गया। अतः केन्द्रीय सरकार हिन्दी साहित्यके प्रति (पुरस्कार प्रदान करना आदि) जो पक्षपात दिखातीहै वह इतर साहित्य-सेवियोंको बहुत खलताहै। तीसरी कठिनाई उन युवकोंने उत्पन्न कीहै जो संस्कृत बिलकुल नहीं जानते और अपनी कमीको अमरीकी भाषाशास्त्रका आयात करके ढकना चाहतेहैं। वे 'भाषा' और 'भाषाविज्ञान' में भेद नहीं समझते और भारतीय भाषाओंकी आधारभूत संस्कृत और व्याकरणके ज्ञानके बिना ही योग्य बने रहतेहैं। ऐसे लोग राजभाषा हिन्दीका बड़ा अहित कर रहेहैं। चतुर्थ कठिनाईका कारण नौकरीकामी सामान्य जनता है। यह सत्य है कि हिन्दी बोली सारे देशके नगरों तथा कस्बोंमें समझी जातीहै, संगीत और सिनेमाका इस प्रसंगमें असाधारण योगदान है तथा हिन्दी बोलीकी व्यापकताके आधारपर हिन्दी भाषाको 'राजभाषा' का पद प्राप्त हुआहै। परन्तु यहभी सत्य है कि प्रत्येक प्रदेशकी "हिन्दी बोली अलग दिखायी दे जातीहै जिसे प्रादेशिक छापके आधारपर हम 'बंबैया हिन्दी', 'कलकतिया हिन्दी' तथा 'मदरासी हिन्दी' जैसी अभि-

---

[1] प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १९९; क्रा. ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।

व्यक्तियोंका प्रयोग करतेहैं । जब कोई 'बोली' व्यापक बनकर भाषाका रूप ले लेतीहै तो उसका 'एक' परिनिष्ठित (स्टेण्डर्ड) रूप निकल आताहै । जनता सामान्य व्यवहारमें 'बोली' का प्रयोग करतीहै, परन्तु लिखित साहित्य व्याकरण सम्मत भाषाको मान्यता देताहै । राजभाषा हिन्दीका एक ही रूप है जो परम्परागत व्याकरणमें आबद्ध है, उसके शब्द भण्डारका स्पष्टीकरण संविधानके अनुच्छेद ३५१ में कर दिया गयाहै । प्रस्तुत पुस्तककी रचना इन्हीं परिस्थितियों तथा कठिनाइयोंको ध्यानमें रखकर की गयीहै ।''

पुस्तकको १८ अध्यायोंमें विभक्त किया गयाहै । सम्यक् अनुशीलनसे स्पष्ट है कि लेखकने इसमें भाषा-प्रयोग सम्बन्धी सभी पहलुओंपर व्यापक दृष्टिपात कियाहै । प्रारम्भमें ढाई सौ इस प्रकारके शब्द-युग्मोंका चयन कर लेखकने उनका पार्थक्य निर्देशित कियाहै समान प्रतीत होनेके कारण भ्रान्तिवश हम जिनके समीचीन प्रयोगमें कभी-कभी भूल कर जातेहैं । यहां केवल उनका प्रयोगात्मक अन्तर ही नहीं बताया गया अपितु उसको सुस्पष्ट करनेके लिए विषद व्याख्या भी दी गयी है जो पाठकके लिए अन्तरको अधिक संप्रेष्य बना देती है । पुस्तकमें यह प्रवृत्ति आद्यन्त परिलक्षित होतीहै चाहे विशेष शब्दोंकी व्याख्या हो, समानार्थक शब्दोंके व्यवहारमें अन्तरका प्रकरण हो अथवा लोकोक्तियों और मुहावरोंका प्रसंग । लेखकने अपने प्रतिपाद्यको सरल और बोधगम्य बनानेकी ओर समुचित ध्यान सदैव और सर्वत्र रखाहै । द्रष्टव्य हैं ऐसे कतिपय उदाहरण—'अनुकरण'—'अनुसरण'; 'अनुकरण' अथवा 'अनुकृति' शब्दका अर्थ 'नकल' है । यह नकल किसी दूसरे व्यक्तिके व्यवहारकी होती है, उससे प्रभावित होनेपर । 'अनुकरण' में पहले हम प्रभावित होतेहैं फिर उसका-सा व्यवहार करतेहैं । 'अनुसरण' में सोचना, समझना, प्रभावित होना नहीं होता । 'काव्य', 'कविता' दोनों शब्द तत्सम है । दोनों समानार्थक हैं । दोनों 'कवि' शब्दसे भाववाचक संज्ञाएं हैं । 'काव्य' शब्द पुराना है और 'कविता' शब्द अपेक्षाकृत नया । पद्यमयी रचनाको 'कविता' कहतेहैं । गद्यमयी रचना 'कविता' नहीं है, काव्य तो वह हैही । इसी आधारपर यह उक्ति प्रसिद्ध हो गयीहै कि 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति ।'' 'कविता' में बाह्यपक्ष प्रधान होताहै और 'काव्य' में आन्तरिक पक्ष । दूसरा अन्तर यह है कि 'कविता' शब्द छोटी रचनाके लिए भी प्रयुक्त होताहै परन्तु काव्य शब्द नहीं ।'' 'कृपालु'-'दयालु' : दोनों शब्द तत्सम हैं, दोनों ही विशेषण है । 'दया' सामान्य व्यक्तिपर की जातीहै, परन्तु 'कृपा' विशेष व्यक्तिपर । हमारे मित्र हमपर कृपा करतेहैं, जबकि दीन दुःखियोंपर 'दया' दिखायी जातीहै—''भये प्रकट कृपाला दीन दयाला, कौसल्या हितकारी'' (रामचरित मानस) । 'चरित-चरित्र' 'चरित' शब्दका अर्थ आचरित है—जीवन-चरित 'राम चरित' आदि । चरितका सार चरित्र है । 'चरित्र-हीन' 'चरित्र हनन' आदि शब्द । अंग्रेजीमें चरितको कन्डक्ट तथा चरित्रको 'करेक्टर' कहतेहैं । 'चरित' (अथवा कन्डक्ट) आचार-विशेषका नाम है, जबकि चरित्र (अथवा करेक्टर) मनुष्यका स्वभाव है । 'श्रम-परिश्रम', 'श्रम' शारीरिक होताहै । मजदूरोंका नाम श्रमिक है । 'परि+श्रम' = परिश्रम अर्थात् शारीरिक, मानसिक सब प्रकारका श्रम । परीक्षामें सफलता प्राप्त करनेके लिए उसने बहुत परिश्रम कियाथा । 'सृजन-सर्जन', सृष्टिकी प्रक्रियाको सृजन कहतेहैं । 'सर्जन' अंग्रेजी शब्द चिकित्सा शास्त्रसे आयाहै । संस्कृत और हिन्दीमें सर्जन शब्द नहीं बनता, सृजन ही बनताहै । सर्जक कलाकार तो शुद्ध है परन्तु सर्जन नहीं । किन्तु यहां लेखकके कतिपय निष्कर्ष और व्याख्याएं गंभीरतापूर्वक विचारणीय और यथोचित संशोधन सापेक्ष्य हैं—उदाहरणार्थ—'बूरा' चीनीका चूर्ण करके नहीं बनता, खांडको कूटकर बनाया जाताहै और केवल ब्रजमें ही नहीं पूरे उत्तर भारतमें इसी नामसे इसका प्रयोगहोता है । 'संस्कृति' मात्र विचारोंका भावसमूह नहीं, इसकी अवधारणा अधिक व्यापक है । 'बीर' भाई अर्थके द्योतनके रूपमें ही नहीं, एक मुहावरा भी है—'बीर चढ़ना' अर्थात् उन्माद, आवेशके दौरे पड़ना । 'राग' शब्दके निमित्त अर्थोंमें विभिन्न प्रयोगभी लेखकको यहां बताने चाहियेंथे । संगीतके 'राग' के अतिरिक्त यह 'प्रेम' का पर्याय तो हैही । लोकमें कहीं-कहीं ''क्या राग है'', ''मामला क्या है'' के अर्थमें भी प्रयुक्त होताहै । 'बन्ध'-'बन्धन', ये केवल नियन्त्रणके अर्थमें ही नहीं आते, विरोधस्वरूप कामकाज, व्यवस्था ठप्प करानेके लिए भी आये दिन 'बन्ध' आयोजित किये जातेहैं । अगले संस्करणमें इन सुझावोंके परिप्रेक्ष्यमें जहांतहां परिमार्जन कर लेना चाहिये ।

एक व्यावहारिक सुझाव औरभी । इस तथ्यसे हम

सभी परिचित हैं कि भारतकी अधिकतर भाषाओंकी शब्दावलीका मूल संस्कृत भाषा है। लेखकके मतानुसार शुद्ध हिन्दी लेखनके लिए संस्कृत भाषाका थोड़ा ज्ञान आवश्यक है। संस्कृतके अनेक शब्द हिन्दीमें आकर तत्सम-से इतर रूपमें चल पड़ेहैं। भाषाशास्त्रियोंको इससे परहेज नहीं होना चाहिये, भाषा-सामर्थ्यमें वृद्धि इसी प्रकार होती है जैसे शुद्ध शब्द है 'गृहस्थ' पर बोलचाल और लोकव्यवहारमें 'गृहस्थी' का भी उसी आशयमें धड़ल्लेसे प्रयोग होताहै। शुद्ध 'स्वास्थ्य' शब्द है, पर 'स्वास्थय' भी लिखा बोला जाताहै। भाषामें इन सब प्रयोगोंको पचानेकी अपार क्षमता है, इन्हें अमान्य करार देना उचित नहीं। ऐसाही एक शुद्ध शब्द 'मनःकामना' है पर लोकमें 'मनोकामना' शब्दभी इसी अर्थमें व्यापक रूपसे प्रचलित है। 'राष्ट्रिय' के साथ 'राष्ट्रीय' तथा 'अन्तर्राष्ट्रिय' के साथ 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द लोकव्यवहार की नहीं, संचार साधनोंमें निस्संकोच प्रयुक्त होतेहैं। हमारे मतमें ऐसे प्रचलित प्रयोगोंको भाषामें ग्रहण कर लेना निरापद है।

हिन्दी शब्दोंकी वर्तनियोंमें हम अज्ञान, असावधानी अथवा भ्रमवश प्रायः भूल कर जातेहैं। फलतः अशुद्ध रूप चलते रहतेहैं। पृथक् दो अध्यायोंमें यहां चार सौ से अधिक ऐसेही शब्दोंकी तालिका दी गयीहै; साथ साथ उनकी व्याकरण सम्मत विशद व्याख्या भी। उदाहरणार्थ—भाववाचक संज्ञा 'ज्ञान' का विलोम 'अज्ञान' है न कि 'अज्ञानता', पर अज्ञतावश लेखन और व्यवहार दोनोंमें यह अशुद्ध रूप सर्वथा मान्य और प्रचलित है। यों 'अनूदित' शब्द शुद्ध है पर 'अनुवादित' रूप भी देखने सुननेको खूब मिलताहै। वस्तुतः लोकव्यवहारमें ऐसे शब्द-रूपोंकी संख्या यहां निर्दिष्टसे भी कहीं ज्यादा है। आगे साठ ऐसे शब्दोंकी तालिका दी हुईहै जिनके दोनों रूप व्याकरणके नियमानुसार शुद्ध हैं, पर इनमें से प्रायः एक रूपका प्रचार अधिक है। लेखकोंको चाहिये कि वे प्रचलित रूपको अधिक 'प्रामाणिक मानें' (यद्यपि दूसरा भी अशुद्ध नहीं)। व्याकरणके नियमोंके पचड़ेमे न पड़ (ऐसे) लोकप्रिय रूपोंको स्वीकार कर लेना चाहिये। उदाहरणके लिए 'अर्द्ध-अर्ध', 'ईर्षा-ईर्ष्या', 'उषा-ऊषा', 'कर्तव्य, कर्त्तव्य', 'प्रकट-प्रगट', 'बहिन-बहन', 'राजनीतिक-राजनैतिक', 'वशिष्ट-वसिष्ठ', 'वेष-वेश', 'पृथ्वी-पृथिवी' आदि इसी कोटिके कतिपय शब्द हैं।

हम अपने कथनपर विशेष बल देने अथवा इसको अधिक स्पष्ट करनेके उद्देश्यसे प्रायः दुहरे शब्दोंका प्रयोग करते रहतेहैं। पुस्तकमें इसकी भी स्वतंत्र रूप से विस्तारपूर्वक व्याख्या की गयीहै। ऐसे शब्द सार्थक भी होतेहैं, निरर्थक भी। 'सच-मुच', 'भीड़-भाड़', 'झूठ-मूठ' आदि। कुछ सार्थक शब्दोंकी आवृत्ति होतीहै—'कभी-कभी', 'कहीं-कहीं', 'कोई-कोई', आदि। कभी-कभी सार्थक विकल्पोंका प्रयोग किया जाताहै—जैसे 'अपना-पराया', 'सुख-दुःख', 'राग-द्वेष', 'आगे-पीछे' आदि। सार्थक शब्दके साथ समान वर्गके सार्थक शब्दों की आवृत्ति भी यहाँ द्रष्टव्य है—'खोज-खबर', 'फटे-पुराने', 'काम-धन्धा', 'जान-बूझ', 'थका-माँदा' आदि। विपरीतार्थक शब्दोंपर प्रकाश डालते हुए लेखकने उन्हें तीन रूप-प्रकारोंमें वर्गीकृत कियाहै—१. उपसर्गके योग से, २. उपसर्गमें परिवर्तन करके, ३ नवीन शब्दोंको रखकर। 'अ' अथवा 'अन्' उपसर्गके योगसे तथा अन्य उपसर्गोंके योगसे बनाये गये शब्दोंको अनेक उदाहरणों से स्पष्ट कियाहै जैसे—'ज्ञान-अज्ञान'; 'शान्ति-अशान्ति'; 'कीर्ति-अपकीर्ति'; 'अक्षर-निरक्षर'; 'राग-विराग' आदि। उपसर्गमें परिवर्तन करके भी विपरीतार्थक शब्दोंकी रचना होतीहै जैसे मूल शब्द 'दान' है उसमें 'आ' के योगसे आदान बनताहै। इस 'आ' के स्थानपर 'प्र' के योगसे प्रदान शब्द विपरीतार्थक बन जाताहै। उपसर्ग प्रत्ययके योगसे शब्द निर्माणकी प्रक्रियाको विशद रूपसे सोदाहरण समझाया गयाहै। प्रसिद्ध प्रचलित शब्दोंके पर्यायवाची शब्दोंकी संक्षिप्त तालिका भी व्यवहारोपयोगी है। पर विशेष उल्लेखनीय वाक्यांशोंके स्थान पर वैसे ही अर्थका प्रेषण करनेवाली पचास शब्दोंकी सूची है। ऐसे शब्दोंके प्रयोगसे ही किसीभी भाषाकी समास शक्तिका पता चलताहै। कतिपय ऐसे शब्दोंकी विशद व्याख्या आगे की गयीहै जिनके एकसे अधिक अर्थ होतेहैं पर संदर्भसे हम समीचीन आशय ग्रहण कर लेतेहैं जैसे 'पत्र' शब्द 'पत्ता' और 'चिट्ठी' दोनों अर्थों से प्रयुक्त होताहै। 'फल' शब्द संदर्भ-भेदसे 'खानेके फल', 'परीक्षाफल', 'चाकूकी धार' तीन अर्थोंका द्योतक कराताहै। 'विशेष शब्द' प्रकरण वस्तुतः विशेष महत्त्वपूर्ण है। हम इन शब्दोंकी वर्तनी, उच्चारण, प्रयोग भ्रमवश सबमें भूल कर जातेहैं, यथा 'अन्तर्धान'—अन्तर्+धान = 'अन्तर्धान' अर्थात् अदृश्य अथवा लुप्त होजाना। इस शब्दका 'ध्यान' से कोई सम्बन्ध नहीं

है। अत: 'अंतर्ध्यान' लिखना अशुद्ध है। 'सामग्री'—'समग्र' विशेषणसे 'सामग्री' शब्द बनाहै। इस शब्दमें 'म्' के साथ इकार योग नहीं है। 'हवन सामग्री', 'लेखन सामग्री' आदि शब्द। 'सामिग्री' शब्द अशुद्ध है। 'सिंहावलोकन'—सिंह जब आगे बढ़ताहै तो पीछे मुड़कर दृष्टिपात भी करता जाताहै। पिछली कार्यवाहीका लेखा-जोखा। इसमें चौकन्नापन भी है और आत्मविश्वास भी। 'वंध्यासुत'—असंभव वस्तु, 'आकाश-कुसुम' के समान; जिस स्त्रीके सन्तान नहीं होती वह बंध्या' है। 'बंध्या' भूमि भी होतीहै जिसमें कुछ उत्पन्न नहीं होता अर्थात् बंजर अथवा ऊसर। वन्ध्याके सन्तान उत्पन्न नहीं होसकती, सुतकी कल्पना ही व्यर्थ है। 'अरण्यरोदन न्याय', 'नीरक्षीर विवेक', 'भगीरथ प्रयत्न', 'स्थाली पुलाक न्याय' आदि कुछ कठिन शब्द प्रयोगोंकी यहां विशद व्याख्या की गयीहै। प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द समानार्थक प्रतीत होतेहैं पर उनके व्यवहारमें अवश्य अन्तर होताहै जैसे 'अवस्था'—आयु, 'अवस्था' शब्द स्थितिसूचक है; इसमें आयुका संकेत भी रह सकताहै—'छात्रावस्था,, 'बालावस्था', 'विधवावस्था' आदि। आयु वर्षों, महीनों, तथा दिनोंमें व्यक्त की जातीहै। 'आयुष्मान्', 'चिरायु', 'अल्पायु', आदि शब्द। 'निवेदन-प्रार्थना' 'निवेदन' अभ्यर्थना अथवा रिक्वेस्ट है। इस शब्दका प्रयोग अपनी बातको व्यवस्थित ढंगसे रखनेके लिए भी होताहै। 'सादर निवेदन' का नाम प्रार्थना है। इनके निकटतम शब्द विनय तथा विनति हैं। 'प्रार्थना'में याचनाका भाव रहताहै और यह अपनेसे बहुत बड़े व्यक्तिके प्रति की जातीहै। 'विराम'-'विश्राम', 'विराम' अन्तको कहतेहैं, विश्रामका भाव श्रम से विरत होनाहै। 'विराम' में उपलब्धि भी है परन्तु 'विश्राम' में थोड़ी देर आराम करनेके बाद फिरसे कार्यारम्भ करनेका भाव है। दैनिक व्यवहारके इसी प्रकार अनेक शब्द यहां द्रष्टव्य हैं। पर अच्छा होता इनके वाक्य भी उदाहरण व स्वरूप साथ साथ दे दिये जाते। 'शब्दका अर्थ' 'गणनावाचक शब्द', 'मुहावरे', 'लोकोक्तियां' आदि अध्याय प्राय: सामान्य हैं, वैसेभी इन विषयोंपर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। अन्तिम अध्याय—'वाक्योंकी शुद्धि'; 'विराम चिह्न', श्रमपूर्वक प्रणीत हैं, इनके अनुशीलनसे अध्येताके व्यावहारिक भाषा-ज्ञानमें अवश्य अभिवृद्धि होगी। ☐

हिन्दी व्याकरण : नयी दृष्टि

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-७ (२)

नामरूप प्रकरण

—पं० काशीराम शर्मा

[गत अंकमें "हिन्दी व्याकरण मीमांसा—७ (१)" के अन्तर्गत "नाम रूप प्रकरण" में 'नामशब्दों के वर्गीकरण' पर डॉ. दीमशित्स, कामताप्रसाद गुरु और किशोरीदास वाजपेयीके पक्ष विवेचनके साथ प्रस्तुत कियेथे। इस अंकमें लेखकने अपने विचार प्रस्तुत कियेहैं।]

६१.०. नाम शब्दोंका वर्गीकरण कैसे सम्भव—हम देख चुकेहैं कि वैयाकरणोंने जो वर्गीकरण किये वे व्याकरणिक आधारपर कम हैं, इतर आधारोंपर अधिक। इन वर्गीकरणोंसे छात्रको अनेक पारिभाषिक संज्ञाओंकी जानकारी मिलतीहै,

वर्गीकरणका बौद्धिक व्यायाम होताहै, कोई-न-कोई आधार मानकर वर्गीकरण करनेकी पद्धति आ जाती है। पर, यह सब तर्कशास्त्रका विषय है, व्याकरणका नहीं। तो क्या करें ? नामकी परिभाषामें हम देख चुकेहैं कि वे ऐसे शब्द हैं जिनमें प्राय: वचन द्योतक प्रत्यय जुड़कर बहुवचनका बोध करातेहैं तथा परस्थानिक जुड़कर कारकादि अर्थोंकी दिशा निर्धारित करतेहैं। पर क्या इनका व्याकरणिक रूप रचनाके आधारपर वर्गीकरण सम्भव है। हमारा विचार है कि सम्भव है। हम सुविधाके लिए संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण आदि शब्दोंका ही प्रयोग करेंगे। पर हमारी परिभाषाएं भिन्न होंगी। वे व्याकरणिक रूप रचनासे संबद्ध होंगी। पाणिनिके व्याकरणसे हम शब्दोंके वर्गीकरणका आधार ग्रहण करेंगे पर उसका प्रयोग हिन्दी की प्रकृतिके अनुरूप करेंगे।

६१.१. पाणिनिने देखाथा कि अधिकतर कल्पित प्रातिपदिक तो एक तरहकी रूपरचनाके माध्यमसे समझाये जा सकतेहैं पर कुछ थोड़े से ऐसे हैं जो उस रूपमालासे भिन्न मार्ग अपनातेहैं। यथा—'राम-बालक-शिव-नर' जैसे अनेक अकारान्त प्रातिपदिक तो रामाय-रामात्-रामे जैसे रूप धारण करतेहैं पर 'सर्व' आदि ऐसेभी हैं जो इनके समकक्ष स्थानोंपर सर्वस्मै-सर्वस्मात्-सर्वस्मिन् जैसे रूप धारण करतेहैं। ऐसे पैंतीस शब्द पाणिनिने ढूंढे और उन्हें सर्वादिगणमें स्थान देकर 'सर्वनाम' संज्ञा दे दी। इन पैंतीसमें कुछ ऐसेभी थे जिनकी रूपरचना दोनों प्रकारकी थी। यथा पूर्वस्मै-पूर्वस्मात्-पूर्वस्मिन् भी और पूर्वाय-पूर्वात्-पूर्वे भी। परन्तु पाणिनिकी चिन्ता नहीं हुई। जब सर्ववत् रूप हों तो 'सर्वनाम' और जब रामवत् हों तो सामान्य 'नाम'। पर यह वर्गीकरण केवल रूप रचनाके आधार पर था अत: व्याकरणिक था। इसीलिए वहां विशेषण पृथक् वर्ग नहीं है। विशेष्य-विशेषण सम्बन्ध अवश्य ज्ञात है और उसके दर्शन कर्मधारय और उसके भेद द्विगु समासमें होतेहैं। कर्मधारय समासमें विशेषण शब्दके 'सुप्' का लोप हो जाताहै और द्विगुमें संख्यावाचक शब्दके सुप् का। अन्यथा विशेषण कोई पृथक् वर्ग नहीं है। कृष्णसर्प का विग्रह कृष्ण: सर्प: होगा तो दोनों शब्द नाम होंगे। 'एकस्मिन्' सर्वनाम यदि समस्त होगा तो 'एक' रूपमें होगा। हम हिन्दीमें इसी से कुछ मार्गदर्शन लेकर रूपाधारित वर्गीकरण कर सकतेहैं।

६१.२.०. हिन्दीके सर्वनाम—हिन्दीमें मैं, हम, तूं, तुम, वह, वे, यह, ये, कौन, जो आदि ऐसे शब्द हैं जो परस्थानिक रहित प्रयुक्त हों तब तो इसी रूपमें प्रयुक्त होतेहैं पर को-से-में आदि परस्थानिक जुड़नेपर 'हम-तुम' के अतिरिक्त सभी रूप बदल लेतेहैं। इनके स्थानापन्न मुझ-तुझ-उस-इस-किस-जिस आदि हो जातेहैं। 'हम-तुम' को इस वर्गमें एक दूसरी विशेषताके कारण रखा कि इस वर्गके सभी शब्दोंमें 'ए' परस्थानिक जुड़ताहै ('को' के विकल्प रूपमें) यथा : मुझे-तुझे-हमें-तुम्हें-उसे-उन्हें-इसे-इन्हें-किसे-किन्हें-जिसे-जिन्हें। तीसरी विशेषता यह कि 'कौन-जो' उभयवचनी हैं पर इनके स्थानापन्न 'किस-जिस' के बहुवचन 'किन-जिन' होतेहैं। चौथे, तुम्हें-इन्हें-उन्हें-किन्हें में 'ह' का आगम हो जाताहै। पांचवें, मैं-तू के साथ 'ने' सीधे जुड़ताहै जबकि अन्य परस्थानिक 'मुझ-तुझ' में। छठे, मैं-हम-तू-तुम में का/की/के न जुड़कर रा/री/रे के रूप बनतेहैं। सार यह कि इस वर्गके शब्दोंकी रूप रचनामें इतने वैचित्र्य हैं कि इन्हें भी संस्कृत सर्वनामोंके समान अलग सर्वनाम वर्ग घोषित कियाजा सकताहै।

६१.२.१. सर्वनामोंके प्रसंगमें हिन्दीके सभी व्याकरण उत्तम-मध्यम-अन्य पुरुषोंकी चर्चा अवश्य करते हैं। यह अंग्रेजी व्याकरणोंका प्रभाव है जहां वक्ता-श्रोता और अन्यके आधारपर वर्गीकरण किया जाता है। पर रूप रचनामें इस वर्गीकरणका कोई महत्त्व नहीं, अत: संस्कृत व्याकरण इसकी चर्चा नहीं करते। 'धातुरूपावली' का विभाजन अवश्य पुरुषमूलक हैं। प्रत्येक लकारके नौ-नौ रूप हैं जो पुरुष और वचनके आधारपर वर्गीकृत हैं। उदाहरणार्थ पठति-पठत:-पठन्ति रूप प्रथम पुरुषके हैं, और क्रमश: एक-द्वि-बहुवचनके रूप हैं। पठसि-पठथ:-पठथ मध्यम पुरुषके रूप हैं और पठामि-पठाव:-पठाम: उत्तम पुरुषके रूप हैं—तीनों वचनोंके पृथक्-पृथक्। इनमें उत्तम पुरुषके रूप 'अस्मद्' के तीनों वचनोंके रूपोंसे क्रमश: सम्बद्ध हैं, मध्यम पुरुषवाले युष्मद् के रूपोंसे तो प्रथम पुरुषके शेष सभी शब्द रूपोंसे। अत: संस्कृतके वैयाकरण चाहें तो 'अस्मद्' को उत्तम, युष्मद् को मध्यम और शेष शब्दों को प्रथम पुरुषके अन्तर्गत रख सकतेहैं। वहां ये रूप परस्पर संबद्ध हैंभी। पर हिन्दीमें ऐसा कुछ नहीं है। मैं-वह-तू के साथ 'आया' तथा हम-तुम वे के साथ 'आये' समान रूपसे प्रयुक्त होंगे। पर 'आया' के बाद

'हो' आख्यातके रूप भी हों तो मैं के साथ, 'हूँ', तुमके साथ 'हो', शेषके एकवचनके साथ 'है' तथा बहुवचनके साथ 'हैं' प्रयुक्त होंगे। अत: न तो सर्वनामोंके और न आख्यातोंके ही पुरुषमूलक वर्गीकरणकी सार्थकता है। 'वक्ता-श्रोता-अन्य' का तो आधार ही गलत है। 'हम' में वक्ता-श्रोता-अन्य तीनोंका अर्थ सम्भव है और 'तुम' में श्रोता और अन्य दोनोंका। 'आप' तो सर्वनाम वर्गमें है ही नहीं क्योंकि उसकी रूप रचना शेष नामोंके तुल्य हीहै।

६१.३. **संज्ञा नाम**—ऊपर सर्वनाम वर्गमें ऐसे शब्दोंको रखा गया जिनकी रूप रचनामें शेष नापोंका तुलनामें वैचित्र्य है। दूसरे ये सभी शब्द पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनोंमें समान रूपसे प्रयुक्त होतेहै। अर्थात् लिंगभेद आवश्यक नहीं। वह संलग्न आख्यात रूपमें ही प्रकट होगा। शेष नामोंको 'संज्ञा नाम' या केवल संज्ञा कह सकतेहैं। संज्ञा नामको लिंगके आधारपर विभक्त करना आवश्यक है क्योंकि लिंग-भेदसे रूप-भेद हो सकताहै। 'बालक' और 'पुस्तक' दोनों ही शब्दोंके अन्तमें 'अक' अंश समान है। पर बहुवचनमें दोनोंका रूप भेद देखें: (१) बालक दौड़े; (२) पुस्तकें फट गयीं। माली—इमली, दोनों के अन्तमें 'ली' है पर पुलिंग-स्त्रीलिंग के कारण रूप-भेद है: (१) माली सो गये; (२) इमलियाँ सूख गयीं। हिन्दीके अनेक पुलिंग आकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिंग रूप ईकारान्त हो जाते हैं। इनमें बहुवचनके रूप दोनों प्रसंगोंमें बदलतेहैं: लड़के दौड़े, लड़कियां दौड़ीं। 'लड़का-लड़की' के बाद परस्थानिक हो तबभी रूप-भेद होगा: लड़केको, लड़की को। पुलिंगमें परिवर्तन हुआ, स्त्रीलिंगमें नहीं। बहुवचन रूप परस्थानिकसे पूर्व समान होगा: बालकों को, पुस्तकोंको, लड़कोंको, लड़कियोंको—सर्वत्र 'ओं' से वचन-बोध। अत: जिन शब्दोंमें लिंगके आधारपर रूप-भेद हों उन्हें 'संज्ञा नाम' या 'संज्ञा' कह सकतेहैं। सर्वनामसे रूप-भेद ऊपर स्पष्ट कियाजा चुकाहै।

६१.४. **विशेषण**—रूप रचनाका एक और वैचित्र्य देखें: 'छोटा आ गया पर बड़ा नहीं आया', 'छोटे आ गये', छोटेको मत सताओ', 'छोटोंको मत सताओ' —यहाँ 'छोटा' के सभी रूप 'लड़का' के समान हैं। पर 'छोटा' जब किसी विशेष्यसे पूर्व विशेषण रूपमें आये तो कुछ स्थिति बदलेगी। छोटा लड़का, छोटे लड़के, छोटे लड़के को तक तो स्थिति समान है पर 'छोटे लड़कोंको, में 'छोटों' न होकर 'छोटे' ही रह गया। यों अपने विशेष्यसे पूर्व प्रयुक्त होनेपर 'छोटा' शब्दकी रूप-रचना किंचित् भिन्न मार्ग अपनातीहै। यह अन्तर इसके विशेष्यसे पूर्व प्रयुक्त होनेके कारण आया, अत: इस प्रकारके शब्दोंको 'विशेषण' नामक पृथक संज्ञा भेद मान सकतेहैं। ये जब विशेष्यसे पूर्व प्रयुक्त हों तो 'विशेषण' होंगे और रूप रचना भिन्न होगी पर अकेले प्रयुक्त हों तो 'संज्ञा' के समान रूप रचना होगी। यथा: छोटों को (संज्ञावत्), छोटे लड़कों को (विशेषण रूपमें)। कुछ आख्यात रूप भी (यथा: आता, आया) विशेषण रूपमें प्रयुक्त होतेहैं। यथा: मरा घोड़ा, दौड़ता घोड़ा। ये आख्यात रूप भी अन्य विशेषणोंके समान रूप-रचनावाले हैं। अत: संज्ञाके रूप में प्रयुक्त होनेपर संज्ञाके समान और विशेषणके रूपमें प्रयुक्त होनेपर विशेषणके समान ही इनकी रूप रचना होगी। यथा: मरों को मत मारो, मरे घोड़ोंको मत मारो; भागतोंको मत रोको, भागते घोड़ोंको मत रोको।

६१.४.१. आख्यात शब्दोंसे बने इन संज्ञाओं और विशेषणोंको कुछ लोग 'कृदन्त' कहतेहैं। हमारे विचार से 'कृदन्त' अधिक व्यापक शब्द है अतः इनके लिए प्राचीन शब्द 'शत्रंत' (दौड़ता) और क्तांत (दौड़ा) का प्रयोग कियाजा सकताहै। कृदन्त तो 'ल्युडन्त' भी हैं (चलना-पढ़ना आदि) पर उनका प्रयोग केवल संज्ञावत् होताहै, विशेषणवत् नहीं। इसलिए इस वर्गके विशेषणोंके लिए अतिव्याप्तिवाले 'कृदन्त' शब्दका प्रयोग ठीक नहीं।

६१.५. हम देख चुकेहैं कि 'संज्ञा-विशेषण' वर्गोंके शब्दोंमें 'आकारान्त' पुलिंग शब्द भिन्न मार्ग अपनाते हैं। 'बालक, माली, साधु, कात्र, रासो' सभी एकवचन-बहुवचनमें समान रहतेहैं। परस्थानिक जुड़नेपर एकवचनमें यथावत् बने रहतेहैं, बहुवचनमें 'ओं' को ग्रहण करतेहैं। पर आकारान्त शब्द लड़का-लड़के (परस्थानिक रहित), लड़के-लड़कों (परस्थानिक सहित) जैसे रूप ग्रहण करतेहैं। पर कुछ आकारान्त शब्द ऐसेभी हैं जो इस रूप-रचनाको नहीं अपनाते। यथा: राजा, पिता, भ्राता, मामा, चाचा, दादा। इनकी पूरी सूची यथास्थान दी जायेगी। ये 'बालक-माली' वर्गोंके शब्दोंके समान ही प्रयुक्त होतेहैं। 'लड़का' वर्गके शब्दोंकी व्युत्पतिको लेकर तरह-तरहके

तकं उपस्थित किये जातेहैं। कोई कहताहै अपभ्रंश बनाते समय 'क' स्वार्थे प्रत्यय लगाकर उसका लोप करतेथे और यों घोटक-घोटअ-घोड़ा क्रमसे ये बने। कोई कहतेहैं यह पु. विभक्ति है जो खड़ी बोलीकी विशेषता है और इसकी खड़ी पाईके कारणही खड़ी बोली नाम पड़ गया। ये सब कल्पनाएं व्याकरणके क्षेत्रमें नहीं आती, फिरभी पंडित लोग इनकी चर्चा किये बिना नहीं रहते। अतः अप्रासंगिक होते हुएभी स्थिति स्पष्ट करना उचित है। यह चक्कर केवल तद्भव शब्दोंमें है। राजा, पिता, भ्राता आदि यथानियम प्रथमा एकवचन रूपमें गृहीत हुए और अन्य शब्दोंके समान रूप-रचना अपना चुके। पर 'घोट-घट' आदि प्राच्य भाषाओंमें 'घोड़ा-घड़ा' आदि रूपोंमें परिणत हुए। संस्कृतमें 'अ' संवृत था, प्राच्य भाषाओंमें विवृत। प्राच्य भाषाओंमें अघोष ध्वनियोंका प्रयोग केवल शब्दारंभमें होताथा, अन्यत्र सघोष। इसलिए 'ट' का 'ड' हुआ और संवृत 'अ' विवृत। पर यह विवृत 'अ' ह्रस्व ही था, बस इसके उच्चारणमें 'आ' से आधा काल लगताथा। पर लिपिमें उसके लिए ॲा जैसी कोई अलग व्यवस्था नहीं थी अतः दीर्घ ही लिखा जाता रहा है। इसीलिए 'अशोक', 'गुप्त' आदिके अंतिम 'अ' का विवृत उच्चारण सुनकर हम दीर्घवत् लिखने भी लगे हैं: अशोका, गुप्ता। पर वस्तुतः यह 'अ' का विवृत उच्चारण है और केवल तद्भव शब्दोंमें है। पर तद्भव शब्दोंकी संख्या इतनी विशाल है कि अब इस विवृत उच्चारणको ही दीर्घ 'आ' मानना आवश्यक हो गया है। शुद्ध 'आकारान्त' शब्दोंको केवल अपवाद बतानेकी प्रथा हो गयीहै जिसे बदलनेकी हम आवश्यकता नहीं समझते, न ह्रस्व विवृत ॲा के लिए लिपिमें अतिरिक्त चिह्नकी आवश्यकता समझतेहैं। पाठक इस अप्रासंगिक चर्चाके लिए क्षमा करें जो भ्रमनिवरणार्थ करनी पड़ी। आगे हम 'नाम प्रकरण' की प्रस्तावित रूपरेखा पुरःस्थापित करेंगे।

६२.०. नाम वर्गके शब्दोंके भेद-प्रभेद—जिन शब्दोंको अपना अर्थ अभिव्यक्त करनेके लिए अनेक प्रसंगोंमें परस्थानिककी सहायता अपेक्षित होतीहै, उन्हें 'नाम वर्ग' के अन्दर रखाजा सकताहै। व्याकरणिक रूप-रचनाके आधारपर 'नाम' वर्गके कुछ भेद-उपभेद भी किये जा सकतेहैं। इस प्रकरणके विवेचनके लिए लिंग और वचन जैसी परिभाषात्मक संज्ञाओंका भी प्रयोग करना होगा। इनकी परिभाषाएं बादमें यथास्थान दी जायेंगी जहां देखीजा सकतीहैं। यहां प्रसंगसे पाठक जान जायेंगे, ऐसी आशा है। परस्थानिककी परिभाषा पहले दे चुकेहैं। नाम वर्गके शब्दोंको उनकी रूप-रचनाके आधारपर उपवर्गोंमें विभक्त कर सकतेहैं। अधिकांश शब्द तो रूप-रचनाकी दृष्टिसे एकसे हैं पर कुछ शब्द औरोंसे भिन्न हैं। इन्हें 'सर्वनाम' वर्गके अतर्गत रखा जायेगा। शेष 'संज्ञा' अथवा 'संज्ञानाम' कहलायेंगे। 'संज्ञा' शब्दोंमें कुछ शब्द ऐसे हैं जो स्वतंत्र रूपसे आतेहैं तब तो शेष संज्ञा शब्दोंके समानही रूप ग्रहण करतेहैं पर जब किसी अन्य शब्दके विशेषणके रूप में उससे पूर्व जुड़तेहैं तब उनकी रूप-रचनामें अन्तर आ जाताहै। उस स्थितिमें उन्हें 'विशेषण' कहा जायेगा। यों सर्वनाम, संज्ञा और विशेषणका यह वर्गीकरण रूप-रचनाके आधारपर होगा। एक-एक वर्गका परिचय इस प्रकारहै :—

६२,१.०. सर्वनाम वर्ग—इस वर्गके अंतर्गत निम्नलिखित शब्द हैं : मैं, तू, हम, तुम, वह, वे, यह, ये, जो, कौन, कोई इनके कुछ लक्षण ऐसे हैं जो सबमें समान हैं पर संज्ञा शब्दोंसे भिन्न हैं। कुछ लक्षण ऐसे हैं जो इनमें से कुछमें, कुछमें नहीं हैं। उन सब लक्षणोंका परिचय इस प्रकार दे सकतेहैं :

(क) ये सभी शब्द दोनों लिंगोंमें समान रूपसे प्रयुक्त होतेहैं। केवल संबद्ध आख्यात रूपसे ही लिंग निर्णय सम्भव हैं। कहीं कहीं यह काम विशेषणसे भी होताहै पर कहीं कहीं केवल प्रसंगसे। यथा, मैं जाता हूं, मैं जातीहूं; मैं अच्छा हूं; मैं सुन्दर हूं (केवल प्रसंग से)। अतः इनके विषयमें लिंगकी चर्चा न करना ही उचित हैं।

(ख) 'कोई' के अतिरिक्त ये सभी शब्द 'ए' परस्थानिक ग्रहण करतेहैं जो संज्ञा शब्द नहीं करते। पर उसे ग्रहण करनेसे पूर्व ये अपना स्थान अपने प्रतिनिधि को दे देतेहैं। वे प्रतिनिधि हैं मैं (मुझ), तू (तुझ), वह (उस), वे (उन), यह (इस), ये (इन), जो (जिस), कौन (किस)।

(ग) शेष परस्थानिक भी उस प्रतिनिधिके ही साथ जुड़नेहैं। पर मैं, तू, हम, तुम के साथ 'ने' इसी रूपमें जुड़ताहै; प्रतिनिधिके साथ नहीं। शेषके प्रतिनिधियोंके साथही जुड़ता है।

(घ) 'जो, कौन, कोई' के स्थानापन्न 'जिस-किस' किसी केवल एकवचनमें हैं, बहुवचनमें 'जिन-किन' किन्हीं होतेहैं। 'किस', 'क्या' का भी स्थानापन्न होता है जब वह बिशेषणवत् प्रयुक्त हो। यथा : क्या चीज लोगे। किस चीज को लोगे।

(ङ) 'इन-उन-किन-जिन' स्वयं स्थानापन्न हैं पर 'ने' परस्थानिकसे पूर्व इनके भी स्थानापन्न इन्हों-उन्हों-किन्हों-जिन्हों हो जातेहैं।

(च) मुझ-तुझ-हम-तुम के साथ का/की/के परस्थानिक नहीं जुड़ते। उनका भाव 'मेरा-तेरा-हमारा-तुम्हारा, मेरी-तेरी-हमारी-तुम्हारी, मेरे-तेरे-हमारे-तुम्हारे व्यक्त करतेहैं। शेष शब्दोंके साथ का/की/के का ही योग होताहै। कुछ लोग मुझको-तुझको-हमको तुम को के अर्थमें मेरे को-तेरे को-हमारे को-तुम्हारे को भी प्रयुक्त करतेहैं। पर इस प्रयोगको शिष्ट प्रयोग नहीं माना जाता। यह प्रयोग होता भी बोलचालमें ही है, लिखितमें नहीं।

(छ) 'ए' परस्थानिक लगनेपर निम्नलिखितमें 'ह' का आगम हो जाताहै : तुम्हें-इन्हें-उन्हें-जिन्हें-किन्हें और 'ए' को सानुनासिक भी लिखा जाताहै। 'हमें' में भी ऐसाहै। इस प्रकारकी विशेष रूप-रचनाके इन शब्दोंका सर्वनाम वर्ग अलग मानना उचित है।

६२.१.१. अधिकांश वैयाकरण 'आप' को दो अर्थोंमें और 'अपना' को भी सर्वनामोंमें स्थान देतेहैं और आप को मध्यम पुरुषका सर्वनाम मानतेहैं। पर 'आप' अपने तीनों अर्थों (१. 'तुम' का आदरार्थ, २. 'वे' का स्थानापन्न और ३. 'स्वयं' के अर्थमें) सामान्य संज्ञा ही है क्योंकि उसकी रूप-रचना शेष संज्ञा शब्दोंके समान ही है। (ध्यान रहे संस्कृतका 'भवान्' शब्द भी सर्वनाम वर्गमें नहीं माना जाता और उसके साथ धातु रूपभी प्रथम पुरुषका होताहै।) 'अपना' तो 'निजी या स्वकीय' के अर्थमें प्रयुक्त विशेषण है जिसके अच्छा-अच्छी-अच्छेके समान अपना-अपनी-अपने रूप बनतेहैं।

६२.२.०. **संज्ञा वर्ग**—इस वर्गके शब्दोंमें परस्थानिकसे पूर्वकी रूप-रचनामें प्रायः लिंगके आधारपर भी भेद होताहै। अतः उन्हें पु.-स्त्री वर्गोंमें विभक्त किया जाताहै और यह ध्यान रखना पड़ताहै कि इस वर्ग-भेदके कारण रूप-रचनाका भी भेद होताहै। राजा-पिता-कर्ता-भर्ता-धर्ता-संहर्ता जैसे तत्सम 'आकारान्त' शब्दोंको छोड़कर सभी तद्भव आकारान्त शब्दों की रूप-रचना अपना भिन्न मार्ग अपनातीहै। अतः इस बातका भी ध्यान रखना होताहै। इस दृष्टिसे संज्ञा शब्दकी रूप-रचनाके नियम संक्षेपमें यों गिना सकतेहैं :

(क) परस्थानिक रहित पुल्लिग तद्भव आकारान्त शब्दोंका बहुवचन रूप एकारान्त होताहै। यथा : घोड़ा आया (ए. व.) घोड़े आये (बहुवचन); घड़ा फूटा, घड़े फूटे।

(ख) परस्थानिक सहित होनेपर एकवचनमें 'आ' 'ए' में बदलताहै और बहुवचनमें 'ओं' जुड़ताहै। उदा. लड़के ने, घड़े को, अच्छे से, लड़कों ने, घड़ों को, अच्छों से।

(ग) शेष पुल्लिग संज्ञा शब्द परस्थानिक रहित हों तो दोनों वचनोंमें समान रहतेहैं। यथा : पेड़ टूटा, पेड़ टूटे, राजा आया, राजा आये, कवि आया, कवि आये; आदमी उठा, आदमी उठे; साधु आया, साधु आये; भालू भागा, भालू भागे; कात्रे आया, कात्रे आये; रासो पढ़ा, रासो पढ़े।

(घ) वे ही शब्द यदि परस्थानिक सहित हों तो एकवचनमे यथावत् रहतेहैं, बहुवचनमें 'ओं' प्रत्यय ग्रहण करतेहैं। पर शब्दान्तमें ई-ऊ हों तो बहुवचन प्रत्यय लगनेसे पूर्व इ-उ में बदल जातेहैं। यथा : पेड़को देखो, पेड़ों को देखो; राजा को देखो, राजाओं को देखो; कवि को बुलाओ, कवियों को बुलाओ; आदमी से कहो, आदमियों से कहो; साधु की भक्ति, साधुओं की भक्ति, भालू के गुण, भालुओं के गुण, कात्रे के भाई, कात्रेओं का घर; रासो का पाठ, रासाओं का संपादन।

(ङ) स्त्रीलिंग शब्द एकवचन सदा समान रहते हैं चाहे परस्थानिक सहित हों चाहे परस्थानिक रहित। यथा : बहन आयी, बहनने खाना खाया; माता बोली, सीता को देखो; रुचि दौड़ी, सुरुचि ने कहा; नदी बही, नदी ने मार्ग बदला; मधु हँसी, मधु ने खाना खाया, बहू सो गयी, बहू ने पुत्र जना; बेबे बोली, बेबे ने खाना बनाया; पारो चली गयी, पारो ने पुस्तक पढ़ी।

(च) परस्थानिक रहित स्त्रीलिंग शब्दमें यदि इकारान्त-ईकारान्त हों तो बहुवचनमें उनके अंतमें 'आ' प्रत्यय जुड़ताहै जो संधिके कारण 'यां' में बदल जाताहै तथा दीर्घ 'ई' का ह्रस्वीकरण हो जाताहै। यथा : रुचि-रुचियां, नदी-नदियां।

(छ) शेष स्त्रीलिंग शब्द परस्थानिक रहित हों

तो उनमें बहुवचन में 'एं' प्रत्यय जुड़ताहै। यथा : बहनें गयीं, माताएं सो गयी, बहुएं छिप गयीं।

(ज) परस्थानिक सहित स्त्रीलिंग शब्दोंमें बहुवचनमें 'ओं' प्रत्यय जुड़ताहै। यथा : बहनों को, माताओं से, रुचियों ने, नदियों पर (ई का ह्रस्वीभाव), बहुओं के (ह्रस्वीभाव)।

६२.३.० **विशेषण वर्गके शब्द**--इस वर्गके शब्द जब अपने विशेष्यसे पूर्व प्रयुक्त होतेहैं तब प्राय: उनको एक ही रूपमें देखा जाताहै। यथा : सुन्दर लड़का, सुन्दर लड़के, सुन्दर लड़की, सुन्दर लड़कियां, भोली लड़की, भोली लड़कियां, सुन्दर लड़केने, सुन्दर लड़कों ने, सुन्दर लड़कियोंने, सुन्दर लड़कीने, भोली स्त्री ने, भोली स्त्रियों ने। किन्तु जब विशेषण 'आकारान्त' पुलिंग हो तो रूप-रचना प्रभावित होतीहै। यथा : अच्छा लड़का आया, अच्छे लड़के आये, अच्छे लड़केने गाना गाया, अच्छे लड़कों ने गाना गाया। एकवचनमें तो परस्थानिक का प्रभाव 'अच्छा' विशेषणपर पड़ा पर-बहुवचनमें वह 'अच्छे' रूपमें रहा, 'अच्छों' नहीं बना। यह विशेषणकी विशेषता है तो केवल पुल्लिग में काम करतीहै। यह नियम आख्यातज विशेषणोंपर भी लागू होताहै। यथा : दौड़ता घोड़ा, दौड़ते घोड़े, दौड़ते घोड़े ने, दौड़ते घोड़ों को; मरा कुत्ता, मरे कुत्ते, मरे कुत्ते को, मरे कुत्तों को।

६२.३.१. विशेषणोंका एक अवांतर वर्ग संख्यावाचक शब्दोंका है। इनका पृथक् उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि इनका प्रयोग जब संख्या सूचनके लिए होताहै तब तो वे सदा एक रूप रहतेहैं। यथा : पांच लड़के, पांच लड़कों ने, पर जब उनके समष्टि-रूप का उल्लेख करनाहो तब इनमें बहुवचन प्रत्यय 'ओं' लगातेहैं; यथा : पांचों छात्र, दसों दिशाएं। संख्याके अनिश्चय बोधके लिए भी 'ओं' प्रत्यय लगताहै। यथा : सैकड़ों लोग, हजारों वर्ष, लाखों मील।

६३. **निष्कर्ष**--यों परस्थानिक ग्रहणकर सकने वाले 'नाम' कोटिके शब्दोंको शुद्धत: रूप-रचनाके आधारपर सर्वनामों और संज्ञाओंमें विभक्त कर सकते हैं। फिर संज्ञाओंका अवान्तर भेद विशेषण और विशेषणका अवान्तिर भेद संख्याबोधक भी रूप-रचनाके आधार पर बतायाजा सकताहै। इस रूप-रचनात्मक शब्द-भेद की तो उपयोगिता है पर केवल बौद्धिक व्यायामके रूप में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, संख्यावाचकके अनेक भेद-प्रभेद करते जानेका कोई लाभ प्रतीत नहीं होता। ☐

[आगामी अंकमें 'परस्थानिक प्रकरण']

विविध

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

राजनीति और साहित्य[1]

लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र सिंह

पुस्तक स्वर्गीय डॉ. रमेशचन्द्र सिंहके समय-समय पर प्रकाशित लेखोंका संग्रह है। लेखक साम्यवादी विचारधाराके पोषक रहेथे। स्वाधीन भारतके जन-जीवनमें गत कई दशक ऐसे रहे जिनमें उसके मानसिक पटलपर साम्यवाद छाया रहा, और देश तथा समाजके कर्णधारोंने उसमें विपन्न नागरिकोंके परित्राणका एकमात्र उपाय पाकर अपनी ऊर्जासे घोष-तंत्रियों और लेखनियोंको चालित किया। उस प्रयाससे विग्रह और वर्ग-संघर्षकी वृद्धिके अतिरिक्त हाथ कुछ नहीं लगा। स्यात् इसलिए कि प्राय: राष्ट्रके हित-चिन्तकोंकी कथनी और करनीमें अन्तर ही नहीं रहा, अपितु कालकी गति के साथ वह बढ़ताभी गया। दैवयोगसे दलदली भूमि पर स्थित साम्यवादका तथाकथित सबसे सुदृढ़ दुर्ग पूंजीवादके चक्रवातको अधिक काल तक सहन नहीं कर पाया, और एक दिन अकस्मात् ढह गया। देखना

है उसका पुनर्निर्माण होताहै या वह ऐतिहासिक स्मारकोंमें पंक्तिबद्ध हो जाताहै। उसके धराशायी होजानेसे भारतकी साम्यबादी मनीषाभी खेदसूचक स्थिति में आ गयीहै।

साहित्यके समाजका दर्पण होनेके कारण उसमें भी साम्यवादी चिन्तन और सृजनने प्रवेश पाया, और परम्परागत मानदण्डोंका आंशिक स्थान अभिनव मापकों ने लिया; रूढ़ियोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द वातावरणमें विचरनेका भाव-वोध उत्पन्न हुआ। इस क्रांतिकारी भूमिकाके निर्वाहके लिए आवश्यक बद्ध-भूमि और साज-सज्जा जुटानेवाले गण्यमान हिन्दी साहित्यकारों में डॉ- सिंहका योगदान भी स्मरणीय है। उनकी अवधारणाओं और स्थापनाओंसे सहमत-असहमत होनेका प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना उनका लोकाभिमुख परिवर्तनकी दिशामें समर्पणकी भावनासे दिशा-निर्देशन।

प्रकाशन दिवंगतकी कीर्ति-रक्षाके लिए किया गया एक स्तुत्य प्रयास है। ⊡

लोक प्रशासन[२]

लेखक : एस. सी. मेहता

पुस्तक भारतीय प्रशासनिक सेवाकी प्रारम्भिक परीक्षाके प्रतिभागियोंके कल्याणार्थ लिखी और प्रकाशित की गयीहै। लोक प्रशासन : सामान्य परिचय/लोक प्रशासनके सिद्धान्त/प्रशासकीय व्यवहार/कार्मिक प्रशासन/वित्तीय प्रशासन/प्रशासनपर नियन्त्रण/तुलनात्मक प्रशासन/भारतमें लोक प्रशासन/भारतमें लोक सेवा/राज्य, जिला एवं स्थानीय शासन जैसे दस विषयोंपर नवीन पाठ्य-क्रमानुसार वस्तु-निष्ठ प्रश्नों और उनके उत्तरोंके लिए भूल-भुलैयामें डालकर अंतमें चक्र-व्यूहसे सफल बहिर्गमनका द्वार-निर्देशन उपयोगी प्रयास रहाहै।

ग्रन्थकी रचना हिन्दी और देवनागरी लिपिमें हुई है, किन्तु क्रमांक-पद्धति अंग्रेजी और रोमनकी अपनायी गयीहै। क्या ही अच्छा होता यदि अ-ब-स के स्थानपर क-ख-ग का प्रयोग किया जाता।

सभी दृष्टियोंसे पुस्तक शीर्ष प्रशासनिक सेवाके प्रत्याशियोंको लाभकारी सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास कियाजा सकताहै। □

राजस्थानकी भूमि विधियां[३]

लेखक : गुरुबख्श सिंह

ग्रन्थ राजस्थान राज्यकी भूमि व्यवस्था सम्बन्धी विधियोंका संकलन है, जिसे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिमें प्रस्तुत किया गयाहै। अनुभवमें आयाहै हिन्दी राज्योंमें विधायन-कार्य तो हिन्दीमें होताहै, किन्तु विधेयकोंके प्रारूप अंग्रेजीमें ही रचे जातेहैं। विधान-मण्डलोंके समक्ष उनके हिन्दी अनुवाद मूलकी संज्ञासे विभूषित करके पुरोस्थापित कर दिये जातेहैं। कुछभी हो, इस बहाने हिन्दीमें कामकाजके संवैधानिक संकल्पको पूरा करनेका प्रदर्शन हो जाताहै और अनुवाद द्वारा हिन्दीको प्रशासनिक भाषाकी चेरी बनाये रखनेका संकल्प पूरा हो जाताहै।

यह पुस्तक अधिनियमोंकी पोथी न होकर उनकी सुसंगत टीका है, जिसमें शीर्ष राजस्व न्यायालयोंके निर्णयभी संदर्भित किये गयेहैं, और उनके आलोकमें विषयकी विवेचना की गयीहै। भाषा साफ-सुथरी और शैली प्रांजल है। कही गयी बात आसानीसे समझमें आ सकतीहै।

ग्रन्थका प्रणयन राजस्थान स्थित विश्वविद्यालयोंके पाठ्य-क्रमोंको ध्यानमें रखकर किया गयाहै। न्यायालयोंमें हिन्दीका प्रवेश तो हो गयाहै, परन्तु वर्चस्व अंग्रेजीका ही विद्यमान है। आशा की जानी चाहिये इस पुस्तकका लाभ उठाकर विधि-परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले स्नातक, अधिवक्ता बननेकी दशामें हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिके प्रयोगकी ओर अग्रसर होंगे। अच्छा होता यदि ग्रन्थके अन्तमें हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली दे दी जाती। ⊡

प्रारम्भिक अर्थशास्त्र[४] :

लेखक : सत्यनारायण पारीक, रामचंद्र वर्मा

प्रकाशन पाठ्य-ग्रन्थ है, जिसकी रचना कृषि-वर्गके विद्यार्थियोंको अर्थशास्त्रका प्रारम्भिक ज्ञान करानेके उद्देश्यसे की गयीहै। इसकी विषय-वस्तुका चयन अजमेर और राजस्थान विश्वविद्यालयों एवं राजस्थान स्थित कृषि विद्यापीठोंकी पाठ-चर्याको ध्यानमें रखकर किया गयाहै। साधारणसे हेर-फेरके साथ इन्हीं विषयों का अध्ययन-अध्यापन उत्तरप्रदेश/बिहार/मध्यप्रदेश और हरियाणाकी शिक्षण संस्थाओंमें होताहै। पर्वतीय अंचल होनेसे हिमाचल प्रदेशकी स्थिति न्यूनाधिक भिन्न हो सकतीहै।

प्रकरणोंकी चर्चा व्यवस्थित ढंगसे सुग्राह्य शैलीमें

की गयीहै। भाषा सरल और सप्रवाह है। विषय-प्रतिपादनमें अकाण्ड-ताण्डव तथा पाण्डित्य-प्रदर्शनका अभ्यास नहीं किया गयाहै। एक बात अवश्य खटकती है। सूत्रों और रेखांकनोंको अंग्रेजीमें ही दिया गयाहै। कदाचित् युग-धर्मका अनुगमन करना जैसी कोई विवशता रहीहो अथवा यह समझा गयाहो कि उनके हिन्दीकरणसे शिक्षार्थी असुविधाका अनुभव करेंगे।

समग्र दृष्टिसे आकलन करनेपर पुस्तक उपयोगी और हिन्दी वाङ्मयकी अभिवृद्धिकारक प्रकट होती है। □

विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीका प्रयोग : संमस्याएं और समाधान

सम्पादक : प्रशान्त वेदालंकार

कुछ प्रकाशन रीतिके अनुरक्षणके लिए किये जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उस अनुष्ठानका सजीव उदाहरण है। इसमें विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् द्वारा आयोजित एक-दिवसीय संगोष्ठीमें पढ़े गये निबन्धोंको संकलित किया गयाहै। चूरन-चटनीके रूपमें कुछ और मसाला भी जोड़ दिया गयाहै। निबन्धकार विद्वान् ही नहीं, महान विचारक भी हैं। परन्तु कठिनाई यह है कि पूर्व-राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंहको छोड़कर, अन्य महानुभावोंने जो कुछ लिखा और पढ़ा, उससे न तो समस्याकी विभावना हो पायी, और न किसी निदानका निरूपण हो सका। लाख टकेकी एकही बात समझमें आयी कि हिन्दीको सरल बना दिया जाये, अर्थात् उसकी अस्मिताको तिरोहित कर दिया जाये। पता नहीं हिन्दीके पक्षधर इस प्रकारकी घटिया और निरर्थक दरबारदारीमें कबतक अपना समय नष्ट करते रहेंगे।

प्रस्तुतिको पुस्तकके स्थानपर स्मारिकाकी संज्ञा दी जाये तो वह उसकी अंतर्वस्तुसे अधिक मेल खा सकेगी। बहरहाल बिलकुल नहीं के बजाए कुछ तो हुआ, और आगे भी होता रहेगा यह क्या कम संतोष की बात है। यह ग्रन्थ इस दृष्टिसे उपयोगी कहाजा सकताहै कि इसे पढ़कर हिन्दीमें निष्पादित होनेवाले, कामकाज और उसके प्रयोगके लिए उपलब्ध करायी गयी सुविधाओंका सम्यक् परिचय मिल जाताहै। □

---

१. प्रका. : समकालीन सृजन, २० बालमुकुन्द मक्कर रोड, कलकत्ता-७०००७। पृष्ठ : २०७; डिमा. ९२; मूल्य : १६.०० रु.।

२. प्रका. : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलकनगर, जयपुर-३०२००४। पृष्ठ : ४६२; रायल ९१; मूल्य : ५५,०० रु.।

३. प्रका. : उपर्युक्त। पृष्ठ : ३४५; रायल ९१; मूल्य : ५१.०० रु.।

४. प्रका. : उपर्युक्त। पृष्ठ : २७४; रायल ९१; ३७.०० रु.।

५. प्रका. : विनीता प्रकाशन, ८ माल रोड (हडसन लाइन), दिल्ली-९। पृष्ठ : ९२; डिमा. ९१; मूल्य : ५०.०० रु. (पेपरबैक)

राजनीतिक इतिहास

भारत और चीनके बीच सोहार्दपूर्ण राजनयिक बातचीत चलती रहतीहै। परन्तु ऐतिहासिक, राजनीतिक, और सैनिक दृष्टिसे दोनों देशोंके सम्बन्ध कैसे रहेहैं, इसके लिए यथार्थ सम्बन्धों, अन्तर्वर्ती प्रतिद्वन्द्विता और विद्वेषकी लुकी-छुपी कहानीके लिए पढ़ें :

विस्तारवादी चीन

मूल्य : १०.०० रु.
डाक व्यय अलग

इसके अतिरिक्त पढ़ें :
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता ८.०० रु.
कच्छ ८.०० रु.
एवरेस्ट विजय ८.०० रु.

'प्रकर',
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७.

लेखक : समीक्षक

- डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त, १०/१२० ग्रेटर कैलाश, डा. घ. सैनिक कालोनी, जम्मू-१८००११.
- पं. काशीराम शर्मा, ए-२/३१, नाबार्डनगर, ठाकुर संकुल, कांदीवली (पूर्व), मुम्बई-४००१०१.
- डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, १८६/१२, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१.
- डॉ. केदार मिश्र, ६ निकेत, पोदार महाविद्यालय परिसर, नवलगढ़-३३३०४२.
- डॉ. जवाहर सिंह, हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल-७९५००३.
- डॉ. भानुदेव शुक्ल, ११ लवकुश अपार्टमैंट्स, ईदगाह हिल्स, भोपाल-४६२००१.
- प्रो. मधुरेश, ब्रह्मानन्द पाण्डेय मकान, भांजी टोला, बदायूं-२४३६०१.
- डॉ. महाराजकृष्ण जैन, ४७ ए, शास्त्री कालोनी, अम्बाला छावनी-१३३००१.
- डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया, मगल कलश, ३९४ सर्वोदयनगर, आगरा रोड, अलीगढ़-२०२००१.
- डॉ. मूलचन्द सेठिया, ८/२७६, विद्याधरनगर, जयपुर-३०२०१२.
- डॉ. यशपाल वैद, २०३ विवेक विहार, सिविल लाइंस, अम्बाला शहर-१३४००३.
- डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, २१/जी, मेकर गार्डन, लिडो जुहू, सांताक्रूज (पश्चिम), मुम्बई-४०००४९.
- डॉ. राधा दीक्षित, १७४ नन्दन गार्डेन, पश्चिमी कचहरी रोड, मेरठ-२५०००१.
- डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, ३४/१००, धूलकोटके पीछे, बोहरा गणेश, उदयपुर-३१३००१.
- डॉ. विश्वास पाटील, कृष्णाबंरी, ३४ द, सरस्वती कालोनी, शहादा, (जि. धूलिया)-४२५४०९.
- डॉ शिवचन्द्र उमेश, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर (चमेली) उ. प्र.
- डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पी. एन. सिन्हा कालोनी, भिखना पहाड़ी, पटना-८००००६.
- डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी, २३ चन्द्रपथ, सूरजनगर पश्चिम, सिविल लाइंस, जयपुर-३०२००६.
- डॉ. सुमंगला मुम्मीगट्टी, हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़-५८०००३.
- डॉ. हरिश्चन्द्र, बी-११४९, इन्दिरा नगर, लखनऊ—२२६०१६.

विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका

'प्रकर'

शुल्क विवरण

- **प्रस्तुत अंक** ७.०० रु.
- **वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) :** संस्था : ७५.०० रु.; व्यक्ति : ६५.०० रु.
- **आजीवन सदस्यता :** संस्था : ७५१.०० रु.; व्यक्ति : ५०१.०० रु.
- **विदेशोंमें समुद्री डाकसे** एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें २००.०० रु.
  विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए)—एक वर्षके लिए : ४८०.०० रु.
- दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि **'प्रकर'** के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' : अप्रैल'९३ : पंजोकरण संख्या १७५८२/६९ : डाक पंजोकरण संख्या : डीएल : १६००६/९३

आगामी अंक

प्रगतिशील हिन्दी आलोचना

इस कृतिमें लेखक **डॉ. हौसलाप्रसाद सिंहने** आचार्य शुक्ल, आचार्य वाजपेयी और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीको प्रगतिशील हिन्दी आलोचनाके प्रेरणा-स्रोतके रूपमें प्रस्तुत कियाहै। यह बात ध्यान देने योग्य है कि डॉ. सिंह ने इन प्रमुख आचार्योंकी आलोचना प्रक्रियाके साथ प्रगतिशील शब्दका प्रयोग कियाहै, क्योंकि 'प्रगतिवाद' द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवादके साथ जिस राजनीतिक प्रतिबद्धताकी घोषणा करताहै, उसका प्रतिफलन शुक्लजी, वाजपेयीजी और द्विवेदीजीकी समीक्षा दृष्टिमें नहीं दिखायी देता। समीक्षक हैं : **डॉ. मूलचन्द सेठिया**।

मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक आलोचना

समकालीन आलोचनाका व्यापक परिदृश्य इस बातको ध्यानमें रखताहै कि रचना और साहित्यको समझनेके लिए विभिन्न परिवेशों और परिधियोंपर दृष्टि रखनी पड़तीहै क्योंकि आजकी रचनाशीलता साहित्येतर प्रतिमानों, परिवेशों और परिधियोंको ध्यानमें रखतीहै और उन संदर्भोंको उद्घाटित करतीहै। इस दृष्टिसे **डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'** का प्रस्तुत ग्रन्थ एक ऐसे क्षेत्रमे प्रवेश करता प्रतीत होताहै जो बहिर्लक्ष्यी आलोचना-प्रकारोंका सम्भवतः प्रथम बार व्यवस्थित रूपमें प्रस्तुत करताहैं। समीक्षक हैं : **डॉ. बीरेन्द्र सिंह**।

भारतीय कविताएं (१९८७-८८)

हिन्दीतर प्रादेशिक भाषाओंकी १९८७-८८ की श्रेष्ठतम रचनाओं अर्थात् पांच वर्ष पुरानी कविताओंका संकलन है जिसमें संविधानकी आठवीं सूचीमें परिगणित पन्द्रह भारतीय भाषाओंके पांच-पांच कवियोंकी एक-एक रचना संकलित की गयीहै। इससे प्रत्येक कवि और भाषाके सृजनात्मक स्वरूप और काव्यकी मानसिकताका परिचय मिलताहै। संकलित पचहत्तर कविताओंका चयन उन्हीं भाषाओंके विद्वानों द्वारा हुआहै। सम्पादक हैं : **डॉ. र. श. केलकर** और समीक्षक हैं : उदयपुर विश्वविद्यालयके प्राध्यापक **डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ**।

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध मानस

गत अंकमें मिश्रजीके व्यक्तित्वमें लोक-संस्कृतिकी मार्मिकताकी, उनके सृजनमे मूल उत्सकी चर्चा की गयीथी। आगामी अंकमें उनके आत्मसाक्षात्कारकी आन्तरिक प्रक्रियाकी सतत गतिशीलताको बाह्य-जगत्की संवेदना से चालित चित्रित कियाहै। मिश्रजीको यह जगत् आत्मविस्तार ही लगताहै। उन्हें प्रतीत होताहै कि मेरा परिवेश मैं स्वय हू। इस लालित्यपूर्ण निबन्धकी समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त**।

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-८

इस लेखमालामें अबतक हिन्दी व्याकरणके वैदेशिक आधार, भाषा-लिपि-अक्षर-मात्रा, हिन्दी स्वर एवं व्यंजन, हिन्दीमें संधि, शब्दविचार. रूपविचार-रूपप्रक्रियात्मक ढांचा, शब्दभेद-शब्दवर्गीकरण-शब्दविवेचना-नाम-आख्यात-निपात-परस्थानिक-प्रत्यय और नामरूप प्रकरणकी मीमांसा की जा चुकीहै। आगामी अंकमें परस्थानिक-विवेचन प्रकरण लिया गयाहै। लेखक हैं : **पं. काशीराम शर्मा**।

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी,
चमेलिया रोड, दिल्ली-६

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७.   दूरभाष : ७११३७६३.

प्रकर

आषाढ़ : २०५० [विक्रमाब्द] :: जून : १९९३ [ईस्वी]

साहित्य कवित इतिहास

◆

विशिष्ट सामग्री

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध मानस-३

—डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

रीतिमुक्त कवियोंका सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन

—ले. डॉ. लक्ष्मणप्रसाद शर्मा : समी. डॉ. कलानाथ शास्त्री

मास्टर धरमदास (काव्य)

—कवि : देवेन्द्र दीपक; समी. डॉ. प्रशान्तकुमार

◆

प्रकर [अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षाका मासिक पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २५ अंक : ६ आषाढ़ : २०५० [विक्रमाब्द] जून : १९९३ [ईस्वी]

अंक सामग्री

अध्ययन-अनुशीलन

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध मानस-३ ५ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
रीतिमुक्त कवियोंका सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन—डॉ. लक्ष्मणप्रसाद शर्मा १० डॉ. कलानाथ शास्त्री
आधुनिक हिन्दी काव्य एव अन्य निबन्ध -डॉ. सन्तोष कुमार तिवारी १२ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

हिन्दी व्याकरण : नयी दृष्टि

हिन्दो व्याकरण मीमांसा—६ (प्रत्यय प्रकरण-१) १४ पं. काशीराम शर्मा

काव्य

मास्टर धरमदास—डॉ. देवेन्द्र दीपक २५ डॉ. प्रशान्त वेदालंकार
कटे अंगूठोंकी बन्दनवारें—डॉ. शिवमंगल सिंह २८ डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गी
अग्निगर्भा—डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री ३१ डॉ. प्रयाग जोशी

उपन्यास

आवर्तन—डॉ. कमल कुमार ३२ डॉ. मान्धाता राय
पाकिस्तान मेल—खुशवन्त सिंह, अनु. उषा महाजन ३४ डॉ. केदार मिश्र
मृच्छकटिकम् (संस्कृत नाटकसे हिन्दी रूपान्तर)—रूपा. डॉ. कुमुद ३६ प्रो. विराज

कहानी

सत्यजीत रायकी कहानियां—अनु. योगेन्द्र चौधरी डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
डोगरी कश्मीरी कहानियां—सम्पा. डॉ. उषा व्यास डॉ. ओंकारनाथ कौल

नाटक

गुलाम बादशाह—नन्दकिशोर आचार्य डॉ. भानुदेव शुक्ल

प्राचीन भारतकी नारियां

महाभारतके नारी पात्र—डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

अर्थ निवेश

शेयर कारोबार—आर. अग्रवाल माधव पंडित

हमें खेद है कि ग्रीष्मका उत्ताप न सह पानेसे 'स्वर : विसंवादी' मूर्छित हो गयेहैं और इन पृष्ठोंपर उपस्थित होनेमें असमर्थ हैं। इसी कारण प्रारम्भकी पृष्ठ संख्या भी अस्त-व्यस्त हो गयीहै और पृष्ठ पांचसे ही सामग्री आरम्भ हो रहीहै। पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं।

विद्यानिवास मिश्रका निबन्ध-मानस-३

विभ्रम संत्रासका आतंक : प्रत्यावर्त्तन

डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

मिश्रजीका 'गांवका मन' पहले गांवमें केवल सहजता, सरलता, माधुर्य और नाते रिश्तोंकी पारस्परिकता ही देखताथा, अशिक्षा अंधविश्वास पारस्परिक द्वेष भुखमरी गरीबीको अनदेखा करके, और अब औद्योगिकता, आर्थिक प्रतिस्पर्धा, वर्ग संघर्ष, परायापन विमानवीकरणही देखताहै, नये उद्योगोंके विकास के फलस्वरूप बदलते हुए आर्थिक परिदृश्य, वैज्ञानिकता और आधुनिक सुख सुविधाओंको अनदेखा करके। 'बालूके डूह' शीर्षक निबन्धमें रेणुकूट मिर्जापुरकी औद्योगिक बस्तीके प्रवासमें, हजारों सुनहले गुबरैले रेतकी अटूट धार और यान्त्रिकताके कारण आनेवाली विरसताही लेखक देखताहै, उजाड़ सुनसान बीहड़ इलाकोमें औद्योगीकरणके कारण, नये जीवनकी चहल-पहल, प्रकाश, यातायात और हजारों लाखों लोगोंको रोजगारकी सुविधाको अनदेखा करके—"औद्योगीकरण की नंगी रोशनीमें आदमीयतकी अंधेरी रातकी उघड़ी हुई जांघ, ही दिखायी पड़तीहै तथा रोशनीकी कतारमें उनका आतंकित 'गांवका मन' 'एक कराल अंधकारके उघड़े हुए दांत हों', देख पाताहै, उसे यह, 'अंधेरेका क्रूरतम व्यंग्य' यह अट्टहास करता हुआ लगताहै, "सूरज डूब चुकाहै प्रकाश खो चुकाहै" (द्रष्टव्य—मेरे रामका मुकुट भीग रहाहै, पृष्ठ ९८-९९)।

यह सही है कि इस औद्योगीकरणके अपने अभिशाप भी हैं, निजी पूंजीका राक्षसी विस्तार श्रम शोषण, आर्थिक दृष्टिकोणकी प्रधानताके कारण मानवीय सम्बन्धोंका टूटना, लेकिन इसकी कुछ उपलब्धियां भी तो है, जिन्हें नकारना केवल दुराग्रह हैं और फिर जिस ग्रामीण सभ्यताकी बात मिश्रजी करतेहैं, क्या उसके अभिशाप और विडम्बनाएं कम भयावह थीं ? आजभी हमारा गांव उनमें से अधिकांशसे मुक्त नहीं हैं। इसलिए उपलब्धियोंको अनदेखाकर मात्र अभिशापोंसे त्रस्त होना कुण्ठाही है। औद्योगीकरण और यान्त्रिकताके कारण जो विमानवीकरण उन्हें दिखायी पड़ताहै, वह साम्राज्यवादी सामन्ती व्यवस्थाके विमानवीकरणसे भी अधिक भयावह होगया ? रेणुकूटमें आकर—"विमानवीकरणका सम्पुंजित अंधकार लखक को दीखताहै", आदमीके विधाता रूपसे वे आतंकित होतेहैं, पारस्परिकताके लुप्त हो जानेपर विमानवीकरण की चरम परिणति दीखतीहै, सुख सुविधाओंके उपकरणोंकी अंधी दौड़में बड़े लोगोंकी जिन्दगीकी विरसता उन्हें चुभतीहै" (वही द्रष्टव्य, वही पृ. १०१-१०२), पर मानव मनकी किसी गहरी पर्तके नीचे बची मानवीयता और पारस्परिकतामें बचा उनका विश्वास, उन्हें आश्वस्त भी करताहै—"एक दिन परायेपनका पाथेय जरूर चुकेगा और जिस दिन चुकेगा, उन दिन असली प्यास फिर जागेगी। वह बालूसे नहीं जूझेगी। पानी

नहीं मिलेगा। आदमी तड़पेगा और जलेगा उसकी तड़पन और उसकी जलनमें बालूके ढूह चट्टान बन जायेंगे। चट्टानें रसधार बन जायेंगी" (वही, पृष्ठ १०३)।

वर्तमान आधुनिकताके इस संकटसे उबरनेकी आशा मिश्रजीको लोकगीतोंमें व्यक्त मातृत्वके अपराजेय वात्सल्यमें मिलतीहै —"इतनी असंख्य कौशल्याओं के कण्ठमें बसी हुई जो एक अरूप ध्वनिमयी कौशल्या है अपनी सृष्टिके संकटमें उसके सतत उत्कर्षके लिए आकुल उस कौशल्याकी ओर उस मानवीय संवेदनाकी ओर ही, कहीं राह है, घासके नीचे दबी हुई" (वही, पृष्ठ ११०)। यह विश्वास कभी-कभी कौंध जाताहै यद्यपि इसपर निराशाकी बड़ी गहरी पर्त चढ़ी हुईहैं।

इसीलिए रहरहकर यान्त्रिकताका अभिशाप और आतंक मिश्रजीकी दृष्टिको धुंधली ही नहीं, अपितु दूषितभी कर देताहै, तभी उन्हें लगताहै—"मनुष्यको उपभोक्ता माननेके दम्भने क्या, नियन्ता माननेके दर्पने ही तो यह विनाश नहीं कराया कि चांदनीमें रस झर रहाहै, और नंगी जमीं उस रसको बिना पिये सोखती चलीजा रहीहै, चाँदनीको नकारती चलीजा रहीहै - विजनकी शैतानी हवा बनकर हंस रहीहै। उसके जहरीले दूधिया दांत रेतीले ढूहोंके रूपमें उभर आयेहैं" (तमालके झरोखेसे, पृ. ४४)।

पहले सर्वत्र उन्हें आनन्दही आनन्द दिखायी पड़ताथा और अब सर्वत्र निराश जहर विमानवीकरण। पहलेभी वैयक्तिक दृष्टिका असंतुलन था और आज आधुनिकताका अभिशाप उन्हें आतंकित किये हुएहैं। इसीलिए आज वे अकेलेपन 'निस्सारता, निरर्थकता, आत्मविश्वासहीनता और निष्कासन' के आभाससे क्षतविक्षत है। वसन्त एक दुःस्वप्न बन गयाहै उनके लिए —"अकेला मैं हूं जिसका कोई ठहराव नहीं है जिसकी कोई गति नहीं है, कोई मति नहीं है कोई उपलब्धि नहीं है" (वही, पृष्ठ ७३)···मेरी अपनी सार्थकताकी पहचान खो गयीहै, मैं कुछभी कहूं, समझा नहीं जाऊंगा" (वही, पृष्ठ ७४)। मैं घरसे बाहर कर दिया गयाहूं मैं घरमें पूछ भी नहीं सकता कि क्यों मुझको बेंच रहे हैं ?" (वही, पृष्ठ ७५)।

यह आत्मस्वीकृति लेखककी स्पष्टवादिताकी धाक तो बैठातीहै, पर इस मानसिकताके पीछे जो कारण हैं वे सामाजिकसे अधिक व्यक्तिगत हैं। सूक्ष्म दृष्टिकी पारदर्शकता और इतिहासकी गतिका कुछ ज्ञान होता तो यान्त्रिकता और विमानवीकरणका यह दौर उन्हें इतना आतंकित नहीं करता। इस प्रकारके संकट सामूहिक और वैयक्तिक स्तरपर पहलेभी आयेहैं पर मनुष्य की अपराजेय जिजीविषामें, यदि विश्वास बना रहताहै, तो पिछले कालके ज्वलन्त उदाहरणोंसे प्राणवन्त होनेकी क्षमता बची रहतीहै। तो 'यह, संकल्प करना होगा यह, तिमिर पार' (निराला : तुलसीदास) ही नव विहान तक ले जा सकताहै।

लेकिन जबतक यह विश्वास नहीं उभरता तबतक निराशा और अवसादके कारण यही मतिभ्रम बना रहताहै —"और अब लगताहै मैं जितना ही इन्हें (विह्वल पल आखरी कृष्णके जीवनकी अन्तिम संध्या का संश्लिष्ट चित्र) पूरा करना चाहूंगा उतना ही और अधिक खण्डित होता जाऊंगा। बाण भट्टकी भांति हर यायावर रचनाकारकी यही नियति है। रचना पूरी नहीं होती, व्यक्ति पूरा नहीं होता, बस पूरा होनेकी व्यर्थ की कल्पनामें अधूरा और अधूरा हो जाताहै, न पेराई ही पूरी होतीहै न रस ही पूरा निचुड़ताहै न अवभृथ स्नान ही कोई आशाकी सम्भावनाका संकेत देताहै" (तमालके झरोखेसे, पृ. ८९)। किसी एक या कुछ रचनाओं और रचनाकारोंका यह तथ्य सभीपर लाद देना निरी आत्मविश्वासहीनता तो हैही, सृजनात्मकतामें अविश्वास भी है, अपनी कुण्ठा, हीनता और अविश्वास को सभीपर चिपका देना असाधारण मनोदशाका ही सूचक है।

यदाकदा आशा, परोपकार, आबद्धता, प्रगाढ़ और गहरी सम्पृक्ति, इष्टदेव और जीवन मूल्योंके प्रति समर्पणका स्वरभी इसी तुमुल कोलाहलमें सुनायी पड़ताहै भलेही कितना ही क्षीण और क्षणिक हो। पर यह है, इसलिए महत्त्वपूर्ण है। टूटन, निराशा, संत्रास, अकेलापन और परायेपनके नक्कारखानेमें यह तूतीकी आवाज जैसा ही लगताहै —"समझ नहीं पा रहाहूं कि कौन-सा टुकड़ा है जहां मैं बचा हुआहूं जहां मेरी सम्भावना बची हुईहै" (वही पृष्ठ ८७)। ये, प्रचण्ड आत्ममन्थनसे प्राप्त दुर्लभ होतेजा रहे विश्वास रूपी रत्न हैं, भले ही आज के व्यावसायिक युगमें इनका कितना ही अल्पमूल्य क्यों न हो, यही नहीं घोर आंगीरसने जो कृष्णसे कहाथा उसको आधुनिक विडम्बनामें, प्रतिकूलताओंके सन्दर्भमें जीवनकी सार्थकताके रूपमें मिश्रजी याद करतेहैं—

“कहीं न कहीं घोर आंगीरसकी बात कृष्णको चुभ रही थी ‘प्राणसंशितमसि’ ऐसा सोचो कि प्राण चीरे जा रहे है। तब जीवनका रहस्य समझोगे। पूरे जीवनको यज्ञ समझोगे। अमावस्यामें जैसे चन्द्रमा सूर्यमें समा जाता है, चन्द्रमा मरकर अमृत कलाको प्राप्त करताहै, वैसे ही जीवनको खाली करो खाली करके भरनेकी प्रक्रिया शुरू करो जो… जीवनको दूसरोंके आस्वादनके लिए ऐसे ही पेरते रहो और मृत्यु आये तो मानो अनुष्ठान पूरा होगा अब यज्ञ समाप्तिकार (अवभृथ) स्नान, कहीं कोई आशाकी सम्भावनाका संकेत देताहै। (वही, पृष्ठ ८९)।

एक ओर परम्परागत प्राचीन मध्यकालीन ग्रामीण लोकसंस्कृतिमें रचा-बसा मन और दूसरी ओर कथित आधुनिकताकी कुण्ठित मनोवृत्तिके तत्त्व, दोनों खींचते हैं मिश्रजीके मनको। न तो परम्परासे वे छूट पातेहैं और न हीं कथित आधुनिकताका वरणकर पातेहैं। फिरभी युगबोधके नामपर कथित आधुनिकताके जालमें वे फंसते जा रहेहैं। छटपटातेहैं। दोनोंमें तालमेल बैठानेका भी प्रयास करतेहैं। कथित आधुनिकताके प्रभावके नीचे कुरेदे जानेपर कहीं आत्मीयता परोपकार वात्सल्य पारस्परिकता और उच्च जीवन मूल्योंके प्रति आस्था निकल आतीहै, पर फिर आधुनिकताका ज्वार आनेपर ये तत्त्व ओझल हो जातेहैं। कभी-कभी इनसे प्रभावित होनेपर मिश्रजी इनका औचित्य-अनिवार्यता सिद्ध करतेहैं। उनमें दोनों विरोधी मनोवृत्तियां स्पष्टतः दिखायी पड़तीहैं।

व्याधके तीरसे कृष्णके बिंधनेको महिमामण्डित करते हुए, मिश्रजी भी स्वयं उसी प्रकार बिंधना चाहते हैं और इस बिंधनेको वे प्रियजनोंके व्यक्तित्वमें अपने व्यक्तित्वका विसर्जन मानतेहैं—“मैं हजार तरहसे आविद्ध रहाहूं। मैं उस विषके बुझे हुए तीरसे आविद्ध होना चाहताहूं, जो जातिके अभिमानके उफानसे पैदा होताहै। इससे भी बड़ा एक आविद्धभाव है किसीने उसे गोपीभाव कहाहै, किसीने राधाभाव, किसीने महाभाव, किसीने समष्टि चेतना, किसीने ईश्वरमें परानुरक्ति, किसीने केवल प्यार, उससे बिंधना चाहताहूं। बिंधनेके अपने पुंभावकी व्यर्थताका अनुभव करना चाहता हूं नारीभावकी श्रेष्ठताको समझना चाहताहूं। यह केवल मिटनेसे आताहै, चुपचाप मिटनेसे आताहै, बेखुद होनेसे आताहै।” (वही, पृष्ठ ८२)। पर इसकी केवल लालसा ही मिश्रजीमें दिखायी पड़तीहै केवल लालसाके बखानसे ही वे सन्तुष्ट हो जातेहैं। राधा भावका तो उन्होंने अनुभावन कियाहै अपने कई लेखोंमें पर ‘जानकी जीवन यात्रा’ करते हुएभी जानकीके जीवनकी विडम्बना लेशमात्र भी उन्हें नहीं छूती। कालिदास भवभूतिसे प्रेरित होकर भी नहीं और महादेवी वर्मासे प्रताड़ित होकर भी नहीं: “सीताको निर्वासित करनेवाले जानकी जीवन यात्रापर निकले हो, बड़े ढोंगी हो” (अंगदकी नियति, पृष्ठ १०९)। नारीकी पूजाका ढोल पीटकर उसके साथ कैसे कैसे अमानवीय और राक्षसी व्यवहार करते देखकर भी जिसका खून नहीं खौलता, जो उसकी विभीषिकाके लेश मात्रसे भी परिचित नहीं होता, अपितु नारीके प्रति किये गये सबसे प्रचण्ड अन्याय—सीता निर्वासन—को रामका प्रजारंजन और एकनिष्ठ प्रेमके प्रमाणके रूपमें सिद्ध करताहै, तो उसकी यह घोषणा केवल आत्मप्रशंसा प्राप्त करनेका शब्दजाल लगतीहै, इसकी सत्यताका कोई प्रमाण तो उनके साहित्यमें मिलता नहीं।

यदाकदा मिश्रजी अपने व्यक्तित्वको असीमके साथ जोड़ देतेहैं, संकीर्णताओंसे यह छुटकारा, लगताहै, यह उनके व्यक्तित्वका अवश्य ही एक पक्ष है भले ही कभी कभी दिखायी पड़ताहो—“मैं यह भूल गया जो बाहर है वह मेरा अभ्यन्तर है; बाहरकी वीरानी, बाहरकी रसहीनता, बाहरकी सफेदपोश उदासीनता, बाहरकी अपरूप व्यर्थ जाती चांदनी, बाहरकी मृगछौनी अनबूझ प्यास, यह सब मैं हूं और हां वह सपनेकी बोतलमें बचा हुआ एक घूंट पानी, वह भी मैं हूं, मैं भूल गया” (वही, पृष्ठ ४५)। इस आत्मज्ञानके फलस्वरूप अपने विराट् व्यापक स्वरूपका अनुभव और विश्वकी समग्र चेतनाके साथ तादात्म्यके बाद तो कुछ भी पराया या विरोधी बचताही नहीं। यह तो बन्धनोंसे ऊपर उठकर विश्वात्मामें मिल जानाहै। रहस्यवादी स्थितिपर पहुंचकर तो कुछ कहने सुननेको रह ही नहीं जाता। उस पूर्णतमके साथ तादात्म्य या स्वयंको पूर्णतमके रूपमें समझ लेना ये तो बड़ी ऊंची अध्यात्म साधना है, जो भावयोगसे प्राप्त है। लगताहै चेतनाके गहरे स्तरपर अद्वैतका साक्षात्कार लेखकने कियाहै, लेकिन इसकी प्राप्ति और इस प्राप्तिके बखानकी विश्वसनीयता या प्रामाणिकता कितनी है? यह प्रश्न बना ही रहताहै।

मनोवैज्ञानिक स्तरपर इसकी विश्वसनीयता स्वी-

कार कीजा सकतीहै, पिण्डमें ब्रह्माण्डका साक्षात्कार, इसे कहतेहैं। भारतीय जीवनमें तो यह अनहोना नहीं माना जाता। मिश्रजी जैसे भारतीय धर्म, कला, साहित्य, संस्कृति और साधनामें रचे-बसे व्यक्तिके लिए इसकी अनुभूति असम्भव तो नहीं है, लेकिन इसकी स्थिरताके बारेमें अवश्य सन्देह हो सकताहै।

५. प्रत्यावर्त्तन

सांस्कृतिक-प्राकृतिक उपादानोंके प्रतीकीकरणसे जिस मानसकी यात्रा शुरू हुईथी, वह जातीय अस्मिता की व्याख्या और आत्मसाक्षात्कारसे होती हुई अन्तः-बाह्य परिस्थितियोंके प्रभावसे विभ्रम संत्रास कुण्ठासे आतंकित हो उठाथा लेकिन सद्यःप्रकाशित निबन्ध संकलन 'नैरन्तर्य और चुनौती' में शाश्वत मूल्योंमें व्यक्त निष्ठाके कारण उक्त दुष्प्रभावोंसे मुक्त होता हुआ दिखायी पड़ताहै। 'भावपुरुष श्रीकृष्ण' नामक ग्रन्थमें भागवत और गीत गोविन्दके अवगाहनसे, लगताहै, कि मिश्रजीके मानसपर पड़ी धूल-धक्कड़ ही नहीं, अपितु मनमें प्रविष्ट अशुभ-अवांछनीय तत्त्वभी धुल-पुंछ गयेहैं। उक्त निबन्ध संकलनमें वे स्वस्थ शुभ उदात्त मंगलमय रूपमें दिखायी पड़तेहैं। इन निबन्धोंमें मानवजीवनकी सार्थकता दूसरोंसे सम्बद्ध होकर उनके दुःख निवारणमें मानी गयीहै। आनन्द और मंगलकी सारी साधनाके लिए मानव देहकी अपरिहार्यता स्वीकार की गयी है तथा जीवनकी अखण्डता और निरन्तरतामें लेखकका विश्वास दृढ़ हुआहै। इसी सन्दर्भमें उन्होंने परम्परा और आधुनिकताका परस्पर सम्बन्ध निर्धारित कियाहै, मानवीय चेतनाके विकासको शंखवलयाकार मानते हुए (द्रष्टव्य—नैरन्तर्य और चुनौती पृष्ठ ९५) विराट् सृष्टिमें स्पन्दित मानवीयताके चरम शिखरके रूपमें राम-कृष्ण-बुद्धको स्वीकार कियाहै।

जो व्यक्ति जितना अधिक दूसरोंसे लोभ और भय से मुक्त होकर, सम्बद्ध है उसका जीवन उतनाही सार्थक है, वास्तवमें यही उसकी जययात्रा हैं क्योंकि—"जययात्राका अर्थ किसीका पराजय नहीं है उसका अर्थ है मनुष्यके भीतरका अप्रतिहत भाव कि हम अपने लिए नहीं, हम 'पर' के लिए हैं। क्षुद्र 'स्व' दबानेकी कितनी भी कोशिश करें हमें, दबें नहीं। वह 'स्व' कितना 'पर' है कितना दूसरोंका है इसे जांचें" (नैरन्तर्य और चुनौती पृष्ठ ९६) क्योंकि अपना पेट तो पशु-पक्षी भी भर लेते हैं परन्तु जिसका जीवन-संघर्ष जितना दूसरोंके लिए है वह उतनाही मानव कहलानेका अधिकारी है—"कितना यह संघर्ष दूसरोंका है कितना केवल तुम्हारा निजी, इसे जांचकर इसमें पड़ो" (वही, पृष्ठ १००)। मनुष्यताकी चरम सार्थकताके रूपमें दूसरोंके सुख-दुःखसे तादात्म्यको प्रतिपादित किया गयाहै —"मनुष्य ही है जिसे अपने सुखसे सन्तोष नहीं होता दूसरोंके सुखोंके बिना अपना सुख हेय लगताहै दूसरोंके दुःखकी मुक्तिमें ही अपनी मुक्ति दीखतीहै, इसीलिए स्वर्गकी अपेक्षा पृथ्वी अधिक रमणीय लगतीहै" (वही, पृष्ठ ३९)।

केवल अवांछनीयसे संघर्ष ही नहीं, अपितु वांछनीय और प्रेमकी मधुर साधनामेंही दूसरोंके हर्ष विषाद की चिन्ता रहनी चाहिये, अन्यथा स्वार्थ केन्द्रित होनेके कारण यह सारी माधुर्य साधना अवांछनीय हो जाती है—"माधुर्यकी चरम परिणतिमें, दूसरोंके सुखकी, उल्लासकी चिन्ता न हो, दूसरोंकी पीड़ाकी चिन्ता न हो, तो वह माधुर्य विष बन जाताहै" (वही, पृ. १४८)। ऐसीही पर-सम्बद्धता श्रेष्ठ रचनाकारके लिए भी वांछनीय मानी गयीहै—"कबीरदास बहुत ऊंचे हैं पर वे जब कहतेहैं कि सब मुझमें है और मैं सबमें हूं पर हम फिरभी बहुत अकेले हैं, इसका तात्पर्य यही हैं कि सर्व से अपने सर्वसुखदुःखका, सबका सुख-दुःख मानकर साहित्यकार जब अपनी रचना करताहै तब अपनेको अपने उस 'सर्व' से अलगकर लेताहै, और अलग होकर अकेले होकर 'स्व' और 'सर्व' दोनोंसे मुक्त होकर लिखनेके लिए लाचार होताहै" (वही, पृष्ठ १७७)। सम्भवतः यह वह मनःस्थिति है जहां 'स्व' और 'पर' का भेद ही समाप्त हो जाताहै यद्यपि इस मनोदशाको समझना-समझाना सरल नहीं।

आज अध्यात्मकी बाढ़में भौतिक देहको बिल्कुल ही निस्सार बतायाजा रहाहै। यह सम्भवतः 'नैतिकताकी अति की प्रतिक्रिया है। वास्तविकता कहीं बीचमें है। यह भौतिक देह माध्यम है, अध्यात्म एवं अन्य उदात्त जीवन मूल्योंकी साधनाके लिए, माधुर्य साधनाके सन्दर्भ में देहका महत्त्व प्रतिपादित किया गयाहै—"माधुर्यका चरम अर्थ है, सम्पूर्णता, पर उसका माध्यम है देह··· अमूर्त और अध्यात्म मूर्त और भौतिकके सन्दर्भसे ही प्रमाणित होतेहैं" (वही, पृष्ठ १५०)। 'श्रीमद्भागवत का मानवीय तत्त्व' नामक लेखमें भी मानव देहको भागवत तत्त्वकी अभिव्यक्तिके लिए अपरिहार्य बताया गयाहै। भगवान्की भगवत्ता-ऐश्वर्यवत्ता तो मानवदेहमें ही

पूर्ण होतीहै, यही भागवतका प्रतिपाद्य है" (भावपुरुष श्रीकृष्ण, पृष्ठ ३७)। भागवतमें प्रतिपादित भक्तिको शरीरके धर्मकी स्वीकृति माना है—"भागवत इसी प्रश्न का एक विस्तृत उत्तर है। शरीर निर्वेद नहीं, शरीरके धर्मका स्मरण ही भगवद् भक्ति हैं" (वही, पृष्ठ ४०), क्योंकि यह देह केवल भोगके लिए नहीं है। अध्यात्म साधना या परमतत्त्वका साक्षात्कार भी इसीके माध्यमसे होता है। शंकराचार्यसे सहमति व्यक्त करते हुए मिश्रजीने नारी देहको कृष्णभावके रसास्वादनके लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानाहै—"शंकराचार्यने प्रपंच सारमें कहा 'पुनः पुंसकयोस्तुल्या चांगनासु विशिष्यते' चैतन्यकी लीला पुरुषत्व और अपुरुषत्वमें सामान्य होतीहै पर अंगना तत्त्वमें विशिष्ट होतीहै। श्रीकृष्णका भाव, नारीकी भावप्रतिमा राधामें ही रसत्व पाताहै।" (वही पृ. ७०)।

मिश्रजीने अस्तित्ववादी चिन्तनके मृत्यु-मोहसे उबरकर जीवनकी अखण्डता और निरन्तरतामें अपने खोये हुए विश्वासको पुनः प्राप्त कियाहै—"दो मान्यताएँ है जीवनकी अखण्डता और जीवनकी निरन्तरता" (नैरन्तर्य और चुनौती, पृष्ठ १०४) इन्हीं दो तत्त्वोंके साक्षात्कारमें ही जीवनकी सार्थकता मानी गयीहै, —"मनुष्यके जीवनकी सार्थकता इस अखण्डता और निरन्तरताका साक्षात्कार करनेमें है" (वही, पृ. ३९)। भौतिक पाप-तापों और मृत्युसे आक्रान्त न होकर लक्ष्य की ओर तभी बढ़ा जा सकताहै, जबकि इस भौतिक देहके रोग-जरा मरण-भयसे मुक्त होकर जीवनकी निरन्तरता और अखण्डतामें विश्वास हो।

आधुनिकता और परम्पराको प्रायः विरोधी मानकर काफी वाद विवाद हुआहै।' 'परम्परा रूढ़ि नहीं हैं' नामक निबन्धमें इन दोनोंके विषयमें मिश्रजीने अपनी धारणा व्यक्त कीहै—"आधुनिकतामें बेधक दृष्टि रहती है। समकालीनता तो समयके प्रति पूर्ण समर्पण है। परम्परामें सनातनका आग्रह नहीं है, सनातनकी खोज है। वह 'ट्रेडीशन' नहीं है 'ट्रेडीशन' परम्परा शब्दका गलत अनुवाद है, ज्योंकी त्यों यथावत् हस्तान्तरण हो जाये, यह परम्पराका अर्थ नहीं है, जबकि 'ट्रेडीशन' का यही अर्थ है। परम्परा वही है जो उत्कृष्टसे उत्कृष्टतर हो, इसमें त्याग और ग्रहण दोनों होंगे, इसमें निरन्तरता बनी रहेगी, वहां क्लेश या मुठभेड़ परम्परा से नहीं इतिहाससे है, इतिहाससे बंधे पश्चिमी समाज से है" (नैरन्तर्य और चुनौती : पृष्ठ ४८)।

अवांछनीयके त्याग और वांछनीयके ग्रहण द्वारा पहलेसे चले आनेवाले प्रवाहको उत्कृष्टसे उत्कृष्टतरकी ओर जानेवाले प्रवाहको यहां परम्परा माना गयाहै, तथा ट्रेडीशन (प्रथा ?) से उसे अलग किया गयाहै। पर परम्पराको सनातनकी खोज मानना और सनातनका आग्रह न मानना, कुछ जंचता नहीं। यदि खोज है तो उसके प्रति आग्रह तो होगाही। हां दुराग्रह या पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिये। परम्परा निरन्तरता गतिशीलता का ही पर्याय है। पर जहां परम्परा दूषित हो जाये सार्थकता खो बैठे, तब क्या उसे परम्परा नहीं माना जायेगा? परम्परा अपने आपमें अच्छी या बुरी कैसे मानी जाये? इसमें वांछनीय/अवांछनीय विशेषण तो लगाने ही पड़ेंगे। मिश्रजी परम्पराको 'उत्कृष्टसे उत्कृष्टतरकी ओर जाना' मानतेहै, यह परम्पराका अर्थोत्कर्ष है। यह उनकी निजी अर्थ-मीमांसा है, जिसकी पुष्टि लोक या शास्त्रमें नहीं होती। परम्पराके यथावत् हस्तान्तरणको ट्रेडीशन और गतिहीनताको 'रूढ़ि' मानना यह उनकी परम्पराप्रियता है। 'परम्पराके द्वार से आधुनिकतामें' शीर्षक निबन्धमें मिश्रजीने आधुनिकताके साक्षात्कारके लिए परम्पराके सम्पूर्ण मन्थन को आवश्यक मानाहै—"परम्पराके भीतरसे गुजरे बगैर आधुनिकताकी पहचान नहीं हो सकती। यह समग्र आधुनिकताका दायित्व है कि वह अपने मूल्योंको निरन्तर जांचती रहे।" (नैरन्तर्य और चुनौती : पृष्ठ १७०)। यह बात सही है।

भारतीय जनताके सर्वाधिक आकर्षण केन्द्र कृष्ण और रामके व्यक्तित्वकी तुलना करते हुए मिश्रजी कृष्णको रामसे बढ़कर मानतेहैं, क्योंकि कृष्णका अपना निजत्व कुछ था ही नहीं—"श्रीरामने राज्य पालनमें अपनेको खपाया, लोकहितमें, विपन्नके उद्धारमें अपनेको खपाया पर लोकको भी तजकर निर्ममताका प्रतिमान स्थापित करके, अपनेको अत्यन्त सामान्य रखना श्रीकृष्ण अवतारसे ही सम्भव हुआ" (भावपुरुष श्रीकृष्ण, पृष्ठ ४८)। कृष्णने लोकको यदि तज दिया तो फिर, अपनेको अत्यन्त सामान्यमें, कहां कैसे और क्यों रखा? यह अटपटी शैलीमें उलटवांसी-सी लगती है। क्योंकि सामान्यता तो लोकमें ही सम्भव है। श्री रामने भी राज्यपालनमें अपनेको खपाया। यद्यपि सीता परित्यागके कारण वे विवादास्पद बने। इसलिए इस

तुलनासें सहमत होना सहज नहीं ।

चिन्तन और सृजनमें निरन्तर गतिशील रहनेके कारण मिश्रजीके निबन्ध-मानसके विषयमें अन्तिम निष्कर्ष निकालना न तो सम्भव है और न ही वांछनीय । फिरभी उपर्युक्त विवेचनके आधारपर यह तो कहा ही जा सकताहै कि मिश्रजी मानवकी जययात्रामें अटूट विश्वास रखते हुए उसकी अखण्डता और निरन्तरताके प्रति पूर्णत: आश्वस्त हैं और इसीलिए वे अवांछनीय अशुभ तत्त्वोंके मायाजालसे मुक्त हुएहैं । आगे क्या होगा ? कुछ नहीं कहाजा सकता । संभवत: इसीलिए भारतीय काव्यशास्त्रमें 'जीवितकवेराशय: न वक्तव्य: !' कहा गयाहै । ☐

रीतिमुक्त कवियोंका सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन[1]

लेखक : डॉ लक्ष्मणप्रसाद शर्मा
समीक्षक : डॉ. कलानाथ शास्त्री

रीतिकालके कवियोंको भी इन दिनों उपवर्गोंमें विभाजितकर उनका सूक्ष्म वर्गीकरण किया जाने लगा है । एक तो वे कवि जो शास्त्रीय ग्रंथोंके प्रणेता हैं, लक्षणकार हैं या लक्षण ग्रंथोंकी लीकपर लक्ष्य ग्रंथकार हैं, और दूसरे वे जो आचार्य या लक्षण-ग्रंथकार तो नहीं हैं किन्तु रीतिकालीन कविता करतेहैं । दोनों वर्गों के लिए विभिन्न नामकरण भी किये गयेहैं । कुछ तो इन्हें क्रमश: लक्षणकार और मुक्तक कवि कहतेहैं, कुछ रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कहतेहैं । मतिराम, देव आदि को रीतिबद्ध माना जाताहै और रसखान, घनानन्द, ठाकुर आदिको रीति-मुक्त । रीतिकालीन कवियोंपर विश्वविद्यालयोंमें शोध करने और डिग्रीको प्राप्त करने की जो प्रक्रिया चलीहै उस क्रममें ऐसे कवियोंके विभिन्न दृष्टिकोणोंसे अध्ययन हुएहैं । हालमें ही लेखकका शोध ग्रंथ "रीतिमुक्त कवियोंका सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन" प्रकाशित हुआहै जिसमें रसखान, घनानन्द, आलम, बोधा ठाकुर और द्विजदेव इन छह कवियोंका सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिसे अध्ययन किया गया है । वैसे यह सौंदर्यशास्त्र क्या है यह हमारे समझसे परेकी चीज है । शोधप्रबन्धमें शोधकर्ताने प्रथम खण्ड में इसीका विवेचन कियाथा किन्तु वह प्रकाशित नहीं हुआ । दूसरा खण्ड जिसमें इन कवियोंका सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन है, प्रकाशित हुआहै ।

इस खण्डमें पांच अध्यायोंमें इन छह कवियोंके काव्यमें वस्तुगत सौंदर्य, कल्पना सौंदर्य, शिल्पगत सौंदर्य आदिका अच्छा विश्लेषण है । वस्तुगत सौंदर्यसे लेखक का तात्पर्य है मानवीय-सौंदर्य और प्रकृति-सौंदर्यके चित्रणसे तथा भाव-सौंदर्यसे तात्पर्य है भाव-पक्षमें सौन्दर्याधानसे । कला-पक्षका विवेचन शिल्प-सौंदर्यके अध्यायके अन्तर्गत किया गयाहै जिसमें भाषा, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक और छंदोंके सौंदर्यका आकलन है । चतुर्थ अध्यायमें प्रेम और सौंदर्य-चेतनाके चित्रणमें इन कवियों का क्या स्थान है इसकी समीक्षा की गयीहै । इस समीक्षामें रीतिकालीन कवियों तथा आधुनिक कवियों के प्रेमके प्रति दृष्टिकोणकी तुलनाभी है और अन्य विद्वानों द्वारा किये गये मूल्यांकनका विवेचन भी है । रूप-सौंदर्यके प्रति ऐन्द्रिय आकर्षण या वासनात्मक दृष्टिकोण कहां रहाहै और आध्यात्मिक दृष्टि कहां रही है, इसका विवेचन तात्त्विक महत्त्वका सिद्ध हो सकता है । इसी दृष्टिसे लेखकने तुलसी, विद्यापति आदिकी सौंदर्यानुभूति, रीतिकालीन कवियोंकी सौंदर्यानुभूति और आधुनिक कवियोंकी सौंदर्यानुभूतिका तुलनात्मक अध्ययन कियाहै ।

चूंकि रीतिकालीन कवियोंके उत्कर्षकी प्रमुख आधारशिला उनका शिल्प रहाहै अत: शिल्पगत सौंदर्य का अध्ययन उनके मूल्यांकनके लिए प्रमुख आधारभूमि रहनी चाहिये । लेखकने वैसा कियाभी है । भाषा, शब्दसौष्ठव, अभिधा, लक्षणा आदिका उत्कर्ष, अलंकार-योजना आदि सभीका सोदाहरण विवेचन किया गयाहै । इसी प्रकार वस्तुगत सौंदर्यवाले अध्याय में भी प्रेमकी निष्ठा, भक्ति सौंदर्य, भाव सौंदर्य आदि अनेक दृष्टिकोणोंसे कवियोंके आलम्बनोंके प्रति दृष्टिकोणका विवेचन किया गयाहै । लेखकने इन छहों कवियों के काव्यका गहरा अध्ययन कियाहै और सौंदर्यशास्त्रके प्रतिमानोंके आधारपर सभीका उन प्रतिमानोंके अन्तर्गत बिन्दुवार विवेचन कियाहै अत: इन कवियोंके 'जीवन एवं कृतित्व' पर अलगसे कोई विवेचन नहीं है । उसकी आवश्यकता भी नहीं थी । ठाकुर कितने हैं, कौन-कौन

---

[1] प्रकाशक : ग्रंथायन, सर्वोदयनगर, सासनी द्वार, अलीगढ़-२०२००१ । पृष्ठ : ३०४; डिमा. ९१; मूल्य : १६०.०० रु. ।

हैं इत्यादिकी जानकारी चाहिये तो हिन्दी साहित्यके इतिहास देखेजा सकतेहै। ग्रन्थके परिशिष्टमें सहायक ग्रंथोंकी सूची दे दी गयीहै। हां, उसके साथ अन्तमें वर्ग क्रमसे ग्रन्थमें संदर्भित विषयों, ग्रंथों, ग्रन्थकारों आदि की अनुक्रमणिका और दे दी जाती तो ग्रंथकी सार्थकता और बढ़ जाती।

लेखककी मातृभाषा ब्रजभाषा है अतः उसकी पैठ ब्रजभाषाके इन कवियोंके कथ्य और शिल्पमें गहरी होना स्वाभाविक ही है। ग्रंथमें लेखकने अपनी स्थापनाओंके समर्थनमें विपुल उद्धरण भी दियेहैं। यह बात अलग है कि हमें इन उद्धरणोंमें कहीं-कहीं ऐसा लगा कि घनाक्षरी जैसे छंदोंके उद्धरणोंमें कहीं एक चरण रह गयाहै, कहीं दो चरण। घनाक्षरी छंद ब्रजभाषाका प्रमुख छंद है। वह ब्रजकाव्यकी पहचान है। तभी तो इसे कवित्त कहा जाताहै। कविताकी कसौटी इसे ही माना जाता था। इसके चार चरण होतेहैं। सामान्यतः चारों चरणोंके पढ़नेपर ही पूरे छंदका मजा आताहै। कभी-कभी सम्पूर्ण कवित्तका उद्धरण अनावश्यक मानकर दो चरणही उद्धृत कर दिये जायें वह बात अलग है, किन्तु तीन चरण उद्धृत कर अलग हट जाना ऐसा लगताहै जैसे किसीने कोट तो सिल दिया पर एक बांह कटी रह गयी। सुजान रसखानके एक बड़े सुन्दर छन्दका उद्धरण लेखकने पृष्ठ ५१ पर दियाहै पर इसमें केवल तीनही चरण हैं। चौथे चरणके बिना तृप्ति नहीं होती। ऐसा लगताहै जैसे अधूरी थालीपर से भूखा उठना पड़ा हो।

सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययनकी यह परम्परा हिन्दीमें पिछले वर्षोंमें खूब चल पड़ीहै। एक विद्वान्ने तो ब्रह्मसूत्रके प्रथम सूत्रकी तर्जपर एक ग्रन्थ ही लिख डाला है "अथातो सौंदर्य-जिज्ञासा"। इसपर हम कई बार विनोदमें कह चुकेहै कि यह शीर्षक संस्कृतका फिकरा बनानेकी फिक्रमें अशुद्ध होगया। संस्कृतमें विसर्ग संधि के अनुसार "अथात: सौंदर्य जिज्ञासा" बनेगा। अथातो तभी बनेगा जब उसके बाद 'असौंदर्य' शब्द हो। अतः यहां अथातो लिख दिया जाये तो उलटा अर्थ निकलता है "भद्दे पनकी जिज्ञासा"। अथातो ब्रह्मजिज्ञासामें 'ब्र' के पहले तो विसर्गका ओ हो जाताहै पर 'स' के पहले नहीं होता, बीच में 'अ' होनेपर ही होताहै। अस्तु।

यह सौंदर्यशास्त्र शब्द कहांसे आया? यह तो स्पष्ट है कि यह अंग्रेजीके 'ऐस्थेटिक्स' का अनुवाद है। यह ऐस्थेटिक्स भी ग्रीकका शब्द है पर यूनानी काव्य शास्त्रमें काव्य शास्त्रको ऐस्थेटिक्स नहीं कहा गया। अरस्तू ने भी 'पोयटिक्स' नामसे ही काव्यशास्त्र लिखा है, एस्थेटिक्स नामसे नहीं। 'ऐस्थेटिक' नाम (शीर्षक) से क्रोचेने जरूर लिखाहै पर इसे एस्थेटिक्स नाम देना और उसे काव्य शास्त्रके क्षेत्रमें ला बिठाना १८वीं सदी से पहले तो कभी नहीं हुआ। अंग्रेज आलोचना शास्त्री भी मानतेहैं कि एस्थेटिक्सको शास्त्रका रूप देनेका काम सर्वप्रथम अलेक्जेंडर बोमगारटन (१७१४-१७६२) ने कियाथा। १७५० से पहले इसे कोई शास्त्र नहीं मानताथा। बोमगारटनने लैटिनमें सौंदर्य चेतनाका सिद्धान्त बतानेवाला एक शास्त्रीय ग्रन्थ लिखाथा पर वह छप नहीं पाया। अंग्रेज आलोचक भी इसपर एक मत नहीं हैं कि काव्यगत सौंदर्यके शास्त्रीय अध्ययनको 'एस्थेटिक्स' कहा जाये। हिन्दीमें सौंदर्य शास्त्रका अर्थ कोई यह लगा ले कि सौंदर्य प्रसाधनों या ब्यूटी क्लिनिक के सिद्धान्तोंके विवेचनका यह शास्त्र है तो उसे पूर्णतः गलत नहीं ठहराया जा सकता। पर हिन्दीमें काव्य शास्त्रके आधुनिक संस्करणके रूपमें सौंदर्यशास्त्र शब्द खूब चल पड़ाहै। लेखकने यह संकेत भी कियाहै कि भारतीय परम्परामें इसे काव्य शास्त्र ही कहा जाताहै सौंदर्यशास्त्र नहीं। किन्तु हिन्दीमें काव्यके सौंदर्य या आस्वादनके शास्त्रको सौंदर्यशास्त्र कहनेका फैशन २० वीं सदीमें खूब चल निकला। विश्वविद्यालयोंमें आधुनिक विद्वान् "सौंदर्यशास्त्रके प्रतिमानोंको लेकर शोध भी करवा रहेहैं। सौंदर्यानुभूति और सौंदर्य संधान जैसे शब्दभी चल निकलेहैं। अंग्रेजीके समानान्तर शब्दोंके आधारपर ये अर्थ संप्रेषण भी कर देतेहैं। वह बात अलग है। किन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि हिन्दी विद्वानोंमें से किसीने शास्त्रीय विमर्शके क्षेत्रमें इस शब्द पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया। अंग्रेज आलोचकोंने तो अबतक भी इस शब्दको पूर्णतया स्वीकार नहीं किया। आई. ए. रिचर्ड्सने एस्थेटिक्सकी खिल्ली उड़ाते हुए लिखाहै कि सौंदर्यको अनुभूतिके साथ फिट करनेके प्रयत्नोंने बहुत खतरनाक विकृतियां पैदा कर दीहैं। काव्यशास्त्रीय विमर्शसे सौंदर्य शब्दका क्या लेना देना।'

उसने लिखा है (प्रिंसिपल्स ऑफ लिटररी क्रिटिसिज्म) कि दार्शनिक विमर्शमें सौंदर्य शब्दके प्रवेश करानेका काम डॉ. बरनर्ड बोसंके ने कियाथा पर शायद

वह अन्तिम सौंदर्यशास्त्री था। उसने 'थ्री लेक्चर्स ऑन एस्थेटिक्स" लिखकर इसे शास्त्रका रूप देनेका प्रयत्न कियाथा। अंग्रेज आलोचक भी यह तो मानते रहेहैं कि कलामें सौंदर्यकी तलाश जैसे कामोंके लिए तो ब्यूटी, एस्थेटिक्स आदि शब्द उचित हो सकतेहैं किन्तु काव्यशास्त्रका जहां दार्शनिक अध्ययन हो रहाहो वहां ब्यूटीका शास्त्रीय प्रवेश उचित है या नहीं इसपर अब भी दो मत हैं। जो कविताको स्थापत्य, मूर्तिकला या चित्रकलाकी तरह केवल कला मानतेहैं उनके लिए तो सब चलताहै पर भारतमें जहां काव्यको ब्रह्मास्वाद सहोदर माना गयाहै और कविको प्रजापति या स्वयंभू, वहां उसे कलाके भाव बेचना बहुतसे लोगोंके गले नहीं उतरेगा। जोभी हो, १८वीं सदीके उत्तरार्धसे जैसे पश्चिममें एस्थेटिक्स शब्द चल गयाहै वैसे ही २०वीं सदीमें हिन्दीमें सौंदर्यशास्त्र, सौंदर्यानुभूति आदि शब्द भी चल ही निकलेहैं। उपर्युक्त विवरण तो प्रसंगवश विद्वानोंके विनोदार्थ दे दिया गयाहै। उसका यह आशय नहीं कि इन शब्दोंको देश निकाला दे दिया जाये।

किसीभी नामसे सही, रीतिकालीन ब्रजभाषा कवियोंके भावपक्षके विवेचनात्मक अध्ययनके प्रयत्न स्वागतार्ह हैं। विश्वविद्यालयोंके हिन्दी विभागोंमें शोध के प्रसंगमें इस प्रकारके प्रबन्ध तैयार किये जा रहेहैं और उनका यथासमय यथासुविधा प्रकाशन भी हो रहाहै यह हर्षप्रद है। □

आधुनिक हिन्दी काव्य एवं अन्य निबन्ध[1]

लेखक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश 'अमिताभ'

डॉ. संतोषकुमार तिवारीने प्रखर काव्य समीक्षक के रूपमें जो पहचान बनायीहै, 'आधुनिक हिन्दी काव्य एवं अन्य निबन्ध' शीर्षक उनकी नयी आलोचना कृति उनकी प्रतिष्ठाका विस्तार करनेमें सक्षम है। इस कृति में चार बड़े निबन्ध और नौ पुस्तक समीक्षाएं संकलित हैं। 'भूमिका' में डॉ. तिवारीने संकेत कियाहै कि 'हिन्दी कविताके विविध बिन्दुओंपर जोरदार बहस' और 'कविता और जनमानसकी स्वस्थ वैचारिकता' को रेखांकित करना इस कृतिका उद्देश्य है। अपने पहले आलेख 'आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दुसे बच्चन तक' में भारतेन्दुकी साहित्य-साधनाके बहाने 'सार्थक सृजन को व्याख्यायित करते हुए डॉ. तिवारीने लिखाहै —"…सार्थक सृजन अनिवार्यत: अपने समय और समाजको प्रक्षेपित करता हुआ बहुआयामी जीवन के यथार्थका सीधा साक्षात्कार करताहै और मानवीय सदाशयताके परिप्रेक्ष्यमें जीवनमूल्योंको तलाशताहै" (पृ. ९)। डॉ तिवारीने भारतेन्दुसे लेकर आजतक की कवितामें सार्थक कही जानेवाली रचनाओंको विशेष रूपसे अध्ययनका विषय बनायाहै। यह आकस्मिक नहीं है कि वे अपनी समीक्षा-यात्रामें कृतिसे सामाजिक संलग्नता, मानवीय आस्था, समग्र मानवताकी चिन्ता आदिकी अपेक्षा बार-बार करतेहैं।

'आधुनिक हिन्दी काव्य : भारतेन्दुसे बच्चन तक शीर्षक आलेखमें समीक्षकने कई सटीक और विचारोत्तेजक स्थापनाएं प्रस्तुत कीहैं। भारतेन्दुके सम्बन्धमें उसका विचार है कि 'एक सहभोक्ताके नाते वे समाज की पीड़ासे बेखबर नहीं रहे' (पृ. ११), और मैथिलीशरण गुप्तकी रचनाओंमें "युगबोधके आन्तरिक स्पंदन" (पृ. १५) उसे आश्वस्त करतेहैं। छायावादी कवियोंको पलायनवादी बतानेवाले समीक्षकोंसे डॉ. तिवारी तनिक भी सहमत नहीं हैं। उनकी दृष्टिमें, मानवीय चेतनासे संपृक्त छायावादका लोकोन्मुख पक्ष बेहद प्रबल है (पृ. २४)। बच्चन आदिके काव्यको भी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियोंकी भावधारा माननेके वे विरोधी हैं। बच्चनके काव्यमें विघटित मूल्यों, असंगतियों और युगीन विकृतियोंकी पहचान उन्हें आश्वस्त करतीहै (पृ. २५)। ये सारे मंतव्य स्पष्ट करतेहैं कि सामाजिक संपृक्तिको समीक्षक बहुत मूल्यवान् मानताहै। उसका दृष्टिकोण व्यक्तिपरक और रूपवादी न होकर वस्तुनिष्ठ और यथार्थपरक है। दूसरे आलेख 'बच्चनके बादकी हिन्दी कविता' में भी कविने सबसे पहले स्वस्थ सामाजिकता, लोक-संपृक्ति, मानववादी चेतना आदिसे सम्पन्न प्रगतिवादी कविताको महत्त्वपूर्ण मानाहै। किन्तु ऐसा नहीं है कि हर कवि या 'वाद' में से उसके जनधर्मी और समाजबोधी हिस्सेको अलगकर समीक्षाके दायित्वकी पूर्ति कर ली गयीहै। जहां ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियां हैं, वहां उन्हें रेखांकित करनेमें समीक्षकसे चूक नहीं हुईहै। उदाहरणके लिए, प्रयोगवादी काव्यपर समीक्षकका दो टूक निर्णय इस प्रकारहै—"कुल मिलाकर इन कवियों

---

[1] प्रका. : रचना प्रकाशन, बाड़पुरा कालोनी, मथुरा २८१००२। पृष्ठ : १५४; डिमा. ९१; मूल्य : १००.०० रु.।

ने अहंनिष्ठ वैयक्तिकताका परिचय दियाहै (पृ. २२)। इसके विपरीत नयी कवितामें निजीपनका संसार और सामाजिक क्षेत्र एक हो गयेहैं (पृ. ३८)।

'समकालीन कविता : एक परिदृश्य' और 'समकालीन कविता : पुनश्च' शीर्षक आलेखोंमें अपने युगका साक्ष्य बनती समकालीन कविताकी मुख्यधारा और उसके उल्लेखनीय स्वरोंको पढ़नेका प्रयास हुआहै। समीक्षकके अनुसार : "समकालीन कविताकी एक सम्पन्नता यह है कि किसी व्यक्ति-विशेषको केन्द्रमें रखकर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दबावोंका खुला भंडाफोड़ करताहै" (पृ. ५६)। 'मोचीराम', 'नथई महरा', 'लुकमान अली', 'बलदेव खटिक' आदि चरित्रोंकी हिन्दी कवितामें मौजूदगीको देखते हुए समीक्षककी मान्यता सटीक लगतीहै। 'सामाजिकता' का निकष इन आलेखोंके भी केन्द्रमें है। नवें दशकके कुछ ऐसे रचनाकारोंको समीक्षक गले नहीं उतार पायाहै, जो चिन्तनको संवेदनाके स्तरपर उतारते हुए पूरी तरह स्वस्थ सामाजिकतासे एकरस नहीं हो पायेहैं (पृ. ६६) समीक्षक कवितामें विचार और अनुभूतिकी संश्लिष्टता का कायल हैं। किसी 'मतवाद' या राजनीतिक दलसे प्रतिबद्धता उसे एक 'अति' लगतीहै—"हमारी संलग्नता और प्रतिबद्धता मनुष्यसे हो, किसी राजनीतिक दल या मतवादसे नहीं क्योंकि यह 'अति' कई रचनाकारोंको बहुत जल्दी चुका देतीहै" (पृ. ६३)। डॉ. प्रेमशंकर की समीक्षा-दृष्टिको सराहते हुए डॉ. तिवारीने शिविरबद्धताके अभाव और वैचारिक खुलेपनको विशेषतः रेखांकित कियाहै (पृ. १५४)। इससे भी स्पष्ट है कि वे वैचारिक अति या अभिव्यक्तिपर अनावश्यक अंकुश लगानेके पक्षधर नहीं हैं। इससे डॉ. तिवारीकी समीक्षा पद्धतिके संतुलित और सटीक होनेका प्रमाण मिलताहै।

समीक्षा-प्रतिमानोंके रूढ़ और एक-आयामी हो जानेके खतरोंसे डॉ. तिवारी अवगत हैं। उनके अनुसार : "अक्सर देखा जाताहै कि मान्य समीक्षक किसी न किसी मान्य कविको अपना चरम आदर्श मानकर कतिपय मानदण्डोंको सुनिश्चित कर लेतेहैं और फिर उनका समादेशी व्यक्तित्व इस बातकी अनुमति नहीं देता कि वे अन्य अद्यतन कृतियों और रचनाकारोंको अपनी समक्ष देसकें। कोई समीक्षक तुलसीके काव्यादर्शोंमें खो जाताहै, कोई निरालाके और कोई मुक्तिबोधके" (पृ. ११४)। डॉ. तिवारीने किसी एक 'कवि' को आधार नहीं बनायाहै। इसलिए उनकी समीक्षा-पद्धति अनावश्यक जकड़बंदीसे बहुत कुछ मुक्त है। एक ओर उन्हें महेन्द्र भटनागरके काव्यकी जीवनधर्मी अर्थ-गरिमा खींचतीहै तो दूसरी ओर अशोक वाजपेयीके काव्यमें भी 'सामाजिक संलग्नताके साथ आदमियतकी गर्माहट' मिल जातीहै। कई स्थलोंपर समीक्षकने अपनी बात साधिकार और बलपूर्वक कही है। रघुवीर सहाय सम्बन्धी नन्दकिशोर नवलके मंतव्यसे असहमति व्यक्त करते हुए डॉ तिवारीने आरोप लगायाहै कि 'कला क्या है' कविता श्री नवलने गलत रूपमें उद्धृत कीहै (पृ. १३५)। इस प्रकारका आरोप विस्तृत और प्रामाणिक ज्ञानके अभावमें नहीं लगाया जा सकता। समूची पुस्तक एक प्रकारके आत्मविश्वास और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकनसे सम्पन्न है और हिन्दी कविताके पाठकों के बहुत उपयोग कीहै। ▫

पुरस्कृत भारतीय साहित्य

'प्रकर' का वार्षिक विशेषांक 'स्वाधीनता दिवस' के अवसरपर प्रकाशित हो रहाहै।

इस विशेषांकमें असमी, उड़िया, कन्नड़, कोंकणी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, नेपाली, पंजाबी, बंगला, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संस्कृत और हिन्दी भाषाओंकी भारतीय ज्ञानपीठ, के. के. बिड़ला फाउंडेशन और साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत कृतियोंकी समीक्षाएं प्रस्तुत होंगी। महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों और अध्ययन-अनुशीलनमें रुचि रखनेवालोंके लिए यह अंक उपयोगी तो होगाही, शोध और अध्ययन-अनुशीलनकी दिशाओं और बाह्य प्रभावों तथा भारतीय साहित्यकी अन्य स्फूर्तियोंका भी परिचय देगा।

पाठक अपनी प्रति अभीसे सुरक्षित करा सकतेहैं।

प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा अपने प्रकाशनोंके विज्ञापनका उपयुक्त अवसर भी प्रदान करता है।

विज्ञापन दरें होंगी :

पूरा पृष्ठ : १०००.०० रु. **आधा पृष्ठ : ५५०.०० रु.**
चौथाईपृष्ठ : ३००.०० रु. **अंतिम आवरण : २०००.०० रु.**

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७.

हिन्दी व्याकरण मीमाँसा-९

प्रत्यय प्रकरण-१ (दीमशित्स और गुरु कामताप्रसादकी दृष्टि)

— पं. काशीराम शर्मा

७०. **हिन्दीके प्रत्ययोंका परिचय** —पहले बता चुके हैं कि नाम, आख्यात और निपात मुख्य शब्दके रूपमें प्रयुक्त होतेहैं और परस्थानिक तथा प्रत्यय सहायक शब्दोंके रूपमें। इनका काम है नाम आदिके अर्थकी दिशा निर्धारित करना। परस्थानिक और प्रत्ययमें मुख्य भेद यह है कि परस्थानिक जिस शब्दके अर्थकी दिशा निर्धारित करताहै उसके पश्चात् प्रयुक्त होताहै पर उसकी पृथक् सत्ता होतीहै और वह उस शब्दसे दूर भी रह सकताहै जिसके अर्थकी दिशा निर्धारित करता है। प्रत्यय जिसके अर्थकी दिशा निर्धारित करताहै, उससे अलग नहीं रह सकता, सदा संलग्न रहताहै। कुछ वैयाकरण प्रत्ययके तीन भेद करतेहैं : पूर्व प्रत्यय (उपसर्ग), मध्य प्रत्यय (अन्त:सर्ग) और परप्रत्यय (अन्त्य प्रत्यय)। इनके अतिरिक्त विभक्तियोंको 'चरम प्रत्यय' बताने वालेभी हैं, जिन्हें हमने परस्थानिक कहा है। हमारे विचारसे हिन्दी व्याकरणमें उपसर्गों तथा अन्त:सर्गोंका विचार आवश्यक नहीं है। किन्तु परप्रत्ययोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, अत: उनपर आगे विचार किया जायेगा।

७१. **प्रत्ययोंके प्रचलित भेद**—हिन्दीके वैयाकरणों ने संस्कृत व्याकरणोंका अनुकरण करते हुए सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त और तद्धितकी भी चर्चा कीहै। उनकी उपयोगितापर विचार करनेसे पूर्व उनके स्वरूपको समझ लेना उचित होगा। संस्कृत व्याकरणमें प्रातिपदिकों (नाम शब्दों) में 'सुप्' प्रत्यय जुड़नेसे बने पद सुबन्त कहलातेहैं। राम:—रामान् आदि सुबन्त रूप हैं। प्रातिपदिकमें कुछ अन्य प्रत्यय जुड़कर उनके प्राय: विशेषणवत् प्रयोज्य रूप बना देतेहैं। यों बने रूप तद्धितान्त रूप कहलातेहैं और जुड़नेवाले प्रत्यय 'तद्धित'। यथा: भवदीय, अस्मदीय, संघीय, भारतीय, भौतिक, धार्मिक, वैधानिक आदि।' धातुके साथ 'तिङ्' प्रत्यय जुड़नेपर पठति-पठन्ति, भाषते-भाषन्ते जैसे रूप बनतेहैं जो तिङन्त कहलातेहैं। धातुमें ही जुड़नेवाले तिङ्से भिन्न प्रत्यय 'कृत्' कहलातेहैं और उनसे बने रूप कृदन्त। यथा: करणीय, गन्तव्य, पठित, धावमान, पठन, पाठ आदि। हमारे विचारसे इनकी चर्चा हिन्दी व्याकरणोंमें अनावश्यक है। सुबन्त और तिङन्त रूप तो हिन्दीमें गृहीत ही नहीं होते और कृदन्त-तद्धितके जो रूप गृहीत होतेहैं वे सिद्ध रूप गृहीत होतेहैं अत: हिन्दीके छात्रको तो क्या, साधारण संस्कृतके छात्रको भी यह जानकारी उपयोगी नहीं कि उनका निर्माण किस प्रकार हुआ। 'ऐतिहासिक' का निर्मितिमें 'ठस्य इक:' सूत्र और 'इक'के तीन पिताओं 'ठक्-ठञ्-ठन्' की जानकारी संस्कृत व्याकरणके उन छात्रोंके लिए ही उपयोगीहैं जिन्हें शब्दसिद्धि करनीहै या शास्त्रार्थ करनेहैं, अन्यथा तो कोई उपयोग है नहीं। हिन्दीका छात्र तो बस यह जान ले कि जैसे तत्सम रूप में 'इतिहास' अपनाया गया, उसी प्रकार 'ऐतिहासिक' भी। यही स्थिति कर्म, कर्तव्य, करणीय आदिकी निर्माण कथाकी है। हिन्दी छात्रको तो बस इनका अर्थ और प्रयोग जानना चाहिये क्योंकि वे बने बनाये ले लिये गयेहैं। इसी प्रकार नालायक, ला-इलाज, तालीम, मालूम जैसे शब्द बने बनाये लिये गयेहैं, उनकी उत्पत्ति कथा अनावश्यक है। वा. ने इस बातका विस्तारसे उल्लेख कियाहै, गु. पर भारी आक्षेप कियेहैं पर उत्पत्ति कथा देनेमें चूके स्वयं भी नहीहैं। जितनी लम्बी निरर्थक

उत्पत्ति कथाएं वे देतेहैं, उतनी तो दी. और गु. भी नहीं देते। वा. ने लिखाहैं : 'जिन्हें सब समझनेकी इच्छा हो वे 'सभा' द्वारा प्रकाशित 'गुरु' जीका व्याकरण देखें···नेता, जेता, वक्ता आदिकी सिद्धि करनेके लिए 'नी', 'जि', 'वच्' आदिका उल्लेख न किया जायेगा। 'नेता' आदि बने बनाये तद्रूप शब्द यहां गृहीतहैं। 'नी' हिन्दीमें कोई धातु है ही नहीं, और न 'जि' है।' पर वे हीं वा. स्वयं बतातेहैं : 'पहले लोग पत्तोंपर ही रखकर खाते पीतेथे। वृक्ष पत्रोंमें सींकें लगाकर लोग पात्र (पत्तल-दोने) बना लेतेथे। पत्रोंसे बने पात्र। आगे तांबे-पीतल, सोने चांदीके बर्तन बनने लगे पर नाम पात्र ही रहा।' अर्थात् 'गु'--संस्कृत व्याकरणकी चर्चा करें तो निरर्थक पर वा. अपनी कल्पित कथाएं कहनेको भी स्वतंत्र। यही नहीं वे अपनी उच्चारण सुकरता और रुचिको ही ध्यानमें रखकर अन्य भाषाओं और वक्ताओंपर आक्षेप किये बिना भी नहीं रहते। 'आचार्यानी' की व्याख्या करते हुए वा. लिखते हैं : 'आचार्यानी' में 'न' को 'ण' बनना चाहियेथा, संस्कृत नियमके अनुसार, जैसे 'इन्द्राणी' में। परन्तु वार्तिककार 'कात्यायनने रोक लगादी—आचार्यादणत्वं च—'आचार्यकी स्त्री' कहनाहो तो प्रत्ययके 'न' को 'ण' नहीं होताहै! यह विधान कदाचित् उस बेचारीका अपांडित्य प्रकट करनेके लिए! साधारण जन 'ण' को 'न' बोलतेही हैं—कारन-मरन आदि। आचार्यकी अपठित स्त्री भी ऐसाही बोलती होगी। दूसरी स्त्रियां भी 'आचार्यानी' कदाचित् बोलती हों। इसीलिए अणत्वम्का विधान! 'ण' बोलकर पांडित्य प्रकट करनेकी चाल इसकी प्रतिक्रियामें ऐसी कि प्राकृत को अप्राकृत बना दिया गया। शब्दके आदिमें भी 'ण'। 'नमो' को भी 'णमो'। कर्णकटुल बेहद होगयी! परन्तु प्राकृतोंमें यही है। 'ण' से पंडित बननेकी धुन।' वा. यहां भूल जातेहैं कि वे लोग भी जन साधारण ही हैं जो 'पानी-बहन' के स्थानपर 'पाणी-भैण' ही बोल पातेहैं और 'न' को पंडिताऊपन मानतेहैं। किसीकी अक्षमताको कर्णकटुता बतानेवाले वैयाकरण केवल 'आचार्यानी' शब्द बता देते तो पर्याप्त था। यह सब अप्रासंगिक चर्चा क्यों जिसे वे 'प्रासंगिक' चर्चा बताते है।

७२.० **वी. का प्रत्यय विचार**—दी ने प्रत्ययोंका विवेचन 'शब्दोंका निर्माण' शीर्षकके अन्तर्गत भेद-प्रभेद अनुभेदपूर्वक कियाहै। संस्कृतका व्याकरण शब्दसिद्धिमूलक था अतः जहांतक सम्भव हुआहै उस प्रक्रियाको अपनायाहै। संस्कृतके कृत् प्रत्यय हों चाहे तद्धित प्रत्यय, सैंकड़ों शब्दोंमें समान रूपसे दृष्टिगोचर होतेहैं अतः उनको विस्तारसे समझना शब्दसाधक अध्येताके लिए उपयोगी होताहै। पर दी. ने उपयोगी न होते हुएभी केवल एक दो शब्दोंमें दृष्टिगोचर होनेवाले प्रत्ययोंकी गणना भी कर डालीहै। यथा उन्हें 'तैराक' शब्द दिखायी पड़ा और उन्होंने झट 'आक' प्रत्यय बता दिया। उसकी पुष्टिके लिए 'दौड़ाक' जैसा नया शब्द भी गढ़ लिया। ध्यान रहे शब्द गढ़ना वैयाकरणका काम नहीं है। अस्तु, जैसा भी है दी. का विवेचन इस प्रकार है :

७२.१.०. सर्वप्रथम संज्ञाओंके निर्माणकी चार विधियां बतायी हैं : (१) रूप-प्रक्रियात्मक, अर्थात् प्रातिपदिकसे प्रत्यय (परप्रत्यय, पूर्वप्रत्यय या परप्रत्यय और पूर्व प्रत्यय दोनों ही) जोड़कर संज्ञा शब्दोंका निर्माण, जैसे : दास-दासता, संतोष-असंतोष, रोजगार-बेरोजगारी; (२) रूप-प्रक्रियात्मक-वाक्यात्मक, अर्थात् समास रचना, विभिन्न शब्द भेदोंका संज्ञाकरण तथा अनुप्रास (?), जैसे; एक + अधिकार = एकाधिकार, गरीब, छापना-छापा, पानी—पानी-वानी, पूछना--पूछापाछी, बूंद--बूंदाबांदी।' (२) वाक्यात्मक, अर्थात् द्वंद्व समास रचना, जैसे : मां + बाप = मां-बाप। (३) शब्दगत आर्थी, अर्थात् भाषामें पहलेसे चले आ रहे शब्दोंका नये अर्थोंमें प्रयोग, जैसे : 'क्रान्ति' शब्दका अर्थ कभी 'लांघना', क्रमण था किन्तु अब यह केवल 'इन्कलाब', 'सत्ता परिवर्तन' के अर्थमें ही प्रयुक्त होता है; 'विमान शब्दका अर्थ था 'दैवी रथ', पर अब यह 'हवाई जहाज' के अर्थमें प्रयुक्त होताहै। इन सभी विधियोंमें से रूप प्रक्रियात्मक विधि ही सर्वाधिक प्रचलित है, और इसमें भी परप्रत्यय योजनको ही प्रमुख स्थान प्राप्त है। संज्ञाओंके साथ पूर्व-प्रत्यय-योजन इतना लाक्षणिक नहीं है, प्रायः पर-प्रत्यय-योजनके साथही होताहै।'

७२.१.१. दी. कृत इस विवेचनके चारों प्रकारोंका सूक्ष्म भेद हमें सुबोध नहीं लगा। प्रथममें तो उदाहरणों से प्रत्यय प्रयोग स्पष्ट होताहै, पर द्वितीयमें 'गरीब' के संज्ञावत् प्रयोगमें क्या वैचित्र्य है और उसमें निर्माणकी क्या प्रक्रिया है, हमें समझमें नहीं आयी, न छापना और छापा के सम्बन्धको समझ पाये क्योंकि 'छापा' के तो

दो अर्थ है, छपा कागज और छापा पड़ना या मारना। 'पानी-वानी', पूछा-पाछी और बूंदा-बांदी का अनुप्रास निर्माणकी कौन-सी प्रक्रिया समझाताहै यह भी स्पष्ट नहीं है। चौथा भेद अर्थात् शब्दगत आर्थी तो औरभी विचित्र है। यदि कोई शब्द नया अर्थ ग्रहणकर लेताहै तो उसे शब्द निर्माणकी प्रक्रिया कैसे समझ लिया जाये; दी. ही जानें। संज्ञा शब्दोंके समान ही, विशेषण, क्रिया विशेषण, नामजात क्रिया, जटिल नामजात क्रिया, आदिके निर्माणकी प्रक्रिया भी कोई पचास पृष्ठोंमें वर्णित है जिसे क्रमश: देखें।

७२.२. दी. के अनुसार संज्ञाओके निर्माता तीन प्रकारके हैं : परप्रत्यय, पूर्वप्रत्यय और अर्धपूर्वप्रत्यय। इनमें परप्रत्ययोंके अर्थकी दृष्टिसे पांच भेद बतायेहैं : (१) मनुष्यबोधक (पुल्लिग और स्त्रीलिंग) संज्ञा शब्दों के निर्माणकारी परप्रत्यय, (२) जंतुबोधक संज्ञा शब्दों के निर्माणकारी प्रत्यय, (३) वस्तुओं, उपकरणों तथा स्थानोंके नामोंवाले संज्ञा शब्दोंके निर्माणकारी परप्रत्यय, (४) अमूर्त धारणाओंको नामोद्दिष्ट करनेवाले संज्ञा शब्दों अर्थात् भाववाचक संज्ञाओंके निर्माणकारी परप्रत्यय, (५) ऊनतावाचक संज्ञा शब्दोंके निर्माणकारी प्रत्यय। पर इन पांच भेदोंसे भी संतोष नहीं हुआ। अत: इन सबके पुन: उपभेद किये; जैसे मनुष्यबोधकके पुल्लिग-स्त्रीलिंगमूलक दो उपभेद; जंतुबोधक के नरमूलक-मादामूलक दो उपभेद; वस्तु-उपकरण बोधकके पुन: दो उपभेद अर्थात् वस्तुमूलक और स्थानमूलक, अमूर्त धारणाओंके दो उपभेद : (क) क्रिया धातुओंसे अमूर्त धारणाओंके नाम बनानेवाले और (ख) कार्य, कार्य परिणाम और पारिश्रमिकमूलक। यों भेद-उपभेद करके भी संतोष नहीं हुआ अत: पुन: प्रभेदोंमें भी वर्गीकरण है। हमें इस सम्पूर्ण वर्गीकरण की कहीं कोई उपयोगिता नहीं दिखायी दी। हां, ये सब भेद-प्रभेद हिन्दीके जिज्ञासु छात्रके मनमें हिन्दी व्याकरणकी दुर्बोधताका भय बैठानेमें पूर्ण समर्थ है। पुस्तकका आकार बढ़ानेमें तो उपयोगी हैं ही।

७२.२.१. गिनाये गये परप्रत्ययोंके सोदाहरण उल्लेख इस प्रकार हैं : (क) मनुष्यबोधक पुल्लिग शब्दोंसे वृत्तिपेशा आदिका द्योतन करनेवाले, यथा : अक—पाठक, अनुवादक, लेखक; क्रिया धातुसे बने, यथा : अक्कड़—पियक्कड़, कुदक्कड़; आक—तैराक, दौड़ाक; आका-आकू—लड़ाका, लड़ाकू; संज्ञा शब्दोंसे बने, यथा : इया—लोनिया, मोटिया; सबसे अधिक प्रयुक्त : ई—हलवाई, तेली, भंगी, शराबी, लेनिनवादी, पहाड़ी, हिन्दुस्तानी; उआ-वा—मछुवा, मछुआ; ऊ—कमाऊ, खाऊ; ऐवा-वैया—गवैया, कटैया; ओल—ठट्ठोल; कार—इतिहासकार, कहानीकार; गर-गार—बाजीगर, मददगार; दार—दूकानदार, जमींदार; बान-वान—गाड़ीवान; वाला—घरवाला, दिल्लीवाला; पार्टीवाला; हार-हारा—रखहार, लकड़हारा। (ख) सम्बन्ध सूचक संज्ञाओंके निर्माणकारी परप्रत्यय; यथा : आ—फूफा, मौसा; एऊ—बहनेऊ, ननदेऊ; ओई—बहनोई, ननदोई; औता—बहनौता, जेठौता। (ग) प्रातिपदिक शब्दके अर्थसे सहसंबंधित मनुष्यबोधक पुल्लिग शब्दोंका निर्माण करनेवाले अर्ध-परप्रत्यय; यथा : कारी—क्रान्तिकारी; खोर—मुनाफाखोर; ज्ञ—संगीतज्ञ; पति—उद्योगपति; परस्त—फूटपरस्त; पाल—राज्यपाल; बाज़—छतरीबाज़; मार—गोतामार; वासी - भारतवासी; विद्—भाषाविद्, वेत्ता—इतिहासवेत्ता, साज़—घड़ीसाज; शाह—नौकरशाह। (घ) पुल्लिग संज्ञाओंसे स्त्रीलिंग संज्ञाओंके निर्माणकारी परप्रत्यय, यथा : आ—अध्यक्षा; आइन—पंडाइन; आनी—नौकरानी; इका—पाठिका; इन—धोबिन; इया—बुढ़िया; ई—पुत्री, मातुली; नी—स्वामिनी। (ङ) क्रियाओंसे स्त्रीलिंग शब्दोंका निर्माण करनेवाले परप्रत्यय, यथा : ई—रखनी, एली-ऐल—रखेली, रखैल। (च) जन्तुबोधक शब्दोंमें मादासे नर का नाम बनानेवाला परप्रत्यय, यथा : आ—भैंस-भैंसा; भेड़-भेड़ा। (छ) नर जंतुसे मादाका नाम बनानेवाले परप्रत्यय, यथा : इन—बाघिन, सांपिन; इया—कुतिया, चुहिया; ई—हिरनी; नी—ऊंटनी, रीछनी। (ज) उपकरणोंके नाम बनानेवाले परप्रत्यय, यथा : अन—बेलन, आ—बेलना; ऊ—झाड़ू; ना—कतरना, कसना; नी—कतरनी, कसनी; ओड़ा—(औड़ा) हथौड़ा, आल—घड़ियाल। (झ) स्थान, आधार नामोद्दिष्टकार—शब्दोंका निर्माण करनेवाले परप्रत्यय; यथा : दान—फूलदान; दानी—चायदानी, राखदानी; वाई—फुलवाई; वाड़ी—फुलवाड़ी, मनवाड़ी; वारी—फुलवारी; आगार—शस्त्रागार; आलय—विद्यालय; गृह—शवगृह; शाला—पाठशाला; खाना—दवाखाना; गाह—बंदरगाह; घर—डाकघर; इस्तान—पाकिस्तान; स्थान—हिन्दुस्थान; स्तान—हिन्दुस्तान; आबाद—

अहमदाबाद; पुर—जमशेदपुर। (ञ) क्रिया धातुओंसे अमूर्त अवधारणाओंके नाम बनानेवाले परप्रत्यय, यथा: अन—चलन, आन—उड़ान; आ—कहना, फोड़ा, घेरा; अत—खपत; ती—भरती; आई—चढ़ाई, मुसकराई; (ट) कार्य, कर्मका परिणाम तथा पारिश्रमिक-द्योतक आई—बुनाई, खोदाई, सिलाई। (ठ) कार्यबोधक आव—चढ़ाव, बुलाव; आवा—चढ़ावा, बुलावा; आवट—बनावट, लिखावट; आहट (हट)—झनझनाहट, चिल्लाहट; औटी—कसौटी; औता—समझौता; औती—कटौती; नी—छंटनी, करनी, छंटनी। (ड) नामिक प्रातिपदिकोंसे भाववाचक संज्ञा शब्द बनानेवाले परप्रत्यय, यथा: आई—चतुराई, गरमाई; आयत—बहुतायत; ई—खेती, डाक्टरी, अरबी, सूदखोरी, बीमारी, सफेदी; ता—अधीनता; त्व—स्थायित्व; न—नीचान, लंबान; पन—कालापन, अपनापन; पना—मूर्खपना; पा—मोटापा; स—मिठास; हट—कड़वाहट। (ढ) ऊनतावाचक संज्ञा शब्दोंमें परप्रत्यय, यथा: इया—बिटिया; ई—टुकड़ी; एला—मोरेला; ओला—खटोला; की—ढोलकी; ड़ी—आंखड़ी; री—आंखरी, ली—घंटाली; वा—बचवा, मर्दवा। (ण) विशेषणों के निर्माता परप्रत्यय, यथा: आ—भूखा; आऊ—पंडिताऊ; आलू—झगड़ालू; ऊ—बाजारू; इक—ऐतिहासिक, सैनिक; इया—बखेड़िया; ई—धनी, कांग्रेसी; ईय—शास्त्रीय, भारतीय; इल—बोझिल; ईला—नुकीला; ऐल—झड़कैल; ला—बोझला; ला—लाड़ला, निचला; औरी, औरी—लड़कौरी; दार—चमकदार, भड़कदार; नाक—खतरनाक, परक—भाषापरक; मय—सुखमय; मान—बुद्धिमान; वान-बलवान; शाली—प्रतिभाशाली; वर—ताकतवर; वार—भाषावार; वाला (अनेक रूपोंमें)—दाढ़ीवाला, पैसेवाला, सामनेवाला, खिड़कियों वाला, अच्छावाला, बुरावाला; सार—मिलनसार। (त) रिश्ता व्यक्त करनेवाले विशेषणोंके परप्रत्यय—एरा-ऐरी—चचेरा-चचेरी, फुफेरा-फुफेरी; इया—चचिया ससुर, ममिया सास; एला-एली—सौतेला बाप, सौतेली बहन; (थ) क्रिया विशेषणोंके निर्माणके लिए प्रयुक्त परप्रत्यय, यथा: ए—सामने; श:—अक्षरश:; त:—तत्वत:; वत्—मूर्तिवत्; वश—भयवश; आना-दोस्ताना आदि।

७२.२.२. बी. के प्रत्यय विचारकी समीक्षा— ऊपर हमने बी. के द्वारा उल्लिखित केवल परप्रत्ययोंका एक-दो उदाहरणोंके साथ उल्लेख कियाहै। पर बी ने परप्रत्ययोंके साथ पूर्व-प्रत्ययों, अर्ध-पूर्व प्रत्ययों और अर्ध-परप्रत्ययोंका भी परिचय दियाहै। पूर्व प्रत्ययों अ-अन, का-कु के अतिरिक्त प्रति-अधि-अनु-अप-अभि-अव-आ-उप-दुर्-दुश्-दुष्-दुस्-दुः-प्र-वि-सु उपसर्ग गिनायेहैं और फारसीका 'हम' पूर्व-प्रत्यय भी गिनाया है। पता नहीं, निः, निर्, निस्, परा, परि, सम् को क्यों छोड़ दिया और 'प्रति' को अर्ध-पूर्व प्रत्ययोंमें क्यों स्थान दिया! विशेषणोंके निर्माणके प्रसंगमें इन्हें दुबारा सोदाहरण तो गिनाया हीहै, वहां नि-निः-निर्-निश्-निष्-निस् को भी नहीं भूलेहैं। तदतिरिक्त संस्कृतके स, अन्तर्, अंतः, अर्द्ध, नाना और् सह तथा फारसीके ना, बे, अरबीके ला, गैर तथा हिन्दीका 'अध' भी गिनाया है। हम इनके दो-दो बार उल्लेखकी तो क्या एक बार उल्लेखकी भी आवश्यकता नहीं समझते। हिन्दी अन्य भाषाओंसे जो भी शब्द लेतीहै, पके पकाये मालकी तरह लेतीहै, विदेशी पुर्जे खरीदकर अपने यहां उनका समन्वायोजन नहीं करती। यदि एक-एक पुर्जेका परिचय देना आवश्यक हो तब तो कांग्रेस, कान्वेंट आदिका कॉन्, कमेटी का 'कम्', परमिट का 'पर', प्रेजिडेंट का 'प्रे', आदि पता नहीं कितने गिनाने होंगे। वैयाकरणकी संसार भर की भाषाओंकी ही नहीं, उनके व्याकरणोंकी भी जानकारी अपेक्षित होगी। इस विषयमें वा. ने ठीक ही कहा कि हिन्दीका व्याकरण कोई भानमतीका पिटारा नहीं, जिसमें सब कुछ हो।'

७.२.२.१. यों पूर्व प्रत्ययोंका परिचय जितना अनावश्यक है उतना ही अनावश्यक अर्ध-परप्रत्ययोंका परिचय है जिनमें आत्मक, कारी, गत, जनक, दायक, प्रद, परस्त, पसंद, पूर्ण, बंद, बद्ध, बाज, मार, मूलक, युक्त, रहित, शून्य, हीन, विरोधी, विषयक, सम्बन्धी, शील, सूचक आदि संस्कृत-फारसीके शब्द गिनाये गयेहैं जो सामासिक पदोंमें प्रयुक्त होतेहैं।

७.२.२.२. परप्रत्ययके रूपमें जिस दीर्घ सूचीका भाग-विभाग-प्रभाग-अनुभाग सहित अवलोकन ऊपरकर चुकेहैं उनकी उपयोगिता भी विचारणीय है। यदि कोई परप्रत्यय सौ-पचास शब्दोंमें प्रयुक्त होताहो जैसे संस्कृतके तद्धित-कृत् प्रत्यय होतेहैं तब तो फिरभी कुछ उपयोग सम्भव है, अन्यथा केवल पांच सात शब्दोंमें मिलनेवाले प्रत्ययोंकी गणना करनेका कोई लाभ नहीं।

बहुत-से तो हैंभी ऐसे जो किसी **बोली** विशेषके प्रयोग हैं। लोनिया, मोटिया, रखहार, लकड़हारा, बहनेऊ, बहनौता, मुसकराई, कटनी, झड़कैल. बोझला, लड़कौरी, जैसे शब्द पता नहीं कहांसे ढूंढ लाये गयेहैं। 'पनवाड़ी' बेचारेका तो अर्थ और लिंगभी बदल दिया लगताहै क्योंकि उसे फुलवाड़ी-फुलवारी-फुलवाईके साथ रखा गयाहै। लेखक-पाठक-अनुवादक-सहायकमें अक (संस्कृत मूलका परप्रत्यय) बताया गयाहै पर व्याख्या अपनी रुचि के अनुसार कर ली गयीहै। लेख, पाठ, अनुवाद, सहाय में 'अक' जुड़ा हुआ बताया गयाहै जबकि हमें तो इसमें केवल 'क' जुड़ा हुआ दीख रहाहै। संस्कृत व्याकरणवाले तो 'अक्' को कृत् प्रत्यय मानतेहैं जो लिख्-पठ्-अनुवद् आदि में जुड़कर लेखक-पाठक-अनुवादक आदिका निर्माण करताहै पर 'सहायक' का नहीं। अपने मनकी व्याख्या करनीथी तो सीधे 'क' का योग बता सकतेथे, संस्कृतके 'अक' प्रत्ययकी चर्चा क्यों की गयी? 'भंगी' का निर्माण 'भंग' से कर लिया गयाहै जैसे 'शराबी' का 'शराब' से। दी. को सम्भवत: पता नहीं कि 'भंग' पीने वाला 'भंगी' नहीं 'भंगेड़ी' कहलाताहै। पता होता तो सूचीमें 'एड़ी' भी जुड़ जाता और उदाहरणभी जुड़ जाते भंगेड़ी-गंजेड़ी। 'मछ' से 'मछवा', 'मछुआ' और 'मछेरा' व्युत्पन्न किये गयेहैं पर 'मछ' के दर्शन हमें तो हिन्दी साहित्यमें कहीं हुए नहीं। 'बछेरा' को जानते नहीं होंगे अन्यथा उसे भी 'बछ' से व्युत्पन्न कर देते। 'वाला' का हिन्दीमें अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान हैं पर दी. उससे रुष्ट हैं अत: लिखतेहैं—'वाला' परप्रत्ययान्त शब्द साहित्यिक भाषाके लिए इतने लाक्षणिक नहीं है जितने कि बोलचालकी भाषाके लिए।' इसीकी पुष्टिके लिए शायद 'अच्छावाला', बुरावाला जैसे प्रयोग समाविष्ट कियेहैं जो वस्तुत: परिनिष्ठित प्रयोग हैं ही नहीं। यह भी लिखाहै: 'वाला' परप्रत्ययसे बने शब्दोंकी विशिष्टता है उनकी शाब्दिक अस्थिरता। इस प्रकार बने अनेक शब्द कोई स्थायी शाब्दिक इकाई नहीं होते और हर बार वाक् क्रियामें इनका निर्माण होताहै अर्थात् इनका निर्माण प्रासंगिक होताहै। यही कारण है कि 'वाला' परप्रत्ययसे बने अधिकांश शब्द कोशोंमें नहीं दिये जाते।' 'पाठिका-लेखिका' को 'पाठक-लेखक' का स्त्रीलिंग रूप नहीं माना, सीधा 'पाठ-लेख' में 'इका' जोड़कर व्युत्पन्न किया गयाहै। 'ऊनतावाचक' परप्रत्ययसे बने 'मोरेला', 'आखरी', 'घंटाली' का प्रयोग हमने तो नहीं देखाहै पर वे भी 'बचवा', 'मर्दवा' की भांति बोलियोंके प्रयोग होंगे। 'टुकड़ी' को 'टुकड़ा' का ऊनवाचक बताया गयाहै पर 'टुकड़ी' का प्रयोग हमने तो सेनाके प्रसंगमें देखाहै पर उससे बड़े 'टुकड़े' का कहीं नहीं देखा। दी. का किया हुआ यह सब श्रम कितना उपयोगी है, पाठक विचार करें। यदि विशुद्ध हिन्दीके प्रत्ययोंकी जानकारीकी उपयोगिता स्वीकार की जाये तबभी भेद-प्रभेद-अनुभेद मूलक वर्गीकरणका उपयोग तो संदिग्ध है ही। संस्कृत, फारसी, अरबी आदिके प्रत्ययोंका परिचय तो सर्वथा अनावश्यक है, पूर्व प्रत्ययोंका तो है ही।

७३.०. गु. का उपसर्ग-प्रत्यय विचार —गु. ने प्रत्यय विचारको पूरे पांच अध्याय समर्पित कियेहैं। प्रथम अध्यायमें उपसर्ग और प्रत्ययका सामान्य परिचय दिया है और जिसे दी. ने पूर्वप्रत्यय कहाथा उसे उपसर्ग कहाहै तथा उसके परप्रत्ययको केवल प्रत्यय कहाहै। दोनोंकी परिभाषामें उन्हें जुड़नेवाले अक्षर या अक्षर-समूह कहाहै। लिखाहै: '(अ) शब्दके पूर्व जो अक्षर या अक्षर समूह लगाया जाताहै, उसे उपसर्ग कहतेहै। जैसे, 'बन' शब्दके पूर्व 'अन' निषेधार्थी अक्षर समूह लगानेसे 'अनबन' शब्द बनताहै। इस शब्दमें 'अन' को 'उपसर्ग' कहतेहैं। (आ) शब्दोंके पश्चात् (आगे) जो अक्षर वा अक्षर-समूह लगाया जात्ताहै उसे प्रत्यय कहते हैं, जैसे 'बड़ा' शब्दमें 'आई' अक्षर-समूहसे 'बड़ाई' शब्द बनताहै, इसलिए 'आई' प्रत्यय है।' सूचनामें विचित्र बात कहीहै कि 'संस्कृतमें शब्दोंके पूर्व आने वाले कुछ नियत अक्षरोंको उपसर्ग कहतेहैं, बाकीको अव्यय मानतेहैं। यह अन्तर उस भाषाकी दृष्टिसे महत्त्व का भी हो, पर हिन्दीमें ऐसा अन्तर माननेका कोई कारण नहीं है, इसलिए हिन्दीमें 'उपसर्ग' शब्दकी योजना अधिक व्यापक अर्थमें होतीहै।' इसी प्रकार अन्य सूचनामें प्रत्यय और चरम प्रत्ययका भेद भी समझानेका यत्न है। प्रत्ययोंके दो भेद—कृदन्त और तद्धित बताकर उनकी परिभाषाएं दी गयीहैं और उनके अन्तर्गत सूचनामें कहाहै: 'इस प्रकरणमें केवल तत्सम शब्दों का विचार किया जायेगा क्योंकि तद्भव शब्दोंकी व्युत्पत्तिका विचार करना व्याकरणका विषय नहीं किन्तु कोशका है।' दूसरे अध्यायमें पहले पाणिनि व्याकरण के २१ उपसर्ग गिनायेहैं, 'अपि' को छोड़ दियाहै। पर उत्, उद् को दो मानकर संख्या २२ कर लीहै। फिर

लिखाहै कि संस्कृत शब्दोंमें कोई-कोई विशेषण और अव्यय भी उपसर्गोंके समान व्यवहृत होतेहैं। इनका यहां उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि वे बहुधा स्वतंत्र रूपमें उपयोगमें नहीं आते।'' इनमें अ-अधस्-अन्तर्-अमा-अजम्-आविर् - इति-कु-चिर-तिरस्-न-नाना-पुरस्-पुरा-पुनर्-प्राक्-प्रातर्-प्रादुर्-बहिर्-स-सत्-सह-वि-स्वयं-स्वर् की गणना की गयीहै। इनके बाद आठ हिन्दीके उपसर्ग सोदाहरण गिनायेहैं, यथा : अ-अजान, अलग; अध-अधमरा, अधपई; उन-उन्नीस, उनसठ; औ-औघट, औसर; दु-दुकाल, दुबला; नि-निकम्मा, निडर, निरोगी, निहत्था, बिन-बिनजाने, बिन ब्याहा; भर-भरपेट, भरकोम। उन्नीस उर्दू के उपसर्ग सोदाहरण दियेहैं जिनमें से सातके आगे कोष्ठकमें (अ) लिखा है जिसका अर्थ कदाचित् 'अरबी' है। उनका विवरण इस प्रकार है : अल-अलबत्ता; कम-कमजोर; खुश-खुशदिल; ग़ैर-ग़ैर-ह़ाजिर; दर-दरकार; ना-नालायक; फी-फिलहाल (फी अल हाल); ब-बनाम, बदौलत; बद-बदनाम; बर-बरदाश्त; बा-बातमीज; बिल-बिलकुल; बिला-बिलाशक; बे-बेचारा; ला-लाचार; सर-सरकार; हम-हमराह; हर-हररोज। एक उपसर्ग अंग्रेजीका भी बताया गयाहै : सब-सबइंस्पेक्टर।

७३.०.१. ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट है कि गु. ने 'उपसर्ग' शब्द तो संस्कृत व्याकरणसे ले लिया और उसका प्रयोग अंग्रेजीके 'सफिक्स' का पर्याय मानकर किया। ऊपरसे तर्क यह दिया कि 'हिन्दीमें उपसर्ग शब्दकी योजना अधिक व्यापक अर्थमें होतीहै।' संस्कृत व्याकरणके प्रयोगको चिन्त्य बताते हुए लिखा कि 'संस्कृत में शब्दोंके पूर्व आनेवाले कुछ अक्षरोंको उपसर्ग कहते हैं, बाकीको अव्यय मानतेहैं। यह अन्तर उस भाषाकी दृष्टिसे महत्त्वका भी हो, पर हिन्दीमें ऐसा अन्तर माननेका कोई कारण नहीं है।' विचित्र तर्क है गु. महोदयका। जिस भाषाका वह शब्द है, उसमें गृहीत अर्थ और कृत प्रयोग तो दोषपूर्ण और अंग्रेजीके शब्द के पर्यायके रूपमें गृहीत अर्थ व्यापक ही नहीं उचित भी। कहना तो यह चाहियेथा कि 'हम इस शब्दका प्रयोग अंग्रेजीके किसी शब्दके पर्यायके रूपमें कर रहे हैं अतः हमें उसका थोड़ा अर्थ-विस्तार करना पड़ रहा है', पर गु. अपनी इस मनमानीको सही मानकर दोष पातेहैं संस्कृत प्रयोगमें। संस्कृत व्याकरणमें (पाणिनिने) पूरे २२ उपसर्ग गिनायेहैं और यह भी स्पष्ट कियाहै कि ये तभी उपसर्ग होतेहैं जब धातुसे पूर्व प्रयुक्त हों। यह विधान आवश्यक था क्योंकि उपसर्ग सहित धातुओं और उपसर्ग रहित धातुओंके व्यवहारमें भेद हैं। यथा : उपसर्गरहित धातुके साथ 'क्त्वा' नामक प्रत्यय जिस अर्थमें जुड़ताहै, उसी अर्थमें उपसर्ग सहित धातुके साथ 'ल्यप्' जुड़ताहै। पर, प्रति, अनु, अभि' आदि जब नाम शब्दोंसे पूर्व जुड़तेहैं तो 'अव्यय' होतेहैं और निर्मित शब्द अव्ययीभाव समासयुक्त शब्द माना जाता, यथा : प्रतिदिनम्, उपगंगम्, अनुकूलम्, अभिमुखम्। यों शब्द परिभाषाका अनुसरण करतेहैं, परिभाषाको शब्दोंके पीछे पीछे वेष बदलकर नहीं भागना पड़ता। हमारा तो निवेदन है कि चाहे प्रतिदिन-अनुकूल-अभिमुख जैसे अव्यय शब्द हों चाहे प्रतिष्ठा-अनुभव-अभिधान-संयोग जैसे कृदंत रूप, हिन्दीमें तो बने-बनाये सिद्ध रूपमें ही गृहीत होतेहैं। गु. की परिभाषा तो उपसर्गोंको 'शब्दों' के पूर्व प्रयुक्त अक्षर बतातीहै पर हमे तो न कहीं निष्ठा-प्रतिष्ठा आदिका 'ष्ठा' शब्द मिला, न संविधान-परिधान-आधान का 'धान' ही दृष्टिगोचर हुआ। अतः छात्रके लिए इस विश्लेषणका कोई उपयोग नहीं है। प्रत्येक उपसर्गके दस-दस अर्थ गिनानेसे भी कोई लाभ नहीं, यदि एक ही निश्चित अर्थ होता तब तो कोई उपयोग भी होता। पर वैयाकरणने तो डंकेकी चोट यही कहा कि 'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।' बलात् अन्यत्र कहां ले जाये, इसका कोई ठिकाना नहीं है। अतः संस्कृतके शब्दोंका तत्सम रूपमें चाहे जितना प्रयोग किया जाये, पर इस चक्करमें न पड़ा जाये कि उपसर्ग क्या है और वह किस 'शब्द' से पूर्व जुड़ाहै। बात संस्कृत उपसर्गों तक ही नहीं है, तथाकथित हिन्दी और उर्दू उपसर्गों पर भी समान रूपसे लागू होतीहै। गु. के उदाहरण 'अनबन', 'अलग', 'औघट', 'औसर' आदिक उपसर्ग-ग्राहक 'बन-लग-घट-सर' जैसे शब्दोंका प्रयोग हमने तो कहीं देखा नहीं है। 'मेरा उनस अनबन है' प्रयोग तो देखा है पर 'मेरी उनसे बन है' नहीं देखा। इसी प्रकार 'अलग होनेवाले' 'औसर' चूकनेवाले तो देखेहैं पर न 'लग होने वाले' देखेहै, न 'सर चूकनेवाले'। यही दशा 'उर्दू उपसर्गों' की है। अलबत्ता' से तो हम परिचित हैं पर 'बत्ता' से नहीं। 'फिलहाल' तो ठीक है, पर फी + अल + हाल जानकर क्या करनाहै। 'बदकार', 'बदनाम', बदमाश' जैसा ही 'बदकिस्मत', 'बाद-

शाह' भी है, यह ज्ञान हमें गु. से ही मिला। 'बिलकुल' से हम सुपरिचित हैं पर उसके दो टुकड़े करके जानने की इच्छा बिलकुल नहीं है। न 'सरकार-सरताज-सरदार' के दो-दो टुकड़े करना चाहतेहैं। हाँ, हमें गु. के व्याकरणमें अंग्रेजीका 'सब' उपसर्ग देखकर प्रसन्नता हुई—जो 'सबका इन्स्पेक्टर' वही होता होगा 'सब-इन्स्पेक्टर'। सार यह कि हम 'उपसर्ग-प्रकरण' को अनावश्यक बोझ समझतेहैं।

७३ १.०. गु. कृत कृदन्त-तद्धित विचार—गु. के प्रत्यय प्रकरणके तीसरे-चौथे-पांचवें अध्याय क्रमशः संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के कृदन्त-तद्धितोंको समर्पित है। लगताहै गु. हिन्दीके छात्रको केवल हिन्दीका व्याकरण नहीं पढ़ाना चाहते, उसे संस्कृत, फारसी और अरबीके व्याकरणमें भी पारंगत करना चाहतेहैं। इस दिशामें उनके द्वारा किये हुए परिश्रमपर भी थोड़ा दृष्टिपात कर लें। आरम्भ संस्कृत कृदन्तोंसे हैं। संस्कृतके कृदन्त रूप तो संस्कृत व्याकरणसे गृहीत हैं, धातुएंभी, पर प्रत्ययोंके नाम अपने गढ़े गयेहैं। यों चोर-दीप-नद-सर्प-देव-बुध आदि २२ शब्दोंमें 'अ' प्रत्यय बताया गयाहै जिसने चुर-दीप-नद्-सृप-दिव-बुध् आदि धातुओंमें जुड़कर ये शब्द बना डाले हैं। इसी प्रकार कृ-गै-दा आदि बारह धातुओंमें 'अक' जुड़ताहै और उन्हें कारक-गायक-दायक आदि बना देताहै। 'अत्' बेचारा हिन्दीमें विशेष प्रचार नहीं पा सका पर जगत्-जगती-दमयंती जैसी सन्तति छोड़ ही गया। 'अन्' ने अनेक कर्तृवाचक शब्दोंका निर्माण कियाहै और अनेक भाववाचक शब्दोंका जिनमें से नंदन-रमण-रावण जैसे दस कर्तृवाचक गिनाये गयेहैं और सहन-भवन-मरण-भोजन जैसे आठ भाववाचक तथा नयन-पान जैसे चार करणवाचक भी गिनाये गयेहैं। तदनन्तर भाववाचक 'ना' का उल्लेख है जो वेदना-रचना-घटना-तुलना आदि के लिए उत्तरदायी हैं। ऐसे ग्यारह शब्द गिनाये गयेहैं जिनमें से दो —प्रार्थना-आराधना—के धातु-उपसर्ग का भी विश्लेषण किया गयाहै : प्र + अर्थ, अ + राध्। 'दर्शनीय-रमणीय' जैसे आठ उदाहरण 'अनीय' (योग्यार्थ) के दियेहैं। हिन्दीके 'सराहनीय' को भी इसी आदर्श पर बना बताया गयाहै। नौ उदाहरण भाववाचक 'आ' के दिये गयेहैं जिनमें इच्छा-पूजा-चिंता आदि है। फिर सरस्-तमस्-तेजस् आदिमें अस् (विविध अर्थमें) बताना आवश्यक समझा गयाहै अन्यथा छात्र सरसिज-तेजःपुंज आदिको कैसे समझेगा। दयालु-शयालु का जन्म 'आलु' की कृपा से बताया गयाहै तो हरि-कविका 'इ' से। 'त्यागी-योगी-वादी' आदिके लिए 'इन्' दोषी है। दुष् धातु का 'भूलना अर्थ बताया गयाहै अर्थात् दोषीका अर्थ है भुलक्कड़। 'इस्' जुड़नेसे ज्योतिस्-हविस् बनेहैं, यह जाननेके लिए छात्रको यहभी बताया गयाहै कि 'ज्योतिस्' में धातु 'द्युत' है। 'सहिष्णु-वर्धिष्णु' में 'इष्णु' प्रत्यय बताया गयाहै पर 'विष्णु' में केवल 'नु' है जबकि 'जिष्णु' में 'ष्णु' है। ये योग्यार्थक कर्तृवाचक प्रत्यय हैं। 'इच्छु-साधु' में कर्तृवाचक 'उ' बताया गयाहै तो 'भिक्षुक-घातुक-भावुक-कामुक' में 'उक'। 'भासुर-भंगुर' में 'उर' बतायाहै पर 'चक्षुस्-आयुस्-यजुस्-वपुस्-धनुस्' में 'उस्' बताना छूट गयाहै। 'गत-भूत-कृत-मृत' आदि इक्कीस शब्दोंमें 'त' भूतकालिक कृदंत बताया गयाहै। 'लीन-उद्विग्न-खिन्न-जीर्ण-कीर्ण' में 'त' का 'न' या 'ण' होना बताया गया है। 'पूरित-पूर्ण', 'त्रात-त्राण' जैसे दो रूप होनेकी चर्चा भी की गयीहै। 'शुष्क-पक्व' में भी 'त्' ही बताया गया है। 'कर्त्ता-भर्ता' आदि नौ शब्द 'तृ' के प्रयोगके बताये गयेहैं। आठ शब्द 'तव्य' युक्त दिये गयेहैं 'कर्तव्य-द्रष्टव्य' आदि। भाववाचक 'ति' से बने कृति-स्मृति आदि के साथ बुद्धि-सृष्टि-स्थिति-दृष्टि आदि भी गिनाये गये हैं। 'ति' के बदले 'नि' हो जानेका उल्लेख है यथा 'हानि-ग्लानि' में। करणवाचक 'त्र' से नेत्र-शास्त्र-अस्त्र आदिका होना बताया गयाहै। इसी 'त्र' से 'खनित्र-पवित्र-चरित्र' की रचना बतायी गयीहै। 'कृत्रिम' में 'त्रिम' (निवृत्तके अर्थमें) बताया गयाहै। 'यत्न-स्वप्न-प्रश्न' आदिमें 'न' बताया गयाहै। 'दाम-धाम-ब्रह्म' आदिमें 'मन्' का उल्लेख है। 'यजमान-विद्यमान-देदीप्यमान' आदिमें 'मान' का वर्तमान होना बताया गयाहै। (योग्यार्थक) 'य' की उपस्थिति 'कार्य-पाठ्य-क्षम्य-देय' आदिमें बतायी गयीहै तो (भाववाचक) 'या' की 'विद्या-चर्या-शय्या-मृगया' आदिमें। (गुणवाचक) 'र' को पाकर 'नम्र-हिंस्र' बनेहैं तो कर्तृवाचक 'रु' को पाकर दारु-मेरु'। (गुणवाचक) 'वर' की कृपासे स्थावर-भास्वर-ईश्वर' की रचना हुईहै तो (इच्छाबोधक) 'स + आ' से 'पिपासा-जिज्ञासा-लालसा' आदिकी। यों ग. ने संस्कृत व्याकरणके सारे कृत् प्रत्यय गिनानेका यत्न तो कियाहै पर नामकरण अपनी इच्छासे भी किये हैं। शब्दोंके इस विश्लेषणसे हिन्दी छात्रका ज्ञान किस

दिशामें बढ़ेगा, इस बातकी जानकारी हमें तो नहीं है।

७३.१.१. संस्कृतके तद्धितांत शब्दोंका विश्लेषण : गु. ने संस्कृत व्याकरणोंसे तद्धित प्रत्यय भी तथावत् लियेहैं पर नामकरण अपनी रुचिसे कियेहैं। औचित्य और उपयोगिता वे ही जानें। उनके अनुसार 'राघव-पांडव-पार्थ-पार्वती' आदिमें (अपत्यवाचक) 'अ' है, तो 'शैव-वैष्णव-चांद्र-पार्थिव' आदिमें (गुणवाचक) 'अ' और 'कौशल-पुरुष-मौन-लाघव' आदि में (भाववाचक) 'अ'। 'मीमांसक-शिक्षक' में (उसको जाननेवाला) अक है तो 'पितामह-मातामह' में (उसका पिता) 'आमह'। 'दाशरथी-मारुति' में (उसका पुत्र) 'इ' है तो 'तार्किक-नैयायिक' में (उसको जाननेवाला) 'इक'। 'वार्षिक-दैनिक-सैनिक-धनिक' आदि सोलह शब्दोंमें यही 'इक' (गुणवाचक) है तो 'फलित-कुसुमित-आनंदित आदिमें इत (गुणवाचक) है। 'शास्त्री-हली-पक्षी-सुखी' आदि अनेक शब्दोंका रचयिता (कर्तृवाचक) 'इन्' है तो 'मलिन-बर्हिण' आदिका निर्माता 'इन' जो समीचीन-अर्वाचीन' का भी जनक है। 'अग्रिम-अन्तिम-पश्चिम' में (गुणवाचक) 'इन' बताया गयाहै और 'महिमा-गरिमा-लघिमा' आदिमें (भाववाचक) 'इमा'। 'राष्ट्रिय-क्षत्रिय' आदिमें (गुणवाचक) 'इय'। 'तुंदिल-पंकिल-फेनिल' आदिमें (गुणवाचक) 'इल' है तो 'बलिष्ठ-स्वादिष्ठ-श्रेष्ठ' आदिमें (श्रेष्ठताके अर्थमें) 'इष्ठ'। 'ग्रामीण-पारीण' आदिमें (गुणवाचक) 'ईन' है तो 'त्वदीय-मदीय' आदिके (संबंधवाचक) 'ईय'। 'स्वकीय-परकीय-राजकीय' में है तो 'ईय' ही पर 'क्' का भी आगम हो गयाहै। 'मातुल' में (संबंधवाचक) 'उल' बताया गयाहै, 'वैनतेय-कौन्तेय-गांगेय' आदिमें (अपत्यवाचक) 'एय'। यही 'एय' 'आग्नेय-पाथेय' आदिमें विविध अर्थोंमें प्रयुक्त बताया गयाहै। 'पुत्रक-बालक-वृक्षक' आदिमें 'क' (ऊनवाचक) है तो 'पंचक-अष्टक-दशक' आदिमें (समुदायवाचक)। (विधि अर्थमें) जुड़नेवाले 'कट' को उपसर्गोंमें जुड़कर 'संकट-प्रकट-विकट-निकट' आदिका निर्माण करनेका श्रेय है। 'कल्प' (ऊनवाचक) 'कविकल्प-विद्वत्कल्प' का निर्माता है : तो 'चित्' अनिश्चयवाचक 'किंचित्-क्वचित्' आदिका। (कर्तृवाचक) 'ठ' 'कमठ-जरठ' को रचताहै तो (काल संबंधवाचक) 'तन' 'सनातन-पुरातन' आदिको। (रीतिवाचक) 'तस्' 'स्वतः-तत्त्वतः', आदिका जनक है तो (संबंधवाचक) 'त्य' अमात्य-नित्य-दाक्षिणात्य' आदिका। (स्थानवाचक) 'त्र' से 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' आदि बनेहैं तो (भाववाचक) 'ता' से 'गुरुता-लघुता-समता' आदि और (समूहवाचक) 'ता' से 'जनता-देवता-बंधुता-सहायता'। इत्यादि। (भाववाचक) 'त्व' के मेलसे 'गुरुत्व-सतीत्व' जैसे शब्द बनतेहैं तो (रीतिवाचक) 'था' से 'यथा-तथा-सर्वथा' जैसे और 'दा' से कालवाचक 'यदा-कदा-सर्वदा' तो 'धा' (प्रकारवाचक) से 'द्विधा-त्रिधा-शतधा'। (गुणवाचक) 'धेय' से नामधेय-भागधेय' बनतेहैं तो 'म' से 'मध्यम-अधम-द्रुम'। (गुणवाचक) 'मत्' 'श्रीमान-धीमान् मतिमान्' का जनक है तो (विकार, व्याप्तिके अर्थमें) 'मय' 'विष्णुमय-जलमय-मांसमय' का और 'मात्र' से 'लेशमात्र-नाममात्र-क्षणमात्र' बनेहैं तो 'मिन्' से 'स्वामी-वाग्मी' आदि। (भाववाचक) 'य' से 'माधुर्य-चातुर्य आदि उत्पन्न हुए तो (अपत्यवाचक) 'य' से 'दैत्य-शांडिल्य' आदि और (गुणवाचक) 'र' से 'मधुर-मुखर' आदि बनेहैं तो 'ल' से 'वत्सल-शीतल' आदि और 'लु' से 'श्रद्धालु-दयालु-कृपालु-निद्रालु' आदि। (ध्यान रहे गु ने 'दयालु-शयालु' को कृदन्त प्रकरण में 'आलु' से भी व्युत्पन्न कियाथा)। 'व' से (गुणवाचक) 'केशव-विषुव-अर्णव' आदि बनेहैं तो 'वत्' से 'धनवान्-विद्यावान्-भाग्यवती' आदि। वही 'वत्' सर्वनाम 'यत्-तत्' में जुड़ताहै तो 'तावत्-तावत्' बना देताहै और 'तुल्य' के अर्थमें 'मातृवत्-पितृवत्-पुत्रवत्' आदि। (गुणवाचक) 'वल' से 'कृषीवल-शिखावल-दंतावल' बनतेहैं तो 'विन्' से 'तपस्वी-मेधावी' आदि। (संबंधवाचक) 'व्य' से 'पितृव्य-भ्रातृव्य' बनतेहैं तो (विविधार्थी) 'श' से 'रोमश-कर्कश' आदि तथा (रीतिवाचक) 'शः' से 'क्रमशः-अक्षरशः' आदि बनतेहैं तो (विकारवाचक) 'सात्' से 'भस्मसात्-भूमिसात्' आदि। आगे लिखाहै कि 'ऊपर लिखे प्रत्ययोंके अतिरिक्त संस्कृत में कई एक शब्द ऐसे हैं जो समाजमें उपसर्ग अथवा प्रत्ययके समान प्रयुक्त होतेहैं। यद्यपि इन शब्दोंमें स्वतंत्र अर्थ रहताहैं, जिसके कारण उन्हें शब्द कहतेहैं तथापि इनका स्वतंत्र प्रयोग बहुत कम होताहै। इसलिए इन्हें यहां उपसर्गों और प्रत्ययोंके साथ लिखते हैं। आगे कोई सत्तर शब्द पांच-पांच, सात-सात उदाहरणोंके साथ दियेहैं जिसके विस्तारमें हम नहीं जायेंगे। हां, संस्कृत व्याकरणसे संबंधित इस अध्यायसे यह अवश्य लगताहै कि यदि

किसीको हिन्दी पढ़नी हो तो पहले संस्कृत व्याकरणकी शब्दसिद्धिसे परिचित हो, तब हिन्दी व्याकरण पढ़े।

७३.१.२.० **हिन्दीके कृदन्त और तद्धित**—संस्कृत व्याकरणमें पारंगत होकर छात्र जब हिन्दी व्याकरणका अधिकारी हो जाताहै तो गु. उसे बतातेहैं कि जिन हिन्दी शब्दोंसे वह सुपरिचित है, वे भी उतने स्पष्ट-सरल हैं नहीं, जितने वह समझ बैठाहै। उनका भी तत्त्वज्ञान तभी होगा जब उनमें दृष्ट-अदृष्ट कृत्-तद्धित प्रत्ययोंका ज्ञान होगा। यहांभी कृदन्तोंका आरम्भ 'अ' प्रत्ययसे है और बतायाहै कि 'लूट-जांच-पहुंच-मार' आदिमें 'अ' प्रत्यय है जिसे कुछ लोगोंने 'शून्य' प्रत्यय बताकर भ्रम उत्पन्न कियाहै। यह भी बतायाहै 'किसी किसी धातुके उपान्त्य ह्रस्व इ-उ को गुणादेश होताहै: जैसे, 'हेल-मेल-झोंक। यहभी बतायाहै कि 'आड़-चाल-बाढ़' आदिमें भी है तो 'अ' प्रत्यय ही पर उपान्त्य 'अ' की वृद्धि होतीहै। गु. के अनुसार 'बढ़-घट-भर' जैसे विशेषण (?) भी 'अ' के पुत्र हैं और 'चल-जा-देख' जैसे पूर्वकालिक कृदन्त अव्यय (?) भी। 'बुझक्कड़-भुलक्कड़-पियक्कड़' आदिमें 'अक्कड़' (कर्तृवाचक) है तो 'गढंत-लड़ंत-रटंत' आदिमें 'अंत' (भाववाचक) है। 'लिपटंत' भी उसी वर्गका है। गु. ने 'आ' प्रत्यय के कई प्रयोग बतायेहैं: 'घेरा-फेरा-जोड़ा-तोड़ा' आदि भाववाचक संज्ञाएं हैं तो 'झूला-ठेला-फांसा' आदि करणवाचक; 'मरा-पड़ा-धोया' आदि भूत कृदन्त हैं तो 'मेला-टोटा-झोंका' आदि गुणयुक्त रूप। 'घुड़चढ़ा-कठफोड़ा-गंठकटा आदिमें सामासिक रूप है। 'आई' के संयोगसे 'लड़ाई-चढ़ाई-सिलाई' आदि बनतेहैं तो 'आऊ' के योगसे 'टिकाऊ-बिकाऊ-दिखाऊ आदि और 'उड़ंकू-लड़ंकू' में 'अकू', है तो 'पैराक-तैराक' में 'आक' और 'लड़ाकू-उड़ाकू' में 'आकू'। ये कर्तृवाचक हैं तो 'आन-आप-आव-आवट' भाववाचक हैं यथा: 'उड़ान-लगान', 'मिलाप-जलाप', 'पड़ाव-बचाव', और 'लिखावट-बुनावट' में। 'कहावत' में 'आवत' है तो 'सुहावना-डरावना' मे 'आवना'। 'भुलावा-छलावा-पहिरावा', 'प्यास-रोआंस', 'चिल्लाहट-गड़गड़ाहट' में क्रमश: भाववाचक 'आवा-आस-आहट' हैं तो 'अड़ियल-मरियल' में कर्तृवाचक 'इयल' और 'हंसी-बोली' में भाववाचक 'ई' है तो 'रेती-फांसी' में करणवाचक 'ई' 'जड़िया-धुनिया' में 'इया' कर्तृवाचक है तो 'बढ़िया-घटिया' में गुणवाचक। 'खाऊ-उतारू' में कर्तृवाचक 'ऊ' है तो 'झाड़ू' में करणवाचक। 'देखे-पाए-लिए' 'ए' से बने अव्यय रूप बताये गयेहैं तो 'कमेरा-लुटेरा' में 'ऐरा' और 'कटैया-बचैया' में 'ऐया'। 'लड़ैत-चढैत' में 'ऐत' है तो 'भगोड़ा-हंसोड़ा' में 'ओड़ा' और 'समझौता' में 'औता' है तो 'मनौती-चुनौती' में 'औती' जो 'कसौटी' में 'औटी' हो जातीहै। 'खिलौना-छावनी, कहानी-ठहरौनी' में 'औना-आनी-औनी' प्रत्यय बनायेहैं तो 'बुझौवल' में 'औवल' उसके बाद अनेक व्यंजनादि प्रत्यय दिये गयेहैं जिनके एक-एक उदाहरण देखें: क (बैठक), का (छिलका) की (फिरकी), गी (देनगी), त (बचत), ता (जाता), ती (बटती), ते (खोजते), न (चलन), ना (खाना), नी (करनी), वां (ढलवां), वैया (रखवैया), सार (मिलनसार), हार (होनहार), हा (कटहा)'।

७३.१.२.१. **हिन्दीके तद्धित**—गु. द्वारा परिगणित तद्धित प्रत्ययोंको भी एक-एक उदाहरण सहित देखाजा सकताहै। यथा: आ (भूखा), आं (यहां), आइंद (सड़ाइंद) आई (भलाई), आऊ (अगाऊ), आका (सनाका), आन (घमासान), आना (उड़ियाना), आयत (तिसरायत), आर (गंवार), आरी (पुजारी), आल (लठियाल), आलू (झगड़ालू), आवट (महावट), आस (मिठास), आहट (कड़ुवाहट), इया (मुखिया), ई (मारवाड़ी), ईला (रंगीला), ईसा (मुंदीसा), ऊ (ढालू), एं (पांचें), ए (सामने), एर (मुंडेर), एरा (ककेरा), एड़ी (भंगेड़ी), एली (हथेली), ऐत (लठैत), ऐल (खपरैल), एला (बघेला), ऐला (बनैला), ओट (लंगोट), ओटी (हथौटी), औटा (पहिलौटा), क (धड़क), का (छुटका), की (टिमकी), चंद (मूसलचंद), जा (दूजा), जी (गुरुजी), टा (चोट्टा), ठो (एक ठो), ड़ा (चमड़ा), ड़ी (टंगड़ी), त (चाहत), ता (पांयता), ती (कमती), तना (कितना), था (चौथा) नी (चांदनी), पन (कालापन). पा (बुढ़ापा), ब (अब), भगवान् (वेद भगवान्), राम (मेंढ़कराम), री (कोठरी), ला (अगला), ली (खुजली), ल (पायल), यों (त्यों), वंत (दयावंत) वाल (गयावाल, वाला (टोपीवाला), वां (पांचवां) वा, (बचवा), स (घमस), सा (जैसा), सरा (दूसरा), सों (परसों), हर (पीहर), हरा (तिहरा), हा (पनिहा), हारा (लकड़हारा), ही (वही)। इनके

अतिरिक्त नगर-पुर-गढ़-गांव-नेर-मेर-कोट आदि भी गिनाये हैं जो ग्रामादिके नामोंमें हैं।

७३.२.०. गु. कृत फारसी प्रत्यय विचार—गु. ने पांचवें अध्यायका शीर्षक तो उर्दू प्रत्यय रखाहै, पर विवेचन पहले फारसी प्रत्ययोंका कियाहै और बादमें अरबी प्रत्ययोंका। पहले फारसी कृदंतोंका सोदाहरण उल्लेख है फिर तद्धितोंका। उन्हें रखा हिन्दीके अकारादि क्रममें है। अतः पहला फारसी कृदन्त 'अ' (भाव वाचक) बतायाहै। पर इससे बने शब्द दो स्तम्भोंमें रखे हैं। कदाचित् प्रथम स्तम्भमें उन्हें आख्यात रूप मानाहै और द्वितीयमें संज्ञा रूप। पर लिखा कुछ नहीं है। बस, आमद (आया), आमद (अवाई); खरीद (खरीदा), खरीद (क्रय) जैसे उदाहरणोंसे छात्र जो भी समझ सके, समझ ले। दूसरा प्रत्यय 'आ' (कर्तृ-वाचक) बतायाहै, 'दाना-रिहा' आदिमें, पर 'रिहा होने' में क्या कर्तृत्व है, हम नहीं समझे। अन्य कृदंत् प्रत्यय एक-एक उदाहरण सहित इस प्रकार हैं: आं (चस्पां), इंदा (कुनिंदा), इश (कोशिश), ई (आमदनी), ह (भूतकालिक कृदंत—मुर्दह)। फारसी तद्धितोंसे बने शब्दोंको संज्ञा और विशेषणमें विभक्त किया गयाहै। प्रत्येक प्रत्यय सोदाहरण देखें, पहले संज्ञा शब्दोंमें फिर विशेषणोंमें। (१) संज्ञा यथा: आ (सफेदा), आनह (जुर्माना) ई (सियाही), गी (जिसमें अंतका 'ह' 'ग'में बदलाहै) —बंदह (बंदगी); कार (बदकार), गर (सौदागर), गार (मददगार), चा (बागीचा); दान (खानदान), बान (दरबान), ह (हफ्तह), नामा (इकरारनामा), आब (गुलाब)। (२) विशेषण, यथा: आना (सालाना), इन्दा (कारिंदा) आवर (जोरावर), नाक (दर्दनाक), ई (ईरानी), ईन (रंगीन), मंद (अक्लमंद), वार (उम्मीदवार), वर (जानवर), ईना (कमीना), जादह (शाहजादा)। (३) संज्ञाओंमें कुछ कृदंत जोड़नेसे निर्मित संज्ञा और विशेषण जो यथार्थमें समास बताकर गु. ने 'सुभीतेके कारण' कृदन्तोंमें लिख दियेहैं, यथा: अंदाज (तीरंदाज), आवेज (दस्तावेज), कुन (कारकुन), खोर (हरामखोर), दान (कदरदान), दार (फौजदार), नुमा (कुतुबनुमा), नवीस (अरजीनवीस), नशीन (परदानशीन), बंद (कमरबंद), पोश (पापोश), साज (जालसाज), बर (पैगंबर), बरदार (हुक्काबरदार), बाज (नशेबाज), बीन खुर्दबीन), माल (रूमाल), आबाद (हैदराबाद), खाना (कारखाना), गाह (ईदगाह), इस्तान (कब्रिस्तान), शन (गुलशन), जार (बाजार), बार (बरबार), सार (शर्मसार) आदि।

७३.२.१. अरबी प्रत्यय विचार—अरबी शब्दोंका विश्लेषण करनेमें गु.को भारी परिश्रम करना पड़ा होगा। हम तो उसे बहुत कम समझ पायेहैं पर पाठक उनके श्रमका मूल्यांकनकर सकें अतः उनके अंश यथासम्भव उद्धृत करतेहैं: 'अरबीके प्रायः सभी शब्द किसी-न-किसी धातुसे बने हुए होतेहैं और अधिकांश त्रिवर्ण रहतेहैं।···धातुओंके अक्षरोंके मान (वजन) के अक्षर सब कृदन्तोंमें पाये जातेहैं और वे मूलाक्षर कहाते हैं। इन मूलाक्षरोंके सिवा कुछ औरभी अक्षर कृदन्तों की रचनामें प्रयुक्त होतेहैं जिन्हें अधिकाक्षर कहतेहैं। ये अधिकाक्षर सात हैं: क, त, स, म, न, ऊ, य और इन्हें स्मरण रखनेके लिए इनसे 'कतसमनूय' शब्द बना लिया गयाहै।·· धातुओं और कृदन्तोंके सम्पूर्ण रूप वजनपर बनाये जातेहैं और क-अ-ल को मूलाक्षर मान कर इनसे सब वजन बनतेहैं।' ऐसी भूमिकाके बाद बतायाहै कि 'त्रिवर्ण धातुके मूल रूपसे कई एक क्रियोर्थ संज्ञाएं बनतीहैं। इनमें जो हिन्दीमें प्रचलित हैं उनके वजन और उदाहरण नीचे दिये जातेहैं।' गु. ने सारणी दीहै पर हम उन्हें क्रमशः दे रहेहैं; पहले वजन और उसके आगे उदाहरण, यथा: फ़अ्ल (कत्ल), फ़िअ्ल (इल्म), फ़ुअ्ल (हुक्म), फ़अल (तलब), फ़अ्लत (रहमत), फ़िअ्लत (खिदमत), फ़ुअलत (कुदरत), फ़अलत (हरकत), फ़इलत (सरिक़ा) फ़अ्ला (दअवादावा), फ़आल (सलाम), फ़िआल (क़ियाम), फ़ुआल (सुवाल), फ़ऊल (कबूल), फ़ुऊल (जहूर)' फ़अ्लान (दबरान), फ़आलत (बगावत), फ़िआलत (किताबत), फ़ऊलत (जरूरत), मफ़अलत (महंमत)। इसके पश्चात् दो सूचनाएं भी दीहै जो हम छोड़ रहेहैं। तदनन्तर अरबीके कृदन्त विशेषणोंका विचार है जो फाइल, मफ़ऊल आदिके माध्यमसे तो बताया ही गयाहै, उन्हें 'अपूर्ण कृदन्त अथवा कर्तृवाचक संज्ञा आदि बताकर भी समझाया गयाहै, यथा: फाइल—अपूर्ण कृदंत अथवा कर्तृवाचक संज्ञा (आलिम); मफ़ऊल—भूतकालिक कृदन्त (मशहूर); फईल (हकीम); फ़ऊल (जरूर), अफ़्अल (अकबर); फअ्आल (जल्लाद)। क्रियार्थक संज्ञाओंके अन्य रूपभी द्रष्टव्य हैं: तफ़्ईल

(तअलीम); मुफाअलत (मुकाबला); इफ्आल (इन्कार); तफअ्उल् (तकल्लुफ); इफ्तिआल (इम्तिहान); इस्तिफ्आल (इस्तिमाल)। क्रियार्थक विशेषणोंके वजन है: मुफइलइ (मुअल्लिग); मुफाइल (मुहाफिज), मुफ्इल (मुन्सिफ); मुत्फइल (मुत्वह्लि); मुन्भइल (मुन्सरिम); मुत्फाइल (मुत्वातिर) मुत्फ्इल (मुस्तकबिल), मुफअअल (मुअल्लम), मुफाअल (मुहाफज); मुफ्अल (मुनसफ); मुतफअअल (मुतबद्दल), मुन्फअल (मुन्सरम); मुत्फाअल (मुत्वातर); मुस्तफ्अल (मूस्तकबल)। मुफ्अल और मुफइल के वजनपर स्थानवाचक संज्ञाएं बनतीहैं, यथा: मक्तब, मस्जिद, मंजिल। 'ह' जुड़कर मक़बरह-मद्रसह' का निर्माण बताया है। अरबी तद्धित इस प्रकार गिनायेहैं: आनी (जिस्मानी), इयत (कैंफियत), ई (इल्मी), ची (मशालची-तुर्की), म (बेगम-तुर्की)।

७३.२.२. गु. के प्रत्यय विचारकी समीक्षा—उपसर्गोंके विषयमें हम पहलेही बता चुकेहैं कि न तो संस्कृत उपसर्गोंका ज्ञान और न हिन्दी-उर्दू के उपसर्गों का ज्ञान ही हिन्दीपाठी छात्रकी हिन्दी विषयक जिज्ञासा की कोई पूर्ति करताहै। 'निर्मम-प्रचार' आदिमें 'निः', 'प्र' उपसर्ग हैं, यह जानकर छात्र 'मम-चार' को क्या समझेगा। न हिन्दी उपसर्ग 'अन-अ' का ज्ञान 'अलग-अनमल' के 'लग-भल' पर कोई प्रकाश डालेगा। उर्दू के 'अलबत्ता-दरखास्त' के उपसर्गों 'अल-दर' को समझलें तोभी न 'बत्ता' को समझेंगे, न 'खास्त' को। अतः व्यर्थ की कवायद क्यों? इसी प्रकार 'चोर-दीप-नद' आदिमें 'अ' (कर्तृवाचक) कृत् प्रत्ययका, 'राघव-पार्थ-वासुदेव' आदिमें अपत्यवाचक 'अ' तद्धितका, हिन्दीके 'लूट.जाँच-पहुंच' में भी 'अ' प्रत्यय (कृत्) का और 'आमद-खरीद-रसीद' में फारसी कृदंत अ (भाववाचक) आदिका ज्ञान हिन्दी शब्दोंके प्रयोगमें छात्रके लिए किसी प्रकार सहायक होगा, ऐसा हमें तो नहीं लगता। अरबीके 'जरूर-जरूरत' शब्दोंके प्रयोगमें तो कोई कठिनाई नहीं दीखती पर 'जरूर-जरूरत' की रचना 'जई' से हुईहै जिसका अर्थ 'सताना', बताकर तथा 'जरूरत' में 'फ़ऊलत' तथा 'जरूर' में 'फअ्ल' वजन का होना बताकर गुरुने अपने व्याकरणके वजनको इतना भारी बना दियाहै कि हमारे जैसे साधारण हिन्दी छात्रकी रीढ़ के टूट जानेकी आशंका है। हां, हम गु. के ज्ञानका लोहा माननेको विवश हैं जिन्हें 'संस्कृत-फारसी-अरबी' सभीके व्याकरणोंपर समान अधिकार प्राप्त है। परन्तु हमारा निवेदन है कि हमें हिन्दीका ज्ञान प्राप्त करनाहै, न संस्कृत व्याकरणका आचार्य बननाहै, न अरबी-फारसी का आलिम-फाजिल। हम 'दीप-चोर' जैसे शब्दोंका प्रयोग 'अ' प्रत्ययको समझे बिना भी कर लेंगे और जरूर-जरूरतका प्रयोगभी बिना फऊल-फऊलत के वजन से दबे ही कर लेंगे। हम न 'अजान' से अपरिचित हैं न 'अनजान' से अनभिज्ञ। अतः 'अ-अन' को अलग करना सिखाकर हमारी 'जान' को संकटमें न डाला जाये। हम इस ज्ञानके लिए गुरुजीके आभारी हैं कि 'अ-इ-उ' को अब स्वर नहीं माना जाना चाहिये क्योंकि उनमें भी हल् चिन्ह लग सकतेहैं। यह शायद पाणिनिकी भूल थी कि उसने इन्हें 'अच्' कहा। यह हमारा मत है, पर जो गु. का व्याकरण पढ़कर 'संस्कृत-अरबी-फारसी' पर भी अधिकार करना चाहते हैं, वे अवश्य करें। □

[आगामी अंकमें : प्रत्यय प्रकरण : २ (किशोरी दास वाजपेयीकी दृष्टि]

'प्रकर' के संग्रहणीय विशेषाँक

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

प्रतिवर्ष पुरस्कृत होनेवाली सभी भारतीय भाषाओं सहित हिन्दीकी कृतियोंपर इन विशेषांकोंमें समीक्षा-आलेख संकलित हैं। विशिष्ट पुरस्कार विजेताओंके लेखनपर भी सामग्री दी गयीहै। ये विशेषांक अलगसे उपलब्ध हैं:

प्रकाशन वर्ष	मूल्य	प्रकाशन बर्ष	मूल्य
१९८३	२०.००	१९८८	३०.०० रु.
१९८४	२०.००	१९८९	३५.०० रु.
१९८५	२०.००	१९९०	३५.०० रु.
१९८६	३०.००	१९९१	३५.०० रु.
१९८७	३०.००	१९९२	४०.०० रु.

सभी विशेषांक एक साथ मंगानेपर मूल्य २३५.०० रु. होगा। डाक व्यय निःशुल्क।

राशि ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डरसे 'प्रकर' के नाम से भेजें।

'प्रकर'

ए-८/४२, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-७

काव्य

मास्टर धरमदास[1]

कवि : डॉ. देवेन्द्र दीपक
समीक्षक : डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

मास्टर धरमदास एक व्यंग्य रचना है। रचनाका प्रारम्भ 'अ' से अड़ियल, आ से आडम्बर, इ से इन्द्रासन तथा ई से ईर्ष्या आदि नयी वर्णमालासे करके कवि ने आधुनिक शिक्षकोंकी विशेषताएं प्रकट कीहैं। उसे 'मास्टर' होनेसे किसी गौरवकी अनुभूति नहीं होती क्योंकि आज केवल अध्यापक ही मास्टर नहीं, वरन् सरकसका रिंग मास्टर, टेलर मास्टर, बैंडमास्टर, रिक्शा मास्टर—सभी तो मास्टर हैं।

लेखक स्वयं अध्यापक रहाहै, अत: वह अध्यापकके दर्दको भलीप्रकार समझताहै, शिक्षा व्यवस्थाकी विकृतियों से वह परिचित है, जागरूक होनेके कारण वह देशकी दुरवस्थाके प्रति भी सतर्क है, अत: उसने मनोयोगसे उन सब समस्याओंको इस कृतिके माध्यमसे उठायाहै।

दूसरे खण्डमें धरमदास मुर्गा है क्योंकि वह मुर्गे की भांति आदर्शोंकी बांग देताहै, और उसका मुंडभी मुर्गे की भांति तांबे-सा चमकताहै। मुर्गा दाना दाना चुगता है, धरमदास ट्यूशनपर ट्यूशन पकड़ताहै। वह दो मुर्गों की भांति ट्यूशनके लिए अपने साथियोंसे लड़ताहै।

तीसरे खण्डमें कविने धरमदासके माध्यमसे आधुनिक अध्यापकीय जीवनकी बिडम्बनाओंपर प्रकाश डाला है। अध्यापकका व्यक्तित्व कैसाभी क्यों न हो सबसे अधिक त्रासदी उसकी विचारधाराको लेकर है। जब वह मनोयोगसे 'भूषण' पढ़ाताहै तो जनसंघी कहलाता है, निरालाका बादल राग पढ़ाताहै तो साम्यवादी बन जाताहै और नेहरूकी नीतिपर भाषण देताहै तो लोग उसे सरकारी दलालकी संज्ञा देतेहैं। मलाल है धरमदास के मनमें कि आदमीको संदर्भसे काटकर, क्यों देखतेहैं लोग, कथामें अविश्वास, रखकर भी लोग, क्यों मांगतेहैं भोग?

चौथे खण्डमें अध्यापकीय जीवनके और अधिक विवश रूपके दर्शन होतेहैं। दिसम्बरसे मार्च तक वह ट्यूशनोंमें फंसा होनेके कारण 'उल्लू' बन जाताहै। अप्रैलसे जूनतक परीक्षाकी कापियोंको मछलीकी तरह दबोचनेके कारण 'सारस' है। हां, जुलाईसे दिसम्बर तक वह 'हंस' है और ५ सितम्बरको वह परमहंस बन कर अपने कठोर स्वभावकी अप्रत्यक्ष रूपसे क्षमा मांगता हुआ अपने छात्रोंको ज्योतिका द्वार खोलनेकी प्रेरणा देताहै, अपनेको सीप और छात्रोंको मोती, अपने को शूल, और छात्रोंको फूल कहकर उनको उत्साहित करताहै। उन्हें आगे बढ़नेकी प्रेरणा देताहै। वह कहताहै—"मेरी आत्माके वंशज हो तुम,/मेरी अर्चन हो तुम,/मेरी कविता हो तुम,/मेरा सर्जन हो तुम!/" कवि अन्यत्र कहताहै—"मैं साधना हूं/तुम सिद्धि बन जाना/ मैं नयन हूं/तुम दृष्टि बन जाना/विजयका स्तम्भ हूं मैं/ तुम विजयका केतु बन जाना/हथेलीपर विजय कर/'आज' रख लेना/मानस-पिता हूं/मेरी लाज रख लेना/मेरी लाज रख लेना"। (पृ. १८-१९) इस सुन्दर भाषणके बदले 'धरमदास' को प्रशंसा ही प्रशंसा मिलतीहै। वस्तुतः यहांभी कविने गहरा व्यंग्य कियाहै, आजके अध्यापकके पास भाषणके अतिरिक्त और कुछभी नहीं है, वह भाषणभी 'अध्यापक-दिवस' पर प्रकट होताहै।

पांचवे खण्डमें कविने इस सत्यको प्रकट कियाहै कि केवल वह वेतनके दिन ही प्रसन्न होताहै, शेष दिन केवल 'मैं अध्यापक हूं' इस गौरवके बलपर ही जीता है।

षष्ठ खण्डमें एक सहायता प्राप्त अध्यापकका करुण चित्र है। वहांके अध्यापक 'धरमदास' को अध्यापनके

---

[1] प्रका. : किताबघर, २४/४८६६ अंसारी रोड, दरियागंज; नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ: ६७, डिमा. ९१; मूल्य : ३०.०० रु.।

साथ मैनेजरकी खुशीके लिए उसे रामनवमीके जूलूसमें भगतसिंह बनना पड़ताहै। कवि उसे देखकर कह उठता है—"अरे! यह भगतसिंह कौन है?/ओह! यह तो कम्बख्त घरमदास/पसीनेमें लथपथ मैनेजरको जो मंजूर/वही मंजूर-ए-खुदा/पांच सौ पाकर/हजारपर हस्ताक्षर/करता धरमदास पामर।" (पृ. २१)। बुभुक्षितः किं न करोति पापम्। कविने अध्यापकके माध्यमसे वस्तुतः सम्पूर्ण युगपर ही व्यंग्य कियाहै, जहां भूख और निर्धनताहै, वहां पाप तो होगाही?

सप्तम खण्डमें शिक्षा जगत्का एक अन्य चित्र है। शिक्षकोंके संगठनका, हड़तालका—समाजमें वह चिल्लाताहै—"जबतक शिक्षक भूखा है/ज्ञानका सागर सूखा है" (पृ. २३)। पर तभी वह अपना तेवर बदल कर अध्यापककी अन्तरात्माको जागृत करनेके लिए उसके आदर्शोंका वर्णन करताहै। उसका आदर्श भाषण यथार्थ है, उद्बोधक है, पर उसका प्रभाव कहां? वस्तुतः यहांभी आजके अध्यापकोंपर एक गहरा व्यंग्य है, वे भाषण बढ़िया दे लेतेहैं, पर व्यवहारमें वही ढाक के तीन पात?

आठवें खण्डमें सरकारी अध्यापकको गरीबकी जोरू कहाहै जिससे सरकार बिना कुछ दिये जनगणना, पशु गणना, सर्वेक्षण जैसे अशैक्षिक कामभी करवा लेतीहै। पर उसको मेडिकल बिलके लिए भी कमीशन देनी पड़तीहै और उसकी भविष्य-निधि बाबू और उसके उच्च अधिकारियोंके हाथ है। इस खण्डमें सरकारी शिक्षा (अ)व्यवस्थापर अच्छा व्यंग्य है।

नवम खण्डमें 'धरमदास' एक परिसंवादका संयोजक है। यहांभी उसका मार्मिक भाषण है। जिसमें छात्रोंको उपदेश दिया गयाहै। उन्हें किसीके बहकावेमें आकर नहीं, स्वयं अपने विवेकसे कोई प्रतिक्रिया करनी चाहिये। कविने अत्यन्त प्रभावपूर्ण शैलीमें छात्रोंकी हड़ताल, उनके उपद्रवों आदिका वर्णन कियाहै। वे कोई ऐसा काम न करें जिससे उनकी अपनीही हानि होती है। मनोविज्ञानके आधारपर छात्रोंको इस प्रकार समझायाहै कि उन्हें उसकी सीख बुरी न लगे। अन्तमें अध्यापकोंकी पारस्परिक ईर्ष्याका वर्णन करके कविने दूषित शिक्षा प्रणालीके नये कारणका भी निर्देश कर दियाहै।

दशम खण्डमें अध्यापककी दयनीय स्थितिका चित्र है, उसके लिए अपना मकान एक सपना है। मकानके लिए अधिकारियोंको घूस देनी होतीहै। कविने यहां अधिकारी वर्गकी यथार्थ स्थितिका चित्रण कियाहै—"शक्लसे भेड़िया/अक्लसे लोमड़ी/स्वभावसे अजगर/ऐसा होताहै/हिन्दुस्तानी अफसर" (पृ. ३६)।

ग्यारहवें खण्डमें एक छात्र द्वारा अध्यापककी हत्या का उल्लेख है। अध्यापकका अपराध केवल इतना है कि उसने उस छात्रको नकल करनेसे रोक दियाथा। इस विडम्बनापूर्ण स्थितिपर सभी अवश हैं। कविने उस अवशताकी स्थितिपर आंसू बहानेके लिए 'धरमदास' से एक सुन्दर कविताकी रचना करायी, और उसे एक सम्मानित पत्रमें छपवाकर वाहवाही प्राप्त करनेका अवसर दिया। सारी स्थिति ही व्यंग्यपूर्ण है।

बारहवें खण्डमें बाल-दिवसपर 'धरमदास' बच्चों की ओरसे एक शिकायतनामा प्रस्तुत करताहै। बच्चों के निर्माणमें माता-पिता, अध्यापक शिक्षा प्रणाली तथा देशकी योजनाएं कितनी थोथी हैं, इस सत्यको कविने अत्यन्त सशक्त लेखनीसे प्रकट कियाहै—"उस दिन खेल में भूल/किताब फट गयी/तो तुमने पूरे घरको/आसमान पर उठा लिया,/और जो तुम यह अपने स्वार्थके लिए/देशके नक्शेको फाड़ रहेहो/तो कोई कुछ नहीं बोलता" (पृ. ४७)।

तेरहवें खण्डमें भी 'धरमदास' द्वारा—बच्चोंके निर्माणमें माता-पिता द्वारा कियेजा रहे अपराधको प्रकट करनेके लिए—रचित एक कारुणिक कविता है। कविने स्कूलसे लौटकर आते हुए बच्चोंके मनोभावोंका यथार्थ चित्रण कियाहै—"उसके बस्तेमें रखी कापियां/कापियोंमें मैडम द्वारा/दिये गये अच्छे रिमार्क/उसकी मुट्ठियोंमें आ जातेहैं/जिन्हें वह घर पहुंचकर/जल्दीसे जल्दी/मांकी हथेलीपर रख देना चाहताहै/कमाईके पैसों की तरह!/सत्येन्द्रसे हुई कट्टी/कौस्तुभसे हुई मिट्ठी/श्वेतासे हुई ढुशम-ढुशम/मोहित द्वारा दी गयी बर्थडेकी टाफी/शुचिता द्वारा फाड़ी गयी किताब/बाबू द्वारा दिया गया फी-कार्ड/ऐसी ही और बहुत सी बातें हैं/जिन्हें अभिव्यक्ति आतुर बच्चा/अभिव्यक्ति अधीर बच्चा/फूलकी फंखुरियोंकी तरह/जल्दीसे जल्दी/बरसा देना चाहताहै/अपनी मांपर!" (पृ. ५१)। पर घरमें पहुंच कर जब उसने घरपर ताला देखा तो उसपर क्या बीती। उसका दुष्परिणाम उसका घरसे भाग जानेमें प्रकट हुआ। घरसे बच्चे क्यों भागतेहैं? इस सत्यका कविने मनोविज्ञानके आधारपर यथार्थ वर्णन कियाहै, जोकि

मनुष्यकी अन्तरात्माको झकझोर देताहै, और माता-पिताको तो रुला ही देताहै।

इस व्यंग्य रचनाके चौदहवें और अन्तिम खण्डमें देशकी दयनीय स्थितिका चित्रण है। यद्यपि देशकी समग्र स्थितिका शिक्षा जगत्, अध्यापक, छात्रसे सीधा सम्बन्ध नहीं है तोभी व्यंग्यकारने देशकी शिक्षा व्यवस्था और अध्यापकोंके अध्यापनको प्रकट करनेके लिए उसे अपनी कृतिमें जोड़ दियाहै। ''अध्यापककी चिन्ता किये बिना/अच्छे स्कूल चाहताहै देश/स्कूलकी चिन्ता किये बिना/अच्छा देश चाहतेहैं/नोग/गुलाब नहीं/गूलर का फूल चाहतेहैं लोग। (पृ. ६६)

यह खण्ड एक स्वतन्त्र कविताके रूपमें देशकी स्थितिका चित्रण करनेकी दृष्टिसे भी बेजोड़ है। उसमें—''हमारा देश लाइनोंका देश है', इक्कीस मार्च की विडम्बना', 'मेरे देशकी त्रिशेषता वायदा-खिलाफी', 'कभी होतेये चैतन्य महाप्रभु अब नहीं होते', 'हमारी आधुनिक जनसंस्कृति भुनानेकी है', 'हम महाभारतके महत् पात्र हैं"—आदि पंक्तियोंका विस्तार देशकी दुर्दशाके लिए, देशके यथार्थ चित्रको प्रकट करनेके लिए कविने कियाहै, वह लिखताहै—''एक भारत/संविधान के भीतरका है/एक भारत/संविधानके बाहरका है/एक भारत/रामपुरी चाकूवालोंका है/एक भारत/चांदीके जूते वालोंका है/एक भारत फटेहाल/शामको लाल बोतल पीताहै/एक भारतके हाथमें/फटी हुई गीता है।" (पृष्ठ ५८) आदि पंक्तियोंमें देशके उसी यथार्थ रूपको प्रकट कियाहै। मंहगाई बढ़ी, धर्मनिरपेक्षता, लोकतन्त्र आदि का विश्लेषण करता हुआ कवि लिखताहै—''मेरे देश में शान्ति अब किसी लड़कीका ही/नाम हो सकताहै/स्थितिका नहीं!/देश पहले दिलमें था/···क्या से क्या हो गयी मेरे देशकी जन्त्री।" (पृ. ६०-६१) आदिमें देशके प्रति बदलती मानसिकताका भयावह चित्र है। देश पहले दिलमें था, फिर वह दिलसे निकल नक्शेपर आया, राजधानीमें बरसा जो पानी, हमने समझ लिया पानी पूरे देशमें बरसाहै—आदि पदोंमें देशकी विकृत सोचके अद्भुत चित्र है। बादमें कांग्रेसी संस्कृति, जनसंघी संस्कृति, समाजवादी संस्कृति, पर बेलाग टिप्पणी हैं। साम्यवादके बारेमें कविका कहनाहै—जिनका जेनरेटर ही देशसे, बाहर हो, उसके विषयमें क्या कहूं···।

कविने प्रारम्भमें पूर्विका लिखीहै। वह कवि द्वारा अपनी रचनाकी समीक्षा है, जो कृतिको समझनेमें सहायक है। कविके अनुसार—'मास्टर धरमदास' एक कोलाज कविता है। फ्रांसीसी शब्द 'कोल्ला' (चिपकाना) से बना कोलाज़ चित्रकलाका शब्द है। कोलाज़ का प्रयोग विश्वमें उन चित्रोंके लिए रूढ़ होगया जो पारम्परिक रंग-रोगनके स्थानपर फलकपर विविध सामग्री चिपकाकर कुछ यों संयोजित किये जातेहैं कि उनमें प्रभावकी अन्विति सघन हो उठे। जिन्दगीमें बिखराव है फिरभी वह कहीं-न-कहीं जुड़ीहै। कोलाज़ जिन्दगीके बिखरावको उसके जोड़के साथ प्रस्तुत करते हैं। कोलाजके छोटे-से कैनवासपर बड़े भारी कैनवास का कथ्य सहज उभाराजा सकताहै।

कलाओंके पारस्परिक अन्तःसहकारके कारण मुझे 'मास्टर धरमदास' के कथ्यके लिए कोलाजकी विधा अर्थपूर्ण लगी। और यों कोलाजके माध्यमसे एक प्रखर शिक्षकके सहारे भारतीय समाजके अतिरेकों-व्यतिरेकों तथा विडम्बनाओं-विद्रूपताओंको प्रस्तुत करना मेरे लिए सुगम है। यह सत्य है कि काव्यका प्रत्येक खण्ड अपने कथ्यको स्वतंत्र रूपसे प्रकट करताहै, और सब खण्ड मिलकर किसी एक बड़े कथ्यको एक साथभी प्रकट करतेहैं।

कवि शब्द-चित्र खींचनेमें बहुत चतुर है। उसकी भाषाकी चित्रात्मक शक्ति अद्भुत है। कविको शब्दों पर पूर्ण अधिकार है। उसने भाषाको बोधगम्य बनाया है। अधिकांश शब्द संस्कृतनिष्ठ हैं। पर प्रचलित अरबी फारसी व अंग्रेजीके शब्दोंके प्रयोगका लोभ-संवरण नहीं कर पाया। विशिष्ट-शिष्ट, हीरामन-हारामन-हरामन, विद्-संबिद्, फटीचर-टीचर, जैसे प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि उसका भाषापर पूर्ण अधिकार है। लोकसंस्कृतिका जानकार होनेके कारण उसने लोकोक्तियों व मुहावरोंका जमकर प्रयोग कियाहै—धरमदास एक दिन गाल फुलाता है/और वह दिन/वेतनका होताहै/शेष दिन वह गाल बजाता है।··· धरमदास न चूना खाताहै/न चूना लगाताहै। उसने अपनी भाषामें मुहावरोंका जमकर प्रयोग कियाहै—कान पकड़ी भेड़, गरीबकी जोरू आदिके प्रयोगसे कवि अपने कथ्यको प्रभावी बना सकाहै और इन्हींसे भाषा जनसाधारणके लिए बोधगम्य हो सकीहै।

यह एक व्यंग्य रचना है। अनेक स्थानोंपर उपदेश और उद्बोधन दिखायी पड़तेहैं। वे स्थल भी शास्त्रीय दृष्टिसे आर्थी व्यंजनाके अन्तर्गत समाहित हो जातेहैं।

अभिधा होते हुएभी वे सब एक महान् व्यंग्यका रूप धारण कर लेतेहैं, जब पाठकको पता चलताहै कि ये कोरे उपदेश हैं। यथार्थ जीवनमें उनका कोई अर्थ नहीं है। पर रचना केवल यथार्थकी विद्रूपताको प्रकट करने में समाप्त नहीं होती। उससे कुछ सोचने और कुछ करनेकी प्रेरणाभी मिलतीहै।

कुन्तकने वक्रोक्तिके भेदोंमें एक भेद गर्भांक रखा है जिसमें नाटकके एक अंकमें एक छोटा नाटक रहता है। इस लघु काव्यमें कवितामें कविता अथवा उपदेश का सुन्दर संयोजन कविने कियाहै। पाठक एक साथ ही दो काव्योंका आनन्द प्राप्त करताहै।

इस रचनामें नयी कविताकी सभी विशेषताएं हैं। उसका भावबोध और शैली दोनों नये हैं। अपने कथ्य को स्पष्ट करनेके लिए कविके सर्वथा नये उपमान लियेहै। धरमदासका पेट रमजान, पेट क्या घूरा है जैसे अनेक प्रयोग कविने कियेहैं। बच्चोंके उपमान देखिये—कोई हमें भेड़ समझ/हांकताहै रेवड़की तरह/ कोई हमें लद्दू घोड़ा समझ/अपने आदर्शों और आकांक्षाओंकी खेप, हमपर लाद/अपना अहं तुष्ट करताहै। एक रूपक देखिये—"आजादीके बाद देश/आजाद हुआ कुछ इस कदर/कि बन गयाहै/अच्छा-खासा चिड़ियाघर।/राजनेता बन गये मगरमच्छ/विरोधी नेता कौए/ अध्यापक तोते/और डॉक्टर गिद्ध/व्यापारी कच्छप/गुंडे गैंडे/बाबू बगुले सिद्ध/अफसर हो गये अजगर/देखा आपने, कैसा है चिड़ियाघर?"

इस काव्यमें कविने अनेक मिथकों व ऐतिहासिक पात्रोंको नये रूप प्रदान कियेहैं। इस काव्यमें द्रौपदी, चित्रगुप्त, शंकर, प्रह्लाद, संदीपनी, राम-विश्वामित्र, एकलव्य, भगीरथ, आदि ऐतिहासिक-अनैतिहासिक पात्रोंके सन्दर्भ अपने कथ्यको अधिक पैना करनेके लिए कविने प्रयुक्त कियेहैं।

कवि बहुपठित है। उसने अपनी रचनामें तुलसी, कबीर आदिके वचनोंको उद्धृत कियाहै। कवि इतिहास, साहित्य, संस्कृति, मनोविज्ञान व दर्शनका जानकार प्रतीत होताहै। आधुनिक कालके कई छोटे बड़े नेताओं, साहित्यकारों, बदनाम व्यक्तियोंके भी वह प्रसंगवश नाम ले गयाहै जैसे—गोखले, तिलक, विनोबा, गोलवलकर, समरगुप्त, हाजी मस्तान आदि। वह लोकसंस्कृतिका भी जानकार हैं। उसने राई नून से नजर उतारनेका वर्णन कियाहै।

अन्तत: देवेन्द्र दीपककी 'मास्टर धरमदास' व्यंग्य रचना एक सशक्त रचना है। साहित्यमें उसका अपना स्थान होगा। उसकी शैली नये व व्यंग्य कवियोंके लिए अनुकरणीय है। हम कविको अनेक वर्द्धापन देतेहैं। □

कटे अंगूठोंकी बन्दनवारें[1]

कवि : डॉ. शिवमंगल सिंह

समीक्षक : डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय

सुमनजी एक जन्मजात कवि थे, उन्होंने जीवनको कवित बनाकर कविताका जीवन ही जियाहै। अध्यापकसे कुलपति पदके सोपान नापकर भी वे मूलत: और प्रधानत: कवि ही रहेहैं। और कविके रूपमें उनका संकल्प रहाहै कि—

> "मुझको तो चलना है/अंधेरेमें जलनाहै/ समयके साथ-साथ ढलनाहै।"

और उनका कहनाहै कि—

> "इसीलिए, मैंने किले नहीं बांधे/मीनारें नहीं गढ़ीं/ सरहदें नहीं साधीं/जीवनमें सदा मुक्त बहा, सहा/ हवा आग पानी-सा/बचपन, जवानी-सा।"

कविका यह आत्म-विवेचन यह बताताहै कि उसके काव्यमें न कोरी कल्पनाएं हैं न संकीर्णताएं, उसमें भाव और विचारकी स्वतंत्रता है। यही कारण है कि उसकी कविताओंमें सामाजिक राष्ट्रीय चेतनाभी है तो व्यक्तिगत अनुभूतियोंका स्पन्दन भी। समाजके प्रति प्रतिबद्धता उनके सभी काव्य-संग्रहोंमें दिखायी पड़ती है, यों प्रेम और प्रकृति भी उनके काव्यके विषय रहे हैं, पर अपने मानवतावाद और सर्वहारा वर्गके प्रति सहानुभूतिके कारण ही वे हिन्दीके प्रगतिशील कवियों की अग्रणी पंक्तिमें गिने जाते रहेहैं।

समाजके प्रति प्रतिबद्धता और प्रगतिशीलता उनके प्रस्तुत काव्य-संग्रहमें भी देखी जा सकतीहै। मानवकी संवेदनाओंके साथ जुड़े रहनेका एक सार्थक प्रयास यहां भी है। इस काव्य-संग्रहकी शीर्ष-कविता —'कटे अंगूठोंकी बन्दनवारोंमें' कविने मध्यप्रदेशके आदिवासी भीलोंमें, एकलव्यके अंगूठेको द्रोणाचार्य

---

[1] प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी द्वार, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १०६; डिमा. ९१; मूल्य : ५०.०० रु.।

द्वारा कटवा दिये जानेपर चार अंगुलियोंसे ही शरसंधान करनेकी उन आदिवासियोंकी अप्रतिहत आस्था को एक प्रकारसे नमन कियाहै ? इसी प्रकार 'न्यस्त संवेदन' कवितामें झाबुआके भीलोंके नींव खोदते समय, उठती धूल, भरभराती धरती और उछटती चिनगारियों आदिका दृश्य अंकित कियाहै। और अंकित कियाहै मकान बना चुकनेके बाद दूसरी जगह डाले अपने चिर अस्थायी डेरेसे उन बनाये हुए मकानों का उनके द्वारा टुकुर टुकुर देखा जाना।

सम्भवत: इन और ऐसेही दृश्योंने 'सुमन' जीको स्वतंत्रताके पूर्व देखे गये सपनों और फिर उनके भंग होनेकी पीड़ाको व्यक्त करनेके लिए विवश कियाहै। उन्हें स्मरण आतेहैं—आजादीके पूर्व देखे गये स्वप्न, स्वतंत्रताके लिए भारतकी जनताके जागरणका ज्वार, अंग्रेजोंकी दमन-लीलाको चुनौती देनी युवाओंके रक्त की ऊष्मा, मुक्तमना मरण त्यौहार और उत्सर्गकी उस पावन वेलामें स्वयंका क्रांतिगीत गाना; किन्तु जब वह स्वतंत्रताके पश्चात् भी देखताहै वही शोषणका निबार्ध नर्तन, तो कविको ऐसे घोर अंधेरेमें यह विचार आताहै कि "शब्दको वह अर्थ कैसे दूं/ कि जो काटे अंधेरा/छील डाले विषमताके पीन पीवर जड़ स्तरों को/मानवी संघर्षके उठाते क्षितिजपर फिर नया फूटे सवेरा।" (पृ. २२)। धारका वह ठहराव उसे सबसे बड़ी कुंठा लगतीहै जो बदलते परिवेशमें भी न बदले और आत्मरतिकी अंतड़ियोंसे चिपका रहे। उसे आज की निरी क्षेत्रीयताके नारे खोखले लगतेहैं, और धर्मके फतवे महज़ कंकाल !

स्वतंत्रता अपने साथ देशका विभाजन भी लायी जिससे पीढ़ियां घायल हुईं। पर कविका विश्वास है कि मानवीय रिश्तोंके रेशे अटूट हैं—"पूरीकी पूरी पीढ़ियां/जो घायल हो गयीथीं/किसी कृत्रिम बंटवारेमें/भीतर ही भीतर/नासूर-सी रिसताहै/सूने चौनारोंपर।/ मज़हबों, सम्प्रदायोंके/झूठे फरेबोंसे/इन्सानी रिश्तोंके/रेशे कभी भरते नहीं/मिट्टी हवा पानीसे/बिछुड़ी आत्माओं के/घाव भरते नहीं।" (बंटवारेका दर्द, पृ. ३५)।

भारतकी सम्पत्ति (निर्यात आदि द्वारा) विदेशों में जानेपर कविको चिन्ता है—"पंखकटा सम्पाती/ आजभी निहार रहा/सिंधु पार भारतकी लक्ष्मी बनी बंदिनी।" (कैसी यह बेकसी ? पृ. ५०)।

कविको आज देशमें सर्वत्र अंधेरा दिखायी पड़ता है, साथही दिखायी पड़तेहैं नेताओंके वचन-भंग और भविष्यकी अनिश्चितता-—"ये बेड़ा कहां पार जाकर लगेगा/इधर भी अंधेरा, उधर भी अंधेरा/···बड़ी ऊंची बातें, बड़े ऊंचे वादे/हवामें रफू होगये सब हिरन-से/ये तम तोम-से जूझने के प्रमादी/करेंगे किनाराकशी गर किरनसे/उफ़कके धुंधलकोंमें उलटेगा बेड़ा/ कहां फिर उजेला, कहां फिर सवेरा/ये बेड़ा कहां पार जाकर लगेगा।/इधर भी अंधेरा, उधर भी अंधेरा।" ('इधर भी अंधेरा, उधर भी अंधेरा', पृ. ५२-५३)।

'सुमन' जीकी इस काव्यकृतिमें उनकी देण-समाज सम्बन्धी चेतना तो प्रतिफलित हुईही है उनका युगबोध भी अभिव्यंजित हुआहै। आजके युगपर कविकी टिप्पणी है कि यह "बड़ा दुर्वर्ष युग है।/ जितनाही अनिश्चित उतनाही खरा।/अब किसीको माफी नहीं मिल सकती/एकके दो देने पड़ेंगे,/दूसरेकी भट्टीपर रोटी सेंकनेका जमाना गया/पहले तो/रोटीकी उपलब्धि का ही प्रश्न है।/प्रवचनकी मशालमें अब तेल नहीं रहा/ खूदको निचोड़े बिना/बाती नहीं जलनेकी।" (समय की राह, पृ. ५८)। आजके युगमें जो मुखौटे लगानेकी प्रवृत्ति है, और कथनी तथा करनीमें अन्तर है उसे मिटानेकी बात भी कविने इस कवितामें कहीहै (पृ. ५८)। कवि देखताहै कि समाजमें शोषण मिटने के स्थानपर बढ़ ही रहाहै, क्योंकि शोषणका पेट कभी नहीं भरता; पर उसे विश्वास है कि समय अपनी राह खुद बनायेगा और सत्ताका घग्घरा धराका धरा रह जायेगा (वही पृ. ५८-५९)।

अर्थप्रधान इस युगमें अर्थके प्रभुत्व और वर्चस्व का प्रभाव वैयक्तिक सम्बन्धोंपर भी पड़ाहै। कविने अपने व्यक्तिगत अनुभवसे भी यह जानाहै कि आर्थिक अभावकी स्थितिमें मित्रों और परिजनोंमें जो परस्पर आत्मीयता होतीहै, वह सम्पन्नता आनेपर समाप्त हो जातीहै, उस समय प्रचुरतामें भी अभाव लगने लगता है—"प्रचुरताकी क्रोड़में/परायेपनका दंश/अंश बन गयाहै/उत्कर्षी अस्तित्वका।" (उत्कर्षका शाम, पृ. ६२)।

इस काव्य संग्रहमें कुछ अवसर विशेषके लिए लिखी गयी या प्रसंग-प्रेरक कविताएं भी हैं, जैसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके रजत जयंत्युत्सव (वसंत पंचमी, २१ जनवरी १९४२) अवसरके लिए लिखी गयी लम्बी गेय कविता; महामना मदनमोहन मालवीयके प्रयाणपर लिखित कविता; इसी प्रकार भारतके स्वतंत्रता दिवस

की प्रथम वर्षगांठ (१५ अगस्त १९४८) पर, भारतके प्रथम गणतंत्र दिवस (२६ जनवरी १९५०) पर आयोजित प्रथम काव्यांजलिपर पठित दो कविताएं। आचार्य रामचन्द्र शुक्लके महाप्रयाणपर लिखित 'साहित्य-जगत्पर वज्रपात' शीर्षक कविता; और कविवर सुमित्रानन्दन पंतकी पचासवीं वर्षगांठ (२९ मई १९५०) पर लिखी गयी कविता।

'सुमन' जीकी वस्तुपरक कविताओंका एक अन्य आयाम ऋतु और प्रकृति वर्णन है। इस वर्गकी, इस काव्य संग्रहमें एक कविता है--'गांवमें बरसात', जिसमें कविने वर्षाकी एक पखवारे तक चली झड़ीके दुष्प्रभावको इन शब्दोंमें चित्रित कियाहै—''वर्षाकी झड़ी टूटी नहीं पखवारेसे/घुमड़ी घटाओंका ओर छोर हरहरा उठा उदग्र/कड़कड़ाती विद्युत्की दंतुल दरारोंमें।'' बूढ़ी परदादी-सी/द्वार खड़ी गंझिन नीम/गाजहत फाट पड़ी/जर्जर शिवालेपर/भूलुंठित करती उसके/त्रिशूली शिखरको।/ पिछली खमसार गिरी/चरमराती चीरती-सी/धन्नियोंके वक्षस्थल/अम्माकी कोठरी भी/धमकनसे धसक गयी।'' (गांवमें बरसात, पृ. ४०)। 'ऊमरका उल्लास' में कविने प्रकृतिके स्वयंपर पड़े प्रभावको इन शब्दोंमें व्यक्त कियाहै--''कोंपलोंकी किलकन ओ'/शाखोंका उभार देख आतुर हो उठताहूं/झोंकोंमें झूमनेको/···दहक-दहक उठता तन/उन्मद पलाशोंमें/लहक लहक उठता मन/गदराये आमोंमें।'' (पृ. ४३)।

सौंदर्य प्रकृतिमें भी होताहै और नारीमें भी, पर कभी-कभी दोनोंके सौंदर्यकी समान विशेषताका प्रभाव अलग-अलग होताहै। कवि 'सुमन' अमलतासकी लालीमें आग और नारीकी कपोल-लालितामें राग एक साथ देखतेहैं—

> ''महक रहा अमलतास/विद्युतकी मालाएं/झमक रहीं आसपास/···गोरीके गालोंकी लालीमें राग ढले। (आग और राग, पृ. ५६)।

और मरुधरामें फागुनी फुहारोंमें गेहूंकी फसल काटते किसान और उसके परिवेशका चित्रण इस शब्द-चित्रमें इस प्रकार कियाहै—

> ''फागुनी फुहारोंकी फुरहरी/बालूके ढूहोंमें ऊष्मा की उर्वरी/गेहूंकी पकी फसल/काट रहेहैं किसान संतरी बबूलोंके/कहीं कहीं कुछ खजूर खड़े खिसियाये-से।'' (पृ. ५७)।

इसीप्रकार 'नर्मदाकी कुमुदनी' शीर्षक कवितामें मूर्तीकरण, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय आदि का प्रयोग करते हुए, नर्मदा नदीका बड़ा सुन्दर चित्रण किया गयाहै। मालवा तो कविको अवध और बनारस से भी अधिक मोहक और आकर्षक लगताहै, इसीलिए उसका कहनाहै—

> ''न जाने क्या कशिश है/मालवा तेरे शबिस्तांमें/
> कि हम शामे-अवध/सुबहे-बनारस छोड़ आयेहैं।''

इस संग्रहमें कुछ आत्मपरक कविताएं भी हैं, जिनमें कविका आत्मालोचन, वैयक्तिक अनुभूतियां आदि व्यक्त हुईहैं। बेबसीकी लाज' (पृ. २९)। कविता कविके स्वाभिमानको ही व्यंजित करती हैं। जब वह यह कहताहै कि उसे उनकी हां-हजूरी करना पसन्द नहीं जो खुदही मोहताज हैं, अतः वह आधुनिक राजाओंके दरबारसे चला आया, और इस प्रकार अपनी ही नजरोंमें गिरनेसे बच गया, अन्यथा सुविधा का प्रत्येक क्षण तो खुदको ही छलताहै। पर, दूसरी ओर कविकी यह आत्म-स्वीकृति भी है कि ''मेरा जीवन तो धोखा ही धोखा है'' (आत्म-स्वीकृति पृ. ३७) इसके अतिरिक्त कवि अपने जीवनमें किये गये प्रयासोंमें कमियां ही कमियां देखकर एक और जन्म मांगने को लालायित है—''रोज सुबह उठताहूं/जलते इरादेसे/कुछ कर डालनेके/अल्हड़ उन्मादमें/किन्तु शाम होने पर/जब हिसाब करताहूं/खामियां ही खामियां/बिखरी नजर आतीहैं/आतुर आयासोंकी।/ अनायास एक जन्म और मांग लेनेको ललचाता (रीता मन बीता क्षण, पृ. ४४)।

इस काव्य कृतिकी विज्ञप्तिमें ''व्यक्तिगत सरोकारोंको मैंने दुत्कारा भी नहीं है।'' लिखनेवाले कविने अपनी प्रेमानुभूतिको भी अभिव्यक्त कियाहै। कविको लगताहै कि अपने प्रणय-पात्रका प्यार पाकर उसका विस्तार जीवनभी सारवान् बन गयाहै। प्रेमके उस क्षणकी यादमें, जिसमें कविका पोर-पोर रस-विभोर हो गयाथा, कविको लगा कि वह उस प्रेम-पात्रके शुभ-अंचलमें अपनी उमड़ी हुई (भाव) तरंगोंकी उफनती उलकाओंको लपेट दे। (सार्थक क्षण, पृ. २६)। प्रेमानुभूतिके समान अपनी वियोगजन्य स्मृतिको भी अभिव्यक्ति दीहै, जैसे—याद आती अलस प्रातः/चाय पर मंडरा रही-सी भाप/शाम कमरेमें पहुंचतेही/तुम्हारी याद कर उठते/पिराते पांव।'' (कब तलक,

पृ. ४६) और "गांवकी अमराइयों-सी/छोड़ आया फिर तुम्हारी छांव" (वही)।

इस प्रकार 'कटे अंगूठोंकी बंदनवारें' कथ्यके धरातलपर सामाजिक, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय विषयोंकी वस्तुपरक, और आत्मपरक कविताओंकी, स्वतंत्र और प्रसंग-परक काव्य-सृजनकी, विचार और अनुभूतियोंकी बहुरंगी वन्दनवार है। सामाजिक संदर्भोंने कविके कृतित्वको गरिमा और उदात्तता प्रदान कीहै तो अनुभूति-सम्पन्न भाव प्रधानताने उसे सरसतासे सिक्त कियाहै। विचार प्रधान या वक्तव्य-संकुल स्थलोंको छोड़कर अन्यत्र काव्योचित कवित्वका सौन्दर्य भी है। "गांवकी अमराइयों-सी छोड़ आया फिर तुम्हारी छांव" और "किसी टूटे स्वप्न-सा मैं जाग उठता" में उपमाका सौंदर्य है तो "दूरागत दीपोंकी/क्वांरी आकांक्षाएं/गलबहियां डाले/रास रचतीं शरदोत्सवका/गर्वाकी ताल पर/करती अठखेलियाँ तरके नितम्बोंसे लहरोंकी करधनियां"—जैसी पंक्तियोंमें विशेषण वक्रता, अमूर्तका मूर्तीकरण, मानवीकरण और रूपक-विधानका सौंदर्य एक साथ देखा जा सकताहै। 'पिराते पांव' जैसे प्रयोग में संज्ञासे निर्मित विशेषणमें एक मौलिक वक्रता है। अधिकांश कविताएं मुक्त छंदमें हैं, कुछ गीत शैलीमें तो कोई कोई नव-गीत शैलीमें भी जैसे 'कब तलक'। 'हिल्लोल', 'जीवनके गान', 'प्रलय-सृजन', 'विश्वास बढ़ताही गया', 'पर आंखें नहीं भरी', 'विध्यहिमालय' 'वाणीकी व्यथा' जैसी काव्य-कृतियोंके प्रस्थापित रचनाकार 'सुमन' जीकी यह दसवीं काव्य कृति उनके काव्य प्रासादकी शोभाकारी वन्दनवार सिद्ध होगी, ऐसी आशा है। ☐

अग्निगर्भा[1]

कवि : डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री
समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

सांसोंमें भूडोल उसांसोंमें नव-सर्जककी कविता 'अग्निगर्भा' में डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्रीकी सन् १९३५ से १९८८ की समयावधिमें रची ५३ कविताएं संगृहीत हैं। वस्तु और शिल्प, अनुभव और कल्पना, आवेश और छन्दके विलक्षण संयोजनने इन कविताओंकी ठाट तैयार कीहै। एक वयोवृद्ध कविके प्रौढ़ जीवन-भूकम्पके संवेदनशील वृत्तको ये कविताएं रैक्टर स्केलकी तरह नापतीहैं। सामयिक भूतकी होती हुईभी इनमें ऐसा कुछ है जो ९३ का भी है और आगेका भी होते रहनेका अनुमान जगाताहै। कविताओंका काल-कथ्य अपनी तात्कालिकतामें भी सार्वकालिक है। कविताओंको पढ़ते हुए माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओंकी स्मृतियां मस्तिष्कमें उभर आतींहै तो किसी सीधे प्रभावके कारण नहीं अपितु समतुल्य संस्कार और युगीन रुझानोंके कारणही।

अपने युगकी काव्य भाषाके प्रति कविके मनमें न कोई दुविधा है न भ्रम। वह संगीतके रागकी तरह कविकी वाणीमें चढ़ी हुईहै। कविके परिभू स्वयंभू विरुदको अस्वीकारकर अग्निहोत्रीजीने कविताको जीवन-जगत्की आंचमें पकायाहै और प्रयत्न कियाहै कि वह पंगु मानवताकी 'यष्टि' बन सके। इसीलिए ये कविकी समग्र निजताके साथ सामान्य जन और युगीन जीवनके प्रति बरते गये लगावको रेखांकित करतीहैं।

रुमानियत और असफल प्रेमकी आगमें झुलसा हुआभी कवि अपने समाज और युगकी शक्तियोंकी पहचान नहीं खोता। उसकी प्राण-पपिहरी जलती-तपती धरतीपर गानेकी क्षमता पातीहै तो, व्यक्तिगत रागसे ऊपर देशराग तक उसका विकास भी करती जातीहै। यह, वह प्रेम-पिकी है जिसकी टीस कालके भी सिर चढ़कर बोलीहै और अभी भी बोल रहीहै। उसने छायावादी तर्जपर रहस्य-कुतूहलके राग गायेहैं तो प्रगतिवादी जुनूनमें उथल-पुथलके कोरस भी। अलग पहचान यह कि उसने आस्था-अमरत्वका संबल पा सृष्टिभरके जड़-चेतनमें रस भी ढूंढ़ाहै।

प्रकृतिमें बिखरे तार-तार सौन्दर्यपर कवि मुग्ध है। निरभ्र व्योममें बिखरे तारों, ऊषाकी सुनहली किरणों, उमड़ते-घुमड़ते बादलों, वसंतके प्रसार और नदीके प्रवाहमें उसने अपनी आन्तरिक लय ढूंढ़ीहै तो नयनाभिराम और भव्य रूपमें प्रकृति-वधूटी एक चित्र की तरह उभर आयीहै—

सन के नूपुर, बासमतीके कंगन सुरभि बसाये
सोनजुहीके हार, ज्वारके कर्णफूल लटकाये
फूलदार घाघरा, ओढ़नी हरी चूनरी धानी

---

[1] प्रका. : मनीषा प्रकाशन, ई-२/७३, महावीरनगर, भोपाल-४६२०१६। पृष्ठ : ११८; डिमा. ६१; मूल्य : ३०.०० रु.।

कांसोंमें मुसकान जुटाती शरद बधूटी आयी ।।

संग्रहकी कविताओंने गीतोंकी हार्दिकता और भक्ति की सच्चाई पायी हुईहै। कविताकारीकी अपनी माहिरी पर कविको दर्प है तो अपनी इसी अस्मिताके सात्त्विक बोधके कारण । ऐसा बोधिसत्व अग्निहोत्री ही अपने दयाल 'प्रभु' से कह सकताहै—

> मांगी न सहायता/अंचल, तुम्हारा कभी रोकर भिगोया नहीं/करताहूं औरभी/मांगूं भी जो छाया कभी कायर-सा उठकर/देना मत/और मेरी त्रुटियोंको क्षमा मत करना/देना दण्ड/सहूंगा मैं अविचल मनसे / किन्तु मैं हटूंगा नहीं, जबतक/ काम यह सौंपा हुआ, भले ही तुम्हारा हो/, पूरा हो सकेगा नहीं ।

संग्रहकी 'दादीका पूजाघर' जैंसी लम्बी कविता, स्थितियों-नियतियोंकी सततताामें समकालीन जीवन में आये भद्दे बदलावोंको रेखांकित करतीहै। उस जैंसी अनेक कविताओंमें मानव-मूल्योंकी रक्षाकी पुनर्जागरण के अन्तिम दौरकी जैंसी ललक भी दिखायी देतीहै और उनकी रक्षा न कर पानेकी प्रतीतिसे उत्पन्न खिन्नता भी ।

इन कविताओंके सर्जन काल और प्रकाशन काल के अन्तरालमें, कविताकाशमें अनेक रंगोंके बादल उमड़े-घुमड़े और कितनीही बार वर्षान्तके पश्चात् वह साफ भी होता गया। उसमें तारांकित सौन्दर्य खिला। कवि ने उसके धुले-धुंधभरे रूपाकारोंको तरोताजा करनेके लिए एक भूमिका भी 'आत्मकथ्य' शीर्षकसे दीहै । इस भूमिकामें घटनाक्रमका आतंक भी है और प्यार-मनुहार की छुअनभी । [!]

उपन्यास

आवर्तन[१]

लेखिका : डॉ. कमल कुमार

समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय

यशस्वी लेखिकाके इस मनोवैज्ञानिक उपन्यासमें आत्मबोधको केन्द्रमें रखकर नारी और पुरुषके सम्बन्धों को विश्लेपित किया गयाहै । । सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा उपन्यासमें भारतीय संस्कृति के सतत प्रवहमान स्वरूपकी समन्वयात्मक झांकी प्रस्तुत की गयीहै। नारी और पुरुषके लिए शब्द और अर्थ एवं प्रतीकका प्रयोग करके उपन्यासकारने इनके विश्लेषण द्वारा कथा-नायिकाका पार्वती और उसके पतिका अमरकी कथाका वर्णन कियाहैं । 'शब्दसे युक्त अर्थ है ही अर्थसे स्पंदन होताहै । यदि ऐसी नहीं तो वह जड़ है ।' पार्वती रूपी शब्दके बिना आज वह अपनी सारी शक्ति और सामर्थ्य खो चुकाथा, जड़ हो गया था। (पृष्ठ ५)।

उच्च शिक्षासे जुड़ा कुंठित प्राध्यापक अमर अपनी गृहस्थी और संस्कृतिके प्रति समर्पित पत्नी पार्वतीकी उपेक्षा करने लगताहै। वह शोध छात्रा मीरा रामचन्द्रनको, जो भारतीय पिता एवं विदेशी मांकी संतान, अपनी वासनाका शिकार बनाना चाहताहै। इसमें असफल एवं अपमानित होनेपर वह अपनी भानजी मिनालीको इस लपेटमें लेताहै। वासनाके कुकृत्यसे अंतिम क्षणोंमें वह अपराध-बोधकी कचोटसे विक्षुब्ध और आतंकित हो उठताहै । वासनाका उद्दाम स्वरूप कितना भयावह और उसकी परिणति कितनी घिनौनी और निरर्थक होतीहै, इस भावको उपन्यासमें

---

[१] प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : १२२; डिमा. ९२; मूल्य : ६०.०० रु. ।

रचनात्मक धरातलपर प्रस्तुत किया गयाहै। उपन्यास की समापन हताशा और आत्महत्या जैसा पलायनवादी न होकर अपराधके आत्मबोध और आत्म-स्वीकृतिसे हुआहै।

आत्मग्लानि और अपराधबोधकी यह भावना भारतीय संस्कृतिकी **देन है** । यह व्यक्तिको घुटन, आत्महत्या, उग्र अपराध जैसे क्रूर अमानवीय कृत्यों से बचाकर उसे पुन: मूलकी ओर वापस लौटने और आत्म-सुधारका रास्ता दिखातीहै। पार्वती इसी संस्कृति का शब्द रूप है । जिसकी उपेक्षा उसका पति अमर, अपनी उच्च शिक्षा, नौकरी, अभिजात स्वरूप और आधुनिकताकी चकाचौंधमें करताहै । पार्वती सब कुछ देख-सुनकर भी अपनी अवमानना पतिको परमेश्वर मानकर हंसती हुई सहतीहै । किन्तु पति द्वारा बीमार बेटेकी उपेक्षा किये जाने तथा दवाके अभावमें उसके मर जानेपर उसका मातृत्व कराह उठताहै । घायल शेरनीकी तरह वह दूसरे बच्चेको को साथ लेकर मायके यह कहकर चली जातीहै कि जब ये लेने आयेंगे तभी आऊंगी ।

पार्वती और अमरकी कथाका प्रतीक यदि कालिदासके वाग् और अर्थसे प्रेरित है तो कहानीका भाव कामायनीके मनु ओर श्रद्धासे आधार ग्रहण करताहै। मीरा रामचन्द्रन और मिनाली मिलकर इड़ाके अनुरूप हैं। नारी और पुरुषके शाश्वत सम्बन्धोंको लेखिकाने आधुनिक संदर्भमें पुरुषकी अहं संतुष्टि और फ्रायडकी काम वासनाके आलोकमें प्रस्तुत कर उसे युगानुरूप बनायाहैं। किन्तु संवेदनशीलता और भावनाका शाश्वत प्रवाह उसे अपनी भूमिसे बराबर जोड़े रहताहैं, जिसके चलते उसमें भटकाव, विघटन, हताशा और क्रूर हिंसाकी भावना नहीं उठने पायीहै। आत्मबोध की भावना उसे वापस लातीहै—'मीरा रामचन्द्रनके साथ उसका संबंध स्वार्थ प्रेरित था और मिनालीके साथ जुड़ाव आभ्यंतरिक खोखलेपन और प्रतिशोध की प्रति हिंसाके कारण हुआथा। पर पार्वती? पार्वती तो अकाट्य सत्यकी भांति थी। उसके समग्र जीवन, सुखदु:ख, तन-मन, आत्म और अध्यात्मकी आधार।' (पृष्ठ २)।

अंतिम बिन्दुसे घटनाका आरंभकर लेखिकाने मनोवैज्ञानिक चिंतन एवं विश्लेषणके सहारे कथाके आरंभिक सूत्रको पकड़कर पूरी कहानीको 'पूर्वस्मृति' के सहारे प्रस्तुत कियाहै। अंतिम अंशमें प्रतीक को पुनः उभाड़कर कथानायकको वर्तमानमें पहुंचाकर आरंभिक कथासे तालमेल बैठानेके साथ-साथ आशावादी समापन कियाहै। पूरी कथा अमरकी सोचमें उभरी है। आरंभका विश्लेषणात्मक अंश विवरणात्मक होनेके कारण कुछ झटका देताहै, किन्तु उसीके सहारे उपन्यासके कथात्मक स्वरूपको लेखिकाने पकड़ाहै। यहां वर्णनको प्रभावशाली बनानेके लिए प्रकृतिके अन्य तत्त्वोंका प्रतीकात्मक वर्णन किया गयाहै—'उसके भीतर बीती यादोंके प्रेत पहल करने लगेथे। उसने देखा आसमानसे उजालेका पंछी पंख फड़फड़ाता क्षितिजके उस पार उड़कर दूर जा चुकाथा। (पृष्ठ ७)। यह पंछी पार्वती है जो उसीकी होते हुएभी दुर्व्यवहारके कारण दूर जा चुकीथी। अमरके माध्यम से पुरुष वर्गके थोथे अहं, स्वार्थी मनोवृत्ति और नारीके प्रति असहिष्णु प्रवृत्तिको आत्मविश्लेषणके सहारे रचनात्मक अंत देना उपन्यासकी चरितार्थता है।

'किस्सा तोता मैना' से लेकर आजतक नारी-पुरुष संबंधोंपर बहुत कहानियां लिखी गयीहैं। महिला लेखिकाओंने नारीकी पीड़ाको जितनी निकटता और गहराईसे देखाहै उतना पुरुष कथाकार नहीं देख पायेहैं। डॉ कमल कुमारने पार्वतीके रूपमें एक ऐसी भारतीय नारीका चित्रण कियाहै जो शिक्षित होकर भी आधुनिका तितली बननेकी बजाय अपनी घर गृहस्थी और संस्कृतिके प्रति समर्पित है। वह धर्म-कर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान् है। पतिको परमेश्वर मानकर उसकी इच्छाका पालन करतीहै। सब मिलाकर वह कर्त्तव्यकी प्रतीक है। इसके विपरीत अमर एक शिक्षित आधुनिक पुरुष है जो 'अपने तक सीमित और अपने स्वार्थसे बंधा शरीरकी प्यासका सुख और भावनाकी तृप्ति दोनोंको उसने एक साथ चाहाथा।' (पृष्ठ ४)। वह पुरुषके अधिकार भावका प्रतिनिधित्व करताहै। अधिकार और कर्त्तव्यकी टकराहट आज प्रत्येक पारिवारिक एवं सामाजिक संस्थाको नष्ट कर रहीहै। किन्तु इस उपन्यासमें पार्वती केवल कर्त्तव्य जानतीहै अधिकार केवल अमरके हिस्सेमें है। इसलिए टकराहट टलती जातीहै। पार्वती प्रार्थना करके भी मास्टरजी (अमर) को मंदिर, व्रत पूजा, प्रसाद, आरती, तुलसी, रामायण आदिसे नहीं जोड़

पातीहै। तबभी उसके मनमें कहीं रोष या घृणा नहीं उभड़तीहैं। गृहस्थीका सारा बोझ, बच्चोंको पढ़ाने से लेकर बाजार जानेतक का कार्य स्वयं करतीहै। किन्तु उसका समर्पण और कर्त्तव्यपरायणता अमरको और उद्धत एवं स्वार्थी बनातीहै। वह पार्वती और बच्चोंके प्रति नफरतकी भावनाके चलते दूर होता जाताहै। वह अपनी आकांक्षाओं और अपेक्षाओंको पार्वतीमें ढूंढ़ने और उससे संतुष्ट होनेकी अपेक्षा उसे विवशतामें काम पिपासाका साधन मात्र मानताहै। मीरा रामचन्द्रनकी मृगतृष्णामें वह घर-परिवारसे विमुख हो जाताहै। मीरा रामचन्द्रनके रूपमें कथाकारने एक कुंठाहीन, भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृतिके प्रति ललक रखनेवाली, खुले स्वभावकी विदेशी महिलाका चित्रण कियाहै। वह अमरकी शोध छात्रा होकर भी प्रत्येक बातमें स्वतंत्र निर्णय लेतीहै। एक प्रकारसे अमरही उसका पिछलगू बनताहै। वह अपने खुलेपनके कारण उससे सटकर बैठतीहै, चलती और हंसकर बातें करतीहै। दूसरी ओर हीन भावना का शिकार अमर उसे तितली समझकर वासनाका शिकार बनाना चाहताहै। वह उसके उद्धत आचरणके लिए डांटकर भगा देतीहै। अमरकी अपेक्षा वह पार्वतीकी अधिक आत्मीय हो जातीहै और उससे भारतीय संस्कृतिकी अनेक बातें सीखतीहै।

सेक्सके सम्बन्धमें अमरके माध्यमसे पुरुष वर्गको हीन भावनासे ग्रस्त दिखानेके लिए लेखिकाने मींरा रामचचन्द्रनको एक स्वच्छन्द किन्तु चरित्रवान नारीके रूपमें प्रस्तुत कियाहै। किन्तु यह यथार्थ कम आदर्श अधिक है। मीरा रामचन्द्रन जैसी कितनी विदेशी छात्राओंका आचरण होताहै। पुरुषवर्गकी लोलुपता का चित्रणका एक घिनौना सच है किन्तु मीराका साध्वीपन एक कपोल कल्पना। मुख्य कथाके बीचसे अंग्रेजी शिक्षा, हिन्दी भाषा, भारतीय संस्कृति और लोकजीवन सम्बन्धी विचारोंको उभाड़कर लेखिकाने अपने विचारोंको विभिन्न पात्रोंके माध्यमसे रखाहै। पूरे उपन्यासमें कथाकारका दृष्टिकोण राष्ट्रीयतासे ओतप्रोत है। कालेजकी बहसमें अमर भारतीय संस्कृति, शिक्षण पद्धति और हिन्दी भाषाके संबंधमें लेखिकाके विचारोंका वाहक है। किन्तु यह प्रकरण भी उसके पक्षमें न जाकर चरित्रके दोहरेपनको नंगा करनेमें सहायक हुआहै। अमर भाषणसे तथा दूसरोंके समक्ष मुखौटा तो भारतीयताका रखताहै किन्तु जीवन और आचारमें कुण्ठाग्रस्त होनेके कारण विलायती रहन-सहनको अपनाताहै। पार्वतीको नकारकर मीरा रामचन्द्रनके पीछे दुम हिलाना उसकी इसी कमजोरी का द्योतक है। अंतमें मीरासे अपमानित होकर वह अपनी प्रतिहिंसा और सेक्सकी भूख भानजी मिनाली से मिटाताहै। यह उसकी आचरणहीनताकी पराकाष्ठा और चरित्रके दोहरेपनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है। लेखिकाके निष्कर्षोंसे असहमत नहीं हुआ जा सकता किन्तु मीरा रामचन्द्रनके साथ उसका दृष्टिकोण एकांगी और पक्षपातपूर्ण है। यही इस उपन्यासका कमजोर अंश है।

आज चतुर्दिक राष्ट्रीयता भारतीय संस्कृति, राष्ट्रभाषा हिन्दी, भारतीय जीवन पद्धति और राष्ट्रीय शिक्षापर हीनता.बोधसे ग्रस्त भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा चोट कीजा रहीहै। इस परिवेशमें लेखिकाने प्रस्तुत उपन्यासके माध्यमसे अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण को बेलाग और प्रभावपूर्ण ढंगसे रखनेका साहस किया है। यह सभी प्रकारसे प्रशंसनीय है। वर्णन संवेदनशील, भाषा पात्रानुरूप प्रतीक सघन और प्रभावशाली है। आरम्भके शब्द-अर्थका प्रतीक अन्तमें भी उभराहै 'जैसे सब अर्थोंकी प्रामाणिकता शब्दमें होतीहै।··· वैसे ही मेरे जीवनका मूल तुममें है।···पार्वती तुम वह शब्द हो जिसका क्षरण नहीं होता।···जिलानेका काम पार्वतीका है क्योंकि वही शब्द संजीवनी औषधि रूप है। अर्थ तो विष है, ताप है पर शब्द रूप पार्वती तपनके लिए बर्षा है।' (पृष्ठ १२१)। ☐

पाकिस्तान मेल[१]

लेखक : खुशवन्त सिंह
अनुवाद : उषा महाजन
समीक्षक : डॉ केदार मिश्र

लेखन और कथ्यके क्षेत्रमें अपनी मान्यताको महत्त्व देते हुएभी मानवीय प्रतिबद्धताओंसे संलग्न रहना और कथनमें 'स्व'की प्रखर अभिव्यक्ति खुशवन्त सिंहके लेखन एवं व्यक्तित्वकी विशिष्टता है। चालीस

---

[१] प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २११; क्रा. ९१; मूल्य : ७५.०० रु. :

के लगभग प्रकाशित पुस्तकें, प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन, स्तरीय लेखमालाओंमे प्रतिष्ठित खुशवन्त सिहका लेखन स्थितियोंसे चिन्तनकी प्रेरणाका लेखन है।

सन् १९४७ में भारत विभाजनकी त्रासदीपर आधारित 'पाकिस्तान मेल' उपन्यास चालीस वर्ष पूर्व रचित ग्रोव प्रेस (न्यूयार्क) एवं चैंटो एण्ड विण्डस (इंगलैंड) द्वारा 'मनोमाजरा' तथा 'ट्रेन टु पाकिस्तान' के नामसे प्रकाशित 'ग्रोव प्रेस अवार्ड' से सम्मानित कृति है।

१९४७ की गर्मियों तक, जबकि पाकिस्तानके नये राज्यकी विधिवत् घोषणा कीजा चुकीथी, लगभग एक करोड़ लोग—हिन्दू मुसलमान और सिख—इसी भगदड़में फँसेथे, दूर सरहदपर पड़नेवाले छिटके छितरे छोटे-छोटे दुर्गम गाँव। इन्हीं गांवोंमें एक था मनोमाजरा। 'देश विभाजनका वह हिंसक अमानवीय उन्माद।' जबकि 'सरहदके इन सिखोंके गांवोंमें मुसलमान कैसे चैनसे बैठेहैं।' 'सर, क्या आपने सुनाहै कि शेखपुरा और गुजरावालामें मुसलमानोंकी भीड़ने सरे बाजार हिन्दू और सिख रिफ्यूजियोंके साथ क्या किया? पाकिस्तान पुलिस और आर्मी दोनोंने कत्लेआममें हिस्सा लिया। (पृष्ठ ३३)।

मनोमाजरामें जगतसिंह, डाकू आलमसिंहका बेटा हर महीने किसी न किसी मामलेमें उसे पकड़कर लाया जाताथा, पंजाब पुलिस जो कर न सकी, वह सोलह सालकी एक हसीन लड़कीकी निगाहोंके जादूने कर दिखायाहै। गांवमें सामाजिक कार्यकर्ता इकबालका आगमन हुआ जिसके मनकी पीड़ा थी—'बँटवारेके बाद सभी जगह इतनी मारकाट चल रहीहै। किसीको तो इसे रोकनेके लिए कुछ करना चाहिये।' जिसके मन में अपनी जमीनसे अलग होनेकी पीड़ा भी थी—'जी, मैं झेलम जिलेका रहनेवाला हूं, अब वह पाकिस्तानमें है।" वह पीड़ा बौद्धिक हो जातीहै, "मैं ज्यादातर तो विदेशोंमें ही रहाहूं। दुनियांको देखनेके बादही जाना जा सकताहै कि हम लोग कितने पिछड़े हुएहैं।" (पृ. ४९)।

आर्थिक विषमता देशके सामान्य जन-जीवन एवं उसके आदर्शोंको प्रत्येक स्तरपर प्रभावित करतीहै, "नैतिकता तो मीतसिंह जी, पैसेसे मतलब रखतीहै। गरीबोंको नैतिकतासे क्या लेना-देना? इसलिए उनके पास धर्म होताहै। हमारी तो सबसे बड़ी समस्या है रोटी, कपड़ा और मकान। ऐसा तो तभी हो सकताहै जब अमीरों द्वारा गरीबोंका शोषण रोकाजा सके और जमींदारी प्रथा खत्म कीजाये।" 'हमारी यह जो पुलिस है, नागरिकोंकी सुरक्षाके बजाय उनसे बदसलूकी करती है। भ्रष्टाचार और घूसखोरीपर जी रहीहै यह।' (पृष्ठ ५१)।

और धार्मिक स्थिति—"हर एकको अपने-अपने धर्मकी स्वतन्त्रता है। यहां बगलमें ही मुसलमानोंकी मस्जिद है। मैं जब गुरु ग्रन्थ साहिब का पाठ कर रहा होताहूं तो इमामबख्श चचा अपनी अजान दे रहे होते हैं। (पृष्ठ ५०)। यह संवेदनाहीन स्थिति भी व्यक्त करतीहै—"लाला रामनाथके घरसे रोने-धोनेकी आवाजें आ रहीथी। मस्जिदमें दर्जन भर लोग पंक्तियों में घुटनोंके बल झुके चुपचाप नमाज पढ़ रहेथे। ग्रन्थ साहबके पास बैठा मीतसिंह भी अपनी प्रार्थनामें लीन था। (पृष्ठ ६०)। लेखकने देश एवं धार्मिक स्थितियों के सन्दर्भ व्यक्त किया है कि "हिन्दुस्तानको छल-कपट के कब्जकी बीमारी है। धर्मको ही लें, हिन्दुओंके लिए धर्मका मतलब जाति-पांति और गोरक्षाके सिवा और क्या है? मुसलमानके लिए सुन्नत और शुद्ध मांसके सिवा इसके क्या मायने हैं? सिखोंका धर्मसे तात्पर्य है लम्बे केश रखना और मुसलमानोंसे नफरत करना'; सदाचार अथवा नैतिकता, जिसे किसी भी धर्मकी नियम-संहिताका सार होना चाहिये, इन सभी धर्मों द्वारा बड़े आरामसे ताकपर धरदी गयीहै।' (पृष्ठ १९८)। वस्तुतः यह तत्कालीन—त्रासदीसे उत्पन्न क्षोभकी अभिव्यक्ति है, अन्यथा शताब्दियों तक भारत के साथ छल-कपट हुआ, भारत-विभाजन भी उसी छल-कपटका परिणाम था।

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति भी विभाजनके अनौचित्यको व्यक्त करतीहै, "मुझे तो इतना भी यकीन है कि मनोमाजराके लोग तो अभी यहभी नहीं जानते हैं कि अंग्रेज हिन्दुस्तान दो हिस्सोंमें बंट चुकेहैं और मुल्क पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दो हिस्सोंमें बंट चुका है। यहांके कुछ लोग गांधीके बारेमें तो जानते होंगे, पर मुझे शक है कि जिन्नाका नाम किसीने यहां सुना तक भी हो।।' 'उन लोगोंके लिए आजादीके कुछभी मायने नहीं। उन्हें तो इतना भी ज्ञान नहीं कि देशने

एक नये युगमें चरण रखाथा और अब जरूरत थी आगे बढ़नेकी, हासिल हुई राजनीतिक स्वतंत्रताको एक वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रतामें परिवर्तित करनेकी।" (पृष्ठ ६२)।

कानून एवं प्रशासनकी स्थिति : पाकिस्तान पुलिस और आर्मी दोनोंने कत्लेआममें हिस्सा लिया', पाकिस्तानी मजिस्ट्रेट तो रातोंरात लखपति बन गये। हमारी तरफभी कइयोंने कुछ कम नहीं किया। हमारी यह जो पुलिस है—'इकबाल गिरफ्तार कर लिया गया, किन्तु गिरफ्तार करनेवाले स्वयं नहीं जानते कि इकबालको क्यों गिरफ्तार कियाहै। जगत्सिंह भी बन्दी बना लिया। सिपाहियोंको भी अटपटा लग रहाथा। वे जानतेथे कि वे गलती कर रहेथे और वहभी एक नहीं, दो-दो।' और जन-सामान्य : 'नागरिक स्वतंत्रता के ऐसे घोर अपमानको देखकर वे क्रोधित हो उठेंगे। लेकिन यहां तो लोग बुद्धुओंकी भांति उसे घूर रहेथे। (पृष्ठ ७५)।

ट्रेन पाकिस्तानसे आयीथी, डिब्बोंके अन्तिम कोनोंसे सटे हुए शव —भयाक्रान्त आंखोंसे खाली खिड़कियोंके पार देखते हुए, जहांसे भाले-बर्छियां और गोलियां उनकी तरफ बरसी होंगी'—दार्शनिक विश्वास भी नर-संहारका जवाब नहीं दे सकताथा। (पृ. १०५)। बाहर लोग लूटमार पर निकले हुएथे। यहांतक कि थानेसे कुछ गजकी ही दूरीपर चन्दन नगरमें भी हत्याएं हो रहीथीं, पर पुलिसने किसीको भी गिरफ्तार नहीं कियाथा।' (पृष्ठ १२४)।

१९४७ में भारत-विभाजनका औचित्य एवं तर्कसंगत उत्तर आजभी उपलब्ध नहीं है। लेखकने ऐतिहासिक स्थितिके सन्दर्भमें व्यक्त कियाहै कि 'हिन्दुस्तान के इतिहासके सारे मुगल कालके दौरान गद्दीके लिए बेटोंने अपने सगे बापोंको जेलोंमें डाला। सिखोंके दो गुरुओंको प्राणदण्ड दिये। नृशंस हत्याएं करायीं, सैकड़ों-हजारों निर्दोष लोगोंको सिर्फ इसलिए तलवार के घाट उतार दिया गया कि उन्होंने इस्लामको मानने से इनकार कियाथा।' (पृष्ठ १४२)। तब स्वतंत्रता आन्दोलनकी पूर्णता भारत-विभाजनकी त्रासदीके साथ क्यों हुई। हिंसा, नर-संहारमें वह आवाज कहां और क्यों गुम हो गयी - "क्या कियाहै हमने ऐसा? हम तो मुसलमानोंको अपना भाई-बहन समझते रहे", "हमें पाकिस्तानसे क्या लेना-देना! हमारा जन्म यहां हुआ। हमारे पितरोंका जन्म यहीं हुआ। हम यहां तुम्हारे साथ भाई-भाईकी तरह रहेहैं।" नूरा : 'मैं पाकिस्तान नहीं जाऊंगी। कौन निकालेगा हमें? यह हमारा गांव है।' मन और अपनत्वकी इन आवाजोंको कौन अलग करताहै—"अच्छा बेबे! जातीहूं। मेरेसे गुस्से न हो। जब जग्गा आये तो कहना मैं 'सतश्री अकाल' कहने आयीथी।' (पृष्ठ १५४)।

डिप्टी कमिश्नर और मजिस्ट्रेट मिस्टर हुकुमचंद —"सॉरी, दुनियांपर पागलपन सवार है" उस पागलपन से वह भी मुक्ति चाहताथा—"हालात हमेशा ऐसेही नहीं रहेंगे। देखना, कैसे चीजोंका रुख बदलताहै। हफ्ते भरके अन्दर-अन्दर ये सब चंदननगर लौट आयेंगे', हुकुमचन्दने कह तो दिया, लेकिन अपनी आवाजमें वे झूठी आशाओंकी छापको ताड़ सकतेथे। (पृ. १८२)।

२११. पृष्ठोंकी यह औपन्यासिक कृति १९४७ में हुए भारत विभाजनके संदर्भमें व्यक्त करतीहैं कि उस समय न तो आम भारतीयोंमें धार्मिक उन्माद था, न राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता। आम भारतीय अशिक्षित, शोषित, अभावग्रस्त था। वह अलगाववादी प्रवृत्तियों का वहशी जुनून-उन्माद किसने उत्पन्न किया! कौन थे वे जिन्होंने प्राचीन विशाल भारतको जर्जर बनाया। स्वतंत्रता आन्दोलनमें समग्र रूपमें संघर्षरत देशको धर्म, जाति, वर्ग आदिके छद्म रूपोंमें विभाजन—विषमताओं की त्रासदी थी। लेखकने व्यक्ति, समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति, प्रशासन एवं व्याप्त विसंगतियोंको स्वचिन्तनके साथ कथा रूपमें व्यक्त कियाहै। कथ्यको उसीके अनुरूप प्रस्तुत करनेमें सफल अनुवाद एवं समग्र-एकरूप-चिन्तनके आलोकमें आलोच्य कृति मानवीय भावनाओंको महत्त्व प्रदान करतीहै।

मृच्छकटिकम्[1]

[उपन्यास रूपान्तर]

रूपान्तरकार : डॉ. कुमुद
समीक्षक : विराज

'मृच्छकटिकम्' संस्कृतका उत्कृष्ट नाटक है।

---

[1] प्रका. : **शील प्रकाशन, ए-३५, सोनारी पश्चिमी, जमशेदपुर-८३१०११। पृष्ठ : १७६; डिमा. ९२। मूल्य : १००.०० रु.।**

नाटकके नान्दी पाठमें यह उल्लेख है कि इस नाटककी रचना राजा शूद्रकने की, जो वेद-वेदांगोंका विद्वान्, वीर योद्धा एवं ललित कलाओंमें प्रवीण था। उसीमें यह भी लिखाहै कि वह सौ वर्षसे भी अधिक आयु भोग कर अग्निमें प्रविष्ट होगया। अग्निमें प्रविष्ट हो जाने की घटना स्वयं लेखककी लिखी तो हो नहीं सकती, क्योंकि अग्निमें प्रविष्ट होनेके बाद उसे यह पंक्ति लिखनेका अवसर कहाँ मिलताथा! इसलिए कुछ विद्वानोंका अनुभव है कि इस नाटकके लेखकका यह नाम कल्पित हैं।

'मृच्छकटिकम्' कई दृष्टियोंसे संस्कृत भाषाका बेजोड़ नाटक है। कालिदासके 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' और भवभूतिके 'उत्तरराम चरितम्' के रहते इसे सर्वश्रेष्ठ कहना तो उचित नहीं होगा, फिरभी यह कहना ही पड़ेगा कि जैसे आम, अंगूर, अनार आदिका अपना अलग स्वाद होताहै और उनकी परस्पर तुलना करना उचित नहीं होता. उसी प्रकार कुछ दृष्टियोंसे 'मृच्छकटिकम्' भी बेजोड़ है।

प्रस्तुत पुस्तकमें डॉ. कुमुदका कृतित्व इतना ही है कि उन्होंने एक अच्छी साहित्यिक कृतिका चयन किया और उसे उपन्यास रूपमें प्रस्तुत किया। नाटक और उपन्यास साहित्यकी दो भिन्न विधाएं हैं: दोनोंका तंत्र अलग है। नाटकमें ऐसा बहुत कुछ होताहै, जिसे अभिनेता अपने अभिनय और हावभावसे प्रकट कर देते हैं। उपन्यासमें लेखकको वह सब वर्णनके रूपमें प्रस्तुत करना होताहै। इस प्रकारके रूपान्तरका मूल्यांकन करते समय यह सोचकर चलना चाहिये कि यदि मूल लेखक ही उसे उपन्यासका रूप देता, तो वह कैसा होता।

डॉ. कुमुदका यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। उन्होंने सरल और परिष्कृत भाषामें संस्कृतकी कथा को हिन्दीमें प्रस्तुत करनेका यत्न कियाहै। इसमें एक त्रुटि यह हो गयीहै कि कहीं यह नहीं लिखा गया कि मूल नाटककी कथा इसमें संक्षिप्त कर दी गयीहै। आवश्यकतानुसार प्रसंगोंका आगे पीछा किया जाना तो सह्य हो सकताहै, परन्तु मूलका कुछ अंश छोड़ दिया जाना मूल लेखकके साथ न्याय नहीं रहता।

डॉ. कुमुदने नाटकके मार्मिक प्रसंगोंको सहृदयतासे पकड़ाहै और बड़ी भावुकताके साथ उनका निर्वाह कियाहै। उनकी भाषा अधिकतर संस्कृतनिष्ठ और प्रवाहयुक्त है। कहीं-कहीं कुछ असंगत शब्द भी आ जातेहैं, जैसे 'चैन और सुकून की लालसा' (पृ. ७६)। यहाँ 'सुकून' शब्द लालसा के साथ बेमेल जान पड़ताहै।

डॉ. कुमुदकी प्रतिभा शब्दोंका उचित प्रयोग करके उनमें जान डाल देतीहै। चारुदत्तके लिए 'वसन्त सेना का प्राण-पुरुष' एक ऐसा ही प्रयोग है।

'मृच्छकटिकम्' उस कालमें क्रान्तिकारी नाटक माना गया होगा। इसकी कथा संक्षेपमें यह है: चारुदत्त उज्जयिनीका प्रतिष्ठित व्यापारी है, जो अपनी उदारताके कारण अब गरीब हो गयाहै। नगरकी श्रेष्ठ गणिका वसन्तसेना अपूर्व सुन्दरी, धनी तथा नृत्य, संगीतमें प्रवीण है। मदनोत्सवमें दोनोंने एक दूसरेको देखा और परस्पर अनुरक्त होगये।

उत्सवसे लौटते वसन्तसेनाको रात होगयी। किसी गड़बड़ीके कारण अनुचर लोग पीछे छूट गये। अंधेरेमें अकेली लौटती वसन्तसेनाके पीछे राजाका साला शकार पड़ गया। वह उसे रिझा मनाकर अपने साथ ले जाना चाहताथा। परन्तु वसन्तसेना भागकर चारुदत्तके घरमें घुस गयी। शकार और उसके साथी उसके बाहर निकलनेकी प्रतीक्षामें खड़े रहे।

वसन्तसेनाने अपने बहुमुल्य आभूषण उतार कर एक पोटलीमें बांधकर चारुदत्तके पास रखवा दिये, क्योंकि डर था कि शकार और उसके साथी आभूषण छीनना चाहतेहैं।

चारुदत्तने पूजाका प्रसाद चौराहेपर दे आनेके लिए अपने मित्र मैत्रेयमे कहा। मैत्रेयके टालनेपर सेविका रदनिका थाली लेकर निकली, तो अंधेरेमें उसे वसन्तसेना समझकर शकारने पकड़ लिया। शोर-गुल मचनेपर शकारको अपनी भूल मालूम हुई और उसने क्षमा मांगी। उसने चारुदत्तको यह सन्देश भिजवा दिया कि यदि तुम वसन्तसेनाको मुझे सौंपते हो, तो हमारी मित्रता हो जायेगी, नहीं तो शत्रुता। चारुदत्तने कोई चिन्ता नहीं की।

गहनोंकी पोटली चारुदत्तने मैत्रेयको सौंप दी कि वह उसे संभालकर रखे। मैत्रेय उसे हाथमें पकड़े-पकड़े चारुदत्तके निकट ही सोगया। रातमें एक निपुण चोर शर्विलक सेंध लगाकर इस कमरेमें घुसा और गहनोंको पोटली चुरा ले गया।

वसन्तसेनाकी एक दासी थी मदनिका। शर्विलक उसे चाहताथा और धन देकर उसे दासतासे मुक्त

कराना चाहताथा। वे गहने उसने ले जाकर मदनिका को दिखाये। मदनिका देखतेही उन्हें पहचान गयी। उन्हें लेना असंभव था. अन्तमें उपाय यह सोचा गया कि ये आभूषण बसन्तसेनाको यह कहकर दे दिये जायें कि इण्हें चारुदत्तने भिजवायाहै। वसन्ससेनाने उन दोनों की बात छिपकर सुन लीथी। उसने शर्विलकसे कहा कि तुम मदनिकाको पत्नी रूपमें स्वीकार करो। यह दासतासे मुक्त हुई।

उधर संवाहक नामक एक जुआरी जूएमें सब कुछ हारकर दस कार्षापणका देनदार बनकर भागा। जुआ घरके संचालक मायुरने उसका पीछा किया। वह भागता हुआ वसन्तसेनाके घरमें आ घुसा। पूछनेपर उसने सारी स्थिति बतायी। पहले वह चारुदत्तके घर सेवक रहाथा। मालिशका काम बढ़िया जानताहै। वसन्तसेनाने मायुरको दस कार्षापण देकर संवाहकको छुटकारा दिलाया। संवाहक बौद्ध भिक्षु बन गया।

ज्योतिषीने भविष्यवाणी कीथी कि आर्यक नामका ग्वाला राजा पालक को मारकर राजा बनेगा। अत: आर्यकको पकड़ कर कैदमें डाल दिया गयाथा। शर्विलक तथा उसके साथियोंने उसे कैदसे छुड़ाकर भगा दिया था।

चारुदत्तके घरसे वसन्तसेनाके गहने चोरी हो जाने की खबर चारुदत्तकी पत्नीको मिली तो उसने अपने मायकेसे मिली बहुमूल्य रत्नावली माला देदी कि इससे आभूषणोंका मूल्य चुकादो। मैत्रेय उस मालाको लेकर वसन्तसेनाके पास गया और बोला: 'आपके गहनेतो चारुदत्त जूएमें हार गये। उनके बदले यह माला भेजीहै।'

वसन्तसेना तो सच्चाई जानतीथी। उसने माला ले ली और कहला भेजा कि संध्या समय वह मिलने चारुदत्तके घर आयेगी। आंधी पानीकी सांझमें वह चारुदत्तके घर महुंची। वसन्तसेनाकी उसकी सखी सदृश दासी मदनिकाने मैत्रेयसे कहा कि आप जो माला दे आयेथे, उसे हमारी स्वामिनी जूएमें हार गयीहैं। अतः उसके बदले उन्होंने ये आभूषण भेजेहैं।

वह रात चारुदत्त और वसन्तसेनाने प्रेममें बितायी।

चारुदत्तने अपने गाड़ीवानको आदेश दियाथा वह सवेरा होनेपर वसन्तसेनाको लेकर पुष्पकरण्डक उद्यान में आजाये।

चारुदत्तका पुत्र रोहसेन हठ कर रहाथा: 'मैं इस मिट्टीकी गाड़ीसे नहीं खेलूंगा। मेरी सोनेकी गाड़ी कहां है? उसीसे खेलूंगा।' सोनेकी गाड़ी पड़ोसी सेठ के पुत्रकी थी। वसन्तसेनाने अपने गहने उतारकर मैत्रेयको दिये कि उन्हें बेचकर वह रोहसेनके लिए सोनेकी गाड़ी लादे।

चारुदत्तका गाड़ीवान गाड़ी ले आया। वसन्तसेना बैठनेको ही थी कि गाड़ीवानने कहा कि वह गद्दी तो भूल ही आया है। 'अभी आता हूं' कहकर वह गाड़ी लेकर चला गया। कुछ ही देर बाद एक और गाड़ी आकर द्वारपर खड़ी हुई। अधीर वसन्तसेना उसमें बैठ गयी। यह शकारकी भेजी हुई गाड़ी थी। रास्तेमें एक मकानके ढह जानेसे यातायात रुक गयाथा। वहीं वसन्तसेनाने यह घोषणा सुनी कि आर्यक जेल तोड़कर भाग गयाहै और राजपुरुष उसकी खोजमें है।

कैदसे भागा आर्यक छिपनेकी जगह ढूंढ़ता चारुदत्तकी टूटी फूटी हवेलीकी ओर गया। वहां द्वारपर एक पर्दा ढंकी गाड़ी देखी। वह बिना सोचे उसमें बैठ गया। उसके बैठतेही गाड़ी चल पड़ी। रास्तेमें गाड़ी की पूछताछ हुई। गाड़ीवानने कहा कि गाड़ीमें वसन्त सेनाहै। दो राजपुरुषोंमें विवाद हो गया कि तलाशी लें या न लें। दोनों आपसमें लड़ पड़े। गाड़ी आर्यकको लेकर चारुदत्तके पास पहुंच गयी। चारुदत्तने आर्यक को देखकर उसे सान्त्वना दी। उसकी बेड़ी कटवाई और उसे भाग जानेको कहा। उसके बाद वह स्वयं भी पुष्पकरण्डक उद्यानसे चल पड़ा।

शकार उसी उद्यानमें वसन्तसेनाकी प्रतीक्षा कर रहाथा। उसका मित्र विट उसके साथ था। गाड़ीसे उतरनेसे पहले ही वसन्तसेनाको पता चल गया कि वह शकारके जालमें फंस गयीहै। शकारने उससे प्रणय याचना की तो वसन्तसेनाने उसे लात मार दी। तब शकारने विटसे कहा: 'इस दुष्टाकी हत्या कर दो।' विटने साफ मना कर दिया। तब शकारने छलसे विट को दूर भेज दिया और गला घोंट कर वसन्तसेनाकी हत्या कर दी। लाशको सूखे पत्तोंसे ढक दिया।

शकारका यह कुकृत्य उसके गाड़ीवान स्थावरक ने देखाथा। इसलिए शकारने उसे तिमंजिलेपर एक कमरेमें कैद कर दिया और न्यायालयमें जाकर अभियोग लगाया कि चारुदत्तने पुष्पकरण्डक उद्यानमें वसन्तसेनाकी हत्या कर दीहै। चारुदत्तको न्यायालयमें बुलाया

गया । असत्यकी विजय होती गयी । सहायताके लिए मैत्रेय आया, तो न्यायालयमें उसके हाथसे वह पोटली गिर गयी, जिसमें वसन्तसेनाके गहने थे । पुष्ट प्रमाण मिल गया कि इन गहनोंके लिए ही हत्या की गयीहै । चारुदत्तको प्राणदण्ड देना तय हुआ ।

उधर बौद्ध भिक्षु संवाहक घूमता फिरता पुष्पकरण्डक उद्यान पहुंचा । वहां संयोगसे उसे सूखे पत्तोंमें दबी वसन्तसेना दिखाई पड़ी । उसमें जान बाकी थी । उसने सेवा शुश्रूषा करके उसे सचेत किया ।

जब वधभूमिमें चारुदत्तको प्राणदण्ड देनेकी सब तैयारी हो चुकीथी, तभी जैसे-तैसे कैदसे छूटकर स्थावरक आ पहुचा । उसने कहा कि वसन्तसेनाको चारुदत्तने नहीं, शकारने माराहै । पर राजाके सालेके मुकाबले गाड़ीवानकी बातपर भरोसा कौन करता ? बधिक तलवार चलानेको उद्यत ही थे कि तभी वसन्तसेनाको साथ लिये भिक्षु आ पहुंचा । वसन्तसेनाने बताया कि शकारने ही उसका गला घोटाथा । वधिकों ने चारुदत्तको छोड़ शकारको पकड़ा ।

उसी समय शर्विलकने आकर घोषणा की कि पालकको मारकर आर्यक राजा बन गयाहै । उसने एक प्रान्तका राजा चारुदत्तको बना दियाहै । चारुदत्तके कहनेसे शकारको छोड़ दिया गया । राजाके आदेशसे वसन्तसेनाको 'वधू' का पद दिया गया और चारुदत्तसे उसका विधिवत् विवाह होगया । शर्विलकका विवाह मदनिकासे होगया ।

गणिकाका नाटककी नायिका होना, राजाके साले के अत्याचारके कारण विद्रोह और क्रान्ति, न्यायप्रिय न्यायाधीशोंका भी राजाके सालेसे दबना, ब्राह्मण शर्विलकका चोरी करना और फिरभी उत्कर्ष पाना, ऐसी बातें हैं, जो प्राचीन परम्पराका क्रान्तिकारी उल्लंघन रही होंगी । समूचे नाटकमें युगीन मनको छूनेवाली हवा बहती प्रतीत होतीहै । उसका कुछ आभास इस उपन्यास रूपान्तरमें भी है ।

डॉ. कुमुद विद्वान् लेखक हैं । संस्कृत भाषाका ज्ञान उनकी भाषाको संवारनेमें विशेष सहायक हुआ है । परन्तु नये प्रयोगोंके उत्साहमें कहीं-कहीं विचित्र प्रयोग भी हो गयेहैं, जैसे 'तन मनकी समस्त इन्द्रियां उद्वेलित' (पृष्ठ ५७); 'इस सुजला सुफला भूमि आर्यावर्तमें आप जैसा पागल संगीतप्रेमी कहां मिलेगा ?' (पृष्ठ ५७); 'परिश्रम धूमिल होगया (पृष्ठ ६७); 'पुण्य क्षीण होनेपर तारे नक्षत्रसे टूट रहे हैं (पृष्ठ ९१); 'जाग्रत स्वप्नका सदमा बड़ा घातक होताहै (पृष्ठ ७८); इत्यादि वाक्यांश ऐसे हैं, जो भावको सही रूपमें प्रकट नहीं करते । इसी प्रकार पृष्ठ ५७ पर 'गर्वयुक्त विनयके साथ' है; गर्व और विनय परस्पर विरोधी हैं; इस प्रयोगसे कुछ अर्थ बनता नहीं । कहाजा सकताहै कि डॉ. कुमुदके पास अध्ययन और विद्वत्ताकी राइफल तो है, परन्तु उत्कृष्ट लेखनके लिए उससे सही निशाना साधनेकी अभी कुछ और आवश्यकता है । उनका लेखन बढ़िया है, परन्तु अभ्यास से वे त्रुटियां दूर कीजा सकतीहैं, जिनसे अपरिपक्वता का आभास होताहै । □

कहानी

सत्यजोतरायकी कहानियां[1]

अनुवादक . योगेन्द्र चौधरी
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

सत्यजित राय हमारे देशके ऐसे बहुमुखी प्रतिमा सम्पन्न व्यक्ति थे जिनकी ख्याति देशोंकी सीमाएं लांघते हुए पूरे विश्वमें फैली । यद्यपि विशेष प्रसिद्धि उन्हें फिल्म निर्माताके रूपमें मिली, तथापि वे एक सफल चित्रकार और कहानीकार भी थे । छोटीसे छोटी चीजको भी प्रभावी बनानेकी कला उन्हें बखूबी आतीथी । कहानी कैसे कही जाये जो पाठकको बांध ले और वह लेखकके साथ प्रवाहमें बहता चला जाये — यह कलाभी उन्हें अच्छी तरह आतीथी । मानव मन

---

[1] प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी द्वार, दिल्ली-१९९२ । पृष्ठ : २०३; डिमा. ९२; मूल्य : ९०.०० रु. ।

की उन्हें अच्छी जानकारी थी। फिल्मकी भांति अपनी कहानियोंमें भी उन्होंने मानव मनको ही विभिन्न कोणोंसे देखनेका प्रयास कियाहै। सत्यजित रायने पहले अपनी पत्रिका 'सन्देश' के माध्यमसे किशोरोंके लिए लिखना शुरू कियाथा। बादमें अन्य पत्रिकाओंके लिए भी लिखा और लेखनके दायरे विस्तृत बनाकर वयस्कों के लिए भी लिखा। उन्होंने जासूसी एवं वैज्ञानिक कहानियांभी लिखीं और इस बहाने प्रदोष मित्तर उर्फ फेलूदा जैसे जासूस तथा प्रोफेसर शंकु जैसे वैज्ञानिक पात्र बंगला कथा-साहित्यको प्रदान किये।

समीक्ष्य पुस्तकमें उनकी १२ कहानियां हैं। इनमें से सात कहानियोंमें कल्पनाकी ऐसे उड़ानें भरी गयीहैं जो कौतूहलप्रिय मनकी ही पसन्द आ सकतीहैं। 'प्रो. हिजबिज बिज' (पृ. ९-२४) ने "आदमीका सिर, सिंह के पैर, साहीकी पीठ, बकरीके सींग" जोड़कर एक ऐसे प्राणीकी रचना कर डाली जो घूमने-फिरने लगा, बातचीतभी करने लगा, "लेकिन पानीके अंदर क्यों चला गया, समझमें नहीं आया (पृ. २४)।"

जयन्तको उसके मामाने स्विटजरलैंडके किसी गांव में एक बूढ़ेसे खरीदी पुतली दी जिसका नाम 'फ्रिस' (पृ. २५-३४) रखाथा। बूंदीके गेस्टहाउसमें वह टूट गयी। बच्चे अपने खिलौनोंको सजीव ही मानतेहैं। अतः जयन्तने उसे वहीं एक देवदारुके वृक्षके नीचे दफना दिया। ३१ साल बाद जयन्त उस गेस्टहाउसमें अपने बचपनकी यादें लेकर फिर गया, तो उसे सब चीजें पहले जैसे ही मिलीं। रातमें उसे लगा कि फ्रिस उसके कमरेमें आया। उसकी छातीपर जो चीज चल रहीथी, वह फ्रिस ही था। रजाईपर उसीके पैरोंकी छाप थी (पृ. ३२)। जयन्त इस घटनासे बेचैन हो गया। बादमें फ्रिसको जहां दफनायाथा, उस स्थानको खोदा तो "दस-बारह इंचका एक सादा समूचा नर कंकाल हाथ-पैर फैलाये चित पड़ा (पृ. ३४) मिला। एक दूसरी कहानी है एक शताब्दी पूर्व वर्ष १८५८ में हाथसे लिखी 'ब्राउन साहबकी डायरी' (पृ. ३५-४७) की, जिसमें बंगलूरका पूरा पता, और उस वर्ष घटी घटनाओंके विवरण दियेथे। २२ सितम्बर को वहां 'साइमन' का निधन होगया। यह कौन था—यह तो स्पष्ट नहीं, पर ब्राउन साहबको वह बहुत प्रिय था क्योंकि उसकी मृत्युसे वे बहुत दुखी होगये। एकाएक २ नवम्बर को ब्राउन साहबने देखा कि साइमन कमरे में फायर प्लेसके पास अपनी प्रिय हाई बैक्ड कुरसीपर बैठाहै। इसके बाद लगभग हर रोज शामके समय साइमनका भूत ब्राउन साहबसे मिलता रहा। ब्राउन साहबकी डायरी एक शताब्दी बाद जब लेखकको मिली तो उसके मनमें उत्सुकता जगीं कि क्या अबभी वह कोठी है? तो क्या अबभी शामको साइमनका भूत वहां आताहै? लेखक वहां गया तो कोठी मिली। हाई बैक्ड कुरसी अब वहां नहीं थी, पर "पता नहीं कहांसे और कैसे, एक गाढ़े लाल रंगके मखमलसे लिपटी हुई हाई बैक्ड कुरसी फायर प्लेसके पास आ गयी। (पृ. ४६), और काले रंगकी एक बिल्ली उसपर लेट गयी। किसी अशरीरी वृद्धकी खिलखिलाहट साइमन···साइमन लेखकने सुनी। यह पालतू काली बिल्ली ही साइमन थी। "रतन बाबू और वह आदमी" (पृ. ७७-९२) में कहानीकारने एक ऐसे पात्रकी सृष्टि कीहै जिसके चेहरेका आकार, बालोंकी मांग, मूंछोंकी शक्ल, ठुड्डीके बीचका गड्ढा, कानके ऊपरका हिस्सा, आवाज, आदतें, खानेकी रुचियां, चलने-बैठनेकी मुद्रा, आंखोंकी ऐनककी पावर, जन्मतिथि, बचपन-स्कूल-कालेज-मां-बापकी बातें आदि सब कुछ नायक रतन बाबू के समान है, मानों उन्हींका वह डुप्लिकेट संस्करण हो। यद्यपि वह उनसे हर प्रकारकी मित्रता निभाताहै, फिर भी रतन बाबू उसकी हत्या कर देतेहैं क्योंकि एक ही प्रकार के दो आदमियोंका एक साथ जिन्दा रहना कोई मानी नहीं रखता। बादमें, रतन बाबूका भी उसी प्रकार अन्त हो जाताहै।

खगम (पृ. ६१-६६) में पाखंडोंके घोर विरोधी धूर्जटि बाबू एक साधुके पालतू नागकी अकारणही हत्या कर देतेहैं। फिर वे मानों स्वयं ही नागमें रूपान्तरित हो जातेहैं। भौतिक विज्ञानके प्रोफेसर 'झक्की बाबू' (पृ. १०५-११७) एक ऐसे व्यक्तिकी कहानी है जो खून, आत्महत्या, दुर्घटनाजन्य मृत्यु, दिलका दौरा पड़ जानेसे मृत्यु (पृ. ११०) जैसी घटनाओंसे जुड़ी कोई भी चीज, जैसे कोटका बटन, देखतेही अज्ञात अतीतका साक्षात्कार कर लेताहै। रहस्य-रोमांचके शौकीन और भूत-प्रेतकी कहानियोंमें रस लेनेवालोंको इस प्रकारकी कहानियां आकृष्ट करेंगी।

"सदानन्दकी छोटी दुनियां (पृ. ४८-६०)" बाल मनोविज्ञानकी कहानी है। सदानन्द जैसे बच्चोंको जिन चीजोंमें दिलचस्पी है, अधिकतर लोगोंके ध्यान

में ये चीजें आतीः ही नहीं (पृ. ४९) जैसे, खिड़कीके रास्तेसे कमरेमें आया सेमलका रोयेंदार बीज, खिड़की पर बैठा कौवा, या खिड़कीपर चल रही चींटी। बच्चे ऐसी सभी चीजोंका अपनी भावनानुसार मानवीकरण कर लेतेहैं। इस कहानीमें लेखकने बच्चोंके इसी संसार की यात्रा करायीहै।

'भक्त' (पृ. ९३-१०४) अरूप बाबूकी कहानी है जिन्हें पुरीमें कुछ लोग भूलसे बाल साहित्यका प्रसिद्ध लेखक अमलेश मौलिक समझ लेतेहै। चाहते हुएभी वे इसका प्रतिवाद नहीं कर पाते। उलझनें बढ़ती जातीहै और जब अमलेश मौलिक पुरी आतेहैं तो अरूप बाबू किस प्रकार मुक्ति पातेहैं—इसका रोचक वर्णन किया गयाहै। "वारीन भौमिक की बीमारी" (पृ. ११९-१३२) एक ऐसे 'चोर' की कहानी है जो आवश्यकतावश नहीं, बीमारीके कारण चोरी कर तो लेताहै, पर जब पश्चात्तापका समय आता है तो पश्चात्ताप करके नैतिक साहसका परिचय भी देताहैं, पर ··। ये दोनों ही इस संग्रहकी श्रेष्ठ कहानियां है। सत्यजित रायने इनमें मानव मनकी परत-दर-परत बहुत सुन्दर जांच-पड़ताल कीहै।

इस संग्रहकी अंतिम तीन कहानियाँ (पृ. १३३-२०३) 'सियार देवताका रहस्य', 'सभा द्वारकी चाबी' और घुरघुटियाकी घटना' जासूसी सशक्त कहानियां है जिनमें सत्यजित रायका जासूस पात्र प्रदोष मित्तिर उफ फेलुदा अपनी पूरी सूझ-बूझके साथ उपस्थित है। ज्यों-ज्यों कहानियां आगे बढ़तीहैं, उनका रहस्य गहरा होता जाताहै और अन्त देखकर पाठक चकित रह जाताहै।

संग्रहकी कहानियोंकी कई विशेषताएं हैं। कथानककी कड़ियोंको किस क्रमसे रखा जाये, कौन-सी बात कब बतायी जाये, कब न बतायी जाये, कौन-सा रहस्य कब खोला जाये ताकि कहानीका रस-परिपाक होसके—इस उद्देश्यपर कहानीकारका पूरा ध्यान रहाहै। सभी कहानियोंमें एक विशिष्ट बंगाली परिवेशका निर्माण बड़ी सहजतासे किया गयाहै। प्रत्येक कहानीमें आदिसे अन्ततक रोचकता बनी रहतीहै। अतः कहानी शुरू करनेपर पाठक उसे बीचमें छोड़ नहीं सकता। सत्यजित रायकी कहानी कला सम्बन्धी प्रतिभासे परिचित होने और मात्र मनोविलासके लिए लिखी इन कहानियोंको पढ़नेके बाद मनमें यह विचार आताहै कि काश, उन्होंने कहानीको समाज-निर्माणकी विधाके रूप में अपनाया होता, तो समाजका कितना कल्याण होता!

अनुवादकने अपना दायित्व निभानेका काफी प्रयास कियाहै और इसमें उसे काफी सीमा तक सफलता भी मिलीहै, विशेष रूपसे, कहानियोंके बंगाली परिवेश को बनाये रखनेका काम उसने अच्छी तरह निभायाहै। इसके लिए उसे बधाई। जो कमियां रह गयीहै उनमें से कुछ कहानीके बंगला चरित्रकी रक्षा भी करतीहैं। जैसे, बहुवचनके स्थानपर एक वचनका प्रयोग, 'धनी आदमीका शत्रु हमेशा रहताही है (पृ. १३८)', या 'लिपि' के लिए 'लिखावट' का प्रयोग (पृ. १३६-१३७), पर कुछ कमियां ऐसी हैं जो भाषाके सहज प्रवाहमें व्यवधान उत्पन्न करतीहैं और याद दिला देतीहैं कि यह अनुवाद है, मूल नहीं। जैसे, "गत कल मनिलाल बाबूको धक्का देनेके वक्त सम्भवतः रतन बाबूका एक बटन टूटकर गिर गयाथा (पृ. ८९-९०)।' या "कल स्वाभाविक कारणवश ही वे ट्रेनके दृश्यका उपयोग नहीं कर सकेथे (पृ. ९०)।" इस दृष्टिसे इनका अभी और परिष्कार करना आवश्यक है। [·]

संस्कृतसे रूपान्तरित कहानियां

प्राचीन कथाएं

[प्रस्तुतकर्त्ता : डॉ. कृष्णकुमार]

संस्कृत साहित्यकी कथाओंमें उत्सुकता, चिन्तन और विचारोंकी अभिव्यक्ति सभी तत्त्व दृष्टिगोचर होतेहै। इन्हें लोककथाओं और नीतिकथाओंमें विभक्त कियाजा सकताहै।

नीतिकथाओंमें मनोरंजक गाथाओंकी सहायतासे सदाचार, राजनीति व्यवहारकी सरल प्रस्तुति है, परंतु नीति-सदाचारको मनोरंजन द्वारा प्रस्तुत करना हैं।

एक ही जिल्दमें दो खण्डोंकी पृष्ठ संख्या २२५ है और मूल्य है केवल १५.०० रु.। (डाक व्यय पृथक्)

'प्रकर', ए-८/४२ राणाप्रताप बाग, दिल्ली-७

डोगरी-कश्मीरी कहानियां[1]

सम्पादक : डॉ. उषा व्यास

समीक्षक : डॉ ओंकारनाथ कौल

भारतकी अन्य प्रमुख भाषाओंकी तुलनामें कश्मीरी एवं डोगरी भाषाओंमें कहानियां कम लिखी गयीहैं। इसके कई कारण हैं। मुख्य कारण यह है कि दोनों भाषाओंको अपनेही जन्मप्रदेश—जम्मू एवं कश्मीर राज्यमें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त नहीं होसका। इनका प्रयोग सरकारी कामकाजमें नहीं होता। लोक-संचारके सरकारी माध्यम (रेडियो, दूरदर्शन) एवं शिक्षामें इनका प्रयोग सीमित है। दोनों भाषाओंमें फिरभी धीमी गतिसे ही सही, मौलिक साहित्य सृजन विभिन्न विधाओं में हो रहाहै, जिनमें कथा साहित्य भी हैं।

कश्मीरी और डोगरी भाषाओंकी बहुत ही कम कहानियोंका दूसरी भाषाओंमें अनुवाद हुआहै। ये अनुवाद कुछ ही पत्रिकाओं एवं संकलनोंमें प्रकाशित हुएहैं। जम्मू व कश्मीरमें भाषा, कला और संस्कृति अकादमी राज्यकी अन्य भाषाओंके साथ-साथ कश्मीरी और डोगरी साहित्यको प्रकाशित करानेमें सहयोग देतीहै। प्रस्तुत पुस्तकभी अकादमीने ही तैयार कराके प्रकाशित कीहै।

प्रस्तुत पुस्तकमें कुल सोलह—आठ डोगरी और आठ कश्मीरी-कहानियोंका हिन्दीमें अनुवाद किया गया है। सम्पादकने अपने आमुखमें दोनों भाषाओंकी कहानियोंकी विशिष्टताओंकी चर्चा कीहै। ये सोलह कहानियां दोनों भाषाओंकी कहानियोंका प्रतिनिधित्व अवश्य करतीहैं।

अधिकतर कहानियोंमें संबंधित भाषा-क्षेत्रके विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश, लोकमानसका बिम्ब एवं विषयगत वैविध्य परिलक्षित होताहै। कहानियोंके विषय अलग-अलग हैं। डोगरी कहानियोंमें भगवत प्रसाद साठेकी कहानी 'हीरेकी लौंग' आदर्श एवं निःस्वार्थ भावात्मक प्रेमको प्रकट करती है। नरेन्द्र खजूरियाकी कहानी 'कास्तूका काला तीतर' क्षेत्रीय सांस्कृतिक परिवेशको प्रस्तुत करतीहै जिसमें अन्धविश्वासों के कारण सीधे-सादे मनुष्य बलि चढ़ जातेहैं। रामनाथ शास्त्रीकी कहानी 'तीसरी अखण्ड-पाठ' एक सामयिक ज्वलन्त समस्याको प्रकट करती है जिसमें धन कमानेके लालचमें तस्करी जैसे अवैध कार्य करनेका जोखिम उठाया जाताहै जो जानलेवा साबित होताहै। धर्मचन्द सामन्तकी कहानी 'किलेका कैदी' एक क्षेत्रीय ऐतिहासिक परिवेशकी कहानी है जिसमें उसूलोंको वैयक्तिक विपदाओंपर प्रश्रय मिलताहै। मदनमोहनकी कहानी 'पहाड़ी कौआ' एक पहाड़ी व्यक्तिकी कहानी है जो पहाड़ोंसे दूर रहकर भी एक गरीब पहाड़ी बाला से हमदर्दी जताकर फिर पहाड़ लौटताहै सब कुछ छोड़ कर। 'आवाजें' वेद राहीकी सशक्त कहानी है जो हिन्द-पाक बंटवारेके फलस्वरूप एक असहाय बुढ़ियाकी मानसिक वेदनाको प्रकट करतीहै जिसे अपने गांववाले छोड़कर भाग गयेहैं। नरसिंह देव जम्बालकी कहानी 'नया ग्राहक' एक गरीब औरतकी विवशताको दर्शाती है जो परिस्थितियोंका सामना करते हुए 'जीते जी सुलगती' है। बन्धु शर्माकी कहानी 'प्लेटफार्म' अमीरी-गरीबीके आधारपर खड़े असफल प्रेमको दर्शातीहै।

कश्मीरी कहानियोंमें अमीन कामिलकी कहानी 'लगन' वास्तवमें उस दृढ़ मनकी इच्छाशक्तिको प्रकट करतीहै जो प्रेमके मीठे बोलसे जागृत होतीहैं। जिससे एक बीमार प्रेमिका स्वस्थ हो जातीहै पर विधिकी विडम्बनासे उसकी बीमारी उसके प्रेमीको लग जाती है। अली मुहम्मद लोनकी कहानी 'मनुष्य और मरीचिका' में एक बड़े बाबूका अपने अधीन कार्य करने वाली महिलासे एक तरफा प्रेमका वर्णन है जो हवाई किले बनाताहै और वास्तविकतासे अनभिज्ञ रहताहै 'बन्दी' बंसी निर्दोषकी सशक्त कहनी है। इसमें आशाओंके विपरीत एक बूढ़ा व्यक्ति कमाऊ बेटेके भरोसे न रहकर अपनी नौकरी बरकरार रखनेपर विवश होताहै। गुलामनबी शाकिरकी कहानी 'रोती ज़िन्दगीके हंसक्षण' पति-पत्नीके उस विश्वास-अविश्वास पर स्थित है जिसके बदलनेमें देर नहीं लगती। हरिकृष्ण कौलकी कहानी चोर' आजके समाजमें व्याप्त बेईमानी रिश्वत और मानसिकताका दृश्य प्रस्तुत करतीहै जिनके हम सभी शिकार या भागीदार हैं। रत्नलाल शांतकी कहानी 'एक तिकोन यह भी' पति-पत्नीके प्यार, लड़ाई-झगड़े, और अलगावकी अटूट

---

[1] प्रका. : जे एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू। पृष्ठ : ११४; डिमा. ९२; मूल्य : २५.५० रु.।

कड़ियां पिरोतीहै । हृदय कौल भारतीकी कहानी 'बड़ी बस्तीका छोटा कमरा' आजकी शहरी जिन्दगीको मानसिक घुटनको नये बिम्बों द्वारा प्रस्तुत करतीहैं । गुलाम रसूल संतोषकी कहानी 'सन्तानका दुःख पशुओं और मनुष्योंमें व्याप्त मूलभूत सम्भावनाओंमें सन्तानके प्रति मोह और इससे बिछुड़नेका दुःख प्रकट करतीहैं ।

इस प्रकार कहानियोंकी विषय-वस्तु परम्परागत भी हैं और कुछ नवीन भी । विषय चाहे कोई हो, क्षेत्रीय जन-समाजसे जुड़े सांस्कृतिक परिवेशमें प्रस्तुत हुएहैं । अनुवादकी भाषा-शैलीके बारेमें बहुत कुछ कहा जा सकताहै । अनुवादकोंका भरसक प्रयत्न रहाहै कि डोगरी और कश्मीरी भाषाओंमें लिखित मौलिक कहानियोंका अनुवाद मानक हिन्दीमें हो । अनुवादकोंके प्रयत्नके बावजूद, अनुवादकी भाषामें मूल भाषाओंकी संरचनात्मक विशेषताएं झलकतीहैं । डोगरी और कश्मीरी-भाषा क्षेत्रोंसे संबंधित विशिष्ट बिम्बोंकी परिकल्पना, लोकोक्तियाँ और मुहावरोंका अनुवाद कहीं-कहीं कृत्रिम लगताहै । हिन्दी भाषाभाषीके लिए ये प्रयोग नये हैं । शैलीगत विशेषताएं कुछ स्थानोंपर ध्यान आकृष्ट करतीहैं । जैसे हरिकृष्ण कौलकी कहानी 'चोर' में नकारात्मक शब्द 'नहीं' और क्रियाका प्रश्नात्मक बार-बार प्रयोग नहीं लगता ? नहीं समझता ? नहीं फटकारता ? नहीं कहता ? नहीं आता ? नहीं बैठते ? नहीं होता ? आदि । कश्मीरीमें इस शैलीका प्रयोग जितना स्वाभाविक लगताहैं, हिन्दीमें उतना ही कृत्रिम । कई स्थानोंपर डोगरी या कश्मीरीका शब्दशः अनुवाद भी अखरताहै । एकाध स्थानपर सांस्कृतिक शब्द-वाक्योंकी टिप्पणीमें व्याख्या कीगयीहै (जैसे शांत की कश्मीरी कहानीमें 'रस्सी बंटनेका' ।

मुद्रणकी त्रुटियां अनेक हैं । कुल मिलाकर यह पुस्तक अच्छी है । इस पुस्तकके माध्यमसे डोगरी और कश्मीरी कहानियां अधिक पाठकों तक पहुच पायेंगी और डोगरी और कश्मीरी कहानियोंके प्रति उनकी रुचि जागृत होगी । पुस्तकके कुशल सम्पादनके लिए सम्पादक बधाईकी पात्र हैं । ⊡

नाटक

गुलाम बादशाह[1]

नाटककार : नन्दकिशोर आचार्य
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

नन्दकिशोर आचार्यके दो नाटकोंकी पुस्तक हाथमें है और मुझे तीन-चार वर्ष पहलेकी घटना याद आ रहीहै, याद इसलिए आ रहीहै कि उसके साथ एक बहुत बड़ा प्रश्न जुड़ा हुआहै ; एन. सी. पी. ए., बम्बई में रंगकर्मी वामन केन्द्रेसे बातोंमें मैंने जानना चाहा था कि हिन्दी रंगकर्मी हिन्दीके नाटकोंसे अधिक संख्यामें अन्य भाषाओं, विशेषकर पश्चिमी भाषाओंके अनुवादोंको क्यों प्रस्तुत करतेहैं । केन्द्रेजीने हिन्दीमें उत्तम रंगमंचीय नाटकोंकी कमीकी शिकायत की । मैंने पांच-छः वर्षोंमें प्रकाशित हुए अनेक उत्तम नाटकोंके नाम गिनाये । केन्द्रेजीने उनके नामभी नहीं सुनेथे, यद्यपि उनके पुस्तकालयमें इनमें से अनेक नाटक मौजूद थे । आचार्यका 'देहांतर' उनमें प्रमुख था । क्या हिन्दी रंगमंचका विकास विदेशी लेखनीसे विदेशी मानसिकताकी अभिव्यक्ति करनेके लिए रचे गये नाटक कर सकतेहैं ? हिन्दी रंगमंचके निर्माता वे अल्पसंख्यक रंगकर्मी ही हैं जिनको हिन्दीके नये, कभी-कभी अप्रकाशित, नाटकोंकी तलाश रहतीहै । ऐसे रंगकर्मियोंकी

---

[1] प्रका. : वाग्देवी प्रकाशन, सुगन निवास, चन्दन सागर, बीकानेर-३३४००१ । पृष्ठ : ११२; डिमा. ९२; मूल्य : ७५.०० रु. ।

शिकायतोंका हम सम्मान भी करतेहैं और उनकी तलाशमें सहायक बननेमें गौरवका भी अनुभव करते है।

हिन्दी नाटक एवं रंगमंचके विकासमें रंगकर्मीका योगदान बहुत कम रहाहै। हिन्दी नाटकका जन्म व्यवसायी वृत्तिवाले पारसी थियेटरके मुकाबलेमें सोद्देश्य नाटक एवं न्यूनतम साधनोंमें साध्य रंगमंचके विकासके एिल हुआथा। भारतेन्दु एवं उनके सहयोगी नाटककर तो थे ही रंगकर्मी भी बने। सही अर्थोंमें हिन्दी नाटकोंके रंगकर्मी उसके जन्मके सात-आठ दशक बाद ही जनमे। और, जनमें भी इस प्रकार कि उनमें अधिकतर आयातितके मोहसे ग्रस्त होकर अनुवादोंसे बधकर रह गये। विडम्बना यह है कि इनको शिकायत हिन्दी नाटककारसे रहीहै। रंगमंचके विचारसे असावधानीके दोषी कहे जानेवाले नाटककार प्रसादने नाटकको कलात्मक उत्कर्षके शिखर पर तो पहुंचाया। जब उनका नाट्य-प्रस्तुतिसे सम्पर्क हुआ तो उन्होंने रंगमंचीय नाटकभी रचा। किन्तु, रंगकर्मी उधारके रंगमंच तथा शिकायतकी सुविधाभरी मुद्रामें अपने दायित्वको समेटे बैठे रहे। 'हिन्दी थियेटर' यदि पिछड़ा है तो दोषी कौन है? 'देहान्तर', 'गुलाम बादशाह', 'हस्तिनापुर' तथा अन्योंके नाटक उपलब्ध हैं तब 'हिन्दी' रंगमंच पर दो तिहाईके लगभग प्रस्तुतियां अनुवाद क्योंहैं? ऐसे भी रंगकर्मी हैं जिनको प्रस्तुतिके लिए नये, प्रायःही अप्रकाशित नाटककी तलाश रहतीहै। 'हिन्दी रंगमंच' का जितना भी विकास हुआहै उसके लिए इनको श्रेय दिया जाना चाहिये।

डॉ. नन्दकिशोर आचार्यकी नयी कृति 'गुलाम बादशाहमें' में दो नये नाटक संकलित हैं—'गुलाम बादशाह' नथा 'हस्तिनापुर'। प्रथममें कथानक ऐतिहासिक आख्यानपर तथा दूसरेमें 'महाभारत' के पुरावृत्तपर आधारित है। किन्तु, दोनों नाटकोंमें मुख्य रूप से मानव-मनकी जटिल मनोग्रन्थियों तथा इनमें उलझे हुए चरित्रोंकी व्याख्याएं हुई हैं। हमारी जानकारीमें अन्तर्जगत्के रहस्यमय कार्य-व्यापारोंको इतनी सूक्ष्म पकड़के साथ हिन्दी नाटकमें अन्य किसीने अंकित नहीं कियाहै।

'गुलाम बादशाह' का नायक बलवन कभी सुलतान नासिरुद्दीनका गुलाम था। सुलतानने उसे गुलामी से मुक्त कर दियाथा। किन्तु, धूर्त्त बलवनने षड्यंत्र रचकर सुलतानकी हत्या करवादी और स्वयं सुलतान बन बैठा। बादशाह होनेपर भी वह अपनी गुलामीके समयकी कुण्ठाओंका गुलाम है। इसमें वह अतिरिक्त क्रूर तथा आशंकाग्रस्त है। उसके चरित्रके ये विक्षेप उसको निपट एकाकी बना देतेहैं। नाटकमें उसके जीवनके अंतिम कालकी, १२८४ से १२८६ ई. की घटनाओंके बीच बलवनकी ट्रेजेडीको दिखाया गयाहै।

बलवन अपने बड़े पुत्र मुहम्मदको सबसे ज्यादा चाहताहै तथा उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करताहै। मुहम्मद अपने पिताके निर्मम आचरण बर्दाश्त नहीं कर पाताहै। इसलिए दूर मुलतानमें विकट मंगोल सेनासे युद्ध छेड़कर प्राण गंवा देताहै। बलवन दूसरे पुत्र बुगरा खांको इसलिए अपना उत्तराधिकारी नहीं घोषित करता कि बुगराकी बेगम मृत सुलतान नासिरुद्दीनकी पुत्री है तथा जो सत्ता हाथमें आते ही बलवनके सभी प्रियजनोंसे पिताकी हत्याका प्रतिशोध लेती। मृत्युशैयापर पड़ा बलवन अपने विश्वस्त फखरुद्दीन को अपनी इच्छा जताताहै कि उसकी मृत्युके पश्चात् तख्तपर मुहम्मदके बेटेको आसीन किया जाये। बलवन की मृत्यु होतीहै तथा उसके शवके समक्षही फखरुद्दीन उमरा को सूचित करताहै कि मृत सुलतान बुगराखां के पुत्रको अपना वारिस घोषित कर गयेथे। बुगराका पुत्र उसकी नवासोका पति भीहैं। इस प्रकार बलवन जो नहीं चाहताथा वही होता है।

बलवनका चरित्र मनोग्रन्थियोंसे जकड़ा तोहैही, उनमें वह अपनी सहज अनुभूतियोंको भी कुचल डालता है। पुत्रकी मृत्युका आघात बहुत गहरा है किन्तु दूसरोंके सामने वह दृढ़ताका प्रदर्शन करताहै।" अन्दरसे कुछ टूट हो भी चाहे पर बाहर कोई दरार तक नहीं दिखती सुलतानमें। सियासत न रिश्ते पाल सकताहै न यादें।" सुलतानकी यह दृढ़ता हमें अपनेही समयकी एक घटनाका स्मरण करातीहै जिसमें सत्तासीन द्वारा पुत्रकी दुर्घटनामें मृत्युपर दृढ़ताका प्रदर्शन किया गयाथा। क्योंकि आम आदमीके सामने दुर्बलताकी झलक भी देनेपर सत्ताका पाया हिलनेका खतरा बन जाताहै। इस प्रकार नाटकमें एक ओर निर्मम राजनीति और षड्यंत्रोंका सिलसिला दिखायी देताहै ओर दूसरी ओर अपने आपसे लड़ते और टूटते हुए व्यक्तिके आन्तरिक-उद्वेलन अंकित हुएहैं।

नाटक बारह प्रवेशोंमें विभाजित है तथा इसमें

बाईस पात्र हैं। यह संख्या असामान्य अधिक नहीं है। दृश्य-योजना अत्यन्त सरल है। नाटकमें संघर्ष दोहरे स्तरपर है जो सामान्य दर्शकको भी रोचक लगेगा और सुसंस्कृत दर्शकको भी। 'देहान्तर' में मनो-विचलनने पुरा-वृत्तको नया अर्थ प्रदान कियाथा; 'गुलाम बादशाह' में फ्रायडीय मनोविज्ञानकी कुण्ठाग्रस्त मानसिकताकी जानी-पहचानी भूमिमें भी ताजगी पैदा कर दी गयीहै।

'हस्तिनापुर' नारीकी ट्रैजडीको तीखेपनसे उपस्थित करताहै। पुरुष-प्रधान समाजमें नारीकी स्थिति हीन रहीहै। नाटक अनेक नारियोंकी व्यथाके बीच एक नारीके विद्रोहकी वाणीको भी मुखर करताहै। इस अर्थसे नाटकका अंतिम स्वर भविष्यके प्रति विश्वासका है।

राजकुमार धृतराष्ट्र और पाण्डु निस्संतान मरे राजा विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे नियोगसे जन्मे पुत्र थे। भीष्मका अनुराग धृतराष्ट्रके प्रति विशेष है क्योंकि वह अम्बिकाका पुत्र हैं। अम्बिका भीष्मसे प्रेम करतीथी तथा नियोग हेतु उनकी कामना करतीथी। आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञासे बंधे भीष्म इस कामनाको पूरी तो नहीं करतेहैं किन्तु उनके अन्तर्मनमें अम्बिकाका प्रेम विशेष अर्थ रखता रहाहै। इसीके कारण वे पाण्डुके पुत्रोंकी अपेक्षा धृतराष्ट्रके पुत्रोंके प्रति विशेष स्नेहभी रखतेहैं। (नाटककारने इस तथ्यको अनदेखा कियाहै कि पाण्डव वास्तवमें कुरुवंशके थे ही नहीं।) उल्लेखनीय है कि विदुरके पिता भी वही थे जो धृतराष्ट्र और पाण्डुके थे। शुभा जब इस तथ्यके आधारपर तथा इस सिद्धान्तके बलपर कि नारी तो पुरुषका क्षेत्र होतीहै अपने पुत्रको भी समान अधिकारका भागी प्रकट करतीहै तब भीष्म दासीके तर्कको पचा नहीं पातेहैं। भीष्मके चरित्रके खोखलेपनको शुभा उधेड़कर रख देतीहै। यही कारण है कि कौरवोंकी पराजयसे वह संतुष्ट भी हैं। पाण्डवोंके शासनमें रहनेके बजाय जब कुरुवंशी हस्तिनापुर छोड़कर जानेका निर्णय लेतेहैं तब शुभा हस्तिनापुरमें ही रहनेका निर्णय लेतीहै। कुरुवंशियोंके साथ जानेके इच्छुक विदुरको वह रोकती नहीं हैं। नाटकमें केन्द्रीय-पात्र शुभा है जो हस्तिनापुरको दो विपरीत व्यवस्थाओंके प्रतीक रूपमें देखतीहै। एक व्यवस्था वह थी जिसके संरक्षक भीष्म थे तथा दूसरी व्यवस्था वह है जो भीष्म-पोषित व्यवस्थाके ध्वंसके बाद बनी है। पहली व्यवस्थामें युवा सत्यवतीका वैधव्य, अम्बाका देह-त्याग, उसकी दोनों बहिनोंके अभिशप्त जीवन जैसे अन्याय पल रहे थे। संक्षेपमें, पहली व्यवस्थामें पुरुषका अहं तथा नारीका दमन और उससे भी अधिक नारीका वस्त्रहीनकर अपमानित करनेके प्रयासपर कोई रोक नहीं थी। पहला हस्तिनापुर भीष्म का था, दूसरा इन्द्रप्रस्थके निर्माता पाण्डवोंका था।

'हस्तिनापुर' के निर्देशक अर्जुनदेव चारणने अपने वक्तव्यमें उपर्युक्तके संकेत दियेहैं—"नन्दकिशोर आचार्यके नाटकोंकी यह एक विशेषता रहीहै कि इतिहास और पुराणोंके उन महान नाटकोंकी मानवीय दुर्बलताओंको सामने लातेहैं जो उनकी 'महानता' में खो जातीहैं और जिनमें "त्रासदीका बीज रहताहै" तथा " 'हस्तिनापुर' अपनी चेतनाके विस्तारके लिए संघर्षरत स्त्रीकी कथा है—'हस्तिनापुर' उसकी मुक्ति हैं।"

'गुलाम बादशाह' के निर्देशक फैजूल अल्काजीने प्रकट कियाहै—"नन्दकिशोर आचार्यमें नाट्य-संरचना और भाषाका सूक्ष्मबोध है और वह यह जानतेहैं कि आलेखमें अन्तर्पाठों—सब-टैक्ट्स—को किस प्रकार विकसित करना होताहै। उनके चरित्र जटिल और अमुखर होनेके कारण विशिष्ट हैं—वे उस प्रकार अतिमुखर और शब्दाडम्बरपूर्ण नहीं हैं जैसे प्रायः ऐतिहासिक नाटकोंमें पाया जाताहै। सबसे बड़ी बात यह है कि लेखक एक निर्देशकके साथ संवाद और काम करनेमें समर्थ हैं। लेखक और निर्देशकके बीच यह अन्तरंग सहभागिता और अन्तःक्रिया किसी नाट्यान्दोलनके विकास और समृद्धिके लिए बहुत जरूरी है।"

'गुलाम बादशाह' मुख्यतः राजनीतिक परिदृश्यका नाटक है जिसमें सत्ता झटकनेके षड्यन्त्रोंकी गाथा प्रमुख है। यह नेतातंत्रकी, हमारी जानी-पहचानी, गाथा भी मानी जा सकतीहै। इसके विपरीत 'हस्तिनापुर' नारीके अधिकारोंको रोंदनेवाले भीष्म तथा 'स्त्रीकी चेतनाका स्वतंत्र विस्तार' चाहनेवाली शुभाके बीचकी टकराहटका नाटक है जिसमें भीष्म निरुत्तर किन्तु अड़ियल हैं। इसलिए व्यवस्थामें सुधारके बजाए परिवर्तन आवश्यक हो जाताहै। तब भी, दोनों नाटक एक बातमें समान हैं, दोनोंमें भारी तनावोंकी बुनावट है। किसीभी निर्देशकके लिए ऐसे नाटक चुनौती भी होतेहै और सक्षम निर्देशकको अपनी प्रतिभाके विस्तारके लिए भरपूर अवसर भी प्रदान करतेहैं। श्रेष्ठ रंगकर्मियोंको ऐसे नाटकोंकी तलाश रहतीहै। तनावकी अभिव्यक्तिके लिए आचार्यके पास व्यंजनापूर्ण भाषा है। यों तो आलोच्य दोनों

नाटकोंमें पात्रोंके अनुसार उर्दू-फारसी बहुल तथा संस्कृत-प्रधान भाषाओंके कुशल प्रयोग हुएहैं। यह कुशलता थोड़े परिश्रम तथा थोड़ी सावधानी द्वारा पायी जा सकतीहै। भाषागत कौशलमें हमारा आशय मानसिक-तनावोंकी अभिव्यक्तिमें सक्षम भाषासे है। आचार्य इसके धनी नाटककार हैं। यह एक दुर्लभ उपलब्धि है।

आलोच्य दोनों नाटकोंमें कार्यकी गतियां भिन्न —काफी भिन्न—स्तरोंपर हैं। ऐतिहासिक नाटक बाह्यकार्यव्यापारकी प्रधानता रखताहै यद्यपि बीच-बीच में अन्तर्द्वन्द्व भी है। पुराकथापर आश्रित हस्तिनापुर' एक रातके संवादोंमें अनेक पीढ़ियोंकी नारियोंकी व्यथाओंको जी लेताहै। आचार्य दोनोंमें ही सफल सिद्ध हुएहैं। दो भिन्न रंगकर्मियोंने सफल प्रस्तुतियों द्वारा उनकी रंगमंचीय क्षमताओंको भी सिद्ध कर दियाहै। देखनाहै कि अन्य रंगकर्मी कितना आगे आतेहैं। दोनों नाटक हमारी समकालीन परिस्थितियोंके सन्दर्भमें बहुत प्रासंगिक भी है—एकमें राजनीतिक व्यंग्य है तो दूसरे में व्यवस्था-परिवर्तनका आशावादी स्वर है। दोनों नाटकोंका स्वागत है। □

प्राचीन भारतीय नारियां

महाभारतके नारी पात्र[1]

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन

समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

डॉ. कमलसिंह तथा डॉ. श्रीमती शारदा शर्मा द्वारा संपादित डा. 'सुमन' की साहित्यिक आराधनाका यह २९वां पुष्प है। भाषाविद् और सहृदय कवि 'सुमन' की संस्कृतिमें गहरी रुचि रहीहै। एक शिक्षकके नाते उन्हें आदर्श और चरित्र-निर्माण सम्बन्धी लेखनसे लगाव है। रामायण और महाभारतका उन्होंने विशेष अध्ययन कियाहै। अबतक उक्त दोनों ग्रंथोंमें रामायणसे पोषित पांच और महाभारतसे संदर्भित दो ग्रंथोंकी रचनाका श्रेय उन्हें है।

प्रस्तुत कृतिमें उनकी उक्त सभी रुचियों और विशेषताओंका सम्मिलन हुआहै। आधुनिक भारतीय समाजमें नारीका सम्मानजनक स्थान हो और वह प्रेरक शक्तिकी अपनी मूल और अहम् भूमिकाका निर्वाह कर सके, इस आकांक्षासे लेखकने महाभारतके नारी पात्रोंके चरित्रकी पुनर्व्याख्या प्रस्तुत कीहै। उन चरित्रोंका पूर्ण परिचय देते हुए उन्हें यथार्थवादी दृष्टिसे तात्कालिक परिवेशमें प्रस्तुत किया गयाहै और आधुनिक दृष्टिके लिए अविश्वसनीय तथा अनुपयोगी अतिशयोक्तिपूर्ण अंशोंको छाँटते हुए सीधे मानवीय धरातलपर उन चरित्रोंका अंकन किया गयाहै। लेखकका उद्देश्य केवल पात्रोंको ज्योंका त्यों उपस्थित कर देना नहीं है। वह उनके माध्यमसे संस्कारशीलता और संस्कृतिकी उन्मूलित होती भाव-चेतनाको जगाना और परिपुष्ट करना चाहताहै। प्रकारान्तरसे पाठकों तक महाभारत का संदेश पहुंचानाभी उसका लक्ष्य है।

डॉ. सुमनमें पाठकसे सीधे और अन्तरंग संवादकी प्रबल आकांक्षा है। उनका शिक्षक सहजही उन स्थलों पर अंगुली रखता चलताहै जिन्हें समझनेके लिए पाठक को अतिरिक्त ज्ञानकी आवश्यकता है, जहां उसकी जिज्ञासा कुछ और स्पष्टीकरण मांगतीहै। अतएव चरित्रोंका सीधा-सरल व्याख्यान न करके वे उन शब्दों,

---

[1] प्रका. : वासन्ती प्रकाशन, ए-८७, विवेकनगर, दिल्ली रोड, सहारनपुर-२४७००१। पृष्ठ : ८+२०७; डिमा. ९३; मूल्य : १५०.०० रु.।

घटनाओं, ज्ञानकी अन्यान्य शाखाओंसे संबंधित विषयों और संदर्भित इतर पात्रोंका भी पूरा ज्ञान कराते चलते हैं जो चरित्र-कथनके बीच कहीं या कैसे भी उपस्थित हो जातेहैं। स्वाभाविक है कि इस प्रक्रियामें वे संस्कृति, धर्म, नीति विज्ञान, व्याकरण, दर्शन और इतिहास आदिकी सीमाओंमें प्रवेश कर जातेहैं। कभी वे उन प्रदेशोंसे जल्दी लौट पड़तेहैं, तो कभी लम्बी सैरके लिए निकल पड़तेहैं। विशेषत: यह लम्बी सैर दूसरे पात्रोंके संदर्भमें होतीहै, क्योंकि तब वे मूल पात्रको एक जगह ठहराकर संदर्भित पात्रका जन्म, जन्म-स्थान, माता-पिता, उससे संबंधित घटनाओं आदिका ब्यौरा देनेमें व्यस्त हो जातेहैं। निश्चयही विशद ज्ञानके लिए उनका यह उपक्रम बड़ा लाभकर है, यद्यपि इसमे यह खतरा भी हैं कि यह न जान पड़े कि इस चित्रणमें महाभारत का अंश कितना है और इतर कितना। विशेष रूपसे मूल पात्रके चरित्रके विषयमें यह बात स्पष्ट रहनी चाहिये।

सरल, कथात्मक और अन्तरंग शैलीमें लिखित इस पुस्तकमें पाठकीय विश्वासको जीत लेनेकी क्षमता है। लगताहै डॉ. 'सुमन' का सहचर कवि उनके आत्मा के आवेगको शब्दोंमें बांधकर भी बांध नहीं पाताहै। कुछ है कि उनमें एक प्रकारका असंतोष सा उछाल मारता रहताहै। यही कारण है कि इधर की कई पुस्तकोंमें मूल कथ्यकी प्रस्तुतिके बावजूद उन्होंने लगभग उतनी ही लम्बी उनकी भूमिकाएं भी लिखीहैं, जो पुस्तकके प्रतिपाद्यकी पूरक भूमिका निभातीहैं। इस पुस्तकमें भी मूल विषयके बयासी पृष्ठोंसे पूर्व चौवन पृष्ठीय भूमिकापरक निवेदन जुड़ा हुआहै। इस निवेदन में वे जहां "लिपि और महाभारत ग्रन्थ, महाभारत ग्रंथ और उसके अध्ययनकी परम्परा, धर्मका अवधारणाएं और महाभारत ग्रंथ, वेदव्यासकी मनीषा, यथार्थवादी महाभारत मानव-मनका चिड है, महाभारत ग्रंथका संदेश, महाभारतके पाठकोंकी शंकाएं तथा जिज्ञासाएं, महाभारतके संस्करणोंमें पाठ भेद", उपशीर्षकोंमें विभिन्न विषयोंका परिचय देतेहै, वहीं ४२ पृष्ठोंमें वैदिक काल और उसके बादके परिवार और समाजमें नर और नारियां उपशीर्षकसे लेकर धर्मशास्त्र, संस्कृति और आधुनिक परिदृश्यमें नारीके स्वरूप, आचरण, उसकी विवशताएं, और उससे उनकी अपेक्षाएं आदि अनेक बातोंपर उद्बोधक वक्तव्य भी देतेहैं। बहिनों और बेटियोंको सम्बोधित करते हुए वे उसे पश्चिमाभिमुख बननेसे रोकतेहैं। वे नारीको अबला नहीं, सबला देखना चाहतेहैं और पुरुषको नारी की अवमाननाके लिए वे प्रताड़ित भी करतेहैं। हमें लगताहै, ऐसे स्थलोंपर वे कुछ अतिरिक्त भावुक हो आतेहैं।

लेखकने पूर्वपीठिकाके रूपमें आरम्भिक अध्यायके ९ पृष्ठोंमें वैदिककालीन नारियोंका संक्षिप्त परिचय दियाहैं। दूसरे अध्यायमें महाभारतके नारी पात्रोंका अलग-अलग और सुविस्तृत चित्रण किया गयाहै। पुस्तकका मूल भाग यही है। किन्तु चूंकि महाभारतसे ये पात्र लिये गयेहैं और उनकी कथामें अनेक स्थानों तथा व्यक्तियों आदिके नाम आतेहैं, अत: बहुत-सी बातोंका चरित्र-निरूपणके अन्तर्गत ही व्याख्यान करते हुएभी लेखकने अतिरिक्त विषयोंका अलगसे परिचय देनाभी आवश्यक समझाहै। इसीलिए ३ से छठे शीर्षक के अन्तर्गत उतने क्रमश: महाभारतके स्थानोंका परिचय, उसकी कुछ विशिष्ट उद्धरणियोंकी प्रस्तुति, उसके पात्रोंके नामोंके समानार्थी शब्दों तथा अन्तत: कुछ विशिष्ट बातोंका परिचय भी दे दियाहै। अन्तमें व्यक्ति-नामानुक्रमणी, लेखकका संक्षिप्त जीवन-परिचय तथा उसके प्रकाशित साहित्यकी तालिका प्रस्तुत की गयीहै।

कुल मिलाकर यह पुस्तक ज्ञान-कोश भी हैं, नारी-आंदोलनमें सक्रिय भूमिका भी निबाहतीहै, महाभारत के नारी पात्रोंका सुविस्तृत परिचय भी देतीहैं, वैदिक नारीसे भी परिचित करातीहै और सबके ऊपर समग्रत: महाभारतका अंतरंग परिचय कराने और उसे समझने में सहायताभी प्रदान करतीहै। संक्षेपमें अधिकाधिक का लाभ देनेवाली इस पुस्तककी उपादेयता संदेहसे परे है। ▢

अर्थ निवेश

शेयर कारोबार[1]

लेखक : आर. अग्रवाल

परिचय : माधव पण्डित

किसीभी व्यवसायमें पूंजी लगानेका उद्देश्य कुछ लाभ कमाना होताहै। कुछ समय पहले तक पूंजी लगानेका क्षेत्र बहुत सीमित था क्योंकि देशमें उद्योगों का विकास, सरकारी मीतियों और प्रतिबंधोंके कारण, नहीं हो पा रहाथा। परन्तु नीति-परिवर्तन और प्रतिबंधोंमें ढीलके कारण उद्योगोंके विकास, उनके लिए पूंजी-निवेशकी बढ़ती मांग और मांगसे होनेवाले लाभों के कारण साधारण व्यक्तियोंका भी ध्यान इस ओर गयाहै। नये उद्योगोंकी पूंजीकी मांग होने तथा उद्योगोंके लाभमें भागीदार बननेकी लालसाने शेयरोंमें पूंजी लगानेको प्रोत्साहन दियाहै। थोड़ेही दिनोंमें यह भी व्यापक रूपसे लोगोंको समझमें आ गया कि शेयरों में पूंजी लगाकर देर तक उद्योगोंके उत्पादनसे होने वाले लाभकी प्रतीक्षाके अतिरिक्त स्वयं शेयरोंका लेन-देन, क्रय-विक्रय भी एक अच्छा व्यापार है। स्वभावत: इस ओर इसलिए साधारणजनका आकर्षण बढ़ा, क्योंकि इसमें लाभ कमानेका सहज मार्ग खुला रहता है। अब, स्थिति यह हो गयीहै कि इस व्यापारने कुछ अधिक ही लोगोंको अपनी ओर आकृष्ट कर लियाहै।

परन्तु, इस व्यापारका परिचय ही न हो तो और शेयरोंके व्यवसायके साधारण उतार-चढ़ावकी भी जानकारी न हो तो धनलाभके स्थानपर हानि भी हो सकती है। यद्यपि जानकारी समयापेक्षी होतीहै और व्यक्तिगत अनुभवभी इस व्यवसायमें सहायक होताहै, फिरभी इसकी सामान्य कार्यपद्धति, व्यावहारिक सिद्धान्त और नियमोंका परिचय आवश्यक होताहै। प्रस्तुत पुस्तक 'शेयर कारोबार' इस दृष्टिसे बहुत उपयोगी और सहायक है। सामान्य दृष्टिसे कहा जा सकता है कि पुस्तक इस व्यवसायके प्रचलित और व्यवहारिक सिद्धान्तों-नियमोंका परिचय प्रदान करतीहै, एवं व्यवसायसे सम्बद्ध अनेक समस्याओं, इससे उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों और जटिलताओंकी ओर भी ध्यान खींचते हुए उन्हें सुलझानेकी दिशाके सुझाव भी देती है। साथ ही इस व्यवसायमें प्रयुक्त होनेवाले विशिष्ट शब्दों और पारिभाषिक शब्दोंको भी सोदाहरण समझाया गयाहै। उदाहरणार्थ स्टॉक एक्सचेंज, शेयर, इक्विटी शेयर, बोनस शेयर, डिबेंचर, ऋण-पत्र आदि अनेक शब्दोंका अर्थ तो स्पष्ट किया ही गयाहै, साथही उनके व्यावहारिक पक्षपर भी प्रकाश डाला गया है।

शेयरमें पूंजी निवेशका मुख्य उद्देश्य क्योंकि अर्थ लाभ है, इसलिए शेयर-निवेशका उपयुक्त अवसर, शेयरोंकी लिवाली और बिकवालीकी कठिनाइयों, शेयरोंके बाजार भाव ज्ञात करनेकी विधियां, इनकी खरीद-बिक्रीके समय आदि पर ध्यान रखनेके सम्बन्ध में भी विवरण दिये गयेहैं। क्योंकि शेयरोंकी लिवाली और बिकवाली स्टाक एक्सचेंजसे जुड़े रहतेहैं, उनकी भी चर्चा की गयीहै। म्युचुअल फण्डोंके संबंधमें भी जानकारी प्रस्तुतकी गयीहै।

पूंजी निवेश करनेवालोंकी सहायताके लिए प्रमुख औद्योगिक घरानों और उनकी कम्पनियों, आने वाले नये इश्युओं, चक्रवृद्धि ब्याजकी तालिका, लाभप्रद संभावित शेयर, संभावित जोखिम भरे शेयर, प्रमुख फेरा कम्पनियों और उनके वित्तीय लेखे-जोखे आदिके विवरण दिये ही गये हैं साथ ही पिछले दिनों जारी हुए १६० इश्युओंमें किये गये निवेशपर लाभ हानिका संक्षिप्त विवरण भी दिया गयाहै जिससे शेयरोंकी आर्थिक स्थितिका विश्लेषण करनेमें निवेशकर्ताको सहायता मिलतीहै।

पुस्तकके सम्बन्धमें उल्लेखनीय बात यह है कि हिन्दीमें इस प्रकारकी पुस्तक पहली बार देखनेको मिलीहै जबकि हिन्दीमें इस वाङ्मय की बहुत आवश्यकता है। इस क्षेत्रसे जुड़े अनेक प्रसंगों और समस्याओं एवं उनके संबंधमें विस्तृत जानकारीकी अपेक्षा होतीहै। यदि लेखक और प्रकाशक दूसरे क्षेत्रोंके विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर सकें तो पाठकोंको बहुत लाभ होगा। ☐

---

[1] ; प्रका. : विनोद पुस्तक मन्दिर, डॉ. रांगेय राघव मार्ग, आगरा। पृष्ठ : १८९; डिमा. ९२ (तृतीय संस्करण); मूल्य : ३०.०० रु. (पेपरबैक)।

लेखक : समीक्षक

☐ डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित, 'कलापी', १६२/५ बी-१ सी, डी. पी रोड, औंध, पुणे (महाराष्ट्र)-४११००७.

☐ डॉ. ओंकारनाथ कौल, आचार्य एवं अध्यक्ष भारतीय भाषाएं, लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उ. प्र.)-२४८१७९.

☐ श्री कलानाथ शास्त्री, निदेशक : भाषाविभाग राजस्थान, सी-९७, अहिंसा सर्किल, सुभाष मार्ग, सी.स्कीम, जयपुर (राजस्थान).

☐ पं. श्री काशीराम शर्मा, २२२ गांधीनगर, चुरू-३३१००१.

☐ डॉ कृष्णचन्द्र गुप्त, १८६/१२, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर,-२५१००१.

☐ डॉ. केदार मिश्र, हिन्दी विभाग, पोद्दार कालेज, नवलगढ़-३३३०४२.

☐ ढॉ. प्रयाग जोशी, बी-३/१३, जेल गार्डेन रोड. रायबरेली-२२९००१.

☐ डॉ. प्रशान्त वेदालंकार, ७/२, रूपनगर, दिल्ली-११०००७.

☐ डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय, १०५ अग्रसेन बाजार, कोटा-३२४००६.

☐ डॉ. भानुदेव शुक्ल, ११ लवकुश अपार्टमैंट्स, ईदगाह हिल्स, भोपाल-४६२००१.

☐ डॉ. मान्धाता राय, नयी बस्ती, सकलेनाबाद, गाजीपुर-२३३००१.

☐ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, जी/२१; मेकरगार्डन लिडो जुहू, सान्ताक्रुज (प.), मुम्बई-४०००४९.

☐ श्री बिराज. २७-ए, राजपुर रोड, दिल्ली-११००५४.

☐ डॉ वेदप्रकाश अभिताभ, १४/५, द्वारिकापुरी, अलीगढ़-२०२००१.

'प्रकर' विज्ञापन-शुल्क

पूरा पृष्ठ (१५ × २० से. मी.)	१०००-०० रु.	आधा पृष्ठ	५५०.०० रु.
चौथाई पृष्ठ	३००-०० रु.	अन्तिम आवरण पृष्ठ	२०००.०० रु.

[वर्ष भरके लिए न्यूनतम तीन पृष्ठ अथवा अधिक के अनुबन्धपर १५ प्रतिशतकी छूट]

महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयोंके लिए 'प्रकर' का वार्षिक शुल्क

☐ **प्रस्तुत अंक** ७.०० रु.

☐ **वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) :** संस्था : ७५.०० रु.; व्यक्ति : ६५.०० रु.

☐ **आजीवन सदस्यता :** संस्था : ७५१.०० रु.; व्यक्ति : ५०१.०० रु.

☐ **विदेशोंमें समुद्री डाकसे** एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें २००.०० रु

विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए)—**एक** वर्षके लिए : ४८०.०० रु.

☐ दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि **'प्रकर'** के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' : जून'९३ : पंजीकरण संख्या १७५८२/६९ : डाक पंजीकरण संख्या : डीएल : १९००९/९३

आगामी अंक

भारतीय काव्य मीमांसा

कन्नड़के प्रख्यात विद्वान् एवं काव्यशास्त्रके **आचार्य तीर्थपुर नजुंडय्या श्रीकण्ठय्याके** ग्रन्थ 'भारतीय काव्य मीमांसा' में भारतीय काव्यशास्त्रके विभिन्न सम्प्रदायोंकी मान्यताओंकी समीक्षा की गयीहै। ग्रन्थके प्रथम भागमें संस्कृतकी आचार्य-परम्पराका कालक्रमसे निरूपण हैं, दूसरे भागमें काव्यके स्वरूप, प्रयोजन आदिकी चर्चा है तथा तीसरे भागमे ध्वनि और इसके भेदोपभेदोंका सोदाहरण विवेचन। ग्रन्थ विवेचनात्मक और व्याख्यापरक होते हुएभी मात्र परिचयात्मक नहीं है। वे परम्परागत मान्यताओंको तर्ककी कसौटीपर कसकर ही स्वीकार करतेहैं। हिन्दी अनुवादक है : **भालचन्द्र जयशेट्टी** और समीक्षक हैं : **तेजपाल चौधरी**।

अज्ञातवास

उपन्यासकर **श्रीलाल शुक्ल** हिन्दी पाठकोंमें समादृत हैं। उनका प्रस्तुत उपन्यासभी उनकी कथा शैली, रचनाशीलता और जीवन्तताका अच्छा उदाहरण है। प्रत्येक पात्रका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है और जीवन के भिन्न-भिन्न आयामोंका प्रतिनिधित्व करताहै। पूरा उपन्यास उच्च वर्गके शोषण, पाखण्ड, खोखलेपनको तो व्यक्त करताही है, अपराध वोध, प्रायश्चित और परिमार्जनकी ओरभी संकेत करताहै। इसमें मनुष्यकी अपने अन्तर्मनको टटोलनेकी कहानी प्रतीकात्मक रूपसे कही गयी है। समीक्षक है : **डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त**।

छिन्नमस्ता

प्रस्तुत उपन्यासकी लेखिका **प्रभा खेतान** कवयित्री रूपमें भी हिन्दी जगत्में स्थान बना चुकीहै। दर्शनकी छात्रा होनेके साथ, सार्त्रके अस्तित्ववादपर चिन्तन ग्रन्थ तथा सीमोन बुवा की कृति 'द सेकेण्ड सेक्स' का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत कर चुकीहैं। इस सुपठित, चिन्तनशील प्रवृत्तिकी लेखिकाके उपन्यासकी विषयवस्तु और शैलीको समझनेके लिए यह पृष्ठभूमि सहायक है। उपन्यास आधुनिक पूंजीपति मारवाड़ी समाजके वातावरणमें पूर्ण पारिवारिक पृष्ठभूमिमें एक शिक्षित नारीके विद्रोहका सम्यक् चित्र है। समीक्षक हैं : **सन्हैयालाल ओझा**।

आकाशगंगा

कवि **कन्हैयालाल सेठिया** अन्तर्दृष्टि सम्पन्न मनीषी हैं जिनमें अन्तर्दृष्टिको शब्दायित करनेके लिए लयात्मक संगीत एवं अर्थ-गांभीर्यका संगम मिलताहै। कृतिकी आध्यात्मिक अनुभूतिसे भीगा और उच्छ्वासकी भांति निःसृत लघुकाय कविताएं एक साथ प्राणोंको स्पन्दित, मनको आह्लादित और आत्माको विद्ध करतीहैं। इनमें एक प्रकृत काव्यात्मक वेग है, शब्दावली सरल-तरल है। समीक्षक हैं : **डॉ. नेमनारायण जोशी**।

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी.
चमेलिया रोड, दिल्ली-६
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७. दूरभाष : ७११३७६३.

प्रकर

भाद्रपद : २०५० [विक्रमाब्द] :: अगस्त : १९९३ [ईस्वी]

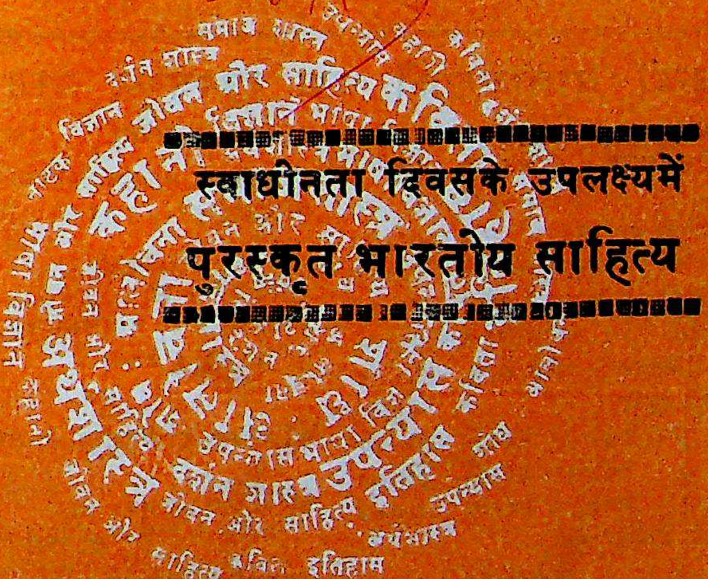
समाज शास्त्र
दर्शन शास्त्र
विज्ञान
जीवन और साहित्य
कविता
कहानी
उपन्यास
इतिहास
अर्थशास्त्र
आलोचना
नाटक

स्वाधीनता दिवसके उपलक्ष्यमें

पुरस्कृत भारतीय साहित्य

With Best Compliments From

A WELL WISHER

स्वाधीनता दिवसकी मंगलकामनाएँ

श्रमित फोटो सर्विस
शारदा चेम्बर १, प्लाट नं० —ए,
दुकान नं० जी-८, प्रशान्त विहार
टैक्सी स्टैण्ड के सामने
दिल्ली—११००८५

हिन्दी आलोचनाकी कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

कुछ और गद्य रचनाएं	शमशेर बहादुर	१२५.००
नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र	मुक्तिबोध	९५.००
निराला	रामविलास शर्मा	१२५.००
आधुनिकता और हिन्दी आलोचना	इन्द्रनाथ मदान	९५.००
प्रेमचन्द : एक विवेचन	इन्द्रनाथ मदान	४०.००
साहित्य और संस्कृति	मोहन राकेश	६५.००
काव्यात्मकता का दिक्काल	नरेश मेहता	५०.००
साहित्य-विधाओं की प्रकृति	देवीशंकर अवस्थी	९५.००
विवेक के रंग	देवीशंकर अवस्थी	९५.००
लोकवादी तुलसीदास	विश्वनाथ त्रिपाठी	८०.००
हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी	निर्मला जैन	७०.००
निराला और मुक्तिबोध : चार लम्बी कविताएं	नन्दकिशोर नवल	९५.००
रंगदर्शन	नेमिचन्द्र जैन	१००.००
कथा-समय	विजयमोहन सिंह	९५.००
कविता का जनपद	सं. अशोक वाजपेयी	१७५.००
मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह	१२५.००
कालयात्री है कविता	प्रभाकर श्रोत्रिय	१२५.००
सृजनशीलता का संकट	नित्यानन्द तिवारी	८५.००
मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका	डॉ रोहिताश्व	१७५ ००
प्रसाद का काव्य	प्रेमशंकर	१९५ ००
भक्ति काव्य का समाजशास्त्र	प्रेमशंकर	७५.००
सूर की सौंदर्य चेतना	एस. टी. नरसिंहाचारी	१९५.००
नई कविता का वैचारिक आधार	सुधीश पचौरी	७५.००
नई कविता की मुक्त धारा	सं. विद्यानिवास मिश्र	५५.००
समकालीन हिन्दी रचना मुद्रा	पुष्पपाल सिंह	७०.००
आद्यबिम्ब और नई कविता	कृष्ण मुरारी मिश्र	९०.००
हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	५०.००
हिन्दी नाटक	बच्चन सिंह	८५.००

राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
२/३८, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२.

प्रकर [पुरस्कृत भारतीय साहित्य : विशेषांक]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २५ अंक : ८ भाद्रपद : २०५० [विक्रमाब्द] अगस्त : १९९३ [ईस्वी]

समीक्षा-लेख

म्पादकीय

(१) स्वाधीनता-दिवस : राजनीतिक आश्वासन दिवस	३	वि. सा. विद्यालंकार
(२) भारतीय साहित्यमें अन्तःस्फूर्ति : प्रत्यावर्त्तनके संकेत	५	

ाधुनिक विशिष्ट कवि

डॉ. नरेश मेहता : सृजनात्मक वैष्णवता	९	श्री प्रमोद त्रिवेदी

पन्यास

ढाई घर (हिन्दी)—गिरिराज किशोर	१३	श्री घनश्याम शलभ
नीला चांद (हिन्दी)—शिवप्रसाद सिंह	१८	डॉ. सत्यपाल चुघ
कुट्राल कुरिंजि (तमिल)—कोवि. मणिशेखरन्	२६	डॉ एम. शेषन्
हृदयनेत्री (तेलुगु)—श्रीमती मालती चन्दूर	३३	डॉ. भीमसेन निर्मल
थरोशङ्बी (मणिपुरी)—अरिबम चित्रेश्वर शर्मा	३६	डॉ. इबोहलसिंह काङ्जम एवं देवराज
झाडाझडती (मराठी)—विश्वास पाटिल	४२	डॉ. गजानन चह्वाण

हानी

बिचित्रवर्णा (उड़िया)—रवि पट्टनायक	४८	(१) डॉ. शंकरलाल पुरोहित (२) डॉ. सुधांशुकुमार नायक
कुझ अणकिहा वी (पंजाबी)—प्रेमप्रकाश	५३	प्रो. फूलचंद मानव

व्य

शइचर पथार मानुह (असमी)—हीरेन भट्टाचार्य	५८	डॉ. भूपेन्द्र राय चौधुरी
श्रीराधा (उड़िया)—रमाकान्त रथ	६३	डॉ. वनमाली दास
वकुलद हूऊगळू (कन्नड़)—सुब्बण्ण रंगनाथ यक्कुडी	६६	डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ
वंशकुळांचे देणें (कोंकणी)—नागेश करमली	६९	डॉ. चन्द्रलेखा डि'सोजा
भीष्मचरितम् (संस्कृत)—डॉ. हरिनारायण दीक्षित	७३	अभिराज राजेन्द्र मिश्र
यह समय मामूली नहीं (हिन्दी)—नन्द चतुर्वेदी	७६	डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

मण-वृत्त : निबन्ध

वेवोनी घाटी (गुजराती)—भोलाभाई पटेल	८१	डॉ. पारूकान्त देसाई
इन्द्रधनुष (नेपाली)—आर. पी. लामा	८६	डॉ. चन्द्रेश्वर दुबे

रिशिष्ट

कृति-कृतिकार-समीक्षक परिचय	८९	— —

किताबघर की कुछ पुरस्कृत पुस्तकें

पर्यावरण वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत

प्रदूषण : पृथ्वी का ग्रहण/प्रेमानन्द चन्दोला	60-00

भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता द्वारा पुरस्कृत

अग्नि-सागर/श्याम सिंह शशि	50-00
इतना कुछ/गंगाप्रसाद विमल	50-00
एक सूरज और/गुरमुखसिंह 'जीत'	60·00

उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत

जहाँ मैं खड़ा हूँ/रामदरश मिश्र	40·00
भारत के रत्न, भाग-I, II/चन्द्रपाल सिंह 'मयंक'	14·00
हम अपना कर्त्तव्य करेंगे/चन्द्रपाल सिंह 'मयंक'	12-00
एकता का महत्त्व/चन्द्रपाल सिंह 'मयंक'	10·00
चारुचित्रा/कैलाश कल्पित	75·00
दावानल/बालशौरि रेड्डी	40-00

भारत सरकार, दिल्ली प्रशासन द्वारा पुरस्कृत

स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास/मसूद अहमद खाँ	60-00

साहित्य कला परिषद्, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत

नदी और रेत/सुदर्शन वशिष्ठ	20·00

भाषा एवं संस्कृति निदेशालय, हि० प्र० द्वारा पुरस्कृत

माटी मेरे गाँव की/मनोहरलाल	40·00

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल से पुरस्कृत

सरोकार/आशारानी व्होरा	60-00

हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत

रोशनी की पगडंडियाँ/रामदरश मिश्र	70-00
सफर हमसफर/प्रदीप पंत	प्रेस में
अन्ततः/सुरेन्द्र तिवारी	100·00
भारतरत्न पं० गोविन्दवल्लभ पंत/हिमांशु जोशी	50-00
तपस्या तथा अन्य कहानियाँ/हिमांशु जोशी	80·00
प्रदूषण : पृथ्वी का ग्रहण/प्रेमानन्द चन्दोला	60-00
'प' से पगड़ी/बरसानेलाल चतुर्वेदी	40·00
पर्यावरण और जीव/प्रेमानन्द चन्दोला	100-00
शेर का नटखट बच्चा/रामेश बेदी	15-00
पढ़ो, गुनगुनाओ/विश्वनाथ गुप्त	15-00
चिह्लार/मैत्रेयी पुष्पा	60-00

दूसरा पाठ/क्षमा शर्मा	25·00

महाराष्ट्र (मुम्बई) शासन द्वारा पुरस्कृत

सी यू अगेन/शांतिलाल भंडारी	100-00

मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा पुरस्कृत

एक वासन्ती रात/मनमोहन मदारिया	40.00
गुदड़ी का लाल/मनमोहन मदारिया	20·00
आँखमिचौनी/मनमोहन मदारिया	20-00
त्याग की रायल्टी/कृष्णकिशोर श्रीवास्तव	30-00

विज्ञान परिषद्, प्रयाग तथा म० प्र० द्वारा पुरस्कृत

दुनिया की दुनिया/मनमोहन मदारिया	25-00

यूनेस्को द्वारा पुरस्कृत

सारा जहाँ हमारा/शकर बाम	20.00

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत

आग के अक्षर/सारस्वत मोहन मनीषी	35-00

उत्तरप्रदेश बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित

संसार की बाल विभूतियाँ/शंकर बाम	15-00

म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित

अँधेरा टूटता हुआ/ओमप्रकाश मेहरा	50-00
तलाश जारी है/ओमप्रकाश मेहरा	30-00

बिहार राजभाषा द्वारा पुरस्कृत

जड़ी-बूटियाँ और मानव/रामेश बेदी	125-00
तीन तारे/हिमांशु जोशी	18-00
धरती मेरी माँ/बालशौरि रेड्डी	50-00

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत

ओलिम्पिक/अजय भल्ला	125-00
तीन पीढ़ी/मेक्सिम गोर्की	90-00

अखिल भारतीय वानिकी साहित्य से पुरस्कृत

जंगल की दुनिया/रामेश बेदी	75·00

भारत सरकार द्वारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित

बाल-पत्रकारिता : स्वर्ण युग की ओर जयप्रकाश भारती	60-00
अदृश्य हाथों का जादू/कृ० शि० मेहता	50-00

किताबघर

24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

फोन : 3271844, 3281244, 2213206

स्वर : विसंवादी

'स्वाधीनता दिवस' : राजनीतिक आश्वासन-दिवस

देशको स्वाधीन हुए छियालीस वर्ष पूरे हो गयेहैं । वैधानिक स्तरपर ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ, पर ब्रिटिश-दीक्षा और स्वयं ब्रिटेन द्वारा प्रवर्तित और संबर्द्धित प्रशासनतंत्र और ब्रिटेनके ही अंधानुकरणी भारतीय राजनीतिज्ञोंने ब्रिटिश शासनके मूल रूप, नीतियों, बौद्धिक-वैचारिक पृष्ठभूमि, कार्यप्रणाली और राजनीतिक चातुर्यको यथास्थिति बनाये रखनेकी पूरी सावधानी बरती । ब्रिटिश कालमें सम्राट्के नाम पर ब्रिटिश हितोंके लिए प्रशासनिक व्यवस्था चलती थी, अब लोकतंत्र-समाजवाद और धर्मनिरपेक्षताके नाम पर लोकतन्त्र-विरोधी प्रत्येक अलोकतन्त्रीय व्यवहार-भ्रष्टाचार-तस्करी-हिसा-आतंकको अन्तर्निविष्टकर, विश्वव्यापी बहुराष्ट्रीय पूंजी-निवेशके आवरणमें समाजवादको अपदस्थ कर पश्चिमी पूंजीवादकी पुनः स्थापना द्वारा, और राजनीति और अर्थव्यवस्थाको भ्रष्टाचार-तस्करीसे आपादमस्तक लथपथ करनेवाले 'धर्मनिरपेक्ष' राजनीतिज्ञ पूरी सामाजिक संरचनाको नैतिकता प्रदान करनेवाले 'धर्म' तत्त्वसे इतने भयभीत हो उठेहैं कि उन्होंने धर्मकी परिभाषा और रूपही बदल दिये । विभिन्न धर्मोंके समूहोंके लिए प्रयुक्त होनेवाले समान और संयुक्त 'हिन्दू' नामको 'धर्म' का पर्याय बना दियाहै । इस देशपर पश्चिमी एशियासे आक्रमण करनेवाली शक्तियोंने 'हिन्दू' शब्दका प्रयोग किसी धर्म विशेषके लिए न कर भिन्न-भिन्न धर्मोंके पूरे समूहोंके लिए कियाथा । सत्य यह है क्योंकि उन इस्लामी आक्रमणकारियोंके लिए ये सभी और भिन्न-भिन्न धार्मिक समुदाय काफिर थे, इसलिए उन्होंने अपनी मंज़हबी मान्यताके अनुसार इन सभी धार्मिक समुदायोंको एक नाम 'हिन्दू' दियाथा, जिस नामको अब सभी विभिन्न समुदायोंके समूहोंने एक पूरे समाज के रूपमें स्वीकार कर लिया । इन विभिन्न धार्मिक समुदायोंने न तो अपनी धार्मिक विशिष्टताको छोड़ा, न धर्म परिवर्तन किया, अपितु सभीको एक समाजके रूपमें स्वीकार कर लिया जिसे आधुनिक परिभाषाके अनुसार राष्ट्र कहा जाना चाहिये । जिन लोगोंको 'हिन्दू' राष्ट्र शब्दसे चिढ़ है, वे अधिकसे इसे हिन्दू-समाज तो कह सकतेहैं, हिन्दू 'धर्म' नहीं । वस्तुतः राजनीतिक प्रयोजन सिद्धिके लिए, धर्म, समाज और राष्ट्र को कलंकित करनेके लिए यह स्थिति उत्पन्न की गयी है, जोकि उनकी राजनीतिक विवशता है, क्योंकि इन राजनीतिज्ञोंका विश्वास है देशके विभिन्न धर्मोंके बाह्याचारों, कर्मकाण्डों और उनकी विकृतियोंके आधार पर ही अपने 'भ्रष्टाचारकी रक्षाका आवरण' तैयार कर सकतेहैं, जिससे भ्रष्टाचार-धर्मका संघर्ष रोकाजा सके । हमें प्रतीत होता है यह आवरण 'आकाशकुसुम' सिद्ध होगा ।

यह प्रसंग स्वाधीनता-दिवसके अवसरपर लाल-किलेकी प्राचीरसे दिये प्रधानमन्त्रीके भाषण और संसद में प्रस्तुत धर्मको राजनीतिसे पृथक् करनेके विधेयकोंके कारण उठाहै और सामयिक इसलिए हैं ये विधेयक केवल एकदलीय हितोंको ध्यानमें रखते हुए, सत्तापर 'शाश्वत' अधिकार जमाये रखनेकी आकांक्षासे प्रस्तुत किये गयेहैं, अन्यथा धर्म और राजनीति सदा एक दूसरे के पूरक रहेहैं और एक-दूसरेके अतिचारपर अंकुश रखतेहैं । इसकी पृष्ठभूमिमें वे भ्रामक परिभाषाएं और युगोंकी पराधीनताके कारण निर्मित वे असंतुलित और भ्रान्त चिन्तन हैं जिनमें 'आक्रमण' की स्थितिको समाप्त करनेके प्रयत्नोंको साम्प्रदायिकताके नामपर और वंशपरम्परासे आक्रमणकारियोंका सदा सहयोग करने, अपना सर्वस्व अर्पित करने और अपनेही देशवासियों और देशकी स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष करने वालोंके विरुद्ध खड्गहस्त होकर उनके ढेर शीषोंका आक्रमणकारियोंके पदोंमें समर्पित करने जैसे घृणित कार्य अतीतके इतिहासान्धकारमें लुप्त हो जायें ।

'प्रकर'—भाद्रपद'२०५०.

राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

(विश्वविद्यालय स्तरीय श्रेष्ठ प्रकाशन)

१. दुग्ध रसायन शास्त्र	प्रो. वीर बहादुर सिंह	६२.००
२. हिन्दी शिक्षण	श्री पुरुषोत्तमलाल तिवारी	५३.००
३. शिक्षा एवं भारतीय समाज	श्री गणपतिराय शर्मा, श्री हरिश्चन्द्र व्यास	७५.००
४. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम	श्री भगवान श्रीवास्तव	५६.००
५. इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र का भूगोल	डा. रामकुमार गुर्जर	६३.००
६. दर्शन का परिचय	डा. आर. एस. भटनागर	२७.००
७. पशु पोषण में कृषि एवं उद्योग के उपोत्पाद	डा. के. के. सिहल, डा. बी. डी. मुद्गल	७५.००
८. मुद्रा एवं बैंकिग (मौद्रिक अर्थशास्त्र) (तृतीय संस्करण)	डा. टी. एन. चतुर्वेदी	५२.००
९. मध्यकालीन भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं (तृ. सं.)	घनश्यामदत्त शर्मा	४०.००
१०. गणित शिक्षण (तृतीय संस्करण)	एस. एल. जैन	५६.००
११. भारतीय दार्शनिक समस्याएं (तृ. सं.)	डा. नन्दकिशोर शर्मा	१८.००
१२. जलवायु विज्ञान के मूल तत्व (तृ. सं.)	डा. अनिलकुमार तिवारी	५८.००
१३. भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र (चतुर्थ सं.)	सत्यपाल रुहेला	३०.००
१४. राजस्थान मे राजनैतिक जनजागरण (द्वितीय संस्करण)	डा. के. एस. सक्सेना	२०.००
१५. किशोर मनोविज्ञान (द्वि. सं.)	उषा भार्गव	५२.००
१६. नागरिक शास्त्र शिक्षण (तृ. सं.)	डा. हेतसिंह बघेला, हरिश्चन्द्र व्यास	४१.००
१७. ज्ञान मीमांसा (द्वितीय संस्करण)	प्रो. दयाकृष्ण	१५.००
१८, स्वास्थ्य विज्ञान (पंचम संस्करण)	डा. सत्यदेव आर्य	३७.००
१९. पाश्चात्य दर्शन का इतिहास भाग-१ (तृ. सं.)	सम्पा. प्रो. दयाकृष्ण	६०.००
२०. तुलनात्मक लोक प्रशासन (च. सं.)	डा. रमेशकुमार अरोड़ा	२६.००

स्तरीय प्रकाशन, आकर्षक कमीशन एवं शीघ्र डिलीवरी। सूचीपत्र के लिए लिखें

सम्पर्क सूत्र
निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४

दूरभाष—४६२१०

सम्भवत: इसी मनोवृत्तिका परिणाम है कि गत छियालीस वर्षोंसे देशके स्वाधीनता-दिवसके अवसरोंपर स्वतन्त्र भारतकी स कार और प्रशासनको कभी यह विचार नहीं आया कि गत हजारों वर्षोंसे अपनी अस्मिताके लिए छटपटाते देशका सामूहिक मन इस दिवसको उल्लास-हर्षके साथ सामूहिक पर्वके रूपमें मनानेके लिए आकुल है। प्रशासन तो अपने ब्रिटिशकाल के अभ्यासके कारण इसे पर्वका रूप प्रदान करना ही नहीं चाहता, इसके विपरीत उस इस पर्वको 'शोक-दिवस' में परिवर्तितकर दियाहै और प्रधानमन्त्री लालकिलेकी प्राचीरसे आश्वासनपर आश्वासन देकर ही शोक-दिवसको गरिमा प्रदान करतेहैं। ☐

भारतीय साहित्यमें अन्त:स्फूर्तिके समान स्रोत : वैदेशिक चिन्तनसे प्रत्यावर्तनके संकेत

पिछले कुछ दिनों भारतीय साहित्यकी अन्त:स्फूर्ति की चर्चा हमने कीथी। इसका कारण यह था कि देशके विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओंके साहित्यसे सम्पर्क करनेपर हमें कुछ ऐभा आभास हुआ कि यूरोपीय चिन्तन ओर मार्क्सवादी प्रतिबद्धताने पूरे साहित्य की जो वैचारिक घेरावन्दी कीथी, उससे भारतीय साहित्यका रूप मात्र अनुकरणी और पुनरावृत्तिपरक हो गयाहै। यह रचनाकारकी अनुभूतिपरकता एवं संवेदनात्मकता और सृजनशीलताकी क्षमताके क्षीण होनेका संकेत था। सृजनशीलताकी क्षीणता देशके स्वाधीम होनेके साद तीव्र गतिसे बढ़ी और यह आशंका होने लगीथी कि सम्भवत: जिस अनुकरणी वृत्तिके प्रभावमें ईस्वी सन्‌को हमने अपनायाहै, उसीकी बीसवीं शतीके पूरे होनेके साथ भारतीय साहित्यकी मौलिक सृजनशीलता लुप्त होकर अनुकरणकी प्रवृत्ति ही सम्पूर्णता प्राप्त कर लेगी। हम केवल चर्वित-चर्वणके पाठक होंगे।

अनुकरणका एक रूप तो साहित्यके शास्त्रीय विवेचनमें प्रबल रूपसे उभरा। भारतीय साहित्यकी परम्परा और प्रकृतिपर ध्यान दिये बिना विवेचन क्षेत्र में नूतन मानदण्डोंकी प्रस्तुति हुई, उन्हींके आधारपर साहित्यकी स्तरीयता और उत्कृष्टता, पाठक और साहित्यके पारस्परिक तादात्म्यको भी विभिन्न रूपोंमें जांचा-परखा गया, पाठकीय सहृदयता ओर रसज्ञताकी सापेक्षताभी कसौटी बनी, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाके नये क्षेत्र भी विवेचनके रूपमें प्रस्तुत हुए। साहित्य-विवेचनकी पूर्ण अनूदित कृतियोंके माध्यमसे इन विवेचनोंको भारतीय साहित्यपर घटित कर साहित्यकी स्तरीयता यान्त्रिक पद्धतिपर निर्धारित करनेकी प्रक्रिया अवतरित हुई। विवेचनकी ये भिन्न मानसिकताओं, भिन्न पृष्ठभूमियों, भिन्न वातावरणों और भिन्न शैलियोंसे विभ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस विभ्रमको राजनीतिक चेतना (संलग्नता अथवा निष्ठा कहना अधिक उपयुक्त होगा) और प्रतिबद्धताके अन्य घटकोंने और अधिक गहरा दिया। इसे हम इस रूपमें भी प्रस्तुत कर सकतेहैं कि बिवेचन-पद्धतिका रूप वस्तु-सापेक्ष न होकर राजनीति-सापेक्ष हो गया, एवं रचनाओं-कृतियोंकी श्रेष्ठता, स्तरीयता और वरीयताका आधार बन गया। इन विवेचनात्मक और समीक्षात्मक आधार-परिवर्तनों तथा इन परिवर्तनोंको भौतिक पुरस्कारोंसे समादृत करने और उन्हें राजनीतिक प्रश्रय प्रदान करनेका परिणाम यह हुआ कि भारतीय साहित्यकी जिन कालजयी कृतियोंका दिन-प्रति-दिन परिवारोंमें पारायण होताथा, जो कृतियां समग्र रूपसे विशाल जन-समुदायको कण्ठस्थ थीं और जिह्वाग्र थीं, वे ग्रन्थ और कृतियां अब अश्मीभूत स्मारकोंके रूपमें संग्रहालयों-पुस्तकालयोंमें

क्रिस्टल क्रेडिट्स कार्पोरेशन लि०

अनुषंगी प्रतिष्ठान (१) क्रिस्टल क्रेडिट्स (इण्डिया) लि.

(२) क्रिस्टल क्रेडिट्स एण्ड हाउसिंग डेवलपमेंट लि.

प्रमुख जमा योजनाओं के माध्यम से कम समय में अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं

मुख्य जमा योजनाएं

* क्रिस्टल कैश सर्टिफिकेट—	५४ माह में धन दुगना
* मासिक पेंशन योजना—	१४ प्रतिशत ब्याज
* आवर्ती जमा योजना—	१३.३ प्रतिशत ब्याज
* अन्य सावधि योजनाओं में—	१३.५ प्रतिशत ब्याज

कार्पोरेशन द्वारा चालू वर्तमान

औद्योगिक परियोजनाएं

(१) राईआगर पिथौरागढ़ में सोपस्टोन प्रोजेक्ट

(२) भीमताल में बागिकी एवम् आवास विकास योजना

(३) पारसाखेड़ा बरेली में लैदर फैक्ट्री प्रोजेक्ट-प्रोमोशन

(४) लालकुआं में वानिकी प्रोजेक्ट

(५) मिर्जापुर में आवास-विकास व वानिकी प्रोजेक्ट

(६) मीडिया व इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग में प्रवेश

अन्य योजनाएं

(१) उच्च शिक्षा जमा योजना

(२) लघु बचत एवं दैनिक जमा योजना

(३) आजीवन पेंशन योजना

(४) मनी बैंक योजना

पंजीकृत कार्या.
B-B-5, G. K. II
New Delhi-48
6887884, 675497

केन्द्रीय नियन्त्रण कार्या.
८९-१६ D-ब्लाक
राजाजीपुरम लखनऊ
259747

प्रधान कार्या.
१४८ सिविल ला०
गगनद्वीप कामलैक्स
बरेली
74262, 78878

मुख्य अधि. कार्या.
तल्लीताल/नैनीताल
फोन-2352

स्थान पाने लगीहैं !

वस्तुत: आधुनिकता और आधुनिकताकी प्रतिबद्धता, प्रगतिवाद और उसकी प्रतिबद्धताने भारतीय साहित्यको 'दलित' बना दियाहै । इसे 'दलित-साहित्य' भी नहीं रहने दिया क्योंकि दलित-साहित्यके रचनाकारों को अमरीकी सत्ताने अमरीका यात्रा और अनुदानों-पुरस्कारोंसे सम्मानित किया । उन्होंने तो भारतीय साहित्यको अतीतके नाथ 'सती' होनेका गौरवपद प्रदान कर उसकी राख और अस्थियोंको भी संग्रहालयों और पुस्तकालयोंमें स्मारक रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया है। आज भारत-सरकार (इसमें हम सभी सम्मिलित हैं) ने इस स्थितिको राष्ट्रीय स्थितिका पद प्रदान कर शिक्षण और भाषा-विकासके क्षेत्रोंसे राष्ट्र-बहिष्कृत कर दिया । यह बात दूसरी है कि मात्र आधुनिक और प्रगतिवादी साहित्यको सम्मानित और पुरस्कृत किया जाताहै क्योंकि 'आधुनिकता और प्रगतिवाद' की वर्तमान राष्ट्रीय नीतिको प्रतिष्ठित करनेमें इससे सहायता मिलती है ।

ऐसी स्थितिमें यदि श्री नरेश मेहता प्रशासनेतर पुरस्कारसे सम्मानित होतेहै और उनकी तथाकथित मध्ययुगीन सृजनशीलताको मान्यता प्रदान होते देखतेहैं तो ऐसा प्रतीत होताहै कि भारतीय साहित्यकी मूलवृत्तिके प्रत्यावर्तनके नये युगका उदय हो रहाहै, जिसे डॉ. नरेश मेहताका परिचय प्रस्तुत करते हुए डॉ. प्रमोद त्रिवेदीने इसी अंक (पृष्ठ ६ से १२) मे 'नरेश मेहताकी सृजनात्मक वैष्णवता एवं वैदिक-औपनिषदिक चेतना' का नाम दियाहै और उसे 'डरे हुए आदमी के बयान' के स्थानपर "निर्भय व्यक्तिका सृजन, समाज को व्यवस्थाके घोर आतंकसे निर्भय करनेवाला और इस क्रूर व्यवस्थाके सामानान्तर एक नयी व्यवस्थाको मूर्त करनेवाला सृजन" कहाहै । यहींपर डॉ. त्रिवेदीने श्री मेहताकी 'इतिहास और प्रार्थना' कविताका वह अंश भी उद्धृत कियाहै जिसमें भारतीय चेतना और साहित्यसे संबद्ध अनासक्ति, निर्भयता, अनुत्तरवृत्ति और प्रार्थनाके माध्यमसे आधुनिकतावादियों और प्रगतिवादियोंका एक सशक्त उत्तर दियाहै । डॉ. त्रिवेदीने समीक्षात्मक स्पष्टीकरण भी प्रदान कियाहै कि "वस्तुत: अपनेको नाना रूपोंमें देखने और इस विराट्के नाना रूपोंमें अपने 'स्व' से साक्षात्कार करने और उसे व्यक्त करनेकी भूमिही औपनिषदिक चेतना है । यह सब… सर्जनात्मक भूमिपर अनुभव और घटित करना होता है।" यदि इस पूरे समीक्षात्मक विवरणसे हम इस निष्कर्षपर पहुंचे कि निर्भय, अनासक्त और सृजनशील प्रखर वाणी कालबद्ध, राजनीतिबद्ध, संकीर्ण विस्तारवादबद्ध, आवरणबद्ध चेतनावरोधी प्रचारको व्यर्थ बना देतीहै । अनुकरणी वृत्तिके कारण आधुनिक भारतीय साहित्यमें धुंधलकेकी जो स्थिति उत्पन्न हुईहै, उसने "विराट्के नाना रूपोंमें 'स्व' से साक्षात्कार और उसे व्यक्त करनेकी वैदिक-औपनिषदिक चेतना" को अवरुद्ध और बाधित कियाहै, उनकी क्षीण होती प्रवृत्ति ही किसी नयी अन्त:स्फूर्तिका संकेत है । जिसे गत दशकों के काव्य-सृजनकी दिशाओंसे लक्षित कियाजा सकताहै ।

बालमीकीके प्रथम काव्य-पदकी उद्भावना करुणाजनित संवेदनासे हुईथी, पर यदि मध्यकालके अनाचारजनित विद्रोहके जनक काव्य-पदों और आधुनिक युग के क्षोभ, आक्रोश-विद्रोह-जनित पदोंके क्षणजीवी प्रभाव और अवधिपर ध्यान दिया जाये तो उसे संवेदनाजन्य नहीं, आवेश और आवेगजन्यकी श्रेणीमें रखना होगा । आवेश-आवेगजन्य उद्भावनाओंकी काव्यकी श्रेणीमें गणना करनेकी कठिनाईसे साहित्यशास्त्री परिचित हैं । परन्तु पिछले दशकोंकी उद्भ्रांत उद्भूतियोको केवल राजनीतिक आवेश और प्रतिबद्धताके कारण काव्य क्षेत्रोंमें मान्यता प्रदान की गयी । हमारी धारणा यह है कि आक्रोशजन्य उत्तेजक पदोंकी कथन-भंगिमा वीररस की स्थिति का आभास तो दे सकतीहै, परन्तु उसके साथ काव्यानुभूतिभी उसी मात्रामें क्षीण हो जातीहै क्योंकि क्षणिक आवेश-आवेगके शान्त होतेही काव्य-चेतना शून्य हो जातीहै । प्रतिबद्धता और शब्द विदग्धता बौद्धिक स्तरका व्यायाम करानेमें ही समर्थ हैं, सूक्ष्म अन्त:प्रक्रियाको संचालित करनेमें नहीं, सामूहिक चेतनाको जागृत करनेमें भी नहीं। इस प्रकारके तथाकथित काव्य-पदोंको संवेदनाजन्य स्वीकार करनेवाले इसे काव्य श्रेणीमें नहीं काव्याभास वर्गमें सम्मिलित कर सकतेहैं । संभवत: इसी कारण शास्त्रीय 'रस' विरोधकी चर्चा होतीहै । काव्यमें विचार पक्ष और बौद्धिकता, आवेश-आवेग जितने प्रबल होतेहैं, भाव पक्ष उतना ही शिथिल होताहै । इस अंकमें विभिन्न भाषाओंके अनेकों काव्योंकी चर्चा हुईहै, उन्हें और उनकी राजनीतिक पक्षधरताको ध्यानमें रखते यह टिप्पणी कर दी गयीहै ।

यहां पुरस्कृत उड़िया कृति 'श्रीराधा' की चर्चा भी प्रासंगिक है क्योंकि 'श्रीराधा' को वैष्णवी भक्ति-भावना में उच्च स्थान प्राप्त है। परम्परा और संस्कृतिमें, पुराणों और दर्शनमें वे 'आराध्या' हैं, जिनके स्मरण, नामकीर्तन और सेवासे भवसागरसे मुक्ति मिलतीहै ।

वैष्णव मतमें राधा-प्रमही ईश्वर-प्राप्तिका प्रकृष्ट पथ है। राधा और कृष्णको अभिन्न भी माना गयाहै।

भारतीय परम्पराके विभिन्न भाषाभाषियोंने इसी उपास्य रूपमें श्रीराधाको ग्रहण कियाहै। परन्तु समीक्षित कृति के कवि श्री रमाकान्त रथने राधाको प्रेमिका रूपमें चित्रित कियाहै, जिसकी प्रेमानुभूति इतनी प्रगाढ़ है कि प्रेमसे पृथक् होना उसके लिए संभव नहीं है। यह आज की आधुनिका नहीं, पर काव्यकी एक प्रेमिका नारी है। विद्यापतिने भी श्रीराधाको प्रेमिका रूपमें ही ग्रहण कियाहै, दैहिक-आनन्द और प्रेमके क्षेत्र से वह बाहर नहीं है।

यह पूरी चर्चा प्रथम तो भारतीय साहित्यके पाश्चात्य और प्रगतिवादी प्रतिबद्धताके चिन्तनसे प्रत्यावर्तनके संकेतोंको ध्यानमें रखकर की गयीहै, दूसरा यह कि इस प्रकारके संकेत उस साहित्यसे उपलब्ध होते है जो प्रशासनिक छत्रछायामें पनपती साहित्य-अकादमी से भिन्न परन्तु स्वतंत्र संस्थानोंसे सम्मानित है।

संस्कृत साहित्यकी स्थिति कुछ भिन्न प्रतीत होती है। प्रस्तुत अंकमें प्रकाशित 'भीष्मचरितम्' की समीक्षा में डॉ. राजेन्द्र मिश्रने इस ओर ध्यान खींचाहै कि स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यकार काव्यप्रणयनमें शास्त्रीय लक्षणबन्धनोंसे मुक्त होकर रचनामें प्रवृत्त हुएहैं। पिछले दशकके महाकाव्योंमें युगापेक्षित स्वतंत्र रचना-धर्मिताका अवलम्बन दृष्टिगोचर होताहै। इस कृतिमें समीक्षकको कविताका संवेदन पक्ष, कलापक्षकी तुलना में अधिक रुचिकर तथा बलवत्तर प्रतीत होताहै। यहभी उल्लेखनीय है कि यहां संस्कृतके उल्लिखित चरित-महाकाव्योंमें से दो लेनिन और टालस्टायपर हैं और एक नेहरू वंशपर है। प्राचीन लक्षणकारोंकी लीकपर चलने का मोह अन्य भाषाओंके रचनाकारोंमें भी नहीं पाया जाता। मुख्य प्रश्न साहित्यकी मौलिकता और स्तरीयताका है। आधुनिक संस्कृतके आधुनिक पाठक भी इसी युगके है और प्राय: अन्य भाषाओंके साहित्यमें भी समान रुचि लेतेहै, इसलिए यह पाठक वर्ग न तो "देव भाषा" के प्रति श्रद्धाभावके आधारपर इसे स्वीकार करनेको प्रस्तुत होगा, न परम्पराके प्रति समर्पित होने कारण। साहित्यके प्रति रुचिके निर्णायक तत्त्वोंके आकर्षणके बिना संस्कृतपाठी वर्गका ही ध्यान आकृष्ट करनेमें असमर्थ रहेगा। भाषाके साथ कलात्मक रोचकता होनी चाहिये, विषयकी नवीनता और विभिन्नता भी अपने आपमें आकर्षण होताहै। समीक्षकका यह विचार बहुत संगत है कि पौराणिक कथानकोंमें कविको अपनी ओरसे 'बहुत कुछ' कहनेका अवसर नहीं मिलता। फिरभी, यह तो कहाजा सकताहै कि पितामह भीष्मके बहुआयामी व्यक्तित्वको ध्यानमें रखते हुए अनेक पक्षोंका विस्तार गहराईसे कियाजा सकताथा, संस्कृतके भाषिक सौन्दर्य और अभिव्यक्तिकी संभावनाओंका लाभ उठायाजा सकताथा। प्रशासनिक अरुचि, (कहना चाहिये 'विरोध'), उसका जन-भाषा न होना, उसके वर्चस्वको अभीतक रोक नहीं पाया, अपितु उसकी सांस्कृतिक सम्पत्ति एवं उसके प्रति अर्चन भावना साहित्यके विस्तारमें सहायक ही होगी यदि उसका सम्यक् उपयोग हो। □

अपराधी वैज्ञानिक

(प्रस्तुत वैज्ञानिक उपन्यासके लेखक : यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक')

☐ आप जानतेहैं कि लगभग ११००० वर्ष पूर्व पृथ्वीका उद्धार चौथे हिमपातसे हुआथा। चारों हिमपातोंमें हिमका आवरण एक मीलसे दो मील मोटा था।

☐ हिमपातका एक कारण पृथ्वीकी धुरीका विचलन है। इस सपय पृथ्वीकी यह धुरी ध्रुवतारे से एक अंश हटी हुईहै। इस विचलनसे ऋतुएं भी पीछे हटतीहैं।

☐ आप सोचनेको तैयार हैं कि क्यों न पृथ्वीकी धुरीको सचल बनाकर पृथ्वीके विभिन्न भागों को सूर्यके ताप और प्रकाशके सम्मुख लाकर मरुस्थलोंको उर्वर और हिम-प्रदेशोंको तप्त कर लिया जाये, वायुमण्डलीय कार्बन-डाई-आक्साइड, विद्युत उत्पादन-जलवाष्पीकरण-वर्षा आदिको मानवीय नियंत्रणमें लाया जाये और नये चुम्बकीय प्रयोग किये जायें।

उपन्यास पढ़िये और सोचिये।

पृष्ठ : ३३३; मूल्य : ६०.०० रु. मात्र

'प्रकर,' ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

नरेश मेहता : सृजनात्मक वैष्णवता एवं वैदिक औपनिषदिक चेतना

—प्रमोद त्रिवेदी

श्री नरेश मेहताके कृतित्वपर टिप्पणी करना अत्यन्त सरलभी है और अत्यन्त कठिनभी। सरल इस अर्थमें हैं कि आजके लेखनके प्रचलित भाषा-शिल्प और रूढ़ मुहावरोंको उनके लेखनमें अनुपस्थित पाकर उनके लेखनको ही नकार दिया जाये। चकित करनेवाली बात यहभी कि आज हम प्रचलित भाषा और उसके मुहावरेको ही लेखककी सामाजिक निष्ठ और उसके लेखकीय दायित्वका पर्याय मान चुकेहैं। हम पातेहैं कि नरेशजी अपने सृजनके लिए प्रचलित मुहावरेका 'उपयोग' नहीं करते बल्कि अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्तिके लिए प्रचलित मुहावरेसे भिन्न और सरसरी निगाहसे देखनेपर समकालीनताके विपरीत भिन्न भाषा और मुहावरेको आविष्कृत करतेहैं। ऐसी स्थितिमें उनकी सृजनात्मकतासे तदाकार होनेमें अतिरिक्त श्रम ही नहीं करना पड़ेगा, बल्कि अपने पूर्वाग्रहोंसे मुक्तभी होना होगा। आज जबकि लेखकके क्षेत्रमें उदारता औरसदाशयता विरल हो गयेहैं। संवाद लगभग समाप्त हो गयाहै सबसे आसान यही है कि उनके लेखनको खारिज ही कर दिया जाये। लेखनके क्षेत्रकी राजनीति और उससे प्रेरित लुभावने नारे तो हर समय गढ़े जाते रहेहैं और उन्हींके आधारपर सारी गतिविधियां और लेखन चलताहै पर यह तथ्य है कि नारे मनुष्यसे उसकी निजता—उसकी पहचान छीनकर उसे भीड़में परिवर्तित कर देतेहैं। नरेशजीने अपनी निजता और अपनी पहचान बनाये रखते हुए भीड़ होनेसे सदा इनकार कियाहै। यही नहीं, उन्होंने समानान्तर नारे गढ़कर एक प्रति भीड़ भी नहीं जुटायी।

नरेशजीकी सर्जनात्मक मानसिकता मध्ययुगीन है। इसको और अधिक स्पष्ट किया जाये तो भक्तियुगीन। यह बात भिन्न है कि वे इस सदीके तीसरे दशकमें जन्में। कोई कब जन्म ले यह चुनना तो किसी के वशमें नहीं है—नरेशजीके मनमें भी नहीं था। पर कोई क्या और कैसा होना चाहताहै यह व्यक्तिके वश में अवश्य है। अत: नरेशजी जैसा होना चाहतेथे वैसे होते चले गये और यह चाहना पहली और अन्तिम बार नहीं होताहै हर क्षण व्यक्तिको अपना होना चाहना होताहै और उसीके अनुरूप प्रयत्न करने पड़ते हैं। नरेशजी भी किसी एक सीढ़ीपर खड़े नहीं होगये। इसी सजगतामें उन्होंने महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् सृजन किया वहीं अपने समकालीनोंसे वे लांछित और प्रताड़ित भी होते रहे।

मध्यकालीनता अथवा वैष्णवताका अर्थ अपने समय और अपने समाजकी उपेक्षा नहीं होता बल्कि उसकी अपने समाजमें गहरी रुचि होतीहै। कुम्भनदास जब कहतेहैं—

"संतन को कहा सीकरी सौं काम।"

अथवा तुलसीदास लिखतेहैं—

"हम चाकर रघुवीरके पटो लिखो दरबार।
तुलसी अब का होइ हैं नरके मनसबदार॥

तो ये भक्त कवि अपने समयकी सबसे साहसिक और प्रतिरोधकी कविता लिख रहेथे। यह आजके कवियोंके प्रतिरोधका-सा प्रभावशून्य प्रतिरोध नहीं था। आज तो सर्जक प्रतिरोधकी कविता भी खूब आक्रामक भाषामें लिखतेहैं और उसी व्यवस्थासे वे 'सम्मान-शिरोपाव' भी ग्रहण कर लेतेहैं। आक्रामक शब्दोंका प्रयोग करते हैं पर यह भयभी निरन्तर बना रहताहै कि जो सुविधा उन्हें उपलब्ध है उससे वे वंचित न हो जायें। भक्तिकालके कविकी कविता चाहे कबीर हों अथवा तुलसी, सूर हों अथवा मीरा, निर्भय व्यक्तिकी कविता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि व्यवस्थाका आतंक आजकी व्यवस्थाके आतंकसे किसीभी स्तरपर कम नहीं

बल्कि अधिक क्रूर और भयावह था। आज तो लोग कवितामें 'डरे हुए आदमीका बयान' दर्ज करवा रहेहैं पर भक्ति कालकी कविता न केवल निर्भय व्यक्तिका सृजन है बल्कि अपने समाजकी व्यवस्थाके घोर आतंक से निर्भय करनेवाला और इस क्रूर व्यवस्थाके समानान्तर एक नयी व्यवस्थाको मूर्त करनेवाला सृजन है। श्री नरेश मेहताभी लिखतेहैं—

प्रार्थनाका ही गुण है कि
वह अपने देहसे
अपना स्वत्व तक
वृक्ष छाल-सा उतारकर
किसीको भी दे सकतीहै
जब कि देनेका नहीं
अपहरणके व्याकरणका नाम इतिहास है
इसलिए
प्रति इतिहास हो जानेका नाम नहीं
बल्कि इतिहाससे सर्वथा अनासक्त होकर
निर्भय हो जानेका नाम ही प्रार्थना है

× × ×

इतिहासका उत्तर प्रति इतिहास कभी नहीं होता
क्योंकि दोनों ही एक दूसरेकी तराश हैं।
एक प्रश्न है
तो दूसरा केवल प्रति प्रश्न
उत्तर भी नहीं
इतिहास सब कुछ सहन कर सकताहै
अपने उत्तरको भी
परन्तु अनुत्तरको नहीं
अनुत्तरा तो केवल प्रार्थना है
इसलिए
प्रति इतिहास हो जानेका नाम नहीं
बल्कि इतिहाससे सर्वथा समानान्तर होकर
विनम्र रचना हो जानेका नाम ही प्रार्थना है।"
[इतिहास और प्रार्थना]

घटनाएं बदल सकतीहैं चरित नायक बदल जातेहैं पर मनुष्य और मनुष्यताका जो दमन तब था, वही दमन भिन्न रूपमें आजभी चल रहाहै। इस अर्थमें मध्यकालीनता और समकालीनताका भेद गौण ही नहीं व्यर्थ भी होजाताहै। हम वस्तुतः अपने समयकी रूढ़ काव्य भाषा और प्रचलित मुहावरेको ही अपने समय की कविता माननेके आग्रही हो गयेहैं। एक दृष्टिसे यह एक पहचान बनतीहै अपने समयकी भी और अपने समयकी कविनाकी भी। पर भाषामें एक निहितार्थ भी होताहै। भाषा तो विचारकी वाहक होतीहै अब निर्णय यह करना चाहिये कि आधुनिकता भाषामें निहित है अथवा विचारमें। नरेशजीने प्रचलित काव्य भाषाके समानान्तर एक नयी काव्य भाषा अपने सृजनके लिए आविष्कृत कीहै। भारतीय मिथक उनके काव्यमें जिस प्रकार घटित हुएहैं वैसे किसी समकालीन कविकी सर्जनात्मकतामें दुर्लभ है। इससे नरेशजीकी कविताको अतिरिक्त दीप्ति तो मिलीही है वहीं उनका लेखन आज के लेखनसे भिन्न भी हुआहै। ऐसा तभी सम्भव हो सकताहै जब लेखककी दृष्टि अपने समय और परिदृश्य पर व्यापक और गहरीहो। 'संशयकी एक रात', 'महाप्रस्थान', 'प्रवाद पर्व' के प्रश्न और चिन्ताएं उस व्यतीत हो चुके कलके प्रश्न और चिन्ताएँ ही नहीं हैं बल्कि अपने समयके प्रश्न और गहरी चिन्ताएँ हैं जिनसे रू-ब-रू होने और करानेके लिए नरेशजी भारतीय मिथकोंका साधनके रूपमें उपयोग करतेहैं। यहां अतिरिक्त रूपसे यह स्पष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है कि ये मिथक सामान्य पाठकोंके लिए चरितमें घटित होकर काव्य या काव्यमें निहित गम्भीर प्रश्नोंकी प्रेषणीयतामें सहयोगी हो जातेहैं।

यह मध्ययुगीन काव्य मानसिकता नरेशजीको 'क्लासिकल भूमिपर खड़ा कर देतीहै। समकालीनोंके लिए यह 'क्लासिकल' शब्द भी खासा भड़काऊ हो गया है। वस्तुतः 'क्लासिकल' शब्द उनके लिए कालबोधक शब्द नहीं है जिसमें काव्य और काव्य-शिल्प विशिष्ट रूपसे रूढ़ हो गयेहैं। वे मानतेहैं कि सभी चीजोंको देखने और परखने तथा रचनेकी वह दृष्टि, जो पाठकमें वही आकुलता अनुभव करे जो कि रचनाकार अपनी रचनाको रचते हुए या रचनामें होते हुए करताहै। यही मानसिकता क्लासिकल होतीहै। यह क्लैसिकेलिटि भी वस्तुतः समय-साक्ष्य होतीहै। जिस प्रकार मनुष्य शाश्वत होते हुएभी नित्य बदलता रहताहै और इस बदलावके बावजूद अपने मूल रूपमें वह वही रहताहै ठीक उसी प्रकारसे क्लासिकेलिटि भी नित्य बदलते हुएभी अपने आधारभूत रूपमें यही या कहिये शाश्वत होतीहै। सम्भवतः इसी अर्थमें एक सामान्य पाठकने 'उत्तर कथा' के सन्दर्भमें कहाथा—

'नरेश मेहताका उपन्यास—'उत्तर कथा' तो हमारे

मालवाकी 'भागवतजी' है।"

स्पष्ट है यह टिप्पणी जोकि नितान्त भावुकतापूर्ण ही है किसी समीक्षककी तो होही नहीं सकती। तब उस पाठकको इस उपन्यासमें पौराणिकता जैसा क्या लगा होगा? निश्चयही इस उपन्यासमें न तो कोई दैवीय पात्र है और न ही कोई अलौकिक घटना —तो फिर!!

निश्चयही वह समय, वे लोग, उनकी जीवन पद्धति और जीवन-मूल्य जो तमाम विषमताओंमें भी उन्हें जीनेकी प्रेरणा और शक्ति देतेथे, वह सब कुछ व्यतीत हो चुकाहै पर उस व्यतीतमें होनेकी कामना और इस रचनाके माध्यमसे उस समय और नितान्त कल्पित होते हुएभी वास्तविक लगते हुए पात्र और घटनाओंके बीच होनेका सुबही सम्भवत: इस कृतिपर इतनी गरिमापूर्ण किन्तु सहज टिप्पणी उक्त पाठकसे कराता गया। यही क्लैसिकेलिटीका रहस्य है और इस कृतिकी उपलब्धि भी।

अन्तमें नरेशजीके काव्यपर फिर लौटें। प्रभु, वैष्णवता, रास, कीर्तन, लीला भाव जैसी शब्दावली और मानसिकता और आगे बढ़नेपर वैदिकता नरेश मेहताके काव्यकी परिधि निर्मित करतेहैं। यह सही है कि परिधिसे एक निश्चित पहचान बनतीहै पर इससे एक सीमा भी निर्धारित हो जातीहै। सीमा एक सुरक्षा है तो सीमा एक बन्धन भी है। नरेशजीने अपनी रचनात्मकतासे जो परिधि खींचीहै वह उनके लिए कठघरा भी बन गया और इसमें खड़ा करके उनसे न केवल जिरह कीगयी बल्कि आरोप भी लगाये गये उन पर भी और उनके लेखनपर भी। 'वैष्णवता' और औपनिषदिक-आरण्यक चेतनाके कारण उन्हें और उनके लेखनको 'साम्प्रदायिक' घोषित कर दिया। इस सुनियोजित 'राजनीति' के विस्तारमें जानेकी आवश्यकता नहीं है पर इस 'वैदिक चेतना' और 'वैष्णवता' को समझ लिया जाये तो पूर्वाग्रह दूर हो सकतेहैं। वस्तुत: अपनेको नाना रूपोंमें देखने और इस विराट के नाना रूपोंमें अपने 'स्व' से साक्षात्कार करने और उसे व्यक्त करनेकी भूमि ही औपनिषदिक चेतना है। यह सब दर्शनकी भूमिपर नहीं बल्कि सर्जनात्मक भूमि पर अनुभव और घटित करना होताहै तब ही यह सृजनात्मक चेतना सर्जकके लिए मूल्यवान् और पाठक के लिए अभूतपूर्व बन जातीहै।

अपना व्यक्तित्व विलयन और सम्पूर्ण समर्पण हा 'वैष्णव भाव' है। यह एक कठोर भूमि है इस भूमिपर सारे लोभ, राग-द्वेष, आकर्षण और समस्त रचनाएं अर्थहीन हो जातीहैं। यह ऐसी प्रतिज्ञा है जो एक संकल्पवान् व्यक्ति ही कर सकताहै। एक सीधे मेरुदण्ड वाले व्यक्तिको विनम्रता और दृढ़ताका योगिक ही उसे 'वैष्णव' बनाताहै। ऐसे व्यक्तिकी रचना गहरी आस्था से उपजतीहै। और आस्तिकता इसका आधार बनती है।

आधुनिकताके आवेशमें हमने जिन शब्दों और मानसिकताओंको आधुनिकता-विरोधी मान लिया उसमें 'अस्तिकता' भी एक है—एक नहीं बल्कि प्रमुख। तो 'आस्ति का विलोम हुआ—'नास्ति'। हमारा समकालीन लेखन अधिकांशत: इसी 'नास्ति' की मानसिकता का प्रतिफल है। यहीं श्री नरेश मेहताके लेखन और आजके लेखनमें तात्त्विक भेद है। इसलिए समकालीन लेखनका लक्ष्य पाठकमें एक विचलन, एक तनाव उत्पन्न करनाहै वहीं नरेशजीका लेखन आजके तनावग्रस्त मनुष्यको तनावसे मुक्त करके मनुष्यको उसके उच्चतर मूल्योंसे साक्षात्कार करवानाहै। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वे अपने समय अपने समयकी विडम्बना, अन्तर्विरोध, और मनुष्यकी निरन्तर लुप्त होती अस्मितासे परिचित नहीं है अथवा वे पूजा-पाठ और कर्मकाण्डकी रहस्यमयतामें आजके यथार्थको अनदेखा कर रहेहैं।

'पिछले दिनों नंगे पैरों' की कविताएं असीरगढ़ की मध्यकालीनतासे साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इस प्रतीक द्वारमें प्रवेशकर वे आजकी अमानुषिक बर्बरता से ही साक्षात्कार कर रहेहैं। इस दुर्गके कत्लगाह, फांसीघर, दालान, परकोटे, यातनागृह, आइनाखाना और सुल्तानोंकी वहशी चाहत हमें मध्यकालीनताके नरकसे आजके नरकमें पहुंचा देतेहैं। इस स्थितिमें इस संकलनकी कविता हमारी और हमारे समयकी कविता हो जातीहै। पर अपने समयकी क्रूरताओंसे रू-ब-रू भर करवा देना नरेशजीकी सर्जनात्मकताका प्रयोजन नहीं है इसलिए इस सारी बर्बरताके घुटनभरे अंधेरेमें भी ताजा हवाके लिए झिरियां या मोखे, उनमें से झांकता थोड़ा स्वच्छ नीला आकाश और इतिहासके घने अंधेरेको पराजितकर दीवारों-फर्शोंपर कोमल धूप के बिछे छोटे-छोटे टुकड़े सारी निराशामें भी मनुष्यको

जीनेकी शक्ति प्रदान करते रहतेहैं। इस संकलनकी सारी लोमहर्षक कविताओंके बाद अन्तिम तीन कबिताएं इतिहासकी घुटनमें प्राणवायुका संचार करतीहैं। इतिहासकी घुटनमें होना हमारी नियति है तो इस घुटनमें प्राणवायुकी अपेक्षा हमारी कामना है और इतिहासके आतंकसे मुक्त होना हमारा स्वप्न।

'रोज़ वह
इसी तरह वज़ू में
हाथ-पैर धोकर
उस मेहराबके खुलेपनमें लिखे
आकाशकी साक्षीमें
दोनों हाथ उठा
प्रार्थनाकी भाषामें
इबादतकी तल्लीनताके साथ
रोज़ यही कहताहै—
तबतक—
हां, तबतक
जब तक दीवारें हैं
इबादतें नामुमकिन हैं
प्रार्थनाएं असम्भव हैं
घरों, किलों, इमारतोंको दीवारोंवाला होने दो
मगर दीवारोंवाला आदमी तो मत बनाओ।'

हमारी पूरी मध्यकालीनतामें नानक, दादू, तुकाराम, कबीर, जायसी या सूर, तुलसी, मीरा और तमाम सन्त और सन्त-भक्त कवि हमारी क्षीण होती जातीय अस्मिताको इतिहासके अन्धेरे और घुटनमें इसी प्रकार धूप हवा और आकाश प्रदान करते रहेहैं। इनकी प्रखर वाणीने ही तब हमारी जातीय चेतनाको इतना आत्मबल प्रदान किया, इतनी निर्भयता प्रदान की कि इतिहासकी नृशंस तलवार भी उसके सम्मुख व्यर्थ हो गयीथी। ये साधु, फकीर और अवधूत तब सामान्यजन के मनोराज्यके सच्चे बादशाह बन गयेथे। राज्यकी सत्ता या प्रलोभनका मूल्य इनके लिए धूलके बराबर भी नहीं था। यही क्यों इतिहास इनके सम्मुख झुकता रहाहै। इतिहासकी शक्तिके गहरे दबावमें ये भी सन्त, भक्त, फकीर और अवधूत कुछ इसी प्रकार निर्भय होकर गाया करतेथे—

'शाहके न राजाके
किसीके नहीं चोबदार
अलख बादशाहतका भेद मत देना
अवधू! भेद मत देना

× × ×

देशके न कालके
किसीके नहीं ताबेदार
निर्गुण निरजनका भेद मत देना
अवधू! भेद मत देना।'

ये संत और कवि अपने समयकी सामाजिक चेतनाके प्रतिनिधि थे। इनके शब्दोंकी व्याप्ति जन-जन में थी। वे ही तब धूप, हवा, आकाश और ठण्डा और जीवित जल थे। इसी कारणसे और शायद इन्हींके कारणसे भी इतिहासकी क्रूर मार सहकर भी तबका समाज न केवल जीवित रह सका बल्कि चुनौती बन सका। कुम्भनदासकी इन पंक्तियों

'संतन को कहा सीकरी सों काम' की भांति श्री नरेश मेहताकी ये पंक्तियां

'शाहके न राजाके
किसीके नहीं चोबदार'

भी इतिहाससे पलायन नहीं बल्कि उसका प्रखर प्रोटेस्ट है। मध्यकालमें यदि तब संतों और संत कवियोंकी वाणीमें उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता व्यक्त हुईहै तो आजके इतिहासकी क्रूर और पाशविक अभेद्यतामें ये कविताएं ताजा हवा, धूप और आकाश देनेवालीहैं तो ये या इस प्रकारकी अन्य कविताएं महत्त्वहीन कैसे हो जातीहैं?

श्री नरेश मेहताकी कविता इसी अर्थमें अपने समयमें गहरा हस्तक्षेप करतीहै और एक भिन्न मुहावरेमें उनकी गहरी सामाजिक निष्ठा और प्रतिबद्धता को व्यक्त करतीहै। वह अपनी समकालीनतासे जुड़ीभी है और इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। यों समकालीनता और तात्कालिकतामें तात्त्विक भेद न करनेवालोंके लिए आज समकालीनतासे वह पृथक् भी हैं।

ओ मेरे दाता!

दी है फकीरी तो देना संकल्प भी!!!'

में उनके काव्य प्रयोजनको भलीभांति समझाजा सकता है और उनके काव्यादर्शको भी। ☐

[भारतीय ज्ञानपीठसे पुरस्कृत साहित्यकार]

साभन्ती जीवन-प्रवाहकी निर्मम परन्तु तटस्थ दृष्टि

ढाई घर

लेखक : गिरिराज किशोर

समीक्षक : घनश्याम शलभ

प्रत्येक श्रेष्ठ रचना अपनी समग्र कलात्मकताके साथ, अपनेमें एक वैचारिक संघर्षभी लिये होतीहै, उसमें अन्तर्निहित वे अन्त:विरोध भी सामूहिक चेतना की उपज होतेहैं जो रचनाकारकी संवेदनाकी कमलनाल से गुजरकर, उस रचनाका आन्तरिक चरित्र बनतेहैं। वैसे रचना, जैसाकि उपर्युक्त उपन्यास लेखकभी मानता है कि वह रचनाकारका एक अलग चेहरा होताहै जिसमें न द्वेष है, न घृणा—अनेक सामाजिक विषमताओके होते हुएभी रचनाकारके सामने समाजकी असीम प्रयोगशाला है, विस्तृत जीवनफलक है, सधी-संवरी भाषा और उपयुक्त अभिव्यक्तिके लिए शिल्पभी है। वर्तमान और अतीतके सभी भय, वर्जनाएं और पूर्वाग्रह सहज ही झटककर, उसकी तटस्थ दृष्टि रचनाको निरन्तर विन्यस्त करती रहतीहै। अत: रचना उसकी नितान्त निजी अनुभूतिका रचाव होते हुएभी, एक सजग और सार्थक सामाजिक देन है; वह रचनाकारकी 'कल्पसृष्टि' होते हुएभी जीवनकी भी 'अभीप्सित सृष्टि' है, जिसे एफ. एल. ल्यूकस या विन्सेंट वेनगॉग जैसे पश्चिमी कलाचिन्तक 'डिजायर्ड ड्रीम' भी कहतेहैं। ये ही अभीप्सित स्वप्न मनुष्यके अन्तर्मनके आदर्श रूप होतेहैं जब वे अपनाही अतिरोहणकर, समाज द्वारा पूर्वनिर्मित अवधारणाओंकी कक्षाको पारकर, 'मिथक' बन जातेहैं। इसीलिए प्रत्येक श्रेष्ठ रचना मिथकके रूपमें समाजकी अन्तश्चेतनामें स्मृतिरूप हो जीवित रहा करतीहै।

कुछ लोग, यथा 'अज्ञेय' की तरह, यह मानतेहैं कि 'पहचानका आधार साहित्यकारका चरित्र नहीं, उसकी रचनाका चरित्र होना चाहिये'। परन्तु अतीतमें रचना और रचनाकारके चरित्रमें ऐसा कोई अलगाव 'पहचानका आधार' क्या कभी रहाथा? आदि कवि वाल्मीकि जैसे स्रष्टा ही नहीं, मध्ययुगीन कृतिकारोंके चरित्रतक में पहचानका आधार ऐसा अलगाव कभी रहा ही नहीं। जो यथार्थ रचनाकारके अन्तर्जगत्‌की अनुभूतिका हिस्सा नहीं बन पाता, वह चाहे फिर ऊपरी तौरपर कितना ही प्रभावशाली, वैचारिक दृष्टिसे सम्पन्न और कलापूर्ण क्यों न हों, वह हृदयग्राही और मर्मको छूनेवाला कब बन पायाहै? रचना निश्चयही रचनाकारकी मानसी सृष्टि है, अतः गिरिराज किशोरने भी उसे 'आत्मांश' मानाहै। 'मेघदूत' जैसी कृति आत्मसंभवा थी, इसीलिए वह आजतक प्रेमकी अक्षुण्णता निरन्तर बनाये हुएहै। 'मृच्छकटिक' और 'उत्तररामचरित' में व्यक्त जीवनानुभूति भी इसीलिए अबतक महत्त्वपूर्ण बनी हुईहै।

'ढाईघर' के लेखककी सबसे बड़ी चिन्ता यही है कि—'लेखकको आज कौन पूछताहै···'मनुष्य' और 'शब्द' हाशियेपर हैं जो रचनाके आधार-बिन्दु हैं, तो साहित्यकार केन्द्रमें कैसे हो सकताहै?'—फिरभी इस लेखकके लिए लिखना एक अनन्त यात्रा है, और अनंत संभावना भी। उसे विश्वास है कि 'वर्तमान जहरको एक सधी हुई कलम ही सीख सकतीहै'। यह ठीक है कि 'आज हम नफरतके दरियामें हाथ पैर मार रहेहैं'। वह अपने लेखन-कर्मकी सीमाओंसे भी पूरी तरह परिचित है। 'यह उपन्यास क्यों?'—में वह इसे स्पष्ट रूप मे स्वीकारताहै कि 'लेखन उपलब्धि नहीं; प्रयत्नजीवी होताहै। उपलब्धियोके क्षेत्र विज्ञान है, व्यवसाय है, राजनीति आदि है। साहित्यके क्षेत्रमें तो असफलताएं ही सफलताको रारता दिखातीहैं'। अपने इस उपन्यास

को वह किस्सागोई मानताहै—'जो याद आता जाये, कहते जाओ' मूडमें लिखा गयाहै यह सारा उपन्यास। वह तो इसे लेखकीय दायित्वका निर्वाह मानताहै। एक बार स्मृतिकी कुंडलिनी जागृत हुई नहीं कि उसने अपने समूचे स्मृतिकोषको किस्सागोईके रूपमें, पाठकके लिए लुटाना शुरू कर दिया। यह कहते हुए कि 'वह तो बदलते हुए रिश्तोंका गायक है'।

बड़े जमींदार हरिरायकी प्रतिष्ठाकी धीरे-धीरे झुकती हुई बुर्जकी कहानी भर है—यह उपन्यास। वैसे जमींदार और घोड़े अपनी तेजी और बिगड़ैलपनके लिए मशहूर होतेही हैं, अतः जीवनके आखिरी दिनोंमें एक लावारिस जख्मी सिपाहीकी तरह हरिराय कह रहेहैं—'परन्तु मैं तुम्हारा भविष्य नहीं, अतीत हूं—पसंद करो या न करो, पर उसे स्वीकार करना हर एककी मजबूरी हैं'। अश्व भी वैसे शक्तिका पैमाना होताहै। सामतों और जमींदारोंकी तो अपनी अश्वशक्ति कभी प्रशस्तियां प्राप्त करती रहीथीं। उनकी वही शक्ति नये परिवेश और परिस्थितियोंके निरन्तर बदलाव और तनावके साथ बदलती रहीहै। वह शक्तिभी सत्ता-केन्द्रित रही है—पंच हजारी, दस हजारी, तीसहजारी आदिकी वह अश्व-शक्ति सत्ता-परिवर्तनके साथ, युगानुरूप हो सदैव बदलीहै, अतः 'ढाईघर' की परिणति उसी परिवर्तनकी वैचारिक प्रश्नाकुलताके साथ होतीहै, जिसकी प्रतीति हरिरामके बड़े पौत्र रघुवरके दिलको लगातार कचोटती रहतीहै; इसलिए भी कि कभी आदर्श 'मूल्य' हुआ करतेथे, और आज 'मूर्खता' में—वकील जगन बाबूके—परिवर्तित हो गयेहैं। वे जगनबाबू जिन्होंनें कभी गांधी जीके सम्पर्कसे उन्हींके रंगमें अपना चोला पूरी तरह रंग लियाथा। अब वे ही उपन्यासके अन्तमें यही तो कह रहेहैं कि 'आदर्शवादमें कुछ नहीं रखा। ये सवाल जो तुम्हें घेरे हैं, इन्सानको आदर्शवादी और अव्यवहारिक बनातेहैं। तब आदर्श 'मूल्य' था, अब 'मूर्खता' हैं। अब देशको आदर्शवादकी जरूरत नहीं, सही अवसरकी जरूरत है'।

रघुवर भी एक अच्छे पदपर है—वहभीजगनबाबू के कथित 'सही अवसर' के कारणही—पर उसे अबभी लग रहाहै कि 'हैं तो सब वही लोग। धीरे-धीरे पूरा का पूरा यह नया माहौल उसी माहौलमें बदल जाताहै। जगनबाबूकी वह सरकारी कोठी हवेलीमें बदल गयी। मोटरें घोड़ागाड़ीमें बदल गयी--मोटर ड्राइवर काले और फत्तू सईस नजर आने लगे, बड़े रायके खाकी वर्दीवाले चपरासियोंने, उन लाल मखमली ड्रैसवाले चपरासियों की जगह लेली। उसकी ममक्षमें नहीं आ रहाथा कि यह सब क्या होगया? उनमें 'वह कहांहै'? जो सबसे अधिक आश्चर्यजनक लगा वह था—जगनबाबूकी जगह बड़े रायका आ खड़ा होना। बड़े राय सामंत थे और जगनबाबू आजादीके दीवाने'।—ऐसा साम्य एक प्रतीकार्थको जन्म देताहै रघुवरके अन्तर्मनमें। आजादी की वह दीवानगी भी जैसे मामंती शक्तिमें परिवर्तित होगयी और तभी उन्मादमें कभी-कभी जोर-जोरसे वह बकताहै—'गांधी मर गया, पर वड़े राय जिन्दा होगये, अमर फल पागये। मैं उन्हींका बीज हूं। पहचान सको तो पहचानो'।

क्या रघुवरके रूपमें कहीं लेखक तो यह नहीं कह रहाहै? लोकशाही और सामंतशाही यहां गड्डमड्ड हो, एकात्म और एकरूप ले लेतीहै—ऐसे उन्मादमें, और तब गांधी अप्रासंगिक हो उठे तो दोष गांधीका नहीं, हमारे उस विकृत मानसिक तनावका है। 'मन ना रंगाये जोगी, रंगाय लीन्ह कपरा'—वाली कहावत गलत कहां है? रिश्ते बदल गये, आदमी नहीं बदला—प्रजा होनेका अहसास और जनतंत्रके भाग्यविधाता होनेके भ्रमसे रघुवरकी तरह, आम आदमीको मुक्ति आजभी कहां मिल पायीहै? ···परन्तु 'सफेदा' की तरह दोनों पैरोंपर सीधा खड़ा होकर इस प्रकार हिनहिनाने भरसे क्या होताहै: प्रश्न तबभी वहींका वहीं रहेगा, क्योंकि प्रत्येक युग अपनी बंदिश और मजबूत जकड़न स्वतः जो पैदा करता रहाहै? बीसवीं सदी बीतनेको हैं, पर मनुष्यकी जिन्दगीको बंधक बनानेवाले इस अपराध विज्ञान या क्रिमिनोलॉजीके इस्पाती रस्सों का जाल, धीरे-धीरे हमारी इस समुन्नत सभ्यताको अबभी कसताजा रहाहै। यह जाल तो राष्ट्रपति येल्तसिन तक को अब परेशान किये हुएहैं।

फिरभी इससे बुद्ध या गांधी अबतक मर कहां पाये हैं? उनका जन्म तो भारतकी हजारों वर्षकी चिन्तन-परम्पराकी कोखसे जो हुआहै? वैसे भी कोई आदर्श कभी आकाशसे पके फलकी तरह टपककर हमारी गोद में आकर नहीं गिर जाताहै। आदर्शका आकार तो यथार्थकी सुदृढ़ चट्टानसे, सामूहिक चेतनाके विवेककी छैनीसे तराशा जाताहै लेकिन जब आदर्श अपना सही आकार ले लेताहै तो यथार्थकी इयत्ता, उसके अन्तर्तमसे

समाप्त थोड़ेही होतीहै ? वास्तवमें आदर्श तो यथार्थकी दृष्टि शक्ति, (वीज़न) होतीहै, जो यथार्थसे अधिक पूर्ण, स्वायत्त, पारदर्शी और सत्यनिष्ठ होतीहै। आस्था इसीलिए उसपर टिकी रहतीहै। 'ढाईघर' का लेखक भी अपनी दुर्वह स्थितियोंसे उबरनेके लिए, अपनी आस्थाका ही उपयोग करता रहाहै। तब बुद्ध या गांधी भी क्या महत्त्वपूर्ण अन्तर्व्यापी सत्यकी तरह युगान्तरों तक प्रकाश विकिरित नही करते रहेंगे ?

इस 'ढाईघर' की सारी किस्सागोई चौरासी वर्षीय भास्करराय, जो बड़े राय हरिरायका बड़ा बेटा है, अथसे इति तक कहता चलताहै। उसकी सारी कहानी अपने जमींदार पिता बड़े रायको केन्द्रमें रखकर चलतीहै, उसकी पारम्परिक प्रतिष्ठा, आचार संहिता और शानोशौकतको, बदलते समयकी यह दीमक जब चाटना शुरू करतीहै तो उस वंश-वृक्षको जर्जरित करके ही छोड़तीहै। रायोंके इस वंशमें बड़े रायके साथ उनके मंझले भाई कृष्णराय, छोटे भाई राघवराय, पुत्र भास्कर और अरुणराय, घोड़ा-गाड़ियोंके सईस, भवानी जैसे निष्ठावान् नौकर-चाकर, बड़ी हवेली, कोठियां बहुएं-बेटियां-पोतियां आदि सभी कुछ उसके भरेपूरेपनको प्रकट करतेहैं। बड़े रायको वेलर नस्लका घड़ा सफेदा बहुतही प्रिय है, रंग मुश्की पर नाम सफेदा, गर्दनपर सांपन लेकिन सांपन भौरीका मुंह सवारके विपरीत दिशामें। घोड़े निकालनेवाले वजीर भी हैं। एक अन्य घोड़ा 'जार्ज' जो बड़े रायने एक अंग्रेजसे खरीदाथा, उनकी बेटी रानीके पतिने उनसे अपनेही विवाहके समय हथिया लियाथा, बहुत प्रिय था। सफदा की गिग कलक्टरकी पत्नी मिसेज डिककी बग्गीसे ऐसी टकराया कि आखिरकार उनको अपने उस प्रिय सफेदासे हाथही धोना पड़ा, खूनीबागमें उसे गोली मारकर डाल दिया गया। उससे पहले भास्करराय, अपने एक तरहके आशिक किशनबाबू जो अपनी वैसी हरकतोंके लिए शहर भर में बदनाम थे—उनके चक्करमें पड़कर बदनामीकी तोहमत झेलताहै और पण्डित रामदीनके लड़के जानकीरामकी फिकराकशीपर उसे चाकू मार घायल कर देता है। जिस राय खानदानके घोड़े तक कभी आग मूता करतेथे, वह इस बदलते वक्तकी करारी चपेटोंको झेलता रहताहै। इस बदवक्तकी चोटें फिरभी रुकती कहां थी ? बड़े रायको इसी बातका तो मलाल था—'खानदानकी निधि गयी, लक्ष्मण-सा भाई छूटा और बेटीका जीवन दु:खीका दु:खी रहा—कितना निरुपाय और नि:सोचे होताजा रहाहैं यह जीवन।

हमारे कथक्कड भास्कररायने भी तीन शादियां कीथीं—पहली रूपा, दूसरी कला, तीसरी सारंगा। रूपा तपेदिक लेकर आयीथी सो उसीके साथ गयी। कलासे दो बच्चे—रघुवर और सोना। सारंगासे एक बेटा-गिरवर। इसी सोनाकी शादीमें तो उसके दादा बड़े रायको कर्जके लिए अपनी मूंछ तक गिरवी रखनी पड़ी। वह जमींदारी जो कभी 'द्रौपदीको मिले सूर्यपात्र की तरह थी कि बिना पीसे और पकाये भी पेट भरती थी'—अब तक तो काफी बिक चुकीथी। मंझले रायकी पहली सुन्दर और सुशील पत्नीके ला-औलाद होनेके भ्रम-जालने उसकी जान ही ले ली। बड़ी डाक्टरनी मेमने तो उसकी कुक्षीको उर्वरा ही करार दियाथा, परन्तु मंझले राय उससे साफ कन्नीही काट गये--अपने पुरुषत्वके अहंमें। दूसरा विवाह किया, फिरभी ला औलाद रहे और एक नाजायज शिशुको गोद लिया, रिश्वतखोरी और अपने खड़ दिमागके कारण तहसीलदारीसे भी हाथ धो बैठे। डालियां लेना और देना इन जमींदारोंमें आम बात रहीहै। जमींदारीके तहत लगान वसूलीके लिए थर्ड ग्रेडके हथकंडोंसे काम लेना भी आम रिवाज थाही। आसामियोंकी प्यास तक पेशाबसे बुझाई जाती रही। बेरहमीसे मार-मारकर अधमरा बना देना तो मामूली बात थी। राजस्थानी जागीरदारों द्वारा आसामियोंको दिये जानेवाले असह्य उत्पीड़नकी हकीकत तो इससे भी अधिक लोमहर्षक है। बीजोलियाका प्रसिद्ध किसान आन्दोलन इन्हीं लागतों, वेट-बेगारों और अन्य शोषण-उत्पीड़नका कारण बनाथा और स्वयं गांधी जीने उस महत्त्वपूर्ण आन्दोलनकी सराहना कीथी।

'ढाईघर' के राय खानदान द्वारा किया जानेवाला शोषण—उत्पीड़न तो उसके समक्ष साधारण-सा ही है। कृष्णराय बहुत अहंकारी और क्रूर हैं, और इसी क्रूरता के कारण आसामी मिरची चमार और उसके दोनों लड़के—चंदन और फुसाने उनकी जो दुर्गति की, उसके कारण राय खानदानको फिर एक करारी चोट पहुंची। अब जमाना जो सिरके बल खड़ाथा तो चंदन और फत्तूमी दफा ३०७ से बाइज्जत बरी होगये। मंझले रायने तो इस खानदानको पहले ही काफी झटके दियेहैं और छोटे राय राघव भी आखिरकार अपने गोद लिये

बेटे अरुण और उसकी बहूको लेकर अलग कोठीमें चले गये। और अन्ततः रघुवर किसी कदर एम, ए. पास कर अपने मामा जगन बाबूके पास सभीको छोड़ चला गया। सोनाके ससुरालवालोंने भी उसे परित्यक्त कर दिया—वे तो उसके विवाहके बदले अपने घरकी दीवारें सोनेकी बन जानेकी आशा रखतेथे। मनुष्य-मनकी असीम लिप्सा थोथा अहंकार और खोखला प्रदर्शन, रूढ़ और विगलित संस्कारिताकी जकड़न आदि ढाईघरके निर्मायक तत्त्व हैं। इस खानदानकी नारियां तो जैसे जेलकी 'ए' क्लास कैदीकी भांतिकी सुविधाभोगी हैं। बड़े रायकी पत्नी का उनसे वैसा ही सम्बन्ध रहा जैसे किसी गायका कसाईके साथ होताहै। बड़े राय खून खौलनेपर तो अपने पौत्र रघुवर तकको बड़ी बेरहमीसे पीट देतेहैं। यूं वे भजन-पूजनके नेमी, मांस-मदिराके सख्त परहेजी, अपनी बराबरीवालोंके प्रति परदुःखकातर और हमदर्द, अपनी सहायता करनेवालोंके प्रति स्वजन की सी पीड़ा झेलनेवाले इस व्यक्तित्वकी अपनी कुछ खूबियां भी हैं—जैसा सारा जहर खुद पी जाना चाहते हैं, झेलने और सहन करनेकी पर्याप्त शक्ति है उनमें। रहमतुल्ला और किशन बाबूके प्रति इसीलिए वे इतने उदारमना हैं। गांधीजीके देहान्तपर वे भी खूब रोयेथे, हालांकि वे जीवनभर उन्हें सिरफिरा कहते रहे। अंग्रेजोंकी खुशामद और गुलामी तो उनके रक्त कणोंमें गहराईसे घुलमिल गयीहै। छोटे रायको इसीलिए स्वाधीनता आन्दोलनसे उन्होंने विरत कियाथा। नवाब छतारीको उनके द्वारा दिये गये भव्य प्रीतिभोज और उनकी शानोशौकतमें कहीं कोई कसर नहीं रखी, पर आम आसामियोंका शोषण-उत्पीड़न बदस्तूर उनके यहां चलता रहा। फिरभी वे उसकी बेईन्तिहाके पक्षपाती नहीं रहे।

हमारा चौरासी वर्षीय यह भास्कर उसी खानदान का एक सेतु मात्र है, वह इसकी सारी कहानी आद्यन्त वर्णन करताहै, कम पढ़ालिखा होते हुएभी उस वंशके जर्जर दम्भका अपनेको एकमात्र अधिकारी मानताहै। उसके संस्कारके खूंटेसे बंधा, उसके चारों ओर भांवरियां लेता रहाहै। अपने खानदानका ऐसा कारुणिक अवसान देखते-देखते उसे लगता है कि खुशहालीका वह समय रेलके पिछले डिब्बेकी तरह आंखोंसे ओझल हो रहाहै। उसके लिए शायद यह उक्ति ठीक रहीहो, पर आज तो समय उस आदमीकी भांति है, जो अपनी पीठमें तेज छुरेका जख्म खाये हुए, अपने प्राण बचानेके लिए अंधाधुंध दौड़ रहाहो। नफरत और वहशीपनका तेज छुरा अबभी जो उसका पीछा कर रहाहै? हमारा रचनाकार ऐसे आहत समयके दर्दको कैसे अनदेखा कर सकताहै? इस व्यथा-कथाके रिश्तोंके नीचे बलुआ धरती जो थी, इसीलिए इन्हें धराशायी ही होनाथा। बीच-बीचमें कुछ प्रसंग यथा—भूतनियोंका जापा करवानेवाली काली मेमका किस्सा, तो कभी पत्थरकी दीवारको घोड़ेकी तरह ऐड़ लगाकर पुलिस थाने पहुंचने वाले औलियाकी दरगाहका किस्सा, कभी भास्करकी दूसरी पत्नी कलाकी प्रेतात्माका किस्सा, और फिर कभी पत्नी सारंगाको उसकी सौत कलाकी आत्माके तंग करनेका किस्सा, आई. सी. एस. वीरबहादुरकी आशनाईका किस्सा आदि जमींदारीसे काश्तकारी तक पहुंच जानेवाली इस खानदानी कहानीको रोचकता देनेमें सहायता करतेहैं। वैसे ये उपर्युक्त कुछ किस्से उस समयके लोकविश्वासोंकी अभिव्यक्ति हैं, जो इस वैज्ञानिक युगमें अपनी प्रासंगिकतापर प्रश्नचिह्न लगातेहैं। इसमें अंग्रेज लड़की एलिसकी दहशतसे मौत हो जानेकी घटना और उसी संदर्भमें अंग्रेज प्रिंसिपलका अपने दोस्त की उस लड़कीको चुपचाप दफनाकर उस खौफनाक ब्रिटिशराजमें भी अपने विद्यार्थियोंको संरक्षण देना, उसकी मनुष्यताको दीप्ति प्रदान करताहै।

रहमतुल्लाका सहज, सरल व्यक्तित्व आजके विश्व की साझा-संस्कृतिके अत्यन्त अनुरूप हैं, जो रहमदिल, निष्ठावान् और नेक इन्सान है। अपने ईमानपर अडिग रहकर अंग्रेज कप्तानकी सईसी छोड़ देताहै। मुसलमान होते हुएभी अन्दर तक बिलौरी कांचकी तरह साफ है। वह एक हिन्दू तवायफ सिताबोबाई मुसीबतजदा औरत से निकाह कर लेताहै। इन्सानियत और भाईचारेकी भावनासे ओतप्रोत यह व्यक्ति पूरा स्वावलम्बी, स्वाभिमानी पर विनम्र है। किशनबाबूका हृदय उसकी मानसिक संरचनाके अधिक निकट है। ब्रिटिशराजमें भी आजादीके दीवाने जगनबाबूको केवल वही शरण देता है।

किशनबाबू और रहमतुल्ला—ये दो ही चरित्र ऐसे हैं जो अपने सामाजिक परिवेशकी अवधारणाओंका अतिरोहण कर, साझा-संस्कृतिके लिए आश्वस्त करतेहैं। किशनबाबू रहमतुल्लाके निकाहकी जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर लेताहै। उसका खुदका जीवन अब एक हठ-

योगीका-सा है। वह भलीभांति जानताहै कि 'सबसे ज्यादा वेमुराद और बेवफा अगर कोई है तो जमीन है —मैं किस मतलबका हूं—नशेड़ी-गंजेड़ी। फिर जायदादके सायेमें जाऊंगा तो फिर झुकने लगूंगा, अपनेको भूल जाऊंगा, या फिर उस जगह लौट जाऊंगा जहां मेरी जिन्दगी उसी हालतमें मेरा इन्तजार कर रहीहै जिसमें मैं उसे छोड़कर इस चकाचौंधमें दाखिल हुआ था।'

और अब इस जमीं-जायदादकी चकाचौंधसे पूरी तरह मोहभंग हो चुकाहै—उसका। भास्करराय तो उसका रुहानी नशा है। उससे बस दो ही चीजें नहीं छूट सकती—एक अफीम और दूसरा भास्करराय। यही उसकी इस जिन्दगीकी चौहद्दी है। वह अब किसी से भी दया या रहमोकरमकी तमन्ना नहीं रखता—सिर्फ कयामतके दिन जब जफील बजे तो वह पूरी तरहसे तृप्त उठे, दिलमें कोई चाह बाकी न रहे।'

लेकिन 'ढाईघर' की नारियां सामंती वातावरणकी पूरी गिरफ्तमें हैं—चाहे फिर वह मंझली बहू हो, या छोटी बहू, कला हो या सारंगा, रानी हो या सोना या दमयन्ती ही हो—सभी उसी भंवरजालमें फंसकर, किसी तरह ज़िन्दगी जी रहीहैं। मिसेज डिक या अन्य अंग्रेज महिलाकी बात कुछ भिन्न है। परित्यक्ता सोना आखिरकार कुछ पढ़-लिखकर नौकरी करतीहै जो उसकी मजबूरी है। अरुणरायकी बहू पढ़ी-लिखी आधुनिका है, वह बड़े राय तक से पर्दा नहीं करती और उस सामंती परम्पराकी चौहद्दीको हल्का-सा झटका अवश्य देतीहै। कलामें कुछ अधिक गतिशीलताकी संभावना थी, पर भास्करराय जैसे पतिकी संगतमें वह क्या कर सकतीथी ? उस बेचारीको उस कुलको एक अदद उत्तराधिकारी भर देनाथा सो देकर उस चौहद्दीमें ही मरकर मुक्त होगयी। छोटी बहूके लिए तो 'किसका चर्खा, किसका कपास, कौन कातनेवाला और किसका सूत'—रहीहै यह परम्परा; अतः विरक्त भावसे पूजा-पाठमें लगगयी। पहली मंझली बहूने तो ऐसे दमघोंट वातावरणमें जैसे आत्महत्या ही कर लीथी। यह सब तो इसके प्रमुख नारी पात्रोंका यथार्थ है। मिरची चमारकी लड़की और वह नववधू कन्या जो मंझले रायके दमनके विरोधमें, उसकी पीठ पर उसका सिक्का दे मारतीहै, क्षणिक फुलझड़ियोंसी ही दीप्ति रखतीहैं।

ऐसा प्रायः कहा जाता रहाहै कि श्रेष्ठ रचना 'परिचित' को नया और 'पहचाने को' अजनबी कर प्रस्तुत करतीहै। परन्तु 'ढाईघर' की कथा-वस्तुमें नवीनता किस बातकी है ? सामंती जीवन प्ररिवेश तो अन्य कई रचनाकारोंने अपनी कृतियोंमें रूपायित किया है। यह बात दूसरी है कि उनका दृष्टिकोण, संवेदना-ऊर्जा और जीवनबोधकी गहराई कुछ भिन्न प्रकारके हों। उनकी कृतियां भी क्या जीवनकी विविधता और जटिलताको समझने और जीनेमें सहायता नहीं करतीं ? परन्तु इस लेखकका एक आशय यह भी है कि, 'अभी तो उस वातावरण और समाजको समझनेके लिए उसके ऐसे बहुतसे पक्ष बाकी हैं जिनका नये बनते या बनते समाजके लिए वे आवश्यक हों। 'जुगलबन्दी' के बाद इसीलिए वह 'ढाईघर' में शायद 'ऐसे बहुतसे बाकी पक्ष' को उजागर करनेका प्रयत्न करताहै। पर ये पक्ष भी पाठककी पहचानसे बाहर कहां हैं ? यह ठीक है कि उनकी प्रस्तुति रोचक, विचार ऊर्जावान् और सुचिन्तित तथा सुनियोजित कथाकी बुनावट सहज और कलात्मक हो पायीहै। लेखक स्वयं मानताहै कि उपन्यास लेखन एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण रखता है। जाना-पहचाना कचोटनेवाला यथार्थ और उसमें अन्तर्निहित जीवन सत्य और सौन्दर्यको एक अपरिचित या विस्मयकारी-रूपमें फिर प्रस्तुत करना, रचनाकारकी शैल्पिक दक्षतापर निर्भर करताहै। इसके चरित्र विशिष्ट न सही, पर वे पाठकके मनपर अपना प्रभाव अवश्य छोड़तेहैं अपने अनवरत जीवन-संघर्षके कारण। हरिराय, रहमतुल्ला, किशनबाबू और रघुवर ऐसे चरित्र हैं ही। अन्य तो अपनी सापेक्षिक भूमिका-मात्र निभातेहै। फिर वे संस्कारोंके खूंटोंसे पूरी तरह बंधे हुएहैं, रायशाहीकी खानदानी परम्पराकी चौहद्दीको तोड़नेकी केवल एक ही चरित्रमें क्षमता दीख पड़ती है, और वह है रघुवर। पर अंततः वहभी अपने असामंजस्यकी मनःस्थितिसे ऊब कहां पायाहै ?—एक प्रकारका वैचारिक सरलीकरणका उन्माद उसपर छाया रहताहै, फिरभी उसका यह आत्मालोचन ही उसकी शक्ति हैं।

लेकिन चार सौ पृष्ठोंकी इस इकहरी कहानीकी विश्वसनीयता निरन्तर बनी रहतीहै, क्योंकि उसके पात्र सजीव हैं, जड़ नहीं। औलिया और उसकी दरगाह, कलाकी मांकी प्रेतात्मा, बाग बेचने और रुपयोंके साथ

डाकुओंका भास्करको घेर लेनेवाला मायाजाल, काली मेमका भूतनी-जच्चाको बच्चा जनाना आदि पक्ष इस वैज्ञानिक युगके पाठकके मनमें कोई विस्मय, कौतुहल या चमत्कार पैदा कैसे कर पायेंगे ? वह तो उन्हें तत्कालीन लोकविश्वासों (अंधविश्वासों) का ही अंग मानकर उस ओर ध्यान देताहै। वैसे इस लेखकका आशय भी मुख्य कहानीके साथ इन्हें बुनकर, कोई विस्मय पैदा करना नहीं रहा होगा।

इस लेखककी विशेषता यहभी है कि इस सारे खानदानी जीवन-प्रवाहको उसकी निर्मम तटस्थ दृष्टि देखती हुई—एक निर्मल कारुण्यका पारस-स्पर्शभी देती है—उपन्यासके अंतमें उभरती हुई प्रश्नाकुलता उसेही अभिव्यक्त करतीहै, और उसे जीवनके एक विस्तृत राग बोधसे सम्पृक्त करनेका प्रयत्न तो करतीही है। यह लेखक अपने लेखनके प्रति पूरी तरह प्रतिश्रुत है, अतः यह इसके लेखनकी भावी संभावनाके प्रति भी आश्वस्त करताहै। □

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

इतिहास-संस्कृति-कलाका काशी-केन्द्रित उपन्यास

नीला चाँद

उपन्यासकार : शिवप्रसाद सिंह

समीक्षक : डॉ. सत्यपाल चुघ

कालक्रमानुसार 'अलग-अलग वैतरणी' और 'गली आगे मुड़तीहै' के बाद 'नीला चांद' (सन् १९८८) सुप्रसिद्ध कथाकार काशीवासी शिवप्रसाद सिंहका तीसरा उपन्यास है। अपने प्रकाशनके पांच वर्षके भीतर ही यह तीन विशिष्ट पुरस्कारोंसे समादृत हुआहै। यह विशेष बड़े आकारका उनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास है, जो पूर्ववर्ती उपन्यासोंकी भांति प्रधानतः काशी-केन्द्रित है। जैसाकि लेखकने उपन्यासारम्भसे पूर्व स्पष्ट कियाहै—"मैं मध्यकालकी वह काशी देखना चाहताथा जो विदेशी आक्रान्ताओंके पहले थी·· वह समय मिल गया जब कर्ण कलचुरीने देववर्मा चन्देलकी हत्या की। पूरी जुझौतीको रौंदकर कर्णमेरु प्रासादमें अपने चारणों द्वारा नयी विरुदावली सुनी यानी 'कालः कालंजराधिपतये' कालंजर अधिपतिका काल गाहड़वाल लोग कर्णके पिता गांगेयदत्तके जमानेसे ही मन मसोस कर रह गये, क्योंकि उन्होंने आवश्यक अश्वों और आरोहियोंसे अपनेको सज्जित नहीं कियाथा। लक्ष्मीकर्णने अपने पिताकी ही भांति गाहड़वालोंको मामूली सामंत मानकर हमेशा दबाये रखा। उस समयकी काशी है यह यानी ईस्वी १०६० की।" इस कथनसे स्पष्ट है कि काशी, 'जिसका अर्थ ही है प्रकाश' (पृ. १९८), के नरेश कलचुरी कर्णही माने जातेथे और गाहड़वाल वंशज नृपतिचन्द्र, काशीमें रहते हुएभी दुर्बल होनेके कारण, इस सम्मानसे वंचित थे। उपर्युक्त कथनके पूरक और पृष्ठभूमिके रूपमें लेखकने एक 'जागृत व्यक्ति' से सुनकर, उपन्यासके कथानायक कीर्तिवर्माके माध्यमसे, अपने सार्थक इतिहास-बोधको यों अभिव्यक्ति दीहै :

"विक्रम संवत् एक सहस्र सत्तावन·· यह वही वर्ष है जिसमें महमूदने गजनीपर आक्रमण किया और अपने भाईसे सत्ता छीन ली। पिछले सहस्रों वर्षोंके इतिहास में···जनमेजय पारीक्षितसे लेकर अबतक भारतीयोंकी एक अक्षुण्ण परम्परा रहीहै कि वे अपनेको आर्य कहें और स्मृतियोंमें बताये हुए विधि-विधानके अनुरूप आर्यावर्तकी संस्कृतिकी रक्षा करें।···इस देशमें यूनानी आये, शक आये, कुषाण आये, हूण आये और सबके रक्तका मिश्रण होता गया। आर्यावर्तने इन विदेशियों को अपनी जागृत राष्ट्रवर्ती चेतनाके बलपर आत्मसात्

कर लिया, किन्तु अब एक नया चक्र शुरू होनेको है। सम्पूर्ण मध्य एशिया, यूरोप आदि महाद्वीपोंको झंझा की तरह झकझोर देनेवाली एक प्रचण्ड शक्तिका उदय हुआहै, जो युद्धके भारतीय आदर्शोंको स्वीकार नहीं करती। हमारा संस्कार था ब्राह्मणोंकी रक्षा, धर्मस्थलों, मंदिरोंको न छूना, युद्धमें बाल, वृद्ध और महिलाएं अभय घूमती रहतीं, किसान अपनी खेतीमें लगे रहते, युद्ध होते रहते। दिन शत्रुओंकी प्रतिस्पर्धामें व्यतीत होते, रात दोनों सेनाओंके लिए विश्रामका समय मानी जातीं, अब यह सब नहीं होगा। इसे तुर्कों ने धर्मयुद्धका नाम दियाहै।···पुर गाँव, सब उनकी धार्मिक उन्मत्तताकी भेंट चढ़ेंगे, मन्दिर टूटेंगे, प्रासाद जला दिये जायेंगे, बर्बर तुर्क सैनिक सुन्दर और स्वस्थ महिलाओंसे विवाह कर लेंगे, या रखेलोंके रूपमें स्वीकार कर लेंगे, शेष लोग गजनी और मध्य एशियाके बाजारोंमें नीलाम किये जायेंगे। हमारे सामने दो ही विकल्प हैं या तो लड़ते हुए वीरगतिको प्राप्त करो या इनके धर्मको स्वीकार करके आश्रित बन जाओ," (पृ. १५-१६)।

'जागृत पात्र' के रूपमें लेखककी आत्माभिव्यक्ति ने स्पष्ट कियाहैं कि उस समय भारतका इतिहास उस अन्तिम चरमोत्कर्षको छू रहाथा, जिसके बाद नीचेही ढुलकनेका क्रम शुरू हुआ, छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त, व्यक्तिगत अहंकारोंकी संतुष्टिमें परस्पर युद्धोंमें रत राजा बर्बर विदेशी आक्रान्ताओंका मुकाबला करनेमें असमर्थ थे। उत्तर भारतको रौंदते हुए महमूद गजनवी को कोई रोक सका था तो वह कीर्ति वर्माके पितामह चन्देल विद्याधर देव (मृत्यु १०४० ई.) ही थे, जिनके पराक्रमका परम्परा-सूत्र हर्षदेव वर्मा, धंगदेव, गंडदेव तक विस्तृत है और प्रतिनायक कर्णके पिता गांगेयदेव तथा प्रजाप्रिय भोज परमार जैसे उसके चरणोंमें शिष्य की तरह बैठकर अपनेको धन्य समझतेथे। (पृ. १३)। 'विधाधर मध्ययुगका महान् सम्राट् था।···वह अत्यंत स्वाभिमानी, अद्भुत व्यूह-संरचना-पटु, आर्यधर्मका रक्षक और अपने समयका अद्वितीय सेनानायक था।' 'तूफानकी भांति बढ़ती याविनी सेनाको पूरब और दक्षिणमें जानेसे विधाधरने रोक लिया।' महमूदको उसका मित्र बनना पड़ा। महमूदने १०२९ ई. में सेलजूकके पुत्रको बंदी बनाये रखनेके लिए विद्याधरको स्नेह-पत्र लिखा। (प्रामाणिकताके लिए लेखकने अभीष्ट इतिहास-पुस्तकोंका आश्रय लियाहै। द्रष्टव्य संदर्भ-सूची पृ. ६४६-४७)।

विधाधर इस उपन्यासमें प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष पात्र के रूपमें पर्याप्त स्थान पा सकाहै और इसी नाते कथानायक राजा कीर्तिवर्माके आस्थावान् संस्कारों एवं उसकी युद्ध-निपुणताकी संगति-सिद्धिमें भी सहायक रहाहै।

इस उपन्यासका प्रतिनायक है कर्ण। लेखकने इसकी परम्पराका भी उल्लेख कियाहै। राजा कीर्तिवर्मा का अमात्य गोपाल शपथ खाकर कहताहै "जबतक इस चेदि कुल-कलंक, हैहयवंशी, कर्ण डाहरियाकी सेनाको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न न कर दिया, जैसे भगवान् परशुरामने इस वंशके आदि संस्थापक सहस्रबाहु अर्जुन को परशुसे काट-काटकर पूरी पृथ्वीको भयमुक्त किया था, तबतक मेरा विश्रामस्थान अश्वकी पीठपर ही होगा" (पृ. १९)। 'काशीके सर्वाधिक गौरवपूर्ण और प्रसिद्ध महालय' कर्णमेरुके बारेमें लेखकने एक ऐतिहासिक जनश्रुतिका आश्रय लियाहै, जो मालवा मंडलके अधिपति, धाराके प्रजाप्रिय नरेश भोजकी कीर्ति (पृ. ४०-४१) से दग्ध होकर उसे मात देनेको स्पर्धासे भरी हुईहै। (संदर्भ सूचीमें मेरुतुंगाचार्यकी 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से इसे प्रमाणित किया गयाहै। पृ. ६४७) भोजके दासीपुत्र भरथरीने स्पष्ट कियाहै कर्णदेवने धाराको जला देनेके बाद स्वर्णहाट, सामंतोंके राजप्रासादों और भोजके कोशागार···गणनायककी मरकत निर्मित प्रतिमा··· आदि छीन लिये। उसी समय चालुक्य भीमने तुझे आ दबोचा। उसके अमात्य डामरने बत्तीस पदातिकोंको लेकर लूटकी खुशीमें निश्चेष्ट सोये तुम्हें पकड़ लिया। तुम्हें लाचार बंदरबांटके लिए झुकना पड़ा।···" (पृ. ४१३-१४)। जहांतक कर्णके पिताका सम्बन्ध है उस दृष्टिसे तुर्क सेनापति नयाल्तगीनके काशीपर आक्रमण का संक्षिप्त विवरण दिया गयाहै। 'काशी-नरेशकी विरुदावली धारण करनेवाले (कर्णके पिता) कलचुरी गांगेयदेवके प्रतापको, विक्रमादित्यकी उपाधिको रौंदकर वे चले गये। तुरुष्क आक्रमणसे हारकर गांगेयदेवने अत्यन्त लज्जाके कारण अपनी सौ रानियोंके साथ प्रयाग में गंगामें समाधि ली। इस बीच (गाहड़वाल राजा) चन्द्रदेवने काशीको अपने राज्यमें मिला लिया और वही स्थिति अब भी है। किन्तु उसके प्रचंड शत्रु लक्ष्मीकर्ण ने काशीको केन्द्र बनाकर पूरबमें अपनी विजयोंसे समूचे

पूर्वांचलको अपने अधीन कर लिया। चन्द्रदेवको एक सामंतसे भी हीन और उपेक्षणीय जीवन बिताना पड़ रहाहै, क्योंकि काशीका असली शासक तो लक्ष्मीकर्णही है।" (पृ. ३५ तथा संदर्भ-सूची पृ. ६४७)।

यों चेदि और चंदेल दोनों ही चन्द्रवंशी कहे गये हैं। अत: जाति, वंश या रक्तकी शुद्धताका अभिमान न राजा कीर्ति चन्देल कर सकतेथे, और न ही कर्ण। लेखक को भी यह अभीष्ट नहीं था। शक्तिकी दृष्टिसे भी चेदि सेनाने जैजाकभुक्तिको रौंदते हुए हिमाचल प्रदेश के कीर (कांगड़ा) तक की विजय-यात्रा भी की। (पृ. १३१)। किन्तु कर्णको प्रतिनायक और कीरतको नायकके रूपमें उजागर किया गयाहै क्योंकि दोनोंको क्रमश: अनार्य एवं आर्य संस्कृतिके प्रतिनिधि-प्रतीकके रूपमें घटनात्मक अभिव्यक्ति दी गयीहै। उन दोनोंके युद्धों और उससे सम्बन्धित घटनाओंका स्वरूप इसे प्रमाणित करताहै। कर्णसे जनताकी प्रीति नहीं है, उससे भयभीत रहतीहै। इसी आधारपर अनन्त कर्णसे प्रश्न कर सकाहै इतनी विजयोंके बादभी जनता कर्णके प्रति विद्रोही क्यों है? इसका कारण है कर्णकी सेना के आर्य-युद्धके आदर्शोंकी उपेक्षा करते हुए अतिवादी अत्याचारोंका आश्रय लेना (पृ. १३१)। इसका मूल कारण कर्णका अपना अनार्यमूलक आचार-व्यवहार है और कीरत और उसके सहयोगियोंका आर्यादर्शोंका अवलम्बन जो भारतीय इतिहासके सबसे महान् "मर्यादा पुरुषोत्तम राम" के "एक पत्नीव्रतका रूप दिखानेके लिए अवतार लेने" की मूलगामी दूरवर्ती परम्परा तक अन्त: सूत्रित हैं। (पृ. १९३)। दोनोंके युद्धज संघर्ष सांस्कृतिक संघर्षका स्वरूप ग्रहण कर लेतेहैं। यों तो, सामान्य स्थितिमें, कर्ण भी अपनेको आर्य कहताहै, वह माहेश्वर है, किन्तु अपनी रूपगर्विता हूण राजरानी अम्बलदेवी पटरानी (पृ. १८) के प्रभावमें वह अनार्य आचरण ही नहीं करता अनार्य होनेपर गर्वभी करताहै —वैसे भी हम अनार्य है और उन्हें (आर्योंको) अंगूठा दिखाते रहेंगे" (पृ. ५८३)। भरथरी उसे 'राक्षस' और 'म्लेच्छ' कहताहै (४११) और गोपाल उसे 'व्यवहार और शिष्टाचारसे शून्य पशु'। (५२८) उसकी म्लेच्छताको प्रमाणित करनेके लिए गुरु गोरखनाथके शिष्य भरथरीने उसपर 'अभियोग' लगाते हुए पूछाहै —"क्या तुमने (भोजकी) धाराको लूटा, प्रासादों को जलाया और जिस प्रकार तुमने खजुराहोके विश्वविख्यात मंदिरोंको आगकी लपटोंको सौंप दिया, उसी प्रकार भोजके सरस्वती-भवन, कनक सभाको भी राख में बदल दिया? भोजकी सरस्वती-सभा एक अद्भुत प्रतीक थी कला और लालित्यकी, वह वाग्देवता साक्षात् जीवित मंदिर था।…" (पृ. ४१२)। अन्यत्र कर्ण द्वारा नन्दीश्वर मंदिरको घेरनेकी आशंकासे प्रेरित होकर वह उसे श्वानसे भी अधिक असभ्य और भेड़ियेसे भी अधिक निर्मम कहताहै। (पृ. ४४७)।

'नीला चांद' का आरम्भही कर्णकी अनार्य करतूतों से हुआहै, ऐसी जो संदर्भगत पात्रों —कीरत, गोपाल, अनन्त पात्रोंको इनकी याद दिला-दिलाकर कर्णसे बदला लेनेके लिए स्फूर्त एवं संकल्पबद्ध करती रहीहैं। पहली है कर्ण द्वारा जुझौतीके चंदेल राजा, विद्याधरके पौत्र, चौकीपर ध्यानस्थ बैठे निरवंशी वीतराग देववर्माकी हत्या—जिसके कारण विवश होकर उसके छोटे भाई कीरत या कीर्तिसिंहको राजा बनना पड़ा —और दूसरी है "अन्त:पुरमें सैनिकोंके साथ जाकर देववर्माकी पत्नी राजराजेश्वरी तारादेवीको बन्दी बनाकर अपने अन्त:पुरमें डालनेकी घोषणा या इच्छा जिसे कर्णमेरुके खचाखच भरे सभागारमें उसने स्वयं कीथी। तारादेवीका व्यंग्योपहास करते हुए कहाथा कि 'ये चन्देल भी कितने गधे हैं जो सड़ी-गली परम्पराका बोझ ढोतेहैं। ऐसी सुन्दरी विदुषीको चितामें जल मरनेकी इच्छा क्यों जगी? मैंने पतिव्रता तो सुनाहै पर चन्देल पत्नीव्रत होतेहैं यह नया आदर्श है", (पृ. ५२८)।

इस प्रकार 'नीला चांद' का आरम्भ महाकालकी आगकी लपटोके साथ हुआ—एकाध खजुराहोके मंदिरों से संयुक्त जैजाकभुक्तिके प्रदेश-प्रासादों और अपने सम्मानके लिए चिता बनाकर स्वयमेव सती हो जाने की दु:खद घटनाओंके साथ हुआहै। ये घटनाएं वस्तु-निर्देशात्मक हैं। अपनी भाभीजीका विशेष सम्मान करने, और उनके द्वारा पुत्रवत् पाले हुए कीरतके हृदय में कर्णसे प्रतिशोधकी लपटें उठानेमें यही उत्तरदायी रहीहैं। इसी आधारपर आर्य-अनार्य—महमूद जैसे विदेशियोंके आक्रमणके स्वरूपको दृष्टिमें रखकर उनके आचार-व्यवहारके लक्षणोंका विश्लेषण हो सकाहै। लेखकने स्थान-स्थानपर तारादेवीके सती होनेकी घटना का स्मरण दिलायाहै जिससे कीरत जैसे सामंतीय परिवारके सदस्य ही नहीं पूरी जुझौती इससे स्फूर्त होती रहतीहै —"प्रतिशोधकी शपथ दिलानेवाले सती-ध्वज, कन्दराओं, गुफाओं, गांवों, दुर्गम पहाड़ियोंमें

बसनेवाले आदिवासियोंके साथ-साथ परिक्रमा कर रहे हैं। (पृ. ४७९)। सती धर्म एक सामाजिक जागृतिके संस्कारके रूपमें उभर उभरकर सामने आयाहै और चंदेलोंके लिए शक्ति सिद्ध हुआहै।

कर्णदेवके विरोधमें नृपतिचन्द्र या गाहड़वाल वंश कह लीजिये, चन्देलोंके साथ स्वाभाविक रूपसे जुड़ गया है, क्योंकि दोनोंका शत्रु एक है।" (पृ. ९७)। इसमें एक प्रौढ़ पात्र रज्जुकका व्यक्तित्व है जो एक ओर विद्याधरदेवसे सम्बद्ध है और दूसरी ओर गाहड़वंशकी सेवाका आधार है। इस जुड़ावका एक कारण कीरतके पूर्वजोंके विविध साक्ष्योंके अनुसार काशीनरेश केवल गाहड़वालोंको स्वीकारा गयाहै (पृ. ५८); दूसरे, कर्ण-पक्षसे संरक्षित बौद्ध वज्रयानी 'राक्षस' अपने तथाकथित धार्मिक कृत्यकी पूर्तिके लिए प्रतिहार वंशकी राजकुमारी अपूर्व सुन्दरी युवती गोमतीका अपहरण करतेहैं और कीरत अपनी कौशलपूर्ण शूरवीरतासे उनके चंगुलसे उसकी रक्षा करताहै। यह घटना पहले आंतरिक प्रेम और अन्ततः दोनोंके दाम्पत्यमें फलीभूत होतीहै। साथ ही यह चंदेलों-प्रतिहारोंको जोड़ने एवं कर्णके संयुक्त विरोधमें परिव्यक्त होती रहतीहै। गोमती जिस स्वर्गीय सामंत सोमेश्वरकी पुत्री है, वहभी महमूदको रोकनेमें वीरगतिको प्राप्त हुआथा।

अन्यत्र यज्ञोत्सवके लिए एकत्रित काशीके वैशिक वीथिकाके चित्रण एवं कर्णके पक्षधर राजाओंकी काली करपूतोंके अनावरणके संदर्भमें वेश्या जीवनसे अलग रह केवल गायिका-नृत्यांगना सुनंदाके शील-भंगके आसन्न संकटकी स्थितिमें चितापर आरूढ़ होनेसे बचानेके लिए कीरतकी वीर तत्परता एवं अद्भुत व्यूह-रचनाकी कुशलता सामने आतीहै। इसी प्रकारकी अन्य रोमांचकारी घटनाओंकी विचित्रता, जो कर्णको घायल और बंदी करने या उसके पुत्र यशःकर्णको पकड़ने या गाहड़वालोंके अनियंत्रित घोड़े रिपुंजमको वशीभूत करने, या पारसको बचाने, कर्णके विभिन्न सेनापतियों-सेनानायकों, अश्वगंध, पिंगलाक्ष, गजदन्त कलचुरी, भीमवर्मा, वीरविजय राष्ट्रकूट, चण्डदेव कलचुरी आदि—को समाप्त करनेसे सम्बद्ध हैं, सभी किसी-न-किसी प्रकारसे जहां 'नीला चांद' की रोचकताके सामान्य सातत्यको बनाये रखतीहैं, वहीं विशेषतया कीरत और सामान्यतः उसके पक्षधरोंके चरित्रके उज्ज्वल पक्षों एवं सीमित साधनोंसे अधिकसे अधिक कर दिखानेको उजागर भी करतीहैं। इसीमें सहजही 'नीला चांद' की उद्देश्यकी उदात्तता भी संयुक्त रहीहै। उपर्युक्त चर्चित विभिन्न प्रसंगोंमें व्यापक मानवताके अर्धांगकी पीड़ा—नारी-पीड़ा—का युगयुगीन उद्देश्य सामने आताहै; 'नीला चांद' प्रश्न करताहै—"क्या युग-युग तक नारीको सब झेलते रहना होगा? दो मुट्ठी अन्नके लिए दीनसे दीन किसान अपनी बहू-बेटीको पण्य नहीं बनाता, पर यदि राजे-महाराजे इसी प्रकारके हुए तो बचाव कहां है?" (पृ. ५४७)। ब्राह्मण होकर भी धर्मकी आड़में भोलीभाली नारियोंको फंसाने और वेश्यालय चलानेवाले विनायक भट्टके लम्बे प्रसंग भी जहां नारी पीड़ाको सामने लातेहैं वैसेही ऐसे 'धार्मिकों' का सिर उतारनेकी शपथको सफल करनेवालोंको भी जन्म देतेहैं। बंधुजीव उससे प्रश्न करताहै—तेरी चौथी पत्नी तुझसे बीस वर्ष छोटी ...पुत्रीकी आयुकी युवतीके साथ विवाह करना चाहिये? (पृ. १०२)। तुलसी, दुलारी, नंदन. मिस्सर की कहानी शूद्र कन्याओं या दासियोंकी व्यथा-कथाको व्यक्त करताहै। (२६ वां परिच्छेद)। शिंजनी एवं उसकी माता माणिक्यप्रभा दोनों कर्ण-सेनापति अश्वगंध—क्रमशः पति-पिता से उसके कामुक देह-विक्रेता सुन्दरियोंके जमघटसे घिरे रहनेके कारण घृणा करतीहैं। (२० वां परिच्छेद)।

कीरतकी पितामही शीला मां—विद्याधरका लम्बा पूर्वापर वृत्त अपेक्षया अधिक मार्मिक है नारी-पीड़ा और नारी-गरिमा दोनोंको सामने लाताहै। भारतमें सदियोंसे नारीपर अत्याचार हो रहेहैं। यह सब कुछ नायिका-भेदके बहानें हो रहाहै। किन्तु नारी न तो पूर्णतः दक्षिणा है न पूर्णतः वामा, वह एक साथही दोनों है। "यदि सभी राजवंश चंदेलोंकी तरह एक पत्नीव्रतका पालन करें तो नायिका-भेदकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी" (पृ. २६६)। कीरतकी कठोरता भी नारी-मात्रके साथ हो रहे अन्याय-अत्याचारोंको उत्तरदायी ठहरातीहै—"मैं निर्दयी क्यों बना. मेरी प्रजासे पूछें। किशोरियों, युवतियों यानी नारी-मात्रके साथ सामूहिक बलात्कार करनेवालोंके लिए मैंने अपने भीतर श्रीयोगमायाको ही नहीं, ताण्डवमें लीन शिवको भी जगायाहै।..." (पृ. ५६४)। लेखकने विचार ही व्यक्त नहीं किये, सबल पात्रियोंकी सर्जना भी कीहै। शारदा मां विद्याधरके सम्बन्धोंका वृत्त अर्धनारीश्वरके आदर्श पर बल देताहै। वह बौद्ध कापालिकोंसे डोम्बी शूद्र

वासंती की रक्षा करतीहै —'काल भैरव' के रूपमें कुत्ते मांकी आज्ञाका पालन करतेहैं (पृ. ३२०)। कीरत-पत्नी गोमती कीरतकी 'सहयात्री' है — वह प्रेमही नहीं रणमें भी आग्रहपूर्वक पतिका साथ देतीहै। अन्तू-पत्नी चम्पक 'विद्योत्तमा' (पृ. १२४) ही नहीं 'चण्डी' वीरेश्वरी भी है; वह धोखेबाज बौद्ध कापालिकपर वार करनेके लिए अपनी छिपाई हुई लघु-खड्गसे झपट भी सकतीहैं। (पृ. १६७)। अभिमन्युकी बहन राजपूतबाला कान्ति भी 'सौम्य चंडी' (पृ. ३३१) है।

नारी महिलाके साथ-साथ लेखक पीड़ित-शोषित मानवता—जाति-भेद, छुआछूत, आर्थिक दृष्टिसे निम्न वर्गीय लघुता या साधारण जनताके प्रतिभी समतुल्य सजग एवं विचारोत्तेजक संवेदनासे आपूर्ण रहाहै। कीरतसिंहके माध्यमसे लेखकने स्पष्ट कियाहै प्रजा-भक्ति और प्रजा-उपेक्षा या उसका पीड़न ही एक राज्य—राजाकी सफलता-असफलताके मूलाधार हैं। कीरत की यह विशिलष्ट व्याख्या है कि उसके भ्राता देववर्मा की हत्या वर्षोंतक प्रजासे कटे रहनेकी निष्क्रियताके कारण हुई—ऐसे राजाकी हत्या कर्ण द्वारा हुई किन्तु यदि स्वयं प्रजा भी उसकी हत्या कर देती तो उसे आश्चर्य न होता। उसके पितामह विधाधर देवकी सफलता प्रजाका राजाको उनका पारिवारिक सदस्यके रूप में विश्वास सम्पादन था—शत्रु पर सर्वदा विजयके पीछे उनकी प्रजाकी जयजयकार थी। "स्वयं अपनेको भी वह इसलिए दोषी मानताहै क्योंकि उसने बड़े भाईकी निष्क्रियताको दूर करनेके बजाय उत्तरापथकी परिक्रमा करनेको महत्त्व दिया जिससे प्रजाने अपने स्मृतिकोशसे उसका नाम भी निरस्त कर दिया। सारांशमें "राजा का आकर्षण भूमिसे नहीं, प्रजासे जुड़ना होताहै" (पृ. ११८-१९)। राजाका अमात्य भी मानताहै कि कीरत जो नया प्रभात लाना चाहतेहैं वे राजकीय औपचारिकताको तोड़कर प्रजाके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलते रहनेके व्रतमें हैं। आदिवासी सूरज गोंडको वे 'काका' कहतेहैं, बब्बरनट को चाचा कहतेहैं। लोचन गोंडको 'वत्स' कहतेहैं। उनको देखकर लगताहै कि अब नाना ढंगसे प्रजाको चूसनेवाली सामन्त-व्यवस्थाकी मृत्युका समय आ गयाहै।" (पृ. ५३८)। ऐतिहासिक अतीतके वातावरणका अप्रचलित शब्दावलीसे सफल मूर्त करनेवाले डॉ. सिंह जो स्वयंमें ऐतिहासिक उपन्यासका पहला बड़ा उद्देश्य होताहै और इसमें वह सफलभी रहेहैं—सहसा अतीत एवं वर्तमानको अन्तःसूत्रित करनेवाले ऐतिहासिक यथार्थवादके वशीभूत होकर 'प्रजाको चूसनेवाली सामंत-व्यवस्थाकी मृत्युका समय' जैसी आधुनिक शब्दावलीमें कीगयी भविष्यवाणीपर उतर आतेहैं। वस्तुतः, कीरत और अन्नू ही नहीं अन्य अनेक पात्रोंसे भी जात-पांत-भंजक दृष्टि और लघुतमको अपनानेकी औढ़र आत्मीयताका स्थान-स्थानपर प्रतिपादन हुआहै, जो 'नीला चांद' के उद्देश्य को मूल्यवान् बनाताहै। परोक्ष किन्तु सजीव पात्र विद्याधर शीलाको प्राणीमात्रकी एकताके आध्यात्मिक आधारसे विस्तार-पथपर बढ़ता हुआ अभिभूत करता हुआ कहताहै—"(मैं) ने कभी भी अस्वीकार नहीं किया कि शूद्र, वर्णसंकर, यहांतक कि चाण्डाल, कुत्ते; कौए, हाथी आदिमें एक ही परम तत्त्व विद्यमान है और वह है ब्रह्म चिदाकाशका महत् प्रकाश अर्थात् मध्य सूर्य।" (पृ. ३४३)।

लेखकने एक साहित्यकार सुबोध प्रतिहारके माध्यम से विचार रखाहै—"हमारे पूर्वज भी कितनी पुरानी मिथक कथाओंसे साधारणजनको बहलानेका प्रयत्न कर गयेहैं।" (पृ. १८६)। लेखककी इस मिथकीय दृष्टि ने कथानकमें अनेक मिथक कथाओंके प्रसंगानुसार विनियोगसे जहां पाठकोंको 'बहलाया' है वहां चिंतनमें गहराई लाकर विचारभी प्रस्तुत कियाहै, जैसे आद्य शंकराचार्यको उनकी दिग्विजयी विचार-यात्राको काशीका एक चाण्डाल—चारों वेदोंको हाथमें लिये इन्दुकलासे सुशोभित चाण्डाल रूपमें भगवान शंकरको चुनौती देताहै "…क्या ब्राह्मण और चाण्डाल में भेद ढूंढ़ना अद्वैतवादियोंके लिए ठीक है? गंगा तथा मदिरापर प्रतिबिंबित होनेवाले सूर्यमें क्या कोई कोई भेद है? अचिंतनीय, अव्यक्तको भुलाकर हाथीके कानके समान चंचल इस शरीरमें अहं का आरोप क्यों कर रहेहैं?" पहले कुंठित किन्तु बादमें विवेक सम्पन्न शंकरका उत्तर था—'हे प्राणियोंमें श्रेष्ठ! आपने जो कुछ कहाहै, वह सत्य है, जो चैतन्य विष्णु, शिव आदि देबताओंमें स्फुरित होताहै, वही कीड़े-मकोड़े जैसे क्षुद्र जीवों तक में स्फुरित है। यह जिसकी बुद्धि हो वह चाण्डाल भले हो, मेरा गुरु है।' (पृ. १८०-८१)। विचारोंसे ही नहीं लेखकने व्यावहारिक रूपमें भी 'नीला चांद' में दलितोंको विशेष अधिकार-सजग ही संगठित भी दिखायाहै, जो भरत

डोमके प्रसंगोंसे स्पष्ट है। उसके इस विद्रोही कथनमें यह सामूहिक शक्ति ही उद्घोष कर रहीहै—"…जिन शास्त्रकारोंने डोमों, चाण्डालोंका नगर-प्रदेश वर्जित किया, उन्हें बुलाकर पशु और मनुष्योंके शव निकलवाओ। हम काशीकी सीमासे बाहर रहतेहैं। हम परिश्रमकी रोटी खातेहैं।" (पृ. ५१३) इस दृष्टिसे ४७वां परिच्छेद भी देखने योग्य है)। एक विशिष्ट प्रसंगमें 'आत्माके संस्कार' पूजा-आराधना और खानपानकी रूढ़िमुक्त उदारताका प्रश्न भी उठाया गयाहै जो शरीरके संस्कार हैं। यह वैष्णवोंके मछली खानेको लेकर है। (पृ. ३४३)।

'नीला चांद' में आदर्श-अभिजात पात्रोंके संस्कार भी ऐसे अंकित हुएहैं, जो उन्हें ठोस भूमिकी माटीसे जोड़कर उनके निम्नवर्गीय मानवतासे रिश्तेको प्रगाढ़ वनाते रहतेहै। कीरतसिह स्पष्ट करताहै—"…मैं उन राजकुमारोंमें नहीं हूं जिन्हें बिना तूलतल्प और उपाधानके नींद नहीं आती। मैं तो बाबा पृथ्वीपुत्र हूं। दलित शोषित प्रजाके लिए रोनेके अतिरिक्त मैं क्या कर पाऊंगा? अपनी भुजाओंपर सिर रखकर चट्टानों पर आकाशके नीचे मैंने पन्द्रह वर्ष बितायेहैं।" (पृ. ५६४)। रानी गोमती भी स्वीकारतीहै कि वह जिस रानीपनसे मंडित हुईहै, वह "रानीकी झोंपड़ीसे जुड़ने के कारण है।" (पृ. ४०८)।

सामाजिक सुव्यवस्था एवं आत्म-परिष्कार जनित चरित्र-निष्ठा 'नीला चांद' में परस्पर पूरक रूपमें अवस्थित हैं। शीला-विद्याधरदेव जैसे पात्रोंका वृत्त "अध्यात्म और लौकिकताको युगपत् साध लेनेकी योग्यता" लियेहैं। (पृ. २७२)। तत्कालीन हो या वर्तमानकालीन, भीतर-बाहरकी, कथनी-करनीकी विषमता जिस पाखंडको जन्म देतीहै वह व्यक्ति समाज दोनोंके लिए घातक है; यह कथन संगत-सार्थक है—इस नगर (काशी) में मैंने सैकड़ों ब्राह्मणों, क्षत्रियों और श्रेष्ठियोंको देखाहैं, जो अपनेको धर्मका आश्रय-स्थल मानतेहैं। वे दरिद्रों, दासों, शूद्रों, धर्मकारों, चाण्डालोंके उद्धारके उद्देश्यसे आत्मप्रचारमें तल्लीन रहतेहैं। स्वयं उनकी अंतरात्मामें सड़ी-गली परम्पराके कीड़े कुलबुलाते रहतेहैं। वे जब अपने भीतरके जंगल (कीचड़) को दूर नहीं कर सकते तो दूसरोंके लिए क्या कर पायेंगे।" (पृ. १८१)। यही स्थिति कलकी बजाय आजके लिए अधिक बेकल करतीहैं। यहीं व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चरित्रका संकट पैदा होताहै और जिसे कीरतके पितामहने अपनेमें विरोधी गुणोंके सामंजस्यसे साकार कियाथा। वह अद्वितीय योद्धा होकर भी स्वार्थ या अहंकारके लिए युद्ध नहीं करता और शंकरके मानस पुत्रकी भांति संन्यस्त-सा रहते हुएभी प्रजाप्रिय भी है और अर्धनारीश्वर भी। उन्हींके संस्कार लिये कीरत मर्माहत उन्मथित होताहैं तो कर्ण-पुत्र यशःकर्णके झूठे आरोपसे क्योंकि, जैसाकि वह कहताहैं, "मेरे पास अपनी दीन दुःखी प्रजाके लिए केवल एक बहुमूल्य उपहार था—चरित्र। यदि मेरी प्रजा मुझे चरित्रहीन कहकर निष्काषित कर देती तो मुझे उसकी आज्ञा शिरोधार्य होती" (पृ. ५७१)। उसने न कभी मदिरापान किया, न परस्त्री-सम्भाषण (पृ. ५६२)। आर्य आचार की ओर वह इतना सजग हैं कि विपक्षी कर्ण ही नहीं, उसके जामाता, बेटियों, पुत्रकी क्षमा-प्रार्थनाओंको वह चार-पांच बार मान लेताहैं ताकि महाशिवरात्रिपर कर्णके सप्तम चक्रवर्ती होनेके उद्घोषणा-यज्ञके अवसरपर काशीसे बाहरसे आनेवाले राजा-महाराजाओंपर उसके अनार्य आचरणका बुरा प्रभाव न पड़े। 'काशीके गौरव' (पृ. ५५६) के लिए उसने अपनी प्रतिशोध ज्वालाको भी खुल-खेलनेका अवसर नहीं दिया—वह धीरोदात्त बना रहा। विद्याधरदेवके आदर्शकी तरह वह शत्रुको भी योजना बनाकर अपमानित नहीं करना चाहता (पृ. ५२०)। वह चाहता तो कर्णको पहली बार ही मात्र घायल न कर मार सकताथा किन्तु उपर्युक्त कारणसे ही वह ऐसा नहीं करता उसकी वदान्य क्षमाशीलता ही प्रधान रही। वह शत्रुके अनार्य आचरण का प्रतिशोध अनार्य आचरणसे नहीं लेना चाहता। (पृ. ५२३)। कर्णकी बेटीके प्रति उसकी भावना भी काशीकी मूल भावनासे अनुशासित है—"हम काशीमें जन्मी किसीभी बहू-बेटीको अपनी बहू-बेटी मानतेहैं।' (पृ. ४८५) कर्णकी श्रीमर्ताको वह 'राजमाता', 'मातुश्री', का आदर देताहै और उसके चरण छूताहै।

'नीला चांद' का समापन इस या उस युगकी नहीं, उस चिर आवश्यकताके अनुकूल हुआहैं, जो विपरीत या संकटग्रस्त परिस्थितियोंमे मनुष्यको निराश-निष्क्रिय बना उसकी गतिको अवरुद्ध कर देतीहैं। अपनी हारी-टूटी अवस्थामें हम मंत्र-तन्त्र या ज्योतिषियोंके चक्कर में पड़कर मानवताकी विजय-यात्राके उसे आधारभूत स्थायी सम्बलको भूल जातेहैं, जो सदा हमारे पास

सोया-खोया-सा रहताहै और उसे जगाना भर पड़ताहैं —वह है अपने-अपने मनके छोटे-से आकाशमें अमोघ इच्छा-शक्तिका नीला चांद जो 'ढकोसलों', या 'नियतिको जाननेवाले दांभिकोंकी भविष्यवाणियोंसे नहीं', 'खुद कालिमामें डूबकर' देखाजा सकताहै। (पृ. ६४५)। यह सारगर्भित अवतरण अन्तमें आपाततः नहीं आया, ('नीला चांद' की प्रतीकात्मकतासे रहित) इसका सीधा कथन प्रधान पात्रोंके संदर्भमें पहलेभी भिन्न-भिन्न शब्दोंमें होता रहाहै। जो प्रभाववर्धनमें निश्चित रूपसे सहायक रहाहै। जैसे कथानायक कीरतूको ही देखें तो पृष्ठ ५८ पर ही व्यक्त हो गयाहै कि दृढ़ इच्छा शक्तिके आगे वह सामुद्रिक, शकुन आदिपर विश्वास करके राजपुरुषोंको विशेष प्रकारकी अंगूठियां आदि पहनने या सेना-संचालनके लिए उपर्युक्त मुहूर्तोंकी प्रतीक्षा करनेको 'पोंगापंथी' 'व्यर्थकी बकवास' मानताहै। अन्यत्र वह स्पष्ट करता है कि "संकटमें न भगवान्‌का नाम-जाप काम करताहै" न 'सिद्ध पुरुषोंका आशीर्वाद', कवच बन पातीहै तो दृढ़ इच्छा शक्ति एवं तत्प्रसूत विभिन्न प्रकारके कर्ण-कौशल (पृ. ४४९)। गोविन्दके चरित्र-परिवर्तनसे स्पष्ट हुआ कि उपर्युक्त विश्वासका अर्थ दम्भ-अहंकार की क्षुद्रता नहीं, 'अतुलनीय इच्छा-शक्ति और आत्मबलकी जागृतियोंसे (पृ. १८५) आस्थावान् बननाहै (पृ. १७७)। अमात्य अनन्त भी "मनमें आत्मदीप जलाने" के संकल्पको दैवी शक्तियोंसे महत्त्व देताहै। (पृ. ४५२)। प्रश्नीकरणका आश्रय, ईश्वरपर विश्वास न करनेवाला, रत्नेश शर्मा भी अपनेपर, मात्र अपनेपर विश्वास करनेवाले चेहरेमें भी एक आभा होतीहै' को रेखांकित करताहै। (पृ. २१५)। अपने अन्तिम समय में विद्याधरदेव चंदेलोंके सेनापतिके रूपमें जिस पात्र गोपालका चुनाव करताहै उसकी कसौटी उसके अनुभव, युद्ध-कौशल नहीं, अकुंठ-अपरिग्रही आस्था है; वह कहताहै—"मैं अनुभवको आस्थासे बड़ी वस्तु नहीं मानता। अनुभव अतिरेकको छूकर प्रवंचित कर सकता है, कुछ और आगे बढ़नेकी त्वरा धोखा दे सकतीहै, आस्था निरंतर अपनी प्रभाको, अपने सही रूपको पाने की साधनामें लगाये रहतीहै। (पृ. ८८, ४४८)। गोविन्दके पिता मदन अवसाद और निरुत्साहके रोगसे विक्षिप्त रहतेहैं, जिसे वैद्य, ज्योतिषी, कर्मकाण्डीय आचार्य एवं तांत्रिकों आदिके उपाय और भी निराश करतेहैं, किन्तु शीलामांके संस्कारयुक्त सम्पर्क-जनित मनोवैज्ञानिक बानगीसे उसकी अन्तश्चेतनामें आत्मविश्वास जगाया जाताहैं। (१८वां परिच्छेद)। लेखकके विपक्षमें यही बात हैं कि इसका कथन अधिक हुआहैं चित्रण नहीं।

शैव-वैष्णव आदि धार्मिक एकतासे लेकर काशीके बाह्य—मंदिरों, प्रासादों, पथों, गलियों, व्यापार-स्थलों (गहनों, कपड़ों आदि) एव भौगोलिक परिवेशका 'अवलोकन' भी कराया गयाहैं, 'आंतर' काशीका 'दर्शन' भी। (पृ. २९५, ४१४) इस दृष्टिसे कथा-धाराकी अविच्छिन्नताकी भी उसने चिन्ता नहीं की। अन्तमें 'वाराणसी' का परिश्रम-साध्य नक्शा भी दिया गयाहैं।

वाराणसीके अनुकूल संस्कृत भाषाके महत्त्वको भी रेखांकित किया गयाहै, जो श्लाघ्य है किन्तु अनुपयुक्त रूपसे वह उसकी वर्तमान स्थितिकी भविष्यवाणी सी करने लगताहैं। (पृ. ३४४-४५)।

शिवप्रसाद सिंह 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा—जैसे अनुसंधानपूर्ण कार्योंमें रत रहेहैं। ऐतिह्य वातावरणके विधानमें उनकी अपार अनुसंधित्सु मेधा और कठिन अप्रचलित शब्दोंसे युक्त—जिन्हें कोष्ठकमें साथ-साथ ही अर्थ देकर सरल बना दिया गयाहै—संस्कृत-गर्भित परिमार्जित भाषा, लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनृत्य साहित्यिक उक्तियों, पात्रानुकूल भाषा आदि ने विशेष सहायता दीहै। प्रमुख पात्रोंमें से नायकके पितामह विद्याधर ऐतिहासिक हैं और महमूदका सफल सामना करनेका उनका शौर्य भी। नायक कीर्तिवर्मा (१०४९-११०० ई), उनका सेनापति गोपाल, उनका साहित्यकार कृष्णमित्र ('प्रबोध चन्द्रोदय' नाटकका लेखक और कीर्तिवर्माका गुणगान करनेवाला), जैजाक भुक्ति स्थान (जो यमुना-नर्मदा नदियोंके बीचका प्रदेश था) सभी ऐतिहासिक हैं। यही स्थिति कीर्तिवर्माके सहयोगी नरेशचन्द्र देव (१०८०-१०८५), मदन और गोविन्दचन्द्रकी हैं। भोज लगभग (१०१०-१०५९ ई.) और उनका दासीपुत्र भरथरी भी ऐतिहासिक हैं। प्रतिनायक पक्षके लक्ष्मीकर्ण कलचुरी (लगभग १०४१-१०७०) कर्णपत्नी आवल्ल, उनका पुत्र यशःकर्ण (१०७३-११२०) सभी ऐतिहासिक हैं। लेखककी कल्पना-क्षमताने ऐसे संतुलित ऐतिहासिक उपन्यासकी सर्जना कीहै कि पाठक प्रत्यंकित विगतमें सहज विचरण की सुविधा पा लेताहैं। उस कालकी अश्व-शक्तिका

प्रदर्शन एवं युद्ध-कौशलमें प्रयुक्त विशिष्ट दांव-पेंचोंका चित्रण भी हुआहैं। विशिष्ट अश्व भी यहां अपने सात्त्विक अनुभावों सहित साकार हुएहैं।

तत्कालीन अभिवादनके सूचक शिष्टाचार आवश्यकतासे अधिक स्थान लिये हुएहैं। कलेवरके विस्तार की लेखकको चिन्ता नहीं रही।

'नीला चांद' की शक्तियोंके साथ सीमाएं भी उतनी ही स्पष्ट हैं किन्तु उन्हें लगताहैं अनदेखा कर दिया गया हैं। यहां यद्यपि ज्योतिषपर अविश्वास व्यक्त किया गया हैं किन्तु पात्रों द्वारा सही निकलनेवाली भविष्यवाणियाँ की जाती रहीहैं जिससे केवल इच्छा शक्तिकी अदम्यता का उद्देश्य अभीष्ट प्रभावी नहीं हो सका। यहां आरोह-अवरोह-जनित संघर्षकी उत्सुकतापूर्ण गति प्रगतिका सौन्दर्य नहीं, सतत् आरोहणकी उदात्तता हैं, जिसमें लेखकीय आग्रह प्रधान हैं। लेखकने एक बुद्धू-से, कूटनीति और रण-कौशलमें, केवल कहे जानेके लिए, ख्यात खलनायकका चित्रण कियाहैं, उसकी इन शक्तियोंको बाह्याकार स्वरूप कहीं नहीं मिला जिससे कीरतकी चमक-दमकमें स्वयमेव निखार आ सकता। कलात्मक तटस्थतामें कमीका एक कारण बहिर्द्वन्द्व ही नहीं अन्तर्द्वन्द्वोंकी अवहेलना भी हैं। यहां पात्रोंकी बहिरंगीय कर्मठताही साकार है। अन्तरंगसे उलझ-सुलझकर स्वाभाविक एवं मानवीय शक्तिकी उठान नहीं। यहां सक्रियता हैं, सजीवता नहीं; कीरत या कीरत-पक्षके लोगोंका इच्छानुकूल जहां चाहे और ठीक समयपर पहुंच जाना लेखकका अपना चमत्कार अधिक लगताहैं, उनका अपना कौशल कम। यहां बने-बनाये स्थिर चरित्रोंका उद्घाटन अनावरण हुआहै, गतिशील पात्रोंका विकास नहीं। गोपालका चुनाव उसकी आस्थाके लिए हुआथा किन्तु उसे घटनात्मक अभिव्यक्ति नहीं मिल सकी।

कथानकको आगे बढ़ाते जानेमें लेखकीय आग्रह अधिक दिखायी देताहै। उदाहरणतः, कीरतके युद्ध सम्बन्धी साधन सीमित हैं, प्रतिशोधकी ज्वाला प्रारम्भ से ही अधिक हैं किन्तु आर्यत्वपूर्ण मर्यादाकी रक्षाके नामपर उसे कर्ण-पक्षके अत्याचारोंको क्षमा करा-कराके आगे बढ़ाया गयाहै, जो कथानक या पात्रोंकी अपनी मांगका प्रभाव न होकर, लेखकीय हस्तक्षेपका परिणाम अधिक लगताहैं। जब काशीमें बाहरसे आये हुए राजा-महाराजाओंके सामने, यज्ञके अवसरपर कीरत अपने दो तीरोंसे वांछित उद्देश्यकी पूर्ति करताहै, तो आर्यत्व कहां रह जाताहैं? वस्तुतः, आगेके खून-खराबे की इतिश्री बहुत पहले और उपयुक्त समय भी हो सकतीथी किन्तु लेखक एकपक्षीय अदम्य इच्छा शक्तिकी जीत दिखानेका पूर्व-निश्चय किये बैठा रहा; और कथा का फिर विस्तार कर देताहैं। जहां अदम्य इच्छा शक्ति अवस्थित हैं, पात्रोंके उस मनका साक्षात्कार करानेमें लेखक प्रायः चूकता रहाहै। यहभी विचित्र लगताहैं कि बार-बार हारकर भी कर्णपक्ष एकांत 'राक्षस' ही बना रहताहै जिसके पास 'मन' नहीं, मनस्तापपूर्ण परिवर्तन नहीं और न ही कोई नया युक्तिपूर्ण रण-कौशल है, जो नायक पक्षकी जीतको लेखकीय या एकपक्षीय जीतका प्रभाव डालनेसे बचा सके। विपक्षको अमानवीय और एकांत दुर्बल दिखाकर लेखकने अपनी सबलतापर प्रश्नचिह्न लगा दियाहैं। वृहद् कथानकमें मार्मिक स्थलों और स्मरणीय पात्रोंकी कमी भी अखरतीहैं।

कथानकके विस्तारका एक गौण कारण यह भी हैं कि पात्रोंके कथनोंको, नये-नये पात्रोंको सूचित करनेके लिए फिर-फिर दुहराया गयाहैं।

सारतः, 'नीला चांद' डॉ. शिवप्रसाद सिंहके परिश्रमका जितना प्रभाव डालताहै, कौशलका उतना नहीं। यह उनकी शक्तिके साथ-साथ सीमाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाला सामान्यतः श्रेष्ठ उपन्यास है। इसकी श्रेष्ठता सही इतिहास बोध, संगत-समृद्ध वातावरण, संविधान और जन-जनके लिए स्फूर्तिप्रद सांस्कृतिक मूल्योंकी सम्पन्नतामें हैं। ⊡

[के. के. बिड़ला फाउण्डेशन द्वारा पुरस्कृत]

उपन्यास : तमिल

दलित नारीकी पीडाकथा : प्रभावशील चरित्र चित्रण और संगीतकी शक्तिसे साक्षात्कारकी कृति

कुट्राल कुरिंजि

उपन्यासकार : कोवि. मणिशेखरन्

समीक्षक : डॉ. एम. शेषन्

उपन्यास लेखक कोवि. मणिशेखरन् तमिल कथा-साहित्यके जाने-माने कथाकार हैं। वे तमिलनाडु सरकारके सर्वोच्च पुरस्कार 'राजराजचचोळन् पुरस्कार' से पुरस्कृत एवं समादृत है। एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूपमें वे ख्यातिप्राप्त रचनाकार है। प्रस्तुत पुरस्कृत उपन्यास तमिल प्रदेशके एक दलित-अन्त्यज वर्गकी नारीकी व्यथा-कथा है, जो संगीतज्ञा है। उन्नीसवीं शतीके प्रथम चरणकी युगीन पृष्ठभूमिमें कथाका ताना-बाना बुना गयाहै।

कुट्रालम् तमिलनाडुके सुदूर अंचल तिरुनेलवेली जिलेके एक कस्बेका नाम है। इस स्थलकी विशेषता यह है कि यहां एक पहाड़ी झरना बहताहै और उसमें स्नानकर स्वास्थ्य लाभके हेतु यहांके निवासी उस अंचलमें जाकर कुछ समय ठहरतेहैं।

कुरिंजि इस प्रदेशके एक अपूर्व पुष्प-विशेषका नाम, है। हिन्दीमें इसे 'जौंटिल' के नामसे पुकारा जाताहै, इसकी विशेषता यह है कि यह बारह वर्षोंमें एक बार ही पुष्पित होताहै। शास्त्रीय संगीतकी दक्षिणी शैली, जो कर्नाटक संगीत पद्धति मानी जातीहै, में एक राग-विशेषका नामकरण भी इसी कुरिंजिपर हुआहै। यथा, नाट्टकुरिंजि, मेघराग कुरिंजि आदि, कर्नाटक शास्त्रीय संगीतके राग-विशेषके नाम हैं। यह विश्वास प्रचलित है कि मेघराग कुरिंजि गानेपर खूब वर्षा होतीहै।

प्रस्तुत उपन्यासमें संगीतको अपने जीवनका लक्ष्य मानकर उसके लिए समर्पित, तथा दलित जातिमें उत्पन्न कुरिंजि नामक एक आदर्श नारीकी व्यथा और पीड़ा विस्तारसे कही गयीहै। कुरिंजिके पिता 'मृदंग चक्रवर्ती' के नामसे विख्यात मृदंगवादक मीनाक्षिसुन्दरम् पिळ्ळै थे और माता कुट्रालम् अंचलकी एक हरिजन नारी भुवना थी। माता-पिताके निधनके पश्चात् कुरिंजि अपने पिताके विश्वस्त मित्र तिरुवारूर विरूपाक्ष कविरायके संरक्षणमें पली। मीनाक्षिसुन्दरम् पिळ्ळैने मृत्युसे पूर्व विरूपाक्ष कविरायसे अपनी मनोकामना व्यक्त कीथी कि वे कुरिंजिको संगीत विद्यामें निष्णात बनायें, तभी उसकी आत्माको शान्ति मिलेगी।

तमिलनाडुका तंजाऊर जिला न केवल धानकी अधिकतम उपजके लिए प्रख्यात है (तंजाऊर जिलेको 'धानका भण्डार' मानतेहैं), वरन् ललितकला और संस्कृतिके क्षेत्रमें भी विख्यात मंडल माना जाताहै। यहां एकसे बढ़कर एक संगीतज्ञ, नृत्यकलामें कुशल नर्तक, नर्तकियां एवं अन्य प्रकारके कलाकार अपनी कला के प्रदर्शन द्वारा समस्त तमिल प्रदेशके सांस्कृतिक वैभव को उजागर करनेमें सबसे आगे रहतेहैं। इस जिलेके तिरुवारूर नगरकी अपनी सांस्कृतिक महत्ता भी है। न केवल शिवजीके प्रसिद्ध मंदिर—त्यागेश मंदिर—के कारण यह नगर विख्यात है, अपितु तमिल प्रदेशके शैव-भक्त-संतकवि नायनमारों द्वारा प्रशंसित नगरभी है।

इस धरतीकी एक दूसरी विशेषताभी है। अपने सुमधुर एवं मनमोहक गीतोंके प्रणयन द्वारा कर्नाटकके शास्त्रीय संगीतमें नया प्राण फूंकनेवाले तथा संगीतमें नयी स्फूर्ति डालनेवाले एवं संगीतकी त्रिमूर्तिके रूपमें समादृत मुत्तुस्वामी दीक्षित, श्याम शास्त्री एवं संत-शिरोमणि त्यागराज स्वामीकी यह जन्मभूमि भी है।

तेलुगु भाषामें रचित सुमधुर गीतोंके कारण तथा श्री रामके अनन्य भक्तके रूपमें प्रख्यात वे त्यागब्रह्मम्के नामसे भी जाने जातेथे। मुत्तुस्वामी दीक्षित एवं श्याम शास्त्री दोनों संस्कृत भाषामें गीत रचकर शास्त्रीय संगीतमें अपना अपूर्व योगदान भी देतेथे।

विरूपाक्ष कविराय अपनी पोषित कन्या कुरिंजिको मुत्तुस्वामी दीक्षितजीकी शिष्या बनाकर-उसे संगीत कला में निष्णात बनानेके उद्देश्यसे उनके घर ले गये। क्योंकि कुरिंजि दलित वर्गकी अछुत जातिकी थी, अत: दीक्षित से अनुरोध किया कि वे इसे अपने घरके कामकाजके लिए नौकरानीके रूपमें स्थान दें। पहली भेंटमें ही मुनुस्वामी अय्यर इस कन्याको एक होनहार छात्राके रूपमें परख लेतेहैं और उसे अपनी 'बेटी' के रूपमें अपनानेको तैयार हो जातेहैं। परन्तु ब्राह्मण जातिके घरमें एक दलित वर्गकी कन्याका आगमन घरकी स्त्रियोंको क्योंकर रुचेगा ? अय्यरकी पत्नीने इसे घरमें रखना स्वीकार नहीं कियाहै। फिरभी कुछ समयके लिए कुरिंजि अय्यरके घरमें नौकरानी बनकर कामकाजमें लग गयी। संगीतके प्रति उसका इतना अनुराग था कि वह उस घरके संगीतमय वातावरणमें रहकर संगीतकी शिक्षा पाती रही। वहीं गुरुजीके घरपर एक ब्राह्मण युवा ज्ञानसुन्दरम् भी अय्यरका प्रिय शिष्य बनकर संगीतकी शिक्षा पाताथा। ज्ञानसुन्दरम् और कुरिंजि दोनोंमें प्रेमभाव अंकुरित होने लगा। जाति-पांतिकी संकीर्णतामें जकड़े उस ब्राह्मणका घर शीघ्रही छोड़नेके लिए कुरिंजिको बाध्य होना पड़ा। घर छोड़ते समय गुरुवर मुत्तुस्वामी अय्यर कुरिंजिको अपना एक तानपुरा भेंट करतेहैं। अय्यर तो कुरिंजिको एक होनहार छात्रा के रूपमें मानकर उसके उज्ज्वल भविष्यकी कामना करतेहैं।

स्वाभिमानिनी कुरिंजि अलग मकान लेकर अपने प्रेमी ज्ञानसुन्दम्के साथ रहने लगी। अब ज्ञानसुन्दरम् ही उसके लिए गुरु भी बन जाताहै, प्रेमी और मार्गदर्शक भी। धीरे-धीरे दोनोंमें प्रेम पलने लगताहै और शीघ्रही दोनों विवाहके बंधनमें बंधना चाहते हैं। कुरिंजि और ज्ञानसुन्दरम् दोनों ही शील चरित्रमें ऊंचे थे और संगीत के क्षेत्रमें शिखरपर पहुंचनेकी कामना रखतेथे। दोनों का लक्ष्य समान होनेसे हृदयसे, भावनासे एक हो जाते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीके उस कालखण्डमें संगीतके क्षेत्र में तेलुगु एवं संस्कृतमें रचित गीतोंको ही महत्त्व दिया जाताथा और तमिल संगीतका मान-मूल्य बहुत कम था। कुरिंजि तमिल संगीतको प्रश्रय देकर उसके उचित स्थान एवं मान-मूल्यके लिए प्रयत्नशील हुई। अत: उसने दृढ़ संकल्पके साथ सर्वत्र केवल तमिलमें रचित गीतही गानेका निश्चय किया। इतर भाषामें रचित गीतोंकी उपेक्षा की। स्वाभिमानिनी नारी होनेके कारण किसी राजा, जमींदार, धनी व्यक्ति या गोरे शासक, कलेक्टरके निवासपर जाकर गाना उन्हें अप्रिय लगता था। वह जनसमाजमें पहुंचकर उनमें तमिल गीतोंके प्रति अनुराग उत्पन्न करना चाहतीथी। अत: मंदिरोंके प्राकारोंमें, मण्डपमें, संगीत सभाओंमें जनताके बीच, जनताके लिए गानेमें ही उन्हें अधिक उत्साह था। इस कारण परंपरागत ढंगसे तेलुगु और संस्कृतके गीतोंको गानेवाले संगीतज्ञोंके मध्य कुरिंजिको आदर सम्मान प्राप्त नहीं हो सका। वे उसे सामान्य स्तरका जनताका सामान्य कलाकार मानकर उसका तिरस्कार करतेथे। कुरिंजिको इन संगीतज्ञोंकी मनोवृत्तिका पता था, इसलिए वह उसकी चिन्ता नहीं करतीथी। वह तो तमिल संगीतको महत्त्व देने एवं उसके उद्धारके लिए कृत संकल्प थी। लोकरंजकता उसका मुख्य ध्येय था। वह जनसाधारणके मनमें संगीतके प्रति रुचि उत्पन्न कर उनके मनका परिष्कार करना चाहतीथी। लोगों की प्रसन्नतामें उसे विशेष आनन्द आताथा। जन साधारण भी उसके गीतोंका रसास्वादन करनेमें उत्साह प्रदर्शित करताथा। वह जनताके जीवनमें संगीतके महत्त्व को, उसके प्रभावको स्पष्ट अंकित करना चाहतीथी। जनसाधारण भी उनके संगीतको सुननेके लिए बड़ी संख्यामें भीड़ लगाकर जमा हो जातेथे।

तिरुविताकूरके महाराजा स्वाति तिरुनाळ न केवल संगीतके प्रेमी, ज्ञाता और मर्मज्ञ थे, अपितु स्वयं भी गीत-रचनाकार थे। उस युगके दिग्गज संगीतज्ञ एवं गायक गोविन्दमारार उनकी राजसभाको सुशोभित करतेथे। उस युगके संगीत शास्त्रके मर्मज्ञ, गायक तथा रचनाकार संत त्यागराजको अपनी राजसभामें आमंत्रित कर उनके गीतोंका रसास्वादन करनेकी अभिलाषा महाराजा स्वातितिरुनाळमें थीं। संत त्यागराज तो ठहरे गहरे रामोपासक। तंजाऊरके महाराज शरफोजी के अनुरोधको भी ठुकरानेवाले वे क्योंकर महाराजा स्वाति तिरुनाळके अनुरोधको मानते ?

तमिल लोग अपने जीवनमें संगीतको विशेष स्थान देते आयेहैं। गीत गाना उनका प्रमुख संस्कार ही बन गयाहै। तमिल प्रदेशके भक्त कवि—चाहे वे शैव संत नायनमार हों अथवा वैष्णव आळवार भक्त कवि हों—दोनों ही भक्तिके साथ संगीतको संयुक्तकर भगवान्‌की स्तुतिमें गीत गाया करतेथे। आजभी उन भक्ति गीतोंको भक्तिभावसे गाकर ही लोग उनका रसास्वादन करते हैं। संगीत-सेवाको भगवद्-सेवाके रूपमें माना जाताथा। उन्नीसवीं शताब्दीके गायकों एवं संगीतज्ञोंको तत्कालीन राजाओं, जमींदारों रईसों और दानियोंका पोषण मिलता था। तंजाऊरके महाराजा शरफोजीकी राजसभाको उस युगके उद्‌भट संगीताचार्य महाविद्वान् आनैय्याजी सुशोभित करतेथे। उस कालखण्डमें मुत्तुताण्डवर गोपालकृष्ण भारती, आदि संगीतकार तमिलमें सुमधुर गीतोंकी रचनाकर जनताके मनको प्रसन्न किया करतेथे। इतना होनेपर भी संस्कृत और तेलुगु गीतोंके सामने तमिल-संगीतका मान-मूल्य कम ही रहा। स्वयं तमिलनाडुमें तमिल भाषामें रचित गीतोंकी यह दयनीय दशा थी।

वह युग अंग्रेज कंपनी-शासनका युग था। कंपनी के गोरे शासक,जनताका शोषण कर उनपर अनेक प्रकारके अत्याचार करतेथे। प्रदेश भरमें अनाचार फैला हुआथा और जनतामें त्राहि-त्राहि मची हुईथी। कुरिंजि के जीवनमें भी अनेक संकट आये। दलित वर्गकी नारी होनेपर भी वह सुन्दरी थी और उनपर अनेक लोगोंकी कुदृष्टि पड़ी। कुरिंजिके शारीरिक सौन्दर्य तथा गानेकी कलामें उनकी उपलब्धिसे प्रभावित होनेवालोंमें राजा शरफोजी, उनका पुत्र शिवाजी, पुदुकोट्टै रियासतका राजा, शिवगंगाका जमींदार, गोरे हाकिम, कलक्टर नेलसन् आदि प्रमुख थे। कुरिंजिके जीवनमें अनेक संकट आये भागवत कृपासे वह उन सबसे बच निकली।

संगीतके क्षेत्रमें कुरिंजिकी लोकप्रियता, उनकी उपलब्धियोंको देखकर अन्य संगीतज्ञोंके मनमें ईर्ष्याभाव उत्पन्न हुआ। उस युगमें राजा शरफोजीकी राजसभाको सुशोभित करनेवाले पल्लवि गोपालय्या कुशल गायक थे। अपनी उपलब्धियोंके कारण वे अपने सामने किसी को मान्यता नहीं देतेथे। वे भी कुरिंजिको प्राप्त लोकप्रियता और यशसे जलतेथे, ईर्ष्या करतेथे।

राजा शरफोजीके आग्रहपर उनकी राजसभामें कुरिंजिका संगीत कार्यक्रम निश्चित हो चुकाथा। उन्हें सुननेके लिए साधारण जनताकी भीड़ लगी हुईथी। बड़े-बड़े संगीतज्ञ भी उनके गायनको सुननेके लिए सभा में उपस्थित थे। वहां कुरिंजिने स्वरचित 'कुरिंजि राग' का अलापकर अपने गायनसे सभासदों-श्रोताओंको प्रसन्न किया। कुरिंजिसे ईर्ष्या करनेवाले संगीतज्ञ पल्लवि गोपालय्याने भी उनकी कलासे अभिभूत होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कुरिंजिको अपनी पुत्रीके समान स्वीकार कर लिया। हरिजन वर्गकी कुरिंजिकी लोकप्रियता इस घटनाके बाद और बढ़ने लगी।

कुरिंजिको कांची शंकरमठके ६४वें पीठाधीश जगद्‌गुरु श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामीजीकी असीम कृपा तथा स्नेहाशीर्वाद प्राप्त करनेका सौभाग्य मिलाथा। जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्यजी उनकी गान-विद्यासे प्रसन्न-चित्त थे। जगद्‌गुरुके सान्निध्यमें अपने कला-कौशलका प्रदर्शन करनेका सुयोग भी मिलाथा। जगद्‌गुरु शंकराचार्यजीने उनको मंत्रोपदेश देकर आशीर्वचन भी दिया था। दलित जातिकी कुरिंजिके जीवनकी यह सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

एक बार शिवगंगाके राजाके महलमें कुरिंजिका कार्यक्रम निश्चित हुआथा। परन्तु उसके पोषक पिता विरूपाक्ष कविरायके अचानक निधन होनेके कारण कुरिंजि उस कार्यक्रममें स्वयं उपस्थित न हो सकी। अपने स्थानपर उसने अपने गुरु तथा प्रेमी ज्ञानसुन्दरम् को भेजा। काळैयारकोयिलमें कार्यक्रम था। वहां कुरिंजिके गानको सुननेकी अभिलाषा लेकर जनता अपार संख्यामें जमा हो चुकीथी। अचानक कुरिंजिके न आ सकनेका समाचार पाकर वहांकी जनताको बड़ी निराशा हुई। उस दिन भोगवती नामक नृत्यांगनाके नृत्यका प्रबन्ध था। ज्ञानसुन्दरम् काळैयारकोयिलके दीवान तीर्थगिरिके षडयन्त्रका शिकार बन जाताहै। वहां नर्तकी भोगवतीकी हत्या होतीहै और बेचारे ज्ञानसुन्दरम्‌पर उस हत्याका आरोप लगाकर उसे कारावास का दण्ड दिया जाताहै। जैसे ही यह अशुभ समाचार कुरिंजिके कानमें पड़ा, तो वह अपने प्रेमी ज्ञानसुन्दरम् को निर्दोष साबितकर कारागृहसे मुक्त करानेके हेतु शिवगंगा पहुंच जातीहै। शिवगंगाके छोटे जमींदारकी कुदृष्टि पहलेसे ही कुरिंजिपर पड़नेसे वह कुरिंजिके साथ भी चाल चलताहै। वह इस शर्तपर ज्ञानसुन्दरम् को कारागृहसे मुक्त करानेको राजी होताहै कि कुरिंजि स्वरचित 'कुरिंजि राग' को उसके पास गिरवी रखदें

और वह अपने प्रेमी ज्ञानसुन्दरम्के साथ मिलकर पूरे मनसे उसके सम्मुख वह राग गायें। यदि इस शर्तसे वे चूक जायें तो यह कुरिंजि राग जमींदारके अधीन हो जायेगा। आगे किसी भरी सभामें, संगीत समारोह आदिमें इस रागको गानेका उसे अधिकार नहीं होगा। कुरिंजि अपने प्रेमीको कारागृहसे मुक्त करानेकी प्रबल कामनासे इन शर्तोंको स्वीकार कर लेतीहै और शर्तंनामापर हस्ताक्षर कर देतीहै।

इधर कारागृहमें ज्ञानसुन्दरम् आत्महत्या कर लेता है। उसे यह संशय हुआ कि छोटे जमींदारने कुरिंजि के नारीत्वको लूटा होगा। कुरिंजिके ऊपर पहाड़-सा टूट पड़ा। अभी-अभी अपने पोषक पिता विरूपाक्ष कविरायको खो चुकीथी और अब अपने प्रेमी ज्ञानसुन्दरम्को भी खो देनेसे उसकी दशा दयनीय होगयी।

दुःखित और व्यथितमना कुरिंजि ओस्तनाडु नामक ग्रामांचलमें जाकर अकेले जीवन बिताने लगी। उसने संगीतका अभ्यास करना भी छोड़ दिया। वहीं उसे पता चला कि उसके गुरुवर श्री मुत्तुस्वामी दीक्षितजी बहुतही अस्वस्थ अवस्थामें हैं तथा भयंकर गरीबीसे ग्रस्त हैं। यह खबर सुनते ही गुरुजीसे भेंट करनेकी इच्छासे वह तिरुवारूर पहुँचतीहै। वहां घर की महिलाओंने इस दलित जातिकी नारीको दुत्कार कर घरमें प्रवेश देनेसे मना कर दिया। अपमानित तथा तिरस्कृत दलित जातिकी यह नारी गुरुदर्शनकी प्रबल कामनासे घरके बाहर इस आशासे खड़ा रहती है कि कभी गुरुजी बाहर निकलेंगे तो उनके दर्शन मिलेंगे।

घरके अन्दर दीक्षितजीको पता चला कि कुरिंजि उनसे मिलने आयीथी और घरकी महिलाओंने उसे दुत्कार कर निकाल दिया। वे तुरन्त घरसे बाहर आतेहैं और कुरिंजिसे आग्रह करतेहैं कि वह अन्दर आये। पर स्वाभिमानिनी कुरिंजि उनका आग्रह स्वीकार नहीं कर पाती। वह गुरुजीसे यह आग्रह करतीहै और प्रार्थना करतीहैं कि वे बाहर ही अपने साथ लायी स्वर्णमुद्राओंको स्वीकार करलें। गुरुजीकी सम्मति पाने पर वह गुरुजीके मस्तकपर स्वर्णमुद्राओंका कनकाभिषेक कर अपनी आत्माको संतुष्ट कर लेतीहै। गुरु मुत्तुस्वामी दीक्षित भी कुरिंजि द्वारा समादर और श्रद्धामें दी गयी इन स्वर्ण मुद्राओंको स्वीकार कर उसे पूरे मन से आशीर्वचन देतेहैं।

उसी युगमें तमिलनाडु भर को अपनी डकैती, क्रूर हिंसा हत्या आदिसे दहला देनेवाला कुख्यात डाकू राजकांति भी कुरिंजिके सुमधुर गानेसे द्रवित होकर उसे अपनी पुत्रीकी भाँति स्वीकार करताहै। इतनाही नहीं संकटके समय कुरिंजिकी लाजकी रक्षा भी करता है। डाकू राजकाँति इस समय कुरिंजिके जीवनमें आयी विपदा सुनकर उनसे मिलने आताहै और शिवगंगा जमींदारके कुकृत्यपर उसका प्रबल क्रोध उमड़ पड़ताहै।

एक बार तंजाऊरके राजा शरफ़ोजी कुरिंजिसे मिलने आतेहैं और उनसे यह अनुरोध करतेहैं कि कुरिंजिके प्रेममें अर्धविक्षिप्तावस्थामें पड़े उनके पुत्र शिवाजीके सामने स्वरचित प्रसिद्ध 'कुरिंजि राग' गाकर उसके चित्तको प्रसन्न करें। युवराज शिवाजी कुरिंजि राग सुननेको अति आतुर और बेचैन हैं। वे उनसे यह भी अनुरोध करतेहैं कि कुरिंजि शिवाजीके प्रेमको स्वीकारकर उससे विवाह भी करलें। कुरिंजि पहली बातको इस शर्तपर स्वीकार कर लेतीहै कि शिवगंगाके जमीदारके अधीन गिरवी रखे इस प्रिय रागको उससे मुक्त करवालें तभी वह गा सकेगी। शरफ़ोजीके दूसरे अनुरोधको अर्थात् शिवाजीसे विवाहकी बातको वह अस्वीकार करतीहै। उसके मनमें प्रेमी ज्ञानसुन्दरम्को छोड़कर अन्य किसीके लिए स्थान नहीं है।

तंजाऊरके राजमहलमें कुरिंजिके गायनका प्रबन्ध बड़ी धूमधामसे होताहै। राजा शरफ़ोजी शिवगंगाके युवराजको कैद करनेके पूर्व ही डाकू राजकांति उसे अपनी कैदमें लेकर राजमहलमें प्रवेशकर कुरिंजिके सामने इस दुष्टको खड़ा कर देताहै। शिवगंगाका युवराज कुरिंजिके सामने घुटने टेककर उससे अपने कियेके लिए क्षमा याचना करताहै। राजा शरफोजीके आदेशानुसार वह गिरवी-पत्र कुरिंजिके हाथ सौंप दिया जाताहै। कुरिंजिके कहनेपर वह गिरवी-पत्र आगमें भस्म कर दिया जाताहै और कुरिंजिके आग्रहपर शिवगंगाका युवराज कारागृहमें बन्द कर दिया जाताहै।

राजसभामें कुरिंजिका संगीत कार्यक्रम प्रारंभ होताहै। अपने कार्यक्रमको प्रारंभ करनेके पूर्व वह कांचीमठके श्री शंकराचार्यजी तथा अपनी उपास्य देवी भद्रकाळी अत्यंकरादेवीका स्मरण करतीहै। नृत्य देवता श्री नटराजका ध्यान मनमें कर वह गाने लगतीहै। सभा मण्डप रसिकोंसे खचाखच भरा रहताहै। कुरिंजि की गानवर्षामें समग्र रसिक मण्डल अपनी सुधबुध खो

कर तन्मयतासे सुनते रहतेहैं। अचानक कुरिंजिका कंठ रुक जाताहै, स्वर बन्द हो जाताहै, तानपूरेको मींढती उसकी उंगलियां रुक जातीहैं। वह निश्चल होकर हाथ में तानपूरा थामे बैठी ही रह जातीहैं। समाधि अवस्था में लीन उनकी दशा देख, उसकी शिष्या और सखी कल्पकम् 'हाय अम्मा' कहते हुए उसे अपने हाथों थाम लेतीहै। कुरिंजिके प्राण पखेरु उड़ जातेहैं।

कुरिंजिकी असमय मृत्युसे चकित राजा शरफ़ोजी उसके सम्मुख आकर उसे प्रणाम करतेहैं। पुत्र शिवाजी भी चकित एवं भ्रमित हो जाताहै। अपने पुत्रको सान्त्वना देते हुए राजा शरफ़ोजी यह उद्गार प्रकट करतेहैं कि 'यह तो देवकन्या थी, और अब देवतामें ही लीन हो गयीहै।'

राजमहलके बाहर भीड़भाड़से अलग होकर, छिपे हुए कुरिंजिका दैवी गान सुननेवाले डाकू राजकांतिसे अब रहा न गया। वस्तुस्थिति जान, भागा भागा वह कुरिंजिके निकट आनेको उद्यत होताहै। इसी समय कलेक्टर नेल्सनकी बन्दूक उसके शरीरको छलनी कर देतीहै। डाकू राजकांति खूनसे लथपथ होकर भी रेंगते हुए कुरिंजिके मृत शरीरके निकट पहुंचकर उसे अपनी गोदमें उठा लेताहै और वहीं उसके भी प्राण निकल जातेहैं। सारी सभा शोकमें डूब जातीहैं।

उपन्यासका उद्देश्य है उस युगके सामाजिक वातावरणमें एक दलित जातिकी नारीके साथ तमिल समाज ने किस प्रकार क्रूर व्यवहारकर उसे यातनाएं दीं और उसे अपमानित किया। उस कालखण्डका तमिल समाज जाति-पांतिकी संकीर्ण मनोवृत्तिसे भयंकर रूपमें ग्रस्त था। (अब भी कहां इस मनोवृत्तिसे छूटकारा मिलाहै?) इस कारण प्रतिभा और क्षमताके होते हुए भी इस होनहार युवतीको अपनी ईश्वरदत्त प्रतिभाको विकसित करनेका समुचित अवसर नहीं देता। कुरिंजिसे पहली बार मिलतेही संगीताचार्य श्री मुत्तुस्वामी दीक्षितजी इसकी प्रतिभाको परख लेतेहैं और इस होनहार कन्याके उज्ज्वल भविष्यकी कामना भी करतेहै। समाजकी क्रूरताकी शिकार बनी यह हरिजन युवती फिरभी अपने आत्म-सम्मानको बनाये रखनेमें तथा अपनी कलात्मक प्रतिभाको विकसित करनेमें सफल हो जातीहै। संघर्षोंसे जूझनेकी जीवन्त शक्तिसे भरी यह नारी उपन्यासभरमें तत्कालीन समाजके लिए चुनौती बनकर खड़ीहै। उपन्यासकार कोवि मणिशेखरन् यह दिखाना चाहतेहैं कि समाजकी क्रूरता एवं संकीर्ण मनोवृत्तिके कारण कुरिंजि जैसी कितनीही प्रतिभाएं असमय, समुचित अवसर न मिलनेके कारण, कुंठित हो जातीहैं। समाजके इस कलंकको, इस दूषित मनोवृत्तिको उजागर करना लेखकका अभीष्ट रहाहै।

कोवि. मणिशेखरन् स्वयं भी संगीतकार हैं। अण्णामलै विश्वविद्यालयसे संगीतकी शिक्षा पाकर 'संगीतभूषण' की उपाधिसे भी अलंकृत हैं। अतः शास्त्रीय संगीतके अच्छे ज्ञाता भी हैं। साथही तमिल भाषा एवं संस्कृतिके प्रति उनका अपार प्रेम भी है। स्वयं अपने ही प्रदेशमें अपनी मातृभाषा तमिल एवं तमिल संगीतकी दुर्गतिसें व्यथित हैं और अपनेको अपमानित भी अनुभव करतेहैं। तमिल प्रदेशमें तमिल गीतोंका उत्कर्ष एवं तमिल संगीतका यश वे देखना चाहतेहैं। पर विडम्बना यह है कि तमिलनाडुमें तमिल को छोड़कर इतर भाषाओंके गीतोंको अधिक महत्त्व और प्रोत्साहन मिलाहै। अपने ही प्रदेशमें अपनी भाषा का अपकर्ष देख किस स्वाभिमानीका मन दुःखित और व्यथित न होता होगा? अबभी यह स्थिति अधिक सुधरी नहीं है। पत्र संपादक एवं कथाकार कल्कि, रसिकमणि टी. के. चिदम्बरनाथ मुदलियार, दानी अण्णामलै चेट्टियार, राजगोपालाचारी जैसे तमिल भाषा एवं संस्कृतिके पोषकोंके सत्प्रयाससे तमिल संगीतको विशेष उत्कर्ष और प्रोत्साहन मिलने लगाहै। स्वयं संगीतज्ञ होनेके कारण कोवि. मणिशेखरन्‌को यह स्थिति अखरने लगीहै। अतः उपन्यासमें इस दलित जातिकी कुरिंजिको केवल तमिल गीत ही गाते हुए चित्रित करतेहैं। यही नहीं विभिन्न राग-रागनियोंके सूक्ष्म विवरणोंकी यदाकदा चर्चा भी वे करतेहैं। इस कारण समूचे उपन्यासमें संगीतका सुमधुर स्वर सुनायी पड़ताहै। उपन्यासकार कोवि. मणिशेखरन् उस कालखण्डमें प्रसिद्ध तमिल भाषाके गीतकार मुत्तुताण्डवर, गोपालकृष्ण भारती, आनैय्या जैसे प्रसिद्ध गीतकारोंका चित्रणकर कुरिंजिके साथ, कथासूत्रमें उन्हें संबद्धकर तमिल गीतोंके उत्कर्षके प्रति अपार उत्साह प्रदर्शित करतेहैं। उस कालखण्डमें शास्त्रीय गायनके लिए विख्यात मुत्तुस्वामी दीक्षित: श्याम शास्त्री; संत त्यागराज, पल्लवि गोपालय्या आदि एकसे बढ़कर एक शास्त्रके ज्ञाता अवश्य रहे। पर वे या तो संस्कृत भाषामें या तेलुगु भाषामें गीत-रचना करतेथे। उपन्यास

में कई स्थलोंपर कुरिंजि तथां ज्ञानसुन्दरम्के बीच हुए वार्तालापके माध्यमसे उपन्यासकार कोवि. मणिशेखरन् अपनी यह मनोव्यथा व्यक्त करतेहैं। तमिल प्रदेशमें स्वयं तमिल संगींतके अपकर्ष एवं दुर्गतिके प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना भी लेखकका अभीष्ट रहाहै। मणिशेखरन्के इस उपन्यासके पूर्व भी संगीतको प्रश्रय देनेके निमित्त कुछ उपन्यास तमिलमें प्रकाशित हुएहैं। पर उनमें मणिशेखरन् जैसा तमिल संगीतके प्रति अनुराग और चेतना नहीं रहा। अतः इस दृष्टिसे इस उपन्यासकी अपनी विशिष्टता मानीजा सकतीहै।

उपन्यासकी समग्र कथा कुरिंजि जैसे काल्पनिक पात्रके चारों ओर घूमतीहै। कुरिंजि ही उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है और कथाका आकर्षणभी उसके कारण है। इस सशक्त पात्र चित्रणमें लेखकको पर्याप्त सफलता मिलीहै।

ज्ञानसुन्दरम्, विरूपाक्ष कविराय, आदि अन्य पात्र गौण रूपमे कथाके विकासमें सहयोग देतेहैं। ज्ञानसुन्दरम् भी एक आदर्शवादी युवाके रूपमें चित्रित है। कुरिंजिका वह केवल संगीत-गुरु ही नहीं रहा, वरन् आदर्श प्रेमी भी रहा। कुरिंजिको संगीतके क्षेत्रमें मिले यश और सम्मानके पीछे उसका प्रोत्साहन और मार्गदर्शन ही मुख्य रहा। कांचीमठके पीठाधीश श्री चन्द्रशेखरेन्द्र स्वामीसे लेकर प्रत्येक संगीतज्ञका आशीर्वाद और प्रोत्साहन कुरिंजिको प्राप्त होताहै। यह उनके जीवनका सौभाग्य ही रहा। उससे ईर्ष्या करनेवाले भी उसके शील स्वभाव, आदर्श चरित्र-व्यवहार, एवं संगीत उनकी उपलब्धि देखकर अपनी ईर्ष्या भूलकर उसे अपना मान लेतेहैं।

उपन्यासकी पृष्ठभूमिमें उन्नीसवीं शतीके प्रथम चरणका सामाजिक, राजनीतिक वातावरण परिवेशके रूपमें चित्रित है। अतः इतिहासाश्रित इस उपन्यासका वह कालखण्ड अर्थात् आजसे लगभग १६० वर्ष पूर्वका समाज चित्रित है। कुरिंजि दलित वर्गकी नारी है संगीतज्ञकी बेटी होनेसे संगीतका संस्कार उसमें जन्मना रहाहै। अपने प्रयाससे वह एक उच्च कोटिकी कलाकार बनकर जनतामें लोकप्रियता अर्जित करती है। उसकी प्रतिभा एव कौशलसे प्रभावित होकर उस युगके संगीतके क्षेत्रमें उद्भट विद्वान् त्यागब्रह्मके नाम से विख्यात संत त्यागराज और तमिल गीतोंके रचनाकार गोपालकृष्ण भारती आदि विद्वान् उनसे मिलने

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

(राजस्थान सरकार का स्वायतशासी संस्थान)

(अ) नवीनतम अकादमी प्रकाशन

१. राजस्थान का हिन्दी साहित्य संकलन, पृष्ठ सं ३०४ पु. सं. १५०; रि. सं., ४० रु.
२. आधुनिक रंग नाटक, सं. मदनमोहन माथुर, पृ सं. २६४, पु. सं. ७१; रि सं. ६८ रु.
३. राज. साहित्यकार परिचय कोश, सं. डॉ ल. ना. नन्दवाना, पृ. सं. ८८, मू. २८ रु.
४. कविता का व्यापक परिप्रेक्ष्य : एक उपनिषद, सं. डॉ. हेतु भारद्वाज, पृ. ८० रु., २० रु.
५. राज. का महिला लेखन : एक परिदृश्य, सं. डॉ. दयाकृष्ण विजय, ६० रु.
(प्रकाशनों की खरीद पर आकर्षक छूट भी)

(ब) मधुमती (अकादमी की मासिक पत्रिका)

☐ प्रान्त की एकमात्र नियमित, अव्यावसायिक साहित्यिक मासिकी
☐ हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ सृजनधर्मियों की उत्कृष्ट, नवीन तथा प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन। देश-विदेश मे चर्चित व प्रतिष्ठित।
☐ वार्षिक शुल्क ४० रु., एक प्रति ४ रु. वर्ष भर में लगभग १५०० पृ. की सामग्री। शुल्क केवल धनादेश / बैंक ड्राफ्ट से ही स्वीकार्य।

—ग्रंथ सूची व अन्य जानकारी हेतु सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर ३१३००१ से सम्पर्क करें।

तथा उनका संगीत सुनने आतेहैं। (पृ. संख्या २१७)। छुआछूतकी भावना एवं जातिपांतिकी संकीर्ण मनोवृत्तिसे ग्रसित उस कालखण्डमें इस अछूत लड़कीको संगीतकी शिक्षा देनेका साहस (या दुस्साहस ?) किस उच्चकुलके व्यक्तिमें रहा होगा ? फिरभी उपन्यासमें संगीत शास्त्रके शिखरस्थ विद्वान् मुत्तुस्वामी दीक्षित उसे अपनी शिष्या बना लेतेहैं, यद्यपि उनके घरमें उसका विरोध होताहै। तमिल संगीतके नामपर ईश्वर स्तुतिमें रचित स्तोत्र गीतोंके अतिरिक्त कुर्रिजि मानव की महत्ताका गान करतीहै, जनसमाजके बारेमें गाती है, समाजके उत्कर्षके गीत गातीहै (पृ. सं. २६)। यह बात कुछ विचित्र लगतीहै। आजसे १६० वर्ष पूर्व इस प्रकारकी कोई गायिका रही होगी इसकी कल्पना करना बहुत संभव नहीं प्रतीत होता। कुर्रिजिने एक नया राग 'कुर्रिजि राग' का आविष्कार कियाथा जिसे सुननेके लिए समाज आतुर और बेचैन होताहै। उपन्यासका शीर्षक भी इस रागपर रखा गयाहै। यह राग लेखककी कल्पनासे सृजित है जिसका कोई शास्त्रीय आधार नहीं है। डाकू राजक्रांति एक साधारण लुटेरा, डाकू मात्र नहीं, वरन् एक 'क्रांतिकारी' के रूपमें वह चित्रित हैं। उस युगमें 'क्रान्तिकारी' बननेका प्रश्न ही नहीं उठता। वह 'आतंकवादी' भी है !! विश्वसनीय पात्रके रूपमें उसका चित्रण प्रभाव नहीं छोड़ता।

उस युगमें तमिल प्रदेश मराठा शासकोंके अधीन रहा, यह ऐतिहासिक तथ्य है। मराठा शासक, विशेषकर, तंजाऊरके राजा शरफ़ोजी कलाप्रेमी, साहित्य प्रेमी रहेहैं यह भी इतिहास प्रमाणित तथ्य है। आज तंजाऊरमें निर्मित 'सरस्वती महल' इसका ज्वलंत साक्षी है। उनके कालमें तमिल प्रदेशमें संगीतकला, नृत्यकला, चित्रकला आदि ललितकलाओंको पर्याप्त पोषण मिलता रहा। स्वयं महाराजा शरफ़ोजी कलाविद् थे और कलाकारोंको प्रोत्साहित किया करतेथे। पर राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टिसे तमिल प्रदेशकी दशा शोचनीय थी। कंपनी शासन स्थापित हो चुकाथा। छोटे-छोटे राजा, रजवाड़े, जमींदार आदि कंपनीके अधीन ही रहे। एक प्रकारसे कंपनीके दास ही थे। कंपनीके शासनको स्वीकृति मिल चुकीथी। सामाजिक दृष्टिसे तमिल समाज जातिवादके अभिशापसे ग्रसित था। इस कारण समाज छोटे-छोटे वर्गोंमें, टुकड़ोंमें बंटा हुआथा। दलित वर्गकी दशा शोचनीय थी। समाजोद्धारके लिए कोई विशेष प्रयत्न न होनेके कारण प्रगतिशील समाजकी कल्पना दुस्साध्य रही। कंपनी शासनके आर्थिक शोषणके कारण समाज गरीब और निर्धन था। संक्षेपमें मराठोंके शासनकालमें तमिल समाज पिछड़ा हुआथा, उसकी शोचनीय दशा थी।

कोवि. मणिशेखरन्को मनोरंजनार्थ उपन्यास रचना करना अभीष्ट नहीं। वे सामाजिक उत्कर्ष एवं नवनिर्माणके हेतु उपन्यास-रचना करनेके पक्षमें है। अतः उनके प्रत्येक उपन्यासमें एक आदर्श रहताहै। चर्चित उपन्यास 'कुट्राल कुर्रिजि' में भी यह तथ्य प्रकट है। इस उपन्यास रचनाके पीछे भी एक लक्ष्य है, एक आदर्श है। वह यह है कि तमिल प्रदेशमें अपनी मातृभाषा तमिलमें रचित गीतोंको प्रश्रय मिले, प्रमुखता मिले। अन्य भाषाओंके गीतोंके आधिक्यसे तमिल गीत महत्त्वहीन होगये। इस शोचनीय एवं अवांछित स्थिति की ओर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट कर उनके हृदयमें तमिलमें रचित गीतोंके प्रति अनुराग उत्पन्न करना, तमिल संगीतके प्रति प्रेम जगाना उनका ध्येय रहाहै। जातिवादकी संकीर्णताके कारण कुर्रिजि जैसी नयी प्रतिभाओंको समाजमें उचित स्थान नही मिलताहै। मानवको मानवके रूपमें समझनेका प्रयास किया जाये। उसकी प्रतिभा और योग्यताओंको परखकर उसके स्वाभाविक विकासके लिए समुचित अवसर प्रदान किया जाये। तभी सही अर्थोंमें तमिल समाज की प्रगति संभव है। यही चर्चित उपन्यासका मूल स्वर भी है।

उपन्यासकी शिल्प-शैलीके सम्बन्धमें दो बातें। कोवि. मणिशेखरन् संगीतके ज्ञाता होनेके साथही तमिल साहित्य एवं संस्कृतिके मर्मज्ञ हैं। तमिल भाषा पर उनको अद्भुत अधिकार प्राप्त है। उनकी भाषा-शैली अननुकरणीय है। शब्दोंपर उनका अद्भुत अधिकार देखतेही बनताहै। इस कारण सही शब्दोंका प्रयोगकर अपनी भावनाओं और विचारोंको पाठकों तक पहुंचानेमें वे समर्थ हैं। उपन्यासकारोंमें कम ही ऐसे लेखक हैं जिनको भाषापर इतना अधिकार प्राप्त हो। विषयके अनुरूप भाषा-शैलीका प्रयोग करनेमें वे सफल हैं। कुल मिलाकर, सामान्य स्तरका उपन्यास होते हुएभी यह पठनीय है।

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

स्वातन्त्र्य आन्दोलन और गांधीवादी चिन्तनका इतिवृत्त

हृदयनेत्री

उपन्यासकार : श्रीमती मालती चन्दूर

समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल

श्रीमती मालती चंदूर तेलुगु साहित्यके क्षेत्रमें लब्धप्रतिष्ठ लेखिका हैं। १९५२में (१५ अगस्त) जब 'आन्ध्रप्रभा' का (साप्ताहिक) प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, श्रीमती मालती चंदूरने 'प्रमदावनम्' नामक स्तंभके निर्वाहका भार सम्हाला। इस स्तम्भके अन्तर्गत, महिलाओंके लिए उपयोगी लेख, समाचार आदिके अतिरिक्त 'जाबुलु-जवाबुलु' (प्रश्न और उत्तर) का विशेष महत्त्व है। इस स्तंभके अन्तर्गत मालती चंदूरने सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और व्यक्तिगत प्रश्नोंके उत्तर देनेके साथ-साथ देश-विदेशकी अनेक प्रकारकी समस्याओंको सरल और सुगम शैलीमें समझानेका सफल प्रयास किया। पिछले बयालीस वर्षोंसे इस स्तंभ (प्रश्न-उत्तर) ने विभिन्न प्रकारके पाठकोंको आकृष्ट किया। इस स्तंभके कुछ विशिष्ट प्रश्नों और उनके उत्तरोंका संकलन करके बारह पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित किया गया। आजभी यह स्तंभ 'आन्ध्र' में आकर्षणका केन्द्र बना हुआहै। इस प्रकार किसी पत्रिकामें एक स्तंभको इतने वर्षों तक लगातार संचालित करते रहना अभूतपूर्व है। इसी स्तंभके कारण श्रीमती मालतीका नाम तेलुगु देशके घर-घरमें सुपरिचित है।

तेलुगु कहानी और उपन्यासके क्षेत्रमें भी मालतीजीका विशिष्ट योगदान रहाहै। इनकी पहली कहानी 'धवल दुद्दुलु' (हीरेके कर्णफूल) नामसे 'आनंदवाणी' नामक पत्रिकामें प्रकाशित हुईथी। श्रीमती मालतीने लगभग दो सौ कहानियां लिखीहैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने लगभग चालीस उपन्यास लिखेहैं। इन कहानियों और उपन्यासोंमें मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवनका सफल और प्रभावशाली चित्रण किया गयाहै। इनके उपन्यास नारीको केन्द्र बनाकर लिखे गयेहैं। यह नारी साहसी और स्वनिर्मित प्रगतिके पथपर निरन्तर आगे बढ़ती गयीहै। 'आलोचिंचु' (सोचो तो) 'सद्योगम्' (अच्छी नौकरी) 'रेक्कलु चुक्कलु' (पंख और तारे) 'वैशाखी' आदि लोकप्रिय रचनाएं हैं।

कहानी और उपन्यासके अतिरिक्त मालतीजीने महिलाओंके लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें भी लिखीहैं, जिनमें 'अंदालु-अलंकारालु' (सौंदर्य-अलंकरण), 'महिललकु मधुर जीवनम्' (महिलाओंके लिए मधुर जीवन), 'वंटलु-पिंडिवंटलु' (रसोई और पकवान) आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अन्तिम पुस्तकके तेईस संस्करण प्रकाशित हो चुकेहैं, जो उक्त पुस्तककी लोकप्रियताका प्रमाण है।

विजयवाड़ासे प्रकाशित होनेवाली 'स्वाती' नामक मासिक पत्रिकामें पिछले १६-१७ वर्षोंसे श्रीमती मालतीजी 'पात केरटालु' (पुरानी लहरें) शीर्षकसे संसारकी विभिन्न भाषाओंके सुप्रसिद्ध उपन्यासोंका संक्षेपमें परिचय प्रस्तुत कर रहीहैं। अबतक इन्होंने १६५ उपन्यासोंका परिचय प्रस्तुत कियाहै। ६००-८०० पृष्ठोंके उपन्यासका सार १५-२७ पृष्ठोंमें प्रस्तुत करना और वहभी मूल उपन्यासके कथा तत्वको और मुख्य प्रसंगोंको यथातथ्य रूपमें प्रस्तुत कर सकना, साहित्यके क्षेत्रमें अपूर्व योगदान है। अर्धशिक्षित व्यक्ति भी इस कथासारको पढ़कर मूल उपन्यासके महत्त्व से भलीभांति परिचित हो सकताहै। सम्भवत: ऐसा प्रयास किसी अन्य भारतीय भाषामें नहीं किया गया।

तेलुगुमें मालपल्ली (डोमोंकी बस्ती—उन्नव लक्ष्मीनारायण) नामक सुप्रसिद्ध गांधीवादी उपन्यासमें

दो पीढ़ियोंका चित्रण है, तो 'वेइपडगुलु' (सहस्रफण—कविसम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण) में तीन पीढ़ियोंका चित्रण है। इसप्रकार पीढ़ियोंके चित्रण द्वारा लेखकोंने सामाजिक परिवर्तनोंको उजागर कियाहै। श्रीमती मालती चंदूरने 'हृदयनेत्री' उपन्यासमें भी तीन पीढ़ियोंका चित्रण करते हुए १९२० से १९८४ तक के स्वतंत्रता आन्दोलनकी कहानीको उपन्यासका रूप दियाहै। वस्तुत: इस उपन्यासमें श्रीमती इन्दिरा गांधीके जन्म (१९१७) से लेकर मृत्यु (१९८४) तक देशके सामाजिक एवं राजनीतिक विकास क्रमको रेखांकित किया गयाहै। उपन्यास नायक गोपाल जब दस वर्षका था, उपन्यासका प्रारम्भ होताहै। जब वह (गोपालराव) अवकाश ग्रहण करताहै, उपन्यासकी समाप्ति होतीहै। गोपालराव अपनी बुआके प्रभावसे गांधीवादी बनकर राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लेताहै, उसका पुत्र उग्रवादी बनकर अपनी पुत्रीका भार पिता पर छोड़कर उग्रवादी आन्दोलनमें अपनी जीवनलीला समाप्त कर देताहै। उसकी पुत्री अपने दादा गोपालरावकी देखरेखमें बड़ी होतीहै, एम. ए. पास करके भी नौकरी न कर वयोवृद्धोंके लिए आश्रम जैसी संस्थाकी स्थापनाकर, समाज सेवामें अपना जीवन लगा देतीहै।

१९२० में चीराला और पेराला नगरोंमें ब्रिटिश सरकारने म्युनिसिपैलिटीकी स्थापनाकर नागरिकोंपर टैक्स लगानेका विचार किया तो वहांके लोगोंने 'आन्ध्र रत्न' दुग्गिराल गोपाल कृष्णय्याके नेतृत्वमें नगर खाली कर, पासकी बंजर भूमिपर झोंपड़ियां बनाकर रहनेकी घटनाके वर्णनसे प्रस्तुत उपन्यासका प्रारम्भ होताहै। उस समय उपन्यासका नायक गोपालम् (जो बादमें गोपालराव कहलाताहै) दस सालका था। वह अपनी बुआके संग रहकर कांग्रेस द्वारा चलाये गये आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेताहै। उसे मैट्रिक पढ़नेके लिए एक स्कूलमें भर्ती किया जाताहै। उसका एक साथी नंदय्या था जो जन्मसे चमार था। परन्तु अपनी प्रतिभाके कारण अध्यापकोंका प्रेमपात्र बनताहै। मैट्रिक पास करनेके बाद गोपालराव उच्च शिक्षाके लिए वाराणसी जाताहै। सम्पन्न घरानेकी कन्या पार्वतीसे उसका विवाह होताहै। उन लोगोंको गोपालरावका स्वतंत्रता आन्दोलनमें भाग लेना, रुचिकर नहीं लगता। गोपालरावका छोटा भाई बुच्चिबाबू सरकारी नौकरी कर लेताहै और तहसीलदार बन जाताहै। पर गोपालरावके मनपर गांधीजीके और बुआका ऐसा अमिट प्रभाव था कि वह स्वतंत्रता आन्दोलनमें ही अपनी सारी शक्ति लगा देताहै। उसका लड़का श्रीनिवास उग्रवादी बन जाताहै। श्रीनिवास और उसकी पत्नी उग्रवादी दलमें ऐसे फंस जातेहैं कि चाहते हुएभी वे उस दलदलसे बाहर नहीं निकल सकते। इस बीच गोपालराव दो तीन बार जेल जाताहै। 'भारत छोड़ो' आन्दोलनमें भाग लेकर वह जेल जाताहै। सन् १९४७ में जेलसे छूटकर बाहर आताहै। तबतक देशकी स्वतंत्रताकी घोषणा होनेपर उसके परिवारवाले और अन्य अड़ोस पड़ोसके लोग उसका बड़ा आदर सत्कार करतेहैं। निस्वार्थ भावसे राष्ट्रकी सेवा करनेका अभ्यस्त गोपालराव 'स्वतंत्रता सेनानी' कहलाकर उससे लाभ उठाना स्वीकार नहीं करता। ऐसी स्थितिमें उसका बेटा श्रीनिवास एक पत्रवाहकके साथ अपनी नन्हीं बेटीको पिताके पास भेजताहै। अब अपनी पोतीके पालन-पोषणका भार गोपालरावपर पड़ताहै। यह पोती गोपालराव और उसकी पत्नी पार्वतीमें उत्पन्न मनमुटावको दूरकर, उनके जीवन-यात्राका सहारा बन जातीहै। उसका नाम स्वराज्यलक्ष्मी रखा जाताहै। गोपालराव जीविकाके लिए किसी प्रेसमें पहले प्रूफ-रीडर और बादमें उपसम्पादक बन जाताहै। उस पत्रिकामें वह गांधेय विचारधारापर लेख लिखता रहता है। अपनी पोतीका वह अपनी विचारधाराके अनुरूप पालन-पोषण करताहै।

स्वतंत्रता प्राप्तिके बाद देशके राजनीतिक और सामाजिक परिवेशमें आये परिवर्तनोंको देखकर गोपालराव अत्यन्त व्याकुल होताहै। नंदय्या जैसा व्यक्ति इस परिवर्तनसे लाभ उठाकर एम. एल. ए. और मंत्री बनकर लाखोंकी सम्पत्ति कमा लेताहै। न्याय, नीति आदिको गहराईसे दफनाकर लोग स्वार्थ, अधिकार आदिके दास बन गयेहैं। शराबबंदीका नारा बुलन्द करनेवाले गली-गलीमें शराबकी दूकानें खुलवा रहेहैं। पैसेवाले अपने बच्चोंको विदेशोंमें भेजकर शिक्षित करनेके लिए लालायित हो रहेहैं। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार परिव्याप्त है। ऐसी परिस्थितियोंमें गांधीवादी विचारधारामें स्वराज्यलक्ष्मी एम. ए. पास करके भी कहीं कोई नौकरी नहीं कर पाती। जिस किसी संस्थामें जातीहै दो दिनमें वहांके अधिकारियोंसे झगड़कर त्यागपत्र दे देतीहै। इस कलुषित वातावरण

को देखकर वह यह निश्चयकर लेतीहै कि अपने गांवमें जाकर यथासंभव अपने दृष्टिकोणके अनुरूप; समाज सेवा करना ही उपयुक्त मार्ग है। अपने दादाकी बुआ की सहचरी जानकम्मा जैसी वृद्धजनोंकी सेवा-सुश्रूषा के लिए वह 'वृद्धाश्रम' जैसी एक संस्थाकी स्था-नाके लिए, वह चीराला जानेके लिए, अपने दादा और दादीको साथ लेकर, रवाना होतीहै। यहीं उपन्यास समाप्त होताहै।

यद्यपि उपन्यासमें गोपालराव, उसका पुत्र श्रीनिवास और उसकी पोती स्वराज्यलक्ष्मी मुख्य पात्र हैं तथापि यह उपन्यास स्वतंत्रता आन्दोलनका मुख्य रूपसे गांधेय मार्गका चित्र इतिवृत्तात्मक है। आंध्र प्रदेशमें स्वतंत्रता आन्दोलनसे संबंधित अनेक घटनाओं एवं व्यक्तियोंका चित्रण किया गयाहै। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देशमें आये नैतिक-पतनका प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करते हुए, यह उपन्यास वर्तमान परिस्थितियोंमें उचित रूपसे समाज सेवा और समाज सुधारके प्रयास की ओर संकेत करताहै। गांधीजीका मार्ग भी व्यक्ति-केन्द्रित ही था। वर्तमान पतनोन्मुख समाजका उद्धार व्यक्तिगत रूपसे समाज सेवा द्वारा ही सम्भव हो सकताहै। इस आदर्शवादी उपन्यासका उद्देश्य यही है कि अपने हृदयरूपी नेत्रोंसे समाजको देखो और गांधीवादी दर्शनपर आधारित होकर समाज-सेवा करनेका प्रयास करो। वर्तमान दिशामूढ़ युवा पीढ़ीका सफल मार्गदर्शन करताहै।

साहित्य अकादमीके पुरस्कारकी घोषणाके बाद एक साक्षात्कारमें (ईनाडु ३.१.९३) मालती चंदूरने अपने आदर्शवादी दृष्टिकोणको स्पष्ट करते हुए कहाहै 'लेखकोंको समाजके लिए उपयोगी रचनाएं प्रस्तुत करनी चाहियें।' प्रस्तुत उपन्यासके सम्बन्धमें उनका कहना है—"इस उपन्यासका इतिवृत्त समकालीन इतिहासपर आधारित हैं। इसलिए विषय संकलनके लिए मुझे शोध छात्राके समान प्रयास करना पड़ा। इतिहासका पुस्तकों से स्वतंत्रता आन्दोलनसे संबंधित घटनाओंके बारेमें गंभीर अध्ययन किया। कई स्वतंत्रता सेनानियोंसे मिलकर उनके अनुभवों एवं अनुभूतियोंसे परिचय किया। इन सबके समाहारके रूपमें मैंने इस उपन्यासकी रचना की।" ××× "आजके उपन्यासोंमें हिंसाका बोलबाला है। लेखकोंमें चित्त-शुद्धि और निष्ठाका अभाव है। लेखकको किसी एक घटनासे प्रेरणा प्राप्तकर पूरी निष्ठाके साथ समाजके लिए उपयोगी रचना करनी चाहिये। तभी समाज उस लेखकको पहचानेगा।" ××× "मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूं कि युवापीढी भ्रष्ट मार्गका अनुसरण कर रहीहै। कहीं कुछ भ्रष्टाचारियोंको देखकर समस्त समाजको दोषी ठहराना समुचित नहीं है। आधुनिक वेशभूषाका धारण करनेका तात्पर्य भ्रष्ट हो जाना नहीं है। आजकी स्त्रीका जीवन रसोई घर तक सीमित नहीं है। वह स्वेच्छायुक्त जीवन बिता रहीहै। फिरभी समाजमें औसत स्त्री पुरुषके दमन का शिकार बनी हुईहै।"

मालती चंदूरने स्वीकार कियाहै—'मेरी सफलता के पीछे मेरे पति श्री एन. आर. चंदूरका विशिष्ट योगदान है। उनके प्रोत्साहनके कारण मेरे रचना कार्यक्रम का हमारे दाम्पत्य जीवनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

एक सफल और लोकप्रिय लेखिकाके रूपमें श्रीमती मालती चंदूरका तेलुगु साहित्य जगतमें विशिष्ट स्थान है।

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

"अपने जीवन मे मैं स्वयं को ही अपना आदर्श मानकर चला हूं। मैंने बराबर यह प्रयास किया है कि अपने जीवन को आदर्श बना सकूं। इस दिशा में जो भी प्रयास करता रहा उन्हें पाठकों के लिए लिपिबद्ध कर रहा हूं। मेरा जीवन जैसा रहा, उसी रूप में अपनी शैली में यह आत्मकथा लिख रहा हूं।"

—बी. डी. जत्ती

अपना आदर्श मैं हूं

पूर्व उपराष्ट्रपति बी. डी. जत्ती ने कर्नाटक के छोटे से गांव सावलगी में जन्म लेकर अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। पंचायत से राष्ट्रपति भवन पहुंचने की यह यात्रा सिर्फ कहानी ही नहीं संघर्षमय जीवन की कथा है। इस कथा में है घर परिवार और आस-पास के लोग।

"अपना आदर्श मैं हूं—श्री बसप्पा दानप्पा जत्ती की जीवनगाथा उन्हीं की कलम से।"

पृष्ठ : १५२ (कई संग्रहणीय चित्र) मूल्य : १५०/- रु.

पुस्तक प्राप्ति हेतू सम्पर्क करें

पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी प्रा. लि.

८८८, ईस्ट पार्क रोड, करोलबाग, नई दिल्ली

दूरभाष : कार्या० : ७५२५५२८, ५२२६९७, ७७७००६७
आवासः ५७२१३२१, ५७४७१६१, ५७३७४३७

स्त्री-पुरुष भेद, वर्गभेद और दोनों प्रकारके शोषण एवं उससे संघर्षका चित्रांकन

थरोशङ्बी

रचनाकार : अरिबम चित्रेश्वर शर्मा **समीक्षक : इबोहलसिंह काङ्जम एवं देवराज**

'थरोशङ्बी' उपन्यासके प्रारम्भका एक गद्यांश इस प्रकार है—"प्रातःकालीन लालिमाभरे सूर्यका प्रकाश पड़नेसे लोकताककी जलराशि एक नूतन आभा से भर उठीहै। वह मन्द-पवनकी तरंग-तालपर नृत्यकर रहीहै।"१ किन्तु एक साक्षात्कारमें अपने इसी उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए लेखकका कहनाथा कि—"मेरा उद्देश्य मणिपुरी स्त्रियोंकी स्वाभाविक जीवन-शैली अर्थात् उनकी सहनशीलता, उनके साहस व उनके जीवन-संघर्ष आदिको चित्रित करनाहै। इसके साथ-साथ आजके इस युगमें मणिपुरके गांव व शहरके जीवन में प्राप्त भिन्नता तथा उससे उत्पन्न समस्याओंको थोड़ा बहुत प्रकट करनेका प्रयास भी मैंने इसमें कियाहै।'२ जिन्होंने यह उपन्यास नहीं पढ़ा, उनके लिए—उपन्यासके प्रारम्भ और रचनाके सम्बन्धमें लेखकके वक्तव्यको देखकर, समस्या अनुभव करना आश्चर्यजनक नहीं है और यदि उन्हें यहभी बता दिया जाये कि ऊपर जिस गद्यांशको उद्धृत किया गयाहै, उससे भी पहले मध्यकालीन मणिपुरी कविताका एक ऐसा अंश दिया गयाहै, जिसमें आलंकारिक प्रयोगाधिक्यके साथ लोकताक झीलके सौन्दर्यका अंकन है, तो उनकी समस्या औरभी बढ़ सकतीहैं। शिल्पविधिके वैचित्र्यको ध्यानमें रखकर लेखकने 'थरोशङ्बी' का प्रारम्भ कवितासे कियाहै। उसीके तुरन्त बाद उल्लिखित गद्यांश है। निश्चितही प्रारम्भिक प्रकृति-चित्रण और उपन्यासकार के वक्तव्यमें विरोधाभास दिखायी देताहै, किन्तु इसी विरोधाभासकी आन्तरिक टकराहटसे आलोच्य उपन्यासका अन्तर्बाह्य ढांचा भी निर्मित हुआहै। थरोशङ्बी मात्र उपन्यासका नाम ही नहीं है, बल्कि यह उसकी नायकका नाम भी है। लेखकने कृतिमें नायक (समीक्षा क्षेत्रोंमें यह चौंकनेका विषय नहीं है कि अब रचनाके नायकके पदपर विराजमान स्त्री पात्रको नायिका न कहकर नायक ही कहा जाताहैं, क्योंकि नायिका शब्द नायककी सापेक्षताकी मांग करताहै। कृतिमें नारी या पुरुष—एकही में नायकत्वका समावेश हो सकताहै और उसे नायक कहा जाना उचित है) को थरो कह कर पुकाराहै। यदि हम इस कृतिके शीर्षकके अर्थपर दृष्टि डालें तो उसका अर्थ है—हरी कमलिनी—(थरो = कमलिनी, शङ्बी = हरी)। इसमें 'थरो' रचनाकी नायकका मूल नाम है और हरी शब्दका प्रयोग भाव-प्रतीकके रूपमें किया गयाहै। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि कमलिनीको हरा (विशेषण) देकर उपन्यासकार न केवल थरोके जीवनके अन्तर्विरोधों और संघर्षोंको चित्रित कर रहाहै, बल्कि वह वर्तमान मणिपुरी समाजमें स्त्रियोंकी वास्तविक स्थितिको भी दर्शा रहाहै। इतना ही नहीं, वह 'हरी कमलिनी' के बहाने स्त्रियोंके उस हृदय-संवेगका संकेत भी कर रहा है, जिसके सहारे वे, निरन्तर टूटते हुएभी अपनेको संभाले रखनेवाले स्रोतोंकी खोज करती रहतीहैं और अपनी जिजीविषा बचाये रखतीहैं। इसपर भी कमलिनीको 'हरी' जानना भीतर तक कंपा देताहै, क्योंकि उसके इस अस्वाभाविक रंगमें सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश की विरूपता झांकती हुई दृष्टिगत होतीहै।

उपन्यासकी नायक थरो यद्यपि विश्व प्रसिद्ध लोकताक झीलके प्राकृतिक सौन्दर्यके वक्षपर जन्मे टापूके एक

गांव, 'थाङ्ग' में रहतीथी, किन्तु उसे निर्धनताके अभिशाप और अपने छोटे भाई, लिक्लाईको पढ़ा-लिखाकर बड़ा बनानेकी चाहके कारण मणिपुर राज्यकी राजधानी इम्फालमें अपने मामा, तोमचोके घर आकर रहना पड़ा। उसके जीवनका वास्तविक संघर्ष (और उपन्यासका असली कथा-प्रवाह भी) यहींसे शुरू हुआ। उसकी मांने बतायाथा कि मामा तोमचो न केवल छोटे भाई लिक्लाईकी पढ़ाईका पूरा खर्च ही उठायेगा, बल्कि गृहस्थीके काममें हाथ बंटानेके एवजमें थरोको भी कुछ पसामि लेगा, जिससे घरकी गरीबी कुछ कम होगी। थरोकी मां, अपानबीने एक और उद्देश्यसे अपनी बेटीको अपने भाईके घर भेजाथा—वह था युवावस्थाकी दहलीजपर खड़ी लड़कीकी सामाजिक सुरक्षा। वह जब मछली पकड़ने और फिर उन्हें बाजारमें बेचने चली जातीथी तो उसे घरपर अकेली बेटीकी सुरक्षाकी चिन्ता खाती रहतीथी। एक निर्धन विधवाकी बेटीके साथ दया-मायासे रिक्त यह निष्ठुर जमाना कब, क्या व्यवहार कर बैठे, कौन जाने! यह डर भी थरोके मनमें कहीं जरूर रहा होगा, इसीलिए अपनी सहेलियोंके बीच गांवकी अपेक्षा शहरको अस्वीकार करनेपर भी वह मामाका पत्र आनेपर इम्फाल जाना स्वीकार कर लेतीहै। हां, उसे इस विवशतामें यह दुःख अवश्य होताहै कि यदि वह लड़कीके स्थानपर लड़का बनकर जन्मी होती तो किसी अमीर (भलेही वह मामा है) के घर शरण लेने जानेकी अपेक्षा अपने भाईकी भांति ही इम्फाल पढ़ने जाती। थरोकी इस मनःस्थितिका वर्णन करके उपन्यासकारने हमारी तथाकथित प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्थापर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी पहली नुकीली कील ठोंकीहै। इतने भौतिक साधन जुटाने, शिक्षाका इतना विस्तार करने, स्त्री-पुरुष समानताके इतने ढोल पीटनेके बादभी हम एक पतिहीना स्त्री और विधवाकी एक असहाय बेटीके मन से सामाजिक असुरक्षाका भय नहीं मिटा पाये। सुदूर ग्रामांचलोंकी स्त्रियों तक तो यह सन्देश भी नहीं पहुंचा पाये कि वे अपनी बेड़ियोंको जरा धमकाना शुरू करें, क्योंकि नारी-मुक्तिकी हवा शहरोंकी ऊंची दीवारें लांघ कर उनके पास तक पहुंचना चाहतीहै और उन्हेंभी पुरुषोंके बराबर अधिकार मिलनेवालेहैं। सच्चे मनसे ऐसा चाहते, तो शायद यह होभी जाता, किन्तु हम शहरातियोंने कभी कठोर प्रयास कियाही नहीं—न पुरुषोंने न स्त्रियोंने। पुरुषोंने इसलिए नहीं कि उनके लिए मीठी बातोंमें आकर वदन नुचवानेवाली भोली नारियोंका कहीं अकाल न पड़ जाये और स्त्रियोंने इसलिए नहीं कि कहीं ग्राम-बालाएं उनकी असली आजादी न बांट बैठें।

उपन्यासकारने बड़े सांकेतिक रूपमें इस स्थितिका चित्रण कियाहै। थरोके मामाके घर पहुंचतेही, उसकी मामी इबेथोइ चिकनी-चुपड़ी बातोंका जाल फैला देती है। उसे तरह-तरहके लालच देतीहै और अनेक सब्ज-बाग दिखातीहै। इस प्रकारका सम्मोहन-सा करके वह पहले रसोईघर थरोको संभलवा देतीहै और फिर ताला-कुंजी उसके हवाले कर देतीहै, पर ध्यान रखतीहै कि घरकी चाबी ही थरोके पास रहे, कोठी-कुठलेपर नजर भी न पड़े। इसके बाद चार बच्चोंकी मां, इबेथोइ मन भर सिनेमा देखने, पतिके मित्रोंके साथ गप्पें लड़ाने और घूमने-फिरनेके लिए स्वतन्त्र हो जातीहै। थरो रह जातीहै रसोईमें खटने और घरकी देखभाल करनेके लिए। उसे सन्तोष है तो बस इतनाही कि छोटी ममेरी बहन पानथोइबीसे उसका मन लगताहै और अपने छोटे भाई लिक्लाइकी पढ़ाईका भार उसे हल्का होता हुआ लगताहै, वरना वह किसी बड़े घरमें नौकरानी की तरह रहना कभी स्वीकार नहीं करती। लिक्लाइ भी नहीं चाहता कि उसकी बहिन मामाके घर रहे। एक दिन जब अचानक उसकी मां अपानबी उसे लेकर थरोसे मिलने जातीहै तो भाई-बहिनके वार्तालापमें दोनोंके मनका असन्तोष प्रकट हो जाताहै।

थरोका मामा, तोमचो ठेकेदार है। वह 'आकाश-बिल' (मणिपुरी समाजमें इसका अर्थ होताहै, बिना काम कियेही झूठे बिल बनाना और जोड़-तोड़कर पैसा वसूल करना) बनाकर धन बटोरताहै, राजनेताओंके साथ सांठ-गांठ करके तरह-तरहके अनुचित कार्य करता है और कीमती पत्थर व मादक द्रव्यों (नं. ४) की तस्करी करताहै। यही ठेकेदार मामा तोमचो, लिक्लाइ की पढ़ाईका खर्च वहन करने तथा थरोको एक सौ रुपया मासिक देनेका वादा करताहै—लेकिन उसका वादा झूठा निकलताहै। जब तंग आकर स्वयं थरो उससे कहतीहै कि उसका भाई पैसा मांगने आयाथा, तो वह सप्लाई-बिलका भुगतान न होनेका बहाना करके पल्ला झाड़ लेताहै। ऊपरसे थरोकी मामी, इबेथोइ उसे बेहद डांटतीहै कि उसने इतनी छोटी-सी

बातके लिए उससे न कहकर अपने मामाको मानसिक कष्ट दिया। यह है—नगरीकरण और नवधनाढ्य व्यवस्थाके गर्भसे जन्मी आधुनिक संस्कृतिका सभ्यताके दबावोंसे दूर रहनेवाले निर्बल निर्धन लोगोंके प्रति व्यवहार! उपन्यासकारने जिस सहजतासे इस विरूप-व्यवस्थाके ढांचेको उघाड़कर नंगा कियाहै, वह आश्चर्यजनक है।

इबेथोइका भाई सनातोम्बा, थरोको अपनी पत्नी बनाना चांहताहै, किन्तु वह उसके दुष्चरित्रको जानती है और विवाहके प्रस्तावको ठुकरा देतीहै। सनातोम्बा इसे अपना अपमान समझताहै और क्रोधमें आकर थरो की कलाई पकड़ लेताहै। वह घरके नौकर बहादुरको आवाज लगातीहै, जिसके आनेपर बात आगे नहीं बढ़ती। थरोकी मानसिक परेशानी बढ़ जातीहै। जब एक दिन इबेथोइ उससे कहतीहै कि उसका भाई सनातोम्बा उससे प्रेम करताहै तो थरोके सामने यह स्पष्ट हो जाताहै कि वह मामी और उसके भाईके षड्यन्त्रकी शिलाके नीचे किसी दिनभी कुचली जा सकतीहै। अब एक ओर वह अपनी रक्षाके लिए अपने साहस और आत्मविश्वासको समेटतीहै और दूसरी ओर नारी-देह का शत्रु सनातोम्बा अपनी तैयारी करताहै। वह एक दिन पानी मांगनेके बहाने थरोसे छेड़छाड़ करनेका प्रयास करताहै। इसके बाद स्वयं उपन्यासकारके अनुसार—"सनातोम्बाकी अनर्गल बातें सुनकर थरोशङ्बी पहलेसे और चिढ़ गयी। उसने आगे कहा, "भाई सनातोम्बा तुम जिससे कह सको, जाओ, मैं नही सुनना चाहती।"

"मेरे प्यारसे बोलनेपर तुम्हारा दिमाग चढ़ गया है थरोशङ्बी! शायद नहीं जानती मैं कौन हूं! मैं इस घरकी महारानीका छोटा भाई सनातोम्बा हूं। तुम इस घरकी नौकरानी हो, समझीं?"

"क्या बकतेहो, शराबी कहींके? कहकर थरोशङ्बीने क्रोधसे उबलते हुए सनातोम्बाके गालपर थप्पड़ जड़ दिया, फिर बोली 'नौकरानी?"

एक नैतिकताहीन पुरुषके गालपर चांटा मारनेका साहस करके थरोशङ्बी पशुनरोंसे संघर्ष करके अपने स्वत्वकी रक्षा करनेवाले नारी-समाजकी प्रतीक बन जातीहै। इस भूमिकामें आतेही उसके सामने आनेवाले खतरोंकी कठोरता भी बढ़ जातीहै। सनातोम्बा चांटा खाकर बिफर पड़ताहै—"हां, तू नौकरानी है, वह पुरुष-बलका प्रयोग करके थरोशङ्बीकी कलाई पकड़ लेताहै और कहताहैं, "नौकरानी! तू मालिकको नहीं पहचानती। देखताहूं, तुझे कौन बचाता है! इन शब्दोंके साथ सनातोम्बाने थरोशङ्बीकी कौली भरनेकी कोशिण की।"[४]

अब थरोशङ्बी और सनातोम्बाके बीच संघर्ष शुरु हो जाताहैं। यह संघर्ष सनातन कालसे चला आनेवाला नर-नारी संघर्षका प्रतीक है। एक ओर अपना पूरा बल लगाकर अपने अस्तित्व, अपने स्वत्व, अपने कौमार्य और अपनी इयत्ताकी रक्षाका प्रयास करनेवाली नारी है, तो दूसरी ओर नारीको पुरुषकी भोग्या भर मान कर स्त्री-शरीरपर नियन्त्रण करनेकी कोशिश करने वाला नर है। युग-युगसे नारीको पशु-बलके सामने झुकने और शरीर समर्पित करनेको विवश किया जाता रहाहै, युग-युगसे नारी अबलापनको ओढ़कर नरकी वासनाका शिकार होती चली आ रहीहै—किन्तु वर्तमान युग पिछले युगोंसे कई मायनोंमें भिन्न है, आजकी नारी भी इतनी सरलतासे हार माननेवाली नहीं है, थरो इतनी सरलतासे कैसे हार मान लेती—"छीना-झपटीमे थरोशङ्बीके कपड़े अस्त-व्यस्त होगये। वह घबराने लगी, बल लगाकर विरोध करनेके कारण सनातोम्बा थरोशङ्बीपर हावी तो नहीं हो सका, लेकिन वस्त्रोंकी अस्त-व्यस्तताके कारण उसे डर हुआ कि कहीं सनातोम्बा अपने इरादेमें सफल न हो जाये! वह अपना ढीला फनेक ठीक करने लगी कि सनातोम्बाने मौका देख कर उसके गुप्तांगको छूनेका प्रयास किया। थरोशङ्बी तुरन्त नितम्बके बल जमीनपर गिर पड़ी। अन्तिम क्षण तक भी अपनी रक्षाके लिए आतुर थरोशङ्बीने क्रोधके साथ अपना अन्तिम बल समेटकर सनातोम्बापर लातसे प्रहार कर दिया। उस समय सनातोम्बा यह समझकर अपने वस्त्र ठीक कर रहाथा कि अब तो थरोशङ्बी आसानीसे कब्जेमें आ ही जायेगी। थरोशङ्बीने आगा-पीछा सोचे बिना सनातोम्बापर इसलिए लात चलायी कि यदि कहीं वह क्षणभी हाथसे निकल जाता तो उसका जीवन जूठन भर रह जाता।"[५]

पाठकोंके मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो सकतीहै कि क्या इसके बाद थरो अपनी रक्षा कर पायी? इस प्रश्नका उत्तर हमारे समाज और उसमें निवास करने वाले नर-समाजकी मानसिकताके यथार्थमें छिपा हुआ है। समाजकी आन्तरिक व्यवस्था, जो व्यक्तिके मूल

संस्कार बनाती और उनका परिष्कार करतीहै, मूलतः पुरुष-सत्ताके नियन्त्रणमें निर्मित हुईहै। यही कारण है कि जितने भी सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य हैं, वे स्त्रियों का रक्त पीकर जिन्दा रहतेहै तथा स्त्रीके लिए निर्धारित सभी श्रेष्ठ-मानोंकी परिणति पुरुषकी सत्ताको देवमूर्तिके रूपमे पूजनेमें होतीहै। आधुनिक युगमें इस स्थितिमें कुछ बदलाव अवश्य आयाहै, नारियोंने अपने सामाजिक और वैयक्तिक अधिकारोंके लिए संघर्ष करके स्थितिमें कुछ परिवर्तन करनेमें सफलता पायीहै—पर यह बदलाव उतनाही है, जितना पुरुष प्रधान व्यवस्था ने चाहाहै, कहीं-कहीं ही शायद उससे कुछ अधिक है। हमारे वर्तमानका एक बड़ा संकट यह है कि स्त्रीकी सत्ता आजभी पुरुषके लिए चुनौती बनी हुईहै, एक ऐसी चुनौती जिसे हराना पुरुषको आवश्यक लगताहै। इतिहास गतिशील तो दिखताहै, किन्तु पत्थरकी दीवार में ठुकी गुलमेखपर घूमते पहिएकी भांति। यदि ऐसा न होता तो स्त्री और पुरुष एक दूसरेको एक ही व्यवस्था के पूरक-अंगके रूपमें देखने लगते। आज तो ऐसा है कि, पुरुष, स्त्रीको एक ऐसी चुनौतीके रूपमें देख रहा है, जो उसकी परम्परागत सत्ताको धीरे-धीरे समाप्त कर सकतीहै। इसीलिए वह कभी समानताका नारा लगाकर उसे छलताहै और कभी उसकी प्रशंसा करके उसे सम्मोहित करनेका प्रयास करताहै। जब उसे दिखायी देताहै कि ये दोनों साधन उसका उद्देश्य सिद्ध नहीं कर पा रहेहैं तो वह अपना पुराना हथियार निकालताहै—बलका प्रयोग करके स्त्रीकी देहको पराजित करना, जिससे शरीर टूटनेके साथ उसका मन भी टूट जाये। एक रात थरो कामसे थकी-हारी बैठे-बैठे ही सो जातीहै और सनातोम्बा स्थितिका लाभ उठा कर उसके साथ बलात्कार कर डालताहै। नर-नारी सम्बन्धोंके इतिहासका पहिया अपनीही धुरीपर एक और चक्कर लगाताहै। किन्तु इस बार थरो अपराधी को स्वयं दण्ड देनेका निश्चय करती है, मानो, प्राचीन अबला आधुनिक युगमें अपनेको सबला सिद्ध करनेका निश्चय कर चुकीहो। वह एक दिन सनातोम्बाको छुरा मारकर घायल कर देतीहै और बदलेमें जेल चली जातीहै। बादमें न्यायालय उसे बरी कर देताहै। दूसरी ओर घायल सनातोम्बा जिस दिन ठीक होकर अस्पताल से घर आनेवाला होताहै, उससे एक दिन पहले उसके पास दो युवा आतेहैं, जिनमें से एक उसे छुरा मारकर हमेशाके लिए मृत्युकी गोदमें सुला देताहै। इस प्रसंगमें थरोशाङ्बी का छुरा उन समस्त नारियोंका छुरा बन जाताहै, जो विभिन्न अवसरोंपर यौन-उत्पीड़नकी शिकार होतीहैं। एक प्रकारसे यह उपन्यासकारकी चेतावनी है, जिससे वह नैतिक अपराधियोंको समय रहते सावधान कर देना चाहताहै।

उपन्यासकी विद्रोहिणी नायक थरोशङ्बीके हृदय में सहज प्रेमकी आकांक्षा और मौन-एकान्त-समर्पणकी प्रकृत इच्छा भी विद्यमान है। उसके प्रेमका केन्द्र है इबोतोन, जो उसके सामने अपने हृदयकी सरलताके साथ अपने मनकी भावना प्रकट करताहै। उपन्यासकार का रचना-कौशल यह है कि उसने थरोको अपने प्रेमी का प्रेम-निमन्त्रण स्वीकार करते नहीं दिखायाहै—बस, थरो विश्वास हो जानेपर मनही मन उसकी ओर आकर्षित हो जातीहै और उसका हृदय इबोतोनके प्रेमसे जीने व संघर्ष करनेकी शक्ति प्राप्त करने लगताहै। थरोके जीवनके साथही उपन्यासका भी सबसे प्रभावशाली दृश्य वह है, जहां थरोके भाईके दाह-संस्कारके बाद भूखा-प्यासा इबोतोन दीवारकी ढलानसे टिककर सो जाताहै और थरो इस डरसे उसके पास आकर बैठ जातीहैं कि कहीं वह नींदके झटकेमें नीचे न लुढ़क जाये। वह अपनी ओढ़नीभी उसके सिरके नीचे लगा देतीहै। थोड़ी देर बाद इबोतोनके कन्धेसे टिककर उसे भी नींद आ घेरतीहै। अचानक इबोतोनकी नींद खुलतीहै। वह थरोके वहां होनेका अर्थ समझना चाहताहै और उसके खुले कन्धोंपर चादर ढकना चाहताहै, कि थरोकी नींद खुल जातीहै। इबोतोन पूछताहै —

“थरो ! बहुत थकीहो ?”

“हां, मैं ऊंघने लगीथी।”

“थरो, थोड़ा आराम करनेकी कोशिश करो। नहीं तो कल सुबह बहुत कष्ट होगा।”

“हां, मुझे सुला दीजिये” कहकर थरोशङ्बी शिशुकी भांति संकोच रहित होकर इबोतोनकी छाती पर सिर टिका देताहै। निश्शंक होकर जीवनमें पहली बार इबोतोनकी छातीपर सिर टिकाये थरोशङ्बीको चांद बादलोंके पीछेसे झांक कर देखताहै।[६]

इस दृश्यके बाद उपन्यासकारने मध्यकालीन मणिपुरी भाषाकी एक कविताका अंश दियाहै और कथाको विराम दे दियाहै। यह लेखकके रोमानी रचना-संवेगों

को प्रकट करताहै। कथा-परम्पराकी दृष्टिसे चित्र श्वर शर्मा रोमानी आदर्श प्रधान कलाके उपासकके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उनका यथार्थ भी इस स्पर्शसे बच नहीं पाता। वे संभवत: स्वयं अपने भीतर रोमान और यथार्थको अलग नहीं कर पाते या करनेकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते। उनकी मान्यता है कि "हम अपने-अपने दृष्टिकोणके आधारपर रोमाण्टिक, रियलिस्टिक, नेचुरलिस्टिक आदिकी सीमा निर्धारित करते हुएभी समाजमें ऐसी कोई चीज नहीं पाते जो इनके बिना हों। × × अलग बात तो यह है कि रोमाण्टिसिजम और रियलिजम——ये दोनों अलग-अलग नहीं कियेजा सकनेवाले एकही हाथके दोनों चेहरोंके समान हैं।"७ यहाँ यह प्रश्न कियाजा सकताहै कि जीवन और कलाके अनिवार्य तत्त्व होनेपर भी क्या यह कलाकारका दायित्व नहीं है कि वह युगीन जीवन और समस्याओंकी प्रकृतिके अनुसार इनका चयन, चुनाव और प्रयोग करे! जैसे-जैसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश कटुता एवं विद्रूपतासे भरता जा रहाहै, वैसेही रोमानियतकी अपेक्षा, यथार्थ अभिव्यक्तिका महत्त्व बढ़ताजा रहाहै। आज वही कला समाज सापेक्ष मानीजा सकतीहै, जिसके पास जीवनको यथार्थ दृष्टिसे देखनेका साहस हो, क्योंकि आज समस्याओंको देखते रहनेसे अधिक उनसे टकराना आवश्यक है। यद्यपि थरोशङ्ब्रीमें समस्याओंसे पात्रों की टक्कर होतीहै, वे जूझते और सक्रिय होतेहैं, परन्तु अनेक स्थल ऐसेभी हैं, जहाँ रोमानियतका पलड़ा इतना भारी हो जाताहै कि पूरा कथानक उसके बोझके नीचे दबता दिखायी देने लगताहै। ऐसे प्रसंग उपन्यासकी सीमाका भी संकेत करतेहै तथा स्वयं लेखककी सीमा भी बतातेहैं।

थरोशङ्ब्रीमें निर्धनताकी चक्कीमें घिसते लोगोंके मनोविज्ञानका चित्रण भी मिलताहै। अत्यधिक निर्धनता मनुष्यको बहुत पीड़ा देनेके साथही साथ उसकी बौद्धिक चेतनाको बहुत सजगभी कर देतीहै। इसके सहारे आदमी अपने सत्यसे दूर भागकर बचनेका प्रयत्न भी करताहै। थरो-परिवारके प्रसंगमें यह तथ्य प्रभावशाली रूपमें उभराहै—"पिछली रात सीझे सिघाड़ोंके सिवा कुछ भी न खानेवाले लिक्लाईको यदि अबभी बिना खायेही स्कूल जाना पड़ा तो थरो का गला सूखने लगा। उसकी साँस फूलने लगतीहै। माँ, अपानबीकी ओर प्रतीक्षा न कर पानेके कारण उसने रसोइमें जाकर चूल्हा जलाया।

थरो बाहर निकली, माँको देखनेकी कोशिश की, फिर चूल्हेका जलावन ठीक किया। हाण्डीका पानी गरमाने लगाथा। थरो-द्वारा व्याकुल होकर प्रतीक्षा किये जानेवाली माँकी नाव हवाके आगे-आगे आती दिखायी दी। उसी समय लिक्लाइने पूछा—"दीदी, खाना तैयार है?" "तैयार है, मांका इन्तजार कर रहीहूं" —थरोने तात्कालिक बुद्धिका प्रयोग करके कहा, "हाथ-मुंह धोओ, तबतक तैयार कर देतीहूं।"

यह केवल एक परिवारकी कहानी नहीं है। इसमें उन सबकी व्यथा छिपीहै, जो दो जून भोजनकी चिन्ता से एक क्षणके लिए भी मुक्त नहीं होते। उनमें से उन लोगोंकी हालत तो हृदय-द्रावक होतीहै जो बड़ी-बड़ी झीलोंके मध्य टापुओंपर रहतेहै। मछली पकड़कर बाजारमें बेचनेपर ही इनकी रोटीका भविष्य निर्भर रहताहै। मछली नहीं फंसी तो भातभी नहीं मिलेगा।

'थरोशङ्बी' की रचनाके सन्दर्भमें उपन्यासकार ने एक और बात कहीहै—वह है मणिपुरी समाजमें व्याप्त सामाजिक एवं राजनीतिक अशान्ति तथा उसका युवकोंपर प्रभाव। लेखकने कहाहै कि, "थरोशङ्बीमें राजनीतिक व सामाजिक अशान्ति और अनिश्चितता तथा आजकल घटनेवाली कुछ घटनाओंको जोड़नेकी कोशिश मैंने कीहैं। इसको मैं समय द्वारा समाज और जनताको दिया गया आघात मानताहूं।"

उपन्यासमें तीन अलग-अलग अवसरोंपर कुछ घटनाओंका वर्णन किया गयाहै। एक प्रसंगमें थरोके मामा के घर रातमें कुछ युवक आतेहैं। वे तोमचौको रस्सी से बांध देतेहैं और इबेथोइको घायल कर देतेहै। वे धनकी माँग करने आयेहै। उनकी वह माँग पूरी होती है तथा उन्हें भोजन कराया जाताहै। भोजन थरो तैयार करतीहै। दूसरे प्रसंगमें युवकों द्वारा ही सनातोम्बाकी हत्या की जातीहै और तीसरे प्रसंगमें बस-यात्रामें इबोतोनको एक लीफलेट मिलताहै, जो "कङ्शै पाथी पाफल" नामक संगठनकी ओरसे है। इसमें लिखाहै—"इस भूमिके वासियोंके वास्तविक रूप और जड़ोंको बचानाहै, अतः पारस्परिक शोषण, जातीय-संघर्ष, हानिके प्रयत्न और बड़े वर्ग द्वारा छोटे वर्गको पृथ्वीसे मिटा डालनेकी प्रयत्न नहीं चलेगा।" यह संगठन विभिन्न सामाजिक-आर्थिक

बुराइयों एवं आपराधिक कृत्योंके विरुद्ध जेहाद छेड़े हुएहै और अपने आदेशोंका पालन न करनेवालोंको दण्ड देनेका संकल्प व्यक्त करताहै। उसी लीफलेटमें आगे लिखाहै—"यदि कोई इन बातों और इस समाज के विरुद्ध काम करेगा, तो उसे "कङ्लै पाथो पाफल" को दी गयी चुनौती माना जायेगा। इनके साथ, इस धरतीपर राजनीतिक आधारपर स्वार्थ साधनेवाले व्यवसायी एवं बड़े अधिकारियोंके कार्य, नारियोंके साथ व्यभिचार, शराब गांजा, अफीम और हेरोइन नं. ४ आदि मानव जीवनको बर्बाद करनेवाले नशेका प्रयोग, बिक्री, इधरसे उधर लाना-ले जाना निषिद्ध है। इस भूमिकी अनेक विकास योजनाओंके साथ अनुचित व्यवहार करके इस जातिको हानि पहुंचानेवाले कर्मचारियों, संक्षेपमें इस भूमि और स्वतन्त्र भारतके सारे शत्रुओंको "कङ्लै पाथो पाफल" की ओरसे कड़ा दण्ड दिया जायेगा।

यद्यपि 'थरोशङ्बी' के कथानकके मूल ढांचेसे इन प्रसंगोंका अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है—यदि इनकी अवतारणा न कीजाती तो भी उपन्यासकी प्रभावात्मकता नहीं टूटती, तबभी लेखकने इनसे बचनेका प्रयास नहीं किया। माना जाना चाहिये कि रचनाकारने जानबूझकर ऐसा कियाहै। आखिर ऐसा क्यों है? इसका उत्तर स्वयं लेखकने ही दियाहै। उसका कहना है कि, "चूंकि साहित्य समाजका दर्पण है, अतः मैंने भी आजके समाजके कुछ रूपोंको, इसकी कुछ स्थितियोंको प्रकट करना अपना कर्तव्य समझकर प्रत्यक्ष रूपमें न सही, अप्रत्यक्ष रूपमें (राजनीतिक अशान्ति व अनिश्चितताको) अपनी इस पुस्तकमें चित्रित करनेका प्रयत्न कियाहै।"१२

स्पष्ट है कि लेखकके सामाजिक एवं राजनीतिक दायित्वबोधने इन प्रसंगोंका सृजन करवायाहै। इससे यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि आजका मणिपुरी साहित्य किस प्रकार सामाजिक दबावों एवं राजनीतिक प्रभावोंसे जूझ रहाहै। पिछले कुछ दशकोंमें आर्थिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक उठा-पटक, मादक द्रव्योंकी तस्करी, बेरोजगारी, और वर्ग-भेदने मणिपुरी समाजकी कमर तोड़ दीहै। न जाने किसके षड्यन्त्रके कारण इस प्रदेशकी युवा पीढ़ीको नशेकी अन्धी गुफामें धकेलनेका प्रयत्न किया गयाहै और न जाने किस निहित स्वार्थके लोगोंने सामाजिक न्यायका गला घोटने का कार्य कियाहै। इससे, वह समाज जीवनके भयंकरतम सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संकटका सामना कर रहाहै। इसकी प्रतिक्रिया भी देखनेमें आ रहीहै। एक ओर यह भूमि हड़तालों, आन्दोलनों, रैलियों, जुलूसों और आये दिन होनेवाले बन्दोंकी चरागाह बन गयीहै, दूसरी ओर असन्तुष्ट युवा वर्गने सशस्त्र संगठन स्थापित करके सांस्कृतिक एवं समाजार्थिक संकटके मुकाबलेका संकल्प कर लिया है। निश्चित रूपसे इन युवा-संगठनोंकी राजनीतिक मांगें भी हैं, जिनके सम्बन्धमें अलग-अलग मत हो सकतेहैं, किन्तु जो बात अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि ये असन्तुष्ट युवा प्राचीन परम्पराओं और सांस्कृतिक पहचानकी रक्षा अनिवार्य मानतेहैं तथा नशीले पदार्थोंकी तस्करी एवं सरकारोंके संरक्षणमें चल रहे जुए (लॉटरी) के पूर्णतः विरुद्ध हैं। जब वे देखतेहैं कि जन-कल्याणका दावा करनेवाली सरकारें सामाजिक अपराधकर्ताओंको उचित रूपसे दण्डित नहीं कर सकतीं, तो स्वयं न्यायकर्ता बननेका प्रयास करतेहैं।

युवा पीढ़ीका यह असन्तोष भारतके अनेक राज्यों (विशेषकर सीमान्त राज्यों) में तेजीसे उभराहै और यह समझ आ जाना चाहिये कि इस संगठित असन्तोष का ऊपरी चेहरा भले ही राजनीतिक लगताहो, किन्तु इसके मूलमें सामाजिक एवं आर्थिक कारण हैं। यदि स्वतन्त्रताके बाद विकास योजनाएं निष्ठापूर्वक लागू की जातीं और सामाजिक न्यायकी उचित व्यवस्था की जाती तो युवा-पीढ़ीकी दशा वह नहीं होती, जो आज दिख रहीहै। थरोशङ्बी उपन्यासमें 'कङ्ल पाथो पाफल" नामक काल्पनिक संगठनके लीफलेटके माध्यम से लेखकने इन्हीं बिन्दुओंकी ओर संकेत कियाहै। यह माना जाना चाहिये कि ऐसा करके उसने उपन्यासके शिल्पके कलात्मक रूपकी रक्षाकी चिन्ता भूलकर अपने मूल दायित्वका पालन कियाहै और कोईभी कला रचनाकारके दायित्व-बोधसे बड़ी नहीं हो सकती। अब यह सरकारोंपर निर्भर है कि वे साहित्यके दर्पणमें अपना वास्तविक चेहरा देखकर भी सावधान होतीहैं या नहीं?

अन्तमें 'थरोशङ्बी' के विषयमें एक टिप्पणी यह और कि यदि लेखकने प्रकृति व अन्य प्रकारके वातावरणके चित्रणमें भौगोलिक संकेतोंका ध्यान रखा होता तो यह मणिपुरी भाषाका पहला सशक्त आंचलिक उपन्यास बन गया होता। इसका थोड़ा दोष समीक्षकों

पर भी है, क्योंकि अभीतक मणिपुरी समीक्षामें आंचलिक-साहित्यकी कलात्मक-अवधारणाके सम्बन्धमें समुचित सामग्रीका अभाव बना हुआहै।

सन्दर्भ :

१. थरोशङ्बी पृष्ठ—१
२. अ. चित्रेश्वर शर्मा, महिप पत्रिका, वर्ष-७, अंक-६६, फरवरी १९९३, पृष्ठ-२७
३. थरोशङ्बी पृष्ठ—९९
४. वही ,, —९९
५. वही ,, —१००-१०१
६. वही ,, —२००-२०१
७. अ. चित्रेश्वर शर्मा, महिप पत्रिका, वर्ष-७, अंक-६६, फरवरी-१९९३ पृष्ठ-२९
८. थरोशङ्बी पृष्ठ—२
९. अ. चित्रेश्वर शर्मा, महिप पत्रिका, वर्ष-७, अंक-६६, फरवरी-१९९३ पृष्ठ-३०
१०. थरोशङ्बी पृष्ठ—१७५
११. वही ,, —१७४
१२. अ. चित्रेश्वर शर्मा, महिप पत्रिका, वर्ष-७, अंक-६६, फरवरी-१९९३, पृष्ठ-३०-३१ □

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

उपन्यास : मराठी

बांध-निर्माणसे विस्थापितोंके विनाशकारी सामाजिक-परिवर्तनका कलात्मक प्रलेख

झाडाझडती

रचनाकार : विश्वास पाटील

समीक्षक : डॉ. गजानन चव्हाण

'झाडाझडती' (१९९१) श्री विश्वास पाटीलकी, 'पानिपत' (१९८८) और 'पांगिरा' (जलनीम १९९०) के बादकी उपन्यास रचना है। 'पानिपत' (पानीपत में हुआ युद्ध) की ख्यातिने उनकी लेखकीय क्षमता एवं संभावनाओंका संकेत दियाथा। 'पानिपत' की विशेष चर्चा हुई। अहमदशाह अब्दाली और मराठोंके बीच पानीपतमें हुए युद्धकी तटस्थ एवं कलात्मक व्याख्याके रूपमें 'पानिपत' उपन्यासका अपना विशिष्ट महत्त्व है। अबतक उपेक्षित प्रमाणोंके आधारपर पानीपत-युद्धके सम्बन्धमें नवीन तथ्योंका प्रस्तुतीकरण और ऐतिहासिक तथ्योंको कलात्मक रूप देनेके लिए आवश्यक कल्पनात्मक सर्जन 'पानिपत' की विशेषताएं हैं।

'झाडाझडती' ने 'पानिपत' से भी अधिक ख्याति अर्जित की। विषयगत नवीनता उसके प्रति आकर्षणका प्रधान कारण है। सिंचाईकी व्यवस्थाके लिए बांधका निर्माण और उससे उत्पन्न परिस्थितियां इसका विषय है। वैसे गो. नी. दांडेकर, बा. सी. मर्ढेकर की रचनाएं 'आम्ही भगीरथाचे पुत्र' तथा 'पाणी' भी इसी विषय को छूतीहैं परन्तु विवरणकी सूक्ष्मता और यथार्थ चित्रण के सदर्भमें उनकी अपनी सीमाएं रहीहैं। 'झाडाझडती' संबंधित विषयकी जड़ोंतक पहुंचकर किये गये अध्ययन के पश्चात् लिखा गया यथार्थवादी उपन्यास है। साहित्य अकादमी पुरस्कार-प्राप्त इस उपन्यासको 'स्व. वामन मल्हार जोशी' पुरस्कार, महात्मा फुले साहित्य

पुरस्कार, श्री ज. जोशी पुरस्कारभी प्राप्त हुएहैं ।

'झाडाझडती' शब्दके कई अर्थ हैं जिनमें से दो अर्थ इस उपन्यासके संदर्भमें अभिप्रेत हैं—एक, भूत द्वारा दिये जानेवाले कष्ट और दूसरा, कभी समाप्त न होनेवाला दुःख । लोकमें यह मान्यता रहीहै कि एक बार पिशाच द्वारा दबोच लेनेपर उससे मुक्ति पाना बहुत कठिन काम है । बांध पीड़ितोंकी अवस्था पिशाच-ग्रस्त मनुष्यके समान होतीहै । उनका दुःख कभी समाप्त नहीं होताहै ।

'झाडाझडती' उपन्यासमें उन समस्याओं, असुविधाओं, दुष्ट प्रवृत्तियों, कुचालोंका चित्रण किया गयाहै जो देशकी वर्तमान व्यवस्था और राजनीतिमें निहित ढोंग, स्वार्थ, भाई-भतीजावादको तो उजागर करतीही हैं, प्रधान रूपसे बांध पीड़ितोंके निस्सीम कष्टोंपर प्रकाश डालतीहैं । स्वीकृति प्राप्त विकास-योजनाओंके कार्यान्वयनमें होनेवाला विलम्ब, बांध-निर्माणके लिए जमीनकी प्राप्तिमें किसानोंपर डाला जानेवाला दबाव, इस दबावतंत्रमें बरती जानेवाली निर्ममता, सरकार द्वारा किसानोंको दी जानेवाली अपर्याप्त क्षतिपूर्ति, बांध पीड़ितोंको पुनर्वासके संबंधमें दिये जानेवाले लंबे-चौड़े आश्वासन, नेताओं-अधिकारियों तथा लाभ-क्षेत्रकी जनताको दिये अपने आश्वासनोंसे मुकर जाना, सरकारी योजनाओं तथा सरकारी उद्योगोंमें लाभके उद्देश्यसे रिश्तेदारोंको घुसेड़नेके लिए बड़े नेताओं तथा सरकारी अधिकारियोंके साथ सांठ-गांठ आदिके कई नमूने इस उपन्यासमें प्रस्तुत किये गयेहैं । लेखकने संकेत कियाहै कि बांध पीड़ितोंके जीवनमें असुविधाओं और पीड़ाओंका यह क्रम निरन्तर चलता रहताहै क्योंकि ये कष्ट तथा पीड़ाएं प्रकृति प्रदत्त नहीं हैं। वस्तुतः ये पीड़ाएं विकासके नामपर लूट मचानेवाले कुछ जनप्रतिनिधियों और उनके दलालों द्वारा निर्बल असंगठित जनतापर लादी गयीहैं । बांध-पीड़ितोंके दुःखोंका कोई एक रूप, कोई एक प्रकार नहीं है । क्षतिपूर्तिमें खेतीके लिए न अच्छी जमीन मिलतीहै न पर्याप्त राशि ! पुनर्वासके उद्देश्यसे गृह निर्माणके लिए न पर्याप्त स्थान मिलताहै न सुविधाएं । दलदल, कीचड़भरे स्थानपर ऐसी-वैसी झोपड़ियां बनाकर रहो । न बिजलीकी सुविधा न पानीकी ! लड़-झगड़कर सुविधाएं प्राप्त हो जायें तोभी लाभ-क्षेत्रके गुंडा प्रकारके जमींदारोंकी स्वार्थ लोलुपता, घृणा, तिरस्कार, द्वेषके कारण वे सुविधाएं भी बीचमें खंडित कर दी जातीहैं । पुनर्वसित लोगोंका पूरा जीवन इन दैनिक आवश्यकताओंको जुटानेके लिए किये गये संघर्षोंमें व्यतीत हो जाताहै । न अस्पताल है, न श्मशान भूमि ! उन्हें यातायातके सामान्य साधनभी प्राप्त नहीं होते । चिन्ताका विषय है कि बांध पीड़ितोंमें से किसीकी मृत्यु उसके सम्बन्धियोंके यहां, किसी दूसरे गांवमें हो जातीहै तो अन्त्य संस्कारके लिए शवको गांवमें ले जानेके लिए ३०-३० किलोमीटरकी दूरी पैदल पार करनी पड़तीहै । चट्टान और खाईमें ऊबड़-खाबड़ रास्तेपर चलते-चलते बीसियों घंटे बीत जातेहैं । अन्ततः शव गल-सड़ जाताहै और बीच रास्तेमें ही अन्त्यसंस्कार करना पड़ताहै ।

'झाडाझडती' में दिखाया गयाहै कि बांध-निर्माणके उद्देश्यसे अन्य कुछ गांवोंकी भांति जांभकी नामक गांवका पुनर्वास किया गयाहै । यह पुनर्वासका कार्य खैरापुर गांवके निकट किया गयाहै । नयी बस्तीका उल्लेख 'गांवठाण' के रूपमें किया गयाहै । इस 'गांवठाण'में श्मशान भूमि नहीं है। खैरापुरकी श्मशान भूमिमें बांध पीड़ितोंके नेता— गुरुजी— का अन्त्यसंस्कार इसलिए रोका जाताहै कि पहले उस व्यक्तिका अन्त्यसंस्कार किया जाये जो खैरापूरका निवासी था। "श्मशान भूमि हमारी है। हम पहले अपने आदमीके शवको जलायेंगे' (पृ. ४५३) कहकर गुरुजीके अन्त्यसंस्कारके लिए रची गयी चिताको निर्ममतापूर्वक ध्वस्त कर दिया गया ।

बांध-पीड़ितोंको अनेक प्रकारकी यंत्रणाएं दी जाती है । उनका नेताभी इन यंत्रणाओंसे बच नहीं पाता । बांध पीड़ितोंको संगठितकर उनमें अधिकार-चेतना जगानेवाले नेता—खैरमोडे गुरुजी —को भांति-भांतिके कष्ट दिये जातेहैं । शिक्षण विभागके अध्यक्ष, भूमि-वितरण अधिकारी, स्थानीय नेता—सबने मिलकर गुरुजीपर झूठे आरोप लगाये । उनको अपमानित एवं हतोत्साहित करनेके सभी प्रकारके प्रयास किये गये । निर्जन रास्तेपर घेरकर उन्हें पीटा गया। उनकी कन्याकी बेइज्जती कीगयी । गुरुजीके दामादको अपने पक्षमें कर गुरुजीकी विवाहिता कन्या—शेवंताको ससुरालसे हमेशाके लिए मायकेमें भेजा गया और वहींपर रहनेके लिए विवश किया गया । इन सब कष्टोंके होते हुएभी गुरुजी पुनर्वासके रुके हुए कार्योंमें गति लानेकी दिशामें प्रयत्नरत रहे । 'झाडाझडती' के खैरमोडे गुरुजीका चरित्र अपनी लगन, समझदारी, निरपेक्ष सेवा-भाव,

संगठन कौशल, कष्ट सहिष्णुता, अन्यायके विरुद्ध रोष की अभिव्यक्तिके कारण पाठकोंका समर्थन पानेमें पूर्णत: सफल हुआहै।

विवेच्य उपन्यासमें यहभी दर्शाया गयाहै कि बांध के निर्माणके लिए जिन-जिन गांवोंकी भूमि सरकारी अधिकारमें ली जातीहै वहांके युवकोंको नौकरीमें अग्रक्रम देनेका आश्वासन दिया जाताहै पर इसमें भी पक्षपातपूर्ण व्यवहार चलता रहताहै। लाभ-क्षेत्रके नेता अधिकारियोंको पटाकर अपने ही संबंधी युवकोंको नौकरी दिलवातेहैं। 'झाडाझडती' के हैबती नामक बांध पीड़ित युवकने अधिकारियोंकी भरी मीटिंगमें जिलाधिकारीके सामने ए. सीं. के पक्षपात और स्थानीय नेताओंकी स्वार्थलोलुपताका भेद खोल दिया। परिणामस्वरूप बांध परियोजनासे संबद्ध अधिकारियोंने ए. सी. के सुझावपर तथा प्रतिशोध-भावनासे भरकर हैबतीको जो अस्थायी रूपसे चपरासीका कार्य कर रहाथा, स्थायी नौकरीसे वंचित कर दिया। ऐसा करनेके लिए अधिकारियोंने अनुचित हथकंडे अपनाये। हैबतीको हस्ताक्षर करनेके लिए उपस्थिति पत्रही नहीं दिया गया, परिणामत: उसके दो सौ चालीस दिन पूरे नहीं हुए जो स्थायी नौकरीके लिए आवश्यक माने जातेहैं। इस प्रकार उन बांध पीड़ितोंको जिनके त्यागके कारण हजारों एकड़ भूमिके लिए सिंचाईकी व्यवस्था हुई, उद्योगोंका बिकास हुआ, भांति-भांतिकी परियोजनाएं आरम्भ हुईं, इन समस्त लाभोंसे पृथक् रखा जाताहै। उनका मुंह बन्द करनेके लिए उन्हें चपरासीकी नौकरी दी जातीहै, वह भी अस्थायी। अधिकतर उन्हें बांध परियोजनापर मजदूरी करनी पड़तीहै। मजदूरी करते-करते किसी दुर्घटनामें कोई मर जाये तोभी किसीका दिल पसीजता नहीं। दिखावटी हमदर्दीकी दो-चार बूंदें इधर-उधर बिखेर दी जातीहैं और बात आयी-गयी कर दी जाती है।

बांध पीडितोंको दी जानेवाली यंत्रणाका एक पक्ष यहभी है कि उन्हें विकल्पमें दी जानेवाली भूमिसे और पुनर्वासके लिए दिये गये स्थान—गांवठाण—से भी भगानेका प्रयास किया जाताहै। भूमिका लिखित अधिकार-पत्र देनेमें जानबूझकर विलम्ब किया जाताहै। ऐसा इसलिए किया जाताहै कि अधिकार-पत्र न होनेपर मूल भूस्वामीको उपज हथियानेमें सुविधा हो जातीहै। 'झाडाझडती' में चित्रित आवडाई और उसके पुत्र हैबतीने गुरुजीकी सहायतासे इसके विरुद्ध आवाज उठायी। परिणाम यह हुआ कि राघो तात्या (भूमिस्वामी) ने हैबतीको उपजाऊ भूमि लौटाने और उसके स्थानपर अनुपजाऊ जमीन स्वीकारनेके लिए बाध्य कर दिया। फिर भी, हैबतीने जब दिनरात श्रमकर उस अनुपजाऊ भूमिको भी उर्वर बना दिया तब राघो तात्या और उसके लड़कोंने उस पगडंडीको ही बन्द कर दिया जो हैबतीके खेतमें जातीथी। बांध पीड़ित हैबतीको कैंचीमें पकड़कर उसे जो कष्ट दिये जातेहैं वे हैबतीके सारे सपनोंको तोड़ देतेहैं। प्रतिरोध करनेपर हैबतीको इतना पीटा गया कि उसीमें उसकी मृत्यु होगयी। उसकी हत्याके अभियोगको वैद्यकीय अधिकारी, पुलिसके अधिकारी और स्थानीय नेताओंके साथ सांठ-गांठकर दबानेका प्रयास किया गया। अन्य बांध पीड़ितों— सावकी राम और नकुसा —को भी प्राप्त भूमिको लौटानेके लिए विवश कर दिया गया। इस प्रकारके अनुचित कार्योंमें स्थानीय नेताओं, सरकारी अधिकारियों, विधायकों एवं सांसदोंकी पक्षपातपूर्ण नीति और लालचभरी दृष्टि कार्यरत रहतीहै। सभी स्तरोंके सरकारी अधिकारी घूस और अन्य लाभोंके चक्करमें पड़कर इन कार्योंका साथ देते रहतेहैं। दुर्वृत्त शक्तियोंका सामूहिक दबाव इतना प्रभावकारी होताहै कि उसके सामने सामान्य जनता टिक ही नहीं पाती। वह इन सारी पीड़ाओंके नीचे ऐसी दब जातीहै मानो सारी पीड़ाएं भोगकर इसे उस निर्मम शक्तिका पूरा-पूरा हिसाब चुकाना हो। सामूहिक, संगठित निर्मम शक्तिका भूत (झाड) बांध पीड़ितोंको सारी यंत्रणाएं देकर मानो उनसे पूरा लेखाजोखा (झडती) मांगताहै।

कुछ अच्छे अधिकारी बांध पीड़ितोंका पक्ष लेकर उनको न्याय दिलानेके लिए अनुकूल निर्णय करनेमें तत्पर होतेहैं पर ऐसे अधिकारियोंको भी प्रचंड खल शक्ति द्वारा दीगयी यंत्रणाएं भोगनी पड़तीहैं। उनके बार-बार स्थानान्तरण किये जातेहैं। 'झाडाझडती' में वर्णित जिलाधिकारी देशमुख इसी श्रेणीमें आताहै। उसकी पक्षपातरहित, लोककल्याणकारी प्रवृत्ति उसे लोकप्रिय बना देतीहै। उसकी लोकप्रियताका संकेत देकर लेखकने प्रकारांतरसे पाठकोंकी अपेक्षाओंकी काल्पनिक पूर्तिकर दीहै।

अबतक के विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाताहै कि 'झाडाझडती' में अपने अस्तित्वके लिए सभी प्रकारकी

प्रतिकूलताओंके साथ विरोधमें डट जानेवाले बांध पीड़ितोंका संघर्षपूर्ण जीवन चित्रित किया गयाहै। संघर्षपूर्ण प्रसंगसे ही इस उपन्यासका आरम्भ हुआहै और समाप्तिभी संघर्षकी निरन्तरताके संकेतके साथ हुईहै। "अबभी बहुत संघर्ष करनाहै। झगड़नाहै। अब भी समस्याओंके पहाड़ खड़ेहैं। झाडाझडती क्या इतने पर ही समाप्त होगी ?" (पृ. ५१६)। उचित क्षतिपूर्तिके लिए संघर्ष, क्षतिपूर्तिमें बाधक शक्तियोंके साथ संघर्ष, बच्चोंकी शिक्षा-सुविधाओंकी प्राप्तिके लिए संघर्ष, भ्रष्ट ठेकेदारोंके साथ संघर्ष, घूसखोर पुलिस अधिकारियोंके साथ संघर्ष, शोषणका साथ देनेवाले घर भेदियोंके बांध पीड़ितोंके साथ संघर्ष, बांधके कारण जंगल तथा पहाड़की ओर बढ़े निवासियोंका जंगली पशुओंके साथ संघर्ष, स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा लूटनेवाले गुंडों के साथ संघर्ष—'झाडाझडती'में संघर्षकी सार्वत्रिक सत्ता महत्त्वपूर्ण विशेषता है। मराठीके प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा समीक्षक डॉ. आनन्द यादवने ठीक ही लिखा है—" 'झाडाझडती' में कई संघर्ष-केन्द्र पिरो दिये गये हैं जिससे पूरा उपन्यास जीवनके भीषण नाट्यको उजागर करता हुआ आगे बढ़ताहै।"

निरन्तर चलनेवाले इस संघर्षमें बांध पीड़ितोंके कई परिवार बिखर जातेहैं, कई परिवार टूट जातेहैं, कई कर्त्ता-धर्त्ता स्त्री-पुरुषोंका कलेजा कांप उठताहै। कई परिवारोंका जानबूझकर अपमान किया जाताहै। बांध पीड़ितोंकी छीछालेदारको उजागर करनेवाली घटनाओं और प्रसंगोंको पढ़ते समय कई बार मन कांपने लगताहै। छीछालेदारका यह विवरण उपन्यासके एक पात्र हीराके शब्दोंमें इस प्रकार है—"ऐक्य भावसे रह रहे गांवोंको इस बांधने भंग कर दिया। जन-जनमें फूट डाली। सबको चिंदी-चिंदी कर डाला।...पन्द्रह वर्षके जानलेवा संघर्षमें प्राय: सब स्त्रियोंका यौवन मुरझा गया। हड्डियां ढीली होगयीं। बनूबाई जैसी असहाय वृद्धाका जीवन मानो बाड़पर सूखती हुई चिंदी ! मंदिर गये, वहां के देवता गये। पांडू येताका, गुरुजी जैसे देवता सदृश लोग चल बसे। नकुसा, फुला विधवा हुई। शेवतीको सिंदूर रास नहीं आया, बल्कि बाधक हुआ। आज हमारे लिए यह देश पराया हुआ। यहां हमें कोई सीना तानकर चलने नहीं देता। हम मानकस्त्रियोंकी सफाई करने, बर्तन मांजने जैसे कामोंके खिए बहुत पूछ होतीहै। जंगलमें कभी राजा की भांति जीवन बितानेवाला कुशाप्पा भी घुंगरुकी लाठी लेकर अब चरवाहेके समान तुम्हारे दरवाजेपर खड़ा रहेगा। हरबा मल्लाहकी नोकाका मस्तूल ही चला गया। पुण्यवंत सुभानजीका शव बीच रास्तेमें ही सड़ गया।.. हमारे बच्चे सूखकर सांवले होगये।... हमारा अपना गांव पानीमें डुबोकर हमारे गलेमें वहां नीचेका **गांवठाण** किसने बांधा ? वहांके मछर, दलदल, नाला कूंड़ेकी रोती-चिल्लाती बस्तियां—किसने जन्म दिया इस सबको ? (पृ. ५१६)।

'झाडाझडती' में विकास योजनाओंके नामपर लूट मचाने-वालोंके स्वार्थ प्रेरित काले कारनामों तथा निर्मम व्यवहारोंको पढ़ते समय पाठकके हृदयमें संताप का भाव उभड़ने लगताहै। विकास योजनाओंका यह पक्ष इतना काला और कष्टकर हैं कि पाठकोंके हृदयमें बांध पीड़ितोंके प्रति सहानुभूतिका भाव प्रबल होने लगताहै। बड़े-बड़े बांधोके निर्माणको लेकर पुर्नबिचार पर जोर देनेकी आवश्यकता तीव्रताके साथ अनुभव होने लगतीहै। उपन्यासके एक प्रमुख पात्र खैरमोड़े-गुरुजीका यह विचार हमारे कानोंमें गूंजने लगताहै—"साहब ! बांध अवश्य बंधवाइए पर बड़े-बड़े बांधोंका ही आग्रह क्यों ? छोटे-छोटे बांध बनाइये। इससे लोगोंके गांव ध्वस्त नहीं होंगे और पानी भी बड़े बांधों का-सा मिल जायेगा। बड़े बांध वैसे भी ६०-७० सालोंके बाद गादसे भर जातेहैं, निरुपयोगी हो जातेहैं। तबतक बांध पीडितोंकी पीढ़ियां बरबाद हो हो जातीहैं। फिर यहभी है कि बांध समयपर बनवाइये। ऐसा न हो कि गांवके गांव हटाये जाये, बांध में पानी रोका जाये और इधर नहरोंका ही पता नहीं। साहब, ऐसा कई स्थानोंपर होताहै। नियोजन ही उलटा हो जाताहै। साहब, बुरा मत मानिये, हमारा नियोजन काशीके नाई का-सा होताहै...जिधर बोट कम मिलनेका भय होगा उधर एक परियोजनाकी घोषणा करदी ! चार दिन काम हुआ, फिर बंद—इसलिए कि पैसा नहीं है। साहब, एक-एक कामको तो पूरा होने दीजिये।" (पृ. २९८)। यह निस्संकोच कहाजा सकताहै कि पाठकोंके भावोंको उभाड़ने और उन्हें विचार प्रवण करनेकी प्रबल ऊर्जा 'झाडाझडती' की प्रधान उपलब्धियोंमें से एक है।

'झाडाझडती' उपन्यासकी सारी घटनाएं और प्रसंग बांध-निर्माणकी प्रमुख घटनाके साथ जुड़ीहैं। बांध-निर्माण एक ऐसी घटना है जिससे समाज-जीवन अंतर्बाह्य रूपमें आलोडित हो जाताहै, मथ जाताहैं। उसमें लक्षणीय परिवर्तन हो जाताहै। 'झाडाझडती' की यहभी उपलब्धि है कि उसमें बांध-निर्माण-जैसी बड़ी घटनाके परिणामस्वरूप होनेवाले अच्छे-बुरे सभी प्रकारके सामाजिक परिवर्तनोंका चित्रण मिलताहै। इस संदर्भमें लेखकका बोध अत्यंत व्यापक है। 'झाडाझडती' वस्तुतः बांध-निर्माणके परिणामस्वरूप हुए सामाजिक परिवर्तनका प्रलेख है। विशेष बात यह है कि यह प्रलेख केवल सामाजिक चित्रण तक हो सीमित न रहकर समाजशास्त्रीय अध्ययनके लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकताहै। समाजशास्त्र सामाजिक घटकों, उनके परस्पर संबंधों, उनमें होनेवाले परिवर्तनों, परिवर्तनके कारणोंका अध्ययन करताहै। वह संबंधोंके बनने बिगडने और टूटनेकी मीमांसा करताहै। 'झाडाझडती' बांध निर्माण तथा पुनर्वासकी घटनाकी पृष्ठभूमिपर मनुष्य-मनुष्यके बीच संबंधोंके टूटने और नये सबंधोंके बनने और बिगडनेका बहुतही सुन्दर चित्रण किया गयाहै। इन संबंधोंके मूल कारणों—मानसिक वृत्तियों का भी संकेत विवेच्य उपन्यासमें मिलताहै। स्पष्ट है कि 'झाडाझडती' की परिधिमें बहुत बड़े सामाजिक आशयको समेटा गयाहै। डॉ आनंद यादवके मतानुसार "इतना व्यापक और बहुविध आशय अबतक के किसी मराठी उपन्यासकारने सफलताके साथ नहीं समेटाथा।" व्यापक आशय घटना, प्रसंग और पात्रगत विविधता और बड़ी संख्याकी मांग करताहै। 'झाडाझडती' में चित्रित घटनाएं, प्रसंग पात्र संख्यामें अधिक हैं। स्वरूप में यथार्थवादी, वैविध्यभरे सजीव, और रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। 'झाडाझडती' के प्रत्येक पात्रकी अपनी ऊर्जा है, चेतना है। वह लेखकके हाथकी कठपुतली अथवा किसी प्रचलित मतवादका आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करनेवाला प्रचारक नहीं है। वह वर्तमान सामाजिक राजनीतिक नियतिके किसी-न-किसी पहलूको उजागर करते हुएभी अपना स्वतंत्र वैशिष्ट्य रखताहै। प्रातिनिधिकता और व्यक्ति-विशिष्टताका यह मिश्रण अनूठा है और मनको मोह लेताहै।

'झाडाझडती' की भाषा ग्रामीण परिवेशके अनुरूप है। देहातोंमें प्रचलित अनुप्रासयुक्त मुहावरों-कहावतोंका लेखकने बार-बार प्रयोग कियाहै। लेखकने धार्मिक अवसरों, सामान्य व्यवहारों, स्थानीय भौगोलिक विशेषताओं, विविध ऋतुओंके वर्णनोंमें, लोकमें प्रचलित गीतों, भाषिक अभिव्यक्तियों, उलाहनों, उदाहरणों, उपमाओंका भरपूर प्रयोग कियाहैं। विशेषकर वर्षा-वर्णन प्रसंगमें लेखकका लोकसंस्कृति विषयक ज्ञान और आकर्षण लक्षित होताहै। पात्रोंके अनुभवोंको आकर्षक, अनुप्रासयुक्त तथा सूत्रात्मक वाक्योंमें गुंफित, करना 'झाडाझडती' के लेखककी विशेषता है। यह विशेषता लेखककी, भाषिक स्तरपर भी सर्जनाकुलता स्पष्ट करतीहै। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

१. "हयो तुमचा कायदा म्हणायचा साळींद्राच बीळ' (पृ. १२५) (तुम्हारे इस कानूनको कानून कहें या साहीकी मांद)

२. "आमचा भोग जगा वेगळा। आसूड तर कोणी मारीन नाठी, पण पाठगावर वळ मात्र उठता। कुणाकुणाचा हात धरायचा ? भूतासारखी न दिसणारी पण क्षणाक्षणाळ बोकांडी बसून गावात रूतबून मारणारी, झडती घेणारी एक चिरबंदी व्यवस्था।" (पृ. १४६) (हमारे कष्ट ही निराले हैं। कोडा तो कोई मारता नहीं पर पीठपर ऐंठ जरूर जातीहैं। किसके-किसके हाथोंको रोका जाये। भूतकी तरह न दिखायी देनेवाली पर क्षण-क्षण गर्दनपर सवार होकर, दलदलमें फँसाकर मारनेवाली, झाडा लेनेवाली यह एक मजबूत व्यवस्था हैं।)

३. "ज्याचा हात बला, त्येचा सब भला" (पृ. १५७) (रूपयों वालेका सब भला होताहै।)

४. "उपरं ये उपरे न भुकतं या भिपरं" (पृ. १८३) (है तो पराया पर भौंकता है कुत्तेकी तरह)

५. "साहेब तुम्ही हसून न्यात, पण आम्हास्नी रूसून चालायचं नाही" (पृ. १८६) (साहब, आप, हंसकर टाल देंगे पर हमें रूठनेसे चलेगा नहीं)।

एक बहुघटकीय साहित्य विधाके रूपमें उपन्यास की सफलता उन घटकोंकी सानुपातपूर्ण योजनापर निर्भर करतीहै। 'झाडाझडती' में पात्र, घटना, प्रसंग, स्थान वर्णन, परिवेश चित्रण, बिम्बों और प्रतीकोंकी योजना तथा निवेदन आदिका सानुपात एवं संतुलित संघटन किया गयाहै। तत्वोंका यह संतुलित संघटनभी 'झाडाझडती' की उपलब्धि है। पीड़ाओं और असह्य कष्टोंसे तंग आकर इस उपन्यासके बांध-पीडित स्त्री-पुरुष कभी आपसकी चर्चामें, कभी सरकारी अधिकारियोंके निकट और कभी

स्वार्थी नेताओंके सामने अपने विगत जीवनके सुख-संतोषका बखान करतेहैं, वर्तमान छीछालेदारीका ब्यौरा सुनाकर विस्थापितोंके पीडायुक्त परिवर्तनपर आह भरतेहैं। खैरमोडे गुरुजी, बूढी आवडाई, कुशाप्पा, हैबती, नफुसा, पांडू येताळा आदि सब प्रमुख पात्र बार-बार इस विडंबनाको सुनाते रहतेहैं। कुछ पाठकोंको इस प्रकारकी आवृत्तियां ऊबाऊ प्रतीत हो सकतीहैं। पर शिक्षित पात्रों द्वारा अपनी बातको प्रमाणों, तर्कोंके साथ प्रस्तुत करने और अशिक्षित-अर्धशिक्षित बांध पीड़ितों द्वारा दमनकी आंखों देखी घटनाओंको प्रस्तुत करनेपर भी जब सरकारी अधिकारी और स्थानीय नेतागण अन्यायका ही साथ देते हुए दिखतेहै तब ये लोग एक विचित्र प्रकारकी मानसिक स्थितिमें से होकर निकलतेहैं जिसमें एक साथ क्षोभ और विवशताके दर्शन होतेहैं। ऐसेही अवसरोंपर उनके मुखसे बार-बार ये उद्‌गार निकल पड़तेहैं—"साहब! हम आपके दरवाजेपर बांध-निर्माणका आग्रह लेकर अनुनय करने नहीं आयेथे। आप हमें बरबाद क्यों कर रहेहैं? क्यों हमारे जीवनके साथ खेल रहेहै? उधर शहरमें आपकी मिलें भी बीमार होने लगतीहैं तो आपके पास उनके लिए दवापानी होताहै और इधर बांधके कारण चितापर चढ़े हुए ग्यारह हजार लोग आपको नहीं दिखायी देते?...हम जिलाधिकारीके पास शिकायत करेंगे।" (पृ. ६०) तथा "यहांके बागात हरे-भरे हों इसलिए हमने अपने घरबार फूंक डाले। हम कहींके नहीं रहे। जानवरोंको कौडी मूल्य पर बेच डाला, जो साथमें लाये उनके चरनेके लिए न आसपास चरागाह है न पहाड़। रिश्ते-नातोंके धागे टूट गये।--यहां न पानीकी सुविधा है न श्मशान की। पाठशाला अब गिरी, तब गिरी। शिक्षककी नियुक्ति नहीं। जानवरोंके लिए नांद नहीं। देवताके लिए मंदिर नहीं। चारों ओरसे संकट, सारी विवशता।" (पृ. १८७)। इस प्रकारके दर्जनों वाक्य विवेच्य रचनाके प्रमुख आशयको गहरातेहैं और उद्देश्यके प्रति पाठकोंका बार-बार ध्यान खींचतेहैं। कुल मिलाकर यही कहाजा सकता हैं कि यथार्थवादी दृष्टिकोण व्यापक सामाजिक प्रतीति बहुविध घटना, प्रसंग और पात्र विविध संघर्ष केंद्र, विस्तृत काल-पट आदिके कारण 'झाडझडती' को असाधारण साहित्यिक गौरव प्राप्त हुआहै। ⊡

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

पुस्तकालयों, शिक्षण संस्थाओं, प्रकाशकों तथा विद्वानों के लिए उपयोगी सन्दर्भ प्रकाशन

सम्पादक : यशपाल महाजन

हिन्दी ग्रन्थ कोश : १९८६-१९९० ५००.००
(१९८६ से १९९० में प्रकाशित पुस्तकों का विवरण)

हिन्दी ग्रन्थ कोश : १९८१-१९८५ ३५०.००
(१९८१ से १९८५ में प्रकाशित पुस्तकों का विवरण)

हिन्दी ग्रन्थ कोश : १९७६-१९८० ३५०.००
(१९७६ से १९८० में प्रकाशित पुस्तकोंका विवरण)

हिन्दी आलोचना ग्रन्थ : १९७२-१९८७ २००.००
(हिन्दी साहित्य पर आलोचना तथा भाषा विज्ञान-संबंधी पुस्तकों की विस्तृत सूची)

हिन्दी साहित्य : आलोचना ग्रन्थ-सूची २००.००
(१९४७-१९७१ : हिन्दी साहित्य पर आलोचना तथा भाषा विज्ञान-संबंधी पुस्तकों की विस्तृत सूची)

बृहद हिन्दी ग्रन्थ सूची २००.००
(हिन्दी वाङ्‌मय के ग्रन्थों तथा ग्रंथकारों की विस्तृत नामावली)

ये सन्दर्भ ग्रन्थ पुस्तकालय की शोभा हैं। बिना इन पुस्तकों के आपका पुस्तकालय अधूरा है।

प्रकाशक

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

२७१३ कूचा चेलान, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

फोन : ३२७६२३४

कहानी संकलन : उडिया

नारी जीवन और उसकी स्थितिके अगणित रंग और छटाएं

विचित्रवर्णा

रचनाकार : रवि पट्टनायक

समीक्षक : (१) डॉ. शंकरलाल पुरोहित
(२) डॉ. सुधांशुकुमार नायक

[१]

पिछले दिनों दो समाचार एकसाथ कुछही दिन के अंतरालमें आये : रवि पट्टनायकको सारला पुरस्कार (ओड़िशाका सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान) घोषित और रवि पट्टनायककी अचानक मृत्यु ! क्या दोनोंमें (दूरका भी) कोई संबंध है ? या तो मृत्यु उन्हें सादर लिवा ले जाना चाहतीथी या फिर मृत्यु के हाथों उनकी पालकी सादर देख साहित्यके ध्वजाधारियोंने अपराध-बोधमें तुरन्त एक पुरस्कारका टीका फेंककर 'दोष' छुड़ाना चाहा ? कुछभी हो, रवि बाबू को उनका प्राप्य (सम्मान या मर्यादा) देनेमें काफी देर कर दी । अतः साहित्य अकादमी पुरस्कारकी घोषणापर भी प्रसन्नतासे अधिक खेद ही हुआ ।

"विचित्रवर्णा" से पहले भी उन्हें राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कृत कर चुकीथी—'हिरण्यगर्भ' कहानी संकलनके लिए। उसमें 'एकविंशतर कन्या' कहानीमें इस संकलनके बीज हैं । मानव जातिके इतिहासकी सबसे बड़ी दुर्घटना है, लिंग-भेद कर मानवको बांटना । उसमें फिर नारीको दुर्बल बनाकर हजारों वर्षोंसे आदमी अत्याचार करता रहा । अब वह इतनी दुर्बल नहीं रही । पुरुषके समकक्ष हो रहीहै । रवि बाबू इसमें भविष्यके दर्शन कर कहतेहैं—फिर आदमी यूनीसेक्स हो जायेगा । पर आज उस ओर बढ़ रही नारी जिस दुर्दशामें पड़ गयी उसपर प्रकाश पड़ा इन कहानियोंमें । दस वर्ष बाद वे कहतेहैं—जिस घर (अर्थात् देश-समाज) में नारीका अपमान होताहै, वहां 'कृत्या' (भयंकर नारी)का जन्म होताहै, और वह उसका ध्वंस कर देतीहै । युगोंमें 'रेणुका', 'सीता' 'द्रौपदी' एक-एक कृत्या थीं । और अब कलियुगमें तो घर-घरमें कृत्या जन्म लेंगी । अर्थात् अब नारीकी सबसे बुरी स्थिति है । लेखकने इस संकलनमें 'कृत्या' को रूपाकार दियाहै ।

लेखक किसी भावुकता अथवा अन्य अतिरेकमें पड़कर इन कथा-चित्रोंमें नहीं उतरता । अधिकतर तो प्रथम पुरुष द्वारा कही अनुभूति कथा जैसी लगतीहैं । परंतु रवि बाबूका यह संकलन नारी जातिके इतने विविध रूपोंको लेकर प्रस्तुत हुआहै, कि इसकी तुलना असंभव है । अठारहकी अठारह कहानियां नारी जीवन और उसकी स्थितिपर आलोकपात करतीहैं । उसके विविध रूपों, उसके अगणित रंगों और छटाओंको अंकित करतीहैं । पूरे समाजको ही जब लेनाहै तो नारीको विभिन्न क्षेत्रोंमें देखाहै जैसे नर्स, गृहिणी, नौकरानी, शिक्षयित्री, क्लर्क, अफसर आदि विभिन्न भूमिकाओंमें उसे देख रहेहैं । इतनाही नहीं यह नारी केवल ओडिशाकी नहीं है, तेलुगू है, मराठी, बंगाली, बिहारी है तो केरली भी हैं । भारतके किसीभी क्षेत्रकी हो सकतीहै । इससे आगे बढ़कर इसे रवि बाबूने धर्म बंधनसे भी मुक्त रखाहै । हिंदू, मुसलमान, ईसाई किसीभी धर्ममें इसके दर्शन हो सकतेहैं । आयुकी दृष्टिसे भी छोटी बारह वर्षसे लेकर अस्सी वर्षकी नारी । देहात गांवसे लेकर आधुनिका तक सभी प्रकारकी नारी है ।

इस प्रकार अगणित वर्णछटा तो है, पर यह नारी कहीं दबती नहीं। सदा अपनी स्थितिके प्रति सचेत है। युगोंके बंधन तोड़ रहीहै, भविष्यकी ओर दृढ़तासे कदम बढ़ा रहीहै। इस वर्णनमें एक ओर रूढ़ियोंमें बंधी नारी है तो दूसरी ओर नारी-मुक्तिसे जुड़ी स्त्री है। वह आधुनिकतम स्थितिसे परिचित है, प्राचीनतम लिजलिजी रूढ़ियोंकी भी जानकार है। परिभाषाओंमें बधे संस्कार उसे बहका नहीं सकते। प्रेम, पवित्रता, मातृत्व, सच्चरित्रता, आनुमत्य, आदिकी परिभाषाओं में उसकी आस्था घट रहीहै। अब यथार्थपर और हिपोक्रेसीसे हटकर जो मूल्य बनतेहैं, उनको वरीयता देतीहै यह नारी।

एक बात जो रवि बाबूको बार-बार घायल करती है, वह तेजीसे हो रहा रूपांतरण। यूरोप व अमरीका तो इसके कारण चिंतित हैं, पर हम अचेत हैं। तीव्र औद्योगीकरणकी लालसामें हम अपना बहुत कुछ मूल्यवान् बलि देते जा रहेहैं। नारीको भी इसके लिए अपनी बलि देनी पड़ रहीहै। कंवारी जमीनपर दैत्यकाय राउरकेला खड़ा होताहै तो वनवासी जीवनमें पली नारीको रौंदा दला जाना सामान्य बात है। 'मिस केरोलिना कुजूर' कहानीमें कुजूरका रंग-रूप भयावना लगताहै, इसे पहले तो विदेशी इंजीनियर नोंचतेहैं, रौंदतेहैं और फिर उनके स्थानापन्न देसी इंजीनियर उठाकर उपेक्षाकर फेंक देतेहैं। 'सावित्री' की नायिका मुलगी भी ऐसीही वनवासिनी है जो जंगलमें शेर-भालू के सामने निर्भीक चली जातीहै, पर शहरी थानेदारकी ओर जाते घबरातीहै। फिरभी वह जातीहै, खानोंमें हड़तालके नामपर बंदी अपने घरवाले मलखूको, अपनी देहका मूल्य देकर थानेसे छुड़ा लातीहै। लहू-लुहान लोग-लुगाई! वह "दौड़ रहीहै बस्तीकी ओर मानो घनी अंधेरी रातके मध्ययाममें प्रचंड उज्ज्वल सूर्य शिखाकी तरह। कितनी भव्य लगतीहै मुलगी!

यह नारी आज भांति-भांतिकी व्यवस्थाओं, परंपराओं और रूढ़ियोंसे जूझ रहीहै। पति-अनुरक्तिकी बात तो स्वीकार्य है, पर वह पति कहीं और बंध जाये तो? तब वह दादीका आंख मूंदे रहनेका अनुरोध ठुकरा देतीहै, साहसके साथ 'नई राह' में तलाकके लिए दरखास्त दे देतीहै। वरना 'कुमारी वधू' कहानीकी भांति सदाके लिए अहल्या बनी प्रतीक्षा करनेको अभिशप्त हो जायेगी। "नाविनी बुआ ···" कहानीमें नाविनो वैधव्य ओढ़े रहतीहै, परन्तु उसकी नौकरानी (गुरुवारी) विधवा होनेपर कहतीहै—'संगा' (संगी) बनूंगी। उस विधुरके दो बच्चे हैं मैं सम्हालूंगी। वह फिर मेरे दो बच्चोंको क्यों न रखेगा?' यहां स्त्री माटीकी हांडी नहीं रहती जो एक बार ब्याहनेके बाद अछूत हो जाये। वह 'अनुभवी' बन जातीहै। 'स्त्री तो सोना है। अतः सोनेमें छूत-अछूत क्या? उसे इस टिप्पणीपर [illegible]नेच्छ नहीं होना।"

आज विवाह जैसी संस्थापर अनेक तनाव पड़ रहे हैं। कहीं तो टूट जाताहै, कहीं कलहके चरणमें (लंपटताके कारण) पहुंच जाताहै। प्रेमसे शुरू विवाहमें भी 'मातृ रूपा' की रूढ़िपर प्रश्नचिह्न लगताहै। वह अपनी सारी विशेषताओंको लेकर संपूर्ण नारीके रूपमें परिचित होना चाहतीहै। केवल 'मातृरूपा' का ठप्पा लगाकर तो उसे दलित रखा जाताहै। परोक्ष रूपमें एक्सप्लायट करनाहै।···'विमाता' कहानीमें मीरा, लक्ष्मीबाई, मैडम क्यूरीका उदाहरण देकर कहतीहै—ये सब 'मातृत्व' के अलावा अन्य गुणोंके कारण पूजित हैं। फिर वह पार्वती, काली, सावित्री, गांधारीके विश्लेषणसे पीछे नहीं हटती। अब यहां प्रत्येक सीमासे ऊपर उठकर बोल्ड नारीके रूपमें खड़ीहै। केवल मातृ रूपमें बांधनेका प्रयत्न करनेपर (क्योंकि उसकी इच्छा पहले पी-एच. डी. करनेकी है) विद्रोह कर बैठतीहै।

इस प्रकार नारीके इन रूपोंमें रवि बाबूने बहुत साहससे काम लियाहै। यदि नारी आधुनिकताके चक्कर में पड़तीहै तो वे उसे नहीं छोड़ते। 'स्वर्ण मृग' में धनाढ्य अमरीकीसे विवाह कर अपनी सहजात प्रकृतिदत्त कलासे छूट जातीहै। अमरीकामें तो दुर्लभ किसी वस्तुकी भांति वह सजावटका सामान बन गयी। अत्यधिक आधुनिक बनानेके खतरे 'तोरई फूल' में स्पष्ट हैं। मिस एमिल जोंस पश्चिमी शैलीमें जीना चाहतीहै। २१वीं सदीकी ओर जानेके दंभमें आकर्षण, मेल-जोल, सान्निध्य। चुंबन···कामका प्रभाव···। सब होताहै। परंतु यह देहनाद बहुत शीघ्र फीका पड़ जाताहै। पत्थरकी तरह सारे कार्यकलाप संवेदनाशून्य होते जाते हैं, भावनारहित हाड़-मांसका देहवादी दर्शन कहीं नहीं ले जाता। यह एक आजकी विडंबनापूर्ण स्थिति है।

रवि बाबूकी ये कहानियां समूची नारीको नारी रूपमें देखतीहैं, वे चुनकर एक विशेष दृष्टिकोणसे रखी गयीहैं। अन्यथा मानवीय दृष्टिकोणमें वे ऐसा कोई

वर्गीकरण करनेके पक्षधर नहीं। रवि बाबूकी कहानियोंका सहजपन और स्थितियोंका संतुलित चित्रण मनको छू जाताहै। अतिवाद रहित, कुछ हदतक यथार्थसे जुड़ी कहानियां ओड़िया कथाके इस दशकका गौरव हैं। इनमें ओड़ियाका मानक रूप व्यवहृत हुआहै। रवि बाबू भाषामें ऐसे आंचलिक प्रयोगकी ओर रुचि नहीं लेते। जो हो ओड़िया कहानीमें कलाके नामपर कथाकी उपेक्षा हो रहीथी। प्रतिभा राय, रवि पट्टनायक, विभूति पटनायक आदिमें उसे पुन: स्थापित किया गया। परतु रवि पट्टनायक तो पूर्णतासे पहले ही उठ गये। उस बेजोड़ आदमीकी मानवीयताके व्यक्तिगत संस्मरण वर्षों कष्ट देते रहेंगे, यहां उनके लिए स्थान नहीं, फिर कभी। □

[२]

दिवंगत ओड़िया कहानीकार रवि पटनायकके ‘‘अंध गलिर अंधकार’’, ‘‘बहुरूपी’’, ‘‘रागतोड़ी’’, ‘‘हिरण्यगर्भ, आदि कई सुप्रसिद्ध कहानी संकलनोंकी परंपरामें ‘‘विचित्रवर्णा’’ उत्कर्षकी चरम सीमापर अवस्थित है। ‘‘बहुरूपी’’का यह परिपूरक है। ‘‘बहुरूपी’’में कथाकारने पुरुषको आधार बनायाथा तो ‘‘विचित्रवर्णा’’में नारी को आधार बनायाहै। अंतर इतना है कि इसमें नारी के विविध रूपोंका नहीं, बल्कि उसकी विविध विचित्रताओंका चित्रण है। इन विचित्रताओंमें नारीके नये-नये रंग उभर आयेहैं जिसके कारण नारी पुरुषके लिए चिर-विस्मय बनकर रह गयीहै। इसलिए कहानीकारने इस संकलनका समुचित नाम रखा है—‘‘विचित्रवर्णा’’।

भारतीय संस्कृतिने नारीको पुत्र-वत्सला माता, भ्रातृ-वत्सला भगिनी, पति-वत्सला पत्नी आदिके रूपमें देखाहै, उसमें दया, क्षमा, स्नेह, शांति, कोमलता, सरलता, आशा, विश्वास आदि गुणोंका संदर्शन किया है। किंतु रवि पटनायकने नारीके जिन रूपोंका चित्रण कियाहै वे सब कोमलता और सरलतासे परे ‘‘कृत्या’’ के रूप हैं जिनका विश्लेषण करते हुए उन्होंने भूमिका में कहाहै :—

‘‘मनुस्मृतिके अनुसार पृथ्वीके दु:समयमें नारियां ‘‘कृत्या’’ के रूपमें जन्म लेतीहैं। ‘‘कृत्या’’ एक भयंकर नारी है। इस ‘‘कृत्या’’का रूप है क्रोधमें प्रज्ज्वलिता, अग्निजिह्वा, अक्षुर-विध्वंसी, क्षुधातुरा, ज्वालामयीका रूप। जिस घरमें, देशमें नारियोंका अपमान होताहै, उस घरमें या देशमें कृत्याएं जन्म लेकर उसे ध्वस्त करतीहैं। पुराणोंमें यहभी कहा गयाहै कि ‘‘कलियुगमें घर-घरमें कृत्याएं जन्म लेंगी।’’ साधारण शब्दोंमें कहा जाये तो इस कहानी-संकलनमें नारीके उन रूपोंका चित्रण किया गयाहै जो सामान्यतया पुरुषके लिए स्पृहणीय नहीं हैं। उस अस्पृहणीयतामें भी वैचित्र्य है। यही कहानीकारकी विशेषता है। अठारह कहानियोंमें वर्णित नारी चरित्रोंमें कहीं भी समानता नहीं है, कहीं भी एकही बातको घुमा-फिराकर एकाधिक कहानियोंमें बतानेकी सामान्य गलती भी नहीं हुईहै। प्रत्येक कहानी में विचित्रता है, स्वातंत्र्य है।

सामान्यतया नारीका ‘‘प्रेमिका’’ रूप सबसे आकर्षणीयहै। किंतु विंश शताब्दीकी नारीमें प्रेमकी सघनता ढूंढ़ना बुद्धिमत्ताकी बात नहींहै। ‘‘विचित्रवर्णा’’ की पहली कहानी (प्रेम ओ संन्यास) में कवि सुरजित नायक अध्यापिका मूर्च्छना बलियासिंहके प्रेममें अपनेको खो देना चाहताहै किंतु मूर्च्छनाका प्रेम स्वप्न राज्य में विचरण करना नहीं चाहता। वह अत्यन्त यथार्थवादी है। उसे प्रेमकी मस्तीमें झूमना नहीं, बल्कि घर-गृहस्थी बसानीहै इसलिए वह सुरजितको एक रोजगारक्षम पतिके रूपमें देखना चाहतीहै, परन्तु सुरजितके अनुसार ‘‘प्रेम और संन्यास संभवत: एक ही बात हैं......बन्धु, कुटुम्ब, परिवार, समाज, लोकमत, धन-दौलत, क्षमता, सुखभोग सभी आसक्तियोंका त्याग न करनेसे प्रेम नहीं कियाजा सकता। ऐसा संन्यास मूर्च्छनामें है कहां?

इसके विपरीत बारह वर्ष दाम्पत्य जीवन बितानेके बाद भी सुरमा एक शून्यताका अनुभव कर रहीहै। अपने पतिसे उसे सब कुछ मिलाहै, फिरभी वह अज्ञात अभाव अनुभव कर रहीहै। उसे लगताहै’’ जो पति अपनी पत्नीको सभी बाह्यिक सामग्री देताहै, वह अपनेको नहीं देता।’’ संभवत: इसीलिए गोपियां अपने पतियोंसे सब कुछ पाकर भी हृदयकी शून्यताको भरनेके लिए यमुनाके तटपर जातीथीं। सुरमाका यह शून्यताबोध कहानीके शीर्षक ‘‘कुमारी वधू’’ में व्यंजित है। दाम्पत्य प्रेमका अन्य एक पहलू ‘‘नूआ बाट’’ (नयी राह) में चित्रित है। अपने पति रमेशसे अमाप प्यार पानेवाली विजयाको जब रमेशका बंगाली लेडी डाक्टर से पूर्व-संपर्कका पता चलताहै तो वह इसी आशासे अपनी मम्मीके पास चली आतीहै रमेश भूलके लिए

अनुताप कर उसे लेने आयेगा । किंतु विजयाकी यह आशा सफल न हुई । डाइवोर्सके लिए मम्मीके उत्तेजक शब्द और दादी मांके जन्म-जन्म साथीवाले सिद्धांतके बीच अपनेको स्थिर न पाकर अंतमें पतिको अबभी प्यार करनेवाली विजया नयी राहपर चलनेके लिए डाइवोर्सका फैसला कर लेतीहै ।

डाइवोर्सका विचित्र रूप "विमाता" कहानीमें है, जहां विज्ञानमें गवेषणा करनेवाली सुमित्रा मैडम क्यूरीकी भांति अपने पति सुव्रतकी केवल सहकर्मिणी बनना चाहतीहै, उसके बच्चेकी मां नहीं । जब सुव्रत मातृत्वको सहकर्मिणीसे भी अधिक गुरुत्व देताहैं तो सुमित्रा उसे डाइवोर्सकी धमकी देकर चली जातीहै । इस प्रकारकी नारीको कहानीकारने सही अर्थमें "विमाता" कहाहैं । इसी प्रकार "सावित्री" कहानीमें कथाकारने उस असती नारीको सावित्री कहाहैं जो अपने पतिको पुलिसके पंजेसे मुक्त करनेके लिए उन नर राक्षसोंकी हवसका शिकार होना मान लेतीहै । वह गण-घर्षिता मुलगी अपने पति सालखको देखतेही "भूल गयी अपनी यन्त्रणा, अपनी ज्वाला, अपनी व्यथा, अपने मूल्यहीन सतीत्वको लूटानेकी ग्लानि, अपमान— वह परिवर्तित हो गयी एक नूतन अपरिचित महाशक्तिमें ।" सती सावित्रीकी भांति वहभी अपने पतिको लौटा लानेमें समर्थ हुईहै । कहानीकारने इस देहदानमें भी नारीकी महानताका रूप देखाहै । उसी प्रकार मरते हुए पाइलट ब्रिटनसे सहर्ष चुम्बन स्वीकार करती हुई मेजर मिसेज़ मार्गरिट कुरिएनको पवित्र कहाहै, जिसे साधारण मनुष्य "व्यभिचारिणी" कहता । मार्गरिटने स्पष्ट कहाहै. "मैं ही जानतीहुं वह चुम्बन कितना निष्पाप था, कितना पवित्र था ।'

यही पवित्रताकी भावना "कोकिला माहारी" में भी है जो जीवनभर अपना देहदान करती हुईभी अपनेको श्री जगन्नाथकी प्रेयसी मानतीहैं । उसे देवदासी परंपरामें अंतिम नायिकाके रूपमें चित्रित किया गयाहै । दूसरी ओर विवशताके कारण यौन-व्यवसायको अपनानेवाली "मिस कारोलिना कुजुर" पापकी ज्वालामें जलती रहतीहै । उसके लिए "आदमी आदमी है, वह भगवान् नहीं । वह पाप करताहै, पाप करनाही उसका स्वभाव है । लेकिन पापको अस्वीकार करना सबसे बड़ी निर्बोधता है और सबसे बड़ा अपराध है ।" इसीलिए वह अपने बीते दिनोंकी पापकी कहानी कहने और अपने देहसे संबंधित उन पुराने नग्न चित्रोंको दूसरोंको दिखानेमें संकोच नहीं करती, बल्कि उस ज्वालाकी लपटमें अपनेको तड़पाना चाहती है ।

जिस मूर्खताने मिस कारोलिनाको वेश्या बना दिया उसीका शिकार "नूआ सकाळ" (नया सवेरा) कहानीमें कुन्दलता और झूनू हुईहैं । यौवनके प्रथम अपराधसे कुन्दलता अपने मां-बापके लिए भी घृण्य बन जातीहै और उसकी गुप्त रूपसे हत्या कर दी जातीहै । फिर पच्चीस वर्ष बाद उसी परिवारकी झुनु वह अपराध कर बैठतीहै, जिसे गर्भपात द्वारा कलंकमुक्त कराया जाताहै, कथाकारने इसे "पाप" माननेसे इनकार कियाहैं । कुन्दलताकी भाभी और झूनुकी बुआ हारामणि देईके शब्दोंमें "भूल पाप नहीं है । भूलको पाप मानना महापाप है । इसी भूलके कारण मनुष्य अपनी जन्मित संतानको भी गला दबाकर मार डालताहै । पापके डरसे, कलंकके डरसे आदमी खूनी बन जाताहै; कलंकको छुपाने जाकर खुद कलंकित हो जाताहै; पापको जलाने जाकर स्वयं अंगार बन जाता है जन्म-जन्मांतर तक ।"

इस कहानी संग्रहकी अधिकांश कहानियां उच्चवर्ग या उच्च-मध्य वर्गसे संबन्धित हैं । उस वर्गका अहं तत्त्व अधिकांश कहानियोंमें ध्वनित है । "राजकुमारी" कहानीमें राजकुमारी रत्नप्रभा सिंहदेव राज्य सत्ता और प्रिव्ही पर्सके लुप्त होनेके उपरांतभी कलेक्टर विनोदकुमारसे विवाह करनेसे कुंवारी रहना अधिक अच्छा समझतीहै क्योंकि विनोदकुमार "जितने क्षमताशाली, करोड़पति, सुपुरुष होनेपर भी साधारण व्यक्ति है" और वह है "राजकुमारी" । उसके मतमें "राजकुमारियोंके खूनका रंग नीला होताहै ।" "स्वप्न +कल्पना+वास्तव = वास्तव = जीवन" कहानीमें एक पिअनकी बेटी चित्रांगदा शतपथी जब सुनामणि प्राइवेट गर्ल्स स्कूलकी प्रधान शिक्षिका बन जातीहै तो अमरीकाके किसी रईससे शादी करनेकी कल्पना कर बैठतीहै, जो कभी साकार नहीं हुई । लेकिन "सुना हरिण" (कनक मृग) कहानीकी नायिका विश्व प्रसिद्ध नर्त्तकी अर्चना नायक अमरीकाके हरिमोहन कपूरसे शादी करके भी विफलताका शिकार होतीहै, क्योंकि वह पत्नीके रूपमें नहीं बल्कि एक दुर्लभ वस्तुके रूपमें हरिमोहन कपूरकी प्रतिष्ठा बढ़ातीथी । "सुरभि मिश्र

आसिछि-रहिब" (सुरभि मिश्र आयीहै—रहेगी) कहानीमें शहरी सभ्यताकी आधुनिक सुविधाओंसे पली हुई सुरभि मिश्र ग्रामीण सभ्यताको घृण्य मानतीहै। गांवकी औरतोंका नदी-तालाबमें नहाना, खुले मैदानमें मल-मूत्र त्याग करना आदि को वह असभ्यता समझती है। उसके मतमें गांवका जीवन अश्लील जीवन है। कथाकारने गाँवके बुजुर्ग गौरांग शतपथीकी चिन्ताधारामें यह प्रतिपादित करनेका प्रयास कियाहै कि अश्लीलता इन गरीबोंके नंगेपनमें नहीं, बल्कि शहरी मनुष्यके दृष्टिकोणमें है। बाथरूम प्रसंगको लेकर कथाकारने जिस दार्शनिकताका संदर्शन इस कहानीमें कियाहै, वह निश्चयही अभूतपूर्व है। शहरी सभ्यताके चाकचक्यमें ग्रामीण पत्नीका प्रेमपूर्ण पत्र भी ':जहि नफुल" कहानी के नायकको डिस्-कल्चर्ड लगताहै तो "प्रेमिका आखि" (प्रेमिककी आंख) में हरिबंधु पटनायकको अपनी सुन्दरी पत्नीसे भी पड़ोसनकी पत्नीमें बहुत ही प्यार नजर आताहै क्योंकि "असंख्य नारियोंमें से "प्रेमिका" को ढूंढ़ निकालनेके लिए जरूरी है प्रेमिकाकी 'तीसरी आंख"।" और वह आँख उसके पास है।

"मधुमिता मासमल" उस असफल प्रेमिकाकी कहानी है जिसको अपनी सहेलियोंसे हंसी-मजाककी बातें छिपकर सुननेवाला प्रेमिक क्षणिक आवेशमें आकर अंतर्धान हो जाताहैं। उसे ढूंढ़ती मधुमिता जब अन्य किसीसे विवाहकी सोचतीहै तो उसकी बिरादरीमें उसके योग्य वर नहीं मिलते। बंगालियोंके लिए वह है "मेदिनीपुरेर उड़े" और ओड़िशावासियों के लिए वह है "मेदिनीपुरिआ बंगाली"—दोनोंके लिए हेय। ओड़िशा और बंगालकी सीमामें अवस्थित "मेदिनीपुर" की त्रिशंकु स्थितिका दुःखद वर्णन इस कहानीका अन्य एक पहलु है।

"नाविनि अपा, इन्दुरेखा औ गुरुबारी" में तीन विधबाओंकी कहानी है। अंग्रेज जातिको म्लेछ और ब्राह्म समाजको कलंकित माननेवाला भारतीय समाज चौदह वर्षकी विधवा नाबिनिको पुनर्विवाहकी स्वीकृति नहीं देता। दो बच्चोंके साथ विधवा गुरुबारी जब दो बच्चोंवाले विधुर हरिआसे फिर विवाह करनेका निर्णय लेतीहै तो समाज उसे अनार्य कहताहै। उस समाजके उच्च वर्गकी विधवा अध्यापिका इन्दुरेखा सामंतराय पुनर्विवाहकी बात कभी सोचभी नहीं सकती। लेकिन उसका मन कहताहै, "हे भगवान्, अगर पुनर्जन्म सच है और मुझे फिर औरतका जन्म मिले तो यह वरदान दो कि मैं म्लेच्छ अंग्रेज जातिमें, कलंकित ब्राह्म समाजमें या इस अनार्यकुलमें जन्म लूं॥"

"निर्वासित राजपुत्र' में समाजकी उस बद्धमूल धारणाका चित्रण है जो नारीके आगे बढ़नेको अस्वीकार करतीहैं। बिन चाचाके घरमें चौथी कन्याका आगमन भयंकर विपत्ति बन जातीहै। पर दादी मांकी यह चिन्ताधारा समयके साथ बदल जातीहै। चार बहनें नर्स बन जातीहैं और जिस नातिनको वह "डायन" कहतीथी वह उसकी सबसे प्यारी हो जातीहै। गंवारी दादी मां बदल गयी किंतु नर्सकी नौकरीको घृण्य समझनेवाले शिक्षित पुरुषमें परिवर्तन नहीं आ पायाहै। कथाकारके लिए वह गतिशील समाजमें राज्यच्युत राजपुत्र जैसा है।

इन अठारह कहानियोंमें अन्य अनेक प्रासंगिक बातें भी हैं जो आजके समाजके रूपको प्रदर्शित करनेमें अत्यन्त सहायक हैं। कुछ वर्णनात्मकता भी है। किन्तु ये सब कथाकारके लक्ष्यके सामने फीके पड़ जातेहैं, वह सर्वदा अपने लक्ष्यके प्रति एकाग्र रहाहै—"कृत्याओं को रूप देनेका प्रयास"। इसमें वह पूर्ण कृतकार्य हुआ है, जिससे यह कहानी संकलन भारतीय कहानी साहित्य में एक अभूतपूर्व योगदान बन गयाहै। ◻

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

चरित्रों और स्थितियोंके संश्लिष्ट आकलन, वैविध्यकी स्वाभाविक वर्णनात्मक कहानियां

कुझ अणकिहा वी

रचनाकार : प्रेमप्रकाश

समीक्षक : प्रो. फूलचंद मानव

"मेरा विश्वास है कि प्रत्येक पाठक स्वयंमें एक कहानीकार होताहै। कथा पढ़ते समय वह स्वयं कथा सर्जन करता है। पात्रोंकी रूपरेखा निखारताहै। स्थान, वातावरणकी कल्पना करताहै और प्रत्येक भावनाको रचता और भोगता रहताहै···इस प्रकार उसकी कहानी में बहुत कुछ ऐसाभी--शामिल हो जाताहै, जो लेखक ने नहीं कहा होता। यदि कहाभी होताहै तो वह शब्दोंमें नहीं होता शब्दोंके नीचे कहीं छिपा रहताहै। कहानी उस 'अनकहे' की रचनाके साथही पूरी होतीहै" —(प्रेमप्रकाश, पाठक भी सर्जक है पृ. ७)।

'कुझ अणकिहा वी' प्रेमप्रकाशकी बारह कहानियों का संग्रह है। कथायात्रामें कचकड़े (१९६६) नमाजी (१९७१) मुक्ति (१९८०-८२) श्वेताम्बर ने किहा सी (१९८३-८८) प्रेम कहानियां (संकलन १९८६) और कुझ अनकिहा वी (१९९०) देकर प्रेमप्रकाश अपना विकास प्रदर्शित करतेहैं तो उनकी उपलब्धिके रूपमें इन कहानियोंका कथ्य, वातावरण, स्थितियां, पात्र, संवाद शामिल हैं। व्यक्तित्व विघटनकी प्रक्रिया प्रेमप्रकाशकी कहानियोंमें बराबर चलती रहतीहैं।

आज पंजाबी कहानी जितनी विकसित है उसने पंजाबी उपन्यास, कविता, नाटक आदिके बहुत कुछ दिखायाहै, प्रक्रिया और प्रगतिमें जितने नामवर कथाकार पंजाबीमें आज साजतेहैं, उनसे कहीं अधिक सार्थक और सफल कहानियां अपना लेखाजोखा कह रहीहैं। प्रेमप्रकाशकी कहानियांभी इसी क्रममें रेखांकित हैं।

मनका महोत्सव और उसका मर्म प्रेमप्रकाशकी कहानियोंमें साथ-साथ चलताहै। वस्तुतः यहां मन एक स्थिति है जो लगातार फैलती-सिकुड़ती या भागतीहै। दीवारें फांदती, कर्म और कथनकी दीवारें कि 'इन्सान क्या है ?' यही गढ़ी का मर्म है। "यह कहानी नहीं, मेरे गांव माजरेके पूर्व दिशामें मलवा, खण्डहर हुई गढ़ी और उससे परे बने हुए इन्द्रकौर स्मृति हस्पताल का इतिहास है, जो कोई इतिहासकार नहीं लिख पायेगा।

निश्चयही वर्तमानको अतीत बनाती व्यथा और प्रस्तुत पलको इतिहासमें धकेलती कथाही प्रेमप्रकाशकी गढ़ी है, जिसमें इन्सानको बराबर खोजा, तलाशा जा रहाहै—"खूनी चितापर निरन्तर चिन्तन हो या बनावट का प्रभाव, कहानी चलतीहै कि वह खोपड़ी मेरे पुरखों की है, जिन्होंने मुझे रक्त सना इतिहास देकर इस हालतमें डालाहै।"

और यह हालत ही कहानी है।···यह सब राम की लीला है। हम तो मिट्टीके पुतले हैं। बस! मिट्टी मिट्टीसे खेलतीहै। खिलौनोंकी सारी डोरियां उसीके हाथ हैं।"···यह दुनियां जिसे हम इतने लाड़ और चावसे देखतेहैं, इक दिन काट-काट दी, फूंक दी जायेंगी···सब शहर गांव खंडहर हो जायेंगे, बारह कोसोंमें दीया जलेगा···फिर हड़प्पा, मोंएं-जो-दड़ो और संघोलकी तरह खुदाई होगी। खन्ना, लुधियाना, जालन्धर और चंडोल खोजे जायेंगे · फिर इतिहास लिखा जायेगा।' और प्रेमप्रकाश दोनों सतहोंपर यहां जागरूक है, वर्तमान और अतीत या भविष्यमें संतुलन बिठाते हुए। यही गढ़ी है। दुर्ग और दरिया-दिलीकी परिचायक।

'एह ओइ जसवीर नहीं' स्थितिका त्रासद पक्ष है —'कसबेसे शहरकी अंतिम बसमें बैठकर हरीदेवने मुड़कर सारी सवारियोंकी ओर देखा। उनमें कोईभी

सिक्ख काली दाढ़ीवाला, नीली या केसरी पगड़ीवाला नहीं था जिससे भय हो कि वह राहमें ड्राईवरकी गर्दन पर पिस्तौल रखकर बसको किसी गांवकी ओर ले जायेगा और अपने आतंकवादी साथियों संग मिलकर हिन्दु सवारियोंको घसीटकर बाहर निकालकर गोलियों से भून देगा।'

यह भी एक मनःस्थितिका विस्तार है! साम्प्रदायिक राजनीति हिन्दू देव और सिक्ख जसवीरकी मैत्रीमें वह अन्तर डाल दियाहै कि भाव तो क्या शब्द भी सांझे नहीं हो रहे।…पहरा दे रहे हिन्दूपर मुखबरीका सन्देह होताहै। सिक्ख मेहमानसे वारदात होने का डर है। आतंकवादी जान तलीपर रखकर हिन्दूको बताते जाताहै कि पांच सात दिन शामके समय घरपर समय रहते लौट आया करे।' यह संबंधोंकी समझ भी है और सही अर्थोंमें सवाल भी कि 'एह ओह जसवीर नहीं।' आदमीमें भी तो आखिर एक और आदमी होताहै न! आदमीमें आदमी!! रचनात्मक स्तरपर प्रेमप्रकाशने इसे बखूबी 'डील' कियाहै।

अरजन छेड़ गंडीरना, मैडम, घोड़ा, बच्चे दी शरारत, डाक्टर शकुन्तला, संकट हो या मिशन कम्पाउण्ड, शोल्डर बैग, टेलिफोन या फिर बापू—प्रेमप्रकाश की पात्र-प्रधान कहानियां भी 'मैं' प्रधान हैं। वाचक उनपर हावी है और पात्र-! पात्रका व्यवहार मनोवैज्ञानिक मानसिकतामें साफ पारदर्शी है, गोरा उजला!

'अर्जुन छेड़ गडीरना' एक वक्तव्य पूर्व कथा है, पत्र शैलीमें, गुरदेव चंदसे कैंथरीन तक की अभिव्यक्ति को उजागर करती हुई।' हमारे बुजुर्ग मरते समय खूब नसीहतें करतेहैं। उपदेश, देश देतेहैं जैसे उम्र भरका निचोड़ बतानेको उतावले हों, जिसके अभावमें नस्ल का बने रहना कठिन हो सकताहै।'

यहां बीमारीमें सेहतका ट्रीटमेंट साथ-साथ चलता है। और 'वहम' भी। यहींसे कथा-द्वन्द्व पनपताहैं।' 'अर्जुन छेड़ गंडीरना' ये बोल मेरे इलाकेके भूले बिसरे कवि द्वारा लिखीं 'महाभारत' जिसमें भगवान् कृष्ण अर्जुनको साहस बंधाते कहतेहैं कि तुम अपना रथ युद्धभूमिको ले चलो राम भली करेंगे…लेकिन यहां चाचाजीका संकेत दूसरे लोककी ओर जानेका होता है।

"सेह, सलेदी, सरवरपुर…गोह, गोसला, भानूपुर" लोकगीत यों बनतेहैं। ये हमारे अविकसित देशोंके लोगोंकी पूंजी है। 'मैं नहीं चाहता कि मलिका के दो रुपये चांदीके लाकर मैं अपने बच्चोंको दूं, इस सुख और दुःख समेत। और फिर वे अपने बच्चोंके दें।

सपाट शैलीमें कथा विकसित होतीहै, संस्कारों और सांस्कृतिक तथ्योंको कहती हुई। प्रेमप्रकाशकी रचनामें जड़ोंसे जुड़कर ही पात्र बोल पातेहैं, टूट या उखड़कर नहीं। 'अर्जुन छेड़ गंडीरना' भी इतिहाससे बाहर नहीं होपाती, चलता हुआ समयभी तो एक इतिहास खंडही होताहै। कैथरीन यहां एक पात्र नहीं, प्रतीक है। और प्रतीक फैलताहैं तो फलकपर छा जाता है, कथा-फलकपर!

"आजकल इस दुनियांमें शायद मैं ही हूं जो **मैडमके** शरीरके किसीभी हिस्सेपर लगी चोटपर मरहम लगा सकताहै और अपने लगवा सकताहूं…यह बात हममें से किसीकी प्राप्ति नहीं, जिन्दगीकी स्थितियोंसे पनपी जरूरतका परिणाम है।'

जब चंद्रवंशीने शराबका गिलास फेंकाथा फर्शपर, तो मेरे सहित सभी दोस्तोंको गालियां दीथीं। अपने बूढ़े मसूड़ोंके गिर्द एकत्रित शराब मिला गंद-सा मेरे पैसेके पास थूक दियाथा।…फिर कुछ देर बाद मेरे कंधेसे लगकर खुलकर रोयीथी। तब मुझे लगाथा कि उसकी बात सत्य है कि मैं उसे तो क्या, स्वयंको भी ठीकसे समझ नहीं पाया।'

यहां रुदन, चुभन, खुशी, त्रिकोणात्मक पात्रोंका स्वभाव है, जिसे ढर्रेसे अलग प्रेमप्रकाशने खोलाहै। परत-दर-परत "चंद्रवंशी और उसके मूडको देखकर मेरा मूड मचल गयाथा। मैंने अलमारीमें से बोतल, सोडा, गलास और फ्रिजमें से आइसक्यूब निकालकर मेजपर सजा लियेथे। जैसे यह घर मेरा हो और चंद्रवंशी मेहमान हो। सिगरेटके दो कश लगाकर मैंने उसे पकड़ा दीथी और खुद पैग बनाने लग गयाथा।'

'बन्दा तो अपने अंदर पल पल बदलते बन्देको भी नहीं समझ सकता। तुम मुझे समझनेका दावा करते हो।' वह बहसके मूडमें बोलीथी। और…मैं अडोल सोच रहाथा कि यह दुःख, जो रोयाजा रहाहै मेरा है? शबनमका है या कबीरका? अपने ट्रीटमैंटमें यहां 'मैडम' पुनः एक बागी पात्र है, नायिकाभी, खलनायिकासी।

"हमारी शिक्षाका मूल परम्परामें होताहै। जिस

कारण हमें नवीन स्वत. ही असाधारण लगताहै । प्रेम प्रकाश निश्चय ही असाधारण मनोविज्ञानका रचयिता है। इसके एक सिरेपर 'अयोग्य' पात्र हैं तो दूसरी ओर मनोरोगी घोड़ा'। घोड़ा यहां आत्मयातनाका एक अमूल्य चित्रण है।

मनोविज्ञान स्थितियोंको स्पष्ट करताहै तो कभी कभार इन्हें उलझाताभी है। वाचककी मनोदशा इसमें बड़ी भूमिका अदा करतीहै। घोड़ाकी शुरूआत है—मेरी मौसीका बेटा मास्टर रमेश बूढ़ा नहीं था लेकिन परहेजी खाना खाताथा, पीनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। शादीमें कर्त्तव्य निभाने आयाथा। इत्तिफाकसे वर्षों बाद मिलाथा···'तुम सुनतेहो रमेश ?' मैंने पूछा तो वह गहरी नींद सो रहाथा···।

यदि वह जागता होता तो मैं उसे बता देता कि यह कहानी मेरे मित्रकी नहीं, मेरी है··और यहभी बता देता उसे कि मैंने उस पत्रके उत्तरमें आशाको लिखाथा, '···आशा, इस जन्ममें तूने मुझें जो दुःख दियाहै, मैं अगले जन्ममें भी प्रतीक्षा करूंगा।

"और प्रतीक्षाका यह अनवरत सिलसिला पात्रों के लिए बना ही रहताहै, कभी आजमें तो कल या फिर कलमें घोड़ेंका सत्य भी यही है। पात्र नारी हो या नर, भय, जिज्ञासा या साहस (दुःसाहस !) का बीज उनके भीतर कहीं बैठा रहताहै, ठीक कथावाचक की तरह, स्थिति बदलतेही यहां स्थानभी वदल लिये जातेहैं !

मध्य वर्गका चिन्तन और दुखान्त प्राय: एक जैसा होताहै। अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित समाजमें ही नहीं, शिक्षित वर्गकी प्रतिक्रियाभी—**"बच्चेकी शरारतें"** कहानीमें देखीजा सकतीहै।

'यूनिवर्सिटीके चपड़ासीने जब प्रोफेसर इन्दिरा सूरीको पत्र लाकर दिया तो उसका पीरियड लगने वालाथा। उसने जल्दीसे 'इग्लैंड' खोला पढ़ा। पर्समें ठूंसा और क्लास रूममें चली गयी।'

इतिहास पढ़ाते समय भूगोल आगे आ रहाहै। चेहरेही चेहरे। संशयकी एक धारा। वहमका एक क्रम। तिकोने संबंधोंकी एक श्रेष्ठ कहानी है—बच्चेकी शरारत।

पति खामोश था। असलमें यह शरारत उसने की ही नहीं थी। उसने तो मात्र पत्र पढ़ाथा, चोरी चोरी। वह पत्नीकी हरकतोंपर गुस्सा होकर घरमें क्लेश नहीं डालना चाहताथा। वह अबके हंगामेंसे भी डरताथा। उसने विनम्रतासे कहा, 'सौरी मुझसे गलती होगयी। मुझें बेहद खेद है।"

पत्नीने आंसूभरी आंखोंके साथ पतिकी ओर देखा, जिनमें बहुत दुःख था, जो मौजू बननेका कम, इस बात का ज्यादा था कि यह बच्चोंवाली शरारत उसके पतिने क्यों की ? किसी शाम ने क्यों नहीं ?

प्रेमप्रकाशकी कथा-रचना इकहरी शैलीमें है। इकहरी और सपाट, जो दोहरी न होते हुएभी दुहरी लगतीहै। यही प्रतीति प्रेमप्रकाशके कलापक्षका प्रतिफलहै। वह स्वयं जगह-जगह हाजिर होकर भी गैरहाज़र है।

डाक्टर शकुन्तला, संकट या मिशन कम्पाऊंड—कहानी कोईभी हो, नायक या नायिकासे मिलते-जुलते कई चेहरे साथ खड़े होतेहैं शोल्डर बैग, बापू या टेलिफोनका सच, जीवन और जगत्का ही नही, प्रकृति-प्रवृत्तिका सच भी है।

"डाक्टर शकुन्तला वर्मा सैक्टर वीसके मोड़पर आमके अंधेरेमें मुझे छोड़कर चली गयीथी। उसने आहिस्तासे कार रोकीथी, उतरकर मेरी ओरकी खिड़की खोलकर मुझे सहारा देकर उताराथा। मेरे कंधेपर मेरा बैग लटकाकर पूछाथा, 'आप अब यहांसे घरजा सकोगे न ?

...फिर कपूर साला खुद बड़ा मनोवैज्ञानिक बन जाता, कहता—पचासकी उम्र तक आते इन्सानको अनेक परिवर्तन झेलते पढ़तेहैं। उसे जीवनकी रुटीन बुरी लगने लगतीहै। वह सामाजिक दायित्वको बोझ मानने लगताहै। यूंही मौतका झूठा डर पीछे पड़ जाता है। जीवन व्यर्थ लगने लगताहै...होता भले कुछभी नहीं, आदमी थोड़ी हिम्मत पकड़े...पार हो जाताहै।"

मस्तिष्कमें पैठी औरतसे कोई मुक्ति कैसे पा सकताहै ? अपने कल्पित वर्तमानसे छुटकारा पाना यों संभव है क्या ?

'इस बातको बारह वर्ष हो चुकेहैं, मैं सेवामुक्त हो चुकाहूं : कोई दवा नहीं लेता, भरपेट खाताहूं और खूब सोताहूं ...कभी कभी इस बातसे घिन होती है कि उसे, डॉ. शकुन्तलाको, इंगलैंड नहीं जाना चाहिये था।'

मनुष्यकी यहभी एक मनोवृत्ति है कि वह अपने संकटको दूसरेपर आरोपितकर देताहै या किसीके संकटको स्वयं अपना बैठताहै।

—जे. के. ने दफ्तरसे आकर अपने कमरेका दरवाजा खोला। भीतर चिट्ठी पड़ीथी। उसने खड़े-खड़े ही लिफाफा फाड़ा, खिड़कीकी रोशनीमें आकर चिठ्ठी पढ़ी,...विजयताकी थी— उसने दो बातें ही लिखीथी ...'मैं संकटमें 'हूं। मनभें एक गांठ-सी बंधी पड़ीहै... आपके सामने एक स्वीकारोक्ति करना चाहतीहूं। मैं इस बुधवार सवेरे ग्यारह बजे आऊंगी। घरपर रहना। फिर जल्दी ही लौट सकूंगी।

···शर्मा ठीक ही कहता रहताहै—एक समय आताहै, जब आदमी-स्टीलके बर्तनोंकी जगह दिये जाने वाले घिसे कपड़ों-सा हो जाता है। क्या नहीं ?... बस यही सबूत है। जब दिलपर जमती गर्दका, पर्त-दर-पर्तका, दिलको बोझ महसूस होने लग जाये।"

संकटसे निकलनेका सुख और हल्कापन किस कदर आत्मीय हो जाताहैं, अन्दरतक प्रभाव देनेवाला —'कमरेको नये सिरेसे देखते हुए उसे अजीब ताजगीका अहसास हुआ। उसने स्टीरियों फिर आन कर दिया। मुन्नी बाई वही ठुमरी गा रहीथी... सावन बीता जाए।' उसके भीतर तरंगे मचल उठीं। उसने सुई हटा ली, कमरेको ताला लगाया। और सीटी बजाता बाहर निकल गया। सारी कायनात उसे अपनी ओर बुलाती महसूस हो रहीथी।' नायिकाके साथही संकट-मुक्त हो चुका था वहभी।

जिज्ञासाएं मनुष्यको टिकने नहीं देतं, बैठने नहीं देतीं और वह समाज रूपी पेड़पर टहनी टहनी फांदता-कूदता रहताहै। इसीसे जुड़ी प्रश्नोंकी एक माला है जो परेशान किये रहतीहै या फिर पलायन करवातीहै।

"रेलवे स्टेशनसे थ्री. व्हीलरपर बैठकर मिशन कम्पाऊंडकी ओर आती मैं यही सोचती रहीहूं कि मनुष्य यों उखड़ क्यों जाताहै ? वह अपने घर परिवार और शहरको छोड़कर दौड़ क्यों पड़ताहै ?...

मुझे अपने घर, बच्चे और पति संग रहने, और बच्चे पैदा करने, लखनऊ नगर और वहां रहते अपने मित्रों सहेलियोंपर खीझ क्यों आगयी ?... अब मुझे रूकनाहै? यह बहाव मुझे धकियाकर कहां ले जायेगा ? ····· मुझे इन प्रश्नोंके उत्तर चाहियें, जो रजिया मुझसे पूछेगी। वह न पूछे, तो भी खोजना चाहूंगी। ये जिज्ञासाएं मुझे टिकने नहीं देती।'

और जीवन है कि त्रिशूल हो जाताहै। पाप, पुण्य, सुख, दुःख—सारे एक केन्द्रपर आकर सिमट जातेहैं।' रजिया, भारतमें बसते सभी लोगोंको पताहै कि वे किस सीमामें से हैं। उनकी खानदानी जड़ कहां है ? पर हम जड़हीन हैं, हवामें उड़ते बीजोंकी तरह, मालूम नहीं, हम कहांसे उड़कर कहां उगें ? अब कहांसे, किसका बीज लेकर नये बीज उगायेंगे —नारी मनकी यह सोच भला निर्मूल कहां है ? वर्था और रजिया का संवाद भी सारहीन नहीं।

'हे परमात्मा! अशोकने सब बातें सुन ली हैं क्या बीती होगी उसके मनपर, वर्थाकी आखरी बात सुनकर ? ···भले वह काफी सच ही है।' प्रत्येक परिवार, घर, ससार, एक मिशन कम्पाऊंड ही तो है।

कल्पनाकी प्रबल शक्ति प्रेमप्रकाशकी कहानियों का आधार है। जहां जहां कथा रचनामें कल्पनाकी प्रधानता है, लगताहै वहां जीवनका वास्तव, यथार्थभी गिनतीमें हैं। यथार्थ और कल्पना इतने अंगसंग चलेहैं कि इन्हें अलगाना अत्यधिक कठिन हो रहाहै। सोचमें कल्पना और ठोसमें यथार्थ प्रेमप्रकाशकी कहानियोंकी उपलब्धि है।

'शोल्डर बैग' दो हिस्सोंमें गुंथी प्रणय-कथा है, अन्य कहानियोंकी भांति हैं। इसमें भी एक व्यथा है। प्यारसे पार या प्यारके मंझधारकी कथा—"चंडीगढ़के सैक्टर सत्रहकी इस मार्कटके इस मोडसे नंदना परमार अभी मेरे सामने रिक्शेमें बैठी गयीहैं। उसे देखते ही मुझें 'कुछहो गयाहै।...मैं अटककर पेड़का सहारा लेकर रूक गया हूं। अनुभव करताहूं पर बता नहीं सकताहै वह कौनसी भावना है, जिसने एकाएक मुझे अपनी लपेटमें ले लियाहै।"

कवयित्री होनेकी महत्त्वाकांक्षा, जरूरतोंका एक खजाना, रिझानेकी करामातें--झोलेका अंतरिम संसार है। इस कथाके दूसरे हिस्सेमें कथाकारका मोहभंग है, एक पत्र द्वारा, जो वंदना, 'शोल्डर बैग' कहानी पढ़कर लिख पातीहै। मीरचंदानीके माध्यमसे चलाये गये तीर वंदना परमारके सुरक्षा कवच है।

प्रकृति मनुष्यका साथ नही छोड़ती और अपनी प्रवृत्तिमें वह सदैव डूबा रहताहै। तिकोने पात्रोंमें यहां भी अन्य कहानियोंकी भांति मनकी फिसलन है, मंथन है, मुद्राएं है।

बीमारी शरीरकी कम, मनकी ज्यादा हावी रहती है। शरीरके दर्दकी अपेक्षा मानसिक टीस मनुष्यको खदेड़ती रहतीहै। फिर वह नर हो या नारी, मनके

भटकावमें, चक्कर खाता रहताहै।

यह क्या बीमारी है ? डाक्टर इसे क्या नाम देते है ?··· मेरा बेटा डाक्टर सतीश कपूर और पुत्रवधू डॉ. सविता कपूर भी इसका कोई इलाज नहीं कर सके। आखिर यही कहकर वे पेन-किलर दे रहेहैं कि मेन्पाजकी इस अवस्थामें यह सब होताही है। दोनों डाक्टर और डाक्टरनी आपसमें बातें करते मैडीकल टर्मस बोलते, मेरी बीमारीकी जांच पड़ताल करतेहैं। पर मुझे मालूम है, यह बीमारी कुछ और है। मैं समझतीहूं, पर उन्हें समझा नहीं सकती।'

''यह क्या है ? कभी अकेलापन कितना सुख देता है और कभी कितना दुःख···क्या कर सकतीहूं ?··· वह इन्सान है, दुःख-दर्द सहन करताहै। मैं भी इन्सान हूं, फिर जानवर कौन है ? डाक्टर ?···डाक्टरनी ? ···क्या घटियापन है ?···मेरा ?·· थापरका ?···बेटे का या समाजका ? समाज-समाज···बकवास।''

यहां प्रश्नवाचक चिह्न संबंध हो रहेहैं और संबंध प्रश्नवाचक ? सवालिया निशानोंके निकलनेकी ही तो लड़ाई है, बाहरी और अन्दरूनी दुनियांमें तालमेल नहीं होपाता।

''मैं डाक्टर पुत्रवधूके लिए सास नही बनना चाहती, डाक्टरके लिए रोक लगाने और नसीहत करने बाली मां नहीं बनना चाहती।···कौशल्या और खुशिए के लिए मालकिन नहीं बनना चाहती। फिर ये सब मेरे विरुद्ध क्यों खड़ेहै ? दुश्मन क्यों होगये मेरी जान के ?'' टेलिफोन इन्हें जोड़ नहीं पा रहा।

प्रेमप्रकाशका स्थितियोंपर प्रभुत्व है। 'कुझ अणकिहा वी' में स्थितियोंका पारावार है। सहजही ये स्थितियां पात्रोंके सामने आ खड़ी होतीहैं, जिन्हें कथाकारने बनाया नहीं लगता, वे ये ही, अनायासही, पात्र के जीवनका अंश बन गयीहैं। प्रेमप्रकाशकी कहानियोंमें द्वन्द्व भी यहीं, इन्हीं स्थितियोंसे शुरू होताहै। प्रेम प्रकाश स्थितियोंको सहलाते, दुलारते उन्हें पालतू बनानेसे रोकतेहैं। यहां उनका शिल्प सहायक रहता है। मानसिक स्तरपर पात्र टूटता बिखरता रहताहै, कहानीकारके रू-ब-रू; और वह उसमें अन्य तथ्य और सूचनाएं निकलवानेकी चेष्टामें आग्रहशील है। त्रासदीदर-त्रासदी संग्रहकी कहानियां रिश्तोंकी पहचान और समक्षकी रचनाएं हैं।

'बापू' का कथ्य भी इसी ऊहापोहका फैलाव है। अन्दरके आदमीको बाहरवाला जानकर भी समझ नहीं पा रहा। 'गांवमें सबसे सुन्दर और सजा हुआ यह हमारा घर' कामरेड दोधी पंगे का कहलाताहै। वह मेरा बापूथा। आज उसे स्वर्गवास हुए छबीस साल हो गयेहैं।''

प्रेमप्रकाशका विश्वास सही है कि प्रत्येक पाठक स्वयंमें एक कहानीकार होताहै, अपने ढंगसे अर्थ ग्रहण करता हुआ। कथा पढ़ते समय स्वयं वह कथाका भागीदार तो होताही है, उसे विस्तारभी देताहै। पात्रोंसे परिचय पाकर, पहचानता और उन्हें तराशताहै। स्थानों-स्थितियोंका सत्यापन करके भावनात्मक स्तरपर जीने लगताहै। लेखकसे आगे वह नये अर्थभी, आलोचककी भांति जोड़ रहा होताहै। अनकहेको कह रहा होताहै पाठक।

बापू, टेलिफोन, शोल्डर बैग, मिशन कम्पाऊंड, संकर, डाक्टर शकुन्तला, बच्चे दी शरारत, घोड़ा, मैडम, अजंन छड़े गडीरना, एह ओह जसवीर नहीं, और गढ़ी––इन बारह कहानियोंमें कुछ अनकहा भी, जो है, वही कहनेका साहस प्रेमप्रकाशने ट्रीटमेंटसे कियाहै, रचनात्मक स्तरपर। पात्र प्रधान कहानियां हों या वूसरी, सभीके नायक-नायिकाएं मनोवैज्ञानिक स्तरपर जीवन जी रहेहैं, ओढ़ा हुआ नहीं, सहज अनायास। सायास चेष्टासे दूर।

कई बार प्रेमप्रकाश स्थितियोंसे भी पात्रका काम ले लेतेहैं और पात्र कभी-कभी स्थितिकी भांति ठहरे खड़े जान पड़तेहैं। मूर्त और अमूर्त स्थितियोंसे प्रेमके पास भाव है, भावनाएं और भंगिमाएं भी उनका पोषणभी होताहै। कहानीके अन्त तक अर्थ विस्तार भी। यही प्रेमप्रकाशके कथाकारकी विशेषता है।

पारम्परिक पंजाबी कहानीमें प्रेमप्रकाशकी रचना नित्य नये अर्थ खोलती सबल, मुखर कहानी है, जिसका विकास गत दो दशकमें प्रेमप्रकाशके अभ्यासने निरन्तर कहानियां लिखकर कियाहै 'कुझ अणकिहा वी' में प्रकाशक-मुद्रणकी ओरसे असावधानी न दिखायी गयी होती, हिज्जोंकी बेशुमार गलतियां न होती तो यह एक सार्थक-सबल कृति सिद्ध होती जो कथाक्षेत्रमें आज भी दो टूक एक सशक्त अभिव्यक्ति है। ☐

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

काव्य : असमिया

जीवनके रससे सिंचित प्रेम और प्रेरणाका काव्य

शइचर पथार मानुह

कृतिकार : हीरेन भट्टाचार्य

समीक्षक : डॉ. भूपेन्द्र रायचौधरी

असमिया साहित्यके अन्यतम प्रतिष्ठित आधुनिक कवि हीरेन भट्टाचार्य (१९३२ ई.) की अंतिम काव्य कृति 'शइचर पथार मानुह' (शस्त्रका खेत मानव, १९९१ ई.) में उनतीस कविताएं संकलित है। परिशिष्टमें असम साहित्य सभाके ५२वें अधिवेशनकी कवि-गोष्ठीमें पठित अध्यक्षीय भाषण तथा भारतीय विद्याभवनसे 'सुगंधि पखिला' (सुगंधि तितली) के लिए 'राजाजी साहित्य पुरस्कार' (१९८४-८५) लेते समय प्रदत्त काव्यमय भाषण हैं। काव्य-कृतिका अन्य एक आकर्षण है कवि द्वारा अंकित सत्ताईस कला-कृतियां। इससे यह स्पष्ट होताहै कि भट्टाचार्यजी केवल कवि ही नहीं, एक निपुण कलाकार भी हैं।

प्रस्तुत काव्य-कृतिकी संक्षिप्त भूमिकामें कविने स्वीकार कियाहै—'सम्प्रति मेरी कविता प्राय: समाप्त-सी हो गयीहै। मेरे पिछले छ: वर्षोंकी कविताओंका यह छोटा-सा संकलन प्रस्तुत किया गयाहै।' इस स्वीकारोक्ति में कविने अपनी सीमा बता दीहै और यह प्रश्न अपने सहृदय पाठकोंके सामने भी रखाहै कि क्या भविष्यमें उनके पाठक उनकी कवितासे वंचित रहेंगे? इसका उत्तर तो भविष्यके गर्भमें है, पर कवि भट्टाचार्यने असमिया काव्य-जगत्को जो आलोक स्तंभ प्रदान किया था, वह आजभी जगमगा रहाहै। विशेषत: तरूणोंमें उनकी कविताका आदर आजभी बना हुआहै। साम्प्रतिक असम आन्दोलनमें उनकी एक पंक्ति 'देश बुलिले कले आदेश नेलागे' (देश कहनेपर आदेश नहीं चाहिये) ने न जाने कितने लोगोंको प्रेरित-प्रभावित कियाथा। देश और प्रेमके कविके रूपमें ख्यात हीरेन भट्टाचार्यकी सबसे प्रमुख विशेषता है—स्वरूप कथन। कभी उनकी कविताएं दो-तीन पंक्तिसे अधिक लम्बी नहीं होती, पर छोड़ जातीहै एक मधुर झंकार। यथा—

१. मृत्यु भी है एक शिल्प/जीवनके कठिन पत्थरमें
खोदा गयाहै निर्लोभ भास्कर्म !
(सुगंधि पखिला)

२. खिड़की खोल दो, आनन्द बह जाये/दु:खके
नीचेसे उड़ आये धूपकी चिट्ठी। (वही)

३. मैंने पूछाथा/देवताके मंदिरका रास्ता कहां?/
उसने बढ़ा दिया/जो हाथ आंसूसे था भरा।
(करुण हात)

वस्तुत: साठके दशकसे हीरेन भट्टाचार्यने कविता लिखना प्रारम्भ कियाथा। यों, १९५४ ई. से उनकी कविता प्रकाशित होने लगीथी, पर सातवें दशकमें उन्होंने सफल कविताएं असमिया साहित्यको प्रदान कीं। कविकी प्रारम्भिक काव्य-कृति 'मोर देश: मोर प्रेमर कविता (मेरा देश : मेरे प्रेमकी कविता) में उन्होंने काव्य-सृजनका कारण बतायाहै—'वस्तुत: १९६० ई. से ही मैंने कविता लिखना प्रारम्भ किया। मेरी कविताके सम्बन्धमें दूसरे लोग क्या सोचतेहैं मैं नहीं जानता, अवश्य मेरे मित्र प्रशंसा करतेहैं। परन्तु क्या प्रशंसाके लिए ही मैं कविता लिखताहूं? केवल प्रशंसा पानेके लिए? संभवत: कवितासे अपनी बात कह पानेकी अपनी धारणाने मुझे कविता लिखनेके लिए प्रलुब्ध कियाहै।' नवीन शैली, संप्रेषणीयता, प्रतीकमय भाषाके प्रयोगसे कविता लिखनेवाले हीरेन भट्टाचार्यकी प्रकाशित कृतियाहैं—मोर देश : मोर प्रेमर कविता (१९७१), विभिन्न दिनर कविता (१९७४), कवितार

रद (१६७६), 'सुगंधि पखिला' (१६८१) तथा शइचर पथार मानुह (१६६१)। इनमेंसे 'सुगंधि पखिला' के लिए १६८४-८५ में असम साहित्य सभाका 'विष्णुराम पुरस्कार', भारतीय विद्याभवनका 'राजाजी साहित्य पुरस्कार' तथा १६८७ ई. में सोवियत देश नेहरू पुरस्कार मिले थे। परन्तु कविके लिए संभवतः सबसे मूल्यवान् पुरस्कार है उनकी कविताओंके प्रति पाठकोंका आदर एवं सुप्रशंसा।

असमिया साहित्यके कृतिमान आलोचक डॉ हीरेन गोहांइने कवि भट्टाचार्यको यौवनका कवि कहाहै: हीरेन भट्टाचार्य यौवनका कवि है, यौवन केवल एक काल नहीं है, एक वस्तु नही है, जीवनकी स्वतः परिपूर्णता है। डॉ. गोहाँइकी इस टिप्पणीको स्वीकार करते हुएभी कहा जायेगा कि कविके इस प्रेमकी परिक्रमा नायिकाके नख-शिख तक सीमित नहीं है, बल्कि स्वदेश प्रेमसे लेकर शोषित मजदूर, किसान, असहाय नारी आदिसे लेकर तेलंगाना या वियतनाम या अफ्रीकाकी निपीड़ित जनता तक परिव्याप्त है। इसलिए कवि अनुभव करतेहैं—

> इस देशके लिए मैं जीवित हूं/इस देशके लिए मैंने
> जीवित रहनेका संकल्प कियाहै/सैनिक, मजदूर,
> किसान्—इन सभीमें मैं हूं—मेरे देशके लिए।
> (मोर देश)

कवि हीरेन भट्टाचार्यके काव्यमें जो प्रमुख स्वर सुनायी पड़तेहैं, वे हैं: प्रेम, स्वदेश-प्रेम, दुःखवाद, साम्प्रतिक जीवनकी भयावहता तथा सामूहिक चेतनाके प्रति प्रतिबद्धता।

कवि भट्टाचार्यकी प्रेम-कविताएं सामान्य रोमांटिकतासे हटकर जीवनकी गहनतम अनुभूतियोंसे जुड़ी हुईहैं। प्रेमकी सार्थकता और व्यर्थताके बीच कवि दोलककी भांति डोल रहाहै। यदि कभी उनकी प्रेमकी पृष्ठभूमि स्मृतिके गुलाबसे जुड़ी हुईहै तो कभी दुःखकी वंसी या अश्रुसिक्त नयनसे :

> प्रेमकी बात तो/दूसरोंसे नहीं कहीजा सकती/निः-
> श्वासकी भांति/निशब्द यह खोजता फिरताहै/शब्द
> वर्ण और प्रकाशका स्रोत। (आरु एटि वसंत)

और सचमुच यह प्रेम कितना बलिदान मांगताहै—

> तुम तो जानतेही हो/इस कविका और कुछ नहीं है/
> एकही कमीज है/उसकी भी टूटी-फूटी सिलाई।/
> प्रेम शायद ऐसाही है/आवरण खोलकर हृदय शांत
> करताहै। (भोगाली)

कविका रोमांटिक प्रेम स्वदेश-प्रेममें बदल जाता है। कवि भट्टाचार्य देश, स्वदेशी और मानवके प्रति अनुभव करतेहैं एक गंभीर आत्मीयता। इसलिए वे यह कहते हिचकते नहीं हैं—

> मेरे प्राणोंका प्राण,/मेरे गानोंका गान यह देश।/
> मेरा हर काम, मेरी हर चिंता इसी देशकी धरती
> पर रचतेहैं/शस्त्र-सुनहरी भविष्यके सपने।/मेरे
> जीवनकी नस-नसमें/मेरे यौवनकी तरंगोंमें/उस
> सपनेकी हलचल। (मोर देश)

इसीलिए वे देशके अस्वस्थ वातावरणसे चिन्ताग्रस्त हो जातेहैं (मोर आइर असुख) और कभी अपनेको असहाय पाकर रोतेहैं तो कभी उन वातावरणोंसे देशको मुक्त करानेके लिए हाथमें शस्त्र उठानेके लिए नहीं हिचकते :

> कामरेड, सीनेमें दर्द है,/बंदूकको सीनेसे ही सटे
> रहनेदो,/हटाना मत;/जरूरत हो तो मेरी तरजनी
> को/ट्रिगारमें ही रहने देना:/बंदूककी नलीसे अवि-
> राम बरसे बिजली। (मोर आरु पृथिवीर)

व्यर्थता दुःखको जन्म देतीहै। परन्तु कवि हीरेन भट्टाचार्य व्यर्थ प्रेमके लिए दुःखी नहीं दीख पड़तेहैं। दुःखका कारण आर्थिक विषमता है। कविके दुःखका क्षेत्र अपनेसे प्रारम्भ होकर शोषित जनता तक फैलता है। समाजमें देखे अन्याय-अनियमसे कविका दुःख गंभीर होताहै। कवि इस दुःखके अभ्यस्त हो जातेहैं, इसीलिए सहज भावसे कह सकतेहैं—

> कमीजकी सिलावटमें है दुःख,/दुःखकी स्तुति/मेरे
> शरीरपर हाथ रखतेही/पाओगे हीरेन नामका
> कवि/पदचारिणी नदीकी लहरमें है/उतावली दुःख
> की अनुभूति! (जोनाकी मन)

कवि भट्टाचार्यका दुःख निपीड़ित जनता तक व्याप्त है। आर्थिक तंगीसे जीनेवाले लोगोंका सपना दुःखमें ही पलताहै, बढ़ताहै; दुःख सहकर ही वे पालते-पोसतेहैं भविष्यके सहारेको :

> इसी प्रकार हूं !/दुःख मेरी गोदका शिशु है,/बार-
> बार दोनों हाथोंसे/उठाना पड़ताहै।/जिह्वामें है/
> दुःखके घरका नमक। (मोर आरु पृथिवीर)

सांप्रतिक जीवनकी भयावहता कवि भट्टाचार्यका काव्य-चेतनाका एक प्रमुख बिन्दु है। सांप्रतिक जीवनकी अनिश्चितता, भयानक आणविक शक्तिका दुष्प्रयोग, मानवके प्रति मानवका अमानवीय व्यवहार आदिको कविने सार्थक रूपमें चित्रित कियाहै। ऐसी भयावहता

की तुलनामें कवि कभी अपनेको नितान्त असहाय पाते हैं, मानव हृदयकी दीनता कविको रुलातीहै। जीवनकी भयावहताका एक चित्रण इस प्रकार देखाजा सकता है:

> अकालका आंगन।/शस्त्रका खेत है खाली।/कैशोर की खो गयीहै/ स्वप्न स्वाधीनता।/गर्भवती नारी है निद्रामें निहत।/जड़में है क्या विष?/उजड़ गया है गांव।/उजड़ा नगर।/मृत्युकी मलिन छायामें है/ अश्लील व्यापार।/पाप मुद्राकी है बहुतायत।/हे समय,/गरज उठो/नियोजित करो/सर्वोत्तम प्रतिभा। (संकट दिन)

जीवनकी भयावहताके दूरीकरणके लिए सामूहिक प्रयासकी आवश्यकता होतीहै। कवि भट्टाचार्यकी कवितामें सामूहिक चेतनाके प्रति प्रतिबद्धता दिखायी पड़तीहै। वे जीवनके संकटसे पलायन करना नहीं चाहते, अपितु अलसता, क्लीवता और गतिहीनताके विपरीत उनकी कवितामें तीव्र आशाबोधकी किरणें दिखायी पड़तीहैं—

> ज्वलंत सूर्यका तीर/लगकर अकस्मात्/दूर होजाये/ पृथिवीका क्लीव अवसाद। (यंत्रणा)

कवि भट्टाचार्यकी प्रारम्भिक कृतियोंकी अपेक्षा प्रस्तुत कृति 'शइचर पथार मानुह' कविके उत्तरणका काव्य है। वस्तुत: यह कविकी प्रौढ़ कृति है। १९८४ से लेकर १९९० ई. तक की कविताएं यहां संकलित हैं। इस संकलनकी अधिकतर कविताएं जीवनके व्यापक क्षेत्रको समेटकर इसे नवीन अर्थ प्रदान करतीहैं। 'फुले तेजे एंधारो जे', 'सुखी ने तुमि', 'फुले कांइटे घर', 'कुशलार्थे', 'कपिली कलंग', 'शइचेइ संचा', 'तुमि शइचर चानेकि', 'मानुह शस्य', 'सूर्यमग्न स्तव', 'मोर एखन नै आछे' इत्यादि कविताओंमें जीवनके वैचित्र्य-मय रूप चित्रित हुएहैं। कविकी काव्य मानसिकतापर 'नतुन पाठ', 'कुंदत कटा भैरव', 'रदत तिरेबिराइ' आदि लिखी गयीहैं। प्रेमसे संबंधित दो कविताएं हैं —'बोधर आखर' और 'तोमार परा मोलै'। इनके अतिरिक्त स्मृतिचारण या समर्पित चार कविताएं हैं वे अपने मित्रोंको लक्ष्यकर लिखी गयीहै, यथा—'सजीव सर्वेस्तर', 'हठात् जलप्रपात', 'नीलमणि फुकनर नामेरे' तथा 'शब्दहीन वर्णमाला'।

'शइचर पथार मानुह' काव्य संकलनके शीर्षकसे ही कविके अन्तर्मनका अनुमान कियाजा सकताहै कि रोमांटिक चेतनासे मुक्त होकर उन्होंने जीवनकी उस वास्तविकताकी खोज कीहै जो जीवनके लिए अपरिहार्य है और जिसकी नींवपर टिका हुआहै मानव सभ्यताका भव्य प्रासाद। इसके लिए खून-पसीनेकी आवश्यकता होतीहै। मानव इससे मुक्त भी नहीं हो सकता; और कविही इसमें जीवनकी सार्थकता खोज पातेहैं—

> १. शस्त्रका खेत आदमी।/हमने नाम रखा/ जीवन।/तीव्र धारामें भी/आगा-सीधा देखताहै/ नाविक मन। (फुले तेजे एंधारो जे)
>
> २. शस्त्रवती मेरी,/शस्त्रही सच है/मेरा कोई दूसरा गीत/या कविता नहीं है,/तुम्हारा हरा आंचल पकड़कर।…मेरी राख हो जानेवाले/गीतके उस पार/उमड़ घुमड़ उठाहै बादल।
>
> (शइचेइ संचा, तुमि शइचरेइ चानेकि)
>
> ३. खोलकर स्वर्णिम किरीट/पानीके तह तक/ उतर गया सूर्य,/दस क्षितिजोंमें/रुद्राक्ष कठिन/ दस तारोंके उज्ज्वल अश्रुपात।/…उच्चारणमें भारी है/शस्त्र बीज महीरुह/नक्षत्र जहां है/ पुरातन पुरुष;/मूर्ख-मुंहका कूट गंधी/मृत्यु-निषाद चिताकी लकड़ी।/…आदमी शस्त्र,/ सूर्यमग्न स्तव/संत्रास आर्ति/संधिक्षण उत्तरण/ शुभ्र शुद्ध पाठ।
>
> (मानुह शस्त्र, सूर्यमग्न स्तव)

कविने इस जीवन-संग्रामको केवल मानवमें ही नहीं देखाहै, अपितु प्रकृतिमें भी इसे प्रत्यक्ष कियाहै। प्रकृतिसे भी कविने पाठ पढ़ाहै जिससे थके-हारे मानव को नयी जिजीविषा प्राप्त हो। जिस नदीको कविने 'नदी मेरी लाड़ली बहन' (कुशलार्थे) कहकर आदर दियाहै उसकी निजी जीवन-शैली एवं विकराल रूपको भी उन्होंने अनदेखा नहीं कियाहै। नदी 'आंसूसे मणि-माला गूंथकर' जिस प्रकार कविकी सहानुभूति उपार्जित करतीहै, उसी प्रकार इसके विकराल रूपसे भी कवि सहम जातेहैं। बाढ़की तांडव-लीलासे विनाश होने वाले गांव-खेत-खलिहानमें कविने देखाहै। 'रक्तका कमल।' इस व्यंजनामें कविकी गहरी अनुभूति छिपी हुईहै। साम्यवादमें विश्वासी कविने जीवनकी चुनौतियोंको स्वीकाराहै और उसीमें संभावनाके नवीन रूपोंका दर्शन कियाहै—

> रक्तके नीचे / फूलकी शान्त कली / शस्य नक्षत्र/ मेरी प्रेम पदावली। (फुले कांइटे घर)

जीवनके उतार-चढ़ावमें जिजीविषाके साथ मानव को अधिक सशक्त बनानेकी दिशामें कविकी यह प्रतीकात्मक व्यंजना अधिक अर्थयुक्त प्रतीत होतीहै—

> मेरे हृदममें था / गुलाबका बगीचा / एक दिन रक्तसे सने / एक गुलाबने सूखे कांटेसे पूछा / गुपचुप / क्या तुम सुखी हो सुखी हो/ तुम ? ···गुलाब के एक हाथ / एक मुट्ठी अंधकारमें / मैं कान खड़ा करता रहा— /···जाड़े गर्मीमें गिरतीहैं फूलकी पंखुरियां । (सुखी ने तुमि)

कवि भट्टाचार्यकी प्रारंभिक कविताओंकी भांति आलोच्य काव्य-संकलनमें विद्रोहकी वह ऊष्मा नहीं है, जब कभी वे समाजकी विसंगतियोंको कठोर हाथसे भूलोच्छेद करके एक साम्यवादी समाजकी स्थापना करतेहों । संभवतः कवि उस वैप्लविक दर्शनकी व्यर्थता से हतोत्साहित हो गयेहैं । परंतु कहाजा सकताहै कि ऐसी चेतनासे कवि संपूर्णतः अपनेको मुक्त नहीं कर पायेहैं । प्रस्तुत संकलनमें अंतर्भूत 'जटीप', 'समुख शांति सारोगत' कविताओंमें है कविकी वैप्लविक चेतना-जीवनको एक स्वस्थ वातावरणमें जीनेकी, जिसका हमने स्वतंत्रताके बाद सपना देखाथा । स्वार्थान्वेषी और हिंस्र वातावरणसे समाजको मुक्त करानेके लिए तूफानकी गतिसे कूद पड़नेका परोक्ष आह्वान कविने कियाहै—'नक्षत्र नील बगीचे तक तुझे मुझे कौन ले जाताहै तूफानके रास्तेसे ।' (जटीप) पुनः 'हाथ पकड़ स्वाधीनता, तू मेरा सहोदर,' (वही) में कविकी प्रतीकात्मक व्यंजना उस लक्ष्यकी ओर संकेत है जहां कवि को आशान्वित भविष्य आश्वस्त करताहै—'समुख शांति सारोगत' कविता इसीका द्योतक है :

> मेरी धूप सने / वीणाके मधुर तारकी स्तब्धता में/ बजताहै उसका द्रुत अंगुलीका आनंद भैरव ।

प्रेमके संदर्भमें कविकी छायावादी, विचारधाराका पर्याप्त परिवर्तन इस काव्य-कृतिमें संकलित कविताओं में देखाजा सकताहै । प्रेमके वासनामय रूपसे परे कवि प्रेमिकाका संस्पर्श पानेके लिए लालायित हैं; कहीं एकांतमें उसके गीत सुननेके लिए उत्सुक हैं, क्योंकि इससे कवि प्रेरित प्रभावित होतेहैं—

> मुझेभी/अपना प्रेमिक बना लो/थकान शरीरमें बह जाये/वसंत बयार/प्रिय शब्द आकर टकराये कलेजेमें । / मुक्त हो वर्णबोधका बंदी अक्षर, / उनके शरीरमें/झिलमिल करे उत्सवका परिधान/ आओ, / सुने तुम्हारा गान, / प्रेमका एकांत गान । (बोधर आखर)

कविकी अन्य एक प्रेम कविता 'तोमार परा मोलै' (तुमसे मुझ तक) में प्रेमका अंतरंग चित्रण प्रस्तुत हुआहै । सुन्दर बिम्बोंके माध्यमसे प्रेमकी संयत एवं व्यंजनामयी अभिव्यक्ति इस कविताका प्राण है । प्रेम संबंधी असमिया साहित्यकी श्रेष्ठ कविताओंमें इसे अन्यतम स्वीकार करके डॉ. हीरेन गोहांइने यह टिप्पणी कीहै : 'तोमार परा मोलै' (तुमसे मुझ तक) जिस प्रकार अनुरागके इन्द्रजालमें तन्मय है, उसी प्रकार 'संयत शब्द' की अनुभूतिकी सांसारिक ज्वालाके अनुभवकी पृष्ठभूमिमें गंभीर और प्रोज्ज्वल है—नीले अंधकारके मध्य तीक्ष्ण ज्योतिष्ककी भांति ।

कविकी काव्य-मानसिकता संबंधी कविताएं उनकी रुचि और सीमाको रेखांकित करतीहैं । कविता कविका प्राण होतीहै । जिस कविताके संबंधमें कविका यह उद्गार है—

> कबिता पढ़कर/भूलाजा सकताहै / भूलाजा सकताहै / कुछ दुःख, / ऐसा कि ग्लानि ।

(नतुन पाठ) वही कवि अपनी सीमासे भी ठीक-से परिचित है । उन्हें लगताहै अब कविता लिखना उनके लिए कठिन हो रहाहै—

> कोई कविता/प्रारंभ करना कठिन है । /सीधे कुछ भी सहज रूपसे/ मेरी कलमतक आती नहीं ।
> (रदत तिरेबिराइ)

स्मृतिचारण संबंधी कविताओंमें कोई प्रशस्ति नहीं है, केवल प्रकृति और काव्यात्मक अभिव्यंजना ही इन कविताओंका प्रतिपाद्य है ।

> आदमी सूर्यका प्राचीन स्तंभ है, /आदमी है केवल आदमीकी आलोक छाया । /छाया खो जानेपर/ नहीं रह जाते विवेक बुद्धि श्रद्धाशील आदमीका / स्पर्शन योग्य वर्तमान । (नीलमणि फुकनर नामेरे)

ख्यातव्य है नीलमणि फुकन (१९३३ ई.) असमिया साहित्यके अन्यतम प्रतिष्ठित आधुनिक कवि हैं ।

हीरेन भट्टाचार्यके संदर्भमें कहाजा सकताहै कि वे कविताको ही जीवन और जीविका बनाये हुएहैं । एक-एक शब्दके लिए वे मीलों पैदल सफर करतेहैं, सभी प्रकारके लोगोंसे आत्मीयताके साथ मिलतेहैं और लोक-जीवनसे शब्द चुनतेहैं । कल्पनाकी ऊंची उड़ान भरनेके स्थानपर ये लोक-जीवनसे तादात्म्य स्थापित करनेके

लिए उत्सुक रहतेहै। इसीलिए उनके काव्यमें हमें इतने मार्मिक शब्द उपलब्ध होतेहैं, जो सहजही काव्यात्मक झंकार प्रस्तुत करनेमें समर्थ हैं। असमिया साहित्यके वार्षिकोत्सव 'असम साहित्य सभा' से संबंधित कविकी 'साहित्य उत्सवर तिनिदिन' (साहित्य उत्सवके तीन दिन) कवितामें कविकी लोकोन्मुखता सहज ही देखी जा सकतीहै, और देखीजा सकतीहै अनुज कवियोंके प्रति सादर आह्वान—

> जाड़ा समाप्त हुआ। /मेरी और कविता बनी
> नहीं। ·· शब्द भी कविताके पास आनेपर/खोल
> कर आताहै/उसका पोशाकी कपड़ा। /···इस
> बार/उत्सवके तीन दिन/मैं भी तुम लोगोंके साथ
> बिताऊंगा; /उत्साहसे तेजी रेलभी रुक जायेगी/
> पन्द्रह मिनट। /·· आओ, तरुण कवियो, /प्रारंभ
> करो अपनी कविताएं' देश तोड़कर आयेहैं
> लोग··· [साहित्य उत्सवर तिनि दिन)

इस लोकोन्मुखताके पीछे हीरेन भट्टाचार्यका दर्शन स्पष्ट है: कवि—देश-काल मानवकी इस इतिहास चेतनासे सृजित एक विशिष्ट कंठ है। समाजके आशय से बनतेहैं शिल्प-साहित्य समाज कविकी पाठशाला है, जीवन जिसका प्रधान अध्यापक है।

शब्दोंके विशिष्ट प्रयोगकर्ताके रूपमें भी कवि हीरेन भट्टाचार्यकी ख्याति है। वे इसके लिए सतर्क दीखतेहैं। कविका विश्वास है: शब्द कविका अस्त्र है। प्रत्येक कविका है शब्दका निजस्व भुवन। वह आविष्कार करताहै नवीन शब्द, प्रतिष्ठा करताहै प्रचलित ग्रामीण श्रुतिबद्ध शब्दोंके नवीन अर्थमूल्य, नूतन भाव अनुषंग। शब्दोंका पुनंगठन एवं पुनर्निर्माणही है कविका विशिष्ट चरित्र।···कवि जीवन निःशेष करता है वैसे राष्ट्रके अन्वेषणमें जिसकी आवाहनी क्रिया ला सकतीहै कविताकी नवीन मात्रा। (अ. सा. सभा के कवि सम्मेलनका अध्यक्षीय भाषण)

कवि भट्टाचार्यके काव्योंकी अन्य एक विशेषता है गीतिधर्मिता। ध्वनि-व्यंजना, सूक्ष्म अनुभूति तथा प्रतीकात्मकता वाक्-कुशलता—इनकी कविताकी विशेषताएं कहीजा सकतीहै। बहुत कम शब्दोंमें—जापानी हाइकुके समान हीरेन भट्टाचार्य कविता में बात करतेहैं। आधुनिक जीवनकी जटिल समस्याओं और निसंगताको उन्होंने कविताओंमें शब्द दियाहै। कथित भाषाके शब्दोंके प्रयोगमें भी उन्हें सार्थकता मिलीहै। फिरभी, यह कहना पड़ेंगा कि कभी भट्टाचार्य जी शब्दोंके खेल एवं व्यंजनाको इतना महत्त्व देतेहैं, कि उनकी कविताके रसास्वादनमें बाधा उपस्थित होती है। यह स्वीकार करना अनुचित नहीं होगा कि उनकी प्रारंभिक कृतियोंकी अपेक्षा प्रस्तुत कृति 'शइचर पथार मानुह' में हृदय पक्ष उतना प्रवल नहीं दीखता जितना बौद्धिक पक्ष। इसलिए यह काव्य-संकलन कविके हृदय से अधिक बौद्धिक स्तरको छूता दीखताहै। कवि भट्टाचार्यकी सीमाको रेखांकित करते हुए असमिया साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक नलिनीधर भट्टाचार्यकी यह स्पष्ट टिप्पणी है—'हीरेन भट्टाचार्यके अनुभवोंमें सच्चाई होते हुएभी कभी-कभी वे आत्मनिष्ठाके घेरेमें प्रवेश कर जातेहैं।·· इसका कारण, उनका कोई वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टिकोण होनेपर भी वे सदा सतर्क नहीं रहते।' (हीरेन भट्टाचार्यकी कविताओंमें जीवनबोध शीर्षक निबंध) हीरेन भट्टाचार्य रोमांटिक होते हुएभी इस सीमाके घेरेसे मुक्त होनेका प्रयत्न करतेहैं, जीवनसे रस और प्रेम संचय करके काव्यको नया आयाम प्रदान करतेहैं, समाजके विघटक तत्त्वोंके विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करनेमें भी नहीं हिचकते; पर साथही वे अपनी सीमाके प्रति सजग भी दीखतेहैं:

> कवि मैं था कभी नहीं/व्यर्थताके अंधकारने मुझे
> केवल/सत्यको सहज स्वीकारना सिखाया।
> (तेजर आखरे रे)

+ + +

> मैं कवि हूं, /सीमित है मेरा सामर्थ्य /दो राहोंकी
> भटकनमें/प्रेतग्रस्त प्रहरीकी/कृतघ्न पीतलकी सीटी/
> विपर्यस्त करतीहै/मेरे काव्यका अर्थ।
> (लांछित सूर्य)

कवि भट्टाचार्य यहभी अनुभव करतेहैं कि कविता कविका जीवनाभ्यास है, इसके माध्यमसे कवि समाजकी सेवा कर सकताहै। अतः काव्य सृष्टि द्वारा समाजके हृदस्पंदनमें नयी शक्ति प्रदान करने, नया उत्साह भरने का काम कर सकताहै जिससे समाजको सही दिशा प्राप्त होसके। कवि भट्टाचार्य असमिया साहित्यके कवि हैं, फिरभी उनकी मानसिकता किसी अंचल विशेषसे सम्बद्ध नहीं है, वे स्वयं अपना परिचय इस प्रकार देते हैं—

> नद-नदी-पर्वत चित्रित विपुल महादेशका मैं हूं
> कवि, /पृथिवी है मेरी कविता।
> (पृथिवी है मेरी कविता)
> [साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

प्रेमानुभूति, नारीकी अन्तर्पीड़ाका प्रभावात्मक मार्मिक काव्य

श्रीराधा

कृतिकार : रमाकान्त रथ

समीक्षक : डॉ. वनमाली दास

'श्रीराधा' आधुनिक उड़ियाकी एक सफल कृति है। इसके कवि हैं रमाकांत रथ, जो आज केवल उड़ियाके ही नहीं, संपूर्ण भारतीय काव्य-जगत्के एक जाने-माने कवि हैं। श्रीराधापर १९९२ के सरस्वती पुरस्कारसे वे सम्मानित हो चुकेहैं।

श्री रथकी काव्य-यात्रा १९६२ से पहले शुरू हो गयीथी। १९९२ तक पहुंचते-पहुंचते सात काव्य-ग्रंथों की रचना कर चुकेथे। १९६२ में 'केते दिनर', १९६७ में 'अनेक कोठरी' १९७१ में 'संदिग्ध मृगया', १९७७ में 'सप्तम ऋतु,' १९८२ में 'सचित्र अन्धार" १९८५ में 'श्रीराधा' और १९९२ में 'श्रेष्ठ कविता'। अब एक अन्य रचनामें व्यस्त हैं। इनमें से बहुत-सी रचनाओंका हिन्दी अनुवाद हो चुकाहै।

कवि रथ 'श्रीराधा' के लिए ही पुरस्कृत नहीं हुए, वरं अनेक रचनाओंके लिए युरस्कृत तथा सम्मानित हो चुकेहैं। 'सप्तम ऋतु'पर १९७८ में केन्द्रीय साहित्य अकादमीसे, 'सचित्र अन्धार' पर १९९० में राष्ट्रीय संहति पुरस्कारसे और एक सफल कृतिकारके रूपमें १९८४ सारला पुरस्कारसे तथा १९९१ में ओड़िशा संस्कृति परिषद्से सम्मानित हो चुकेहैं।

कवि रथकी पूरी जीवन-यात्रा एक सरकारी उच्च पदाधिकारी (आई ए. एस., और अन्तमें मुख्य सचिव उड़ीसा सरकार) के रूपमें अतिवाहित होनेपर भी अपनी काव्य-साधनासे वे कभी विरत नहीं हुए। उनकी यह साधना सदा जागृत रही और इसके प्रति वे सदैव समर्पित रहे।

एक साक्षात्कारमें उन्होंने कहाहै कि 'इस रचनात्मक वृत्तिमें न होता तो आज मैं जो कुछ हूं, वह नहीं होता। । जो स्थान मैंने देखेहै, जिन लोगोंसे मेरा परिचय हुआ, वह इसके बिना सम्भव नहीं था। यह बात दूसरी है कि इस वातावरण और मानसिकतामें जनकल्याणका जो कार्य करनेका सौभाग्य मुझे मिला, वह भी नहीं पाता। × × × अपने कर्त्तव्यके प्रति निष्ठाके साथ कविता लिखनेकी प्रेरणा मुझे इससे मिलती रहीहै। यह मेरे लिए सौभाग्यकी बात है।

(प्रजातंत्र-१७.१.९३)

श्रीरथकी 'श्रीराधा' मिथ केन्द्रित नहीं है, पारंपरिक नहीं है, उसमें नवीन उद्भावना है, नूतन चेतना है, प्रेमानुभूति है। वैष्णवीय भक्ति-भावनाकी यह अभिव्यंजना नहीं है। राधा भारतीय परंपरामें, पुराणों में, संस्कृतिमें तथा दर्शनमें आराध्या है। जिसके स्मरण नामकीर्त्तन और सेवासे ही मनुष्य सारे पापोंसे यहां तक कि भव-सागरसे मुक्त हो सकताहै (वायुपुराण— १०४ अध्याय) वैष्णव मतमें राधा-प्रेम ही ईश्वर-प्राप्तिका प्रकृष्ट पंथ है। राधाके समान सर्वस्व अर्पण करनेपर ही कृष्ण मिल सकतेहैं। कृष्णकी प्राप्तिके लिए राधाकी भांति एकांतिक तन्मयता चाहिये। राधावल्लभी संप्रदायके मतमें कृष्ण और राधा अभिन्न है, एक हैं। कृष्ण और राधा पुरुष और प्रतिरूप हैं। नित्य विहारी श्रीकृष्ण एकमात्र पुरुष हैं तथा उनकी निजरूपा 'ह्लादिनी' प्रेमशक्ति राधा परम प्रकृति है। सारा जगत् इन्हीं युगल किशोरका प्रतिबिम्ब है। राधा ही जड़ और जीवमें व्याप्त हैं। वह कृष्णका अंश विशेष है। इस प्रकार पौराणिक विचार-धारा और वैष्णवी दर्शनको अपनाकर काव्य रचना करनेवाले

कवि हैं जयदेव, चण्डीदास, सूर, नन्ददास, और उड़िया के कवि हैं अभिमन्यु, कविसूर्य, वनमाली, गोपालकृष्ण आदि। परन्तु कवि रथ इस धाराके उपासक नहीं हैं। उनकी राधा धर्मवीर भारतीकी 'कनुप्रिया' की भांति अपनी अन्तर्पीड़ामें दग्ध होनेवाली है। स्वयं कवि रथ का कहना है कि—'श्रीराधा' मिथ धर्मी काव्य है, ऐसा मैं नहीं मानता। श्रीराधाकी प्राथमिक दो-तीन कविताओंके बाद दूसरी कविताएं मेरी कल्पना-प्रसूत हैं। अतः श्रीराधाकी राधा पारंपरिक साहित्य अथवा 'प्रेम-तत्त्वके द्वारा प्रतिष्ठित राधा नहीं है। वह एक प्रेमिका हैं, जिसकी प्रेमानुभूति इतनी प्रगाढ़ है कि प्रेमसे पृथक् होना उसके लिए असंभव है और यहां तक कि मृत्युभी असंभव है, कविके मनमें समयके प्रवाह और संसारकी परिवर्तित परिस्थितिके अनुसार चरित्र भी बदल जातेहैं। नाम पौराणिक होते हुएभी चरित्र और व्यक्तित्वमें परिवर्तन हो जाताहै या लायाजा सकताहै। इसलिए यह राधा पुराण-प्रसिद्ध राधा नहीं, आधुनिक युगकी है, आधुनिक है।

पुराणके अनुसार राधाकी मृत्यु श्रीकृष्णसे पहले चुकीथी, जबकि श्रीराधा काव्यमें राधाकी मृत्यु श्री कृष्ण के बाद होतीहै। इसपर अपना मत देते हुए कवि रथ का कहनाहै कि 'पुराणवर्णित राधा मेरे काव्यकी नायिका नहीं है; पुराणके अनुसार राधाकी मृत्यु कब हुई और कैसे हुई, यह मेरे लिए कोई तात्त्विक वस्तु नहीं, और यह बात मेरे लिए कोई विशेष महत्त्व भी नहीं रखती। सच कहा जाये तो राधाके देहावसान संबंधी कोई कृति मैंने आजतक नहीं पढ़ी। मृत्यु और प्रेम के भीतर संघर्षकी, द्वन्द्वकी कल्पना मात्र मैंने श्रीराधा में कीहै। विजय प्राप्त प्रेमको आधार बनाकर राधा के जीवनको सार्थक बनानेका प्रयत्नमात्र मैंने कियाहै।' इसलिए यह राधा उनकी कल्पना कीहै, जो अपनी अंत-र्ज्वालामें जलनेवाली है, अन्तर्व्यथामें पिसनेवाली प्रेमिका मात्र है:

> अब रात है काफी/पिघल जातीहूं/भूल जातीहूं
> अब कुलकी कानि/फिर देतीहूं सौंप तुम्हें पूछनेके
> पहले/चमचमाते अलंकार पहनकर निकल पड़तीहूं
> फिर/जब सारी दुनियां नींदमें अचेत है।
>
> (श्रीराधा)

विद्यापतिने राधाको इस प्रकार एक प्रेमिकाके रूप में ही चित्रित कियाहै। उनकी राधा आराध्या नहीं बनी, कृष्णकी केवल प्रेमिका है, जो सभी प्रकारके संभोगकी आशामें आशायित है। वह केवल प्रेम नहीं चाहती, दैहिक आनन्द चाहतीहै, आनन्दके साथ वासना को चरितार्थ करना चाहतीहै और चाहतीहै अभिसारमें रत रहना। राधा और कृष्ण विद्यापतिके इष्टदेव नहीं हैं, वे केवल प्रेमिक-प्रेमिका हैं। कृष्ण नामधारी नायक-नायिका हैं। इसलिए विद्यापतिका संयोग-पक्ष बहुत ही सबल और पुष्कल है:

> सुखद सेजपर नागरि नागर/बइसल नव रति
> साधे/प्रति अंग चुम्बन रस अनुमोदन/थर थर
> कांपए राधे/मदन सिंहासन कएल आरोहन/मोहन
> रसिक सुजान।

इसमें राधा-कृष्णकी रतिक्रीड़ाका पूरा तथा स्पष्ट चित्र सामने आताहै। सूर भी संयोग शृंगारके वर्णनमें कम कुशल नहीं हैं। वैष्णभाव सम्पन्न बंगालके कवि चंडी-दास, उड़ियाके कवि अभिमन्यु सामन्तसिंहार, कविसूर्य बलदेव रथ, गोपालकृष्ण तथा वनमाली आदिने भी राधाकृष्णके संयोग शृंगारके बहुत सुन्दर चित्र खींचे हैं। परन्तु इन कवियोंने पूर्वानुरागमें जितना समय दियाहै, कला प्रदर्शित कीहै, उतना संयोग-पक्षमें नहीं। अभिमन्युने पूरे 'विदग्ध चिन्तामणि' के छियानब्बे छन्दों (गीतों) में से केवल एक ही छन्द (गीत) निरासीमें संयोग शृंगारका चित्र खींचाहै। कविसूर्य ने अपने 'किशोर चन्द्रानन चंपू' के चौंतीस गीतोंमें से केवल 'म' और 'ल' गीतोंमें और गोपालकृष्णने अपनी रचनाओंमें से केवल दो ही गीतोंमें संयोग शृंगारको रूप दियाहै। अन्य गीत प्रायः पूर्वानुरागके हैं। परन्तु यह निश्चित है कि इन कवियोंके पूर्वानुराग बहुतही सरस तथा प्रभावात्मक हैं और बड़ी रसात्मक शैलीमें लिखे गयेहैं। परन्तु वियोग-पक्षके वर्णनमें ये न तो विद्यापतिके समान हैं और न सूरके। विद्यापतिकी राधाकी व्यथा:

> लोचन धाय फेंधायल, हरि नहि आओल रे।
> सिव सिव जिबओ न जाय, आस अर, झाएल रे।
> मन कर तहां उडि जाय, जहां हरि पाइअ रे।/
> प्रेम परसमनि जानि आनि उर लाइअ रे।

इसमें विद्यापतिकी विरह-विधुरा राधाकी मानसी व्यथा चरम सीमा तक पहुंच गयीहै। वह असह्य व्यथासे ऊब उठतीहै और इस पापी प्राणको छोड़ देना चाहतीहै, परन्तु पिया-मिलनकी आसमें उसके प्राण जाते नहीं, उलझे रहतेहैं।

विद्यापतिकी राधाकी भांति सूरकी राधाभी विरह-जनित पीड़ामें कम व्याकुल नहीं :

> हरिको मारग दिन प्रति जोवति।/चितवत रहति चकोर चन्द्र ज्यों सुमरि-सुमरि गुण रोवति।/पतियां पठवति मसि नहि खंडति, लिखि लिखि मानहुं घोषति/।/भूख न दिन निम निन्द हिरानी, एकहु पल नहिं सोवति।/सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस बिनु, बृथा जनम सुख खोवति।

राधा इसमें कृष्णके मिलनका स्मरण कर अहर्निश रोती रहतीहै। एक पलके लिएभी उसे नींद नहीं आती इस प्रकार कृष्ण विरह-व्यथासे अधीर हो उठतेहैं।

श्री रमाकांतकी राधामें इस प्रकारकी विरह-व्यथा तो है, पर वह पारंपरिक नहीं। उनकी राधा विद्यापति, सूर आदिकी राधाकी भांति कृष्णके आगमनकी अपेक्षा नहीं करती, बाट नहीं जोहती, वह केवल अन्तर्पीड़ासे दग्ध होती रहतीहै। इसका यही कारण है कि उसका कृष्ण नामधारी प्रेमिक फिर लौटनेवाला नहीं है। वह इस संसारसे चल बसाहै। इसलिए उसके संतापमें मिलगकी आकांक्षा नहीं, जो दूसरोंकी राधाओं में है। इसमें केवल राधाही राधा है। कृष्णकी भूमिका नहीं। इसमें कृष्ण न तो विरही हैं और न राधाके बिना व्यथित हैं, व्याकुल है।

श्रीराधाकी राधामें व्यथा सहनेकी असीम शक्ति है। वह जानतीहै कि कृष्णके साथ रहनेका अवसर उसे कभी नहीं मिलेगा। यह अवश्यही उसकी निराशाका कारण है। इस चिन्ताको, इस ज्वालाको सहनेकी शक्ति उसमें क्रमश: आ गयी होगी। कवि रथकी भाषा में—'कृष्णके प्रति उसकी प्रीति निश्चयही अद्भुत है और विपुल है।' (श्रीराधाका पृष्ठबंध-१२६)।

श्री रथकी राधामें पूर्वानुराग अभिमन्यु अथवा कवि सूर्य अथवा गोपालकृष्णमें श्रीराधाकी भांति नहीं मिलता। मिलतेहैं कृष्णका गुण-कथन और कृष्णके साथ उसके मधुर मिलनका बार-बार स्मरण :

> फिरभी मैंने अनुभव कियाथाजब पहले मुझे स्पर्श कियाथा तुमने/आज हो या कल, एक न एक दिन/मैं अवश्य दूंगी अपनी स्वीकृति/चुप हो जाऊंगी, जो होनाहै अवश्य हूंगी/पर एकही रातमें,/तुम्हें मैं अनन्तकाल तक आलिंगन-पाशमें/विवसन अन्त:करणमें बांध रखूंगी। (श्रीराधा)

इसमें अवश्य मिलन-उत्कंठा हैं, पर यह संयोग-संभोग नहीं। परवर्ती हिन्दी, बंगला, उड़िया आदि वैष्णवीय काव्योंमें जिस प्रकार संयोग शृंगारका चित्र उपलब्ध होताहै, वैसा इसमें नहीं। संयोगपक्षका बिल्कुल अभाव है। है केवल वियोग, जिसमें राधा विरह-विधुरा है और उसमें मिलनकी तीव्र आकांक्षा तथा उत्कंठा है :

> देहसे लगतीहै देह/भूल जातीहूं मैं अपनेको/पर सब कुछ जानते हुएभी अनजान-सी/बार-बार तुम्हारी देहसे रगड़तीहूं देह/भूलनेके लिए अपनी व्याकुलता/समझते नहीं तुम, सब कुछ भूल जानेपर भी/तुम्हें आदरसे ले लेतीहूं, बिठातीहूं अंकमें/केवल तुम और मैं रहते मेरे एकाग्र चित्र में।
> (श्रीराधा)

वेदनाके साथ-साथ कभी-कभी राधा अपनेको कृष्णका अंश समझतीहै और अनुभव करतीहै कि उसका कोई अस्तित्व नहीं। इस दुनियामें जो कुछ है, वह सब कृष्णका ही है। वह एकात्मकता अनुभव करतीहै :

> मेरा नहीं यह शरीर × × ×/यह जीवनभी मेरा नहीं/जो मृत्यु एक दिन तो आयेगी हो/वह भी मेरी नहीं। (श्रीराधा)

श्रीराधामें प्रेमकी अभिव्यक्ति है, अभिकथन है; जिसमें कविने केवल अपना आत्ममंथन कियाहै। आरम्भसे अन्ततक प्रेमका ही रोमांच है और जुगाली है। यह होते हुएभी कहींभी नीरसता नहीं आ पाती, बिल्कुल सरल और सहज भाषामें अपने हृदयकी गहराई को कविने व्यक्त कियाहै। कहीं भी अस्पष्टता अथवा समझनेकी कठिनाई सामने नहीं आती। एक साक्षात्कारमें कवि रथने कहाहै कि—'श्रीराधाके लिए मिले हुए पुरस्कारसे मेरे सहृदय पाठक यदि समझें कि मैं ऐसा अथवा इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ रचना कर सकता हूं, तो उन्हें निराश होना पड़ेगा। मेरी कल्पनाकी स्वल्पता वे समझेंगे नहीं। मेरी रागात्मकता, बुद्धि और अनुभवका क्षेत्र बहुत ही सीमित है।' और एक बार उन्होंने यह भी कहा कि -'सच कहूं तो 'श्रीराधा' मैंने लिखी नहीं, उसका अधिकांश अंश अपने आप लिखा गयाहै। सिर्फ कई रातें और दिन मैंने अपना हाथ किरायेपर दे रखाथा। यदि कभी साक्षात्कार होता तो उनसे मैं कहता --आपने मेरा हाथ एक बार किरायेपर ले रखाथा। उसके लिए मैं आपका

बहुतही आभारी हूं। यदि फिर एक बार लेते तो मैं और अधिक आभारी होता। परन्तु मुझे लगताहै मेरा यह निवेदन फिर ग्राह्य नहीं होगा।' इससे कवि रथ की विनम्रता उभरतीहै और उनकी विनयशीलता अनुभूत होतीहै।

श्रीराधा बहुत बड़ा काव्य ग्रंथ नहीं है, केवल एक सौ उन्नीस पन्नोंकी रचना है और साठ कविताओंका समाहार है। फिरभी इसे लिखनेमें उन्हें पांच वर्ष लगे हैं। (समाज २४.५.९.९२)। इसकी मौलिकता, इसकी काव्यात्मकता, प्रेमानुभूति और नारीकी अन्तर्पीड़ा अत्यन्त मार्मिक है, प्रभावात्मक है। उन्होंने इसमें युगचेतनाके किसी बिन्दुको उठाया नहीं अथवा सामयिक घेरेसे अपनेको बांधा नहीं अथवा किसी सामाजिक स्थितिको उभारा नहीं, केवल एक मुक्त चेतनाको उठायाहै, सर्वदा तथा सर्वथा जो सत्य है एवं शाश्वत वस्तु है अथवा भावना है उसीको अभिव्यंजित कियाहै। उनके मनमें काव्य एक भावात्मक आवेगका परिप्रकाश है। अतः श्रीराधा वस्तु-केन्द्रित नहीं, भाव-केन्द्रित है। और यह निश्चित है कि श्रीराधाके कवि श्रीरथका रोमांस, मानसमंथन इसमें रूपायित है। ऐसा लगताहै, राधाका अन्तर्दाह श्रीरथका ही अन्तर्दाह है। इसमें श्रीरथ राधाका रस लेकर आयेहैं और अपने अतर्मनकी गुत्थियोंको, कसकको अभिव्यक्ति दीहै। यह उनकी एक महार्घ्य उपलब्धि है। ⊡

[के. के. बिड़ला फाउंडेशनसे पुरस्कृत]

काव्य : कन्नड़

जनवादी चेतनाकी अनूठी कविताएं

बकुलद हूऊगळु

कृतिकार : सुब्बण्ण रंगनाथ यक्कुंडी

समीक्षक : डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ

मानववादी कवि, विशिष्ट कथाकार, सुधी आलोचक, सफल अनुवादक, आदर्श शिक्षक, प्रकृति-प्रेमी इन सबसे बढ़कर एक निश्चल सहज व्यक्तित्व हैं—सु. रं. यक्कुंडी। वे कन्नड साहित्यके विलक्षण प्रतिभासंपन्न सर्जक हैं। उनका नवीनतम कविता संकलन है 'बकुलद हुऊगळु' (बकुलके फूल)। इसमें संकलित कविताएं संवेदना, चिन्तन, रचना-प्रक्रिया, बिंबविधान, प्रतीक योजना तथा भाषिक संरचनाकी दृष्टिसे समकालीन कन्नड काव्यकी मौलिक उपलब्धि मानीजा सकतीहैं।

कविकी मान्यता है कि कविताकी सार्थकता किन्हीं कलात्मक उपलब्धियोंको प्राप्त करनेमें नहीं बल्कि अपने समाजकी मानसिकताको और अपने युग तापको सफल शाब्दिक अभिव्यक्ति देनेमें है। काव्य हो या गद्य उसकी जड़ें सामाजिक जीवनमें गहरी उतर जानी चाहियें। इतिहास ही साक्षी हैं कि मात्र शिल्प वैभव और अलंकारोंसे युक्त काव्य कभी भी जनताका काव्य बनकर नहीं रह सका। यही कारण है कि महाकवियों के काव्यको हम झोंपड़ियोंमें सुन नहीं सकते।

सु. रं. यक्कुंडी जनवादी चेतनाके कवि हैं। वे जीवनभर अंगारोंपर चलते रहे। अतः उनकी कविता में जो आग है वह पीड़ित जन साधारणके भीतर धधकती आगसे अलग नहीं है। यूनानी पुराकथाका नायक प्रोमीथियस उनका आदर्श है। यूनानके अंधकारको मिटानेके लिए प्रोमीथियसकी आंखोंसे जो आग प्रज्ज्वलित हो उठीथी उसी आगको कवि अपनी कवितामें सुलगाना चाहताहै। गत चार दशकोंसे कवि-कर्मसे जुड़े रहकर सुब्रण्ण यक्कुंडीने आठ कविता संकलन प्रकाशित कियेहैं। हर संकलन अनूठा है और एक नया अनुभव देनेवाला है।

'बकुलद हूऊगळु' (बकुलके फूल) कविता संकलन यक्कुंडीकी मौलिक सृष्टि है। इसमें कुल पैंतीस कविताएं संकलित हैं। संग्रहकी शीर्षक कविता 'बकुल के फूल' कविके समूचे काव्यकी मूल-संवेदनाको संकेतित करतीहै।

पत्थर और कांटोंसे भरा पहाड़/नीचेही एक
बकुल वृक्ष फूलोंसे लदा/डाली-डालीपर बैठे
पंछियोंके झुंड/उनके कंठसे फूटा गान…"

ये पंक्तियां जीवनके मर्मको खोलकर रखतीहैं। दिन भर पसीना बहाकर काम करनेवाले मेहनतकश वर्ग प्रति दिन कंटीली, पथरीली राहसे गुजरताहै। एक दिन अचानक ही उसी राहपर बकुलके फूल खिले दिखायी देतेहैं तो उन्हें देखकर उनके सारे कष्ट मिट जातेहैं और उल्लासकी एक रेखा उभर आतीहै। यह बकुल पहाड़ीकी छातीको चीरकर कहांसे जीवन-रस ग्रहण करताहै और फूल खिलाताहै ? अद्भुत जीवन शक्ति है इसमें; बकुल अदम्य जिजीविषाका प्रतीक है। यक्कुंडीके काव्यमें दुर्धर्ष जिजीविषाको उद्बुद्ध करने वाली चेतना सर्वत्र व्याप्त है। उनकी कविता छायावादी रूमानियतसे पृथक् एक अलग सौन्दर्य-बोधसे अनुप्राणित है।

इस संकलनमें अधिकतर ऐसी कविताएं हैं जिन्हें 'कथा-काव्य' की संज्ञा दीजा सकतीहै। इसकी अधिकांश कविताओंमें एक कथा अवश्य होतीहै चाहे वह पुराकथा हो या पुराण-कथा, ऐतिहासिक हो या पौराणिक अथवा यथार्थ जीवनमें घटित किसी घटनापर आधारित कथा हो। वास्तवमें इस कथाको हम "कथा-संदर्भ" कह सकतेहैं। क्योंकि कवितामें कथा नहीं कथ्य प्रमुख होताहै। कथाका संदर्भ कविताको आधुनिक भावबोधसे जोड़ देताहै। कविका लक्ष्य अतीतका पुनर्निर्माण करना या घटितको फिरसे दुहराना नहीं है। अपितु ऐसे संदर्भको आधुनिक भावबोधके स्तरपर प्रस्तुत करनाहै जिसमें से मानवीय सत्यका उद्घाटन हो। किसी घटना, पात्र आदिको रूपक या प्रतीकमें बदलनेका प्रयास भी कविने नहीं कियाहै। अतः कथा-संदर्भ विशिष्ट अर्थ या प्रतीकार्थ या संकेतार्थ व्यंजित नहीं करता। कविने सीधे ढंगसे ऐसे मौलिक तथ्यका उद्घाटन कियाहै जिसका संबंध मनुष्यके सहज क्रिया-व्यापारसे है और उसकी वैचारिकतासे है। उन्होंने मानवोय संवेदनाके अनछुए पक्षका उद्घाटन कियाहै। मध्वमुनिका अद्भुत चमत्कार, रतिदेवका त्याग, अश्वत्थामाकी माताकी व्यथा, जाबालाकी व्यथा-कथा, पुरंदरदासका मोहभंग, सुकरातका विषपान और किन्हीं लोककथाओंको आधार बनाकर लिखी कविताएं कविकी गहरी अंतर्दृष्टि और अभिव्यंजना कौशलको दर्शाती हैं।

'कालुदीप' (चरणदीप) शीर्षक कवितामें बड़ेही कलात्मक ढंगसे कविने मध्वमुनिकी महिमाका अंकन कियाहै। यथा

मणिदीप धरा है भगवान्ने/मनुष्यके हृदयमें/जन्मके
साथही/अंतमें जीवनके, उतर आनेपर अंधेरा/
मुक्ति लिपि पटाने।

यह कविता अध्यात्म चिन्तन या दर्शनकी चिन्तासे बढ़कर ज्ञान और विवेककी आस्था तथा आभासे मंडित है। 'कडिदु बिद्दवु कोळ' (टूट गयी बेड़ियां) कविता में देवकीके बेटे कृष्णकी जन्मकथा प्रसंगको नयी अर्थवत्ता प्रदान की गयीहै। 'ऋणद हुंज' (उधारका मुर्गा) सहज, सरल शब्दावलीमें प्रस्तुत एक सुंदर कविता है जिसकी अंतिम पंक्तियां सघन अनुभूतिसे मंडित हैं। महान् चिंतक सुकरात अपनी अंतिम घड़ीमें भी पड़ोसीसे उधारमें लिये हुए मुर्गेको भूल नहीं सका। वह अपने शिष्य क्रेटोसे कहताहै कि पड़ोसीका कर्ज उसके सरपर है। उसे उतारकर उसे ऋणमुक्त करें। क्रेटो उसीदिन—सुकरातका यह ऋण चुका देताहै तो कविताके अंतमें कवि कहताहै कि दूसरे दिन शोक-मौनमें जागा अथेन्स, किन्तु सूर्योदय नहीं हुआ और सुकरातके उधारके मुर्गेने बार-बार उकसानेपर भी बांग नहीं दी।

आलोच्य कविता-संकलनका महत्त्वपूर्ण आयाम है —इसमें अंकित जनवादी दृष्टिकोण। मार्क्सवादमें कविकी आस्था है। किन्तु कविने आस्थाको मोहमें परिवर्तित होने नहीं दिया। यह उनकी अन्यतम उपलब्धि मानीजा सकतीहै। उनकी प्रगतिवादी दृष्टि कभी भी प्रचारात्मकता या नारेबाजीकां बाना पहनकर प्रकट नहीं हुई। संवेदनाके धरातलपर अभिव्यक्त उनकी प्रगतिशील चिन्ता एक सार्थक काव्यात्मक अभिव्यक्तिका रूप धारणकर गयीहैं। 'रोट्टी और कोवि' (रोटी और बंदूक) कविता, निरालाकी 'तोड़ती पत्थर' की याद दिलातीहै। बिवश खड़े मजदूर बंधुओंको देखकर कविका मन उमड़ आताहै और वह महसूस करताहै कि ''यही वे लोग हैं न जो दिन रात ईंट-पत्थर ढोकर अट्टालिका खड़ी करतेहैं और इनसे ही है न सुखकी छाया—'' पर ये असहाय अवश्य हैं किन्तु कायर नहीं हैं। अपने भाग्यको कोसनेवाले नपुंसक भाग्यवादी नहीं है। बुर्जुआ व्यवस्थाके अन्याय और अत्याचारका शिकार बने ये लोग हाथपर हाथ धरकर सब कुछ चुपचाप सहनेवालोंमें नहीं हैं। अतः शोषणशील व्यवस्थाको उखाड़ फेंकनेके लिए कटिबद्ध हो जातेहैं। उनके भीतर विद्रोहकी आग सुलगतीहै। तब वे फांसीके तख्तेको भी उलटकर फेंकतेहैं और हाथों में बंदूक लिए आगे बढ़तेहैं। कवि कविताके अंतमें कहताहै—

> भूखोंको भी जीनेका हक है न ? और/प्यार भी
> तो चाहिये इन मिट्टीके पुतलोंको/जब बंद हो जाते
> है हृदयके सारे दरवाजे/तब मौत ही बेहतर है इस
> जिंदगीसे ।।

यहां मौतको गले लगानेका अर्थ जीवनसे भागना नहीं है बल्कि शोषणके विरुद्ध प्राणोंकी चिन्ता न करते हुए संघर्ष करनाहै और न्यायकी लड़ाईमें शहीद हो जाना है। ''पायसद बट्टलु' (खीरका कटोरा) कविता निरालाकी 'भिक्षुक' कविताकी भांति ही एक सशक्त मार्मिक रचना है। बुद्धपूर्णिमाके दिन मालकिन दिन भर काम करके थकी लड़की (जो नौकरानी है) को खीरका कटोरा दे देतीहै। वह घर जाते हुए रास्तेमें बूढ़े भिक्षुकको देखतीहै तो उसकी भूख लड़कीको हिला देतीहै। स्वयं भूखी-प्यासी होनेपर भी वह खीरका कटोरा वृद्ध भिक्षुकको देतीहै। बुद्धपूर्णिमाके संदर्भमें यह प्रसंग विशिष्ट अर्थ व्यंजित करताहै। निर्धन वर्ग की मानवीयताके सामने बुर्जुआ वर्गकी सहानुभूति कितनी खोखली लगतीहै। 'मूक वृक्षद पक्षी' (मूक वृक्षका पक्षी) 'रायरु मत्तु राशि' 'बेस्त मत्तु नाइ' (मछुआरा और कुत्ता) 'दुंबी मत्तु हूऊ' (भ्रमर और फूल) आदि कविताएं समाजवादी चिन्तनके प्रभाव वलयमें रचित कविताएं कवि यक्कुंडी, फ्रेडरिक् जार्जियो, लार्क क्रिस्टोफर काडवेल, मायकोस्की आदि के प्रखर चिन्तनसे प्रभावित है। उन्होंने मात्र साहित्य में अपनी विद्रोही चेतनाका परिचय नहीं दिया बल्कि कम्यूनिस्ट पार्टीकी क्रांतिकारी गतिविधियोंमें प्रत्यक्ष रूपमें योगदान कियाथा। कन्नडके विख्यात कवि चन्नवीर कणवीके साथ मिलकर—कन्नडके निर्भीक मार्क्सवादी लेखक निरंजन द्वारा परिचालित प्रगतिशील आंदोलनमें सक्रिय भाग लियाथा। इन सबसे उनके काव्यको एक सुदृढ़ वैचारिक धरातल मिला तथा उनकी रचना प्रक्रियाको सही दिशा मिली, फलतः श्री यक्कुंडी यथार्थचेता सर्जक बने।

इनकी कविताओंका शिल्प विशिष्ट, मौलिक और आकर्षक है। कथात्मकता इनकी कविताका एक अनिवार्य गुण है। कथा-संदर्भके कारण कविता अपने समय की सीमाओंको तोड़ सुदूर अतीतसे नाता जोड़ लेती है। इस प्रकार अतीतसे जुड़ जानेसे वर्तमान धूमिल नहीं पड़ जाता। इसके विपरीत अतीतके दर्पणमें वर्तमान का प्रतिबिंब और स्पष्ट दिखायी देने लगताहै।

वैसे तो यक्कुंडीकी कविताएं मुक्त छंदमें हैं। पर ऐसी कविताएं पर्याप्त संख्यामें मिलतीहैं जो ग्यारह चरणोंसे युक्त हैं। इन्हें छंदोबद्ध रचनाएं नहीं कह सकते। अनुप्रासकी छटासे कविताएं सुश्राव्य बन गयी है। कवितामें एक लय है। अतः गेयता सहज रूपमें विद्यमान हैं। इनकी कविताओंसे रसानुभूतिका विशिष्ट अनुभव प्राप्त होताहै। इस संकलनकी कविताओंकी भाषिक संरचना नितांत मौलिक कहीजा सकतीहैं। परंपरागत भाषा प्रयोगसे भिन्न एक पृथक् काव्यभाषाका गठन कवि यक्कुंडीने कियाहै। इनका निरलंकृत भाषा-प्रयोग समकालीन कन्नड़ कविताका शृंगार है। इस प्रकार 'बकुलद हूऊगळु'—कृति अपनी मौलिक रचना प्रक्रिया, यथार्थ बोध और मानवीय संवेदनाके कारण महत्त्वपूर्ण काव्य कृति हैं। ☐

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

पीडित मानवतासे कविके तादात्म्य और जीवन्त भाषाका काव्य

वंशकुळांचे देणें

रचनाकार : नागेश करमली

समीक्षक : डॉ. चन्द्रलेखा डि' सोजा

साहित्यकी विधा कोईभी हो अपनी रचनाके रूप में जीवनसे, जीवनके कार्य-कलापोंसे वंचित नहीं होसकती। साहित्याकार स्वयं एक मानव है और अपनी रचनामें वह मानवताके लक्षणोंकी उपेक्षा नहीं कर सकता। जीवन विविधतासे परिपूर्ण होताहै, उसकी प्रेरणाएं साहित्यकी प्रेरणाएं होतीहै। उसकी चेतनाही साहित्यको सजीव बनातीहै। हां, यह भी सत्य है कि वास्तविक जगत्‌से, वास्तविक काव्यका जीवन कुछ भिन्न होताहै। कल्पना और सौंदर्यका मिश्रण होताहै, फिर भी काव्य जीवनसे हटकर नहीं होसकता। रचना और समाजका संबंध मूलत: मनुष्यके कारण ही है। रचनाकारका किसी वैचारिक अनुभूतिसे साक्षात्कार होताहै, परिणामस्वरूप रचना प्रक्रिया प्रारम्भ होतीहै, मस्तिष्क में चयापचय की प्रक्रिया होतीहै और भाषाके माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति हो ही जातीहै। समीक्षकको भी इसी क्रिया-प्रक्रियासे निकलना होताहै, वह भाषाके माध्यमसे रचनासे टकराताहै, उसे आत्मसात् करनेका प्रयत्न करताहै, रचनाकारकी भावभूमिमें पहुंचकर रचनाका आनन्द लेताहै, साथ-साथ उसका विश्लेषण भी करने लगताहै। अपने परिवेशके साथ वह रचनाकारके परिवेशको भी टटोलताहै और तटस्थ रहकर इतिहास और युगबोधके अन्तर्गत उसे परखनेका प्रयत्न करताहै। साहित्यके अन्तर्गत यह खोज निरन्तर चलती रहतीहै। अपने अपने समसामयिक कालमें प्रत्येक समीक्षक साहित्यिक कृतिका मूल्यांकन करने लगताहै और साहित्यका विकास होता रहताहै। रचनाकार अपनी रचनामें व्यक्तिगत विचारधाराके साथ-साथ समाजका केवल चित्र ही नहीं उपस्थित करता, अपितु विकृतियों का उल्लेख भी करताहै।

कोंकणीके इस समाजवादी कविके कुल मिलाकर तीन कविता संग्रह प्रकाशित हैं—'जोरगत', 'सांवार' और 'वंशकुळाचें देणें'। शीर्षक का अर्थही सारगर्भित है—अपने वंशकुळके प्रति एक दायित्व है, कविके पास यह धरोहरके रूपमें अर्थात् सामाजिक धरोहर है। कविका कहनाहै :

जिस परिवेश और परिप्रेक्ष्यकी बहुरूपी प्रक्रियाके कारण मेरा जन्म हुआहै, जीवन विकसित हुआहै, उस दायित्वको अपने भीतर संजोकर, अपनी रचनाओंमें शब्दोंके माध्यमसे खोजनेका यत्न करताहूं। अपने साथ साथ अपने समाजके सामाजिक मुल्योंको खोजताहूं। अपनी प्रादेशिकतासे ऊपर उठकर विशाल राष्ट्रीय जीवन-प्रवाहमें प्रवाहमान होना चाहताहूं। थोड़ा बहुत सामाजिक दायित्व स्वीकारना चाहताहूं।

कोंकणी काव्य-साहित्यका इतिहास जब लिखा जायेगा तब नागेश करमलीको काव्य चेतनाको समाजोन्मुख चेतना मानना होगा। कोंकणी काव्यकी मुख्यतः दो प्रवृत्तियां हैं—एक कवि काशीनाथ श्रीधर नायक और बाळीबाब बोरकारकी गेय गीतोंकी प्रवृत्ति, इसीके अन्तर्गत मनोहरराय सरदेसायकी कविता गेय गीतों

से प्रारम्भ होकर व्यक्तिनिष्ठताका आँचल ओढ़कर कहीं कहीं राजकीय चेतना और स्वातंत्र्यका मोहभंग दर्शाकर अपना स्थान बनाती गयीहै। दूसरी प्रवृत्ति है रघुनाथ विष्णु पंडितकी कविताका—जो सामाजिक चेतनासे प्रेरित है। समाजके विभिन्न स्तरोंके स्वरूपका प्रतिरूप है। मुख्यत: यह कविता शोषित समाजका चित्रांकन है। उन्हींके स्तरकी भाषा और शब्दोंका प्रयोग उसी रूपमें पंडितकी कविता करतीहै। कवि नागेश करमलीकी कविता समाजके शोषित वर्ग का चित्रण करतीहै पर उनकी भाषा अपनी हैं, रघुनाथ विष्णु पंडितकी भांति उसी समाजकी भाषाको नागेश करमलीने अपनाया ही नहीं, समाजके प्रति अपना दायित्व निभाते हुए इन्होंने इसे सामाजिक ऋण और धरोहरके रूपमें स्वीकार कियाहै—

> "हम उत्तरदायी हैं समाजके,/समाजकी धरोहरके/ऋण मुक्त होनाहै/ऋण चुकानाहै समाजका।/इसीलिए/गाने पड़तेहैं अपने गीत…/छद्म वेशमें आतेहैं लोग/ईश्वरके नामपर छलतेहै/मानवता के रिश्तोंको भूलकर/शब्दोंके आडंबरमें ही वे ता, थै, नाच नचाते/हम उत्तरदायी हैं समाजके/इसीलिए/हमें, गाने पड़तेहैं अपने गीत…२

कवि समाजके उन घूँघटधारियोंका घूँघट हटा कर उन्हें नंगा करताहै, जो सामान्य जनताको छलते हैं—ईश्वरके नामपर अल्लाका, अल्लाके नामपर मसीहा का रक्तपात होताहै, और 'देश और समाजपर' थोपी गयी संकीर्णता फूट पड़तीहै। समाजका ऋण धर्म नहीं, मनुष्यकी मनुष्यता है। सम्पूर्ण मानव जाति-वंशका दायित्व निभाना सही रूपमें ऋण चुकानाहै। किसीभी भाषा-धर्मका कवि अपने समाजके प्रति थोड़े-बहुत रूप में उत्तरदायी होताही है। चिन्तन-दृष्टि युगबोधसे ग्रहण करताहै, अपनी रचनासे युगको प्रभावितभी करताहै। साहित्यकार और समाज एक दूसरेके विकासमें सहयोग देतेहैं। कवि नागेश करमलीका पूरा काव्य-चिन्तन इसी बिन्दुपर परिक्रमा करताहै।

समाजमें दो वर्ग होतेहैं—शोषित और शोषक। हमारे देशमें स्वतंत्रताके बाद मोहभंगकी स्थिति आयी और जीवन-मूल्योंमें आमूल परिवर्तन हुए। जिस स्वतंत्र देशमें समानताका स्वातंत्र्य नहीं, आर्थिक समानता नहीं, उस स्वाधीनतामें शोषित वर्गकी पीड़ाका चित्रण साहित्यमें दृष्टिगोचर होने लगा। लगभग सन् १९५० के आसपास सामाजिक यथार्थके संदर्भमें चिन्तन प्रारम्भ होगयाथा। उन दिनों गोवा पराधीन क्षेत्र था। १९६१ में गोवामें स्वतंत्रता आयी, मोहभंगकी स्थितिभी आयी पर उसमें से बाहर निकलकर यथार्थ-चिन्तन कोंकणी साहित्यमें बहुत कम हुआ।

> "श्वानोंको मिलते दूध-वस्त्र/भूखे बालक अकुलाते हैं/मांकी हड्डीसे चिपके, ठिठुरे,/जाड़ोंकी रात बितातेहैं,/युवतीके लज्जा वसन बेच,/जब ब्याज चुकाये जातेहै,/मालिक तब तेल फुलेलोंपर पानी-सा द्रव्य बहातेहै।"३

या फिर कवि निरालाकी कविता 'वह तोडती पत्थर'—

> चढ़ रहीथी धूप;/गर्मियोंके दिन,/दिवाका तमतमाता रूप,/उठी झुलसाती हुई लू,/रुई ज्यों जलती हुई भू,/गर्द चिनगी छा गयां;/प्राय: हुई दोपहर—/वह तोडती पत्थर।४

कोंकणी कवि नागेश करमली भी इन्हीं लोगोंके दु:खोंसे द्रवित हैं। 'वंशकुळाचें देणें' काव्य संग्रहका समय १९७४-१९८५ दिया गयाहै। हिन्दी साहित्यकी तुलनामें २०-२५ वर्ष पश्चात् कोंकणी काव्य जगत्में वे ही स्वर उजागर होतेहैं—

> "हमारे युद्धका अंत नहीं/हमारा-जीवन/जलती आग जैसे शांत होतीही नहीं।"५

'अन्तहीन कहानी' कवितामें—

> इस कहानीको पर्वतोंकी गवाही है/इस कहानीका दु:ख कालजयी नदीसे नहायाहै,/इस कहानीका विष समंदरने पचाया है/इस कहानीमें जयको आकाशने बाँधाहै।

कविने हम सबको इसी कहानीके प्रतीकात्मक पात्र माना है। पूरी कहानी समाजके सार्वनामिक पात्रों द्वारा, समाजके लिए लिखी हुई रचना है।

कलाकारका रचमा-संसार प्रेमकी अनुभूतिको भी संजोये हुए होताही है। पर ये गीत सिर्फ जीवनकी आशा-निराशाको संजोये हुएहैं, जिसकी अभिव्यंजना भी सतही है। इसे न तो मानवीय चेतनाके अंतर्गत रख सकतेहैं न सार्वभौम दृष्टिमें रख सकतेहैं। हिन्दी साहित्यमें नयी कवितामें आजके परिवेश-बोधके कारण जो बौद्धिकता और रागात्मकता है वैसी अभिव्यक्ति पूरे कोंकणी काव्यमें बहुत कम हुईहै। नागेश करमली की कविता भी प्रणयकी अभिव्यंजना तो करतीहै पर

जीवन संबंधी कोई चिन्तन उभरकर नहीं आता। संभवत: सीमित जीवनकी ये अनुभूतियां हैं जिनका स्थायी महत्त्व नहीं है—

> "…इस व्याकुल बेलामें/हमारे आलिंगनमें/तुम्हें मेरा/मुझे सिर्फ तुम्हारा/एक साथही बहुत है/एक ही साथ…(पृ. ४९)

इसी प्रकार—

> …बन बनमें/मन मनमें/हृदयकी कोयल कूक रही है/ कण कणसे/तृण तृणसे/अंतस्तलसे झरना प्रवाहित हो रहाहै। (पृ. ४५)

'वंशकुळाचें देणें' में कवि राष्ट्रीयताका गान भी करतेहैं। मातृभूमिको पुकारते हुए कवि कहतेहैं :

> हे मातृभूमि मेरी/मुझे स्नान कराओ/मेरी प्यास को गंगाके प्रवाहसे तृप्त करो/तथागतकी करुण रसधारमें/ले चलो मुझे/विंध्याचलकी तलहटीमें/नर्मदाकी परिक्रमाके बाद/कृष्ण कावेरी गोदावरी के जलप्रवाहमें/झनझनाओ मेरी वीणाके तार/कन्याकुमारीके त्रिसिंधुमें नत मस्तक मैं/अपने हृदय के स्नेहसे/मुझे बुद्धि दो/ब्रह्मपुत्रके आंगनमें/किसी का भी शब्द गुमनाम मुझें खोजकर दो/सह्याद्रि के मूल उत्समे…

कलाकार अपने क्षेत्रके अनुसार अपनी कलाको कलाके माध्यमसे व्यक्त करताहै। मूर्तिकार मूर्तिके माध्यमसे, चित्रकार चित्रके माध्यमसे, स्थापत्यकार स्थापत्यके माध्यमसे, संगीतकार संगीतके माध्यमसे अपने संवेदन अभिव्यंज़ित करता रहताहै। साहित्यकार अपनी अभिव्यंजना भाषाके माध्यमसे करताहै और काव्यका काव्यात्मक रूप रचताहै। जीवंत भाषा जीवंत विचार है। प्रत्येक शब्द अपने-अपने संदर्भमें बहुलता लिये रहताहै, जिसे रचनाकार चयन कर नये आविष्कार करता रहताहै। भाषाकी सृजनशीलताके पीछे भी सामाजिक सृजनशीलता ही होतीहैं। रचना, रचनाकार और समीक्षक एक दूसरेको इन्हीं संदर्भोंमें समझनेका प्रयत्न करतेहैं।

कवि नागेश करमलीकी भाषा अत्यन्त सरल और जीवनके निकटकी भाषा है। इनमें वर्णनात्मक अनुभूति अभिव्यंजित होतीहै। संवादात्मकता नहीं है, प्रकृति से आलंबन लेकर उसे व्यक्त करतेहैं—

> फूलोंके साथ खिले और सुगंधित हों/लहरोंके साथ लहरायें/जीवनसे जीना सीखें/जीवित संदर्भोंको खोजें/गीत मनुष्यताके गायें (मनुष्यताका गान)।-

शैलीका वैविध्य साधारणतया अभाव कोंकणी काव्यमें परिलक्षित होताहै। कवि नागेश करमली भी इसके अपवाद नहीं है। लयात्मकता और तालात्मकता इनकी कविताकी बिशेषता है, कभी-कभी लय तोड़ते भी है। आनन्दसूक्त कविता (पृ. ३ में)

> "मुक्त, विमुक्त/दिकां दिकांतल्यान रचून येवं एक/आनन्दसुक्त मनमेंकळया/मनीसपणाचें रूप अपरूप एक दिव्य/भावमुक्त, मुक्त, विमुक्त।"

> मुक्क/विमुक्त/दशों दिशाओंसे/रचकर आयें/एक आनन्दसूक्त/मनमुक्त/मनुष्यताका रूप अप्रतिम एक दिव्य भावयुक्त/मुक्त विमुक्त।

और—

> सांध्यवेलामें/की शीघ्रता हमने/पर/लौटती हवा/बहुत दूर चल पड़ी/हमें ही देरी हुई।

भाषा सपाट है। वक्र प्रयोग, प्रतीकात्मकता, बौद्धिक स्तर या आधुनिक संवेदनके दर्शन नहीं होते। भाषा निरूपित स्वरूपके साथ कवितामें अलग अलग वृत्त निर्माण करतीहै, एक वर्तुल परिधिमें दूसरा वर्तुल निर्माण होताहै, जैसे—

> "कल एक गाँव जल गया/उसके पहले/उसके पास वाला गांव/और उसके पहलेभी/उसके पासवाला/—और इस प्रकार गांवके गाँव जल गयेथे।"६.

जैसे पूरेके पूरे गांव जलनेकी जलन विस्तृत होती रहतीहै और घटनाका वृत्त दूसरा बोध निर्माण करता है। इस प्रकारकी संवेदना या अभिव्यंजना पूरे काव्य संग्रहमें अभिव्यंजित नहीं होती।

एजरा पाउन्डके अनुसार 'बिंब विधानवाली एक भी रचना जीवनभर के बिंब-विधान शून्य लेखनसे श्रेष्ठ और महान् है। पर कोंकणी कविताके संदर्भमें इस विधानको परखनेका प्रयत्न किया जाये तो प्रतीत होताहै कि कविताकी कविता—पूरे काव्य-संग्रहमें कभी-कभी एक या दो सपाट-से बिंब मिल जातेहैं। वहां बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता शब्दही बिल्कुल अपरिचित-सा है।

एक दृश्य-बिंब है :

> मुंहपर ढक लेतीहो आंचल,
>
> ज्यों डूब रहे रविपर बादल७

जो बात मुंह ढकना, आंचल लेनामें है, रविपर बादलका गत्यात्मक रूप, मानवीय क्रिया और प्राकृतिक

का बिब जैसे तुलनात्मक रूपमें गतिका परिचालन कर रहेहैं, वह सघनता कोंकणी काव्यमें बहुत कम पायी जातीहै।

कोंकणी काव्यके कुछ हिन्दी रूपान्तरोंसे इस स्थिति की ओर ध्यान खींचाजा सकता है :

मस्त चांदनीमें सागरकी लहरोंपर
कौन यह नौका अपनी पतवारमें हवा भर रहीहै ?

× × ×

एक उगता सवेरा/एक बुझती शाम /बीचमें दाहक दोपहर/यहां वहां तुम्हारी एक पुकार/मनमें उठती है/जैसे सुगंधित पुष्प हाथमें ।

जो बिब उभरताहै वह चौथी पंक्तिमें आकर जैसे क्षीण हो जाताहै । अनुभूतिकी प्रभाती कोमल किरणें, बुझती शामकी उदासीसे जीवन संध्याका चित्र उभरता है, यौवन पूरा दाहक, तुम्हारी यादकी पुकार जैसे खिला एक सुगंधित पुष्प अर्थात् प्रातः और सायंकी उदासी बीचकी दाहकता यादोंकी आवन-जावन और यादोंकी मधुरताका आभास दे जाताहै, पर यही याद मनमें कहीं टीस उभारती प्रतीत नहीं होती । फूलका महकता स्पर्श है पर कांटेकी चुभनका दर्द जैसे अदृश्य है ।

कोंकणी काव्यमें प्रतीकोंका सबसे अधिक प्रयोग कवि रघुनाथ विष्णु पंडितने कियाहै । भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रतीकोंका प्रयोग उनकी कविताका आकर्षण है । नागेश करमलीने अपने काव्यमें प्रतीकोंका अधिक प्रयोग नहीं कियाहै । फिरभी इनकी कवितामें पारिजात के पेड़का प्रतीक देखें—

हमारे सपनोंके सुंदर सुंदर नगर/ वे क्षण क्षणमें उद्ध्वस्त करते रहतेहैं/हमने जो लगायाथा परिजातका पेड़/उसके झड़े फूल वही लोग कुचलकर जातेहैं/और इसीलिए हमें अपने गीत खुद गाने पड़तेहैं ।

जिन लोगोंने संघर्ष कियाहै उनको श्रेय नहीं मिला । इसलिए कवि वृक्षके प्रतीकके माध्यमसे विसंगतिको दर्शाताहै। पेड़के झड़ें फूलोंको कुचलकर चलते बननेमें जो क्रूर व्यवहार है उसीको कवि व्यक्त कर रहेहै ।

विचार शैलीके स्तरपर मिथक मानवकी आदिम भाषा ही ठहरते हैं और सभी संस्कृतियोंमें इसकी बातें प्रायः मिलतीहै । आजके हमारे अत्यधिक उत्तेजना प्रवण जीवनमें संत्रास और घुटन भरे हुएहैं । मूलभूत समस्याओंको मिथकके संदर्भोंमें उठाया जाताहै और समाधान भी खोजाजा सकताहै । समाज और मिथकका संबंध होताहै तो मिथक भी सामाजिक हो जातेहैं ।

मिथकके तत्त्व भाषा रूप होतेहैं और भाषा समूहकी होतीहै । कवि राधा-कृष्णका मिथक प्राकृतिक संदर्भोंमें व्यक्त करतेहैं । राधाका कृष्ण वर्षाकी धार बनकर खेतोंमें बरस रहाहै, वही धारा कण-कणमें रच-बसकर बीजके रूपमें पल्लवित हुई, धरतीको हरितिमा, श्रावण मासमें उसीसे प्राप्त हुई, प्रेमका गान गाते हुए वही खेतोंमें धान उगा रहाहै —

वही राधाका कृष्ण एक : /हर रूपमें
'आंखमिचौनी खेलताहै /वह पापन
बिचारी लज्जासे दौड़ती, /प्यारसे भागती /
खोजतीहै उसे/आंखें मींचकर ही / अवभी अनराधार अश्रुधारामें —" (पृ- ५७)

पौराणिक प्रतीकोंके माध्यमसे कवि बर्तमान संदर्भ में व्याख्या करताहै तथा मूल्यों और नये मूल्योंके संदर्भ में उसे व्यक्त करताहै । आद्य बिबोंकी यही विशेषता होतीहै । ये आदि बिब मनुष्यके चिन्तन और संवेदनके मूलसे संबंधित रहतेहै । इनके साथ मनुष्यका परंपरागत, आनुवंशिक और संस्कृतिक संबंध रहताहै । इसलिए इनमें दुहरी शक्ति होतीहैं, एक ओर ये बिब अतीतकी धारणाओंसे रूप-आकार-शिल्प ग्रहण करतेहैं तो दूसरी ओर इनमें वह रचनात्मक शक्ति सुरक्षित रहतीहै जिससे भविष्यके निर्माणमें मनुष्यको सांस्कृतिक सहायता मिलतीहै ।"७

किसीभी देशके साहित्यमें काव्य नये नये रूप लेकर प्रकट होता रहताहै । कोंकणी काव्य भी अपने गतिशील परिवेशमें विकासोन्मुख होगा, यही कहाजा सकताहै ।

संदर्भ

१. 'वंशकुळाचें देणें, प्रस्तावना, (ले. नागेश करमली)
२. उपर्युक्त पृ. ३६
३. 'आजके लोकप्रिय कवि' (संपादक, मन्मथनाथ गुप्त, पृ. ८०)
४. 'अनामिका', (कवि : निराला]
५. 'वंशकुळाचे देणें', (पृ. १७)
६. 'कविताका जन्म'(ले. कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह)
७. 'काव्यानुशीलन आधुनिक अत्याधुनिक' (डॉ. कुमार विमल) पृ. १३५ ।

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

संस्कृत-महाकाव्य-परम्पराका समर्थ पोषक एवं कीर्तिवाहक महाकाव्य

भीष्मचरितम्

रचनाकार : डॉ. हरिनारायण दीक्षित

समीक्षक : अभिराज राजेन्द्र मिश्र

स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्योंकी परम्परामें कवि-श्रेष्ठ डॉ. हरिनारायण दीक्षित प्रणीत भीष्मचरितम् नवीनतम उपलब्धि है। डॉ. हरिनारायण दीक्षित, जो स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत रचनाकारोंके बीच, हनुमद्दूतम् तथा मेनकाविश्वामित्रम् जैसी काव्य एवं नाट्य कृतियों द्वारा, एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकेहैं इस महाकाव्यके यशस्वी कवि हैं। अपनी कवित्व-कण्डूतिके प्रशमनार्थ कविने जब कथावृत्तोंकी खोज की तो उसकी दृष्टि भीष्मचरितपर पड़ी। कविने स्वयं भूमिकामें स्वीकार कियाहै कि भीष्मके चरितने उनके अन्तर्मनको बुरी तरह झकझोर दियाथा फलतः वह एक सारस्वत-सम्मोहनकी मनोदशामें काव्यरचनामें प्रवृत्त हो उठा।

दैवी प्रेरणासे काव्यरचनामें प्रवृत्त होना कोई नया प्रस्थान नहीं है। प्राचीन संस्कृत कवियोंमें भी अनेकने इसी प्रकारकी दैवी प्रेरणाको अपने कविकर्मका हेतु स्वीकार कियाहै। आचार्य मम्मटने तो काव्यप्रकाशमें 'शिवेतरक्षति' को काव्य हेतु स्वीकारकर मानो इस सचाईपर मुहर लगा दीहै। महाकवि त्रिविक्रम भट्ट द्वारा मात्र एक सप्ताहमें नलचम्पूकी रचनाकर डालना भी भगवती सरस्वतीके वर प्रभावका ही प्रतिफल माना जाताहै।

परन्तु यह स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर अन्य महाकाव्यकारोंने, प्राचीन लक्षण शास्त्रकारोंके जिन काव्यप्रणयन-बन्धनोंसे मुक्त होकर ही रचनामें प्रवृत्त होनेका साहस कियाहै, डॉ. दीक्षितभी उन्हींमें से एक हैं। 'एक वंशभवाभूपाः कुलजा बहवोऽपि वा' की अन्विति भीष्मचरितम्में भी नहीं है। कथानायक भीष्म राजकुमार हैं, भाइयों तथा भ्रातृपुत्रोंके संरक्षक हैं, वंशधरोंके पितामह हैं इसके अतिरिक्त भी वे अपने युगके महाधनुर्धरः महाप्रतिज्ञापालक, महासत्यवादी, परन्तप, महाभागवत तथा धर्मकी गहनगतिके अप्रतिम वेत्ता एवं व्याख्याकार भी हैं। परन्तु इन सारे दुर्लभ सद्गुणोंके होते हुएभी महाकाव्यका नायक होनेकी अनिवार्य अर्हता 'उदात्त-भूपत्व' उनके पास नहीं है। अतएव काव्यशास्त्रीय दृष्टिसे उनका महाकाव्यनायकत्व संभव एवं सम्मत नहीं है।

यह कठिनाई नवयुगीन सभी महाकाव्यकारोंके समक्ष आयी है और प्रायः सभी रचनाकारोंने लक्षणकारोंकी महाकाव्य-परिभाषाओंको श्रद्धापूर्वक अस्वीकार करते हुएही काव्य रचना कीहै। पिछले दशकके अनेक महाकाव्योंमें युगापेक्षित स्वतंत्र रचनाधर्मिताका अवलम्बन दृष्टिगोचर होताहै। बिना ऐसा किये लेनिनामृतम्, टॉल्सटॉयचरितम्, बलदेवचरितम्, स्वातंत्र्यसम्भवम्, जानकीजीवनम्,, गणपति सम्भवम्, वामनावतरणम् आदिकी रचना कथमपि संभव नहीं हो सकतीथी। नायक विषयक स्वातंत्र्यके साथही साथ इन महाकाव्योंमें अन्यान्य शास्त्रीय देशनाओंको भी युगानपेक्षित तथा अनुपादेय मानकर छोड़ दिया गयाहै, जैसे षड्ऋतु वर्णन, कामोपभोग वर्णन आदि। 'सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त वासराः' आदिको भी नवयुगीन कवियोंने,

कथानुरोधको दृष्टिमें रखकर ही वर्णित कियाहै न कि शास्त्र-निर्देशानुपालनजन्य विवशताके कारण।

इस प्रकार डॉ. दीक्षित प्रणीत भीष्मचरितम् एक शास्त्र-बन्धन-मुक्त महाकाव्य कृति है जिसके नायक भीष्म एक महामहिमाशाली सत्पुरुष हैं जिनके तीर्थ-राजायित व्यक्तित्वमें पराक्रम, सत्यसन्धत्व एवं धर्म-निष्ठाकी त्रिवेणी प्रवहमान है। सम्पूर्ण महाकाव्य महाभारतमें वर्णित भीष्मकथाकी पुनरावृत्ति प्रतीत होताहै। वर्णनात्मक भावसम्पत्के अतिरिक्त कविने अपनी ओर से कोई नया कथांश नहीं जोड़ाहै। फलतः सम्पूर्ण महाकाव्य 'प्रकरणवक्रता' से मुक्त है। महाभारतका अनुकरण इतना अव्यवहितपूर्व है कि रचनाकार 'शान्तनु-देवल संवाद' जैसे मूल कथांशको भी नहीं छोड़ सकाहै। पुराणकार महर्षि वेदव्यासके प्रति अपनी अधमर्णताको कवि पूरी तन्मयतासे स्वीकार भी करताहै—

अथाधुना व्यासमुनिं महाकविं
पुराणकर्तारमहं मुहुर्मुहुः
प्रणम्य भीष्मस्य लिखामि जीवनं
करोमि चाशां स दिशं प्रदर्शयेत् ।।

भीष्म चरितम्का कथा विस्तार भी कम नहीं। भीष्मजन्म तथा भीष्मावसान अर्थात् नायकके जन्म एवं मरण जैसे दो महान् दशाविपर्ययोंके बीच व्याप्त है यह कथानक। और यह विस्तारही कविको बाध्य करता है कौरवों-पाण्डवोंके समूचे संघर्षको, संक्षेपमें ही सही, अन्तर्गर्भित करनेके लिए, क्योंकि महामहिम भीष्मकी मृत्यु महाभारत युद्धकी आत्यन्तिक समाप्तिके बाद ही होतीहै। इस दृष्टिसे देखनेपर भीष्मचरितम् पृथुल-कलेवर महाभारतका उपाख्यानादि रहित एक काव्य-संस्करण प्रतीत होताहै जिसके २० सर्गोंमें सम्पूर्ण महाभारत संकेतित है। फिरभी कविने विवेकसे काम लिया है—कौरवों तथा पाण्डवोंके युद्ध-पूर्व सम्पूर्ण जीवन चरितको मात्र एक ही सर्ग (त्रयोदश] में समाहित करके।

वस्तुतः महानायक भीष्मका सम्पूर्ण जीवन दोही कालखण्डोंमें महिमा एवं ख्यातिका संस्पर्श करताहै—एक तो अपने पिताश्री महाराज शान्तनुके जीवनमें और दूसरा कुरुक्षेत्रकी समरभूमिमें। प्रथम कालखण्डमें भीष्म गंगापुत्र कुमार देवव्रत हैं जो प्रजाजनोंके हृदय चिन्तामणि हैं। वे महाधनुर्धर भगवान् परशुरामसे शस्त्र शिक्षा ग्रहण करतेहैं, युवराज पदपर अभिषिक्त होतेहैं और अन्ततः पितृ सुखके लिए आजीवन अखण्ड ऊर्ध्वरेतस्त्वकी प्रतिज्ञा करके 'भीष्म' के रूपमें लोक विश्रुत होतेहैं। यह सम्पूर्ण वृत्त कविने महाकाव्यके प्रथम दस सर्गोंमें उपनिबद्ध कियाहै।

दूसरा कालखण्ड कुरुक्षेत्रके समरांगणमें पर्यवक्षित है जिसमें महाबलि भीष्म कौरव सेनाके प्रथम सेनापति नियुक्त होतेहैं तथा अर्जुनके आग्नेय बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर शरशय्याकी शरण ले लेतेहैं और भगवान् सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षामें अपनी जिजीविषा संजोये रहतेहैं। महाभारत-युद्धकी समाप्तिके अनन्तर वे इसी शरशय्यापर पड़े-पड़े अपने समर-विजयी पौत्र धर्मराज युधिष्ठिरको राजधर्म (सप्तदश सर्ग) प्रजाधर्म (अष्टादश सर्ग) तथा मोक्षधर्म (एकोनविंश सर्ग) का सारगर्भित उपदेश प्रदान करतेहैं। दूसरे कालखण्ड की कथा कविने चतुर्दशसे विंश सर्ग तक उपनिबद्ध की है।

मध्यवर्ती तीन सर्गों (एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश) में भीष्मचरितका कोई समुज्जृम्भण प्रकट नहीं होता। इन सर्गोंमें वह मात्र जीवनयापन करतेहैं—एक मूक साक्षीके रूपमें, वंशसंरक्षकके रूपमें, दायित्वानुभवी कुलपुरुषके रूपमें। सम्पूर्ण महाकाव्य कथानकमें भीष्मका सन्दर्भ अन्यान्य सन्दर्भोंसे अन्तर्निबद्ध है। अपने कौटुम्बिक परिवेषमें वे गुरु परशुराम, पिता शान्तनु, माता गंगा, विमाता सत्यवती, वैमातृक बन्धुजन चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य तथा उनकी सन्ततियोंसे सीधे सम्बद्ध हैं तो सामरिक परिवेशमें वे गुरु द्रोण, कृपाचार्य, दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रों, कर्ण तथा पाण्डव बन्धुओंसे साक्षात् जुड़ेहैं परन्तु कौटुम्बिक तथा सामरिक सन्दर्भोंसे भी कहीं अधिक बलवान् प्रतीत होताहै उनका पारलौकिक आसंगभाव जोकि परमेश्वर विग्रहभूत नन्दनन्दन कृष्णके प्रति है। इस सत्यका मर्मोद्घाटन कविने बड़ी निष्ठाके साथ बीसवें सर्गमें कियाहै—

योगीव योगेश्वरनेत्रयोः पुरः
योगं समास्थाय स योगमर्मवित्।
उत्थापयामास वशीकृतानसून्
क्रमेण मूलादखिलान् शनैः शनैः ।। २०.४३ ।।

महाकाव्य रचनाके उद्देश्य अनेक होतेहैं। प्राचीन कवियोंमें मुख्यतः दो परम्पराएं विशेष महत्त्वपूर्ण रहीहैं एक तो यशःप्राप्ति और दूसरी आश्रयदाता नरेशका

यशोवर्धन । यदि रघुवंश, कुमारसम्भव तथा किरातार्जुनीय आदिकी रचना यश:प्राप्तिके लिए हुईहै तो नवसाहसांकचरितम्, विक्रमांकदेवचरितम्, कप्फिणाभ्युदयम्, धर्मशर्माभ्युदयम् तथा मधुराविजयम् आदिकी रचना नरपतियों अथवा व्यक्ति विशेषके गौरवख्यापन की दृष्टिसे । डॉ. दीक्षित ग्रन्थकी भूमिकामें स्वयं स्वीकार करतेहैं कि भीष्मचरितम्की सर्जना उन्होंने 'कवियश:प्राप्ति' को दृष्टिमें रखकर कीहै ।

परन्तु इस 'यश:कामना' से प्रेरित होते हुएभी कवि अपनी विनम्र अभ्यर्थनासे कविकुलगुरु कालिदास की वानीरवृत्तिका स्मरण करा देताहै—

मतिर्मदीया नहि पारदर्शिनी
न चापि विद्या मम तत्त्वबोधिनी ।
न वाऽनुकूला स्थितिरेव जीवने
तथापि कर्तुं कविकर्म कामये ॥ १.६
न कापि शक्तिर्मयि काव्यकारिणी
न लोकशास्त्रादिभवास्ति नैपुणी ।
न काव्यकारा अपि सेविता मया
परन्तु कांक्षे कविकीर्तिकौमुदीम् ॥ १.७

इस प्रकार, कविताका प्रारंभ पारम्परिक परिवेश में होताहै, जिसमें अशक्ति प्रदर्शन, पूर्व सूरियोंका मधुस्मरण, कुलदेवताकी अनुग्रह-कामना आदि आतेहै । इस पृष्ठभूमिके बाद ही प्रारंभ होताहै कथाका मूल प्रवाह । भीष्मचरितम्का प्रारंभ कवि भारतवर्ष तथा महाराज शान्तनुके साम्राज्य-वर्णनसे करताहै । वस्तुत: साहित्य शैलीकी दृष्टिसे भीष्मचरितम् एक 'प्राक्तन परम्परा-पोषक' महाकाव्य सिद्ध होताहै ।

महाकाव्यकी भाषा सरल तथा आर्जवयुक्त है । भाषिक चमत्कार तथा यत्नसिद्ध आलंकारिक छटाका ग्रंथमें प्राय: अभाव-सा है . परन्तु भावनात्मक संवादोंमें कथ्य-तथ्यकी गंभीरता तथा मर्मस्पर्शिताके प्रति रचनाकार पूर्णत: सजग है । गंगा और शान्तनुका संवाद अथवा शान्तनु-देवव्रतका संवाद इसका उत्तम प्रमाण है । इन अंशोंमें दाम्पत्य प्रणयकी कोमलता अथवा मर्यादाबद्ध वात्सल्यका उत्कृष्ट प्रकाशन हुआहै ।

सम्पूर्ण महाकाव्यमें गिने-चुने वृत्तोंका ही प्रयोग कविने कियाहैं । उपजाति तथा वंशस्थके प्रति कविका विशेष अनुराग है जिन्हें कई सर्गोंमें प्रयुक्त किया गया है। अन्य वृत्तोंमें प्रमुख हैं—द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलक, आर्या तथा वियोगिनी आदि ।

डॉ. दीक्षितकी वर्णन शैली प्रसन्न (गम्भीर) पदा ही प्रतीत होतीहै । भावोंकी अभिव्यक्तिमें कहीं कोई अवरोध नही । एक अभिप्रायको प्राय: अविभक्त तथा निकटस्थ पदों द्वारा ही प्रकट कर दिया गयाहै जिससे कि श्लोकान्वयमें कोई प्रत्यवाय नहीं उपस्थित होताहै । कहीं-कहीं काव्य, जानबूझकर, प्राक्तन सरणिका अनुवर्तन करता हुआ-सा दीखताहै, जो सहज न होते हुए भी शैलीकी मधुरिमाके कारण मनको बाँधताहै । महाकवि भट्टिके शरद् वर्णन (न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्) से मेल खाता एक पद्य यहां उद्धरण योग्य है—

न तद्गृहं यन्न विलासिनीयुतं
विलासिनी सा न बभूव योत्सुका ।
न सोत्सुका या नृपजं ददर्श नो
न साप्तलोका प्रशशंस या न तम् ॥
—भीष्म० ६.४७.

परन्तु अलंकार-सुषमाके प्रति कविका यह वैरस्य कहीं-कहीं 'अग्राह्य' भी प्रतीत होताहै । उदाहरणार्थ—

अकिञ्चनो हीनमतिर्भवन्नपि
करोमि काव्यं भगवत्कृपाश्रित: ।
उपानदाच्छादित पादमानवो
न याति किं कण्टकिते धरातले !! १.८.

यहाँ 'भगवत्कृपा' को 'उपानह' की समकक्षता प्रदान करना हीनोपमाका वैरस्य तो उत्पन्न ही करता कविकी 'अविचारित-अरमणीयताका भी प्रकाशन करता है । इसी प्रकार, कुछ औरभी सन्दर्भोंमें कविका कथौचित्य एवं बन्धशिल्पके प्रति ताटस्थ्य दृष्टिगोचर होता है जो महाकाव्यके वाङ्मयोत्कर्षका बाधक प्रतीत होता है ।

'देववाणी सुवास:' (डॉ. रमाकान्त शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ) के विस्तृत सम्पादकीयमें मैंने, अर्वाचीन संस्कृत कविताका सांगोपांग विवेचन करते हुए, इस दशककी गणना 'सुवर्णयुग' में कीहै । परन्तु साहित्य संरचनाकी वह सुवर्णता महाकाव्यकी अपेक्षा अन्य साहित्य विधाओंमें अधिक दृष्टिगोचर हो रहीहै । उसका कारण संभवत: यही है कि पौराणिक कथानकों में, कविको अपनी ओरसे 'बहुत कुछ' कहनेका अवसर नहीं रहताहै । फिरभी प्रतिभा-परिपाकसे समुल्लासित इस युगके अनेक महाकवियोंने उत्कृष्ट कोटिके महाकाव्य लिखेहैं जो मुद्रा, शय्यापाक, बन्ध, रीति, गुण, रस,

छन्द, बिम्बयोजना, अलंकार-सौन्दर्य तथा लोकवृत्ति आदिकी दृष्टिसे भी प्रशंसनीय हैं तथा महाकाव्योचित साहित्य सौष्ठवकी पूर्ण रक्षा करतेहैं।

भीष्मचरितम्में मुझे कविताका संवेदनापक्ष, कलापक्षकी तुलनामें अधिक रुचिकर तथा बलवत्तर प्रतीत हुआ। इस विषयमें स्वयं रचनाकार अथवा अन्य समीक्षकोंका मन्तव्य मैं नहीं जानता, परन्तु कविका आग्रह तथा अनुग्रह संवेदनाओंकी अभिव्यक्तिमें ही केन्द्रित प्रतीत होताहै। सप्तम सर्गमें वर्णित शान्तनुका वनविहार ऐसी ही अनुभूतियों एवं मार्मिक संवेदनाओंका प्रकाशन करताहैं। यह सन्दर्भ द्रुतबिलम्बित वृत्तकी मिठास तथायमककी श्रुति सुखद रमणीयताके कारण अपेक्षाकृत और आकर्षक बन गयाहै—

> न रमणी रमणीसुखमन्तरा
> जगति नैव सुखं लभते क्वचित्।
> स्वदयिताविरहाननपीडितं न
> सुखयन्ति जनं सुखहेतवः॥ ४.१४

प्रिया वियोगसे उन्मन शान्तनुका वनविहार दमयन्ती-विरहोत्तप्त नैषधके वनविहारकी प्रतिछाया प्रतीत होताहै। यहां अवसर नहीं हैं कि भीष्मचरितम्की भाषा, भाव, शैली आदिकी सविस्तार, सोदाहरण व्याख्या की जाये, परन्तु संक्षेपमें इतना कह देनाही पर्याप्त हैं कि प्रस्तुत महाकाव्य संस्कृत महाकाव्य-परम्पराका समर्थ पोषक एवं कीर्तिवाहक है। □

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

हिन्दी : काव्य

सृजनधर्मिता, मानवीय एवं सामाजिक प्रतिबद्धता और संघर्षशीलताका काव्य

रचनाकार : नन्द चतुर्वेदी

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

नंदबाबूके नामसे अपने पुत्र-पुत्रियोंके बीच पुकारे जानेवाले श्री चतुर्वेदीकी काव्य-यात्राका प्रारम्भ ब्रजभाषाके छन्दोंसे हुआ तथा अपनी गीति-क्षमताके विस्तार तक पहुंचनेके लिए प्रणय गीतसे आरम्भ रुमानियतभरे दृष्टि-बोधसे आगे बढ़कर सामाजिक प्रतिबद्धताका उन्मेष ग्रहण किया। परिणामतः उसकी काव्य-धारामें राष्ट्रकी स्वाधीनता और समाजमें आर्थिक विषमता जैसे विषयोंकी अभिव्यक्ति घनाक्षरी, सवैया, पदों, दोहोंके रूपमें स्थान पाती गयी और अपने यौवनत्वमें आकर वह अतुकान्त काव्याभिव्यक्ति बनी।

नंदबाबूका यह सृजनशील व्यक्तित्व मात्र कविका नहीं रहा, अपितु एक प्रखर चिन्तकका भी रहाहै. विचारधाराकी दृष्टिसे वे लोहियावादी रहेहैं। उनकी समग्र काव्यचेतनाका स्वरूप प्रारम्भिक रुमानियतकी पृष्ठभूमिसे उठकर सामाजिकतासे लगाव एवं नव-मानवतावादके विचारक-चिन्तककी परवर्ती काव्याभिव्यक्तिके रूपमें प्रतिष्ठापित होतीहै। इस रूपमें वे नव भाव-बोध सम्पन्न ऐसी कविताके रूपमें राजस्थानके विशिष्ट सर्जक बनकर शिल्पगत प्रयोगों, सूक्तिमयी भाषाभिव्यंजना, शैली-वैशिष्ट्यके माध्यमसे काव्य जगत् में अपनी पहचान बनानेमें पीछे नहीं रहेहैं।

नंदबाबूका यह कवि जितना चिन्तक एवं कवि है, उतनाही अच्छा गद्यकारभी हैं जो सम्पादक एवं समीक्षकके रूपमें अपनी पहचान बना सकताहै तभी उनका लेखकीय एवं वैचारिक सम्बन्ध देशकी अग्रणी पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्यिक संस्थानोंसे रहाहै। उन्होंने

शिक्षक होनेके नाते सदैव शिक्षा, दर्शन, राजनीति एवं साहित्यके क्षेत्रमें अपनी व्यापक मानवीय प्रतिबद्धताका परिचय दियाहै। उनके गद्यकारकी पहचान इसी रूपमें हमारे समक्ष आतीहै कि उनके निबन्ध संकलन "शब्द संसारकी यायावरी" पर राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च मीरा पुरस्कार उन्हें प्राप्त हुआहै। उनका सम्पादकीय कृतित्वभी ऐतिहासिक मान्यताएं समाहित किये हुएहै, हिन्दीकी महत्त्वपूर्ण त्रैमासिक 'बिन्दु' कीसफल सम्पादकीय टिप्पणियो, विचारोत्तेजक आलेखों, मधुमतीके सम्पादकके रूपमें प्रकाशित टिप्पणियां उन्हें सम्पादककी ही प्रतिष्ठा नहीं दिलातीं, अपितु अध्ययन की वाहन आन्तरिकताकी सार्थक अभिव्यक्तिके रूपमें प्रकट होतीहै। इसके अतिरिक्त, राजस्थानके कवि (हिन्दी : राजस्थान साहित्य अकादमीका प्रकाशन), सप्तकिरण (काव्य संग्रह), जयहिंद (समाजवादी साप्ताहिक) 'जनमत' आदिमें नंदबाबूके साहित्यिक, चिन्तक, विचारककी आलेखमयी छाप मिल जातीहै।

सत्तरवें वर्षमें उन्हें के. के. बिड़ला फाउण्डेशनके बिहारी पुरस्कारसे उनके एकमात्र काव्य संकलन "यह समय मामूली नहीं" पर अलंकृत किया गयाहै। यह संकलन उनकी षष्ठि पूर्तिके अवसरपर दस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआथा। पूरी अर्द्धशतीकी काव्य-सर्जनापरक यात्राके दौरान प्रकाशित एक कृति होना उनके 'छपास' की भूखकी कामनासे दूरीही दर्शातीहै, जबकि स्फुट रचनाएं देशकी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रहीहैं। संजगता और सम्वेदनशीलता उनके कवि-कर्ममें निहित लोहियावादी दृष्टि, समाजवादी चिन्तन और मानवीय मूल्योंसे संस्कारित होता दिखायी देताहै। यह स्पष्ट करनाभी अधिक समीचीन होगा कि उनका समाजवादी चिन्तन आयातित साम्यवादकी देन न होकर लोहियावादकी भूमिसे उर्वरित है। कवि जब भी समाजवादका सन्दर्भ काव्य सर्जनामें उठाताहै तो वह नितान्त भारतीय सन्दर्भोंमें विकसित चिन्तन (लोहियावाद) की सृष्टि होताहै, आयातित साम्यवाद नहीं होता।

'यह समय मामूली नहीं' संकलनकी तीसरी कविता शीर्षकपर आधारित इक्यावन कविताओंसे सम्पन्न है जिसकी भूमिका, समर्पण कुछभी कहें, ग्यारह काव्य-पंक्तियोंमें नंदबाबू कह गयेहैं कि—'नहीं, प्रभु! नहीं/ अपना प्रकाश देकर मुझे न रचो/इतनी कृपा न दो कि मैं तुम्हारी अनुकृतिही लगूं।' निश्चितही यह नंदबाबू की काव्य-यात्राके अन्तर्निहित उस प्रयत्नका उद्घोष है जो उनके संसार, संघर्ष और अनुभवकी एकरसता का अंश बनताहै (फ्लैप)। डॉ. प्रकाश आतुरके शब्दोंमें—उनका कवि अपने युगकी असंगतियों और विकृतियोंके परिणामस्वरूप फैलती हुई विराट रिक्तता के प्रति पूर्ण सजग है।' यही कारण है कि अपने सत्तरवें वर्ष तक की काव्य-यात्रामें उनकी कविता निरन्तर मानवीय प्रतिबद्धतासे जुड़े हुए उन सभी प्रश्नोंके साथ आतीहै जो परिवर्तनके पक्षधर बनतेहैं। उन्हींके शब्दोंमें—"किसीको तो छोड़ना ही पड़ेगा / छोड़नाही पड़ेगा यह सुख / उस नये पत्तेपर इस धुंधमें / बूंद तो है / सूर्यके भाग्यमें यह सुख नहीं है। पृ. ९)

नंदबाबू मानतेहैं कि—यह शताब्दी क्रूर लोगोंकी है। लेकिन हमारीभी है। यह युद्ध है / खड़े रहो (पृ. १०) क्योंकि विकल्प नहीं। "क्रूर मिजाजवाली सत्ताओंके साथ यारी नहीं करना और एक बड़ी समझदार और नैतिक दुनियां बनानेके लिए कृतिकार होगा। तभी वे कहतेहैं—सत्ताकी हार-जीत / यह दुःख हमारा नहीं / युद्धरत रहो / जिसे बदलना हैं बदलेगा (पृ. १०) फिर कविकी आस्था है—'यह कविता हारकी नहीं है / बल्कि फिरसे उन संकल्पोंको / दुहरानेकी है। जिसके लिए हम सब / इस क्रूर शताब्दीके सारे / मोर्चोंपर युद्धरत हैं। (पृ. १२) क्योंकि कविता जो जीवनकी सातत्य प्रेरणा और अन्तःसामर्थ्य बनकर आतीहै, वह कविके लिए—'सूर्य जबतक शेष है, तुम रोशनीका हिस्सा बनी (पृ. १६) रहोगी।

कृतिका शीर्षक जिस कवितासे लियाहै—उसमें कवि कहताहै कि विभिन्न कारणोंसे यह समय बहुत ही असाधारण है हमारे लिए और हमें तैयारीमें जुटना होगा ताकि नत्रमानवतावादी स्थितियोंकी स्थिरता रखी जासके। तभी कहताहै कवि—यह समय मामूली नहीं / भयाक्रान्त लोग भाषा व्यवहारके / सारे हिस्से को अपने पक्षमें करतेहैं / वे बोलते नहीं / ···अथवा —यह समय मामूली नहीं / जिन्हें पुराने कागज, वही-खाते / निकालकर देखने हों देखें / भूतकालमें बाप-दादोंके चेहरे / अच्छे लगतेहैं और जुड़ा हुआ / (पृ. १३) इसीलिए कवि वर्तमान युगकी विसंगतियों पर दृष्टि डाले बिना नहीं रह पाताहै। वह शब्दरहित दुर्घटनाके होनेके प्रश्नपर सोचताहै—सवालोंके उत्तर/

अफसरोंकी जेबमें हैं (पृ. १६) और…यह सरकारी कार्यालय है। जरा जल्दी करो / यह चक्की खुरदरा आटा पीसतीहै / तभी तमाम प्रार्थनाएं बदशक्ल हो जातीहैं (पृ. १८) लेकिन कवि इस स्थितिमें भी निश्चयपूर्वक मानवको प्रयासरत बनाताहै क्योंकि—यहांसे हम पीछे नहीं लौट सकते। एक भयकी खन्दकसे दूसरे भयकी / खन्दकमें गिरनेके लिए / —अतः यत्न करें—फाटक बन्द है / लेकिन जो एक हल्के धक्केसे खुल जाता है / उसे खोलें (पृ. २४)। कवि अपने निर्देश और सचेत करनेकी स्थितिसे 'मौसमकी हेराफेरी' होनेकी सम्भावना देखताहै—चलो अच्छा हुआ / सूरज अस्त होनेके पहले हम इकट्ठे हो गये / उनकी हत्याओं और चालाकीके / खेलको खत्म करनेके लिए (पु. २६) और अपने (मनुष्य) के अस्तित्वके प्रश्नसे, जूझनेका आह्वान करताहै—समय आगया है कि जहां भी हो / और जैसेभी हो / और जिनके पास हो /दोनोंके बीच / जख़्मोंमें/ अन्तड़ियोंमें / अपनी जिन्दगी और भविष्यको / निकाल लायें (पृ. ३०) ताकि 'यंत्रणाकी चादर ओढ़कर चलने' के स्थानपर हमारे प्रयासोंसे ही मनुष्यका अस्तित्व 'तेज चाकूसे छिली त्वचा होनेपर' भी 'कविताका अन्त' का अन्त नहीं हो पायेगा। यह कविता मनुष्यके दुःखोंकी लयके बीना निश्चित ही अस्तित्वमय जीवनका संकेत करतीहै।

कवि व्यवस्थाके प्रति एक आक्रोश लियेहै क्योंकि क्रूर मिजाजी सत्ताके साथ वह मित्रताका निर्वाह नहीं कर सकता। इसलिए उस लुब्ध मित्रताको नकारनेकी प्रक्रियामें कवि आत्मसाक्षात्कारी स्थितिमे शब्द चयन करनेकी सार्थकताके सम्बन्धमें सोचताहै—सबको पुकारताहै शब्द / गुजरतेहैं राजा और मंत्री / लोभी और अंधे और बहरे। सत्ताके रथके नीचे / दब पांव चलती है मृत्यु / …चलताहै ठीक वहीं शब्द (पृ ३६)। यही कारण है कि सही शब्दकी तलाश लिये कवि मनुष्यकी अस्तित्व-यात्राका आरम्भ कर कहताहै—अपने समयका अस्वीकार नरक है / मनुष्य वृक्षपर चिपका पत्ता नहीं है / …इसीलिए वह कहताहै कि—सन्नाटा यहीं टूटेगा / मोर्चेके लिए जमीन यहीं कटेगी (पृ. ४०)। इसीलिए अवरुद्ध इतिहासकी मरणासन्न ध्वनियोंके पास कुछभी शेष नहीं मानता कवि अतः अपने अस्तित्वोंकी खोजमें लोगोंमें संशय और प्रश्नोंके बावजूद दिन और रोशनी होनेके विश्वासको रेखांकित करताहै जो अपने आपमें सबसे अधिक अविश्वसनीय शब्द है (पृ. ४३) फिरभी—प्रयत्न करूंगा। रोशनीकी नावको इस तटसे / उस तटतक बांध सका तो बांध दूंगा (पृ. ४४)। शब्दमें अर्थकी व्याप्ति देखनेवाले नंदबाबूको सर्वाधिक पीड़ा यह है कि शब्दकी अर्थच्युति हो गयीहै और ऐसी स्थितिमें कविही अर्थकी सामर्थ्य ला सकताहै। तभी वह कहताहै—मेरी कविता ! ऐसे खिन्न और निष्फल समयमें / —एक गर्म शब्द, ईंट, पत्थर किसी भी तरह हो /यह प्राण रक्षाका समय हैं / अलंकरणका नहीं / मेरी कविता / ऐसे समय / जब आदमी असहाय है / तुम सार्थक रहो; शस्त्र रहो (पृ. ५३)।

वर्तमान समयकी अराजक स्थितियोंसे मुक्तिकी कामना करते हुए नंदबाबूका कवि कहताहै कि—मैंने फौजी अफसरोंके वक्तव्य और वसीयतनामामे पढ़ेहैं / बेचारे/यह तक नहीं लिख पाये कि उनकी कब्रपर किस रंगके / कौन-से फूल चढ़ाये जायें (पृ. ७८)। क्योंकि युद्धके परिणामस्वरूप—फिर एक घृणाका अंधा सर्प / उन्मत्त हो गयाहै। हमें फिर अपनी घाटियोंमे / बारूद बिछानी पड़ रहीहै (पृ. ७९)। यह युद्ध—अंधे और आस्थाहीन भविष्यकी / एक जवान तलाश और सत्य / साथ-साथ मलवेके नीचे दबे मिलतेहै (पृ. ७४) इसी दृष्टिसे वियतनाम युद्धपर कवि कहताहै—सब अर्थ बेजुबान और गूंगे / और खरोंचे हुएहैं (पृ. ७३)। और यही स्थिति कवि हस्तिनापुरमें भी देखताहै—फ्लैश बैंक पद्धतिसे—हाहाकारमें डूबाहै हस्तिनापुर / पंक्तिबद्ध खड़ेहैं हतभागे लोग / अन्न और जल, जल और अन्न/ वे मृत्युंजयी कवच कहां गयेहैं (पृ. ७६)।

आस्थावान है कवि, जबकि पूरीकी पूरी व्यवस्थाने सम्पूर्ण आस्थाओंको हिला दियाहै परन्तु रचनात्मक चिन्तकके रूपमें कवि अपने सामाजिक लगावोंसे चूका नहीं है। यही कारण है कि कवि हताशामें नही जीता। उसकी आस्था है—मेरी पृथ्वी ? जबतक तुम गंधमयी हो। इस जन्म और मरणका / कोई अर्थ मैं पूछूंगा तक नहीं (पृ ७७) पर कवि तत्पर है—फिर फागुनकी हवा द्वार थपथपा रहीहै / …अब फिर तुम कहो तो / एक पलाश फूलोंका गुच्छा / आकाश तक उछाल दूं (गृ. ७८)पर अहसास भरी अन्य स्थितियोंको वह भूल नहीं जाता कि आज लोग भयग्रस्त हैं—मैंने कहा न /

उन्हें भय है / तुम उन्हें आदमी नहीं रहने दोगे सिर्फ । (पृ. ८३) । सारा संकट यही है कि कवि समाजकी संरचनामें आदमी और आदमियत बनाये रखनेके आग्रह बड़ी गहराई तक लियेहै जिसमें न कोई राजनीतिक पूर्वाग्रह निहित है और न फतवाबाजी वल्कि मानवीयता से संलग्नता या सन्दर्भ है ।

नन्दबाबूका कवि यथार्थ आधारित सत्य-चिन्तनसे जुड़ाहै किसी वाद विशेषके दावों, फतवों, नारोंसे नहीं । इसीलिए आजके राजतंत्र और वातावरणके बदलावोंके बीच घुमड़ते सत्यको रेखांकित करनेमें वह पूर्णत: सफल है क्योंकि वह अपने तथाकथित मेहरबानोंको सम्बोधित करते हुए कहताहै—'आदमीकी चमड़ीको/रूईकी तरह नहीं धुन सकते । औरतें कबतक अफीम बेचेंगी ?/औरतोंकी टांगोंका जिकर हो सकताहै न । लेकिन चौराहोंपर भूखका सवाल/चुपचाप जिबह नहीं हो सकता । (पृ. ८४) । समसामयिक सन्दर्भोंके प्रति भी उनका कवि निरपेक्ष नहीं रह पाना, हां, यह बात दूसरी है कि वे समसामयिक सन्दर्भ उनके लिए सहज रूपभी वैसाही अर्थ लेकर नहीं आते जैसे किन्हीं अन्य लोगोंके लिए । यही कारण है कि वह समसामयिक सन्दर्भोंकी सांकेतिकतामें से अपने भावोन्मेष ग्रहणकर कह उठताहै—संयोगसे आज फिर मैंने/मृत्युके दो प्रसंग पढ़ेहैं/एक ईसा और दूसरा मेलिन मनटोंका/··· मैं उन दोनोंके चेहरे पहचान सकताहूं/··· आह ईश्वर ! तब वे दोनों चेहरे/इस दर्द, मृत्यु और अन्धकारसे फिर उठेंगे (पृ. ८५-८६) । नन्दबाबू सख्त जबड़ेवाले धर्मपुत्रको सम्बोधित कर समसामयिक चेतनाके प्रतीकका प्रयोग करते हुए कहतेहैं—मुझें तुम्हारी त्वचा छू लेने दो/हां, वह काफी मोटी, खुरदरी और बन्ध्या हो गयीहै/कमसे कम पारदर्शी तो नहीं है (पृ. ८७) ।

नन्दबाबूका कवि वर्तमान तंत्रकी पूर्ववृत्तपरक यशगाथाकी गायनकी व्यर्थतापर दृष्टि डालताहै क्योंकि वर्तमान समय-सन्दर्भमें अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा एवं परायणतापर ध्यान देना उचित मानताहै तभीतो 'यात्रा' शीर्षकसे अपने मन्तव्यका उल्लेख करताहै कि—'यात्रा के प्रसंगोंमें/वे सब बताते रहे/भोगा हुई जिजीविषा/और उसका अन्त/···आखिर हुआ क्या/उन सन्दर्भातीत यात्राओंका/क्या हुआ ?/कुछ नहीं/....अन्तमें वे सब ज्ञानियोंकी तरह/शब्द निकालने लगें/फिर शब्दोंके निगूढ़ अर्थ । (पृ. ७९-९०) । साथही कवि शब्दोंके निगूढ़ अर्थ निकालनेकी व्यर्थताका संकेत करते हुए विदेशी आक्रामक संस्कृतिके प्रभावसे भयभीत न होने का संकेत देताहै कि—'फिलहाल इन सिलसिलोंसे डरो मत/उनके बाजारोंमें कुछ नहीं है/हमारी बीमार आकृतियोंके अतिरिक्त/पनडुब्बियोंमें वे क्या जा सकतेहैं/हमारी मृत्युके अलावा/···हमारी बसंत-ऋतु, शीतका हल्का रोमांच/वर्षोंकी तरोताजा भूमिगंध···यहां आकर रुक गयीहै/कुछ अपनी किस्मतसे नहीं/लापरवाही और अज्ञानसे (पृ. ९१) । इस लापरवाही और अज्ञानताका परिणामभी कवि जानताहै इसीलिए कहता है कि—'किन्तु ऋतुओंके सत्य, समयके सारे जन्म/हमारे कितने करीब हैं/हमारी त्वचाके नीचे सत्यकी नदी है/··· अपनी ऋतुके लिए कौन तलाश नहीं करता है पानी/अपने सुखके लिए कौन नहीं खोदताहै मिट्टी/अपनी यातना-मुक्तिके लिए मैं इतनाही कर सकताहूं/····एक मुट्ठी रेंत उठाऊं और बाहर फेंकनेकी कोशिश करूं । (पृ. ७२-९३) । कविकी सतत कामना मानवीयताके संरक्षक एवं सुरक्षाकी है और इसीलिए सिर्फ अपने लिए निर्धारित कर्म—एक मुट्ठी रेंतको बाहर फेंकनेके संकेतसे वह मानव मात्रकी सजग सक्रियताका आग्रही बनतीहैं तथा साहस जुटानेकी प्रेरणा देताहै । नन्दबाबूकी कविताकी यह व्यापक मानवीय प्रतिबद्धता निश्चित ही मानव संसारके उत्तमोत्तम स्वरूपके निर्माण की निष्ठाका गहरा सम्बन्ध दर्शातीहै । इस निष्ठाकी आग्रहशीलतामें वादपरक चिन्तनाका हिस्सा उतनाही समझा जा सकताहै जितना मानवीय सन्दर्भोंमें किसी भी जागरूक रचनाशीलताका होना चाहिये ।

नन्दबाबूकी मानवीय प्रतिबद्धता ही उनकी कविता की बुनावटका स्वरूप निर्धारित करती चलतीहै जिसका परिणाम यह होताहै कि—एक जड़ काव्य परम्पराको काटते हुए नन्द चतुर्वेदी कविताको वहांतक ले जातेहैं, जहां भाषा और कथ्य अलग-अलग नहीं रह जाते । उनके लिए कविता इतिहासकी अन्तर्ग्रंथित संश्लिष्ट जानकारीका अंग है तथा कविताकी सार्थकता समयकी पूरी प्रामाणिकताके साथ उसकी आन्तरिकताको प्रकट करनेमें है । (स्व. प्रकाश आतुर : राजस्थानके कृतिकार : ३०) इसी परिप्रेक्ष्यमें उनकी एक कविताकी अन्यत्र प्रकाशित उनकी रचनाकी पंक्तियां स्मरण हो आती है—''फैसला करो इस नर्कके दरवाजेपर/बैठें नहीं रहोगे/चलोगे दुर्भाग्यके मारें/लाखों लोगोंके साथ/लोभ और भय छोड़कर/एक बेहद तरोताजा दिनके

लए/और एक ईमानदार दुनियांके लिए।" इस उद्बोधनपरक रचनामें कविके रचनात्मक मानसका व्यापक फलक उसे मानवीय प्रतिबद्धताके साथ जोड़ताहै जो अटूट और अडिग है।

सामाजिक संरचनाका भौतिक प्रयास ही पर्याप्त नहीं होता अपितु सामाजिकताके अन्तहीन सोच, संलग्नता और यत्नशीलताकी अपेक्षा होतीहै। इस अपेक्षा को राजनीतिक दृष्टि अपने ढंगसे सोचतीहै और पराङ्मुखी भी होती जातीहै, परन्तु कविकी सम्वेदनशीलता कहीं विमुखता, अनुर्वरता और जड़ता पास नहीं फटकने देती। इस दृष्टिसे नन्दबाबूका काव्य संसार अपनी विशिष्टताका संकेत विभिन्न स्थलोंपर बड़ी गहनताके साथ करताहै तथा वह इसके लिए अपनी स्वायत्तता और आत्मसाक्षात्कारके धरातलपर आधारित देख पाते हैं तभी उनका 'मैं' कई कविताओंमें उभरता रहाहै कि —"तबतक मैं इस समयके बीचभी/और सारे प्रश्नोंके बीचभी/उस पेड़के लिए जो हजारों जड़ोंमें उगेगा/मेरे अन्दर, मेरे बाहर खड़ा रहूंगा प्रयत्न करूंगा। (पृ.४४) या—'मैं उसी मौसमकी तलाश/उसी मौसमकी रचना में/तुमसे कहूं न कहूं/लगा हुआहूं। (पृ. ५१)।" यही नहीं, दूसरोंसे अपेक्षा करते हुए जीनेके स्थानपर नन्द बाबूका कवि सजग एवं सतर्क संलग्नतामें विश्वास करताहै। तभी—'मुझे यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि/फिर वे क्या करेंगे/मैं तो केवल यही कहनेके लिए बार-बार आताहूं' (पृ. ५८)। यह सब मानवीयता के प्रति हार्दिकसे अधिक व्यवहारजन्य संलग्नता और कविता सर्जनाके प्रति दायित्व बोधका रेखांकन मिलता है। तभी तो कवि होने और न होनेके बीच मात्र चिंताका अस्तित्व पाताहै जिसके लिए—'आदमी भटकती हुई तीखी और उदास/सीढ़ियोंकी तरह/उतर जाताहै/गहरी और दृष्टिहीन खन्दकोंमें नीचे (पृ. ९४) और सत्य भी पहचानताहै इस परिणतिका—'उसके नीचे जलती हुई रक्ताभ लौ/एक मोमबत्ती/एक सवाल, नाकामयाबी/एक शब्द/और फिर कई जिन्दगियोंका नाराजी/टूटन, व्यर्थता, आक्रोश/और निःशेष' (पृ. ९५) यह सब सम्वेदनशील कविके काव्य संसारकी ईमानदार सच्चाई है जिसे रेखांकित करनेके लिए उसने अपना अप्रतिम शिल्प अपनायाहै तथा राजस्थानसे बाहर अपनी शैल्पिक अभिव्यक्तिकी पहचान बनायीहै। राष्ट्रीय हिन्दी कविताकी केन्द्रीय-धाराको राजस्थान का प्रतिनिधित्व करनेमें अपनी समर्थ अभिव्यक्तिका योगदान कियाहै नन्दबाबू ने। नन्दबाबूके ज्ञानका अनन्त विस्तार है और उसमें से ही वे सीपियोंके मोती टटोलते-टांकते हैं अपने काव्य संसारमें। इसीलिए वे कहतेहैं कि—ज्योतिषियोंसे भाग्य पूछनेकी जरूरत नहीं है/एक उखड़े हुए समुद्रको मुट्ठियोंमें बांधनेवाले लोग/नजर बचाकर चुपचाप चलतेहैं' (पृ. ९९) या फिर वे सभी—"लोग दीवार लगे/एक बड़े पोस्टरको देख रहे है/लेकिन उन्हें कुछ ऐसा लग रहाहै/जैसे दीवारपर लगा हुआ पोस्टर उन्हें देख रहाहै (पृ. ९९) पर पोस्टर और प्रचारके इस राजतंत्रमें सब कुछ हो जाने के बादभी अनुभवमें यही प्राप्ति होतीहै —'उन सबको यही तो दुःख है कि कुछ हुआ नहीं/एक पूरी जिंदगी वे रेतमें खड़े रहे।...लौट आये और फिर दौड़े' (पृ. वही) लेकिन अस्तित्व कहीं तो है—यह जानते हुए कवि कह उठताहै —'लेकिन कल सुबहही तो प्रकाशमें लोग/फिर पोस्टर पढ़ेंगे/कल फिर उन्हें कैसा लगेगा/यह सवाल मेरा नहीं है/बल्कि पूरे मौसमका हैं' (पृ. १०१) इसीलिए वह मनुष्यसे पूछताहै कि—"मैं पूछना चाहताहूं —/इस नगरमें कोई है/जो इन कब्रगाहोंके ध्वस्त/सुनसान रास्तोंसे निकले/किसीके लिए नहीं/एक नर्क-यातनासे मुक्तिके लिए" (पृ. १०२) और वह यह भी जान रहाहै कि जिस परिवर्तनकी दुहाई दी जातीहै जबकि—"कोई खास फर्क नहीं है/इन आदमियों और उनमें/...मेरा मतलब है/व्यर्थ है यह कहना/चेहरे बदल गयेहैं/या कि चेहरे रह ही नहीं गये हैं" (पृ. १०३) यही नहीं, सबके सब एक मुखौटों भरी जिन्दगीके अभ्यस्त हो गयेहैं तभी तो कवि कह उठताहै कि—"भाग्यके दरवाजेपर आदमी/बहुत पहले रक्त-तिलक लगा गयाहै/बेसाख्ता झूठ बोलनेवाले लोग; नेपथ्यसे बोलते रहेहैं/कामगृहसे लौटी रसिक सांवली-गोर/औरतोंके गलेमें रुद्राक्षकी मालाएं थीं।" लेकिन इतना सबकुछ देख-सुन और झेलनेके बाद भी कविकी दुर्दमनीय जिजीविषा श्लाघ्य है क्योंकि वह न तो अपने परिवेशसे कटताहै और न जमीनसे उतरताहै, पर चिंतन की सीढ़ियोंमें अपना काव्य-संसार रचाताहै कि—"मुझे अफसोस नहीं है/त्वराके पहियेपर बैठी हुई/बीसवीं शती के लिए। इस पुराने नाट्य-गृहमें बैठनेकी अपेक्षा/उस शहरसे गुजरना बुरा नहीं है/जिसकी सम्भावनाएं हैं।" (पृ. १०४)।

निस्संदेह नन्दबाबूके काव्य-संसारका अन्तःस्वर आत्म-चिन्तनपरक होकर भी सामाजिकता और मानवीयतासे निबद्धित होकर अपनी सर्जनात्मक ऊर्जाके चरमपर स्वांतःसुखाय न रहकर समाज सुखाय होकर ही व्यापकता धारण करताहै। इसीलिए साठवें वर्षकी पूर्तिमें प्रकाशित उनका दीर्घकालीन चिन्तन सर्जनाके निकषपर शहर और आदमीकी सम्भावनाओंका साक्षात्कार कराताहै। कवि वर्तमान विसंगतियोंके विविध परिदृश्योंसे घिरकर भी अपने रचनाकारकी अस्मिता तलाशनेमें पीछे नहीं रहाहै। तभी कहताहै कि—"मैं शब्दोंके लिए फिर जन्मताहूं/फिर-फिर प्रकाशित करना चाहताहूं/··· प्रेम और दर्द और अन्तरंग/लेकिन कोई कृति नहीं होती/सब तरफ स्वादहीन सृष्टि फैली रहतीहै" (पृ. ८२)।

वर्तमान युगकी सघन मायूसी और हताशाके विविध सन्दर्भोंमें नन्दबाबूका कवि संघर्षशील जीवन मूल्यों और जिजीविषाका अन्तरंग लेकर चलता है और इस चलनेमें यात्राकी अन्तहीनता और दीर्घता में दृष्टिहीन नहीं बनता अपितु दूसरोंके लिएभी दृष्टियका सहभागी बन जाताहै और सत्ताकी बेरुखी और नर्मिजाजीके मौसमके विरुद्ध एक शाब्दिक झण्डोत्तोलन करनेकी मसीहाई मुद्रामें शालीन और सतर्क कटाक्षोंसे अपनी बात कहनेकी सामर्थ्य उजागर करताहै और सावधानभी करताहै कि यह शताब्दी क्रूर लोगोंकी है। लेकिन हमारीभी है। इसलिए किसीभी पापका विचार किये बिना एक अच्छे भविष्य और नरक-यातनासे मुक्तिके लिए किया गया प्रत्येक प्रयास सार्थक होगा बशर्ते—"सत्ताकी हार-जीत/यह दुःख/हमारा नहीं/युद्धरत रहो/जिसे बदलना है, बदलेगा।" (पृ. १०)।

निश्चितही नन्दबाबूकी सृजनधर्मिता, मानवीय एवं सामाजिक प्रतिबद्धता और संघर्षके विरुद्ध पूर्वाग्रह रहित संघर्षशीलताके लिए यह सम्मान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना काव्यगत। सम्मान सम्मानार्थ है और उसका महत्त्व है कि राजस्थानके कृतिकारकी पहचानको एकबार पुनः गहराया गयाहै। नन्दबाबूका यह काव्य संकलन और स्फुट रचनाएं जीवन एवं आत्मीय अन्तरंगताके साथ सहज प्रतीकात्मकता और बिम्बात्मक विधानसे परिपूर्ण हैं कि कथ्यकी सामर्थ्यको औरभी गहन रूपमें दिखा देतीहै। नन्दबाबूने राजस्थान के इस दक्षिणांचलमें रहकर काव्यसर्जनाके धरातलपर अपने युगके ऐसे कबीरको ला खड़ा कियाहै जो बाजार में खड़ा होकर मानवीय प्रतिबद्धतासे सम्पन्न होकर सत्ता और शोषणका विरोध करते हुए खरी-खरी सुनाता है और अपनी यह खरी-खरी कहनेकी भाषा भी स्वयं गढ़ता है और उसका नया मुहावरा भी।

सभी काव्य-प्रेमियोंको उनके दूसरे काव्य संकलन 'पृथ्वी गंधमयी तुम' की प्रतीक्षा है। ☐

[के. के. बिड़ला फाउंडेशनसे पुरस्कृत]

भ्रमण वृत्त : गुजराती

प्रकृतिके बहिरंग वर्णन एवं लेखकीय व्यक्तित्वकी अन्तरंग झाँकियां

देवोनी घाटी

रचनाकार : भोलाभाई पटेल

समीक्षक : डॉ. पारुकान्त देसाई

डॉ. भोलाभाई पटेल गुजरातीके एक प्रशिष्ट, तत्त्वशील, संप्रज्ञ, विप्र लेखक हैं। विज्ञ ही विप्र होता है। प्रेमचन्दके शब्दोंमें कहें तो विप्र या ब्राह्मण कोई जाति, वर्ग या वर्ग-विशेष न होकर एक उच्चातिउच्च पद है जिसपर व्यक्ति कड़ी तपस्या और साधनाकी नैरन्तर्यतासे ही पहुंच पाताहै। ज्ञानरत, कलारत, साधनारत, विद्यापथचारी भोलाभाई पटेल अपने उन्हीं उत्सिक्त अर्थोंमें ब्राह्मण हैं और विद्या-विनियोगकी यात्रा में विनम्रता किन्तु दृढ़तासे, प्रतिश्रुततासे, जुटे हुएहैं कि प्रसादजीकी निम्न पंक्तियोंका स्मरण बरबस हो आता है—

"इस पथका उद्देश्य नहीं है
श्रान्त भवनमें टिक रहना;
किन्तु पहुंचना उस सीमा तक
जिसके आगे राह नहीं।"

साहित्यकारकी इसी अपराजेय आस्थाके साथ गुजरातीके यशस्वी कवि निरंजन भगत प्रणीत काव्य-रचना "प्रवाल-द्वीप" तथा "बोदलेरके नगर काव्यों" की विवेचनासे भोलाभाईकी शब्द-साधनाका प्रारंभ राजशेखरानुमोदित तत्त्वाभिनिवेशी आस्वादक-भावकके रूप में हुआ। गुजरातीके प्रज्ञा-पुरुष कवि उमाशंकर जोशी द्वारा संपादित "संस्कृति" में प्रकाशित एकही लेखने भोलाभाईको गुजरातीके प्रौढ़ विवेचकोंकी पंक्तिमें लाकर ससम्मान बिठा दिया। तबसे उनकी शब्द-यात्रा अविरत गतिसे चल रहीहै। "अधुना", "पूर्वापर", "कालपुरुष", "भारतीय टूंकी वार्ता", "आधुनिकता और गुजराती कविता", "अज्ञेय : एक अध्ययन" प्रभृति उनके विवेचन-ग्रंथ हैं जिनमें अंतिमको छोड़कर शेष सभी गुजरातीमें हैं। "अज्ञेय : एक अध्ययन" उनका हिन्दी शोध-प्रबंध है जो अपनी विशिष्टता, विरलता एवं शोध-प्रविधिकी सूक्ष्मता एवं नावीन्यताकी दृष्टिसे अज्ञेयपर लिखे गये अनुशीलनात्मक ग्रंथोंमें अपांक्तेय है।

"विदिशा', (१९८०), "पूर्वोत्तर" (८१),' "कांचनजंघा" (८५), "राधे तारा डुंगरिया पर" (८७), "देवोनी घाटी" (८९), "देवात्मा हिमालय' (९०), "बोले झीणा मोर" (९१), "शालभंजिका" (९२) आदि उनके ललित-निबंध एवं भ्रमणवृत्त (प्रवास-निबंध) हैं जिनमें पत्र, डायरी, संस्मरण प्रभृति काव्य-रूपोंका सुभग संगम हआहै। "सूरदासनी कविता", "रवीन्द्रनाथनी साहित्यसृष्टि", "अज्ञेय", "उमाशंकर जोशी" आदि उनकी परिचय-पुस्तिकाओंका संपुट है तो "विष्णु दिगंबर", "गुरु नानक", "शंकरदेव", "वनलता सेन", "समकालीन असमिया कविता", "संपत्तिनुं सर्जन", "स्वर्गनी नीचे", "बीजाना पग" (बिन्दु भट्टके साथ)' "पुरुषोत्तम", "चैतन्य महाप्रभु" (नगीनदास पारेखके साथ), "बंगाली साहित्यना इतिहासनी रूपरेखा", "चिदम्बरा" (रघुवीर चौधरीके साथ), प्रभृतिमें उनके अनुवाद-दुग्धपानका संकेत मिलताहै। उमाशंकर जोशी प्रणीत

"निशीथ" (जिसपर कविको कन्नड़ कवि पुटप्पाके साथ ज्ञानपीठ पुरस्कार सम्प्राप्त हुआथा) तथा "प्राचीनता" का गुजरातीसे हिन्दीमें अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त "गुजराती साहित्यनो आठमो दायको", "जीवननुं काव्य" (काका साहबके लेखोंका संचय) प्रभृति ग्रंथ उनके कुशल संपादकत्वके लिखित उद्घोष हैं। गुजराती साहित्य परिषद्के मासिक मुखपत्र "परख" का संपादन भी वे सन् १९७४ से अद्यावधि सम्यक् रूपसे कर रहेहैं।

उक्त ग्रंथ-सूचीसे भोलाभाई पटेलके विवेचक, लेखक, अनुवादक तथा संपादकके चतुष्कोणीय कृती-व्यक्तित्वका परिचय तो पाठकको असंदिग्ध रूपसे होगा ही, देवोनी घाटी" (देवोंकी घाटी) में सम्पूरित सत्त्वशील उर्वरकोंका अनुसंधान भी होगा जिनसे यह कृति संवलित व संवर्द्धित हुईहै, और साथही यहभी ज्ञात होगा कि भोलाभाईके लेखकका हिमगिरि जो साहित्यार्णवमें दृश्यमान है कितना अदृश्यमान व गहरा अथवा उच्चस्तरीय है, उनकी गणेशोदरा मेधामें क्या-क्या समाया हुआहै।

प्रस्तुत कृति "देवोनी घाटी" की विशेषता इस बातमें है कि वह एकमात्र "भ्रमणवृत्त" या प्रवास-वर्णन न होकर भारतीय साहित्य, संस्कृति व कलाका कूडल (त्रिवेणी) संगम-तीर्थ बन सकीहै। इसमें प्रस्तुत यात्राके साथ-साथ अनेक सूक्ष्म संचेतनात्मक यात्राओंसे उनके स्मृति-जलसे, पाठकका मानस निरंतर निमज्जित व स्नानित होता रहताहै। इसका प्रत्येक बांचन पाठकके मन और अतएव उसके धारक तन-देह को देवल बनानेकी क्षमता रखताहै, क्योंकि गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार रघुवीर चौधरीके एक गोष्ठीमें व्यक्त विचारोंके अनुसार जब ऐसे साहित्यकार हमारे देहमें निवास करतेहैं तब जाकर हमारा शरीर मन्दिर-रूप बनताहै। और भोलाभाईको धारण करनेका अर्थ है भारतीय साहित्य-भवनके एक बहुत बड़े कक्षको अपनेमें स्थित करना, क्योंकि यहां हमें मिलतेहैं रवि ठाकुर, जीवनानन्ददास, काज़ी नज़रूल इस्लाम, दिल्ली विश्वविद्यालयके टैगोर चेयरके प्रोफेसर शिशिरकुमारदास (बंगाली); कालीदास, माघ, जयदेव, भवभूति, भर्तृहरि, अभिनवगुप्त, आनंदवर्द्धन, शंकराचार्य (संस्कृत); उमाशंकर, सुरेश जोशी, सुरेश दलाल, सितांशु यशश्चन्द्र, प्रियकांत, हसमुख पाठक, लाभशंकर, काका कालेलकर, हरीन्द्र दवे शर्मा, गांधीजी, राजेन्द्र शाह (गुजराती); बसवण्णा/बसवेश्वर/, महादेवी अक्का, अल्लमप्रभु, के. वी. पुटप्पा, नरसिंहवैय्या, स्वामी आनंद, माधवन पिल्लै, शिवशंकर पिल्लै, फादर मार्क वाल्डर, मराठीके विद्वान् प्र. ना. परांजपे, निरंजन भगत, मलयाली उपन्यासकार तक्षी तथा महंमद बशीर, इन्सिटट्यूट आफ एडवान्स स्टडीकी निदेशिका श्रीमती मार्गरिट चैटरजी, रवीन्द्र संगीतके ज्ञाता तथा समृद्ध जीवनानुभवके धनी जस्टिस मसूद, गुजराती गोपकाव्योंका कवि राधेश्याम शर्मा, भारतीय संस्कृति एवं विशेषतः हिमालयके आराधक चित्रकार महर्षि निकोलस रोरिक, मलयालमके कवि और अंग्रेजीके अध्यापक अय्यपा पणिकर, कन्नड़ कथाकार यु. आर. अनंतमूर्ति, तमिल तज्ज्ञ का. ना. सुब्रह्मण्यम, पुरंदरदास, स्वामी विद्यारण्य, स्वामी रामानुजम तथा हिन्दीके साहित्यकारोंमें अज्ञेय, निर्मल वर्मा, डॉ. रघुवंश, सुमित्रानंदन पंत, कबीर और इनके अतिरिक्त व्यास-वाल्मीकि तथा बंगला, असमिया व उड़ियाके अनेकानेक संदर्भ। वस्तुतः भोलाभाई प्रोफेसर हैं हिन्दीके, लेखक हैं गुजरातीके और चाहक हैं बंगला और संस्कृतके तथा भारतीय संस्कृति, साहित्य और कलाके उन सभी मूल्योंके संतर्पक सत्त्वशील तत्वोंके अन्वेषक होना उन्हें अच्छा लगताहै। कालिदासका मेघदूत ही नहीं, विक्रमोर्वशीय नाटक तक वे बिना पुस्तक हाथमें लिये पढ़ा सकतेहैं। उनकी यह स्मृति-मेधा श्लाघनीय, है।

"देवोनी घाटी" से हमें इस बातकी प्रतीति होती है कि भोलाभाईने ज्ञातव्यको जानाहै, पहचानाहै, परचायाहै और बदलेमें अपने आस्वादक सहृदयोंको उससे सम्पन्न कियाहै। गुजरातके सुप्रसिद्ध दैनिक "संदेश" की संस्कार-पूर्तिमें (सन् १९८७, जुलाईसे सन् १९८८ फरवरी तक) "देवोनी घाटी" के विविध निबंध व पत्र धारावाहिक लेखमालाके रूपमें प्रकाशित होते रहेहैं। गुजराती पत्रकारत्व ऐसी प्रशिष्ट कृति दे सका है, एतदर्थ बधाईके पात्र है।

पुस्तक चार खण्डोंमें विभाजित है—शिमला डायरी, देवोनी घाटी, केरलपत्रम् और कूडल संगमदेव। प्रथम दो डायरीके रूप-बन्ध हैं और शेष पत्र रूपमें। यहां ये दोनों रूपबंध (जेनर) लेखककी कवि-प्रतिभाके

पारस-स्पर्शसे काव्यात्मकताको प्राप्त हुएहैं। डायरी २१ जून १९८७ से ३० जून १९८७ तक की और पत्र ३० अक्तूबरसे अनुमानत: एक महीनेके अंतरालमें लिखे गयेहैं। लेखकने ये पत्र अपनी प्रिय पत्नीके नाम लिखे हैं। समानधर्मा प्रिया-प्राप्ति हेतु लेखकके भाग्यसे ईषत् ईर्ष्या होना नैंसर्गिक ही समझा जायेगा।

प्रथम दो खण्डोंमें हिमालय स्थित हिमाचल प्रदेश के शिमला तथा कुल्लू-मनालीके नैंसर्गिक विराट् भव्य सौन्दर्यसे साक्षात्कारके साथ-साथ वहांके सांस्कृतिक-सामाजिक जीवनकी सूक्ष्म झांकियां हैं। इतिहास, दर्शन, पुरातत्त्व, काव्य-चेतना इन सबकी सहयात्राका अनुभव यहां पाठकको होताहै। दूसरे दो खण्डोंमें सुदूर दक्षिणकी भार्गवभूमि केरल तथा कूडल संगमदेवकी भूमि कर्णाटक की नैंसर्गिक-सांस्कृतिक यात्राओंसे पाठक द्रवित एवं अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता।

ये दोनों यात्राएं—उत्तर एवं दक्षिणकी—नैमित्तिक-यात्राएं हैं। गांधर्वनगरी शिमला स्थित समरहिल के इण्डियन इन्स्टिट्यूट आफ एडवान्स स्टडीमें २२ जून से २६ जून तक एक अखिल भारतीय सेमिनार तुलनात्मक साहित्यको लेकर हुआथा। तुलनात्मक साहित्यके एक तजज्ञ एवं अध्येताके रूपमें लेखक वहां निमंत्रित थे। कुल्लू-मनाली—देवोंकी घाटी—की यात्रा इसी निमित्तसे हुईथी। तो केरलके तिरूअनंतपुरम् (त्रिवेन्द्रम्) के बार्टनहिलपर ३० अक्तूबर १९८७ से एक त्रिसाप्ताहिक कार्यशाला एवं परिसंवादका आयोजन दिल्लीकी साहित्य अकादमी द्वारा संपन्न हुआथा जिसमें गुजराती, मराठी, सिन्धी, कोंकणी, तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ आदि आठ भाषाओंको (विशेषत:) लेकर भारतीय भाषाओंके पारस्परिक अनुवादके प्रश्नोंको व्यवहारकी भूमिकापर समझने-समझाने का उपक्रम था। जिसमें प्रत्येक भाषासे चार-चार प्रतिभागी तथा एक उस भाषा विशेषके अनुवाद-क्षेत्रके तजज्ञको निमंत्रित किया गयाथा। गुजरातसे प्राध्यापिका अनिला दलाल प्रतिभागीके रूपमें तथा डा. भोलाभाई तजज्ञ विद्वान्के रूपमें निमंत्रित थे। लेखककी कर्नाटक-यात्रा (कूडल संगमदेव यात्रा) इसी निमित्तसे हुईथी। इस निमित्त गुजराती साहित्यको एक सुंदर प्रशिष्ट कृति मिलीहै। कभी-कभी सरकारी काम भी ऐसे सुफल दे जातेहैं।

वस्तुत: यह दो यात्राओंकी कथा है। उत्तरकी, दक्षिणकी। उत्तरमें शिमला तथा कुल्लू-मनाली है, दक्षिणमें केरल तथा कर्णाटक। दोनों यात्राओंमें लेखक की दृष्टि सौन्दर्याभिमुखी रहीहै। उत्तरमें हिमालयका, उसके अमल-धवल गिरि-शिखरोंका, विराटता-अनंतता-व्यापकताका, वृक्षराज देवदारू चिनार तथा अन्य अनेक पहाड़ी वृक्षोंसे निर्मित तरुगिरिका, उसकी हरीतिमाका सौन्दर्य है; तो दक्षिणमें नारिकेल. सोपारी, केल आदि सागर-वृक्ष; शंखमुखम्, कोवालम, वेली, कन्याकुमारी के सागरतट तथा उसके समुद्रो किनारोंसे जुड़े रुके पानी, धानाच्छादित शस्य-श्यामल सुजलाम् सुफलाम् धरतीकी विपुल सौन्दर्य-राशि। कुल्लू "देवोंकी घाटी" के अधिष्ठाता देव रघुनाथ राम हैं, जहां दशहराके दिन यहांके सभी देवी-देवताओंकी सवारियां उपस्थित होतीहैं जिनमें अग्रिम पंक्तिमें होतीहै यहांकी अधिष्ठात्री देवी हिडिम्बा (पृ.६१-७४); तो दक्षिण में है कन्याकुमारी, विवेकानन्द रोक, पद्मनाभ विष्णु, गोमटेश्वर, कूडल संगमदेव, श्रवणबेलगोला, शुचीन्द्रम्, चामुंडेश्वरी, श्रीरंगनाथ प्रभु, हडेबीड़ तथा बेलूरके मंदिर, हम्पीके खण्डहर, बेलूरके चेन्नकेशव मंदिरकी मदनिकाएं—कुटिलकुंतला, शकुनशारदा, शिवकेशी, वानरसुंदरी (९), गानमंजरी, शिलाबालिका तथा चिर-परिचिता शालभंजिका (पृ. १९०-१९१)—उनका सौन्दर्य जिसे लेखक देहोत्सवका महाकाव्य कहते हैं (पृ. १९२)—जयान्वित देहभंगीयुक्त मदनिकाएं और उनका कामरस; वहांके मोहिनीअट्टम, कुड़ियाट्टम, कथकली नृत्य—और सबारि ऊपर त्रिसागरसंगमकी भव्यता, दिव्यता एवं अनंतता। नगाधिराज हिमालय और सागराधिराज हिन्द महासागरके दर्शनोंसे महाकवि पंतकी पंक्तियोंका स्मरण हो आना स्वाभाविक ही कहा जायेगा—"सागरकी गहराई ऊंची / हिमगिरिकी ऊंचाई गहरी!!" (पृ. १२८) उत्तरी-यात्रामें लेखक की काव्य-चेतनामें अज्ञेय, पंत, रवि ठाकुर तथा कालिदास हैं तो दक्खिनी यात्रामें बसवण्णा और महादेवी अक्का हैं—दक्षिणके कबीर और मीराबाई। साथही संगीतकला, चित्रकला, नृत्यकला, शिल्पकला, इतिहास, दर्शन, पुराण आदिके अनेकानेक संदर्भ जुड़ते चले जातेहैं। उत्तरकी विपाशा तथा दक्षिणकी कावेरी का लेखकको मोह-सा है। काकासाहबकी भांति इस लेखकको भी नदियां प्राणातिप्रिय हैं। भारतीयताकी परम पहचान।

प्रस्तुत रचना "देवोनी घाटी" को मैं "जदुनाथ-चरितम्" की कृति कहताहूं। कृष्णके चरित्रमें सभी भक्तों, प्रेमियों, गोप-गोपियों व लोगोंकी अपने मनोनुकूल प्रवृत्ति मिल जातीहै; ठीक उसी भांति यहां सुरुचि-संपन्न पाठकोंको अपने मनोनुकूल दिशा प्राप्त हो जाती है। अजातशत्रु ऋजुमन श्रीभोलन (!) - दक्षिणके उनके मित्रों द्वारा लुंगीधारण क्रियापर प्रदत्त नाम—ने यहां सभीका विचार कियाहै। भात्रिक भक्तोंके लिए यहां पुराण-कथाएं हैं जिनमें हिडिम्बाकी कथा, परशुराम द्वारा परशुके प्रक्षेपास्त्रसे केरलतक की भूमिको सागर-मुक्ति दिलानेकी कथा, अनसूया द्वारा त्रिदेवोंको शिशु बनाये जानेकी कथा प्रभृति मुख्य हैं तो काव्य-रसिकोंके लिए "यों मत छोड़ दो मुझे, सागर/कहीं मुझे तोड़ दो, सागर/कहीं मुझे तोड़ दो।" (अज्ञेय); "घेर इज़ ओशन इन मी, /स्वेइंग, स्वेइंग ओ, सो डीप—" (लारेन्स); "मीलके मील गुज़र जातेहैं मेरे भीतरसे / दौड़ती ट्रेनमें (किन्तु) मैं स्थिर अचल (उमाशंकर) जैसी अनेकों काव्य-कंडिकाएं (उन मदनिकाओं जैसी) हैं जो उनकी चेतनाको शबनमी शीतलता दे सकता है।

प्रस्तुत "भ्रमणवृत्त" में लेखकने "आंखिनकी देखी" ही नहीं, "पुस्तकनकी पेखी" को भी लियाहै। उसमें आनेवाले कई संदर्भ उन्हें समृद्ध भावकानुभवके लेखकोंसे संलग्नित कर देताहै। रघुवीर चौधरीने "वैशाखनंदननी डायरी" (संदेश, दिनांक २९-१२-९२) में भोलाभाईकी निबन्धन-प्रतिभाके संदर्भमें लिखा था—"काका साहब कालेलकर, सुरेश जोशी, दिगीश मेहता आदि लेखकोंने गुजंराती ललित निबंधको अपने-अपने ढंगसे समृद्ध कियाहै। इसमें भोलाभाईके प्रवास-निबंधोंसे एक नवीन परिमाण जुड़ताहै। साहित्यिक संदर्भोंके विनियोगकी दृष्टिसे भोलाभाई जहां एक ओर सुरेश जोशीके साथ तो अपनी घुमक्कड़ वृत्ति और उसके विशाल अनुभवोंके कारण काकासाहब के साथ जुड़तेहैं।

भारतीय मीमांसा तो गद्यकारको भी कवि ही कहतीहै। भोलाभाई स्वयंको कवि नहीं मानते, लेकिन "देवोनी घाटी" में अनेक स्थलोंपर उनकी काव्य-दृष्टि एवं काव्य-चेतनाका परिचय हमें मिलताहै। वृक्षान्तर-लता, पर्वत-श्रेणियोंका कोहरेमें निंदियाना, विपुल सलिला विपाशा, श्वेतफेना विपाशा, रम्य रुद्र घोषा विपाशाका सिरहानेसे रात भर बहते रहना, शब्दायमान विपाशा, प्राचीन वृक्षराज, एक्ज़ोटिक स्पर्श' पहाड़ी सोपानिक खेतोंमें जलकी सोपानमालाकी रचना, विजयाका हास्य— मानो फुलका स-रव जरझरना, चांदनीका सेजकी एक कोरपर सो जाना, धानके खेतोंके बीच श्रमनिरत नारी, स्तब्ध पहाड़, किसी मोड़पर बलखाती ट्रेनका काव्यात्मक लगना, अल्पतोया कावेरी, अदृष्टपूर्व, अज्ञातपूर्व, नयनोत्सव, पत्रलता, लयान्वित मूर्तियोंसे टपकता सौन्दर्य, खंडहरोंके इतिहासका अशांत नींदके आसपास चक्रमण करना, उद्वेग-एगोनी, पत्थरोंके अस्थि (पृ. क्रमश: १५, २०, ५३, ५७, ६८, ६८, ७०, ७३, ८०, १०१, १२७, १४८, १५२, १५२, १६७, १७५, १७५, १७५, १८२, १९०, १९८, १९३, १९६) जैसे शब्दों, 'कल्पनों, बिम्बों, विशेषण-विपर्ययों तथा शब्द-समूहोंसे उनकी कवि-चेतनाका सम्यक् परिचय मिल जाताहै। इस कवि-चेतना तथा पौराणिक-ऐतिहासिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक संदर्भोंकी दृष्टिसे भोलाभाईकी निबन्धन-प्रतिभाकी तुलना हिन्दीके विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा निर्मल वर्मा प्रभृति लेखकोंके ललित निबंधोंसे कीजा सकतीहै। उनकी भाषामें भी कहीं-कहीं "थानक", तगतगे, वळोटी, उपणता, गोठमड़, बोटी लीधो, ताजमताज, रहेणांक, उलें, लीलंलीलो, लीलाकच, खडखडियां, कोढ़, नेतरुं, भळभांखळुं (पृ. क्रमश: ६, १८, ४४, ४७, ५१, ५८, ६३, ६४, ७०, ८७ ९५, १०९, १३७, १८६, १९५) जैसे ठेठ-गुजरातीके शब्द गुजरातीकी शब्द-संपदाको नयी ऊर्जा प्रदान करते हुए उसे समृद्ध करते हुए दृष्टिगत होतेहैं।

भोलाभाईके समूचे साहित्यिक-व्यक्तित्वके संबंधमें कहाजा सकताहै कि शब्द-श्रमिकताकी दृष्टिसे वे उत्तर-गुजराती, शब्द-लाघव (कृपणता) की दृष्टिसे अहमदाबादी, उदार-विशाल-चेत्ताकी दृष्टिसे वडोदरी (वट जैसे उदारवाले) तथा नित्य-प्रसन्न-मुद्रा एवं अजातशत्रुता और मनमोजीपनेकी दृष्टिसे सुरती कहेजा सकतेहैं। अंतमें—

> "मैं चलताहूं क्योंकि चलनेसे मनकी गांठें खुल जातीहैं/मैं चलताहूं क्योंकि चलनेसे मनकी आंखें खुल जातीहैं/तुम चलो दलो तब दुःख दर्दोंको इस चलाचलीके मेलेमें/मैं चलताहूं क्योंकि चलनेसे मन की पांखें खुल जातीहैं!!

तो यह चलना ही हमें अस्थावर बनाताहै, जंगम बनाताहै। उससे ही देह देवल बनताहैं। अवक्षय कीर्ति के उपयुक्त बनतेहैं हम चलनेसे हम। होताहै उससे चेतनाका विस्तार। और प्रारंभिक सुरेश दलालकी पंक्तियोंके अनुसार इस चलनेकी आकांक्षा—अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा—के कारण ही हम "घरमें पथको और पथपर घरको" तरसतेहैं, झुरतेहैं। सफल कृति वह है जो उसके लेखकके समग्र कृतित्वको पढ़नेको ललचाये और सफल विवेचन वह है जो पाठकको उस मूल कृति के वाचनके प्रति अभिमुख करे। इस दृष्टिसे भोलाभाई साफल्यको वर चुकेहैं, अपने संबंधमें निर्णय सुधी पाठकों पर छोड़ताहूं। □

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

कला-निबन्ध : नेपाली

नेपाली लोक-कला-संस्कृति संबंधी शोध और अनुसन्धानपरक निबन्ध

इन्द्रधनुष

रचनाकार : आर. पी. लामा

समीक्षक : डॉ. चन्द्रेश्वर दुबे

'इन्द्रधनुष' चौदह निबन्धोंका एक विशिष्ट संकलन है जिसमें नेपाली लोक-संस्कृतिके विभिन्न पक्षोंपर सफलतापूर्वक प्रकाश डाला गयाहै। ये सभी निबन्ध निबन्ध ही हों ऐसी बात नहीं। फिरभी संकलनकी सारी सामग्री नेपाली जन-जीवनके किसी-न-किसी पक्ष को उजागर अवश्य करतीहै। संकलनके कई निबन्ध निबन्धके क्षेत्रसे बाहर होनेपर भी महत्त्वपूर्ण हैं और लेखककी उद्देश्य-पूर्तिमें सहायक हैं। संकलनमें घटनाएं हैं, कथाएं हैं, वर्णन और विवरण हैं तथा मात्र सूचनाओंका संकलन भी हैं जो कुछ कमजोर हैं। पर पुस्तकके अनेक निबन्ध वास्तवमें विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण हैं।

पहला निबन्ध है 'फेरीवाल'। गोरखनाथके शिष्यों की एक शाखा आधी रातको प्रत्येक नेपाली घरका फेरा लगातीहै और भूत-प्रेत डायन-चुड़ैलसे लोगोंकी रक्षा करतीहै। पिछड़े और पहाड़ी क्षेत्रोंमें ऐसा योगी मंत्र पढ़ता हुआ आजभी गांवका चक्कर लगाताहै और इन्हीं योगियोंको फेरीवाल कहा जाताहै। फेरीवाल योगियोंका यह कार्य वंशानुगत है। यदि कोई नया व्यक्ति फेरी लगानेका काम करना चाहताहै तो वह गोरखनाथके मंदिरमें दीक्षा लेकर यह काम कर सकता है। अभाव और अकालके चैत्र और कार्तिक महीनेमें फेरीवालका दायित्व बढ़ जाताहै। क्योंकि गांवके लोगों की सुरक्षाका दायित्व ऐसेही योगियोंपर है। रूद्राक्ष, रीठाकी माला, राखका टीका, लोहे या पीतलका कड़ा, एक हाथमें फेरी (एक विशेष वाद्य), लाठी और दूसरे हाथमें पंचरंगी या नौरंगी चौकोर झोला इनका पहचान-पत्र है। अपने इस कार्यके लिए वे गांवके लोगों से भरपूर दान-दक्षिणा, पैसा, तिल, जौ, चावल, दाल,

तेल, मिर्चके रूपमें प्राप्त करतेहैं और जीविकोपार्जन करतेहैं । कुछ पात्रों और घटनाओंको आधार बनाकर 'अन्धविश्वास' शीर्षक लेखमें अन्धविश्वासकी उत्पत्ति, प्रचार और परिपालन एवं उसकी समाप्ति पर सोदाहरण प्रकाश डाला गयाहै । अन्धविश्वासोंको तोड़नेमें यह लेख अत्यन्त सहायक और उपयोगी सिद्ध हो सकताहै ।

'लोकनाच संगिनी' एक विशिष्ट लेख है । नेपाली-समाजमें भैलेनी, रतेली और संगिनी ऐसे नृत्य हैं जिनमें केवल स्त्रियां ही भाग लेतीहैं । भैलेनी नृत्य लक्ष्मी-पूजाकी रातमें खेला जानेवाला नृत्य है । रतेली नृत्य उस रातमें किया जाताहै जब दूल्हा बारातके साथ विवाह करने जाताहै । इस रात दूल्हेके घरमें केवल स्त्रियां होतीहैं, जो पुरुष वेशमें सज्जित होकर कामुक अभिनय करतीहैं और मादक-उत्तेजक गीत गातीहैं । ऐसे नृत्योंमें संगिनी नृत्यको सर्वश्रेष्ठ, लोकप्रिय और माधुर्यपूर्ण माना जाताहै । इस समूह-नृत्यमें समवयस्क लड़कियां हिस्सा लेतीहै और ऐसी मान्यता है कि जो लड़की इस समूह-नृत्यमें भाग नहीं लेती, वह अगले जन्ममें लंगड़ी हो जातीहै । शिव-पार्वती और कृष्ण-कथाएं इस नृत्यका प्रमुख विषय हैं । ऐसा समूह-नृत्य देवी-देवताओंकी पूजा, कोई व्रत, तीज या पुत्री-विवाहके अवसरपर देखाजा सकताहै । इस नृत्यके साथ गाये जानेवाले गीतोंमें घरेलू-जीवन, नर-नारीका प्रेम, सास और सपत्नीका अत्याचार नैहरके प्रति माया-ममता, राजा-रानीका प्रेम-गीत, राजाओंकी जयगाथा और प्रकृति-सौन्दर्यका वर्णन आदिसे सम्बन्धित सरल और सरस भावनाओंकी अनुपम अभिव्यक्ति देखनेको मिलतीहै । ये गीत वास्तवमें नारी-जीवनका स्वच्छ दर्पण हैं जो उनके सुख-दु:ख, आशा-निराशा और प्रेम विरहकी भावनाको मूर्त रूप प्रदान करतेहैं ।

'लिम्बूहरूको लोकनाच' में नेपालकी एक प्रमुख जाति लिम्बुओंके लोक-नृत्योंका चित्रण है । 'धाननाच' और 'च्याब्रुङ नाच' लिम्बू-जातिके सांस्कृतिक दर्पण हैं । आज थ्रेशरके द्वारा गेहूंकी दाउनी की जाती है । प्राचीन कालमें लिम्बू जातिके लोग बैलोंके अभाव में सामूहिक-नृत्यके द्वारा धानकी दाउनी किया करते थे और इसीलिए इस नृत्यका नाम 'धाननाच' पड़ा । धाननाचके साथ मैराजा और मैरानीके प्रेम और मिलनकी मधुर कथा भी जुड़ी हुईहै । लिम्बू युवक और युवतियोंके द्वारा रात भर और कई-कई रातें यह नृत्य किया जाताहै और धानकी दाउनी होती रहतीहै । धाननाचके गीत युवक युवतियोंके पारस्परिक परिचय, प्रेम और आत्मिकता व्यक्त करनेका परम्परागत उपाय और साधन है । लिम्बुओंका दूसरा प्रमुख नृत्य है च्याब्रुङ नाच जो च्याब्रुङ (लिम्बुओंका वाद्य-विशेष) के तालपर नाचा जाताहै । नेपालकी भिन्न-भिन्न जातियोंके अपने विशेष वाद्य-यंत्र हैं । जैसे बाहुन-छेत्री में खैंजरी, मुजरा, कठताल आदि वाद्य-यंत्रोंकी प्रधानता है, वैसेही दमाई जातिमें तुरही-शहनाई एवं लिम्बू जातिमें च्याब्रुङका विशेष प्रचलन है । इस नृत्यमें पुरुष च्याब्रुङ बजाताहै और स्त्रियां गोल घेरा बना कर नाचतीहैं । यह नृत्य भूत-प्रेत और देवी-देवताओं को समर्पित है । इसके कई प्रभेद हैं । 'ताङ साम फोङमा लाङ' आत्माको जगाताहै । 'में काम्मा लाङ', 'कागनाच', 'परेवा नाच', 'चाखोले लाङ' आदि नृत्य विवाहके अवसरपर प्रस्तुत किये जातेहैं । 'लाङ साम सेम्मा' लिम्बुओंका विदाई नृत्य है जो अत्यन्त हृदयविदारक दृश्य प्रस्तुत करताहै ।

'धामी, झांक्री र बोक्सी-डायनी' शीर्षक लेखमें तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक करनेवाले ओझागुनी लोगोंका वर्णन है । नेपालकी तामाङ, सार्की, सुनवार, थामी, राई और लिम्बू जातिके लोगोंका एक वर्ग टोना-टोटका और जादू-मंत्र तथा झाड़फूंकके द्वारा लोगोंका कष्ट दूर करताहै और ऐसे ही लोगोंको झांक्री कहा जाता है । गुरु-पूजा या रक्षा-बन्धन इन लोगोंका प्रमुख पर्व है । झांक्री होनेके लिए दीक्षा, गुरु-मंत्र और गुरुका आशीर्वाद आवश्यक माना जाताहै । ऐसे लोग रिट्ठा या रूद्राक्षकी माला धारण करतेहैं । ढयाङ्ग्रो और गजा इनका विशेष वाद्य-यंत्र है । भूत-प्रेत, नजर, जिन और चुड़ैलको भगानेकी क्षमता इनमें होतीहै, ऐसा सरल ग्रामीण लोगोंका विश्वास है । ऐसी मान्यता है कि धामी और झांक्री लोगोंका कल्याण करताहै जबकि बोक्सी और डायन लोगोंको दु:ख और कष्ट देतीहै । लोगोंका विश्वास है कि इनमें रूप-परिवर्तन करने, उड़ने और अदृश्य होनेकी क्षमता होतीहै । धामी-झांक्रीकी यह परम्परा वन्य और आदिम परम्परा है और मानव-सेवा तथा दु:ख-कष्ट निवारण इस परम्पराका मुख्य उद्देश्य है । किसी प्रसूता या पशुका दूध सूख जाये, बच्चा दूध पीना छोड़ दे या किसीको किसीकी नजर लग जाये,

ऐसी स्थितिमें इन लोगोंका काम और महत्त्व बहुत बढ़ जाताहै। पर सावधान! हंसोंकी इस जमातमे कुछ बगुलेभी आ बैठेहैं। गरीब और भोलेभाले ग्रामीणोंको ठगनेवाले पेटू, चालाक और झूठी झाड़फूंककर अपनी जीविका चलानेवाले नकली झांक्रियोंकी कमी नहीं हैं। 'नक्कले झांक्री' लेखमें लेखकने कथाके माध्यमसे इसी तथ्यका उद्घाटन कियाहै।

नेपाली लोक-गीतोंमें भक्ति-संगीतका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। नेपाली समाजकी यह भक्ति-भावना बालन और खजरी भजनके माध्यमसे अभिव्यक्त होतीहै। जैसे भैलो लक्ष्मी-पूजनकी रात और रोपाई-गीत असार-सावन महीनेमें गाये जातेहैं, वैसेही बालन और खैंजरीभजन, पूजा, विवाह, मेला या किसी सामाजिक उत्सवके अवसरपर गाये जातेहैं। बालनके भजन पुराण, भागवत, रामायण और महाभारतकी कथा और उपकथाओंपर आधारित हैं। बालन, भजन, संगिनी और माढ़ल-गीत, लव-कुशके बाल-लयपर आधारित रामायण-कथाका गीतात्मक प्रस्तुतीकरण है। ऐसे भजन केवल पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किये जातेहैं और इसमें किसी प्रकारके बाजेका उपयोग नहीं होता। बालनमें सीता-वनवासकी कारुणिक कथाका एक विशेष महत्त्व है। बालनकी तरह खैंजरी भी सामूहिक भक्ति-संगीत है। नेपाली जन-जीवनमें बालन और खैंजरी दोनों प्रकारके भजनोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'मारूनी नाच र मादल', 'नेपाली लोक बाजाहरू' और 'डम्फू र डम्फुरें' इस संकलनके महत्त्वपूर्ण निबन्ध हैं। मादलके तालपर चलनेवाला मारूनी नाच दुर्गापूजा से दीपावली तक चलनेवाला श्रेष्ठ और लोकप्रिय नृत्य है। इस नृत्यमें मादल और मादल बजानेवालेकी भूमिका प्रमुख होतीहै। इस नृत्यमें पुरुषही नर और नारी दोनोंकी भूमिका निभातेहैं। मारूनी, नृत्य, गीत और वादनका उत्कृष्ट संगम है। विभिन्न रागों पर आधारित गीतिकथा इसका प्रधान विषय है और इन गीतोंमें शृंगार, करुणा, हास्य-व्यंग्य और वीर-रसकी प्रधानता होतीहै। मारुनी-नर्तकोंकी विशेष वेशभूषा इसे आकर्षक और मनोहर बना देतीहै। निबन्ध के अन्तमें मादलकी उत्पत्ति, विकास, इतिहास, बनावट और निर्माण-सामग्रीपर विस्तृत प्रकाश डाला गयाहै जो सचमुच बड़ा उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। 'नेपाली लोक-बाजा-हरु' शीर्षक निबन्ध इस अर्थमें विशिष्ट है कि इसमें नेपालमें प्रचलित सभी वाद्य-यंत्रोंका विस्तृत परिचय, इतिहास और पूरी निर्माण-सामग्रीपर पूर्ण प्रकाश डाला गयाहै। इस निबन्धमें विभिन्न विद्वानोंके लेखोंपर आधारित विभिन्न वाद्य-यंत्रोंका सर्वांगपूर्ण वर्णन उपलब्ध है। निबन्धमें कई प्रकारसे भिन्न-भिन्न वाद्योंका वर्गीकरण भी किया गयाहै, जैसे देशज, आगत और सामान्य बाजे अथवा हस्त-वाद्य, फूंक-वाद्य और रेटकर बजाये जानेवाले वाद्य। जातिके आधारपर भी वाद्योंका बर्गीकरण किया गयाहै जो नेपालकी एक विशेषता है। नेपालकी विभिन्न जातियोंका अपना-अपना वाद्य है। बाउन-छेत्रीमें मादल और खंजरी,, दमाई जातिके लोगोंमें दमाहा और नौमती, तामाङ; गुरुङ और सेर्पाओंमें डुङना, गायक जातिमें सारंगी; तामाङ लोगोंमें डम्फू, लामाओंमें काङलिङ और ग्यालिङ, झांक्री लोगोंमें ढ्याङग्रो तथा राई, लिम्बू और किरात जातिमें च्याब्रुङ, बाजोंका विशेष प्रचलन है। 'डम्फूर डम्फुरे' शीर्षक लेखमे तामाङ जातिका लोकप्रिय वाद्य डम्फूका विशेष वर्णन हुआहै और यह बताया गयाहै कि तामाङ जातिके सीधसादे लोग किस प्रकार डम्फूके तालपर अपनी भक्ति, प्रेम, सांसारिकता, माया-मोह, सुख-दुःख, आशा-निराशा और जीवनके प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोणको मार्मिक अभिव्यक्ति देतेहैं।

संकलनके अंतिम चार लेख सामान्य कोटिके हैं। 'लोककथा और नेपाली साहित्य' में लोककथाकी परिभाषा, महत्त्व और वर्गीकरणकी व्याख्या की गयी है। 'सरकारी सांस्कृतिक संस्था' में ऐसी संस्थाओंकी निरर्थकता और उद्देश्यहीनताको दर्शाया गयाहै। लोक-संस्कृतिमें लोक-संगीत और लोक-नृत्यके महत्त्वपर प्रकाश डाला गयाहै और 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक परम्परामें नेपाली संस्कृति' शीर्षक लेखमें भारतीय संस्कृतिमें नेपाली संस्कृतिके योगदानकी संक्षिप्त चर्चा है।

कुल मिलाकर आर. पी. लामाकी पुस्तक 'इन्द्रधनुष' नेपाली लोक-संस्कृतिका एक स्वच्छ इन्द्रधनुषी दर्पण है और नेपाली भाषा साहित्यकी एक विशिष्ट उपलब्धि है। □

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत]

परिशिष्ट

☐ कृति विवरण ☐ कृतिकार परिचय ☐ समीक्षक परिचय

[क्रम : विषय-सूचीके अनुसार]

विशिष्ट कृतिकार (पुरस्कृत)

नरेशचन्द्र मेहता

जन्म : शाजापुर (मालवा), १९२२। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे स्नातकोत्तर उपाधि।

लगभग तीस प्रकाशनोंमें १३ काव्य-संकलन, सात उपन्यास, पांच कहानी संग्रह, दो नाटक, दो एकांकी तथा आलोचना कृतियां। विभिन्न राज्य सरकारों और संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

सम्पर्क : निदेशक : प्रेमचन्द सृजनपीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म. प्र.)।

परिचय-लेखक : प्रमोद त्रिवेदी

जन्म : वड़नगर (म. प्र.), १९४२। स्नातकोत्तर उपाधि एवं पी-एच. डी. (प्रगतिवादोत्तर हिन्दी काव्यान्दोलनपर शोध) लेखनमें निरन्तर सक्रिय, वृक्षकी शिराओंमें (काव्य), का पुरुष (काव्य नाटक), मैडमका कुत्ता (कहानी), अन्ततोगत्वा (उपन्यास), नरेश मेहता : एक एकान्त शिखर (आलोचना), विक्रमोर्वशीय (कालिदासके नाटक की बच्चोंके लिए पुनर्रचना)। एक उपन्यास, एक काव्य-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य।

सम्पर्क : मन्वन्तर, २०५ सेठी नगर, उज्जैन-४५६०१०.

उपन्यास

कृति : ढाई घर (हिन्दी)

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ४००; डिमा. ६१; मूल्य : ८०.०० रु.।

कृतिकार : गिरिराज किशोर

जन्म : मुज़फ्फरनगर, १९३७। आगरा विश्वविद्यालयसे स्नातकोत्तर शिक्षा। उत्तरप्रदेश प्रशासनमें विभिन्न पदोंपर कार्य, आई. आई. टी. कानपुरमें कुलसचिव, बादमें इसी संस्थानमें रचनात्मक लेखन एवं प्रकाशन केन्द्रके निदेशक।

अबतक ११ कहानी-संग्रह, १३ उपन्यास, ७ नाटक, एक एकांकी संग्रह, आलोचनात्मक लेखोंके चार संग्रह प्रकाशित। कहानी-संग्रहोंमें 'गाना बड़े गुलाम अली खांका, वल्दरोज़ी, यह देह किसकी; उपन्यासोंमें लोग, चिड़ियाघर, यात्राएं, जुगलबंदी, देवदार, परिशिष्ट; नाटकोंमें नरमेध, प्रजा ही रहने दो और जुर्म आयद चर्चित कृतियां हैं।

समीक्षक : घनश्याम शलभ

सेवा-निवृत्त प्राचार्य। स्वतन्त्र लेखन, आलोचना और काव्य क्षेत्रके मर्मज्ञ। अनेक कृतियां प्रकाशित।

सम्पर्क : ११ ख, रवीन्द्रनगर, उदयपुर-३१३००१.

कृति : नीला चांद (हिन्दी)

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ४६६७/५, २१ ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ६४८; डिमा. ८८; मूल्य : १५०.०० रु.।

कृतिकार : डॉ. शिवप्रसाद सिंह

जन्म : जलालपुर (वाराणसी), १९२८। काशी हिन्दू वि. वि. में हिन्दी विभागमें अध्यापन और वहींसे विभागाध्यक्ष पदसे सेवा-निवृत्ति। ६ कहानी-संग्रह, पांच उपन्यास, पांच निबन्ध संग्रह, चार आलोचना-समीक्षा कृतियां, दो शोध ग्रंथ प्रकाशित। श्रीअरविन्दकी जीवनी 'उत्तरयोगी' नामसे प्रकाशित।

सम्पर्क : सुधर्म, १३ गुरुधाम कालोनी, वाराणसी-२२१०१०।

समीक्षक : डॉ. सत्यपाल चुघ

जन्म : सक्खर (सिंध-पाकिस्तान), १९२७। सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियोंमें सक्रिय, दिल्ली महानगर परिषद्के दो बार सदस्य। दिल्ली वि. वि. के परिसरके महाविद्यालयमें हिन्दी विभागमें रीडर, अब सेवा-निवृत्त।

प्रधानत: कवि और लघु कथाकार। ६ काव्य संग्रह : भोरकण्ठ (१९६५), अंधेरी आकृतियोंके पार (१९७०), वामनके चरण (१९७९), सूर्य और सीकरी (१९८०), अबला कहो न सबला (१९८६), इसी जन्ममें पुनर्जन्म (१९९०)। समीक्षात्मक रचनाएं : साहित्य सुधा (१९५३), महादेवीकी काव्य साधना और नीरजा (१९५६), परिचित प्रश्न : नयी समीक्षा (१९५९), अज्ञेयके उपन्यासोंकी शिल्पविधि (१९६८), ३४ उपन्यासोंका शोध-परक अध्ययन, आस्थाके प्रहरी (१९७०), अमृतलाल नागरके उपन्यासोंका विश्लेषणात्मक अध्ययन, हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास : प्रतिमान एवं विकासेतिहास (१९७४), प्रसाद : भारतीयताके प्रासंगिक प्रतिमान (सम्पादन : १९९०), हिन्दी उपन्यास : उदय और उत्कर्ष (१९९३), पत्र-पत्रिकाओंमें आधुनिक साहित्य और उपन्यासोंपर पर अनेक समीक्षात्मक लेख।

सम्पर्क : बी-८२, फेज-१, अशोक विहार, दिल्ली-११००५२.

कृति : कुट्राल कुरिंजि (तमिल)

प्रकाशक : वानति पदिप्पकम्, १३ दीनदयाल मार्ग, त्यागराय नगर, मद्रास-६०००१७। पृष्ठ : ३७२; डिमा. ८६; मूल्य : ३०.०० रु.।

कृतिकार : डॉ. कोवि. मणिशेखरन्

जन्म : उत्तर आर्काड (वेल्लूर—तमिलनाडु), १९२७। अण्णामलै वि. वि. से कर्नाटक संगीतके स्नातक, 'संगीत भूषणम्' से अलंकृत। तीन तमिल चित्रपटोंके निर्देशक। अबतक १३० उपन्यास, २० कहानी-संग्रह, एक दर्जन काव्य-संकलन और अनेक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित। ४ तमिल साप्ताहिकोंका सम्पादन कर चुकेहै। तिरु. बि. क. सम्मान, राजा अण्णामलै चेट्टियार पुरस्कार एवं राजराजन पुरस्कार एवं अन्य पुरस्कारोंसे सम्मानित। 'पुदिन पेररसु' (उपन्यास-सम्राट्से) विभूषित।

सम्पर्क : २ पिळ्ळैयार कोयिल स्ट्रीट, शालिग्राम, मद्रास-६०००९३.

समीक्षक : डॉ. एम. शेषन्

आगरा तथा काशी हिन्दू वि. वि. वाराणसीसे हिन्दीमें एम. ए. और पी-एच. डी.। पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष द्वारकादास गोवर्धनदास वैष्णव कालेज, मद्रास (मद्रास वि. वि.)।

सम्पर्क : 'गुरुकृपा', प्लाट ७९०, डॉ. ए. रामास्वामी मुदालियर रोड, के. के. नगर (पश्चिम), मद्रास-६०००७८.

कृति : हृदयनेत्री (तेलुगु)

प्रकाशक : श्री शैलजा पबिलेकेशंस, स्वामी स्ट्रीट, गांधीनगर, विजयवाड़ा-५२१००३।

पृष्ठ : ३०७; डिमा. ९१; मूल्य : ३५.०० रु.।

कृतिकार : मालती चंदूर

जन्म : नुजविद (जिला कृष्णा)। पुस्तकें ही गुरु। साहित्यिक एवं पत्रकार पतिसे लेखनके लिए प्रोत्साहन।

प्रथम कहानी 'रव्वला दुददूलु' (हीरेके कर्णफूल), फिर 'लूज कार्नर' तथा 'नीरजा' कहानियां प्रकाशित। मुख्य उपन्यास : 'चम्पकम', 'रेणुकादेवी आत्मकथा' और 'क्षणिकम'। नारी अभ्युदयपर 'आलोचिंचु' (चिन्तन) तथा 'सद्योगम'। नयी पीढ़ी संबंधी चिन्तानपर 'रिक्कुलु चुक्कुलु', उग्रवादके अहिंसक सुधारक रूपमें रूपान्तारणपर 'वैशाखी'।

अनेक पुरस्कारोंसे सम्मानित तथा पद्मावती विश्वविद्यालयसे डाक्टरेट प्राप्त।

सम्पर्क : ३ कचेरी रोड, मयलापुर, मद्रास-६००००४।

समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल

उस्मानिया वि. वि. के अध्यक्ष हिन्दी विभागसे सेवा-निवृत्त।

हिन्दी और तेलुगुमें अनुवादों सहित लगभग ४० कृतियां प्रकाशित। तुलनात्मक अध्ययनमें विशेष रुचि। अज्ञात हस्तलिखित प्रतियोंको प्रकाशमें लानेके प्रयास। १८८४-८६ में तेलुगु लिपिमें लिखे हिन्दी नाटकोंका नागरी लिप्यन्तरण एवं उन पर शोध-प्रबन्ध।

सम्पर्क : १-१-४०५./७/१ गांधीनगर,
हैदराबाद (आं. प्र.)।

कृति : थरोशङ्बी (मणिपुरी)

प्रकाशक : राइटर्स फोरम, इम्फाल। पृष्ठ : २०१; क्रा. ६१; मूल्य : ३५.०० रु.।

कृतिकार : अरिबम चित्रेश्वर शर्मा

जन्म : मणिपुर, १९३९। कथाकार, सम्पादक, चित्रकार और मूर्तिकार। ललित कलाके लिए अनेकशः सम्मानित।

दस कृतियां प्रकाशित। इनमें चार उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह हैं। पहला उपन्यास : लाइबाकलाइ (१९६८), अन्य उपन्यास : मीसेल, सना कंथेल, तथा थरोशङ्बी। 'नागसीदी लाकले' (१९७०) प्रथम कहानी-संग्रह है, 'लूपथाखाबा हीनाव' कहानी-संग्रह पुरस्कृत हैं। कला संबंधी लेख संकलन 'लंचेक पथाप'।

सम्पर्क : खोङ्मन माङ्जिल, इम्फाल-७९५००१।

समीक्षक : इबोहलसिंह काङ्जम, एवं देवराज

समीक्षक-द्वय मणिपुर वि. वि- के हिन्दी विभागसे सम्बद्ध और प्राध्यापक।

सम्पर्क : हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय,
कांचीपुर, इम्फाल-७९५००३।

कृति : झाडाझडती (मराठी)

प्रकाशक : राजहंस प्रकाशन, १०२५ सदाशिव पेठ, पुणे-४११०३०। पृष्ठ : ५१९; डिमा. ६१; मूल्य १२५.०० रु.।

कृतिकार : विश्वास महिपाल पाटिल

जन्म : नेर्ले गांव (कोल्हापुर), १९५९। शिवाजी विश्वविद्यालयसे स्नातकोत्तर एवं कानूनकी उपाधि अपेक्षाकृत कम आयुमें राष्ट्रव्यापी सम्मान, लेखन क्षेत्रमें 'पानिपत' उपन्यासको इस ख्याति-सम्मान का श्रेय है। दो वर्षमें इसके सात संस्करण हुए, २०००० प्रतियां बिकीं। इस उपन्यासकी समीक्षा 'प्रकर' के सितम्बर अंकमें प्रस्तुत हो रहीहै। इस उपन्यासपर प्रियदर्शिनी राष्ट्रीय पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद् पुरस्कार एवं वी. एस. जोशी पुरस्कार प्राप्त हुएहैं। पांगीरा, क्रान्ति सूर्य और अम्बी जैसे अन्य उपन्यास इतिहासके लोमहर्षक क्षणों एवं आन्दोलनोंके आलेख हैं। 'क्रान्ति सूर्य' में १९४२ की अगस्त क्रान्तिका महाराष्ट्रीय संदर्भ चित्रित है। 'चलो दिल्ली' नेताजी सुभाषचन्द्र बोसके भाव प्रवण व्याख्यानोंका हृदयग्राही अनुवाद है। अन्य अनेक सुविख्यात पुरस्कारोंसे सम्मानित।

सम्पर्क : जे. टी एम. डी फिल्म सिटी, गोरेगांव (ईस्ट), मुम्बई-४०००६५।

समीक्षक : डॉ. गजानन चव्हाण

जन्म : महाराष्ट्र, १९४३। हिन्दीमें स्नातकोत्तर उपाधि और पी-एच. डी.। महाराष्ट्रकी शिक्षा संस्था रयत शिक्षण संस्थाके अनेक महाविद्यालयों में बीस वर्ष अध्यापन, १९८१ से पुणे वि. वि. में हिन्दी विभागमें रीडर।

प्रकाशित निबन्ध : 'रामवृक्ष बेनीपुरी और उनका साहित्य,' 'रीतिकाव्य-विवेचन', 'अनुवाद विज्ञान' मे दो लेख, 'निबन्धकार विद्यानिवास मिश्र' में प्रदीर्घ लेख। 'प्रकर' में हिन्दी और मराठी रचनाओंकी समीक्षाएं; 'समीक्षामें पुस्तक समीक्षा' 'राष्ट्रवाणी' में शोध-लेख, 'महाराष्ट्र मानस'में शोध लेख।

सम्पर्क : सी-५, प्राध्यापक निवास, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे-४११००७।

कहानी

कृति : विचित्रवर्णा (उड़िया)

प्रकाशक : लार्क बुक्स, सुवर्ण रेखा चैम्बर्स, भोम-

नगर, भुवनेश्वर-७५१००१ । पृष्ठ : १६४; डिमा. ९१; मूल्य : २५ ०० रु. ।

कृतिकार : रवि पट्टनायक (स्व.)

जन्म : बनेईगढ़ (जि. सुन्दरगढ़), १९३५; देहावसान : १९९१ । लेखकों-कलाकारोंके परिवारमें जन्म । भूगर्भ विज्ञानमें स्नातकोत्तर उपाधि । भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभागमें कार्य, पदोन्नतिकर निदेशक ।

१४ वर्षकी आयुमें प्रथम कहानी, लगभग ४०० कहानियां लिखीं । उनकी कहानियां अस्तित्वपरक रहस्यमय जटिलताओंको अचानक उद्घाटित कर मनोरंजन और स्फूर्ति प्रदान करतींहैं । राग तोड़ी, बहुरूपी, गलपो, राजारानी, अमनलता उनकी सुप्रसिद्ध कहानियां हैं । 'हिरण्यगर्भ' पर १९८४ में उन्हें उड़ीसा साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 'बंध्या गांधारी' पर सारला पुरस्कार प्राप्त हुआ । रवि पट्टनायक कंका श्रेष्ठ गल्प (१९९२) उनकी श्रेष्ठ कहानियोंका संकलन है ।

समीक्षक : (१) डॉ. शंकरलाल पुरोहित (२) डॉ. सुधांशुकुमार नायक

(१) **डॉ. शंकरलाल पुरोहित** : रीडर हिन्दी विभाग, बी. जे. बी. महाविद्यालय, भुवनेश्वर-७५१०१४ ।

(२) **डॉ. सुधांशुकुमार नायक** : उड़ीसा, १९५४ । उत्कल बि. वि. से अंग्रेजी और हिन्दी दोनोंमें स्नातकोत्तर उपाधियां । राष्ट्रीय संस्थान से 'भाषा विज्ञान' में आचार्य, ब्रह्मपुर वि. वि. से हिन्दीमें पी-एच. डी. और डी. लिट् । हिन्दीके वरिष्ठ प्राध्यापक ।

शोध-प्रबन्ध : सूरदास और जगन्नाथदासकी भक्ति (पी-एच. डी.) हिन्दी और उड़िया काव्य की प्रवृत्तियां (डी. लिट्.) । हिन्दी, उड़िया और अंग्रेजीमें ८० शोध-निबन्ध प्रकाशित ।

सम्पर्क : अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रमादेवी महिला महाविद्यालय, भुवनेश्वर-७५१००२ ।

कृति : कुझ अणकिहा वी (पंजाबी)

कृतिकार : प्रेमप्रकाश

जन्म : लुधियाना, १९३२ । उर्दू में स्नातकोत्तर उपाधि । 'मिलाप' और 'हिन्द समाचार' के सम्पादकीय विभागसे संबद्ध रहे । बादमें मुक्त पत्रकारितासे जुड़कर साहित्यिक पत्रिका द्वैमासिक 'लकीर' का प्रकाशन कर रहेहै ।

१९५४-५५ में कहांनी लेखन प्रारम्भ, क्योंकि उपन्यासकी अपेक्षा कहानी स्वभावके अधिक अनुकूल प्रतीत हुई । अबतक नो कथाकृतियां प्रकाशित । उल्लेख्य कृतियां हैं : प्रेम कहानियां (१९८५), मुक्ति (पुरस्कृत), शवेतांबरने कह्यार्सी (पुरस्कृत) । १९९० में दस्तावेज़ उपन्यास प्रकाशित ।

सम्पर्क : ५९३ मोतासिंह नगर, जालंधर (पंजाब) ।

समीक्षक : प्रो. फूलचन्द मानव

जन्म : नाभा (पटियाला), १९४५ । पंजाबी और हिन्दीमें स्नातकोत्तर उपाधि । पूर्व सम्पादक : जागृति (हिन्दी मासिक) । प्रकाशित कृतियां : १६ । समीक्षक, कवि, कथाकार, अनुवादक । १९९० में उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा सौहार्द-सम्मानने अलंकृत । वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभागाध्यक्ष, गवर्नमैंट कालेज, मोहाली-१६००५५ ।

सम्पर्क : ३५७, फेज ६, मोहाली-१६००५५ ।

काव्य

कृति : शइचर पथार मानुह (असमी)

कृतिकार : हीरेन भट्टाचार्य

जन्म : जोरहाट (असम), १९३२ । स्नातक उपाधिके बाद ही लेखनको धर्म बनाया, क्योंकि उनकी धारणा है काव्य-स्रोत पुस्तकें नहीं अपितु स्वयं जीवन है । अपनी धरती, अपने लोगोंकी धड़कनको निकटताते पकड़नेवाले प्रगतिवादके प्रतिभाशाली कवि हैं ।

कविके प्रकाशित काव्य-संकलन हैं : मोर देश : मोर प्रेमेर कविता (१९७१), विभिन्न दिनर कविता (१९७४) कवितार रद (१९७६), सुगंधि पखिला (१९८१), एवं शइचर पथार मानुह (१९९१)

सम्पर्क : 'चित्रवन', चिड़ियाघर पथ, गुवाहाटी-७८१०२१

समीक्षक : भूपेन्द्र राय चौधरी

गुवाहाटी वि. वि. में हिन्दी प्राध्यापक। एम. एस-सी. (प्राणिकी), एम. ए. प्रवीण, साहित्य-रत्न, पी-एच. डी.।

असमी और हिन्दीमें लेखन कार्य। असमिया लोक साहित्यकी भूमिका, ब्रजबुलि साहित्य मुकुर, डिम्बेश्वर नेओग आदि सम्रह पुस्तकें प्रकाशित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें शताधिक लेख-निबन्ध प्रकाशित।

'महापुरुष शंकरदेव और तुलसीदासकी विचार-धाराओंका तुलनात्मक अध्ययन' पर गुवाहाटी वि. वि. से पी-एच. डी.।

सम्पर्क : ७२ विश्वविद्यालय परिसर, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-७८१०१४।

कृति : श्रीराधा (उड़िया)

कृतिकार : रमाकान्त रथ

जन्म : दिसम्बर १९३४। २३ वर्षकी आयुमें आई. ए. एस. में प्रवेश किया। भारत सरकारके सचिव एवं राज्य सरकारके मुख्य सचिव पदोंपर कार्यरत रहनेके बाद कुछही समय पूर्व सेवा-निवृत्त। प्रशासनिक सेवाने उनके साहित्यिक सर्जनात्मक मानसको कभी आहत नहीं किया, क्योंकि मूलतः वे कवि हैं। गत तीन वर्षोंमें उनके सात काव्य-संकलन प्रकाशित हुएहैं : केते दिनर (१९६२), अनेक कोठरी (१९६७), संदिग्ध मृगया (१९७१!, सप्तम ऋतु (१९७७), सचित्र अंधार (१९८२), श्रीराधा (१९८५) एवं श्रेष्ठ कविता (१९९२)।

समीक्षक : डॉ. वनमाली दास

जन्म : डमणभूमि गांव (पुरी), १९२९। जबलपुर वि. वि. उत्कल वि. वि., कटकमें शिक्षा सम्पन्न। प्रशासनिक कालेजोंमें प्राध्यापन, अब सेवानिवृत।

फकीरमोहन और प्रेमचन्द : एक तुलनात्मक समीक्षा (शोध-प्रबन्ध), ओड़ियाकी कृति और कृतिकार (पुरस्कृत)। उपन्यास बेसुरी-रागिणी। प्रचुर अनुवाद कार्य और पाठ्य पुस्तकें.

सम्पर्क : प्लाट नं. ६३, सिरीपुर, भुवनेश्वर-७५१००३।

कृति : बकुलद हुऊगळू (कन्नड़)

कृतिकार : सुब्बण रंगनाथ यक्कुंडी

जन्म : राणेबेन्नूर (धारवाड़), १९२३। उच्च माध्यमिक विद्यालयके प्रधान अध्यापक पदसे सेवानिवृत्त। शब्दकी कला और पराविद्याके प्रति समर्पित, मनुष्य और समाजकी इहलौकिक समस्याओंके समाहारके लिए चिन्तित। उनकी मान्यता है कि जो मार्ग योद्धाका है, वही कवि का भी है।

अबतक आठ काव्य-संकलन प्रकाशित, इनमें उल्लेख्य हैं : मत्स्यगंधी, बेललकिगुळ, कथन कवनगुळ। मध्वमुनिकी जीवनी, शिखरगुळ और पंजुगुळु शीर्षकसे रेखाचित्रोंकी दो शृंखलाएं, पु. ति. नरसिंहाचार्य का अध्ययन नव्य काव्य नाम से आधुनिक कवितापर आलोचनात्मक लेखोंका संकलन, एक उपन्यास तथा एक कथा-संग्रह प्रकाशित।

सम्पर्क : ८८ मारुति के आऊट, शंकर मठके पास, वेस्टकार्ड रोड, बेंगलुरु-५६००८६।

समीक्षक : डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ

जन्म : धारवाड़, १९५०। स्नातकोत्तर उपाधि, पी-एच. डी. (हिन्दी); एम. ए. (रूसी भाषा एवं साहित्य)। इस समय अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।

मोहन राकेशके कृतित्वपर शोधकार्य। काव्य-संकलन, सम्पादन। केन्द्र प्रशासनसे पुरस्कृत।

सम्पर्क : फोर्ट, धारवाड़-५८०००८.

कृतिकार : वंशकुळांचे देणें (कोंकणी)

कृतिकार : नागेश करमली

गोवा मुक्ति संग्रामके सेनानी रूपमें भौतिक मुक्ति के लिए संघर्ष किया, साथ ही कोंकणी साहित्यिक आन्दोलनमें भी भागीदार रहे। उनकी अन्तश्चेतना गोवाके प्रकृति प्रदत्त सौन्दर्यसे ऐसी अभिभूत हुई कि इस मोहक बिम्बों और मनोरम कल्पनाओंकी स्थलीने उनके कवि हृदयको ही जागृत किया। उनका यह संवेदनशील मन-हृदय जनजीवनके साथ एकात्म हो सका। पीड़ित मानवताके साथ तादात्म्य स्थापित कर सका।

पुरस्कृत कृति 'वंशकुळांचे देणें' के अतिरिक्त

'जोरगत' तथा सांवार अन्य संकलन हैं। कोंकणी और मराठी दोनों भाषाओंमें कहानियाँ, निबंध, साहित्य समीक्षा तथा रेडियो नाटक लिखेहैं।

सम्पर्क : ई-३६, मल्ला, पणजी, गोबा-४०३००१.

समीक्षक : डॉ चन्द्रलेखा डि' सोजा

गोआ वि. वि. से पी-एच. डी.। एम. ई. एस. कालेजमें कोंकणीका अध्यापन।

हिन्दी-कोंकणी दोनोंमें लेखन। शोध विषय : धर्मवीर भारती और प्रकाश पाडगांवकारकी कविताओंका तुलनात्मक अध्ययन। दोनों भाषाओंकी पत्र-पत्रिकाओंमें लेख।

सम्पर्क : ४, शशि सदन, प्रथम तल, मुण्डिवेल वास्को-डि-गामा (गोआ)-४०३८०२.

कृति : भीष्मचरितम् (संस्कृत)

कृतिकार : डॉ. हरिनारायण दीक्षित

जन्म : पढकुला गांव (जालोन) उ. प्र., १९३६। आगरा वि. वि. से स्नातकोत्तर उपाधि, पी-एच. डी., कुमाऊ वि. वि. से डी. लिट्। कुमाऊ वि. वि. में संस्कृत विभागके अध्यक्ष। संस्कृत सेवाके लिए अनेक सम्मान। संस्कृत और हिन्दीमें लिखित-सम्पादित अठारह ग्रंथ। संस्कृत निबंधावली, संस्कृत साहित्यमें राष्ट्रीय भावना, शोध लेखावली, भारतीय काव्यशास्त्र मीमांसा उल्लेख्य ग्रंथ है।

सम्पर्क : १९६, बड़ा बाजार मल्लीताल, नैनीताल-
२६३६०१।

समीक्षक : अभिराज राजेन्द्र मिश्र

जन्म : द्रोणीपुर (उ. प्र.), १९४३। इलाहाबाद वि. वि. से संस्कृतमें स्नातकोत्तर उपाधि, डि. फिल। हिमाचलप्रदेश विश्वविद्यालयमें संस्कृत विभागके अध्यक्ष। संस्कृत और हिन्दीमें इकत्तीस कृतियाँ प्रकाशित, छ: आलोचनात्मक शोधपरक कृतियां। १९८८ में साहित्य अकादमीसे कहानी-संग्रह 'इक्षुगन्धा' संस्कृतके लिए पुरस्कृत।

सम्पर्क : ११४, टीचर्स होस्टल, समरहिल, शिमला-
१७१००५.

कृति : यह समय मामूली नहीं (हिन्दी)

कृतिकार : नन्द चतुर्वेदी

जन्म : रावजीका पीपल्या गांव (म. प्र.), १९२३। आधी शतीसे पूर्व उदयपुरमें। उनकी काव्य यात्राका स्वर प्रारम्भसे ही राष्ट्रकी स्वाधीनताका समर्थन और सामाजिक वैषम्यका विरोध रहा। व्यापक अध्ययन, गहन अनुभूतिमयता एवं दार्शनिक जिज्ञासाने नन्द बाबूकी सर्जनाने आकृतिहीन क्षणों तारतम्यहीन घटनाओंको शब्द सामर्थ्ययुक्तता दीहै। 'सप्तकिरण', 'राजस्थानके कवि'का सफल सम्पादन कियाहै। 'स्वातंत्र्योत्तर काव्य आंदोलन: उपलब्धियाँ तथा सीमाएं' विषयपर प्रबन्ध तैयार कियाहै। निबन्ध-संकलन 'शब्द संसारकी यायावरी' को पुरस्कृत किया गयाहै। उनका अगला काव्य संकलन 'पृथ्वी गंधमयी तुम' प्रकाश्य है।

सम्पर्क : ३०, अहिंसापुरी, फतहपुरा, उदयपुर-
३१३००१.

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

जन्म : आगरा, १९३८। उदयपुर वि. वि. से प्रथम श्रेणीमें सर्वोच्च स्थान प्राप्तकर स्नातकोत्तर उपाधि (हिन्दी), राजस्थान वि. वि. से पी-एच. डी., डि. लिट्। इलाहाबाद वि. वि., कुमाऊं वि. वि., १९९१से सुखाड़िया वि. वि. में हिन्दी विभागमें तथा पत्रकारिता प्रभागके समन्वयक (प्रभारी) हैं।

शोध, समीक्षा-आलोचना, कहानी, नाटक विधाओं में १२ पुस्तकें, पत्रकारितापर आठ पुस्तकें प्रकाशित। निबन्ध एवं समीक्षात्मक ६ पुस्तकें प्रकाशनाधीन। १३० शोध निबन्ध प्रकाशित। अनेक संस्थाओंसे सम्मानित एवं पुरस्कृत।

सम्पर्क : ३४/१०० धूलकोटके पीछे, बोहरा गणेश मार्ग, उदयपुर-३१३००१.

भ्रमणवृत्त-निबन्ध

कृति : देवोनी घाटो (गुजराती)

कृतिकार : भोलाभाई पटेल

जन्म : सोजा ग्राम (मेहसाना जिला), १९३४। गुजरात वि. वि. से अंग्रेजीमें एम. ए., तथा हिन्दी में डाक्टरेट। भाषा विज्ञान एवं जर्मन भाषामें डिप्लोमा। गुजरात वि. वि. में हिन्दी विभागके अध्यक्ष रहे, शान्ति निकेतनमें तुलनात्मक भारतीय साहित्यके विजिटिंग फेलो तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोगके राष्ट्रीय प्राध्यापक रहे।

गुजराती एवं हिन्दी साहित्यके मर्मज्ञ डॉ. पटेल

की आलोचना कृतियोंमें अधुना (१९७९), पूर्वापर (१९७६) काल पुरुष (१९७९), भारतीय टूंकी वार्ता (१९७४), आधुनिकता अने गुजराती कविता (१९८५), हिन्दीमें 'अज्ञेय : एक अध्ययन' (१९८३) बहुचर्चित हैं। विदिशा (१९८०), कांचनजंघा (१९८५), बोले झीणा मोर (१९९२) आदि निबन्ध तथा पूर्वोत्तर आदि यात्रा-वृत्तान्तसे आप गुजराती गद्यके समर्थ सर्जक के रूपमें लोकप्रिय हैं। बंगला-असमी-हिन्दीकी अनेक कृतियोंका गुजरातीमें तथा गुजरातीसे हिन्दी में अनुवाद आपकी बहुमुखी प्रतिभाका प्रमाण है।

सम्पर्क : ३२, प्रोफैसर्स कालोनी, नवरंगपुरा,
अहमदाबाद-३८०००९.

समीक्षक : डॉ. पारूकान्त देसाई

वड़ोदरा विश्वविद्यालयमें हिन्दीके वरिष्ठ प्राध्यापक। 'प्रकर' के समीक्षक।

सम्पर्क : एम-४४, न्यू विक्रम बाग, प्रतापगंज,
बड़ौदा-३९०००२.

कृति : इन्द्रधनुष (नेपाली)

कृतिकार : आर. पी. लामा

जन्म : पंखाबाड़ी (जि. दार्जीलिङ), १९३१। उत्तर बंगाल वि. वि. से स्नातक उपाधि। पश्चिम बंगाल सरकारके सूचना एवं संस्कृति विभागमें तीस वर्ष सेवा। दार्जीलिङमें नेपाली साहित्य सम्मेलनके सचिव एवं अध्यक्ष।

निबन्धकार, कहानीकार, जीवनीकार, नाटककार, लोककथाकार और सम्पादक श्री लामाने नेपाली संस्कृति, भाषा और साहित्यके सम्बन्धमें बहुविध लेखन कियाहै। निबन्धों, कविताओं और कहानियोंके संकलन 'स्मृतियाँ' से लेकर 'प्रतिध्वनि' नाटक और 'इन्द्रधनुष' नामसे लोक-संस्कृति निबन्धोंका संग्रह उल्लेख्य हैं। अन्य रचनाओंमें पंचायती राजपर लिखे नाटक 'हाम्रो पंचायत', रेडियो वार्ताओंका संग्रह 'रेडियो वार्ताहरू' तथा १९८७में प्रकाशित जीवनी-माला 'कीर्ति-स्तम्भ' उल्लेखनीय हैं।

सम्पर्क : सम्मेलन भवन, १५ सोनम बागंडी रोड,
दार्जिलिङ (प. बंगाल)।

समीक्षक : डॉ. चन्द्रेश्वर दुबे

जन्म : ढोली (सकरा, जि. मुजफ्फरपुर)। एम. ए., पी-एच. डी.। अध्यक्ष हिन्दी विभाग, डी. एम. कालेज, इम्फाल (मणिपुर)।

नेपाली भाषामें विभिन्न विधाओंकी बारह और हिन्दीमें एक कृति प्रकाशित।

सम्पर्क : प्रोफैसर्स क्वार्टर नं. ७, डी. एम. कालेज,
इम्फाल-७९५००१।

अध्ययनपरक पठनीय ग्रन्थ

आलोचना

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	३५.००
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	४५.००
	विद्यार्थी संस्करण	३०.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रा. नित्यानन्द पटेल	सजिल्द	४५.००
प्रकर : विशेषांक ['पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के ग्यारह अंक]		२७५.००

उपन्यास : कथा

अपराधी वैज्ञानिक (वैज्ञानिक उपन्यास)—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	सजि.	६०.००
ये पहाड़ी लोग—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	सजि.	२५.००
सुधा (मलयालमसे अनूदित)—टी. एन. गोपीनाथ नायर	,,	२५.००
शकुन्तला—(अभिज्ञान शाकुन्तलम् का औपन्यासिक रूपान्तर)	,,	२५.००
बर्मा—(बर्माके प्रवासी भारतीयोंकी कहानी	,,	३०.००
संस्कृत कथाएं (प्राचीन कथाएं)—डॉ. कृष्णकुमार	पेपर बैक	१५.००

नाटक

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नय्यर	सजि.	२०.००
श्रेष्ठ एकांकी—डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	,,	२०.००

जीवन दर्शन

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायण दत्त	सजि.	२०.००
महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन ,, ,,	,,	२५.००
गुरु नानक : जीवन और दर्शन ,, ,,	,,	३०.००
श्री अरविन्द ,, ,, ,, रविन्द्र	,,	२०.००

समसामयिक साहित्य

रुपयेका अवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा- डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी		४०.००
विस्तारवादी चीन—जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी (पुरस्कृत)	जेबी आकार	८.००
कच्छ—पद्मा अग्रवाल ,,	,,	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश ,,	,,	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल	,,	१०.००

'प्रकर' कार्यालय

ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' की साहित्य सेवा के लिए मंगलकामनाएँ

—डॉ. वत्सला गणपति
वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्
पूसा रोड, नई दिल्ली-११००१२

* * *

विशेषांकोंकी शृंखला के लिए मंगलकामनाएं

—डॉ. आराधना परमार
कैलगरी यूनिवर्सिटी, कनाडा

* * *

'प्रकर' विज्ञापन-शुल्क

पूरा पृष्ठ (१५ × २० से. मी.)	१०००-०० रु.	आधा पृष्ठ	५५०.०० रु.
चौथाई पृष्ठ	३००-०० रु.	अन्तिम आवरण पृष्ठ	२०००.०० रु.

[वर्ष भरके लिए न्यूनतम तीन पृष्ठ अथवा अधिकके अनुबन्धपर १५ प्रतिशतकी छूट]

महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयोंके लिए 'प्रकर' का वार्षिक शुल्क

☐ **प्रस्तुत अंक** ४०.०० रु.

☐ **वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) :** संस्था : ७५.०० रु.; व्यक्ति : ६५.०० रु.

☐ **आजीवन सदस्यता :** संस्था : ७५१.०० रु.; व्यक्ति : ५०१.०० रु.

☐ विदेशोंमें समुद्री डाकसे एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें २००.०० रु.

विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए)—एक वर्षके लिए : ४८०.०० रु.

☐ दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि '**प्रकर**' के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' : अगस्त'९३ : पंजीकरण संख्या १७५८२/६९ : डाक पंजीकरण संख्या : डीएल : १९००९/९

पुरस्कृत भारतीय साहित्य

प्रस्तुत "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक इसी श्रृंखलाका ग्यारहवां अंक है। इससे पूर्व विशेषांक प्रकाशित हो चुकेहैं। भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस समय जो प्रवृत्ति दिखायी दे रही है, वह इस दृ से महत्त्वपूर्ण है कि अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी भारतीय साहित्य की अन्तश्चेतना एक उसकी अन्तस्फूर्तिके स्रोत भी समान है। फिर भी उस चेतनाके समग्र रूप को न तो प्रस्तुत किया गयाहै, न उस योजनाबद्ध अध्ययन। इस अध्ययनकी सम्भावना को ध्यानमें रखते हुए 'प्रकर' प्रतिवर्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर र है जो अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी हैं।

अबतक इन ग्यारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	९	डोगरी	१०	मराठीं	११
उड़ियां	१२	तमिल	१२	मलयालम	८
उर्दू	३	तेलुगु	१०	मैथिली	१०
कन्नड़	१२	नेपाली	९	राजस्थानी	११
कश्मीरी	५	पंजाबी	११	संस्कृत	८
कोंकणी	१०	बंगला	८	सिन्धी	१०
गुजराती	१३	मणिपुरी	११	हिन्दी	१३

सभी अंकोंकी पृष्ठ संख्या : ११२६ 　　　　 कुल समीक्षित ग्रंथ २०७

इन ग्रंथोंकी समीक्षाओंसे न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मता उभर कर आतीहै, साथमें वि साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होताहै। साहित्यिक दृ वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी ग्यारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : २७५.००

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोज़िंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी,
चमेलि[illegible] रोड, [illegible] ६
प्रका[illegible] -/८२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७. 　 दूरभाष : ७११३७६३.

Entered in Database

Signature with Date

29/12/08